

समाजशास्त्र परिचय

समाजशास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का प्रामाणिक विश्लेषण

{भारतीय विश्वविद्यालय के नवीनतम स्वीकृत
पाठ्य-क्रमानुसार}

रामपालसिंह गौड

प्रबन्धक समाजशास्त्र विभाग

गोरखपुर विश्वविद्यालय

गोरखपुर

तृतीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

रतन प्रकाशन मन्दिर

पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता

प्रधान कार्यालय

अस्पताल मार्ग आगरा-३

प्रथम संस्करण १९५८
द्वितीय संशोधित संस्करण १९६०
तृतीय परिचिद्धित संस्करण १९६६

मूल्य

बारह रुपये पचास पस मात्र

प्रकाशक

रतन प्रकाशन मंदिर
अस्पताल भाग, आगरा ३

मुद्रक

पदमचन्द जन
प्रेम इन्डिस्ट्रिज प्रेस
चन्द्रशेखर आजाज भाग आगरा ३

शाखाएँ

आगरा २	सू मार्केट राजामण्णी
दिल्ली ६	५६६३ नई मडक, फस्ट पवार पापल वाला कोठी
गोरखपुर	मोहल्ला मुफ्तीपुर
इन्दौर	गाराकुण्ड
जयपुर	घामानी मार्केट चौक सान्ता
बानपुर	निलक हॉल लेन, मस्टन राड
मेरठ	बस्टन कचहरी राड
पटना ४	खजाची राड

पूजनीय माता पिता

का

सादर समर्पित

तृतीय सस्करण की भूमिका

'समाजशास्त्र परिवर्ध' का तृतीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने हुए मुझे हर्ष है। इस पुस्तक के प्रथम दो संस्करणों और उनकी कई आवृत्तियों की हाथों हाथ विक्री हो गई। विश्वविद्यालयों और कानूनों तथा उच्चतर विद्यापीठों के स्नातकीय अथवा सभ्यता कक्षाओं के विद्यार्थियों और साधारण पाठकों में यह पुस्तक अत्यन्त लोकप्रिय है। इनके सुविधा पाठकों विषय के अध्यापकों तथा समालोचकों ने बहुत प्रशंसापूर्ण समीक्षाएँ अथवा सम्मतियाँ भेजी। प्रायः प्रत्येक वर्ग ने पुस्तक का ऐसा स्वागत किया जो संभवतः अभी तक इस विषय पर प्रकाशित किसी भी रचना का नहीं हुआ। पुस्तक के उच्च स्तर विषय वस्तु के प्रामाणिक प्रतिपादन और सरल पारिभाषिक हिन्दी में निष्ठ ज्ञान के कारण भारत के विश्वविद्यालयों और विद्यापीठों में इस एक स्वीकृत पाठ्यपुस्तक के रूप में मायना मिली है। प्रथम संस्करण के प्रकाशित होने पर पुस्तक में संशोधन-सुधार के कई उपयोगी सुझाव प्राप्त हुए थे जिन्हें द्वितीय संस्करण में सम्मिलित कर लिया गया था। पुनः जो कई रचनात्मक सुझाव आये हैं उनके ऊपर भी विचार किया और तीसरे संस्करण में प्रायः सभी पुराने अध्यायों में पर्याप्त सुधार किया गया है। कई अतिवृत्त नए अध्याय जोड़ दिये गए हैं। नए अध्याय हैं पशु और मानव समाज, सामाजिक परिस्थितिशास्त्र सामाजिक व्यवस्था के स्तर सामाजिक विभिन्नता के कारण विधान, प्रविधि एवं समाज तथा सामाजिककरण। पुस्तक में उपरोक्त सुधारों और परिवर्धनों ने इन स्नातक कक्षाओं और साधारण पाठकों के लिए एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक बना दिया है। आशा है अब हमारे पाठक 'समाजशास्त्र परिवर्ध' का समाजशास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्तों की एक प्रामाणिक रचना के रूप में निश्चिन्त स्वीकार कर सकेंगे। हम विश्वास हैं पाठक सभ्यता की भाँति अपने बहुमूल्य रचनात्मक सुझावों तथा महानुभूतिपूर्ण प्रतिक्रियाओं से हमारा उत्साह बढ़ाते रहेंगे।

प्रस्तुत संस्करण में सुधार करने के लिए जिन महानुभावों के सुझाव मिले हम उनके बड़े आभारी हैं। पाण्डुलिपि तैयार करने तथा उसमें समय-समय पर सुधार हेतु सुझाव देने के लिये हम अपने कई विद्यार्थियों तथा सहयोगियों के हृदय से आभारी हैं। अतः मैं प्रकाशक श्री पद्मचन्द्र जैन के प्रति भी आभार प्रकट करना जरूरी है क्योंकि उन्होंने प्रथम दो संस्करणों की विक्री एवं विनापन की सुयोग्य व्यवस्था करके हमारा उत्साह बढ़ाया है।

समाजशास्त्र विभाग,

गोरखपुर

१० अप्रैल १९६६

रामपालसिंह गौड़

द्वितीय संस्करण की भूमिका

पुस्तक के इस द्वितीय संशोधित संस्करण का पाठका के समक्ष प्रस्तुत करत हुए मुझे बड़ा हृष है। तगभग डेढ़ बष मे प्रथम संस्करण की समस्त प्रतियां का जिन जाना पुस्तक की उपयोगिता का सूचक है। नवन क लिए सवम उमाहवद्ध क ता यह वात रही है कि इस पुस्तक क उच्च स्तर विषय क प्रतिपादन और प्रामाणिकता की प्रशंसा अनेक विद्वाना और समालोचका ने की है। त्श क हिन्दी भाषी क्षेत्र के विश्व विद्यालया मे इस पाठ्य-पुस्तक तथा सहायक पुस्तक के रूप मे पढाया जा रहा है। आशा है यह संशोधित संस्करण पाठका क लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

सखन उन सभी सहाय पाठका विद्वानो और समालोचका के प्रति हृदय मे आभारी है जिन्हान पुस्तक मे संशोधन और सुधार करने क निय वट्टमूल्य सुभाव भज है और आशा करता है कि उस इस प्रकार का महयाग और सहायता भविष्य मे भा मिलनी रहगी।

१५ मितम्बर १९६० ई०

रामपाल सिंह

प्रथम संस्करण की भूमिका

भारत के अधिकांश विश्वविद्यालया मे सर्वोच्च परीक्षाका क लिए अज समाज शास्त्र एक स्वतंत्र विषय के रूप मे स्वीकृत है। जनसाधारण, समाज नायकताका आमाजिन शिक्षा के संगठनकर्ताका तथा नियाजन अधिकारिया की जिलचस्था भी एम विषय मे अधिकाधिक बढ रही है। इस कारण, हिन्दी भाषा मे लिखी समाजशास्त्र की पुस्तका की जिन दिन मांग बढ रही है। पिउन कुछ वर्षों मे हिन्दी में समाजशास्त्र क मूल सिद्धान्ता तथा उसके अज विषयो पर जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं क अज जिक बाधी हैं और नया प्रयास ज्ञान के कारण अनुनायक नोपपूण हैं। फलत विद्या विषा तथा सामाज्य पाठका की आवश्यकतायो की यथेष्ट पूर्ति नहा कर पावी। इस अभाव की पूर्ति के उद्देश्य से मैंन प्रस्तुत पुस्तक लिखी है।

प्रस्तुत पुस्तक मे समाजशास्त्र के मूल तत्वा अथवा सिद्धान्ता का विवचन किया गया है। इसलिए इसे समाजशास्त्र परिचय की मना दी गई है। इसमे विशेष कर आगरा विश्वविद्यालय की बी० ए० (प्रथम बष) कक्षा के लिय निर्धारित पाठ्य क्रम मे प्रथम प्रश्नपत्र के अनुसार सामग्री का समावेश किया गया है। द्वितीय प्रश्न पत्र के लिय इस पुस्तक का द्वितीय भाग उपलब्ध है। "समाजशास्त्र परिचय" के दोनो भागा मे सम्मिलित सामग्री समाजशास्त्र के सिद्धान्ता (Principles of Sociology) का आस्थापान विवचन है इसलिय यह सम्पूर्ण ग्रंथ भारत के प्रत्येक विश्वविद्यालय की डिग्री कक्षाका के विद्यार्थिया क लिय उपयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रन्थ का उद्देश्य पाठकों को समाजशास्त्र के मूल सिद्धांतों से परिचित कराना है। यदि यह ग्रन्थ पाठकों में विषय का यथाथ दृष्टिकोण तथा उसके प्रति रचित उत्पन्न कर सकेगा तो लेखक अपने प्रयास का सफल समझेगा।

पाठ्य पुस्तक लिखने में लेखक को कई सीमाओं के अन्दर रहना पड़ता है। अस्तु इस पुस्तक की रचना में मैंने निम्न बातों पर विशेष ध्यान दिया है —

(१) पुस्तक की समस्त सामग्री प्रमाणित तथा वैज्ञानिक हो और उससे विश्लेषण में सबत्र समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण बना रहे।

(२) विषय-वस्तु को तार्किक ढंग में रख कर प्रत्येक विषय का यथावश्यक विस्तार से विश्लेषण हो।

(३) समस्त सामग्री का विश्लेषण भारतीय सभ में किया जाए। विदेशी समाजों से उदाहरण केवल तुलना की दृष्टि से लिए जाए।

(४) प्रामाणिकता लाने के लिये विभिन्न विद्वानों के विचारों की समीक्षा तो की जाए किन्तु फिर भी सामग्री के समग्र विश्लेषण में आवश्यक सरलता बनी रह।

(५) विषय का इतना सरल और सुसोध्य विवचन हो जा इस शास्त्र के सशक्त और प्रगतिशील विकास में सहायक हो।

मैं अपने प्रयत्न में कहीं तक सफल हुआ हूँ इसका निगम तो सहृदय पाठकों तथा बिन समालोचक ही करेंगे। मेरा उनसे नम्र निवेदन है कि वे इस पुस्तक की श्रुतियों की ओर ध्यान आकृष्ट करते रहें और अपने रचनात्मक सुभाव मुझे भेजें जिनका मैं साभार स्वागत करूँगा।

पुस्तक में मौलिकता कहीं भी नहीं मिलेगी। यह सम्पूर्ण कृति विभिन्न विद्वानों के विचारों पर आधारित है। हाँ सामग्री का प्रस्तुत करने के ढंग में यूनाधिक मौलिकता अवश्य मिलेगी।

पुस्तक के लिखने में जिन विद्वानों की कृतियों अथवा विचारों से मैंने सामग्री तथा पथ प्रदर्शन प्राप्त किया है उनका मैं हृदय से आभारी हूँ। व्यक्तिगत विद्वानों के प्रति आभार प्रदर्शन पुस्तक में यथास्थान पृष्ठतल टिप्पणियों के द्वारा भी किया गया है। अन्त में जिन सज्जनों ने इस बिनम्र प्रयास के लिये प्रेरणा अथवा सहयोग दिया है, मैं उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ।

आगरा

रामपालसिंह

१५ नवम्बर, १९५७ ई०

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

पृष्ठा		पृष्ठ
१	समाजशास्त्र क्या है ?	३
२	समाजशास्त्र एवं अन्य विद्या	३१
३	समाजशास्त्र की अध्ययन विधियाँ	४८
४	प्राथमिक परिभाषाएँ	६३

द्वितीय खण्ड

५	सामाजिक जीवन के कारक	८६
६	मानव और पशु समाज	१००
७	समाज और पर्यावरण	१११
८	भौगोलिक पर्यावरण	११६
९	मस्तिष्क और सम्यक्ता	१२६
१०	सम्पूर्ण पर्यावरण	१८०
११	वशानुक्रमण और पर्यावरण	१६४
१२	ग्रामीण और नगरीय जीवन	२०८
१३	सामाजिक परिस्थितिशास्त्र	२४१

तृतीय खण्ड

१४	सामाजिक संगठन या व्यवस्था के रूप	२५३
१५	सामाजिक व्यवस्था के स्तर	२६४
१६	सामाजिक विभिन्निकरण	२७७
१७	सामाजिक समूह	२८५
१८	समुदाय एवं राष्ट्र	३१५
१९	प्रजातिक एवं जातीय समूह	३३२
२०	सामाजिक स्तरण—जाति और वर्ग	३५८
२१	सामूहिक व्यवहार (भीड़ श्रोतागण, जनता)	३६१

चतुर्थ खण्ड

२२	सामाजिक संस्थाएँ	८१६
----	------------------	-----

ध्याय		पृष्ठ
✓ २३	परिवार एव विवाह	४३८
✓ २४	आर्थिक एव राजनतिक मस्याएँ	४६१
✓ २५	धार्मिक एव नास्टुतिक मस्याएँ	५२१
✓ २६	विनान प्रविधि एव समाज	५३७
	पञ्चम खण्ड	
✓ २७	व्यक्ति और समाज	५४७
२८	सामाजीकरण	५६०
२९	सामाजिक अन्त क्रिया	५८६
३०	सामाजिक नियन्त्रण	६२०
३१	सामाजिक परिवर्तन	६४४
३२	सामाजिक विकास एव प्रगति	६७३
३३	सामाजिक विगठन और पुनगठन	६९१

प्रथम खण्ड

विषय-प्रवेश

- १ समाजशास्त्र क्या है ?
- २ समाजशास्त्र एवं अन्य विज्ञान
- ३ समाजशास्त्र की अध्ययन रीतियाँ
- ४ प्राथमिक परिभाषाएँ

समाजशास्त्र क्या है ?

विषय-प्रवेश

प्रारम्भ से ही मानव-समाज के समस्त दो प्रकार की समस्याएँ रही हैं। पत्ल प्रकार की वे समस्याएँ हैं जो मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सम्बन्ध रखती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन प्रकृति में मिलते हैं। अतएव समाज का अपनी भौतिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए प्राकृतिक सामान का जुटान में जिन समस्याओं का मुकाबला करना पड़ता रहा है उन्हें हम प्राकृतिक समस्याएँ कह सकते हैं। दूसरे प्रकार की समस्याएँ सामाजिक हैं। इनका क्षेत्र स्वयं मनुष्य का समाज है। समाज सहवामी मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के हरक प्रकार और अंशों की एक व्यवस्था (System) होती है। यह व्यवस्था गन्तव्य (dynamic) और विकसित होती रही है। इसके विभिन्न अंशों को एकत्र (integrated) और स्थिर करने की समस्याएँ हमेशा से रही हैं। मनुष्य इन प्राकृतिक और सामाजिक समस्याओं को सुलभान का प्रयास भी बराबर करता रहा है। किन्तु इन दोनों प्रकार की समस्याओं का सन्तुष्टि समाधान तभी सम्भव हो सकता था जब प्राकृतिक और सामाजिक तथ्यों और घटनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का वास्तविक विवेक और परस्पर ज्ञान था। प्रारम्भ में मनुष्य इन समस्याओं के समाधान का प्रयास अपने अन्तर्ज्ञान (intuition) तथा सामान्य बुद्धि के आधार पर करता था। प्रकृतिक वास्तविकताएँ एवं श्रुति की विधि का अपनाता था। इन विधि में एक समस्या का जो भी हल (समाधान) मिलता उसके दूसरे समाज या परिस्थिति के मनुष्य अपना लेते थे। परिष्कार और श्रुति की विधि के प्रयोग का क्रम एक समाज में दूसरे समाज में चलना रहता। कई बार इन विधि के निरन्तर प्रयोग में कुछ समस्याओं का समाधान भी मिल जाता था।

ज्या ज्यों मनुष्य की सोचन की शक्ति का विकास होता गया वह अपनी समस्याओं का समाधान नए-नए तरीकों द्वारा ढूँढने लगा। शब्द प्राकृतिक तथा सामाजिक तथ्यों और घटनाओं—प्रकृति और समाज के अस्तित्व और निरन्तर परिवर्तन—के कारण ढूँढने के प्रयास में ही उसने इतर की बल्यता की है। उसके चारों ओर प्रकृति में जो श्रुति भी था और हा रहा था उनका एक मात्र कारण ईश्वर के काम समझे जाने लगे। इस तरह धर्म मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र बनकर आया। धार्मिक पूजा-पाठ करके वह अपनी समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करने

लगा। किंतु धर्म भी उसकी प्रत्येक समस्या का यथेष्ट रूप से नहीं सुनभा पाता था। इसलिये उसने समाज और प्रकृति में होने वाली घटनाओं का काय-कारण सम्बन्ध (cause and effect relation) जानने के लिये जादू को अपनाया। जादू के अन्तर्गत विविध टोने-टोटका की क्रियाओं से वह अपने प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण (environments) का प्रभावित करने में तल्लीन हो गया। कई बार उसे मनचाहा परिणाम प्राप्त हो जाता था और जब कभी जादू से उसका मन्तव्य पूरा न हो पाता तो वह अपनी क्रिया में ही कहीं गड़बड़ी मान बैठता। पर जादू का क्रम भी अखिर में मनुष्य को सन्तुष्ट न कर पाया। वह जादू से अविद्य प्रभावशाली विधि की खोज में चल निकला। इस खोज के दौरान में उसका अस्तिष्क बहुत सक्रिय हो गया। धर्म की शक्ति और सत्ता को फिर एक बार बहुत बल मिला। समाज और प्रकृति की घटनाओं के बारे में मनुष्य ने अधिक सम्पन्न बल्पना शक्ति तथा तक-बुद्धि से काम लिया। गभीर विचारा और मिद्धाता का विकास हुआ। यह युग दर्शन (Philosophy) का था। किन्तु तार्किक विचार और तार्किक सिद्धान्त (Principles of Logic) भी मनुष्य का उसने चारा और हानि वाली घटनाओं का काय-कारण सम्बन्ध पूरातया नहीं बता पाया। अतएव मनुष्य फिर भगोरथ प्रयत्न करने लगा। इस बार उसने जिस ज्ञान को विनमित किया वह उसका चारा और प्रकृति के तथ्या और घटनाओं में काय कारण के सम्बन्ध को समझने में समय मिद्ध होने लगा। अपनी अभूतपूर्व सफलता से प्रोत्साहित होकर उसने प्राकृतिक घटनाओं के अध्ययन में प्रयोग की गई इस विधि का उपयोग समाज के अध्ययन में भी किया। उसे इस क्षेत्र में भी सफलता मिली। इस सफल विधि से जिस ज्ञान भण्डार का विकास हुआ है उसे विज्ञान (Science) कहा जाता है। विज्ञान का विकास मनुष्य अनवरत, अबाध गति से करता जा रहा है। उसे विश्वास है कि विज्ञान के विकास और प्रगति से ही वह अपनी नित नई प्राकृतिक और सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में समर्थ हो सकेगा। तभी वह अपना और अपने समाज का कल्याण कर सकेगा।

वैज्ञानिक विधि का विकास

आधुनिक विज्ञान के विकास का प्रथम चरण १५वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ था। इस समय से मनुष्य ने पहली प्राकृतिक समस्याओं का समाधान वास्तविक प्राकृतिक घटनाओं के अध्ययन से करना चाहा था। यह अध्ययन कठोर बल्पनाओं और तर्कों पर आधारित नहीं था। प्राकृतिक तथ्या और घटनाओं के वास्तविक अध्ययन के लिये विविध विज्ञानों का उद्भव हुआ। इन विज्ञानों ने तीन गतावधियाँ में ही महत्त्वपूर्ण उत्पत्ति कर ली थी। इनकी सहायता से मनुष्य ने अपनी अनेक प्राकृतिक समस्याओं का समाधान कर डाला था। प्रकृति के पक्षियों, दशाओं और शक्तियों—सम्प्रेषण, प्राकृतिक माघना का शोषण कर मनुष्य एक ज्ञानकार सम्पत्ता के रूप में जुट गया था। इस सम्पत्ता में हर उत्पत्ति से मनुष्य प्रकृति में कुछ न कुछ

समोपन और परिवर्तन कर डालता था। वह प्रकृति का प्राकृतिक नियंत्रण कर चुका था। उसकी महान सभ्यताओं का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि प्रगति की उसकी धारणा हट हो गई। १८वीं शताब्दी तक यह धारणा इतनी प्रबल हो गई थी कि मनुष्य को विश्वास हो गया था कि समाज की प्रगति निर्दिष्ट आदर्शों और तथ्यों के अनुसार और सामूहिक प्रयत्न द्वारा की जा सकती है। समाज के वैज्ञानिक अध्ययन का प्रारम्भ इसी काल में हुआ। सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं (aspects) के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, विधिशास्त्र आचारशास्त्र, प्राणि सामाजिक विज्ञानों (Social Sciences) का जन्म और विकास हुआ।

सभ्यता की उत्पत्ति से जहाँ एक ओर मनुष्य अधिकाधिक प्राकृतिक समस्याओं का मुकाबला कर और विज्ञान से करता और प्रकृति पर नियंत्रण बढाना जाना था, दूसरी ओर उसका समाज विकसित हो रहा था। समाज के विकास की गति पहले की अपेक्षा बहुत तीव्र हो गयी और इससे प्रचलित समस्याओं विचारों और आदर्शों में परिवर्तन भी बहुत तीव्र हो रहा था। इससे अनेक सामाजिक समस्याएँ पैदा हो गईं जो प्राचीन समस्याओं की अपेक्षा अधिक गम्भीर और जटिल थीं। इस परिस्थिति की सामाजिक आवश्यकताओं ने मनुष्य का सामाजिक विज्ञान की उत्पत्ति करने के लिए बाध्य किया। क्योंकि उनके सामने नए गम्भीर और जटिल समस्याओं का सुन्धान का महत्वपूर्ण प्रश्न था।

समाजशास्त्र का जन्म और विकास

विभिन्न सामाजिक विज्ञानों ने मनुष्य के व्यवहार और सामाजिक सम्बन्धों तथा उनके निम्नलिखित रचनाओं (structures) तथा व्यवस्थाओं (systems) के विभिन्न पक्षों के विशेष अध्ययन की अपेक्षा उद्देश्य मान लिया। अर्थशास्त्र मनुष्य के आर्थिक व्यवहारों और उनकी उपजों का अध्ययन करता था। राजशास्त्र (Political Science) उन सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करता था जो राज्य और सरकार द्वारा नियंत्रित होते थे। मानवशास्त्र (Anthropology) ने प्राचीन समाजों (primitive societies) के क्षेत्र को चुना। आचारशास्त्र (Ethics) अर्थशास्त्र तथा बुरे आचारों के अन्तर्गत समाज को नैतिक मांग पर चलने का सुन्धान देना था। इसी प्रकार विज्ञानशास्त्र (Jurisprudence) समाज-समाजशास्त्र आदि सामाजिक विज्ञान सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं (particular aspects) के विशेष अध्ययन में सफल हो गये। किन्तु इन एकपक्षीय (one-sided) अध्ययनों ने ऐसी-वैसी विकास नहीं हो पाया जो समग्र समाज की सशय जानकारी प्रस्तुत कर सकें। सम्पूर्ण समाज के सूक्ष्म चित्र की सोच में यह ज्ञान अपर्याप्त था। इस अभाव का कद समाज-विचारकों ने समझ लिया था। उनमें से फ्रांसीसी विद्वान अगस्त कोम्टे (August Comte 1798-1857 A. D.) अग्रणी था। उसने समाज के समग्र रूप का

वास्तविक अध्ययन करन के लिये एक विज्ञान की रूप रखा तयार की और उसे अपने जीवन काल में विकसित भी किया। इस विज्ञान को वह समाजशास्त्र (Sociology) कहता था। अतएव अगस्त बोम्त समाजशास्त्र का पिता कहा जाता है।

कोम्त ने अपनी पुस्तक "*Cours de Positive Philosophie*" में जिस समाजशास्त्र की रूप रेखा प्रस्तुत की थी उसका कम या अधिक सशोधना के साथ, विकास उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होता रहा। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में भी विकास की गति कुछ अधिक तीव्र नहीं हो पाई। विशेषकर, प्रथम विश्व महायुद्ध के पश्चात् इस विज्ञान की व्यापक और तीव्र उन्नति हुई। वर्तमान समय में यह सामाजिक विज्ञान बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। इसकी उन्नति और प्रसार के लिये हर एक सभ्य राष्ट्र प्रयत्नशील है।

समाजशास्त्र के शशव काल में उसका पालन पोषण फ्रांस के दुरखीम (Durkheim), लेप्ले (Le Play), डिडरो (Diderot), रूसा (Rousseau) माटेन (Montaigne), ह्यूबर्ट (Hubert), टार्डे (G. Tarde) हाल-वाक्स (Halbwachs) और मास (Mauss) के हाथों में हुआ। मिल (Mill), बकल (Buckle), स्पेंसर (Spencer) ने ब्रिटेन में समाजशास्त्र का प्रारम्भिक विकास किया। बाद के विद्वानों में प्रमुख पट्रिक गेडे (Patrick Geddes), चार्ल्स बूथ (Charles Booth) हावहाउस (Hobhouse) हॉबसन (Hobson) राबर्टसन (Robertson) ग्राहम वालास (Graham Wallas) वेस्टरमार्क (Westermarck), मरेट (Marret), कार-साण्डर्स (Carr Saunders) जिन्सबर्ग (Ginsberg) और मन्हीम (Mannheim) हैं। जर्मन समाजशास्त्रियों में से प्रमुख ये हैं — टॉनीज (Tonnies) रजल (Ratzel), मार्क्स (Marx), हेगेल (Hegel) डिल्थे (Dilthey) मार्क्स वेबर (Max Weber) वीरकांत (Vierkandt) जाज सिमेल (George Simmel) और शेलर (Scheler)। फ्रांस, ब्रिटेन तथा जर्मनी और अन्य यूरोपीय देशों में जिस समाजशास्त्र का विकास हुआ है उसे यूरोपीय समाजशास्त्र (European Sociology) की संज्ञा दी जाती है। अमरीका और रूस में इससे भिन्न समाजशास्त्र का विकास हुआ। अमरीका में तो समाजशास्त्र की इतनी अधिक उन्नति हुई है कि कई बार समाजशास्त्र को लाग अमरीकन विज्ञान (American Science) कह रूँठने हैं। लेस्टर वाड (Lester Ward), स्माल (Small), जनिन्की (Znaniecki), गिडिंग्स (Giddings), रॉस (Ross), पार्क और बर्गस (Park and Burgess), ओडम (Odum), सोरोकिन (Sorokin) जिमरमन (Zimmerman), पारसन (Parsons), मकाइवर (MacIver) आगबर्न (Ogburn), हाउस (House), लुण्डबर्ग (Lundberg), मर्टन (R. Merton), डैविस (K. Davis) तथा पालीन यंग (Pauline Young) प्रसिद्ध अमरीकी समाजशास्त्री हैं। इसी प्रकार रूस इटली, स्वीडन, दक्षिणी अमरीका चीन, जापान और भारत के समाजशास्त्रीय अध्ययन में अनेक विद्वानों का विशेष योगदान

रहा है। भारत में सत्रप्रथम समाजशास्त्र का अध्ययन प्रो० पट्टिक गनिम के नेतृत्व में बम्बई विश्वविद्यालय में १९१९ ई० में प्रारम्भ हुआ था। कानान्तर में यह विज्ञान देश के अन्य प्रमुख विश्वविद्यालयों जैसे कलकत्ता और लखनऊ में पढ़ाया जाने लगा। १९४७ ई० के पश्चात् तो यह विज्ञान भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं में पढ़ाया जाने लगा। अनेक सम्पादना में समाजशास्त्रीय शोध (Sociological Research) का कार्य हो रहा था तथा कई विश्वविद्यालयों के विभागों या विद्यापीठों में व्यावहारिक समाजशास्त्र (Applied Sociology) तथा समाज कार्य (Social Work) की शिक्षा दी जा रही है। समुक्त राष्ट्र संघ की 'आर्थिक और सामाजिक समिति' (Economic and Social Committee) के सत्वावधान में संसार के कई देशों में महत्वपूर्ण सामाजिक अनुसंधान कार्य हो रहे हैं। संशोधन में समाजशास्त्र का विकास किसी क्षेत्र विशेष तक ही सीमित नहीं है। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय विषय बन गया है। इसके साहित्य का भण्डार बड़ी तेजी से समृद्ध हो रहा है।

परन्तु समाजशास्त्र का अभी भी एक प्रौढ़ सामाजिक विज्ञान बनने में काफी अवधि और प्रयत्न की आवश्यकता है। हाँ, इसमें सन्देह नहीं जैसे इस विज्ञान में शोध ही (कम से १०० वर्षों में) अपनी शैशवावस्था पार करती है वैसे ही उपयुक्त काल में यह एक प्रौढ़ विज्ञान बन सकेगा। किसी विज्ञान की मनुष्य-विकास-शीलता उसकी आन्तरिक शक्ति और उत्पादनता की सूचक है।

समाजशास्त्र की आवश्यकता

वर्तमान समय में सामाजिक विज्ञान—विशेषकर समाजशास्त्र की उन्नति की आर्थिक आवश्यकता है। क्योंकि जहाँ प्राकृतिक पर्यावरण की शक्तियों पर मनुष्य का आर्थिक नियंत्रण हुआ गया है और उस नियंत्रण में वृद्धि होने की स्पष्ट सम्भावना है वहाँ उनका समाज उसके लिए एक भयानक समस्या बन बैठा है। तीव्र सामाजिक उन्नति और परिवर्तन से उसका सामाजिक पर्यावरण बहुत अधिक जटिल हो गया है। जिन सामाजिक शक्तियों या घटनाओं पर वह काबू पाने में असमर्थ सिद्ध हो रहा है वे सभी स्वयं उसके द्वारा उत्पन्न हुई हैं। मानव सम्बन्धों तथा आर्थिक समस्याएँ निरन्तर, अपराध पतन और युद्ध कुछ ऐसी ही नीपण समस्याएँ हैं। ये आधुनिक मनुष्य का चुनौती दे रही हैं। हजारों सालों से मनुष्य प्रकृति परम्पराओं तथा संस्थाओं का निर्माण करता आ रहा है। जनता, विज्ञान मनुष्य, पूजावाद समाजवाद और साम्यवाद की आर्थिक समस्याएँ, एक विवादी परिवार, व्यावसायिक वर्ग अथवा उन्नत संस्कृतियों, आर्थिक मण्डल सभी का मनुष्य ने मूज किया है। इन्हें पृथ्वी पर मनुष्य के समाज में वाइ देवी शक्तियाँ नहीं लाईं। गाँव से भारी संख्या में निष्क्रमण, झूठे जीवन के धृष्टिपूर्ण रूप—अध्यात्मिक, गरीबी निष्ठावृत्ति, बान्धव अपराध, नृशंस अपराध, साम्प्रदायिक तथा प्रजातीय संघर्ष, विचारधाराओं का प्रचार के लिए बकर प्रत्याचार और दमन, राष्ट्रीय विकराल युद्ध तथा मानव

का पतत—य सब हमारे आधुनिक सम्य समाज के लक्षण हैं। इस समाज की सभी बुनियादी (basic) गत्याग्रा म इतना परिवर्तन हो रहा है कि मनुष्य बुरी तरह घबड़ा रहा है। व्यक्ति के चारों ओर समस्याएँ तथा प्रतिकूलताएँ जमघट लगाये हैं। मनुष्य ने जिस सामाजिक संगठन का निर्माण किया है शायद ही कभी पहले उसके लिए सामूहिक चेतन नियोजन किया हा।

चेतन नियोजन के अभाव का परिणाम बहुत दुःखनायी हुआ है। समाज के सत्त्वा में परम्पर इतनी प्रतिकूलता है कि वह अत्यंत अमुरक्षित और अस्थिर हो चुका है। मनुष्य की छोटी सी भी भूल उसकी गौरवमयी सम्पत्ता को अत्यल्प समय में नष्ट कर सकती है। इसलिए मनुष्य को स्वनिर्मित सामाजिक अस्त-वस्तता (chaos) को ठीक करने के लिए विचार युक्त प्रयत्न करने चाहिए। समय की यही पुकार है। आधुनिक मनुष्य तथा उसकी सत्तान के लिए महाद काय सामाजिक ससार को समझना और उमका नियंत्रण करना है जैसे कि अतीत की पीणिया ने प्राकृतिक ससार को समझना और नियंत्रण में लाना सीख लिया है।¹

आधुनिक समाजशास्त्र का इतिहास केवल सौ वर्षों की संक्षिप्त अवधि का इतिहास है। इतनी ही अवधि में इस विज्ञान के अध्ययन की आशातीत उन्नति हुई है। प्रथम विश्व महायुद्ध (१९१४-१८) के पश्चात् तो समाजशास्त्र के अध्ययन को इतना महत्वपूर्ण समझा गया है कि सभी सम्य दशों में बड़ी तत्परता से इस शास्त्र की उन्नति की जा रही है। रूस द्वारा प्रचारित आर्थिक नियोजन की धारणा अब विस्तृत हो गई है। सर्वांगीण नियोजन का प्रगतिशील देशों ने सामाजिक कल्याण और समृद्धि प्राप्त करने के लिए एकमात्र प्रविधि (technique) स्वीकार कर लिया है। सर्वांगीण नियोजन का बहुत महत्वपूर्ण अंग सामाजिक नियोजन है। सामाजिक नियोजन की सफलता सभी संभव हो सकती है जब उसके लक्ष्य तथा नीतिया का निर्धारण सही सामाजिक तथ्यों पर आधारित हा। सामाजिक तथ्यों की सही जानकारी के लिए समाज का वैज्ञानिक अध्ययन करना जरूरी है। इस आवश्यकता की पूर्ति समाजशास्त्र ही कर सकता है। यही कारण है कि समाजशास्त्र की उन्नति करने में उन्नत देश बड़ा तत्परता दिग्वा रहे हैं। समाज की उन्नति या मानव कल्याण के लिए हर प्रयत्न का आधार समाजशास्त्रीय ज्ञान होना चाहिए।

जो कुछ अभी तक लिखा गया है शायद उससे हमारे पाठकों को यह भ्रम हो गया हा कि समाजशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता आधुनिक समाजों की ही प्रतिन हुई और अतीत में एसी आवश्यकता कभी नहीं हुई। सच तो यह है कि प्रारम्भ से ही मानव-समाज अपनी समस्याओं के बारे में सोचता रहा है। प्राचीन सम्यताओं के साहित्य और इतिहास में उसके अनेक साध्य मिलते हैं। चीन, भारत, राम, यूनान,

¹ Louis Wirth *Responsibility of Social Sciences* in *Annals of the American Academy of Political and Social Science* 143 151 Jan 1917
p 249

समाजशास्त्र क्या है ?

मित्र आदि अतीत सभ्यताओं में समाज के तत्त्वा तथा मनुष्या के पारम्परिक सम्बन्ध का समन्वयन व गम्भीर प्रयत्न हुए थे। इस बात के साम्य भी मिले हैं कि इन सभ्यताओं में मनुष्य न अपने समाज का बदलन तथा उस पर नियंत्रण पान के भी महत्त्वपूर्ण प्रयास किए थे। उदाहरणार्थ भारत के धर्मशास्त्रों तथा स्मृतियों (Theologies and Codes) में समाजशास्त्रीय ज्ञान का बहुमूल्य भंडार है। हा, हम यह दावा नहीं करत कि इन ज्ञान का विकास प्राधुनिक वैज्ञानिक विधि द्वारा हुआ था।

समाजशास्त्र की परिभाषा

समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है। 'Sociology का अर्थ है (Socio = समाज का logos = विज्ञान)। आक्सफोर्ड शब्द काय व अनुसार समाजशास्त्र का अर्थ है मानव समाज व विकास प्रकृति और नियमों का विज्ञान।¹ नीचे हम समाजशास्त्र की कुछ प्रसिद्ध परिभाषाओं का दे रहे हैं

१ 'यह समाज का उनके समग्र मध्यम व व्यवस्थित वर्णन और व्याख्या है।'
—एफ० एच० गिडिंग्स²

२ समाजशास्त्र मनुष्या के अन्त सम्बन्धों के स्थायी विज्ञान है।
—जॉर्ज सिमेल³

३ समाजशास्त्र सामूहिक प्रतिनियमों का विज्ञान है।
—डूरखीम⁴

४ समाज में रहने वाले व्यक्तियों की अन्त क्रियाओं का अध्ययन समाजशास्त्र है।
—गिलिन और गिलिन⁵

५ समाजशास्त्र मनुष्या की अन्त क्रियाओं और अन्त सम्बन्धों उनकी व्याख्या और परिणामों का अध्ययन है।
—मॉरिस गिंसबर्ग⁶

६ 'सामाजिक सम्बन्ध मान समाजशास्त्र की विषयवस्तु है।
—मैकडव्हर और पेज⁷

1 Science of the development, nature and laws of human society
—Oxford Concise Dictionary

2 It is the systematic description and explanation of human society as a whole
—F H Giddings

3 Sociology is the science of the forms of human interactions
—George Simmel

4 "Sociology is the science of collective representations
—E Durkheim

5 "Sociology-- is the study of interactions of human beings living in society
—Gullin and Gullin

6 "Sociology is the study of human interactions, and interrelations their conditions and consequences
—Morris Ginsberg

7 "The subject matter of sociology is social relationships as such."
—Maclver and Page

७ "मनुष्य के सामाजिक जीवन तथा उसके और सृष्टि प्राकृतिक पर्यावरण, वशानुक्रम तथा समूह के सम्बन्ध के अध्ययन को समाजशास्त्र कहते हैं।"

—ऑगबन और निमकाफ¹

८ 'समाजशास्त्र समाज के उन पहलुओं का अध्ययन है जो प्रावृत्त, स्थिर और सावृत्त हैं और जो प्रत्येक सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु से सम्बन्धित हैं किन्तु फिर भी उनका विशिष्ट रूप से अध्ययन कोई भी सामाजिक विज्ञान नहीं करता है।'²

इनमें से प्रत्येक परिभाषा का एक निश्चित आधार है। यह आधार है परिभाषा लिखन वाले विद्वान् की इस शास्त्र की विषयवस्तु (Subject matter) और क्षेत्र (scope) के बारे में धारणा। अब प्रश्न यह है कि इनमें से किस को प्रामाणिक (standard) माना जाय? यह प्रश्न बहुत जटिल है। इसलिए इसका उत्तर दिये बिना ही हम संक्षेप में यह संकेत करना अर्थात् समझते हैं कि समाजशास्त्र के अध्ययन का क्षेत्र और विषय-वस्तु क्या है? इसे जान लेने पर इस शास्त्र की परिभाषा देने का प्रयास किया जायगा।

अध्ययन क्षेत्र (Scope of Study)

समाजशास्त्र के क्षेत्र (scope) के सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों में दो सम्प्रदाय हैं—(अ) विशेषात्मक (specialistic or particularistic) तथा (आ) समाव्यात्मक (synthetic)। इन सम्प्रदायों (schools) का संक्षिप्त परिचय आगे दिया जा रहा है।

विशेषात्मक सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय का मुखिया जर्मन समाजशास्त्री सिमल (Simmel) है। वास्तव में, सिमल समाजशास्त्र की रूपकीय (formal) शाखा का प्रणेता था। टानीज (Tonnies), रास (Ross), मक्स वेबर (Max Weber) वीसे (Wiese) वीरकांत (Vierkandt) इस शाखा के मुख्य लेखक हैं। ये लेखक समाजशास्त्र को शुद्ध (pure) और स्वतंत्र विशिष्ट शास्त्र मानते हैं। वे अथ सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र से समाजशास्त्र के क्षेत्र का अलग रखना चाहते हैं। उनके अनुसार समाजशास्त्र की विषय-वस्तु सामाजिक सम्बन्धों के कुछ विशिष्ट रूप (forms) हैं।

सिमल के विचार—सिमल का यह मत था कि समाजशास्त्र को रूपकीय (formal) व्यवहारों का अध्ययन करना चाहिये, प्रत्यक्ष और वास्तविक व्यवहारों का नहीं। वह सामाजिक सम्बन्धों के केवल अमूर्त या सूक्ष्म रूपों (abstract forms) का अध्ययन इस शास्त्र का विषय मानता था। सघन प्रतिदर्शिता प्रति

- 1 Sociology is concerned with the study of social life of man and its relation to the factor of culture natural environment heredity and the group
—Ogburn and Nimkoff
- 2 Sociology is the study of those aspects of society which are recurrent constant and universal and which belong to the subject matter of every Social Science and yet do not belong to it because no Social Science deals with them specifically
—P A Sorokin

स्पर्धा, देशभक्ति, राजभक्ति, श्रम विभाजन, आनापालन, नेतृत्व, आदि ऐसे ही सूक्ष्म रूप हैं। इहा अमूर्त सिद्धान्तों के मूर्त या स्थूल रूपा (concrete forms) के भिन्न भिन्न विशिष्ट सामाजिक शास्त्रों में दर्शन होते हैं। सिमल के मत में समाजशास्त्र को भिन्न भिन्न सामाजिक विज्ञानों में काम करने वाले सूक्ष्म सिद्धान्तों को अलग निकाल कर उनका स्वतंत्र रूप से बखन करना चाहिये। तभी इसकी स्वतंत्र सत्ता रह सकती है। समाजशास्त्र तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों में, सिमल के अनुसार यही भेद है कि समाजशास्त्र स्वतंत्र रूप से उन सूक्ष्म सामाजिक विचारों या धारणाओं (abstract of social conceptions) का विवचन करता है जिनके स्थूल रूप (concrete form) का विवचन अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाज मनोविज्ञान आदि सामाजिक विज्ञान करते हैं। समाजशास्त्र और अन्य विशेष सामाजिक विज्ञानों में विषय-वस्तु का साम्य है किन्तु समाजशास्त्र इन विषयों का भिन्न दृष्टिकोण से अध्ययन करता है अर्थात् सामाजिक सम्यचा की विभिन्न रीतियों (modes) के दृष्टिकोण से।¹

स्माल के विचार—ये सिमल से मिलते हैं। वह समाजशास्त्र का विषय सामाजिक व्यवहारों का प्रजातिक रूप (genetic form) मानना है। वह कहता है कि यह सच है कि समाजशास्त्र का विषय समाज है किन्तु यह शास्त्र समाज में होने वाली सभी क्रियाओं का अध्ययन नहीं करता। ऐसा करना किसी भी विज्ञान के नियम-असम्भव है क्योंकि सामाजिक नियमों का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। समाज में कई सत्त्वृत्तियाँ भाषाएँ और धर्म होते हैं। सभी सत्त्वृत्तियों और सत्त्वृत्तियों का अध्ययन करना किसी एक विज्ञान के लिए सम्भव नहीं है। इसलिए समाजशास्त्र में इन सबका अध्ययन केवल प्रजातिक रूप में होना है। उदाहरण के लिये राजनीतिशास्त्र में सरकार के प्राचीन या आधुनिक रूपा का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र सरकार का अध्ययन उस विशेष शक्ति (force) के रूप में करेगा जो समाज को सगठित रखती है। इसी प्रकार धर्मशास्त्र धर्म के भिन्न भिन्न रूपा का अध्ययन करता है परन्तु समाजशास्त्र धर्म का अध्ययन समाज का नियंत्रण करने वाले प्रजातिक रूप में करता है। स्माल ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि समाजशास्त्र कृत्रिम समाज का अध्ययन नहीं करता। केवल विषय को सीमित करने के लिये यह प्रजातिक व्यवहारों का अध्ययन करता है। जब इन प्रजातिक व्यवहारों का वास्तविक या मूर्त रूप देखना पड़ता है तो समाजशास्त्र भिन्न भिन्न सामाजिक शास्त्रों से सहायता लेता है और उन शास्त्रों द्वारा दी गई सामग्री का समन्वय (synthesis) करता है। इसलिये समाजशास्त्र मानव समुदायों में पाई जाने वाली शक्तियों से सम्बन्धित समस्त उपनयन में साधारणीकरण (generalization) और सग-

1 Morris Ginsberg *Sociology* Oxford University Press London (1933) p 9

2 Small *Sociology*

ठन (organization) करने का प्रयत्न करता है। किन्तु विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों के ज्ञान का समन्वय करते हुये भा समाजशास्त्र एक स्वतंत्र विज्ञान है।

वीरकांत—विशेषात्मक दृष्टिकोण के प्रतिपादन में हमारे जन्म समाजशास्त्री वीरकांत ने लिखा है कि समाजशास्त्र एक निश्चित विज्ञान तभी हो सकता है जब यह मूल समाजों का व्यूरेवार या ऐतिहासिक अध्ययन न करे। समाजशास्त्र का उद्देश्य उन तत्वों को ढूँढ निकालना है जो इस विज्ञान के लिये मूल तत्व (irreducible categories) कहे जा सकते हैं। लज्जा, प्रेम, द्वेष, सहकारिता, प्रतिस्पर्धा, अधिकार भावना, लालसा आदि ऐसे मानसिक सम्बन्ध हैं जो मनुष्य को मनुष्य के साथ जोड़ते हैं। ये मानसिक सम्बन्ध समाज के मूल तत्व हैं। इन्हीं का अध्ययन समाजशास्त्र का क्षेत्र है। प्रेम के कारण परिवार का, द्वेष के कारण युद्ध का और सहकारिता के कारण सहवास का मनुष्यों के बीच सम्बन्ध स्थापित होता है। इन मानसिक तत्वों के अंतिम रूप (ultimate forms) का विवेचन करना ही समाजशास्त्र का क्षेत्र है। यदि इस विज्ञान के क्षेत्र को बहुत विस्तृत बना दिया जाता है तो यह विज्ञान अनिश्चित हो जाता है। इसलिये आवश्यक है कि इसके क्षेत्र को निश्चित कर दिया जाय और इस अध्यास, धर्मशास्त्र, इतिहास, राजनीति शास्त्र आदि विज्ञानों में भटकने से रोका जाए। उदाहरण के लिए समाजशास्त्री ससृष्टि के विकास का अध्ययन न करे क्योंकि यह विषय इतिहास के क्षेत्र में आता है। हाँ ससृष्टि में परिवर्तन और स्थायित्व की मूलभूत शक्तियाँ की खोज करना समाजशास्त्र का काम है।

मक्स वेबर—उसने समाजशास्त्र के क्षेत्र को निश्चित और स्पष्ट करने के उद्देश्य से महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये। वह मानता था कि समाजशास्त्र का उद्देश्य (aim) सामाजिक व्यवहार का 'निबन्धन (अर्थनियम interpretation) और समझना है मानव सम्बन्धों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इस सारे क्षेत्र में सामाजिक व्यवहार नहीं हाता। सामाजिक व्यवहार वह क्रिया है जो कर्ता के इरादे (intention) से दूसरा के व्यवहार से सम्बद्ध है और उसी से निर्धारित (determined) होती हो। सत्य तो यह है कि हर मानव की अन्त क्रिया सामाजिक नहीं होती। दो व्यक्तियों के परस्पर संपर्क में आने पर वे एक दूसरे के प्रति जो व्यवहार या काम करते हैं उसे सामाजिक व्यवहार कहा जाता है। इसी प्रकार के सामाजिक व्यवहारों के घटित होने के ध्रुवसर या सम्भावना से मुख्यतया समाजशास्त्र सम्बन्धित है।

समाजशास्त्रीय नियम (Sociological laws) सामाजिक व्यवहार के प्रम के अनुभव सिद्ध या प्रयोगसिद्ध (empirically established) के साधारणीकरण हैं जिनका अर्थ नियाय किया जा सके अर्थात् जा समझा जा सके। मक्स वेबर परिवार, राज्य, गिरजे आदि सबकी परिभाषा विशिष्ट प्रकार के सामाजिक व्यवहारों के संदर्भ में करता है। वह सामाजिक समूहों का मानवगुणारोपण

(personification) करने का विरोधी है क्योंकि उनके मतानुसार उपरोक्त प्रवृत्ति ही समाजशास्त्री का घानक पाप है ।

आलोचना

उपरोक्त धौर एमे ही विचारा म बहुत कुछ सत्य है । समाजशास्त्र के क्षेत्र की चाहे जो धारणा हा, इस विषय के अध्ययन म सामाजिक सम्बन्ध के वर्गीकरण और प्रकारा का समावेश अवश्यभव हाना चाहिये । किन्तु यह स्मरण रहे कि इस प्रकार के सम्बन्ध का अमृत (abstract) अध्ययन निष्फल रहेगा । मृत जीवन म इन सम्बन्ध का क्या स्वभाव और रूप है यह जानना अत्यावश्यक है । प्रतियागिता, सपप, द्वेष, प्रेम आदि का व्यावहारिक जीवा म क्या महत्व है और इनकी कैसे कैसे अभि व्यक्ति होती है । यह जाने बिना इन धारणाआ का अमृत अध्ययन कोरी मानसिक उडान रहेगी । अतएव सामाजिक सगठना और सम्याआ का अध्ययन आवश्यक हो जाता है । किन्तु यह स्वीकार करते ही हम समाजशास्त्र के क्षेत्र का विस्तृत करना पड जाता है । अथान् समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्ध का सामान्य (general) अध्ययन तो करे पर उसके साथ ही इन सम्बन्ध का मृत जीवन म चरिताथ हान भी अध्ययन कर । इससे अन्तत हम विशेष समाजशास्त्रा (Special Sociologies) तथा अधिक साधारणीकृत प्रमनद्ध समाजशास्त्र के पारम्परिक सम्बन्ध का समझन की आवश्यकता पडती है ।

समन्वयात्मक सम्प्रदाय

यह सब स्वीकृत है कि सामाजिक जीवन क सभी भाग धनिष्ठता से सम्बन्धित और परस्पर आबद्ध हैं । समाज को हम एक सावयव (organism) न भी मानें तो भी यह स्वीकार करें कि समाज के स्वभाव म कुछ सावयविक (organic) है । कारण, इसके सभी भाग साथ-साथ काप करते हैं । एक भाग म परिवतन दूसरे को भी प्रभावित करता है । इस प्रकार सारा समाज प्रभावित होता है । इसलिय यह परमावश्यक है कि समाज का सम्पूर्ण रूप म ही अध्ययन किया जाय और उसके विभिन्न तत्वो क बीच अन्त क्रियाआ का समझा जाय । विज्ञेपात्मक विचारधारा केवन सामाजिक जीवन के कारका को ही प्रधानता दनी है । उन्हाहरणाय राजनीति का विद्यार्थी राज्य का मारा समाज मान बठना है । अथशास्त्री समाज के हर परिवतन का कारण आर्थिक दगाएँ मानता है । इसी प्रकार इतिहासकार किसी विशिष्ट सस्था या शक्ति को समाज म निर्धारक पद द देता है । यही कारण है कि विज्ञान के क्षेत्र मे निर्धारणवाद (Determinism)¹ के कई सिद्धान प्रचलित हा गय हैं । परन्तु इस प्रकार की धारणा एकागी और मजुचिन है । सामाजिक जीवन के विभिन्न तत्वा मे अन्त सम्बन्ध को व्यापक आगमन और तुलनात्मक विधि से ही नात किया

1 कुछ लेखक Determinism का हिन्दी पर्यायवाची नियतिवाद या भाग्यवाद मानते हैं ।

जा सकता है। सस्कृति या समाज के विशिष्ट भाग से सम्बद्ध विशेष विज्ञान इस प्रकार की विधियाँ नहीं अपनाते। इसलिए, स्पष्ट रूप से एक ऐसा साधारण और क्रमबद्ध समाजशास्त्र (General and Systematic Sociology) की आवश्यकता है जो विविध विशेष विज्ञानों के परिणामों का उपयोग करें। यह मुख्यतया उनके अन्त सम्बन्धों पर अधिक जोर दे और सम्पूर्ण (whole) सामाजिक जीवन का निरूपण करे। समाजशास्त्र की यह धारणा समन्वयात्मक विचारधारा से साधारणतया संगत है।

समन्वयात्मक सम्प्रदाय के मुख्य विद्वान वाड दुरखीम और हाबहाउस हैं। उनका मत है कि यदि समाजशास्त्र सिर्फ अमूर्त सिद्धांतों या विचारों जैसे प्रतिस्पर्द्धा, पृष्ठा, नेतृत्व, श्रम विभाजन और वगैरे विभाजन आदि का ही विवेचन कर और प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों में उतर कर उन विचारों की मूल अभिप्रायों की पड़ताल न करे तो इस विज्ञान (समाजशास्त्र) का मूल्य ही क्या रह जाता है? यदि इस सूक्ष्म सिद्धान्तों या विचारों का निरूपण समाज के विभिन्न स्थूल क्षेत्रों में न किया जाये तो यह अध्ययन नीरस और प्रयोजनहीन होगा। समन्वयात्मक दृष्टिकोण वाले लेखकों का मत है कि समाजशास्त्र का अपना क्षेत्र सङ्कुचित, परिमित तथा सीमित न बनाकर व्यापक और विस्तृत बनाना होगा तभी यह समाजशास्त्र रहता सकेगा। अन्य विज्ञानों से पृथक् होकर तो समाजशास्त्र कुछ रहता ही नहीं। सन् १९०० से समाजशास्त्र बनता है। समाजशास्त्र में सारे विज्ञानों का एक भूत हा जाते हैं इसमें सबका समन्वय या पारस्परिक सम्बन्ध (Synthesis or correlation)¹ हो जाता है। इसीलिये समाजशास्त्र एक विज्ञान नहीं विज्ञानों का विज्ञान है और सभी विज्ञान इसके क्षेत्र में आ जाते हैं। इस तरह समाजशास्त्र का क्षेत्र विश्वकोषात्मक (encyclopaedic) और सारात्मक (synoptic) हो जाता है।

इन विद्वानों ने "विशयात्मकता" के दुष्परिणामों—अनुचित दृष्टिकोणों जैसे भौगोलिक निर्धारणवाद, अविवेक निर्धारणवाद या तार्किक और आर्थिक निर्धारणवाद के सिद्धान्त—की ओर सचेत किया है और सावधान किया है कि यदि समाजशास्त्र का विषय क्षेत्र भी सङ्कुचित रहा तो एक नया सिद्धान्त—सामाजिक निर्धारणवाद जन्मने की संभावना है। इसीलिये समाजशास्त्र को अपना क्षेत्र व्यापक रखना चाहिए। वह सब दृष्टियों का स्वतंत्र रूप न दिखाने के लिये समाजशास्त्र को समन्वय या पारस्परिक सम्बन्ध दिखाना ही अपना क्षेत्र माने।²

चाल्स वाड—वाड समाजशास्त्र को सामाजिक विज्ञानों का रासायनिक समन्वय नवीन यौगिक (new compound) की भाँति करना चाहता था। वह कहता था कि

1 Synthesis का हिंदी पर्यायवाची डॉ० रघुवीर ने सारलेपण दिया है।

2 Ginsberg Sociology 1953 p 13

समाजशास्त्र न तो कोई एक विशिष्ट सामाजिक शास्त्र है और न सभी सामाजिक शास्त्रों की खिचड़ी। यह वह विज्ञान है जो सब सामाजिक विज्ञानों को आप से आप उन्नत करता है। यह प्रजाति (genetic) वस्तु है और विज्ञान के धर्म में अन्तिम (genesis) है। विभिन्न विशिष्ट सामाजिक विज्ञान इस सन्तुल्य या यौगिक के तत्व हैं जिनका इस शास्त्र में व्यक्तित्व लुप्त हो जाता है और इन तत्वों से बनी हुई नई वस्तु निर्मायक तत्व (Constituent element) से भिन्न और ऊँचे दर्जे की जाती है।¹

दुरखीम (क्रासीसो)—इसका कथन है कि समाजशास्त्र का तीन भागों में बाँटा जा सकता है

- (१) सामाजिक रूपशास्त्र (Social Morphology)
- (२) सामाजिक शरीर रचनाशास्त्र (Social Physiology)
- (३) सामान्य समाजशास्त्र (General Sociology)

सामाजिक रूपशास्त्र में वे सब विषय आते हैं जिनका आधार भौगोलिक है, जैसे किसी देश की जनसंख्या, उनका परिमाण, घनत्व वितरण तथा वृद्धि आदि। सामाजिक शरीर रचनाशास्त्र में वे सब विषय आ जाते हैं जिनका अध्ययन विशेष सामाजिक विज्ञान करते हैं जैसे धर्म, भाषा, नीति, कानून आदि। इन विषयों का अध्ययन करने के लिए धर्म अथवा कानून, भाषा, नीति आदि के विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों में विहित हुए हैं।² इन्हें विशेष समाजशास्त्र (Special Sociologies) कहते हैं। सामान्य समाजशास्त्र (General Sociology) का उद्देश्य विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्रों में काम करने वाले सामान्य नियम (General laws) का पता लगाना है। समाजशास्त्र का यह भाग दार्शनिक है और दुरखीम का कथन है कि यह दार्शनिक विवेचन (Philosophical discussion) तभी सम्भव है जब समाजों के भिन्न भिन्न भाग—धर्म अथवा नीति, कानून आदि के विशिष्ट सामाजिक शास्त्र अपना गहरा विवेचन करे।

हॉब्सबाउस—इंग्लैंड के समाजशास्त्री हॉब्सबाउस ने भी समन्वयवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है। वह कहता है कि विविध सामाजिक विज्ञानों का समन्वय ही समाजशास्त्र है। उसके अनुसार समाजशास्त्री का दो प्रकार का अध्ययन करना चाहिए—(१) धर्मशास्त्र या इतिहास अथवा अन्य विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन करते समय उन सिद्धांतों पर विशेष ध्यान देना जिनका समाज के विकास के साथ सम्बन्ध ही धर्मवादी जो परस्पर सम्बन्धित हो। यहाँ विविध सामाजिक विज्ञानों के सिद्धान्तों का अध्ययन उन विज्ञानों में समन्वय करने के लिए किया जाता है।

1 Charles Ward *Pure Sociology* p. 91

2 *Sociology of Religion Sociology of Economic Life Sociology of Law, Sociology of Language and Sociology of Morals*

(२) यह अध्ययन तब प्रारम्भ होता है जब समाजशास्त्र विभिन्न सामाजिक विज्ञानों की उन केन्द्रीय धारणाओं (central conceptions) का निकाल लेना है जिन पर सभी सामाजिक विज्ञान आधारित हैं। ये धारणाएँ वे स्थिर विचार हैं जो विविध विज्ञानों में भिन्न भिन्न रूप धारण करते हैं। इन केन्द्रीय धारणाओं का निकालने के लिए विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के आंतरिक सम्बन्ध का जानना आवश्यक है। यह जानना आवश्यक है कि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त किस प्रकार इतिहास में, इतिहास के निष्पत्ति किस तरह राजनीति में और राजनीति के तत्त्व किस प्रकार मनाविज्ञान में अंतर्भूत हैं। समाजशास्त्र की यही दृष्टि 'समन्वयतात्मकता' है।

गिंसबर्ग और सोरोकिन (Ginsberg and Sorokin)—इनके विचार भी उक्त विचारधारा से मिलते जुलते हैं। गिंसबर्ग के अनुसार दो विशिष्ट सामाजिक क्षेत्रों के बीच होने वाली अन्तःक्रियाओं का अध्ययन करना समाजशास्त्र का मुख्य विषय होना चाहिये। इससे यह तात्पर्य है कि सामाजिक विज्ञान परस्पर सहायता लेते और देते हैं। सोरोकिन कहता है कि ऐसा कोई भी विज्ञान नहीं (शायद गणित का छोड़कर) जो दूसरे विज्ञानों से स्वतंत्र हो और उनके विषय और आवृत्तियों से अछूता हो। इस दृष्टिकोण से समाजशास्त्र की अन्य सामाजिक विज्ञानों से पृथक् अपनी स्वतंत्र सत्ता तो है किन्तु इसमें विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों की सोंजा का यथा उचित उपयोग हाकर समग्र समाज का समन्वित ज्ञान सकलित किया जाता है।

आलोचना

समाजशास्त्र की उपरोक्त विरोधी दृष्टियाँ (views) की विवचना से यह प्रकट होता है कि मूलतः इन दोनों में कोई आवश्यक सघर्ष नहीं है। सामाजिक सम्बन्धों को उनके क्लेवर (content) से पृथक् कर अमूर्त रूप में अध्ययन कर परिणामों को प्रमाणित ऐतिहासिक तथ्यों से सम्बद्ध करके ही किया जा सकता है। यह काम सामाजिक जाँच पत्रालय के विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञ ही सरलतापूर्वक कर सकता है। सामान्य या क्रमबद्ध समाजशास्त्र में निरीरीरस एवं अमूर्त श्रेणियों की सूची ही नहीं सम्मिलित होनी चाहिए। यह तभी सजीव हो सकती है, जब इसका सम्बन्ध इतिहास, मानवशास्त्र और सामाजिक सस्याओं के मूल अध्ययन से रहे। समन्वय और ब्योरेवार या विशिष्ट (specialized) अध्ययन दोनों आवश्यक हैं और उन्हें साथ-साथ रहना चाहिए। गिंसबर्ग के मत से, समाजशास्त्र और जीवशास्त्र (Biology) में इस मामले में साम्य है। एक अर्थ में, जीवशास्त्र कई विज्ञानों का संग्रह है जो स्वयं बहुत विशिष्ट हैं। किन्तु सभी मानते हैं कि सामान्य जीवशास्त्र (General Biology) भी एक विज्ञान है। इसी प्रकार, समाजशास्त्र में अनेक विशेष विज्ञान (specialisms) हैं जो सामाजिक जीवन के टुकड़ों से सम्बंधित हैं। इस दृष्टिकोण से, समाजशास्त्र का अभिज्ञान (identification) सामाजिक विज्ञानों के एक समूह से होता है। दूसरे अर्थ में, समाजशास्त्र स्वयं एक विशेष

विज्ञान (specialism) है जिसका उद्देश्य अथवा ज्ञान शाखायाँ (Disciplines) के पारस्परिक सम्बन्ध का सांख्यिक सामाजिक सम्बन्धों के सामान्य स्वभाव (General character) का विवरण प्रस्तुत करना है।¹ यह सामान्य समाजशास्त्र (General Sociology) है।

समाजशास्त्र का यथार्थ क्षेत्र

समाजशास्त्र का यथार्थ क्षेत्र जानने के लिए हम अपनी विषय-वस्तु, सीमायाँ एवं उद्देश्य का ज्ञान कर लेना चाहिए।

समाजशास्त्र की विषय-वस्तु (Subject matter)

सांख्यिक के अनुसार समाजशास्त्र निम्नलिखित विषयों का शास्त्र है

- (१) समाज के भिन्न भिन्न अंगों का आपसी सम्बन्ध (जैसे अथवा घम कुटुम्ब और नीति, धर्म और अथ अथ और राजनीति आदि का पारस्परिक सम्बन्ध)
- (२) सामाजिक और असांख्यिक का आपसी सम्बन्ध (जैसे भौतिक और जैविक शक्तियों का समाज से सम्बन्ध),
- (३) व सामान्य लक्षण जो समाज के सभी अंगों में समान रूप से मिलते हैं।² निम्नलिखित समाजशास्त्र के निम्नलिखित विषय बनाए हैं

१ सामाजिक रूपशास्त्र (Social Morphology)—इसके अन्तर्गत (अ) जनसंख्या की संख्या और गुण का सामाजिक सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रभाव का तथा (आ) सामाजिक ढांचे—सामाजिक समूहों और संस्थाओं के प्रमुख रूपों का अध्ययन होता है।

२ सामाजिक नियंत्रण—विधि निति, प्रथाओं, रूढ़ियों, परम्पराओं, संस्थाओं घम तथा फज्जत आदि तथा समाज पर नियंत्रण करने वाले अथ कारकों का अध्ययन।

३ सामाजिक प्रक्रियाएँ (Social Processes)—समाज और व्यक्ति के बीच तथा समूहों के बीच होने वाली अन्तर्क्रियाएँ जैसे सहयोग सघष प्रतिस्पर्धा अनुकूलन आदि।

४ सामाजिक व्याधिकी या सामाजिक विगठन (Social Pathology or Social Disorganisation)—इसके अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्थायाँ एवं विगठन तथा उनके निराकरण का अध्ययन किया जाता है।

निम्नलिखित बातें हैं कि चूँकि व्यक्तियों के सामाजिक सम्बन्ध (१) आपसी होते हैं (२) समाज से होते हैं, तथा (३) बाह्य जगत में होते हैं इसलिए जीवशास्त्र और मनोविज्ञान के नियमों का अध्ययन भी यह शास्त्र करता है।³

1 Gansberg *Sociology* p 17

2 P A Sorok *Contemporary Sociological Theories* p 760

3 See Gansberg, *Sociology and Studies in Sociology* or his article "The Problems and Methods of Sociology in *The Study of Society*" (Ed Barth et al) Routledge & Kegan Paul Ltd London

हंटिंगटन केरस (Huntington Cairns) ने लिखा है कि समाजशास्त्र का विषय वे मानवीय क्रियाएँ हैं जिनका शास्त्रीय ढंग से अध्ययन किया जा सकता है। समाज का संगठन, सामाजिक नियंत्रण सामाजिक परिवर्तन सस्थाएँ समूहों का सम्पर्क, उत्पत्ति सामाजिक शक्तियाँ मानवीय प्रकृति गकारता सामाजिक भूय, संघर्ष, प्रतिस्पर्द्धिता सामाजिक विघाएँ भ्रुण्ड, अपराध आदि विषयों का अध्ययन इस शास्त्र की पुस्तकों में किया गया है। यद्यपि इनमें से कुछ विषयों का अध्ययन अन्य शास्त्रों में भी हुआ है तथापि इन सभी विषयों का अध्ययन केवल समाजशास्त्र में हुआ है। समाजशास्त्र के इस अध्ययन का दृष्टिकोण भी कुछ निराला (unique) है।¹ जबतक विभिन्न सामाजिक विज्ञान सम्पूर्ण समाज के भागों को जा एक दूसरे से कतई पृथक् नहीं हैं, अध्ययन करते रहेंगे तब तक पृथक्ताएँ और वर्गीकरण अवश्य ही अस्थायी या सामयिक रहेंगे। पर इतने पर भी समाज का अध्ययन समाजशास्त्र अपने ही पृथक् ढंग से करता है। समाजशास्त्रीय रुख (Sociological attitude) सामान्य मानव क्रियाओं के उन तथ्यों पर बल देने (emphasis) का प्रतिनिधि है जिसमें आर्थिक, भौगोलिक आदि विशिष्ट (Specific) कारकों को पूरा महत्त्व दिया जाता है किन्तु क्रिया को उनमें से किसी के पृथक् दृष्टिकोण से नहीं देखा जाता।

हंटिंगटन केरस लिखता है कि जब तक समाजशास्त्री स्वयं यह परिभाषित न करें कि उनके अध्ययन का विषय क्या है यह कहना उचित होगा कि समाजशास्त्र का विषय वही है जिस पर अपने को समाजशास्त्री बहाने वाले लिखते हैं।² समकालीन (contemporary) समाजशास्त्र के सिद्धांतों की समीक्षा करके सोरोकिन भी लिखना है कि समाजशास्त्र के नाम पर जिन विषयों का अध्ययन हुआ है वे समाजशास्त्र की परिभाषाओं में इंगित विषयों से भिन्न हैं। लेकिन इससे यह न समझना चाहिये कि समाजशास्त्र का विषय ही अनिश्चित है। कुछ समय पूर्व तो यह कहा जा सकता था किन्तु आधुनिक समाजशास्त्रियों ने इस विधान के विषय को निश्चित और परिभाषित कर दिया है। इसका यह सत्य है कि समाजशास्त्र के सिद्धांतों की किसी पुस्तक को उठा लीजिए एक ही विषयों का उसमें समावेश होगा।

विषय के प्रधान भाग

समाजशास्त्र के विषय को दो प्रधान भागों में बाँटा जा सकता है पहले में सामूहिक जीवन और सामाजिक विरासत (social heritage) से सम्बंधित सभी मामलों आते हैं। दूसरे में मनुष्यों के व्यक्तित्व और उनके सामाजिक विकास में सम्बंधित सभी प्रश्न आते हैं। सामाजिक घटनाओं (social phenomena) के इन दोनों पहलुओं में अविच्छिन्न अन्त सम्बंध है और दोनों ही एक यथायथ

1 Gurvitch and Moore 20th Century Sociology New York (1940) p 5

2 Ibid p 4

अभिन्न होते हैं। मनुष्य अपनी सृष्टि और समाज की उत्पत्ति है। वह उनमें और उनमें साधन से जीवित रहता है। वह मानव "सीतिए" है कि य दाना ही उसके व्यक्तिगत साधन में समाहित (समृद्ध) है। परन्तु सृष्टि और सामाजिक जीवन मानवीय प्रयत्न और इच्छा की उत्पत्ति है। समाजशास्त्र सामाजिक यथावत के इन दो पहलुओं का विश्लेषण करता है और उन्हें उनके पारस्परिक अन्तर्ग्रहीत सम्बन्ध में समझने का प्रयास करता है। इसलिए समाजशास्त्र का पहला समस्य मानव प्रकृति और व्यक्तित्व की उत्पत्ति और वृद्धि का अध्ययन है। वास्तव में मनुष्य के व्यक्तित्व की प्रकृति और व्यक्तित्व की वृद्धि और परिवर्तन की प्रक्रियाएँ समाजशास्त्र की केंद्रीय समस्याएँ हैं। समाजशास्त्रों की रचि का दूसरा प्रधान क्षेत्र सामूहिक जीवन और सामाजिक विरासत है। मनुष्य का समूह और समिति, उनका हित, भावनाएँ सृष्टि और सम्यक्ता विभिन्न समस्याएँ और पद्धतियाँ विराम रूप और सामाजिक नियंत्रण का साधन और समाज के परिवर्तन के कारण प्रभाव और विधाओं का अध्ययन समाजशास्त्र की दूसरी केंद्रीय समस्याएँ हैं।

समाजशास्त्री का मुख्य कार्य सामाजिक जीवन की विधाओं का विश्लेषण करना है। अर्थ विज्ञान-वैज्ञानिकों की भाँति वह एक मिथ्याता या नियमों को ढूँढना है जो समाज की भविष्य की गति का पूर्व कथन कर सकें। पूर्व कथन की योग्यता ही नियंत्रण का आधार है।¹

उपरोक्त विवरण में यह भी मENTION मिलना है कि समाजशास्त्र का क्षेत्र क्या है? रूपकीय (Formal) समाजशास्त्रियों का दृष्टिकोण बहुत सन्नचित है। यदि हम उनकी धारणा स्वीकार करें तो समाजशास्त्र के बहुत से विषयों को हम निकाल देना होगा। जो कुछ शेष बचगा, वह शायद समाजशास्त्र कहलाने का दावा न कर सके। समाजशास्त्र के क्षेत्र से सम्बन्धित समन्वयात्मक दृष्टिकोण का ही अपना उचित है। किन्तु यह ध्यान रहे कि समाजशास्त्र विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में अनावश्यक प्रवेश न करे, नहीं तो यह विज्ञान न रहकर सामाजिक विज्ञानों के परिणामों की पिचड़ी हो जाएगी। वास्तव में समाजशास्त्र मूलतः एक सामान्य समाज विज्ञान है जो सामाजिक सम्बन्धों मात्र का—किन्तु विशिष्ट अध्ययन का नहीं—अध्ययन कर समाज के समग्र रूप का हमारा सामन रखता है। समाजशास्त्र का, एक विज्ञान का दृष्टि में विशेषात्मक अध्ययन आवश्यक है परन्तु उस अध्ययन को साधक बनाने के लिए उसका समन्वयात्मक अध्ययन करना और भी आवश्यक है।

प्रो० हेज (Hayes) ने प्रत्येक विज्ञान के द्वारा अध्ययन किये जाने वाले तथ्यों को चार वर्गों में विभाजित किया है मुख्य समस्या या समस्या-तथ्य (problem

1 See Peuter Sociology p 13

facts), (२) मुख्य समस्या के घटक-तथ्य (elemental facts) (३) प्रभावक-तथ्य (conditioning facts) तथा (४) परिणाम-तथ्य (resultant facts)।¹ समाजशास्त्र के तथ्य भी यही चार प्रकार के होते हैं। वस विज्ञान की मुख्य समस्या समाज' या सामाजिक सम्बन्ध है। इस समस्या के घटक-तथ्य मानसिक सम्बन्ध हैं—प्रेम, द्वेष, घृणा लज्जा प्रतिस्पर्धा तथा सहयोग आदि। इन घटक तथ्यों का विवेचन करने पर समाजशास्त्र मनोविज्ञान के क्षेत्र में स्वाभाविकतया प्रवेश करता है। समाजशास्त्र अपने प्रभावक तथ्यों—भौतिक आर्थिक राजनैतिक धार्मिक दशाशा का विवेचन करने पर—प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञान की सहायता लेता है। अन्त में अपने परिणाम-तथ्यों पर पहुँचने के लिये समाजशास्त्र भी अपने कुछ परिणाम निष्कालता है जिसे समाजशास्त्र का दशन कहा जाता है। प्रो० हेज के इस दृष्टिकोण को अपनाते से समाजशास्त्र के क्षेत्र के बारे में दोना विचारधाराओं का भ्रमडा अपने आप समाप्त हो जाता है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो गया है कि समाजशास्त्र विभिन्न विशिष्ट सामाजिक शास्त्रों (special social sciences) के परिणामों की निचडी नहीं है। ऐसा नहीं कि समाजशास्त्र कुछ राजनीतिशास्त्र से ले कुछ अर्थशास्त्र से, कुछ मनोविज्ञान अथवा इतिहास में और इन सब जूठना को मिलाकर उस अपने अध्ययन का लेविल लगा द। यह शास्त्र विशिष्ट सामाजिक शास्त्रों द्वारा प्रस्तुत ज्ञान का केवल साधारणीकरण (generalisation) ही नहीं करता। इसे एक साधारणीकृत (generalised) सामाजिक विज्ञान कहना भूल होगी।

समाजशास्त्र समाज की उत्पत्ति विकास, उसकी रचना एवं रूपों सगटना तथा सस्थाओं तथा उसमें परिवर्तन और विघटन का समन्वित अध्ययन करता है। वह समाज पर सामाजिक (आर्थिक राजनैतिक, धार्मिक नैतिक आदि) तथा अमामाजिक बाह्य (जैविक और प्राकृतिक) प्रभावों का विश्लेषण करता है। इन सबके अध्ययन में उसका अपना दृष्टिकोण एवं उद्देश्य रहता है। अतएव यह शास्त्र स्वयं एक विशिष्ट सामाजिक शास्त्र है जो समाज के विभिन्न क्षेत्रों में पाये जाने वाले मानवीय व्यवहारों और उनके परिणामों का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। कभी यह साधारणीकरण समाज के दो विभिन्न क्षेत्रों के व्यवहार में किया जाता है और कभी एक ही विषय के अतगत विभिन्न देशों के सामाजिक व्यवहारों में।

समाजशास्त्र की विभिन्न धारणाएँ

हम अपने विचारों को इस शास्त्र के बारे में किसी प्रकार का स्पष्ट या भ्रम नहीं रहने देना चाहते। यहाँ हम समाजशास्त्र की विभिन्न प्रचलित धारणाओं (conceptions) को संक्षेप में प्रस्तुत करके सही धारणा पर विचार करेंगे। एक धारणा समाजशास्त्र को नीति निरपेक्ष (ethically neutral) सिद्धता और

1 Hays Sociology

गवधणा विधिया की जान शाखा बहते हैं जिसका विकास मानव प्रकृति और सामाजिक व्यवहार समझन के लिये किया गया है। दूसरी ओर सामुदायिक जीवन की मूल और तत्काल व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिये प्रयुक्त सहज-बुद्धि विधियाँ के समूह को भी समाजशास्त्र कहा जाता है। इसलिये आवश्यक है कि विद्यार्थी इस शास्त्र के विविध श्वि क्षेत्रों, दृष्टिकोणों एवं अध्ययन-क्षेत्रों और अनुसंधान के विधियाँ से प्रारम्भिक परिचय प्राप्त कर लें।

लोक समाजशास्त्र (Folk Sociology)

बहुधा कहा जाता है कि समाजशास्त्र उतना ही पुराना है जितना कि सामूहिक जीवन और बस हा सब्ध्यापों है जस मनुष्य के विचार। यह कथन पूर्णतया अमत्प्र नहा है। मनुष्या के सम्पर्क के समूहों में उनके सम्बन्ध उतने ही सामान्य हैं जितना कि स्वयं मानव जीवन। लोको का अपने वास-स्थान से समायोजन, विरोधी समूह से सभ्य राग और दुर्भिक्ष का अनुभव जनसंख्या का दबाव और निष्क्रमण (migration) का और जाति विभाजन का विकास तथा व्यक्ति और सामूहिक जीवन के अन्तर्गत सभी परिस्थितियों में लोको को जानने हैं। य और अन्तर्गत सामाजिक घटनाएँ सम्बन्ध में मनुष्या के अवलोकन और विचार का विषय रही हैं। मन्त्र मनुष्य सामूहिक जीवन की दशाओं और दूसरों से अपने सम्बन्धों और दायित्वों के बारे में 'यूनायिक' मन्त्रद्वारा से साचना है। समाजशास्त्र का प्रारम्भ तब होता है जब मनुष्य सामाजिक यथायथा और मानव सम्बन्धों के बारे में विचार करते हैं और सामाजिक सिद्धांत बनाते हैं।

अत्यंत सरल आदिम समुदायों (primitive communities) में जीवन के समष्टि दंग विचार और सिद्धान्त हैं जो लोको के दंगों की युक्तिपूर्वक व्याख्या करते हैं और उन्हें चिरस्थायी और सामाजिक बनाते हैं। हर समूह में प्रयाएँ जनरीतियाँ (folkways) और नियम (rules) हान हैं जो उसके संस्थाओं के लिये अपेक्षित व्यवहारों की परिभाषा करते हैं। क्रिया के इन्हीं दंगों में सम्बन्धित सामाजिक नियम बन जाते हैं जिन्हें कहावतों और पौराणिक कथाओं (legends) में प्रत्यक्ष उपस्थित कर लिया जाता है। इस प्रकार की लोक बुद्धिमत्ता जनजीवन की समस्त दशाओं और सम्बन्धों पर परिव्याप्त होती है। सामाजिक जीवन की कोई भी ऐसी स्थिति उपज या अनुभव नहीं रहना जिससे सम्प्रति बुद्ध न बुद्ध सामाजिक अनुमान न बन गये हों। वास्तव में इस प्रकार के अन्तर्निवारण और सिद्धांतों के बिना किसी समाज का जीवन व्यवस्थित दंग से नहीं चल सकता। यह आवश्यक है कि आदिम समाज के सिद्धान्तों का राशि बहुत बुद्ध अपरिमित, अपूर्ण और कभी-कभी आंतरिक रूप से अस्मद्ध रहती है किन्तु वे सामूहिक अनुभव के परिणामों और बुद्धिमान व्यक्तियों (मनापियों) के विचारों का वलन हैं तथा उनके आधों पर

सामाज्य अनुमान प्रस्तुत करते हैं। इसी ज्ञान शाखा को लोक समाजशास्त्र कहा जाता है।

प्राचीन सभ्यताओं में इस ज्ञान शाखा का बहुत बड़ा भंडार है। जीवन के हर पहलू और मनुष्य के स्वभाव और व्यवहार से सम्बन्धित धारणाएँ अनुमान और कहावतें आदि हैं। उन सभ्यताओं के साहित्य कानूनों, नैतिक संहिताओं (moral codes) इत्यादि को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। उनका ज्ञान विज्ञान और समाज-दशन वास्तव में बहुत गहन अध्ययन का ही परिणाम था। विद्वानों और मनीषियों ने समाज एवं सृष्टि से सम्बद्ध जिस ज्ञान के भंडार को भरा है वह उनके गूढ़ विचार एवं गहरे परिज्ञान (deep insight) का साक्ष्य है। यद्यपि विभिन्न देशों और कालों में सामाजिक विचारों के क्लेश एवं से नहीं रहे हैं उन पर स्थिति की छाप पड़ी है, फिर भी सभी जगह मनुष्य और समूह की प्रकृति का पयवेक्षण और उस पर साधारण नियम उसमें अवश्य सन्निहित हैं।

पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में लोक-समाजशास्त्र का आकार बहुत अधिक बढ़ गया है। इस अवधि में मानव प्रकृति और सामाजिक सम्बन्धों पर बहुत यापक विचार हुआ है। इसके कुछ भाग सरल और सादृ साधारणीकरण मात्र हैं। पर परिवर्तनशील सत्ता में मनुष्यों के व्यवहार का नियमित या दिग्दर्शित करने का यह प्रयत्न तो है ही। इनके कुछ भाग सरल दशन जो 'यक्तियों और समूहों के अनुभवा, पयवेक्षणा और पक्षपाता (biases) को व्यक्त करता है और जनगाथाओं (folklores) एवं परम्परात्मक आस्थाओं (traditional beliefs) जिन पर समसामयिक अम्यास निर्भर करते हैं का प्रशंसात्मक ढंग से निरूपण करते हैं।

सामाजिक बुद्धिमत्ता की वर्तमान राशि में भी मानवीय और सांस्कृतिक यथाथ पर विचार और साधारणीकरण सम्मिलित हैं। यह भी सहज बुद्धि का सहारा लेती है। इसे श्रमबद्ध एवं युक्तियुक्त विचार संग्रह नहीं कहा जा सकता। इसके विभिन्न अंगों की परिपुष्टि भी नहीं की गई। सामाजिक निष्पक्ष यथा-वदा पयवेक्षण और सहज ज्ञान पर आधारित हैं। जो ऐतिहासिक घटनाओं में समसामयिक समूहों जीवन की मूल घटनाओं एवं मनुष्यों और समूहों में प्रकट सम्बन्धों से प्राप्त किया गया है। कभी-कभी इसमें गूढ़ पयवेक्षण और साधारणीकरण मिलते हैं। पर यह बहुत कम निष्पक्ष या पक्षपात रहित है और शायद यह सम्पूर्ण गम्भीर कभी नहीं है।

आधुनिक लोक समाजशास्त्र के सबसे अग्रद्वे उदाहरण वर्तमान समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं के सम्पादकीय, टिप्पणियाँ और विश्लेषण लेख या कालम हैं। लोकप्रिय साहित्य और लेखकों ने भी इस क्षेत्र में परम रुचि लिखाई है। कथाकारों उपन्यासकारों और नाटककारों ने तो मानव प्रकृति, सामाजिक जीवन और मानव सम्बन्धों पर अनुल ज्ञान भंडार प्रस्तुत किया है। हमारे शिक्षक और सरकारी मन्त्रिण भी

इस हाट में पीछे नहीं हैं। ये सब मानव प्रकृति और सामाजिक यथाथ पर अपन व्यक्तिगत या वगगत विचार या उद्गार प्रकट करते हैं। इन सब विचारों में परम्परात्मक आस्थाओं से लेकर नैतिक भावनाएँ (moral sentiments) और वग-पशपात, शास्त्रीय प्रकाशन और सूचना के अथ स्रोत और मन भर रहते हैं। ये बहुधा बहुत चतुरता और दक्षता से अपन अथ निराया और साधारणीकरण का प्रयत्न करते हैं। जो बहुत कुछ सामाजिक विचारों के वर्तमान स्तर को प्रकट करते हैं। सामाजिक समस्याओं के पालनक्रम में इसी जन-समाजशास्त्र का भरभार है। इसमें समस्त विवेचन सहज-बुद्धि के स्तर का होता है और प्रत्येक एतिहासिक घटनाओं से सम्बद्ध समस्याओं का विस्तारण किया जाता है। इनमें समाधान के लिए जो सुझाव दिए जाते हैं वे समूह के परम्परागत अभ्यासा से प्रेरित होते हैं। इनका प्रयोजन मनुष्यों की भावनाओं का जगाकर उन्हें ऐसी क्रियाएँ करने का प्रोत्साहन देना होता है जिससे तत्काल प्रत्यक्ष सुधार कायम हो जा सके। वर्तमान लोक समाजशास्त्र की दूसरी शाखा सामाजिक सर्वेक्षण (social surveys) है। इनमें समाज की कुछ वर्तमान घटनाओं या समस्याओं के बारे में सारी सूचना एकत्र करके उसमें कुछ साधारण निष्कर्ष निकाले जाते हैं। परन्तु ये निष्कर्ष सभी देशों और कालों में मनीषियों के निष्कर्षों से बहुत अधिक भिन्न नहीं होते। रायटर का मत है कि उपरोक्त सभी धारणाएँ समाजशास्त्र की बहुत व्यापक वर्तमान धारणाएँ हैं।¹

इतिहास का दर्शन (The Philosophy of History)

अन्य महत्वपूर्ण विद्वान समाजशास्त्र का इतिहास का दर्शन मानते हैं। इस धारणा के दो स्तर हैं, एक तो सरल लोक समाजशास्त्र में समाज जाता है और दूसरा रहस्यमय (esoteric or mystical) विचार समूह में। कुछ इतिहासकार और अन्य विद्वान एतिहासिक घटनाओं के प्रवाह में नवान् अर्थों का समावेश करते हैं। वे इतिहास के तथ्यों को अन्तिम नहीं मानते। उनके मतानुसार इतिहास की अन्तिम घटनाओं में कुछ प्रयोजन, शक्ति या प्रक्रिया, प्राकृतिक नियम या और कोई एकीकरण करने वाला सिद्धान्त ढूँढा जा सकता है जिससे बसके पूर्ववर्तन योग्य घटनाओं के क्षण में ताई जा सकती हैं। एन एकरूप करने वाले कारक (unifying factors) और व्याख्यात्मक सिद्धान्तों के कई प्रकार और बड़ी संख्या है। एन दर्शन तो सभी घटनाओं का किसी दृष्टि के अंग मानता है। वे सब सब शक्तिमान सत्ता की दृष्टि की अभिव्यक्तियाँ हैं जिससे प्रयोजना को मानव बुद्धि नहीं समझ सकती। यह दर्शन बड़ा मरुत और कभी-कभी सनापप्रद भी है। दूसरे दार्शनिक विचार समस्त घटनाओं अथवा क्रियाओं का विकासवादी सिद्धान्त में समझाने का प्रयत्न करते हैं। इतिहास का प्रवाह एक ऐसा प्रगतिशील आन्दोलन होता जाता है जो प्रयत्न मनुष्यों के श्रेष्ठतर प्रकारों और सामाजिक माण्डव्य के अधिक अन्तर्दृष्टियों की धारणा रहता

¹ F. B. Peuter *Sociology* Dryden Press New York 1941 p. 7

सामान्य अनुमान प्रस्तुत करते हैं। इसी ज्ञान शाखा को लोक समाजशास्त्र कहा जाता है।

प्राचीन सम्यताओं में इस ज्ञान शाखा का बहुत बड़ा भंडार है। जीवन के हर पहलू और मनुष्य के स्वभाव और व्यवहार से सम्बंधित धारणाएँ अनुमान और कहावतें आदि हैं। उन सम्यताओं के साहित्य, कानूनों नतिक संहिताओं (moral codes) इत्यादि को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। उनका ज्ञान विज्ञान और समाज-दशन वास्तव में बहुत गहन अध्ययन का ही परिणाम था। विद्वाना और मनीषियों ने समाज एवं संस्कृति से सम्बद्ध जिस ज्ञान के भंडार को भरा है वह उनके गूढ़ विचार एवं गहरे परिज्ञान (deep insight) का माक्षी है। यद्यपि विभिन्न देशों और कालों में सामाजिक विचारों के क्लेवर एक स नहीं रहे हैं उन पर स्थिति की छाप पड़ी है फिर भी सभी जगह मनुष्य और समूह की प्रकृति का पयवेक्षण और उस पर साधारण नियम उसमें अवश्य सन्निहित हैं।

पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में लोक-समाजशास्त्र का आकार बहुत अधिक बढ़ गया है। इस अवधि में मानव प्रकृति और सामाजिक सम्बंधों पर बहुत यापक विचार हुआ है। इसके कुछ भाग सरल और साद साधारणीकरण मात्र हैं। पर परिवर्तनशील ससार में मनुष्यों के व्यवहारों का नियमित या दिग्दर्शित करने का यह प्रयत्न तो है ही। इनके कुछ भाग सरल दशन जो व्यक्तियों और समूहों के अनुभवों, पयवेक्षणों और पक्षपातों (biases) को व्यक्त करता है और जनगाथाओं (folklores) एवं परम्परात्मक आस्थाओं (traditional beliefs) जिन पर समसामयिक अभ्यास निर्भर करते हैं का प्रशंसात्मक ढंग से निरूपण करते हैं।

सामाजिक बुद्धिमत्ता की वर्तमान राशि में भी मानवीय और सांस्कृतिक यथाथ पर विचार और साधारणीकरण सम्मिलित हैं। यह भी सहज बुद्धि का सहारा लेती है। इसे उमवद्ध एवं युक्तियुक्त विचार समूह नहीं कहा जा सकता। इसके विभिन्न अंगों की परिपुष्टि भी नहीं की गई। सामान्यतः निष्पक्ष यत्न-बद्ध पयवेक्षण और सहज ज्ञान पर आधरित है। जो ऐतिहासिक घटनाओं समसामयिक समूह जीवन की मूल घटनाओं एवं मनुष्यों और समूहों में प्रकट सम्बंधों से प्राप्त किया गया है। कभी-कभी इसमें गूढ़ पयवेक्षण और साधारणीकरण मिलते हैं। पर यह बहुत कम निस्वाध या पक्षपात रहित है और शायद यह सम्पूर्ण गम्भीर कभी नहीं है।

आधुनिक लोक समाजशास्त्र के सबसे अच्छे उदाहरण वर्तमान समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं के सम्पादकीय, टिप्पणियाँ और विशेष लेख या कातम हैं। लोकप्रिय साहित्य और लेखकों में भी इस क्षेत्र में परम रुचि दिखाई है। कथाकारों उपयसों द्वारा और नाटककारों ने तो मानव प्रकृति, सामाजिक जीवन और मानव सम्बंधों पर अनुल ज्ञान भंडार प्रस्तुत किया है। हमारे शिक्षकों और सरकारी मंत्रिगण भी

उपरोक्त तीनों धारणाएँ वैज्ञानिक समाजशास्त्र (Scientific Sociology) को सही धारणा स बहुत दूर है।

समाजशास्त्र एक वैज्ञानिक ज्ञान शाखा

विज्ञान क्या है ? इस प्रश्न पर विद्वानों ने गूढ़ विचार किया है। आज 'विज्ञान' की सर्वसम्मत परिभाषा शायद न मिले परन्तु यह स्वीकार लिया जाता है कि 'विज्ञान' वह क्रमबद्ध (systematised) ज्ञान है जिस वैज्ञानिक विधि (scientific method) से विकसित किया गया है। सत्य का साजन या शोधन की अनक विधियाँ या प्रविधियाँ हैं। इनमें से वैज्ञानिक विधि ही मनुष्य के मन की चञ्चलता (Caprice) और एच्छिक विचारा (wishful thinking) से परे हैं। जिस वैज्ञानिक विधि कहा जाता है वह अथ विधियाँ से भूयत भिन्न इस बात में है कि वह यथासम्भव शका का प्राप्ताहित और विकसित करती है जिससे कि इन शका से जो कुछ भी बच गू वह मदव सर्वोत्तम प्राप्य साध्य से परिपुष्ट हो सक। जस जम नय साध्य मिलत जात है व नद शकाया का जम द सरते हैं जिह मदव साचना विचारना चाहिए। 'वैज्ञानिक विधि का यही सार है कि इन शकाया का अथ तक सकलित ज्ञान का अभिन्न अण (integral part) मान लिया जाए। इस प्रकार से परिभाषित विज्ञान गायतम्य (dynamic) है। वह प्रपन शीघ्र को मदव गुना रखता है और इनलिमें सदव सत्यता के निरटतर आता जाता है।

विज्ञान की एक दूसरी भाटी परिभाषा यह है 'यह घटनाया व एक समूह (a set of phenomena) में प्रतिमान (pattern) का ढूँढ निकालता है। और यदि यह प्रतिमान मालूम हा गया ता फिर पूवचन सम्भव हा जाता है। बाल पियसन को विज्ञान की परिभाषा बहुत प्रचलित है। तथ्या का वर्गीकरण उनक क्रम का ज्ञान और उनक सापक्षिक भट्त्व का परिचय प्राप्त करना विज्ञान का काय है।'²

वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किता भी क्षेत्र के अध्ययन में किया जा सकता है। प्राकृतिक और जविक क्षेत्रों में इस उपयोग से प्रौढ विज्ञान का विकास हुआ है। मानव सम्बन्धा के क्षेत्र में भी इस विधि को अपना कर बहुत प्रगति कर ली गई है। जस इलकट्रान्स व व्यवहार में वैज्ञानिक प्रतिमान छाजा जा सकता है उसी प्रकार लोगो के व्यवहार में भी। विवेचना के इस स्तर पर सामाजिक विज्ञान (Social sciences) और प्राकृतिक विज्ञान (Natural sciences) में बड़ अन्तर नहीं। वास्तव में विज्ञान ज्ञान के लिय प्रधान तत्व विधि है न कि विषय-वस्तु।³ सामाजिक क्षेत्रों के अध्ययन में वैज्ञानिक विधि का उपयोग उतना ही सफल हो सकता है जितना

1 Morris Cohen *Logic and Scientific Method* quoted by Stuart Chase in his *The Proper Study of Mankind* Harper Brothers New York 1936 p 6

2 The classification of fact the recognition of their sequence and relative significance is the function of science —Earl Pearson

3 Science goes with the method not with the subject matter —Stuart Chase *op cit* p 9

है। इसी प्रकार तीसरे प्रकार के विचारों में, भौगोलिक, जविक, प्रजातीय, वगैरे सघन सम्बन्धी अनन्त धारणायें निर्धारणवादी और सिद्धान्त प्रकट हुये हैं। इन सिद्धान्तों को सर्वमान्य व्याख्यायें स्वीकार किया गया है। इस प्रकार के सभी विचार समाजशास्त्र की उस धारणा के दायरे में हैं जिसे इतिहास का दर्शन कहा जाता है। इन सभी में मानव घटनाओं की पूर्वकथन (forecast) करने की इच्छा पाई जाती है। किन्तु जब तक कोई प्राकृतिक प्रक्रिया या ताकिक सिद्धान्त न हो तब तक किसी तरह का पूर्वकथन तो असंभव है। हाँ, भविष्यवाणी (prophesy) की जा सकती है।

कल्याणकारी अभ्यास और कार्यक्रम (Welfare Practices and Programmes)

हर समाज में बहुत से व्यक्ति और समस्याएँ मानव पीड़ाओं को दूर करने के लिये प्रयत्नशील होते हैं। बहुधा उनके विश्वासों और कार्य-कलापों का समाजशास्त्र की सहायता दी जाती है। चूंकि, मानव सेवा की रचियों और प्रयासों में बहुत अधिक विविधता है इसलिये उनको जो समाजशास्त्र कहा जाता है वह अस्थिर (discursive) और बहुत कुछ अपूर्ण रह जाता है। सभी समाजों में पीड़ित और अभागे लोगों के कल्याण के लिये धर्मार्थ या सेवा-प्रयास किये गये हैं। स्थानीय निकायों ने इन्हें अपने मंगलकारी कार्यों के रूप में किया है। इन सब प्रयासों प्रविधियों (techniques) और सम्बन्ध विचारों को 'कल्याणकारी समाजशास्त्र' (Welfare Sociology) कहा गया है। १९वीं शताब्दी में सामाजिक और प्रशासनिक सुधारों की दिशा में अनेक प्रयास किये गये। इसी आन्दोलन और तन्मन्बन्धी अनेक कार्य-कलापों में वर्तमान व्यावहारिक समाजशास्त्र (Practical Sociology) एवं प्रारम्भिक समाज कार्य (Social work) का जन्म और विकास हुआ। विशेषकर औद्योगीकरण और नागरीकरण के विस्तार से अनेक समाजों में कई भीषण समस्याएँ पैदा हो गईं, पारिवारिक विगठन, जन-स्वास्थ्य शिक्षा, अपंगों या विकलांगों की देखभाल और कल्याण, शिशुकल्याण, निधन के मकान की व्यवस्था, दरिद्रता, जेल सुधार, वेश्यावृत्ति, अस्पृश्यता, निवारण आदि अनेक सामाजिक रोगों का उपचार करने के लिये आर्थिक और सामाजिक योजनाएँ बनाई गईं। काल्पनिक सर्वोत्तम समाज की स्थिति (Utopia) प्राप्त करने के लिये भी कई विद्वानों ने योजनाएँ बना डालीं। समाज का संकट से बचाने के लिये इन रोगों और अभिजातों के निवारणार्थ कार्यक्रम भी अपनाए गए। स्कूलों और कालजों में आज भी सामाजिक समस्याओं का अध्ययन होता है। इन सब प्रयासों में जिस सामाजिक विचार-संग्रह का विकास हुआ उसे ही 'कल्याणकारी (या मंगलकारी) समाजशास्त्र' से सम्बन्धित किया जाता है। इस समाजशास्त्र में नैतिक और प्रशासनिक मागदर्शन के लिये एक व्यावहारिक पान-संग्रह और मंगलकारी अभ्यासों एवं अर्थ-अभ्यासों का एक समूह सम्मिलित होता है। जब इसे समाज कार्य की सहायता दी जाती है तो इसमें उन प्रचलित नियमों और अभ्यासों का समावेश होता है जो संकटग्रस्त व्यक्तियों और परिवारों के उपचार के लिये प्रयुक्त होते हैं।

उपरोक्त तीना धारणाएँ वैज्ञानिक समाजशास्त्र (Scientific Sociology) की सही धारणा में बहुत दूर हैं।

समाजशास्त्र एक वैज्ञानिक ज्ञान शाखा

विज्ञान क्या है ? इस प्रश्न पर विद्वानों ने गूढ़ विचार किया है। आज 'विज्ञान' की सबसे महत्त्वपूर्ण परिभाषा मायबेक ने मिल परंतु यह स्वीकार किया जाता है कि विज्ञान वह क्रमबद्ध (systematised) ज्ञान है जिस वैज्ञानिक विधि (scientific method) से विकसित किया गया है। मृत्यु का कारण या शासन की प्रत्येक विधियाँ या प्रविधियाँ हैं। इनमें से वैज्ञानिक विधि ही मनुष्य के मन की चंचलता (Caprice) और ऐच्छिक विचारा (wishful thinking) से परे है। जिस वैज्ञानिक विधि कहा जाता है वह अत्यंत विधियाँ में भूत भिन्न ज्ञान में है कि वह यथामुम्भव शक्यता का प्रोत्साहित और विकसित करती है जिसमें कि इस शक्यता से जो कुछ भी बच रहे वह सदैव सर्वोत्तम प्राप्य माध्यम से परिपुष्ट हो सके। जैम जैस नये माध्यम मिलते जाते हैं वे नए शक्याओं का जन्म दे सकते हैं जिन्हें सदैव सोचना विचारना चाहिए। वैज्ञानिक विधि का यही सार है कि इन शक्याओं को प्रत्येक तक संकलित ज्ञान का अभिन्न अंग (integral part) मान लिया जाए। इस प्रकार से परिभाषित विज्ञान गत्यात्मक (dynamic) है। वह अपने ही अर्थ को सदैव खुला रखता है और इसी अर्थ सत्यता के निकटतर आता जाता है।

विज्ञान की एक दूसरी माटी परिभाषा यह है 'यह घटनाओं का एक समूह (a set of phenomena) में प्रतिमान (pattern) का ढूँढ निकालना है।' और यदि यह प्रतिमान मालूम हो गया तो फिर पूर्वानुमान सम्भव हो जाता है। काल विषयों की विज्ञान की परिभाषा बहुत प्रचलित है। तथ्यों का वर्गीकरण, उनके क्रम का ज्ञान और उनके सांख्यिक महत्व का परिचय प्राप्त करना विज्ञान का कार्य है।¹

वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किसी भी क्षेत्र में अध्ययन में किया जा सकता है। प्राकृतिक और जैविक क्षेत्रों में इस उपयोग से प्रौढ़ विज्ञानों का विकास हुआ है। मानव सम्बन्धों के क्षेत्र में भी इस विधि का अपना कर बहुत प्रगति कर ली गई है। जम इलकट्रान्स के व्यवहार में वैज्ञानिक प्रतिमान लाया जा सकता है उसी प्रकार भाषा के व्यवहार में भी। विवेचना के इस स्तर पर सामाजिक विज्ञान (Social sciences) और प्राकृतिक विज्ञानों (Natural sciences) में कोई अंतर नहीं। वास्तव में विज्ञान होने के निम्न प्रमाण तब विधि है न कि विषय-वस्तु।² सामाजिक क्षेत्रों के अध्ययन में वैज्ञानिक विधि का उपयोग उतना ही सफल हो सकता है जितना

1 Morris Cohen *Logic and Scientific Method* quote 1 by Stuart Chase in his *The Proper Study of Mankind* Harper Brothers New York 1906 p 6

2 The classification of facts the recognition of their sequence and relative significance is the function of science —Karl Pearson

3 Science goes with the method not with the subject matter —Stuart Chase op cit p 9

प्राकृतिक क्षेत्र में। यदि यह मान लिया जाय कि बाद वाले क्षेत्र में इस विधि का उपयोग से अधिक शुद्ध या अधिक ज्ञान संकलित होता है तो भी सामाजिक क्षेत्रों में विधि तो मूलतः वही रहेगी। काल पियसन ने सही कहा है कि 'सभी विज्ञानों की एकता उनकी विधि में है।'

समाजशास्त्र की प्रकृति

समाजशास्त्र एक विज्ञान तो है परंतु क्या या किस प्रकार का विज्ञान है? वैज्ञानिक विधि में तथ्यों का वर्गीकरण, उसमें पारस्परिक सम्बन्ध की स्थापना, तथा उनके क्रम (sequences) का वर्णन शामिल होता है। इस विधि का उपयोग से जो क्रमबद्ध ज्ञान विकसित होता है उसे विज्ञान कहा जाता है। समाजशास्त्र अपने विषय—मानव सम्बन्धों और सामाजिक घटनाओं—का अध्ययन भी वैज्ञानिक विधि से करता है। इसलिए यह एक विज्ञान है। इसमें सामाजिक घटनाओं के विद्यमान रूप का वास्तविक और सत्य वर्णन किया जाता है इसलिये यह असत्यात्मक (Positive) विज्ञान है आदर्शतात्मक (normative) नहीं। आदर्शतात्मक विज्ञान जैसे आचारशास्त्र में आदर्श प्रस्तुत किये जाते हैं। इसका काय यह बताना है कि क्या होना चाहिए (What ought to be)।

जहाँ तक शुद्धता या अचूकता (exactness) का प्रश्न है प्राकृतिक (भौतिक और जैविक) एवं सामाजिक विज्ञानों में अंतर है। इसका मुख्य कारण प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों की विषय-वस्तु में भिन्नता है। प्राकृतिक तथ्य और घटनाएँ निर्जीव पदार्थ हैं और जो सजीव भी हैं वे भी मनुष्य के तुल्य नहीं हैं। प्राणि विकास की बहुत ऊँची, चरम श्रेणी में मनुष्य का स्थान है। दूसरे प्राकृतिक और जैविक पदार्थों में उतनी जटिलता नहीं मिलती मनुष्य और उसके समाज में। तीसरे, प्राकृतिक और जैविक पदार्थों का विपरीत मानव में इच्छा और विवेक है। उनके अपने उद्देश्य, आदर्श और आकांक्षायें होती हैं। चौथे, मानव सम्बन्धों और घटनाओं पर प्राकृतिक पदार्थों की भाँति नियंत्रित परीक्षण (controlled experiment) नहीं हो पाता। समाज विज्ञानियों की प्रयोगशाला तो जीते-जागते मानव समूह है। पाचवें, प्राकृतिक और जैविक पदार्थों का वैज्ञानिक का अपने अध्ययन में पूर्ण विषय-वृत्ता (objectivity) मिल जाती है। वह अपनी अध्ययन वस्तु का ही एक अंग नहीं होना इसलिए उससे न तो पूर्वसन्ध (predilection) होता है और न पूर्वाग्रह (prejudices)। समाज का वैज्ञानिकों को वैज्ञानिक निरालसता (scientific detachment) प्राप्त करने में परत दरजे की कठिनाई का सामना करना पड़ता है। वह जिस समाज का अध्ययन करता है उसका एक सदस्य भी है। डाक्टर और मरीज की इस दोहरी भूमिका (dual role) में उस बड़े परिश्रम और अध्यवसाय से ही सफलता मिलती है और अन्ततः समाज या समूह का अध्ययन करना सरल नहीं है। इनके निहित स्वार्थों द्वारा समाज के अध्ययनकर्ता के भाग में अनेक बाधाएँ डाली

समाजशास्त्र क्या है ?

जाती है। इसके अध्ययन के विषय ऐसे हैं जिनमें सड़क पर चलने वाला आम आदमी देखल रखन का दावा करता है।

इन कठिनाइयों के होते हुए भी समाजशास्त्री अपने विषय के अध्ययन में वैज्ञानिक विधि का पूरणया धरनाता है। वह पर्यवेक्षण करके तथ्या का सक्शन करता है। तुलनात्मक अध्ययन कर इनका वर्गीकरण करता है। इस वर्गीकरण के बाद तथ्या के समूहों में पारस्परिक सम्बन्ध (correlation) की स्थापना करता है। तदनन्तर इसमें सम्बन्धित सामान्य नियम (Generalizations) प्रस्तुत करता है जिनका विशेष परिस्थितियों में सत्यापन (verification) करता है। तब वही नियम (Law) बनता है। इस नियम से वह पूर्व निर्धारित उप-कल्पना (hypothesis) का स्वीकार या अस्वीकार करता है। यही नियम उस किसी विशिष्ट सामाजिक स्थिति के बारे में पूर्व कथन (prediction) करने की योग्यता प्रदान करते हैं।

पर समाजशास्त्र के नियम (Laws) प्राकृतिक विज्ञानों के नियमों की भाँति पूर्ण या शुद्ध (exact) नहीं हो पाते। वे सावभौम सिद्ध नियम नहीं हैं। वे तो केवल सामाजिक प्रवृत्तियों (social tendencies) का व्यक्त कर सकते हैं। मनुष्यों के व्यवहार और सामाजिक घटनाएँ अत्यधिक भिन्नतापूर्ण हैं और साथ ही सन्तु परिवर्तनशील भी हैं। इन विशाल अत्यधिक भिन्नतापूर्ण और अनवरत गत्यात्मक (dynamic) दशाओं या घटनाओं का न तो पूर्ण पर्यवेक्षण हो पाता है और न उनके बारे में सही पूर्व कथन। समाजशास्त्र और शुद्ध विज्ञानों में यही अन्तर है। समाजशास्त्र की इस प्रकृति का भली भाँति समझ लेना आवश्यक है।

समाजशास्त्र के प्रकार (Types of Sociology)

हम देख चुके हैं कि समाजशास्त्र की अध्ययन वस्तु मानव समाज है। यह आधुनिक समाज का अध्ययन करता है। इसके विपरीत मानवशास्त्र आदिम समाज का। मानव समाज के दो रूप हैं (१) विशिष्ट समाज जैसे भारतीय समाज, चीनी समाज, ब्रिटिश समाज या रूसी समाज आदि। इन जैसे जागत राष्ट्रीय (या प्रादेशिक) समाजों का अध्ययन समाजशास्त्र की पहली प्रधान समस्या है। (२) सामान्य मानव समाज का मारे मारे भर में पला है। इस अन्तर्राष्ट्रीय मानव समुदाय में प्रत्येक घम भाषा अथवा अथ कृत्रिम आधारों पर बन विभाजनों की उपस्था कर दी जाती है। इन समाजों का अध्ययन समाजशास्त्र की दूसरी प्रधान समस्या है।

राष्ट्रीय समाजों के वैज्ञानिक अध्ययन में समाजशास्त्र ने बहुत प्रगति की है। पर वैज्ञानिक विधि का अधिकतम उपयोग करने पर भी समाजशास्त्र अन्तर्राष्ट्रीय शास्त्र का गुण बहुत कम मात्रा में विकसित कर पाया है। उन्नत विज्ञानों के विपरीत इस शास्त्र में अब भी राष्ट्रीय गुण हैं। इसका अन्वेषण और दृष्टिकोण विभिन्न देशों में भिन्न भिन्न है। इंग्लैंड में हम अंग्रेजी जापानी जर्मनी, अमेरिकी या रूसी

समाजशास्त्र के उदाहरण मिलते हैं। दशन की भांति समाजशास्त्र की भी यह सीमा (limitation) या अभाव है। भाषा कला और कविता की भांति दशन के राष्ट्रीय गुण का कारण तो समझ में आ जाता है। परन्तु जब समाजशास्त्र का आदेश, अर्थ विधान की भांति, अव्यक्तिक (impersonal) है तो फिर इसमें राष्ट्रीय गुण होना इसकी अपरिपक्वता का द्योतक है। वैज्ञानिक विधि की विविध आवश्यकताओं का यह अभी पूरा कर सकता है जब इसके इस अभाव को दूर करने के लिये और अधिक तत्परता से प्रयास किया जाय।

विशिष्ट समाजों का अध्ययन में समाजशास्त्र ने दो पद्धतियाँ अपनाई हैं। पहली पद्धति में सम्पूर्ण समाज (या समूह) का अध्ययन किया जाता है। दूसरी में उस समूह की विशिष्ट आकृतियाँ (features) या पहलुओं का अध्ययन होता है। पहले प्रकार के अध्ययन के कुछ उदाहरण ये हैं—मोड दि अमरिकन करक्टर बनेडिक्ट, फ्रांसे-येमम एण्ड दि स्वीड, जोस सर्वे ऑफ भरसीमाइड, रूथ ग्लाम सोशन बक ग्राउण्ड ऑफ ए प्लान, लिण्ट मिडलटाउन और मिडनटाउन रिविजिटेड फी पजट लाइफ इन चाइना यांग ए चाइनीज विलज इत्यादि। दूसरे प्रकार के अध्ययन के उदाहरण भी उपलब्ध हैं जस पिलग्रिम टस्ट मन विदाउन बक रौट्टा और पावर्नी एण्ड प्राप्रेम, रिथ दि धेगे वानर और शोल माशल मिस्टमूस ऑफ अमरिकन एथनिक ग्रुप्स तथा अनेक सस्याओं या स्थानीय समस्याओं के सामाजिक सर्वेक्षण।

सामान्य मानव समाज के अध्ययन में विशेषतः दो प्रकार के विषयों का बहान किया गया है। प्रथम युद्ध के कारण और प्रभाव और सांस्कृतिक सम्पर्क जो विशिष्ट समाजों तक ही सीमित नहीं है। द्वितीय मानवीय सामाजिक जीवन का सामान्य पहलुओं का अध्ययन जो सभी समाजों में विद्यमान है। इसके अनिर्गुण कृष्ण अर्थ विस्तृत और गहन अध्ययन किये गये हैं जो सम्पूर्ण मानव विज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों की व्याख्या करने का प्रयास करते हैं। मार्क्स का सामाजिक परिवर्तन का सिद्धान्त (dialectical principle of social change) कोम्ट का तीन अवस्थाओं का नियम (law of three stages), टोयनबा की ए स्टेज ऑफ हिमनी और साराकिन का Social and Cultural Dynamics इस श्रेणी में आते हैं।

सामान्य और विशिष्ट समाजशास्त्र

सामान्य समाजशास्त्र (General Sociology) में सामाजिक जीवन के विकास और क्रिया के सामान्य सिद्धान्तों का विवेचन किया जाता है। इस समाजशास्त्र का परिचय या समाजशास्त्र के मूल सिद्धान्तों की संज्ञाएँ देना बहुत प्रचलित है। प्रस्तुत पुस्तक में इसी विषय का निरूपण है। विशिष्ट समाजशास्त्रों के उदाहरण हैं कानून

का समाजशास्त्र मा धर्म, शिक्षा परिवार जनसंख्या ग्राम या नगर इत्यादि के समाज शास्त्र ।¹

समाजशास्त्र का प्रयोजन और फायदे

हम ऊपर पढ़ चुके हैं कि समाजशास्त्र, एक पारिष्कृतिक ज्ञान शाखा की हैमियन में समूह जीवन और मानव व्यवहार का नीति-नटस्थ (ethically neutral) अध्ययन है। इसका प्रयोजन सप्रमाण (valid) सिद्धान्तों का एक ऐसा सङ्कलन करना है जो विषय (objective) ज्ञान का एक काण्ट हो और जिससे सामाजिक और मानवीय यथाथना का विश्लेषण और नियंत्रण सम्भव हो सके। इसका तात्पर्य मानवीय सामाजिक समस्याओं और उनके व्यावहारिक उपचार विधियाँ स नहीं हैं। यह तो ऐसी समस्याओं की अधिक पर्याप्त जानकारी करने के लिए एक आधार तैयार करने का प्रयत्न है और इन समस्याओं अथवा भविष्य में आने वाली अथवा समस्याओं का सामना करने के लिये एक अधिक प्रभावशाली ढंग के विकास करने का प्रयत्न है।² जिसके विचार से समाजशास्त्र का उद्देश्य सर्व सामाजिक तन्त्रों और सम्पूर्ण सम्यता के सम्बन्ध का निश्चित करता है।³

समाजशास्त्र एक प्रौढ सामाजिक सिद्धान्त (social theory) का विकास कर रहा है जो व्यावहारिक प्रयोगसिद्ध अध्ययनों का समन्वय है। इस सिद्धान्त की जाँच (test) वास्तविक सामाजिक परिस्थितियों में उपयोग करके की जाती है। सामाजिक गवेषणा (social research) का प्रयोजन समाज की स्थिर वृद्धि और प्रगति (stable growth and progress) करने की क्षमता (capacity) को नापना है। अतएव इस विज्ञान का दो कार्य हैं—(१) मानव समाज की सभी पार्श्वभूमि तथा मनुष्यों और पर्यावरण के अन्तर्गत सम्बन्धों का वैज्ञानिक व्याख्या करना तथा (२) सतत परिवर्तनशील संसार के प्रति समाज की समायोजन (adjustment) करने की क्षमता रहने और प्रगति करने की क्षमता का नापना।⁴

समाजशास्त्र और मानव कल्याण

इस अध्याय को समाप्त करने के पूर्व समाजशास्त्र और मानव कल्याण (human welfare) के सम्बन्ध में दो शब्द कह देना आवश्यक है। विज्ञान का चरम प्रयोजन कोई निष्क्रिय जिज्ञासा ही नहीं है। यह तो मानव कल्याण की वृद्धि है।⁵ समाजशास्त्र का प्रयोजन सामाजिक पर्यावरण को नियंत्रित करने की अधिक प्रभावशाली विधियों का विकास करना है। इस नियंत्रण का आधार निश्चित करना महत्वपूर्ण है और यह आधार मानवीय मूल्यों से निर्धारित होता है। अतएव विज्ञान

1 विस्तृत जानकारी के लिये राइटर की सोसियोलॉजी पढ़िये।

2 E B Reuter *Sociology* p 12

3 Ginsberg *Sociology* p 18

4 H W Odum *Understanding Society and Ginsberg Ibid* p 17

5 Robert S Lynd *Knowledge for What?* Princeton 1933

को अवश्य ही मानवीय मूल्यों से दिग्दर्शित होना चाहिये। समाजशास्त्र को भी इन मूल्यों से दिग्दर्शन लेना चाहिये।

समाजशास्त्री को दोहरी भूमिका भ्रदा करनी पन्ती है। वह एक वज्ञानिक है और साथ ही एक नागरिक भी। चूँकि मानवीय सम्बन्धो म वह विशेषण है इसलिये उसका अपने समाज (या मानव समाज) के प्रति कर्त्तव्य है कि उसका कल्याण बनाय किन्तु यहा यह ध्यान रहे कि समाजशास्त्र एक 'ज्ञान' है यह समाज के रोगो का कोई निदान शास्त्र नहीं है।¹ समाजशास्त्री मानव सम्बन्धो और सस्थाओ आदि का अध्ययन इस उद्देश्य से करता है कि वह समाज के सामने उसका यथा-स्तथ्य चित्र रख दे तो समाज अपने सगठन मे सुधार करने की आवश्यकता को पहचान सकेगा।

यह समझना गलत है कि समाजशास्त्री की दिलचस्पी मानव कल्याण म नहीं है इसलिये वह अपनी वनानिक शोधो के परिणामो का सामुदायिक कल्याण के लिये उपयोग नहीं करना चाहता। शोध काय म सलग्न होने पर वनानिक विधि के सिद्धांतो (canons) को कठोरता स पालने के लिये भस्तिष्क को प्रशिक्षित करना पडता है। वज्ञानिक के नाते समाजशास्त्री की प्रधान दिलचस्पी केवल समाज के समझने म है। समाज स सम्बन्धित तथ्यो क परस्पर सायक सम्बन्ध का बताना ही उसका काय है। किन्तु एक नागरिक के नाते समाज के कल्याण मे योग देना उसका कर्त्तव्य है।²

1 Sociology is a knowledge and not a therapy

2 Based on Nelson's *Rural Sociology* p 3

समाजशास्त्र एवं अन्य विज्ञान

मनुष्य ने अपने आस पास के प्रकृत और सामाजिक संचारा का वनानिक अध्ययन कर जा ज्ञान संचित किया है वह दा प्रकार क विनाना म विभाजित किया जाता है

(१) प्राकृतिक विनान और (२) मानवीय विनान ।

प्रकृति की भौतिक और जैविक घटनाया (Physical and biological phenomena) और शक्तिया (forces) का अध्ययन करन बाने विज्ञान प्राकृतिक विनान कहलाने हैं और मनुष्य और उनक सामूहिक जीवन क विभिन्न पहलुआ का अध्ययन करन वाले नानशास्त्राया और विनानो को मानव नाना (humanities) और मानव विनाना (human sciences) म सम्मिलित किया जाता है ।

मनुष्य के सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुआ का अध्ययन सामाजिक विनाना म हाना है । इन विनाना म राज्यशास्त्र सबसे प्राचीन है । उनक बाद अन्य विनाना का आयु के अनुनार इस प्रकार क्रम है — अथशास्त्र, समाजशास्त्र समाज मनाविज्ञान और सामाजिक मानवशास्त्र अर्थात् सामाजिक मानवशास्त्र सबसे नवीन विनान है । इतिहास और भूगोल को वास्तविक सामाजिक विनान नहीं माना जाता है । मानव-भूगोल तथा इतिहास का मानव नानों को थोड़ी म रखा जाता है ।

‘सामाजिक विनाना’ के लिए बहूदा ‘सामाजिक विनान’ (Social science) की सना दी जाती है जो उन सब को एक दधिर समूह (kinship group) मे होने की धार संकेत करती ह । सामाजिक विनान’ की सरल परिभाषा यह है — ‘यह ऐमे अध्ययनो (studies) का एक समूह है जो मानव समूहा के सामाजिक जीवन के एक विनान को म्यापना का उद्देश्य रखते हैं । इसके लिए अकसर ‘व्यवहार सम्बन्धी विज्ञान’ (behavioural science) की सना भी दी जानी है । स्टुडेंट चेज के अनुसार ‘सामाजिक विनान’ (Social Science) मानव व्यवहार सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर देने के लिय वनानिक विधि का प्रयोग है ।¹ उपरोक्त पाच बडे शास्त्रा के अर्निगित इतिहास भूगोल जनमन्या शास्त्र (demo-

1 Social Science is defined as the use of the scientific method to answer questions about human behaviour —Stuart Chase *op cit* pp 9 23

को अवश्य ही मानवीय मूल्या से दिग्दर्शित होना चाहिये। समाजशास्त्र को भी इन मूल्या से दिग्दर्शन लेना चाहिये।

समाजशास्त्री को दोहरी भूमिका ग्रहण करनी पड़ती है। वह एक वैज्ञानिक है और साथ ही एक नागरिक भी। चूंकि मानवीय सम्बन्धों में वह विशेषज्ञ है इसलिये उसका अपने समाज (या मानव समाज) के प्रति कर्तव्य है कि उसका कल्याण बढ़ाये किन्तु यहाँ यह ध्यान रहे कि समाजशास्त्र एक 'ज्ञान' है यह समाज के रोगों का कोई निदान शास्त्र नहीं है।¹ समाजशास्त्री मानव सम्बन्धों और समस्याओं आदि का अध्ययन इस उद्देश्य से करता है कि वह समाज के सामने उसका यथा तथ्य चित्र रख दे तो समाज अपने सगठन में सुधार करने की आवश्यकता को पहचान सकेगा।

यह समझना गलत है कि समाजशास्त्री की दिलचस्पी मानव कल्याण में नहीं है इसलिये वह अपनी वैज्ञानिक शोधों के परिणामों का सामुदायिक कल्याण के लिये उपयोग नहीं करना चाहता। शोध काय में सलग्न होने पर वैज्ञानिक विधि व सिद्धांतों (canons) को कठोरता से पालने के लिये मस्तिष्क को प्रशिक्षित करना पड़ता है। वैज्ञानिक के नाते समाजशास्त्री की प्रधान दिलचस्पी केवल समाज के समझने में है। समाज से सम्बन्धित तथ्यों के परस्पर साथक सम्बन्ध को बताना ही उसका काय है। किन्तु एक नागरिक के नाते समाज के कल्याण में योग देना उसका कर्तव्य है।²

1 Sociology is a knowledge and not a therapy

2 Based on Nelson's *Rural Sociology* p 3

समाजशास्त्र एवं अन्य विज्ञान

मनुष्य न अपने श्रम पाम के प्रकृत और सामाजिक सचारा का वनानिक अध्ययन कर जो पान सचित किया है वह दा प्रकार क विनाना म विभाजित किया जाना है

(१) प्राकृतिक विनान और (२) मानवीय विनान ।

प्रकृति की भौतिक और जविक घटनाया (Physical and biological phenomena) और शक्तिया (forces) का अध्ययन करन वाने विनान प्राकृतिक विनान कहलात है और मनुष्य और उनके सामूहिक जीवन के विभिन्न पहलुआ का अध्ययन करने वाल पानशास्त्राभा और विनाना का मानव पाना (humanities) और मानव विनाना (human sciences) म सम्मिलित किया जाना है ।

मनुष्य क सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुआ का अध्ययन सामाजिक विनानो में हाता है । इन विनाना म राज्यशास्त्र सबसे प्राचीन है । उनक बाद अय विनाना का आयु क अनुनार इत प्रकार कम है —अथशास्त्र समाजशास्त्र, समाज मनोविज्ञान और सामाजिक मानवशास्त्र अर्थात सामाजिक मानवशास्त्र सबसे नवीन विनान है । इतिहास और भूगोल को वास्तविक सामाजिक विनान नहीं माना जाता है । मानव-भूगोल तथा इतिहास का मानव-ज्ञाना की श्रेणी म रखा जाना है ।

“सामाजिक विनाना के लिए बहुधा ‘सामाजिक विनान’ (Social science) की सप्टा दी जानी है जो उन सब को एक ‘दधिर समूह’ (kinship group) म होने की और मनेन करनी है । सामाजिक विनान’ की मरल परिभाषा यह है —‘ यह ऐसे अध्ययना (studies) का एक समूह है जो मानव समूहा के सामाजिक जीवन के एक विनान की स्थापना का उद्देश्य रखते हैं ।’ इसके लिए प्रकमर व्यवहार सम्बन्धी विनान’ (behavioural science) की सप्टा भी दी जानी है । स्टुघट चेज के अनुनार सामाजिक विनान (Social Science) मानव व्यवहार सम्बन्धी प्रश्नो का उत्तर देने क लिय वैज्ञानिक विधि का प्रयोग है ।¹ उपरोक्त पाँच बडे शास्त्रा के अतिरिक्त इतिहास भूगोल, जनसन्ध्या शास्त्र (demo-

1 Social Science is defined as the use of the scientific method to answer questions about human behaviour —Stuart Chase *op cit* pp 9 23

graphy) लोक प्रशासन विधिशास्त्र और शिक्षा आदि को अथ विशिष्ट सामाजिक ज्ञान शाखायां (social disciplines) में शामिल किया जाता है।

दशन, आचारशास्त्र तुलनात्मक धर्म साहित्य और कलायां का मानव ज्ञान (humanities) की श्रेणी में रखा जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में हम कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक विज्ञानों और अथ विज्ञानों से समाजशास्त्र के सम्बन्ध का विवेचन करेंगे।

कॉम्ट (August Comte) समाजशास्त्र का सबसे व्यापक और अंतिम शास्त्र मानता था क्योंकि यह मनुष्य जाति के सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्ध रखता है। वह कहता था कि मानव जीवन एक पूर्ण इकाई (whole unit) है और उसे राजनीतिक आर्थिक धार्मिक आदि परस्पर पृथक् क्षेत्रों में नहीं बाटा जा सकता। विशेष सामाजिक विज्ञान समाज के विशिष्ट पहलुओं (specific aspects) का वर्णन करते हैं। उनमें से कोई सम्पूर्ण समाज का अध्ययन नहीं करता। अतः समाजशास्त्र ही पूर्ण समाज का अध्ययन करता है। इसलिए अथ सामाजिक शास्त्रों की तुलना में समाजशास्त्र पूर्ण शास्त्र है। वह इसे विज्ञानों का विज्ञान मानता था। हबर्ट स्पेंसर बाइबुलूरीयम तथा हार्वर्डाउस समाजशास्त्र को समन्वयात्मक (synthetic) विज्ञान कहकर इस अथ सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा उच्च स्थान देने का सुझाव रखते थे।

गिडिंग्स समाजशास्त्र को स्वतंत्र शास्त्र मानकर कहता है कि इसको अथ शास्त्रों पर कोई सत्ता प्राप्त नहीं है। काम और धर्म का भी यही मत है। समाजशास्त्र न तो अथ सामाजिक विज्ञानों का स्वामी है और न नीकर। उसे सहोत्तर ही समझना चाहिये। आजकल समाजशास्त्र अथ सामाजिक शास्त्रों की भाँति एक स्वतंत्र (independent) शास्त्र समझा जाता है, जिसका अथ शास्त्रों से अथान्याय्यता का सम्बन्ध (relation of interdependence) है।

समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र (Economics) मनुष्य के सामाजिक व्यवहार के आर्थिक पहलुओं का विज्ञान है। अर्थशास्त्र मनुष्य की उन क्रियाओं का अध्ययन है जिनका लक्ष्य भौतिक साधनों का जुटाकर आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए धन उत्पन्न करता है। धन के वितरण और उपभोग की समस्याओं का अध्ययन अर्थशास्त्र करता है। वस्तुओं की माँग क्या घटती बढ़ती है? उनकी पूर्ति कैसे होती है? इनके नियम बताना अर्थशास्त्र का काम है। देश में कितने धन का उत्पादन हो या कितनी वस्तुएँ और सेवाएँ पान की जाएँ जिनसे सम्पूर्ण देश का एक निश्चिन्त जीवन स्तर लाया जा सके? उत्पादन के साधनों का

क्या शास्त्र ही जिससे अधिकतम उत्पादन हो ? तथा अर्थ देश के साथ आपस में नियम की कमी नीति रखी जाए कि देश के उद्योग-व्यापार को क्षति न हो ? आदि प्रश्नों का अर्थशास्त्र उत्तर भर दे देता है। इन उत्तरों के अनुसार व्यवहार करना या न करना समान तथा उभय मद्दम्या की विम्वदारी है। सामाजिक क्रियाएँ तथा मानव व्यवहार के इसी सामाजिक पैटर्न का अध्ययन करना समाजशास्त्र का विषय है। समाजशास्त्र मनुष्यों के सामाजिक सम्बन्धों पर पटन वाले आर्थिक प्रभावों का भी अध्ययन है। समाजशास्त्र के नियमों तथा परिणामों का समाज में घटकर उनकी यथाय अवस्था का पता लगाना है। बनारी एक आर्थिक समस्या भी है और समाजशास्त्रीय भी। अर्थशास्त्र का काम बकारी के कारणों का पता लगाना है किन्तु बकारी के कारण हमारा अधिक नहीं हात सामाजिक भी हात है। इन सामाजिक कारणों का हटाने के लिए मुभाव पेश करने में अर्थशास्त्र का समाजशास्त्र को सहायता लेना अनिवार्य है। इसी प्रकार में स्वयं विनिमय एक समस्या है। इसका दाना शास्त्र अध्ययन करने है। आर्थिक मस्या के रूप में स्वयं विनिमय के घटका संगठन कार्यों तथा प्रवृत्तियों का अध्ययन अर्थशास्त्र करता है। किन्तु इस मस्या में भी अर्थ मस्याओं के समान लक्षण हैं। समाजशास्त्र अर्थ मस्याओं के साथ इसका अध्ययन करके इसका निवारण करता है कि सामाजिक जीवन में स्वयं विनिमय का क्या स्थान है ?

आधुनिक युग में व्यापक आर्थिक योजनाएँ बनाई जाती हैं। द्वितीय महायुद्ध के बाद आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए न जाने कितनी योजनाएँ बनीं। आज भी युद्धोत्तर युग में दाना के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए पंचवर्षीय आदि योजनाएँ बनाई जा रही हैं। इन योजनाओं का कार्यान्वयन करने वाले मनुष्य और उनकी समस्याएँ हानी हैं। योजना को अधिकतम सफल बनाने के लिए जनता का सक्रिय सहयोग आवश्यक है। इन प्राप्ति करने के लिए जनता की प्रयाणों विस्तार में मस्याएँ तथा सामाजिक मूल्य समझने पड़ेगे। इस यही समाजशास्त्र का सहयोग अनिवार्य हो जाता है। सच तो यह है कि समाज के आर्थिक तथा सामाजिक पहलू परस्पर बहूत घनिष्ठ हैं। एक का विवेचन करने में दूसरे का विचार करना जरूरी हो जाता है। इसलिए अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र दाना का परस्पर निकट सम्बन्ध है। दाना विज्ञान मिल कर ही किसी आर्थिक मस्या या सामाजिक मस्या का अर्थिक पूरा पता प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकते हैं। दाना ही शास्त्र अपने अध्ययन में एक दूसरे के नियमों और परिणामों का प्रयोग करते हैं।

समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र की विषय-भामांगी और क्षेत्र में स्पष्ट अंतर है। दाना के दृष्टिकोण भी भिन्न हैं और उनकी अध्ययन विधियाँ भी पृथक्-पृथक्। समाजशास्त्र एक व्यापक शास्त्र अवश्य है किन्तु अर्थशास्त्र को इसकी एक शाखा मान नहीं कहा जा सकता।

समाजशास्त्र और मानवशास्त्र

मानवशास्त्र (Anthropology) मनुष्य और उसकी कृतिया का विज्ञान है। यह मनुष्य के भौतिक सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन है। इसलिए इस विज्ञान की चार प्रमुख शाखाएँ हैं

- (१) भौतिक मानवशास्त्र अथवा मानव विकास और वृद्धि का अध्ययन
- (२) प्राक् इतिहास और सांस्कृतिक मानवशास्त्र अथवा मनुष्य की कृतिया का अध्ययन
- (३) नृवशास्त्र अथवा मनुष्य का प्रजातिक और सांस्कृतिक वितरण और
- (४) व्यावहारिक मानवशास्त्र अर्थात् यथाथ जीवन में भौतिक और सांस्कृतिक मानवशास्त्र की सेवा का प्रयोग।

मानवशास्त्र में आदिम समुदाया (primitive communities) अथवा आदिवासियों का अध्ययन होता है और समाजशास्त्र में आधुनिक समाजों का। जब समाजशास्त्र समाज के विकास का अध्ययन करता है तो मानवशास्त्र के ज्ञान का उपयोग करता है। प्रजाति (race) तथा संस्कृति का दाना शास्त्र में अध्ययन होता है। इसी प्रकार बहुत से अन्य ऐसे विषय हैं जिनका अध्ययन करना दाना विज्ञानों का विषय है। एक अनिश्चित मध्यम वर्ग समता दाना विज्ञानों में यह है कि दाना ही मनुष्य के अध्ययन का अग्रणी मुख्य विषय बनाते हैं। बहुत सी धारणाएँ जो समाजशास्त्र में संस्कृति नस्ल व्यक्तित्व आदि विषयों के विवेचन में प्रयुक्त होती हैं वे मानवशास्त्र से ही गढ़ हैं। सांस्कृतिक अथवा सामाजिक मानवशास्त्र (Cultural or Social Anthropology)¹ के अनुकरण पर समाजशास्त्र का एक प्रमुख शाखा सांस्कृतिक समाजशास्त्र (Cultural Sociology) चला पड़ी है। प्राक् समाजशास्त्र (Folk Sociology) पर नित्य गण नग वास्तव में संस्कृति से सम्बन्ध रखते हैं और मानवशास्त्र के विचार और सिद्धान्तों का उपयोग कई देशों में समाजशास्त्र में किया गया है। परन्तु आधुनिक समाजशास्त्री मानवशास्त्रियों के विचार और सिद्धान्तों की अगुआई नहीं सामग्री का अधिक उपयोग करते हैं। मानवशास्त्री भी आदिम समाजों के अध्ययन के लिए जिन यात्राओं का प्रयत्न करने हैं उनमें निर्माण में समाजशास्त्र की समझ का बहुत उपयोग करते हैं। फिर व्यावहारिक मानवशास्त्र और व्यावहारिक समाजशास्त्र दाना की विधिमाँ और लक्ष्य प्रायः एक ही हैं।

मानवशास्त्र में आधुनिक समाजों का तुलनात्मक अध्ययन होता है। इस अध्ययन में कई बार समाजशास्त्री आदिम समाजों से उदाहरण लेते हैं क्योंकि आधुनिक समाजों का जन्म समाजों के व्यवहारों समस्याओं और आशाओं को पूरक समाजों के साथ साक्षात्करण के बीच के अंतर पर ही सम्भवा जा सकता है। मानव

¹ Social Anthropology is the study of the development and various types of social life — Majumdar & Majumdar, *An Introduction to Social Anthropology*, Asia Publishing House Bombay (1956) p. 4

शास्त्री जनजातीय समाजा का तुलनात्मक अध्ययन करके उनके जीवन, रीति रिवाज, सम्प्रादाय, कला, धर्म, भाषा तथा संस्कृति का ज्ञान प्रस्तुत करता है। समाजशास्त्र आधुनिक समाजा की रीति रिवाजा, संस्थाया संस्कृति धर्म कला तथा सामूहिक व्यवहार का अध्ययन कर उनके वायम रसन वाल सामाजिक मूल्या की आरना का पता लगाकर इन समाजा की समस्याया को सुलभाने के लिए प्रयत्न करता है। आधुनिक भारत म सामाजिक पुनर्निमाण क लिए जा योजनाएँ बनाई गई हैं उनम दाना आश्रम तथा आधुनिक समाजा स आवागमन तथ्य आर सूचनाएँ प्राप्त करन क लिए मानवशास्त्र और समाजशास्त्र का सहयोग लिया गया है। वास्तव म, दाना विज्ञान मनुष्य और उसके समाज का ही अध्ययन करन है निफ उनसे दृष्टिकरण म अन्तर है। क्रोबर (Krober) का मत है कि सिद्धान्तत इन दाना शास्त्रा का पृथक् रचना कठिन ह। हाबल (Hoebel) विस्तृत अर्थों म दाना को समान और एक मानता है। सामाजिक मानवशास्त्र तो समाजशास्त्र क अत्यधिक निवट है। वतमान समय म ग्रामीण समुदाया तथा कुछ अर्थ सामाजिक घटनाया का अध्ययन दाना विज्ञान से होता है।

समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र

समाज के राजनितिक पहलू—किसम राज्य की आवश्यकता, राज्य क घटक राज्य तथा कानून, मन्त्रिदान राज्य द्वारा समाज पर नियन्त्रण करन के साधना का प्रयाग आन्तरिक शांति और सुरता गतराष्ट्रीय सम्बन्ध—शांति विषय शामिल हान हैं—का अध्ययन राजनीतिशास्त्र (Political Science) करता है। राज्य की आवश्यकता सामाजिक विकास का निमी निश्चित ध्येयम्या पर क्या हुइ इमका ज्ञान प्राप्त करन के लिए राजनीतिशास्त्र का समाजशास्त्र की महायता लनी पडती है। किस समाज म किस प्रकार का राज्य है? इसक कीन से कारण है? इन दाना प्राना का उत्तर मातूम करन म समाजशास्त्र द्वारा प्रस्तुत ज्ञान का उपयोग होता ह। राज्य समाज पर नियन्त्रण करन के लिए कानून बनाता है। इन कानूना का उद्देश्य प्रचलित सामाजिक मूल्या और प्रथाया तथा परम्पराया के आचार पर निश्चित हाना है। चूँकि सामाजिक नियन्त्रण की सबसे महत्त्वपूर्ण एजेंसा आज राज्य है इमलिए नियन्त्रण का आधार तय करन म राज्य का प्रचलित सामाजिक मूल्या (ग्रहाया) पर विचार करना जरूरी हा जाता है। इन सामाजिक मूल्या की प्रकृति और सापथिक महत्ता निधारण करना समाजशास्त्र का काम है। राजनितिक दल अथवा नाति का निर्धारण समाजशास्त्र के ज्ञान क आधार पर करते हैं। आधुनिक युग म सामाजिक समस्याया का समाधान तथा समाज का नियाजित परिवर्तन राज्य के वायव्य म आना है। क्या राज्य क लिए अपन इम काम का करन म समाजशास्त्रीय तथ्य तथा परिणामा की उपक्षा करना सम्भव है? हिंदू काष्ठ जित बनान म भारतीय राज नीतिचो न बटून अथिक समाजशास्त्रीय ज्ञान का उपयोग किया है। राज्य की

शास्त्र की सामाजिक मनोविज्ञान के सिद्धांतों को केवल अनुमान के रूप में लेना प्रायः और उनसे जोच सामाजिक व्यवहारों की कसौटी पर करनी चाहिए। यदि य अनुमान ठीक निकलते हैं तो इनकी सहायता से सामाजिक व्यवहार समझा जा सकते हैं और यदि ये ठीक नहीं निकलते तो समाजशास्त्र सामाजिक मनोविज्ञान के लिए नई सामग्री जुटाता है।

समाजशास्त्र और जीवशास्त्र

जीवशास्त्र (Biology) में हर प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति विकास और परिवर्तन का अध्ययन होता है। जीवशास्त्र को दो विशेष शाखाएँ हैं—(१) वनस्पति शास्त्र और (२) जंतुशास्त्र। जीवशास्त्र में मनुष्य की उत्पत्ति और विकास तथा उसके शारीरिक और मानसिक रचना में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन होता है। यही मानव प्राणी और पशुओं के भेद का विस्तृत विवेचन होता है। जीवशास्त्र का विकासवादी सिद्धांत प्रायः सभी सामाजिक विज्ञानों में सम्मानित स्थान पा रहा है। इसी प्रकार जीवशास्त्र के अन्तर्गत दो सिद्धांतों 'सर्वोत्तम का अतिजीवन (Survival of the Fittest)' और 'प्राकृतिक चयन का नियम (Law of Natural Selection)' का भी सामाजिक विज्ञानों के दृष्टिकोण पर भारी प्रभाव पड़ा है। वंशानुक्रमण (Heredity) तो जीवशास्त्र का ही मुख्य विषय है। इसी प्रकार समाज में उपयोजन (adaptation) के सिद्धांत को जो जीवशास्त्र का ही है अपनाकर सामाजिक उपयोजन का समझाने का प्रयत्न किया गया है। इससे स्पष्ट हो गया होगा कि समाजशास्त्र में मनुष्य की प्रकृति (nature) उत्पत्ति, विकास और परिवर्तन का अध्ययन करने में जीवशास्त्र का ज्ञान और नियमों का अत्यन्त उपयोग किया है। जब समाजशास्त्री मनुष्य के जीवन और समाज पर वंशानुक्रमण तथा पर्यावरण के सामाजिक महत्त्व को ध्यान में रखता है तो जीवशास्त्र और भूगोल दोनों की ही सहायता लेता है। समाज को यद्यथा एक साव्यवा (organic) व्यवस्था कहा जाता है। इसका सही अर्थ लें तो हम स्पष्ट पाते हैं कि समाज एक सम्पूर्ण व्यवस्था है। इसके विभिन्न अंग-प्रयोग परस्पर अन्तर्सम्बन्धित और अन्तर्निहित हैं। अतः प्रजननशास्त्र (Genetics) जीवशास्त्र के ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग विज्ञान बानी जाता है। समाजशास्त्री इस ज्ञान शक्ति की सहायता से मानव प्रजाति (Human Race) को सुधारने की सम्भावना की ध्यान-दीन करता है।

समाजशास्त्र और नीतिशास्त्र

नीतिशास्त्र (Ethics) अर्थशास्त्र का निष्कर्ष करने पर ध्यान देने की आवश्यकता है। अर्थशास्त्र की अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों के अन्तर्गत सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर है और ये परिस्थितियाँ देश (समाज) और काल के साथ बदलती रहती हैं। जिन अर्थशास्त्रों को सामाजिक शास्त्र समझना है उसी की सहायता है। प्राचीन भारत में सामाजिक शास्त्रों में अत्यन्त ही महत्त्व दिया जाता है। इसी तरह जो अर्थशास्त्र

भारत में निरूपित समझा जाता है वही इंग्लैंड या अमरीका में आदेश माना जा सकता है। आदेश एक नहीं है और न उम ईश्वर या अर्थ अति प्राकृत (supernatural) शक्तियों न बनाया है। प्रत्येक समाज का अपना अपना आदेश होता है। नित्यता की धारणा सामाजिक संगठन और उद्देश्य पर आश्रित होती है। मनुष्य अच्छे आचरण मूलक इसलिए करता है कि इन आचरणों का समाज अच्छा मानता है। इन आचरणों में सम्बन्धित नित्य विचार उसकी सम्पाद्य में निहित रहते हैं जिनका प्रभाव मनुष्य पर तब से ही पड़ना लगता है। नित्यता एक सामाजिक धारणा है। वह सामूहिक अनुभव द्वारा निर्धारित होती है। अच्छे बुरे के विचार सामाजिक हैं। एक व्यक्ति का आचरण दूसरे की तुलना में अच्छा है। सदाचरणों में सामाजिक धारणा है और कर्तव्य भी। हम कर्तव्य की उपेक्षा इसलिए नहीं करतें क्योंकि वह अनौन का आदेश है और वर्तमान या भविष्य की पीढ़ियों के लिये हितकर है।

जहाँ नीतिशास्त्र महत्त्व देता है कि अनुसृत व्यवहार अच्छा या बुरा है वहाँ समाजशास्त्र इन व्यवहारों (आचरणों) का अध्ययन करता है और यह बताता है कि किन सामाजिक परिस्थितियों (social circumstance) के कारण ऐसा आचरण हुआ है या होता है। समाज में तरह-तरह के रीति-रिवाज मायताएँ परम्पराएँ और मूल्य होते हैं। समाजशास्त्री इनके अध्ययन से पता लगाता है कि उनका सद् अर्थ या उचित अनुचित के विषय में नीतिशास्त्र का विचार कहीं तक युक्तिमग्न है। समाज की प्रगति (progress) का मूल्यांकन नीतिशास्त्र करता है और सामाजिक प्रगति के लिये किन सामाजिक कार्यों की आवश्यकता होगी इसका निरूपण समाजशास्त्र और नीतिशास्त्र दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध है।

समाजशास्त्र और इतिहास

इतिहास अनौन की कहानी है। किन्तु प्राचीन इतिहासकार केवल अद्वितीय (unique) घटनाओं का अध्ययन करते थे। वे अपने इतिहास में स्वयं और तारीखों में स्वयं के नामों से और राजाओं तथा सेनापतियों के कारनामों से भर देते थे। आधुनिक इतिहासकार तारीखों नाम स्वयं या अनायास घटनाओं पर अधिक ध्यान नहीं देते। वे समाज की धारा (current) का निरूपण करते हैं और अद्वितीय घटनाओं का विश्लेषण (analysis) और निरूपण (interpretation) केवल इसी उद्देश्य में करते हैं जिससे सामाजिक जीवन की धारा को समझने में सहायता मिले। आधुनिक इतिहासकार समाज को समझने में—उसके जनमात्राओं के व्यवहार, संस्कृति की विशेषताएँ कला-कौशल, साहित्य तथा दर्शन आदि—घटनाएँ—अध्ययन करते हैं जिससे आधुनिक समाज के व्यवहार का समझने में सहायता मिलती है। इस दृष्टि से समाजशास्त्री को ऐतिहासिक सामग्री से काफी सहायता मिलती है। पॉल बार्थ (Paul Barth) के अनुसार संस्कृति और सम्पाद्यों का इतिहास समाजशास्त्र को समझने और उसको सामग्री जुटाने में सहायक होता है। आरनाल्ड टॉपनबी

(Arnold Toynbee) की पुस्तक 'ए स्टडी आफ हिस्ट्री'¹ समाजशास्त्र को समझन में बड़ी सहायक सिद्ध हो रही है। अब इतिहास के अध्ययन में भी समाजशास्त्र की दृष्टि काम कर रही है। इतिहासकार समाजशास्त्र द्वारा दिये गये सामाजिक संगठन के सिद्धान्तों पर अपनी सामग्री सजाता है और उन सिद्धांतों के आधार पर ऐतिहासिक काल का विवेचन करता है। दोनों शास्त्रों के दृष्टिकोण भिन्न भिन्न हैं। समाज का इतिहास समाजशास्त्र के बहुत निकट होत हुये भी समाजशास्त्र नहीं है। दोनों शास्त्रों के सम्बन्ध क्षेत्र अलग अलग हैं।

इतिहास का दर्शन (Philosophy of History) सत्तार की समस्त घटनाओं और विकासक्रम को किसी एक सिद्धांत के द्वारा समझना चाहता है। समाजशास्त्र भी सामाजिक संगठन और विकास को किसी एक सिद्धांत के द्वारा समझन का प्रयत्न करता है। इसलिये इतिहास के दर्शन और समाजशास्त्र के दृष्टिकोणों में समझना है। कुछ लोगोंने अपनी इतिहास के दर्शन की रचनाओं को समाजशास्त्र कहा है और कहा भी जाता है कि समाजशास्त्र का जन्म इतिहास के दर्शन से प्रतिक्रिया (reaction) के रूप में हुआ है किन्तु समाजशास्त्र इतिहास के दर्शन से भिन्न है।²

समाजशास्त्र और समाज दर्शन

समाजदर्शन (Social Philosophy) दो भागों में विभक्त है आलोचनात्मक या तार्किक और रचनात्मक या सम्बन्धमय। पहले भाग में सामाजिक विज्ञानों का तर्क (logic) और उनमें प्रयुक्त विधियाँ और विद्वानों की प्रामाणिकता का अध्ययन किया जाता है। इसकी समस्याओं का दो उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं। (१) क्या कानून एक आवश्यक सम्बन्ध की दृष्टि से मानव प्रयत्नों के क्षेत्र में बना सकता है अथवा इस प्रकार की नियमितताओं और मानव इच्छा में क्या सम्बन्ध है? (२) क्या व्यक्तित्व तत्त्व का समावेश किसी गम्भीर सामाजिक साधारणोत्पत्ति के नियम मान्यता है? समाजदर्शन का रचनात्मक भाग सामाजिक आदर्शों की प्रामाणिकता या श्रेष्ठता पर विचार करता है। इस दृष्टिकोण से यह नीतिशास्त्र के परिणामों का सामाजिक संगठन और विकास की समस्याओं पर प्रयत्न है। उदाहरणार्थ प्रगति की समस्या में दोनों समाजशास्त्र और समाजदर्शन रचि रहते हैं।

मानव समाज के तरफ और उनके अन्त सम्बन्धों का अध्ययन सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में आता है और मानवीय मूल्यों का दार्शनिक शास्त्रों के क्षेत्र में। सामाजिक विज्ञानों की प्रयत्न दृष्टि वैज्ञानिक निरन्तरिता (scientific detachment) बनाये रखने की है विनाशकर एक भावना में जिनमें भावों के उद्वेग (passions)

1 Arnold Toynbee *A Study of History* Vols I-III

2 Ginsberg *Sociology* p 25

घोर पूर्वाग्रह (prejudices) को स्यान् है। व यह भी मानकर चलते हैं, यद्यपि इसकी सत्यता में सन्देह है कि मूल्य निर्णय (Value judgments) विषयगत (subjective) है और इसलिये उनका साधारण वैज्ञानिक विधि से परीक्षण नहीं किया जा सकता। परन्तु यह स्मरण रह कि ये मूल्य स्वयं एक प्रकार के तथ्य हैं अर्थात् वे मूल्यांकन की विधायें या क्रियायें हैं। क्या अन्तर्गत नीतिशास्त्र समाजशास्त्र का ही एक भाग नहीं हा जाता जिसमें उन टगा का अध्ययन होना है निम्न मनुष्य कुछ क्रियाओं को सामाजिक हित में स्वीकार करने हैं और कुछ का अस्वीकार या घृणा करते हैं ? इस दृष्टि से आचारशास्त्र उन समाजशास्त्रीय और मनावनानिक दशाओं का अध्ययन हो जाता है जिमें नैतिक विश्वास और अभ्यास विकसित हुए हैं। दूसरे सामाजिक तथ्या का अध्ययन करते समय हम मनुष्य के प्रयोजना, आशों और आकांक्षाओं (अभिलाषाओं) की उपमा नहीं कर सकते। गिन्सबर्ग ठीक ही कहता है कि उद्देश्य और अभिलाषाएँ (मानवा की) ही वह पदार्थ है जिम्ने सामाजिक घटनाओं की मृष्टि होती है।¹ सम्पूर्ण सभ्यता और समाज के अग्रा और उपागा को बनाय रखन और उनमें प्रगति करन का प्रयास मनुष्य उनक प्रयोजना अथवा ध्येया के विचार से करता रहता है। यदि समाज और सभ्यता का काद भाग या सस्या उनके आदर्शों और अभिलाषाओं के प्रतिबन्धन है तो वह गिनत हाना है।

मनुष्य की मान्यता अधिकांश में उसके पाम मूल्या के होन से है। इसलिये समाजशास्त्रा मूल्यों का विचार अवश्य करें। ये मूल्य मानव सम्बन्ध के मुख्य चालक (main springs) हैं। समाजशास्त्र एक विज्ञान है और उसका अध्ययन कम विषय-यन्त्रता एवं लगाव-रहितता से किया जा सकता है। किन्तु यह बात भी सत्य है कि—मानव गतिविधिया या सम्बन्ध में मानवीय मूल्या के महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। समाजशास्त्री का दा स्तरा पर कार्य करना पड जाता है। प्रथम वह मूल्या का तथ्य मानकर अध्ययन करता है, द्वितीय वह तथ्या का मूल्य मानकर उह समय का प्रयास करता है। यह बात तक सम्मन है और उसे मान लेने पर क्या है” और ‘क्या हाना चाहिए’ के बीच की दूरी भी समाप्त हो जाती है। अतः इसी दृष्टिकोण का अपनान पर हम अपने प्रिय ससार का परिवर्तन और सुधार करन में सफल हो सकत हैं।² इस विश्लेषण से समाजशास्त्र और समाज-शास्त्र में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं रह जाता है। परन्तु इन दोनों नाम शाखाओं के वास्तविक सम्बन्ध का सदैव सामन रखना चाहिये। यद्यपि इन दोनों का अध्ययन साय-साय हो सकता है परन्तु उनमें व्यग्रता या गड़बड़ी (confusion) न आ जाय।

1 Are not ends and strivings the very stuff out of which social happenings are made' —Ginsberg *Sociology* p 27

2 Rumney and Maier *The Science of Society* Gerald Duckworth & Co Ltd London (1953) (Foreword)

(Arnold Toynbee) की पुस्तक 'ए स्टडी ऑव हिस्ट्री'¹ समाजशास्त्र को समझने में बड़ी सहायक सिद्ध हो रही है। अब इतिहास के अध्ययन में भी समाजशास्त्र की दृष्टि काम कर रही है। इतिहासकार समाजशास्त्र द्वारा दिये गये सामाजिक संरचना के सिद्धांतों पर अपनी सामग्री सजाता है और उन सिद्धांतों के आधार पर ऐतिहासिक काल की विवेचना करता है। दोनों शास्त्रों के दृष्टिकोण भिन्न भिन्न हैं। समाज का इतिहास समाजशास्त्र के बहुत निकट होत हुआ भी समाजशास्त्र नहीं है। दोनों शास्त्रों के अध्ययन क्षेत्र अलग अलग हैं।

इतिहास का दर्शन (Philosophy of History) संसार की समस्त घटनाओं और विकासक्रम का किसी खास सिद्धांत के द्वारा समझना चाहता है। समाजशास्त्र भी सामाजिक संरचना और विकास को किसी खास सिद्धान्त के द्वारा समझने का प्रयत्न करता है। इसलिये इतिहास के दर्शन और समाजशास्त्र के दृष्टिकोणों में समता है। कुछ लेखकों ने अपनी इतिहास के दर्शन की रचनाओं का समाजशास्त्र कहा है और कुछ भी पाता है कि समाजशास्त्र का जन्म इतिहास के दर्शन से प्रतिक्रिया (reaction) के रूप में हुआ है किन्तु समाजशास्त्र इतिहास के दर्शन में भिन्न है।²

समाजशास्त्र और समाज दर्शन

समाज-दर्शन (Social Philosophy) दो भागों में विभक्त है आलोचनात्मक या लॉजिक और रचनात्मक या संभववादी। पहले भाग में सामाजिक विज्ञानों का तर्क (logic) और उनमें प्रयुक्त विधियाँ और सिद्धांतों की प्रामाणिकता का अध्ययन किया जाता है। इसकी समस्याएँ दो उदाहरण यहाँ लिये जा रहे हैं।
(१) क्या वास्तव एक आवश्यक सम्बन्ध का दृष्टि से मानव प्रयत्नों के क्षेत्र में बराबर होता है अथवा इस प्रकार का नियमिततायाँ और मानव दृष्टि में क्या सम्बन्ध है ?
(२) क्या व्यक्तित्व लक्ष्य या समाजों के लिए गम्भीर सामाजिक माघातशीलकरण के लिए उत्तरदायी है ? समाज-दर्शन का रचनात्मक भाग सामाजिक आदर्शों की प्रामाणिकता या औचित्य पर विचार करता है। इस दृष्टिकोण से यह नीतिशास्त्र के परिणामों का सामाजिक संरचना और विकास की समस्याओं पर प्रयोग है। उदाहरणार्थ प्रगति की समस्या में दोनों समाजशास्त्र और समाज दर्शन रचि लगे हैं।

मानव समाज के तथ्यों और उनके अंतर्गत तन्त्रों का अध्ययन सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में आता है और मानवीय मूल्यों का दार्शनिक शास्त्रों के क्षेत्र में। सामाजिक विज्ञानों को प्रत्यक्ष इच्छा बर्णन निमित्त (scientific detachment) बनाये रखने का है विशेषकर एक मानवता में जिनमें मानव के उद्भव (passions)

1. Arnold Toynbee *A Study of History* Vols I—VIII
2. Ginsberg *Sociology* p 25

घोर पूर्वाग्रह (prejudices) को स्थान है। वे यह भी मानकर चलते हैं यद्यपि इसकी सत्यता में सन्देह है कि मूल्य निर्णय (Value judgments) विषमगण (subjective) है और इसलिए उनका साधारण वैज्ञानिक विधि से परीक्षण नहीं किया जा सकता। परन्तु यह स्मरण रह कि ये मूल्य स्वयं एक प्रकार के तथ्य हैं अर्थात् वे मूल्यांकन की विधायक या क्रियायक हैं। क्या अन्तर्गत नैतिकशास्त्र समाजशास्त्र का ही एक भाग नहीं हो जाता जिसमें उन तथ्यों का अध्ययन होना है जिनमें मनुष्य कुछ क्रियाओं का सामाजिक हित में स्वीकार करते हैं और कुछ को अस्वीकार या धृष्ट करत हैं? इन दृष्टि से आचारशास्त्र उन समाजशास्त्रीय और मानववैज्ञानिक दशाओं का अध्ययन हो जाता है जिसमें नैतिक विश्वास और सम्प्राप्त विकसित हुए हैं। दूसरे सामाजिक तथ्यों का अध्ययन करते समय हम मनुष्य के प्रयत्न, आशाओं और आकांक्षाओं (अभिलाषाओं) की उद्देश्यता नहीं कर सकते। गिम्बेक ठीक ही कहता है कि 'उद्देश्य और अभिलाषाएँ (मानवों की) ही वह पदार्थ हैं जिससे सामाजिक घटनाओं की मूल्य निर्णय होती है।¹ सम्पूर्ण सम्पत्ति और समाज के अंग और उपांग का बनाये रखन और उनमें प्रगति करन का प्रयत्न मनुष्य उनके प्रयोजन अथवा ध्येय के विचार से करता रहता है। यदि समाज और संस्कृति का कोई भाग या सत्ता उनके आदर्शों और अभिलाषाओं के प्रतिकूल है तो वह खिल जाता है।

मनुष्य की मानवता अधिकांश में उसके पास मूल्यों के होन से है। इसलिए समाजशास्त्री मूल्यों का विचार अवश्य करें। ये मूल्य मानव सम्बन्धों के मुख्य चालक (main springs) हैं। समाजशास्त्र एक विज्ञान है और उसका अध्ययन कम विषय-युक्तता एवं लगाव-रहितता से किया जा सकता है। किन्तु यह बात भी सत्य है कि—मानव गतिविधियाँ या सम्बन्धों में मानवीय मूल्यों के महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। समाजशास्त्री का दाँव स्तर पर कार्य करना पड़ जाता है। प्रथम वह मूल्यों का तथ्य मानकर अध्ययन करता है द्वितीय वह तथ्यों का मूल्य मानकर उन्हें समझन का प्रयत्न करता है। यह बात तब सम्भव है और उस मान लेने पर क्या है और क्या होना चाहिए' के बीच की दूरी भी समाप्त हो जाती है। अतः इसी दृष्टिकोण का अपनाते पर हम अपने प्रिय समाज का परिवर्तन और सुधार करन में सफल हो सकते हैं।² इस विश्लेषण से समाजशास्त्र और समाज-दर्शन में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं रह जाता है। परन्तु इन दोनों शाखाओं के वास्तविक सम्बन्ध का सदैव सामने रखना चाहिये। यद्यपि इन दोनों का अध्ययन साथ-साथ हो सकता है परन्तु उनमें व्यग्रता या गड़बड़ी (confusion) न आ जाय।

1 Are not ends and strivings the very stuff out of which social happenings are made? —Ginsberg: *Sociology* p 27
2 Rumpsey and Mayer *The Science of Society* Gerald Duckworth & Co Ltd London (1953) (Foreword)

हम यह नही सोचना चाहिए कि घटनायें दसलिये होती हैं कि वे अच्छी हैं या वे बुरी हैं क्योंकि घटित होती हैं नही तो तथ्या का कथन पक्षपातपूर्ण हो जायगा और समाज मूल्यों का निर्णय भ्रष्ट हो जायेगा ।¹

हम समाजशास्त्र और समाज-ज्ञान के उपयुक्त सम्बन्ध का बनाये तभी रख सकते हैं जब इस सम्बन्ध में व्युत्पत्ति (Confusion) के सतरा का याद रखें । यदि हम आदर्श को यथाथ मानें तो उसे पतित (निवृष्ट) बना दोगे और यदि यथाथ में हम अपनी इच्छाया और पूर स्नेहा या पक्षपाता (predilection) को थोपेंगे । मूल्या तथा तथ्या का अध्ययन का पृथक् रखना चाहिये । हा, इस पडताल (Inquiry) के ज्ञाना प्रवारा का अतत समन्वय करके उह साथ साथ लाना चाहिये । यदि उह मन्व पृथक् रगा जाय या उनके भेद को न समझा जाय इन दोना स्थितिया में गडबडी पन हागी । मानव जीवन के सम्पूर्ण अध्ययन में सामाजिक विज्ञान और समाज-ज्ञान का समन्वय आवश्यक है न कि उन दोना का परस्पर विलयन (fusion) ।²

सामाजिक विज्ञानों का एकीकरण³

विभिन्न सामाजिक विज्ञान समाज के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करते हैं । यदि उन सब का उद्देश्य सामाजिक घटनाया (social phenomena) की पूर्ण व्याख्या करना है तो यह वर्तमान प्रचलित खण्ड-खण्ड विधिया से सम्भवतया नही प्राप्त हो सक्ता । ज्ञान के प्रयाजन के लिए सारे समाज और उसकी संस्कृति का एक ही क्षत्र माना जाना चाहिए । सामाजिक विज्ञान का चरम उद्देश्य यह है कि वे घटन एक सभी कारका और सम्बन्धों को अतय कर लें जिनका यदि साररूप में (synoptically) दला जाय तो वे इस क्षेत्र की पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत कर सके । विशिष्ट शास्त्रा का उपनि करना एक श्लाघ्य ध्यय है क्योंकि इसी से गूढ ज्ञान की अभिवृद्धि हो सकती है । परन्तु समाजशास्त्र और अन्य विशिष्ट विज्ञानों का अन्वा नाविक पृथक्त्व समाज का एक पूर ज्ञान शायद कभी भी विकसित नही कर सकगा । उहनि एक सम्पूर्ण के टुकडे करके आपस में बाँट लिए हैं परन्तु यदि इनके अध्ययन के परिणामों को एकत्र किया जाय तो वे उस सम्पूर्ण की पूर्ण जानकारी न दसकेगे । इस कटु सत्य के प्रति सभी समाज वैज्ञानिक पूर्ण तरह से जागृतक नही हैं । यह बड़ दुर्भाग्य की घन है ।

विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के एकीकरण (integration) में इटिग्रेटन करने दो कश्नाया बनाता है । प्रथम यह प्रचलित विचार कि समाजशास्त्र मचन हानर एक आधारभूत सामाजिक विज्ञान बनन का प्रयत्न कर । द्वितीय कुछ समाज

1 Hobbes as quoted by C. nsberg in his above book p. 36

2 A complete study of human life thus involves a synthesis but not a fusion of social science and social philosophy —C. nsberg *Ibid* p. 37

3 Gervitch & Moore *op cit* pp. 10-19

शास्त्रिया का यह विचार कि समाजशास्त्र और सामाजिक विज्ञान अपनी विषय-वस्तुधा की अध्ययन विधि में ग्रामून (radical) परिवर्तन करें जिसका उद्देश्य एक ऐसे केंद्र बिन्दु (focal point) की खोज करना हो जो सभी ज्ञान-शाखाओं में सामान्यतः पाया जाए और जो विशेषीकरण (specialization) के सभी लाभों को बनाए रखने में साथ ही एकीकरण की मांग का समर्थन दे। 'सामाजिक विज्ञान विचार' (Social Science Thought) का नवीन आन्दोलन इस दिशा में अग्रणी कदम है परन्तु इसकी सफलता अभी अधिकाधिक अनिश्चित है। इन कठिनाइयों का एक संभाव्य समाधान (possible solution), करना की अनुसार एक नई ज्ञानशाखा की सृष्टि करना ही हो सकता है। यह नई ज्ञानशाखा सामाजिक विज्ञानों के दर्शन (Philosophy of Social Sciences) की नाम से पुकारी जा सकती है। इसकी अध्ययन-वस्तु स्वयं विशिष्ट विज्ञान हो सकती है और इसका साथ ही इन विज्ञानों के अभ्यास और मान्यताओं (assumptions) का समीक्षात्मक विश्लेषण होगा और अन्ततः यह एक ऐसे सिद्धान्त (theory) का निर्माण करेगी जो समग्र समाज की समस्याओं का उत्तर दे सकेगी।

समाजशास्त्र की अध्ययन विधियाँ

समाजशास्त्र एक विज्ञान है। मूलतः विज्ञान शब्द का अर्थ ज्ञान प्राप्त करने की एक विधि या रीति (method) से है। यह विधि ज्ञान प्राप्त करने की अन्य सभी विधियों से भिन्न है क्योंकि इसमें प्रयोग सिद्ध जाँच (empirical tests) के प्रयोग पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। विज्ञान में अतट्टि और निगमनात्मक तर के प्रयोग की बहुत गुजादश है किन्तु इनका निरीक्षण उन जाँच-पड़नाओं से किया जाता है जिनमें दूसरी विधियों से निर्मित सिद्धांतों (theories) की परीक्षा व्यवस्थित अन्वेषण से होती रहती है।¹ अर्थ विज्ञान की भाँति समाजशास्त्र भी अपने विषय का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिक विधि (scientific method) का प्रयोग करना है। कोई विषय विज्ञान है अथवा नहीं यह इस बात पर निर्भर है कि उसमें वैज्ञानिक विधि का उपयोग होना है अथवा नहीं। अध्ययन की विधि या पद्धति ही किसी ज्ञानशाखा का विज्ञान या कला बना सकती है। समाजशास्त्र एक विज्ञान होने की घोषणा पहले की जा चुकी है। प्रस्तुत अध्याय में विज्ञान की भूतभूत विशेषताओं का उल्लेख करना आवश्यक है। उही वं सम्भवे समाजशास्त्र की अध्ययन विधियों का विवेचन करना उपयुक्त होगा।

विज्ञान की मूलभूत कल्पना

विज्ञान व्यवस्थित रूप से संगठित एक ज्ञान है। इसकी अध्ययन पद्धति का प्रयोग बड़े मायताओं पर निर्भर रहता है। प्राकृतिक अथवा जैविक विज्ञानों में होने वाले तथ्य अथवा अनुसंधान में निम्नलिखित तत्वा (या मायताओं) पर ध्यान दिया जाता है

(१) सतार की नियमितता—प्रत्येक वैज्ञानिक अनुसंधान यह मानकर चलता है कि हमारा सतार व्यवस्थित रूप में संगठित है। इसके सभी तथ्य प्राकृतिक जैविक अथवा सामाजिक, सांस्कृतिक नियमित रूप से परम्पर सम्बन्धित हैं। प्रकृति की

1 In essence the term science refers to a method of acquiring knowledge. It is a method which differs from all other methods of acquiring knowledge by its emphatic insistence upon rigorous empirical tests. In science there is ample room for the use of intuition and deductive logic but they are constantly checked by enquiries in which theories arrived at by these other methods are tested by systematic observations.

प्रत्येक घटनाक्रम के पीछे एक नियमितता दिखाई देती है। नीपश गर्मों के वायु वषा होती है। चंद्रमा रात्रि में ही उदय होता है और सूर्य का प्रकाश दिन में ही दिखता है। श्रुतुष्ठा में भी एक स्थायी क्रम है। गर्मों के बाद वर्षा फिर सर्त और पुन गर्मों। इसी प्रकार पौषों, जीव जन्तुष्ठा तथा समस्त प्राकृतिक घटनाष्ठा की उत्पत्ति विज्ञान तथा नाश का एक निश्चित फल है। ब्रह्माण्ड में वही नी कोई अनियमितता नहीं दिखाई देती। प्रकृति के सभी तत्व और घटनाष्ठा का जो पारस्परिक सम्बन्ध है उसमें काय-कारण (cause and effect) का महत्वपूर्ण नियम काम करता है। अतः विज्ञान की यह सूत्रभूत भावना है कि उन्नी विषय अथवा घटना का वैज्ञानिक पद्धति में अध्ययन ही संभव है जिसके तब नियमितता के सिद्धान्त से काय करत हा।

(२) घटनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का प्राकृतिक होना—विज्ञान का दूसरी महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि यह घटनाष्ठा अथवा पदार्थों का विश्लेषण उनके अन्दर के तत्त्वा के आधार पर ही करता है। यदि किसी पशु या पौधा विषय की स्वाभाविक वृद्धि में बाधा पड़े ता वैज्ञानिक उसके कारण की खोज उस पशु अथवा पौधा के भीतर ही तलाश करेगा। वह इस बात से बन्द सहमत नहीं हा सकता कि पशु या पौधा की प्रतिबाधित वृद्धि का कारण किसी बाह्य अथवा आनिमौनिक शक्ति का बोध है। वैज्ञानिक का दृष्टिकोण घमनाना अथवा जादूगर के दृष्टिकोण से सबया निम्न है। वह ब्रह्माण्ड की किसी घटना का विश्लेषण एन किसी सिद्धान्त अथवा नियम से नहीं करता चाहता जिसे किसी निवचनीय शक्ति (जैसे भगवान या नियति) की कल्पना की गई हो।

(३) घटनाओं का अवलोकन और माप हो सकता है—विज्ञान की तीसरी मान्यता यह है कि प्रत्येक पदार्थ अथवा घटना का अवलोकन (observation) हा सकता है। जो वस्तु अवलोकन से परे है उन्के अस्तित्व में वैज्ञानिक को सन्देह रहता है और जो घटना अवलोकनीय है उन्के नापकर सख्यात्मक अथवा परिमाणात्मक माप में व्यक्त किया जा सकता है। अवलोकन तथा परिमाण (measurement) की सहायता से विज्ञान तथ्या का संग्रह करता है। अवलोकन से प्रारम्भ हाकर पुन अत में अवलोकन पर लौट आता है बयाकि तभी तथ्या की सत्यता की परीक्षा होती है।¹

(४) घटनाओं का विषयक और निरलिप्त अध्ययन सम्भव—विज्ञान की चौथी महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि वैज्ञानिक अध्ययनान वस्तु या विषय से विषयकता (objectivity) तथा निरलिप्ति या अलगवाव (detachment) बनाय रख सकता है। वैज्ञानिक प्रयोगशाळा में काम करत समय तटस्थ (neutral) होता है। उन्में न किसी विषय के प्रति कोई पूर्वाग्रह (prejudice) होता है और न उसके प्रति पक्षपात (bias)। वैज्ञानिक सभी वस्तुष्ठा अथवा घटनाष्ठा के प्रति सवेगात्मक तन्म्यना

1 Science begins with observation and ultimately returns to observation for verification of facts

(emotional neutrality) का दृढ़ दृष्टिकोण बनाय रखने में समर्थ है। यही कारण है कि विज्ञान को नैतिक-तटस्थ (ethically neutral) ज्ञानशाखा कहा जाता है। यदि वैज्ञानिक अध्ययनगत विषय के गुण दोष का विचार कर उससे किसी भी अर्थ में प्रभावित होकर अपनी बुद्धि की स्वतन्त्रता अथवा निष्पक्षता की स्वायत्तता को बर्बाद तो कर उस विषय के बारे में सही ज्ञान देने में निश्चय ही असफल हो जायगा। अतः अलग-अलग और विषय-रता (detachment and objectivity) विज्ञान की अनिवार्य मायना है।

(५) नियंत्रित परीक्षणों की सम्भावना—वैज्ञानिक अध्ययन की एक आवश्यक मायना यह भी है कि अध्ययनगत विषय अथवा घटनाओं का अवलोकन परीक्षण-इच्छित दशाओं में हो सके। अतएव वैज्ञानिक के नियम प्रयोगशाला एक अनिवार्य आवश्यकता है। वह अपनी प्रयोगशाला में वस्तु के किसी भी पहलू का निरीक्षण विभिन्न परिवर्तित दशाओं में कर सकता है। उस स्थिति का नियंत्रित परीक्षण की स्थिति कहते हैं। उदाहरणार्थ चूटे का कर्कर रोग से पीड़ित कर विभिन्न जलवायुओं अथवा बुद्धिमत् वातावरणों में उससे उपचार का प्रयास किया जाता है तो नियंत्रित परीक्षणों की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार मिगरट के धूप में विभिन्न अणुओं में चूना या खरब मिगरट के खरब की जाँच करना नियंत्रित परीक्षणों का उदाहरण है।

(६) नियमों की सावभौमिकता—विज्ञान के नियम सावभौमिक (universal) होते हैं। गर्मों का अनुभव सभी में एक-सा होता है। वर्ष भवत एक जसी होता है। वायु का तत्त्वा में दशराल की भिन्नता से बाद अन्तर नहीं आता। पृथ्वी में गुण-वायुणों की गति सभी स्थानों पर दृष्टिगोचर होती है। यदि मनुष्य चिन्ता के कारण शोषित हो जाता है तो यह बात सभी देशों में धिताग्रस्त यत्तियाँ के लिए माल्य है। प्रकृति के विज्ञानों में रचना अथवा परिवर्तन के सम्बन्ध में देना-कान अथवा परिस्थिति के कारणों का विचार अन्तर नहीं आता। तूफान आने के पूर्व ही भयानक शक्ति छा जाता है। यह बात अमरीका पाकिस्तान भारत और अन्य सब समानता गयी है।

(७) कठिन कार्य ध्य और सवेह करने की मनोवृत्ति—विज्ञान की यह मायना है कि मध्य की रोज में अत्यन्त परिश्रम (hard work) और ध्य (patience) की निरन्तर आवश्यकता है। मय तक पहुँचने का कोई जल्दी का रास्ता (short cut) नहीं है और न चरम साधन मित्त तक वैज्ञानिक का ध्यहीन अथवा निराश हो जाना चाहिए। प्रत्येक घटना का विश्लेषण वाय-कारण सम्बन्धों के सम्बन्ध में सम्भव है। जिया नियम का जानकारा विज्ञान की पद्धति के अन्तर्गत है। भौतिक मयों के दृढ़ सम्बन्धों का समझना के नियमों के किसी भी कठिन कार्य तथा ध्य रखने की आवश्यकता समान नहीं है। ता उम विज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिकों को पतापण नहीं करना

चाहिये। वास्तव में, जब तक किसी घटना का विश्लेषण उसकी यथाय सत्यता तक नहीं पहुँचा देता वनानिक उस घटना का एक श्रवण बालक की भाँति सन्तुष्ट रूप दृष्टि सत्यता रहता है। निरन्तर सन्तुष्ट विज्ञान की सबसे बड़ी कमौठी है।¹ यह सत्य है कि निरन्तर सन्तुष्ट के बाद जा भी तथ्य बचेगा वह सर्वश्रेष्ठ साध्य स पुष्ट होगा।

उपरोक्त सभी मायताओं को भौतिक विज्ञान में अपना दिया गया है। जन्म अवतावन व परीक्षण होता है। व प्रयोगशाला पद्धति का प्रयोग अनिवाध्य रूप स करत है। वस्तुओं और घटनाओं के विश्लेषण में काय-कारण सम्बन्ध अथवा नियमितता की खोज की जाती है। भौतिक विज्ञान क क्षत्र में कठिन काय और धय तथा निरन्तर सन्तुष्ट की प्रवृत्तियों का अनुभव प्रयोग हुआ है। उसी के परिणाम स्वरूप भौतिक जगत् के अध्ययन और नियंत्रण में भौतिक शास्त्रियों ने अत्यन्त महत्त्व प्राप्त की है।

वनानिक विधि क्या है ?

काल प्रियमन के मतानुसार मत्स्य तक पहुँचने के लिए कोई सशुद्ध पथ नहीं है। ब्रह्माण्ड के समस्त ज्ञान के लिए हम वनानिक विधि व द्वार से ही गुजरना पड़ेगा।² वनानिक पद्धति क्या है ? यह जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि विज्ञान किस वस्तु है। साधारणतया भौतिक विज्ञान भौतिक शास्त्र रसायन शास्त्र जीव शास्त्र तथा प्राणि शास्त्र या भूगर्भशास्त्र आदि का ही हम विज्ञान की मना देते हैं। परन्तु विज्ञान का अर्थ केवल भौतिक विज्ञान नहीं है। मूलतः विज्ञान का अर्थ एक सम्बन्ध या व्यवस्थित ज्ञान स है। ज्ञान में सम्बन्धता तभी सम्भव है जब उसका किन्हीं क्रमबद्ध या व्यवस्थित पद्धति स अर्जित किया जाय। अतः विज्ञान का भी विषय हो सकता है यदि उसका अध्ययन वनानिक पद्धति स हो। लुण्डबर्ग के विचार स अध्ययनगत समस्या का यथापूर्व व्यवस्थित अवलाकन सथापन वर्गीकरण और उसका निमाचन (काय-कारण व्याख्या) ही वनानिक पद्धति है।³ इस विषय में स्टुअर्ट चर्च की उत्ति का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। उसके मतानुसार विज्ञान

1 Constant skepticism is the basic desideratum of science

Or

What is called scientific method differs radically from other methods by encouraging and developing the utmost possible doubt so that what is left after such doubt is always supported by the best available evidence
—M R Cohen and E Nagel

2 There is no short-cut to truth no way to gain knowledge of the Universe except through the gateway of scientific method

—Karl Pear on *A Grammar of Logic and Science*

3 Scientific method refers to a judicious and systematic observation of the Phenomena under study their verification classification and interpretation
—Lundberg *Social Research* p 5

Broadly speaking Scientific method consists of systematic observation classification and interpretation of data
—Lundberg

पद्धति का सहगामी है विषय का नहो।¹ अर्थात् किसी भी विषय के अन्तर्गत आने वाली घटनाओं की प्रकृति में यन्त्रित्व तत्त्व निहित है जिनकी भाव्यताय उपरोक्त है तो उसका अध्ययन वनानिक पद्धति से ही करना है और वह विषय विज्ञान बनने का अधिनारी ही सकता है।

बर्नाडिन विज्ञान की परिभाषा निम्नान्वित छ प्रमुख प्रतिनियमाओं के आधार पर की है जो उसमें घटित होती हैं —

(१) परीक्षण (testing), (२) सत्यापन (verification) (३) परिभाषा (definition) (४) वर्गीकरण (classification) (५) संगठन और अभिमुखन (organisation and orientation), (६) पूर्व स्थान और व्यवहार (prediction and application)। काल पियसन के विचार से वनानिक पद्धति की निम्नान्वित विशेषताएँ हैं —²

(अ) तथ्या का सावधानीपूर्वक एवं सही वर्गीकरण और उनके सह-सम्बन्धों एवं क्रमों का अवलोकन,

(आ) रचनात्मक कल्पना की सहायता से वनानिक नियमों की खोज

(इ) आत्मालोचना तथा सामान्य मस्तिष्क के लिए समान प्रामाणिकता।

इस से स्पष्ट है कि वनानिक पद्धति की पाँच प्रमुख विशेषताएँ हैं—

(प्र) सत्यापनशीलता (verifiability)

(भा) वपयिक्तता (objectivity),

(द) निश्चयात्मकता (definiteness)

(२) सामान्यता (generality) और

(३) पूर्व बयन करने की क्षमता (ability for prediction)

वनानिक पद्धति अध्ययन की व्यवस्थित कार्यप्रणाली (procedure) है जिसमें निम्नान्वित अवस्थाओं अथवा चरणों (stages or steps) से होकर गुजरना पड़ता है—³

(प्र) परीक्षण (testing or experimentation)

(प्र) अवलोकन (observation)

1 Science goes with the method and not with the subject matter

—Stuart Chase

2 I. L. Bernard *The Field and Methods of Sociology* p. 34

3 (a) Careful and accurate classification of facts and observation of their correlation and sequences

(b) the discovery of scientific laws by aid of the creative imagination

(c) self-criticism and the final touchstones of equal validity for all normally constituted minds

—Karl Pearson *A Grammar of Logic and Science* (1911)

4 I. V. Young *Scientific Social Surveys and Research*

समाजशास्त्र की अध्ययन विधियाँ

(इ) तथ्यों का संग्रह (collection of data)

(ई) तथ्यों का वर्गीकरण और परस्पर सम्बन्ध निर्धारण (classification and correlation of facts)

(उ) अर्थ निर्धारण (निवचन या व्याख्या) एवं साधारणीकरण (interpretation and generalization)

(ऊ) मूल्यापन एवं नियमों की स्थापना (verification and statement of laws)

प्रमुख वैज्ञानिकों की राय में वैज्ञानिक पद्धति के निम्नलिखित चरण हैं—

(१) उपकल्पना का निर्माण (Formulation of hypothesis)

(२) मासपरीक्षा का अवलोकन व सङ्कलन (Observation and collection of data)

(३) मासपरीक्षा का व्यवस्थापन व वर्गीकरण (Processing and classification of data)

(४) निवचन का साधारणीकरण (Interpretation and Generalization)

(५) नियमों का स्थापन (Verification of laws)

इस प्रणालियों के उपयोग से किसी भी विषय का अध्ययन वैज्ञानिक हो सकता है और उनसे जो ज्ञान सङ्कलित होगा वह विज्ञान की आधारभूत विशेषताओं के अनुरूप होगा। अतएव यह प्रश्न करना कि क्या समाजशास्त्र में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग हो सकता है निरर्थक है। उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाजशास्त्र या किसी भी सामाजिक विषय को आवश्यक पद्धति वैज्ञानिक हो सकती है। तो आगे देखें अभी तक समाजशास्त्रीय समस्याओं का अध्ययन किन रीतियों से हो रहा है और उनमें से कौन सी रीतियाँ वैज्ञानिक अथवा अ-वैज्ञानिक थीं। अतएव हम यह भी सचेत करना आवश्यक समझते हैं कि वर्तमान समय में प्रयुक्त समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धतियाँ क्या तर्क वैज्ञानिक विधि की कसौटियाँ पर परी उत्तरती हैं और यदि उनमें किसी प्रकार का अभाव है तो उसे दूर करने की शिक्षा में क्या प्रयास हो रहा है ?

समाजशास्त्र में प्रयुक्त अध्ययन रीतियाँ

(१) विपरीत निगमन विधि

बहुत काल के सङ्कलन में तथ्यों की दो प्रसिद्ध विधियाँ, आगमन विधि (inductive method) और निगमन विधि (deductive method), प्रयुक्त होती आई हैं। इन दोनों विधियों में भेद यह है कि आगमन विधि विशिष्ट घटना (particular instances) से नियम (laws) निकालती है और निगमन विधि नियमों (laws) में प्रारम्भ करके उन्हें विशिष्ट घटना पर घटाकर

देखनी है। अर्थात्, प्रथम विधि में कई विशिष्ट घटनाएँ लेकर यह देखा जाता है कि क्या व्यावहारिक जगत में होने वाली ऐसी सभी घटनाओं की व्याख्या करने के लिए कोई सामान्य नियम बनाया जा सकता है। उदाहरणतः राम मर गया श्याम मर गया, मोहन मर गया, जगदीश मर गया। इन व्यक्तियों की मृत्युएँ विशिष्ट घटनाएँ हैं। ये सभी व्यक्ति मनुष्य थे। यदि उस ही अनक व्यक्ति मरते पाये जायें तो मनुष्य के बारे में एक सामान्यीकरण किया जा सकता है जिस मनुष्य मरणशील है।

निगमन विधि उपरोक्त विधि के विपरीत है। इसमें किसी साधारण नियम का मत्यापन विशिष्ट घटनाओं पर घटाकर किया जाता है। उदाहरणतः मनुष्य मरणशील है। यह एक साधारण नियम है। यदि विशिष्ट मनुष्य भी मरणशील पाये जायें तो उपरोक्त साधारणकरण सही सिद्ध हो जायगा और वह ज्ञान का एक भाग बन जायगा। अब दृष्टि अर्थात् एक मनुष्य है अतः वह मरणशील है। साहन भी मनुष्य है अतः वह भी मर जायगा। निगमन विधि में साधारण घटनाओं से विशिष्ट घटनाओं की धारें जात हैं।

नियम (laws) का प्रकार के होते हैं। जो नियम अवलोकन (observation) तथा परीक्षण (experimentation) से पुष्ट होकर बनते हैं उन्हें नियम कहा जाता है। किन्तु जो नियम अभी पूर्ण सत्य नहीं हैं या पाये उनके मत्यापन के लिए अब भी अनुमान और परीक्षण हो रहे हैं उन्हें प्रयोगमिद्ध साधारणीकरण (empirical generalizations) कहा जाता है।

आगमन विधि दृष्टान्तों का संस्कार अवलोकन परीक्षण द्वारा "नियमों तथा प्रयोगमिद्ध साधारणीकरणों का पता लगाती है। प्रत्यक्ष निगमन विधि (direct deductive method) का आधार नियम होते हैं। प्रयोगमिद्ध साधारणीकरण' विपरीत निगमन विधि (inverse deductive method) का आधार होते हैं। समाज शास्त्र अध्ययनशास्त्र अर्थात् कुछ सामाजिक विज्ञानों का आधार परीक्षात्मक साधारणीकरण ज्ञान है। इसमें विपरीत प्राकृतिक विज्ञानों का आधार निश्चित नियम (definite laws) ज्ञान हैं। सामाजिक विज्ञानों तथा भौतिक विज्ञानों के नियमों (साधारणीकरणों) में केवल विकास अथवा प्रौढ़ता के अन्तर् में अन्तर है।¹

समाज के दो या अधिक क्षेत्रों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन विपरीत निगमन विधि में किया जाता है। जहाँ स्त्री धन की उत्पत्ति में सहायक और सामाजिक प्रतिष्ठा की वस्तु हानी है वहाँ बहु भार्या परिवार पाये जाते हैं। आर्थिक

1 See especially the positivistic approach adopted by George Lundberg and Stuart C. Dodd. Lundberg's categorical statement that the laws of natural sciences and those of social sciences are quite similar in respect of their nature has been supported by many master sociologists of the positivistic and non-positivistic schools including T. Parson and H. Merton. The position taken by McIver, Znaniecki & Sorokin on this issue runs counter to the above view.

व्यवस्था और नतिक विचारों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इसी प्रकार के सम्बन्ध शैक्षिकीकरण और पूजावाद में, शहरी जीवन और पारिवारिक विघटन, युद्ध और वय भेदा में पाये जाते हैं। विपरीत निगमन विधि की पहली सीढ़ी पर समाज के भिन्न भिन्न पहलुओं में हृत्मात्मक सह-सम्बन्ध का ढूँढा जाता है। इस विधि की दूसरी सीढ़ी पर हम तब पहुँचते हैं जब उपरोक्त सम्बन्ध को बताकर यह बताने का प्रयत्न करते हैं कि समाज के एक पहलू में अन्तर होने से उसके अनुरूप ही दूसरे पहलू में भी अन्तर आता है। जम क्या आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन होने पर वा-सधप या वय भेदा में भी परिवर्तन आता है? जलवायु और आत्महत्या, आवाणी और बेकारी गरीबी और अपराध, धर्म विवाह और शिशु-मृत्यु आदि में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। इन अध्ययनों से निष्पन्न हुए परिणामों को जब हम मनुष्य के जीवन और विकास से सम्बन्धित जीवशास्त्र या मानवशास्त्र में अधिक व्यापक सिद्धान्तों से घटाने हैं तो हम इस विधि की तीसरी व अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचते हैं। इस विधि में निगमन और आगमन दोनों पद्धतियाँ का समावेश रहता है। समाजशास्त्र अपने परिणामों का भिन्न भिन्न सिद्धान्तों के साथ नहीं, परन्तु अन्य विज्ञानों के साथ जुड़े परिणामों के साथ परम्परा है। यदि मनोविज्ञान, जीवशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास उन परिणामों की पुष्टि करते हैं जिन पर समाजशास्त्र पट्टा है तो उन परिणामों की सत्यता में इनका नहीं किया जा सकता।

(२) ऐतिहासिक विधि (Historical Method)

विपरीत निगमन विधि का ऐतिहासिक विधि भी कहा जाता है क्योंकि इसी विधि का मुख्यतया इतिहास में प्रयोग आता है। परन्तु कई विद्वान् ऐतिहासिक विधि के नाम में एक पृथक विधि का उल्लेख करते हैं जिसमें इतिहास से ही नहीं बल्कि आत्म-व्याख्या (autobiographies), जीवनचरित्र, डायरी तथा साक्षात्कार (interviews) से भी बहुत सी सामग्री ली जाती है। ऐतिहासिक विधि का इस्तेमाल करने वाले समाजशास्त्रियों को डायरी, मुलाकातों और प्रश्नावलियाँ (questionnaires) से एकत्रित सामग्री से मनुष्य की मानसिक क्रियाओं का अध्ययन में सहायता मिलती है। थॉमस और जेनिको (Thomas and Znaniecki) अपनी पुस्तक में पोलिश पत्रकारों और डॉक्टरों के अमेरिका में इस सामग्री का आधार पर व्यवहारों के साहचर्य और मानसिक रूपों का चित्रण करने में बहुत सफल हुए हैं।

किन्तु ऐतिहासिक विधि पूर्ण सततवर्जनक नहीं है। यद्यपि जीवनचरित्र, आत्म-व्याख्या तथा डायरियाँ से बहुमूल्य सामग्री मिलती है फिर भी वह वैज्ञानिक नियमों की जाँच के लिए पर्याप्त नहीं होती। इस नामों में लेखकों के पूर्वविचार तथा पक्षपात

समाय रहते हैं इसलिए वानानिक विषयकता (objectivity) नहीं प्राप्त हो सकती। ऐतिहासिक विधि का समाजशास्त्र में अपनाने के कुछ लेखकों ने कालान्तर करते हुए लिखा है कि इतिहास अतीत का समाजशास्त्र है और समाजशास्त्र आधुनिक इतिहास।

(३) आदर्श प्रकार विश्लेषण विधि (Ideal Type Analysis Method)

इस विधि का प्रयोग मुख्यतया सिमल मक्सवेल और दुर्खीम ने किया है। मैक्सवेल का मत है कि काय-कारण सम्बन्धों की खोज केवल इस विधि द्वारा ही हो सकती है। इस विधि में वास्तविकता के आधार पर अचपक अपनी समस्या का अपने दृष्टिकोण में आदर्श प्रकार (Ideal type) का निर्माण करता है फिर वास्तविक विषयों का मूल्यांकन इस आदर्श धारणा या कल्पना से निकटता या दूरी के आधार पर किया जाता है। उदाहरण के लिये यदि कोई समाज अचपक वग-सहयोग या जनतंत्र पर काय कर रहा है तो पहले वह वग-सहयोग या जनतंत्र की आदर्श कल्पना का निर्माण करेगा अर्थात् वह किस आदर्श वग सहयोग या जनतंत्र (democracy) समझता है। फिर वह देखेगा कि वास्तविक जीवन में पाये जाने वाले वग-सहयोग या जनतंत्र आदर्श धारणा से कितनी दूर या निकट हैं। इसी दूरी या निकटता के आधार पर वह वास्तविक जनतंत्र या वग-सहयोग के विस्तार या अंश (extent or degree) का नापगा।

यह विधि कणनात्मक या विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिये बहुत उपयोगी है। इस विधि का सबसे बड़ा दोष इसकी अन्तरगतता (subjectivity) है। अचपक अपने दृष्टिकोण के अनुसार ही आदर्श धारणा बनायेगा। दूसरा अचपक उसी विषय की दूसरी आदर्श धारणा बना सकता है। शून्य कि भिन्न भिन्न मनुष्यों के अनुभव और मान में भिन्नता होना है इसलिए उनके द्वारा निर्मित आदर्श धारणाओं में भी भिन्नता होना स्वाभाविक है। दूसरे यह हास्यता है कि जिस धारणा को हम आदर्श धारणा समझें वही हमारा आदर्श नहीं है। इन्हीं कारणों से इस विधि से सिर्फ प्रारम्भिक अध्ययन या अनुमान डूबने का काम लिया जा सकता है। गहन तथा वानानिक अध्ययन के लिये इस विधि पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

(४) सामाजिक सर्वेक्षण (Social Surveys)

सामाजिक सर्वेक्षण विधि का उपयोग सबसे पहले ली प्ले (Le Play) और उमर साधिया ने किया था। उमर अपने बजट्स के आय-व्यय (budgets) का अध्ययन कर विभिन्न बजट्स की प्रकृति और संगठन का समझने का प्रयत्न किया था। बाद में, एंग्ल (Engel) ने भी बजट्स के आय-व्यय (बजट) का अध्ययन कर इस आशय का एक विज्ञान प्रतिपादन किया था कि बजट्स की आय के अनुसार विभिन्न प्रकार

गरीब और घनिष्ठा के रतर्चों और इच्छाभा म अन्तर पडता है । इस विधि स भौगा-
लिक और सांख्यिक क्षेत्र के अध्ययन लिंड (Lynd) की "मिडिलटाउन", लायड
वानर की 'भाकीसिटी', लिटन और कार्डिनर की 'प्लेनवेली आदि पुस्तकों म प्रस्तुत
किए गए । ये एक सीमित क्षेत्र म समाज और व्यक्ति क बीच पाय जान वाले
सम्बन्धा का अध्ययन करती ह । इसी प्रकार की एक अन्य पुस्तक लायड वानर और
सा की 'नागन मिस्टम आन दि माइन फक्टरी" है । सामाजिक सुधार के उद्देश्य स
समाज के विभिन्न क्षेत्र म सामाजिक सर्वे प्राय प्रत्यक्ष दश म हुए हैं ।¹ सरकार
द्वारा प्रकाशित जनगणना की रिपोर्ट सामाजिक सर्वेक्षण क सुन्दर उदाहरण ह ।
भारत म १८८१ स १९५१ तक प्रकाशित इन रिपोर्टों म कई सामाजिक पन्था का
अध्ययन किया गया है ।

एक सामाजिक सर्वेक्षण वहधा लागू के एक समूह की रचना क्रियाया
और रहन-सहन की दशाया की जाच-पडताल है । इसकी चार मुख्य विशेषताएँ हैं

- (१) यह वास्तविक या भूत सामाजिक जीवन का प्रत्यक्ष अध्ययन करता है ।
विद्यमान स्थितिया और समस्याया स सबद तथ्या का पयवक्षण वणन
और सक्लन इसम किया जाता है ।
- (२) इस विधी विशेष भौगोलिक क्षेत्र या स्थान (locality) का अध्ययन
होता है ।
- (३) इसकी वैधानिक तटस्थता बनाए रखन का मथामभद प्रयास किया
जाता है । इसके अन्तगत वपयिक मन (Subjective opinions) या
पन्थान नहीं आन लिए जाने ।
- (४) इसक उद्देश्य के वार म विधानवत्ताया म मनभेद है । एक तो मह
है कि सर्वेक्षण का उद्देश्य तथ्या की खोज करना (fact finding)
ह । दूसर मन के अनुसार इसका उद्देश्य तथ्या की जानकारी करके

1 चार्ल्स वुय के 'लाइफ एण्ड लेवर ऑव दि पीपुल इन लन्दन (१७ प्रय) म
उत्पन्न की निघनता का सूत्रम और क्रमबद्ध अध्ययन किया गया है । एस० रीट्टी
न अपनी पुस्तक 'पॉवर्टी (१९००) म पारिवारिक आय-व्ययक और पोषिक
भाजन (nutrition) के आधार पर याक की निघनता नापी है । बौबले
(Bowley) न १८१२ मे 'निवलाइट एण्ड पावर्टी' म इसी प्रकार का अध्ययन
किया है । अमरीका मे सिकागा स्कूल न शहरी वातावरण के मनुष्या पर प्रभाव
(विशेषकर अपराध सम्बन्धी) का अध्ययन किया है । भारतवप म भी आज
अनन नगरा और क्षेत्रों का सामाजिक सर्वेक्षण हा रहा है । आगरा म ही
'नगरीकरण की प्रवृत्तिया' का सर्वेक्षण किया जा रहा है ।

सामाजिक सुधार करना है। आजकल अनेक सामाजिक वैज्ञानिक (social scientists) दूसरे मत का समर्थन करते हैं।¹

सामाजिक सर्वेक्षण दो मोटी श्रेणियाँ में विभाजित किये जाते हैं। किसी विशिष्ट विषय से सम्बन्धित (topical) और सामान्य (general)। विशिष्ट सर्वेक्षण में कुछ निश्चित पहलुओं का अध्ययन होता है। जैसे किसी नगर में स्वास्थ्य या शिक्षा या बकारी का सर्वेक्षण। सामान्य सर्वेक्षण में किसी सामाजिक स्थिति के अनेक पहलुओं का विस्तृत अध्ययन होता है। इसमें किसी नगर या गाँव, क्षेत्र या प्रदेश के सभी महत्वपूर्ण या कई पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। आजकल विशिष्ट विषय के सर्वेक्षण बहुत प्रचलित होते जा रहे हैं।

सामाजिक सर्वेक्षण में निम्नलिखित प्रविधियाँ (techniques) प्रयुक्त होती हैं —

(१) अवलोकन (Observation) (२) निदर्शन (Sampling) और अन्य सांख्यिकीय विधियाँ (३) साक्षात्कार (Interview) (४) अनुसूची (Schedule) (५) प्रश्नावली (Questionnaire), और (६) व्यक्तिगत विषय अध्ययन (Case study)।

सामाजिक सर्वेक्षण की विधि से सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें समाज के क्षेत्र का सीमित करके विशिष्ट समस्या का पूरा और विस्तृत अध्ययन सम्भव हो जाता है। दूसरे यह अध्ययन सरल भी है और अन्य क्षेत्रों की सामाजिक व्यवस्था और उनके संगठन को समझने में सहायक होते हैं। समाज सुधारकों और नियोजकों के लिये ऐसे अध्ययन बहुत उपयोगी हैं। किन्तु इस विधि में दो कठिनाइयाँ हैं। पहली कई बार इस प्रकार के अध्ययन में चुने हुए सामाजिक या सामूहिक क्षेत्र समाज या संस्कृति के प्रतिरूप (typical examples) नहीं होते, इसलिये अध्ययन अप्रयोज्य रहता है। दूसरी इन अध्ययनों में विशिष्ट सांख्यिकीय क्षेत्र का पृथक् समझ कर अध्ययन किया जाता है और अन्य क्षेत्रों से उनका सम्बन्ध नहीं स्थापित किया जाता। अगर हम प्रकार के सम्बन्ध स्थापित किये इस अध्ययन का समाजशास्त्र के लिये विशेष महत्व नहीं होता। तीसरी सामाजिक सर्वेक्षण में भी समस्या से सम्बन्धित सभी तथ्यों का संकलन नहीं हो पाता। यदि होता भी है तो धारणा के पुनः विचार और अन्तर्भावनाओं से उनमें में बहुत से अनुरक्ति रहते हैं। परन्तु इन सीमाओं के बावजूद भी सामाजिक सर्वेक्षण विधि को अचिन्ता विचारों के अन्तर्गत बनाने का प्रयत्न हो रहा है।

उपर्युक्त हमने कहा है कि समाजशास्त्रीय विषयों का अध्ययन करने के लिये सामाजिक सर्वेक्षण विधि में कई पृथक् विधियों का प्रयोग होता है। इन विधियों का

1 See, for example, Lundberg *Social Research*; P. V. Young *Scientific Social Surveys and Research*; Gooden and Hatt *Methods in Social Research*

स्वतंत्र या एक-अथवा-अधिका का मिलाकर भी समाजशास्त्रीय जाँच-पड़ताल की जाती है। संक्षेप में इन विधियों का वर्णन कर देना लाभप्रद होगा।

(अ) अवलोकन (Observation)—किसी सामाजिक समस्या, मस्यौदा अथवा समूह के बारे में जानकारी कराने की सबसे प्रारम्भिक विधि अवलोकन है। जाँच-पड़ताल के विषय को मॉनिटर अवलोकन में समझा जा सकता है। अवलोकन-करना (पर्यवेक्षण) या तो स्वयं 'विषय' का भाग बन कर रह और उसकी गतिविधि का अवलोकन करना रहे अथवा विषय का भाग न बनकर ऊपर से तटस्थ रह कर भी, अवलोकन किया जा सकता है। पहले प्रकार के अवलोकन को सहभागिता (participatory) और दूसरे को अ-सहभागिता (non-participatory) कहते हैं।

(आ) सांख्यिकीय विधि (Statistical Method)—इस विधि में अध्ययन वस्तु (object of study) के बारे में सन्ख्यात्मक या परिमाणात्मक तथ्यों का सङ्कलन कर उनका वर्गीकरण करण उनमें सहसम्बन्ध की स्थापना तथा उनका निवचन (interpretation) किया जाता है। सङ्कलन के बाद की सभी कार्य विधियाँ (procedures) का सूचनापत्र का संकलन (processing of the data) कहा जाता है। सांख्यिकीय विधि के सफल उपयोग के लिए सामाजिक स्थिति या अध्ययन विषय के एक सही नमूना या निष्पत्ति (sample) की चुनना अत्यन्त आवश्यक है। यह नमूना सम्पूर्ण स्थिति या समस्या का यथासम्भव ठाँक प्रतिनिधि हो। नमूने की चुनने की प्रक्रिया को निदान प्रक्रिया कहते हैं। वास्तव में सांख्यिकीय विधि कई विधियों और सांख्यिकीय प्रक्रियाओं का समूह नाम है।

(इ) साक्षात्कार (Interview)—किसी सामाजिक स्थिति को जाँच-पड़ताल (investigation) में जब हम स्थिति में भाग लेने वाले व्यक्तियों से वैयक्तिक सँघर्ष करके सूझ-पाछ की जाती है तो इस विधि को साक्षात्कार कहते हैं। साक्षात्कार में प्रश्नावली और अनुसूचियों की सहायता ली जा सकती है।

(ई) अनुसूची—अनुसूची एक प्रकार की प्रश्नावली की सूची होती है जिसमें अन्वेषक साक्षात्कार अथवा अन्य विधियों से सूझ-पाछ कर सकता है। वस्तुतः अनुसूची प्रश्नावली का ही एक रूप होता है।

(उ) प्रश्नावली—यह अनेक संशुद्ध प्रश्नों का समूह होता है। ये सभी प्रश्न एक या अनेक पन्नों पर लिखे जाते हैं। प्रत्येक प्रश्न के सामने उत्तर के लिए या तो रिक्त स्थान होता है अथवा कई वैकल्पिक (alternatives) उत्तर दिए जा सकते हैं। प्रश्नावली का उत्तर देने वाला उत्तरदाता (respondent) भर सकता है अथवा अन्वेषक उत्तरदाताओं के उत्तरों को रिक्त स्थानों में भरता जाता है अथवा अनावश्यक विकल्पों को काट देता है। जब प्रश्नावली डाक द्वारा उत्तरदाताओं के पास भेजी जाती है तो उसे डाक से भेजा जाना वाला प्रश्नावली (mailed questionnaire) कहते हैं।

(ऊ) व्यक्ति विषय अध्ययन—समाजशास्त्र में जिन सामाजिक स्थितियों का अध्ययन होता है उनमें दो पहलू—गुणात्मक और परिमाणात्मक—होते हैं। परिमाणात्मक पहलू का सफल अध्ययन सांख्यिकीय विधि द्वारा ही संभव है। गुणात्मक पहलू का अध्ययन बचा बचिन है और उसकी सफलता संश्लिष्ट हो सकती है। फिर जहाँ किसी एक व्यक्ति स्थिति अथवा संस्था का अध्ययन करना हो तब तो यह कार्य और भी बचिन हो जाता है। अतएव ऐसी व्यक्ति स्थिति का सर्वोपाय अध्ययन करना अधिक लाभप्रद होता है। इसमें लिये अध्ययन साध्य व्यक्ति स्थिति अथवा संस्था या समूह का ऐतिहासिक अध्ययन कर सभी सम्बद्ध भूत और वर्तमान तथ्यों को एकत्र किया जाता है। वस्तुतः यह विधि ऐतिहासिक विधि का परिष्कृत रूप (refined form) है। इसमें जाँच-पड़ताल की हर प्रविधि का प्रयोग बड़ी सावधानी और सतर्कता से होना है। इसमें स्थिति से सम्बद्ध सम्पूर्ण तथ्यों का सफल अभिज्ञान होता है। बर्गस (Burgess) इस विधि को सामाजिक सूक्ष्मदर्शक यंत्र (social microscope) मानता है।

माग ने लिखा है कि व्यक्ति विषय अध्ययन विधि में एक व्यक्ति का सर्वोपाय गहन अध्ययन होना है जिसमें अन्वेषक अपनी सम्पूर्ण चतुरता एवं विधियाँ का प्रयोग करता है या (विधि) एवं व्यक्ति के चारों ओर पर्याप्त सूचना का व्यवस्थित संग्रह करता है जिससे कोई व्यक्ति यह समझ सके कि वह (स्त्री या पुरुष) समाज की इकाई का क्या कार्य करता (या करती) है।¹ गुटे और हार्ट ने इस विधि की परिभाषा इस प्रकार की है—यह सामाजिक तथ्यों को समझने के लिए वह ढंग है जिससे अध्ययन किया जाने वाला सामाजिक विषय के एकात्मक स्वरूप का संरक्षण हो सके। दूसरे शब्दों में इस ढंग में सामाजिक इकाई को सम्पूर्णता माना जाता है।²

(ख) सामाजिक अनुसंधान (Social Research)

जहाँ हमें सामाजिक अध्ययन (जाँच-पड़ताल) की एक प्रतिप्रचलित पद्धति—सर्वेक्षण विधि का अविस्तार विवक्षित किया है। सामाजिक जाँच-पड़ताल की अधिन—प्रतिष्ठित एवं अधिक वैज्ञानिक विधि सामाजिक अनुसंधान या शोध (Social research) की है। इस विधि में भाँ-सर्वेक्षण विधि की भाँति अध्ययनगत विषय के समग्र (universe) का एक निम्न (sample) लेकर उसे अवलोकन, परीक्षण आदि—प्रदान करने के लिए विषय अध्ययन तथा अन्य सांख्यिकीय (method statistical) अथवा नवनिर्मित सामाजिक विधियाँ (sociometric method) का उपयोग के अध्ययन करते हैं। स्मरण रहे सामाजिक समस्याओं अथवा घटनाओं के अध्ययन अनुसंधान के लिए सामाजिक सर्वेक्षण अथवा सामाजिक अनुसंधान पद्धति

1 Yang Hsin Pao *Fact finding with Rural People* F. A. O Publication (1951) p. 67

2 Goshel & Hart *Methods in Social Research* M. Graw Hill N. Y. 1952 p. 331

नियम से किसी का भी प्रयोग निया जा सकता है। उनमें से कौनसी विधि अधिक उपयुक्त उपादेय और सफल होगी—यह बात तीन बातों पर निर्भर है (१) अध्ययन-नाथ चुनो गई समस्या की प्रकृति (२) इच्छित परिणाम की परिपुष्टता (accuracy) और (३) ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य का प्रकार।

(१) यदि अध्ययननाथ चुनी गई समस्या पर पहले कोई अनुसंधान नहीं हुआ है अथवा उस विषय के बारे में अपभ्रतता बहुत अपेक्षात जानकारी उपलब्ध है तो सामाजिक सर्वेक्षण विधि अपभ्रतता अथिप्त संपन्न हो सकती है। उन्हीं विषयों की सामाजिक शोध हानी है जिन पर अपभ्रतता पर्याप्त जानकारी साहित्य उपलब्ध है और जिनके बारे में उपभ्रत जानकारी के आधार पर कुछ उपकल्पनाएँ (hypothesis) बनाई जा सकती हैं।

(२) बहुत शुद्ध परिणामों का लक्ष्य की पूर्ति सर्वेक्षण विधि से नहीं हो सकती। उन्में लिय शाय विधि ही उपयुक्त होगी। इसका कारण यह है कि सामाजिक शोध या अनुसंधान विधि में प्रयुक्त प्रत्यय (concepts) प्रणालियाँ (procedures) अथवा प्रविधियाँ (techniques) सर्वेक्षण विधि में प्रयुक्त इन चीजों की अपभ्रत अथिप्त प्रीड और विश्वसनीय होते हैं।

(३) सर्वेक्षण विधि से जो जांच-पड़ताल की जाती है उसका उद्देश्य व्यावहारिक (practical) होता है जब कि शोध का उद्देश्य वैज्ञानिक (theoretical)। सामाजिक सर्वेक्षणों का उद्देश्य किसी व्यावहारिक समस्यात्मक (practical and contemporary) सामाजिक समस्या के अध्ययन और उसके सुधार अथवा निराकरण (amelioration or eradication) होता है।

सामाजिक अनुसंधान में प्रयुक्त कुछ प्रविधियाँ और कार्य प्रणालियाँ का उल्लेख पहले किया जा चुका है। अवलोकन प्रस्तावकी साक्षात्कार व्यवस्थापन (processing) अध्ययन तथा निदर्शन चुनन और सप्रहीत सामग्री के व्यवस्थापन (processing) वर्गीकरण (classification) सारणीयन (tabulation) परिमाणन (measurement) तथा चित्रमय प्रस्तुतन (presentation) के लिये जो सांख्यिकीय प्रविधियाँ प्रयुक्त हानी हैं उनका सन्ध में उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ पर समाजशास्त्रीय घटनाओं का परिमाणात्मक (quantitative) व्याख्या के लिए प्रयुक्त स्केलिंग अथवा ममाज मित्तीय प्रविधियाँ (scaling and sociometric techniques) का सन्ध विवरण प्रस्तुत करना अभीष्ट है।

(६) समाजमित्तीय प्रविधियाँ (Sociometric Techniques)

सामाजिक घटनाओं के दो पहलू—गुणात्मक और परिमाणात्मक (qualitative and quantitative) होते हैं। गुणात्मक सामाजिक घटनाओं का विवरणात्मक अथवा विवेचनात्मक अध्ययन अपभ्रतता भरल होता है। सामाजिक सर्वेक्षण में प्रयुक्त विभिन्न प्रविधियाँ जिनका पूर्व उल्लेख हो चुका है, के अतिरिक्त सर्वेक्षण प्रविधियाँ

(projective techniques) का उपयोग भी गुणात्मक विश्लेषण के लिए होता है। किन्तु यदि उही घटनाया का परिमाणात्मक अध्ययन अर्थात् तत् हो ता बड़ी कठिनाई पड़ जाती है। गुणात्मक पहलुआ जैसे स्थिरता सगठन सामाजिक दूरी प्रगति आदि विशेषताया का परिमाणात्मक विश्लेषण करने के लिये समाज वनानिका न जिन प्रविधिया का विकास किया है उसका सामूहिक नाम समाजमितीय प्रविधिया हैं। समाजमिति (Sociometry) का विकास अर्थशास्त्र तथा मनोविज्ञान के क्षेत्रों में अर्थशास्त्र (econometrics) और (psychometry) के महत्त्व हुआ है। सामाजिक विषया के क्षेत्र में यह प्रवृत्ति सामाजिक घटनाया के गणितीय व्यवहार (mathematical application) की छानक है। पाठका को स्मरण होगा कि किसी भी नान भयवा विज्ञान की प्रौढ़ता और परिशुद्धता गणितीय ज्ञान के उत्तरोत्तर बढ़ते हुये प्रयोग पर निर्भर है।

समाजमितीय पमाना (sociometric scales) द्वारा ऐम अमूल (abstract) तथा गुणात्मक विषया जैसे इव्या बग-सघष सामाजिक प्रतिष्ठा उपवाजन अथवा ननिक वन जमी जटिल घटनाया का सावधानीपूर्वक नापन का प्रमाण हुआ है। व्यक्तिया क पारस्परिक सम्बन्धा की गृह्यता अथवा दूरी की भी इमसे नापा जा सकता है। एम विषया में जितम गणना या चाँकडे कुछ काम नहीं देन समाजमितीय मापका के आधार पर नाप की जा सकती है और परिणामा का मूल्याकन हो सकता है। समाजमितीय सांख्यिकीय विधि तथा आन्ध्र प्रकार विधि का समन्वय कर एक नई और अधिक गहन विधि बनी है। इस विधि का आरम्भ सत्रमे पहले मारना (Moreno) न अपनी पुस्तक 'हू मल सरवाइव (Who Shall Survive)' में किया था। इसका उपयोग अधिकतर मनावनानिका द्वारा सामाजिक समन्वाया का अध्ययन में किया गया है।

ऊपर जिन विधिया का बणन किया गया है वे सभी कुछ न कुछ दापपूर्ण हैं। किन्तु समाज विधिया में समाजशास्त्र के विषया का अध्ययन अभी तक होता रहा है और समाजशास्त्र का विज्ञान साहित्य निरव चला है। पर मय यह है कि दापपूर्ण विधिया में अध्ययन कर जिन ज्ञान का सचिन किया है वह एक दिन निमूल्य न हा जाय। नय ज्ञानका के नामन समाज इम प्रकार की समस्या गृहणी है। समाजशास्त्र भी एन नया ज्ञान है इमनिम इम भी यनी मय है। पर आज समाजशास्त्रा अपन महत्त्व भाग का भनी प्रकार समभ रहा है। वह एक दापरहित पूण वनानिक विधि का विकास करन में तारन है। इस प्रकार की विधि मिन जान पर अभी तक सचिन स्थि नर ज्ञान का सहायन कर किया जायगा। मर विचार में इम सम्पूर्ण ज्ञानभान के निमूल्य हान का गहरा गिफ का गनिक है क्यकि अभी तक प्रमुक्त विधियाँ समाज शास्त्राय किया का अध्ययन में निय पूणतया अनुपयुक्त सिद्ध नहीं हुई हैं। साथर नई विधि सांख्यिक-सांख्यिकीय विधि (Cultural Statistical Method) का ही

संगोचित रूप है। उससे सामाजिक विषय का सर्वोपार्ण वैज्ञानिक अध्ययन मुलभ हो सकेगा।¹

(७) समाजशास्त्रीय विधि (Sociological Method)

आद्य, अन्त में हम समाजशास्त्रीय पद्धति के विकास की कुछ समस्याओं का विवेचन करें। अद्य विज्ञान की भाँति समाजशास्त्र भी अपने विषय का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिक विधि का उपयोग करता है किन्तु समाजशास्त्र की विधि (Sociological method) क्या होगी यह उसके विषय की प्रकृति पर निर्भर करती है। समाजशास्त्र के विषय की प्रकृति में निम्नलिखित महत्वपूर्ण बातें पाई जाती हैं —

(१) अंतरंग विचार या पक्षपात—प्राकृतिक विज्ञानों की विषय-वस्तु निर्जैव पदार्थों के प्राकृतिक सम्बन्ध हैं। जीवशास्त्र भी जीवित पदार्थों के रूपा और उनके माध्यम सम्बन्ध का अध्ययन करता है। प्राकृतिक विज्ञानों की विषय-वस्तु में चेतना नहीं होती। प्राकृतिक वैज्ञानिक का इमन बाह्य सम्बन्ध नहीं रहता। वह अपने अध्ययन में तटस्थता और अलगव (detachment) रख सकता है। उन अपनी वैज्ञानिक विषयकता (objectivity) का कायम रखन में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। समाजशास्त्री मानव प्राणियों के सामाजिक जीवन और व्यवहार का अध्ययन करता है। मनुष्यों में चेतना रहती है और विवेक भी। उनका व्यवहार के बाह्य और अंतरंग दोनों पक्षों का देखना समाजशास्त्रों के लिये आवश्यक है। व्यवहार के अन्तर्गत पक्षों को समझने में अग्रभाकृत बड़ी कठिनाई आती है क्योंकि मनुष्यों की मानसिक क्रियाओं के अमरी रूप का समझना प्रायः कठिन होता है। दूसरे समाजशास्त्री स्वयं मनुष्य हैं और अपने विषय—समाज—का एक अभिन्न अंग हैं। जब मनुष्यों के समान उमर में भाग्य-द्वेष पूर्व विचार (prejudices), पक्षपात (partiality) या व्यक्तिनिष्ठ विचार (subjective ideas) गत हैं। वह अपने विषय से पूर्ण अलगव नहीं रख पाता। इसलिये समाज का अध्ययन करते समय यदि वह अपने विचारों या अन्तर्भावनाओं के अनुसार ही समाज की क्रियाओं का दृष्टा है तो उनका नतीजे (con-

1 Znaniecki की कृति Cultural Sciences या Sorokin की कृति Fads & Foibles in Sociology देखिए।

समाजशास्त्र की विधियाँ विविधा के विस्तृत ज्ञान के लिए निम्न पुस्तकें पढ़िए

- (1) Pauline V Young Scientific Social Surveys and Research
Prentice Hall New York 1955
- (2) Goode & Hatt Methods in Social Research McGraw
Hill New York 1952
- (3) Lundberg Social Research (Longmans New York) 1942
- (4) Saltz etc Research Methods in Social Relations
- (5) Cohan Statistical Methods for Sociologists
- (6) Halaya Research Methods in Social Sciences

clusions or results) उमक पूव विचारा या पक्षपाता से अनुरजित रहते है। ऐसे तनीज बानानिक सत्य नही हा सक्त।

बानानिक तटस्थता रखन मे समाजशास्त्री क सामान्य चार कठिनाइयाँ आती हैं। पहली कुछ पक्षपात या भुकाव (biases) मनुष्य की प्रकृति म ही सनिहित हा जान ह और बचपन क समावरण म उसनी अचेतन (unconscious) या अघचेतन (Semi-conscious) अवस्था म धुनमिल जान ह। दूसरी यदि इन पक्षपाता को जगदती हान का प्रयत्न भी किया जाय तो उनर विराधी पक्षपाता को अपनाते का आशका बनी रहती है। तीसरी भौतिक विज्ञान म अर्थाँ (values) नही हाती और भौतिक बानानिक का सहात्मक विश्लषण करक ही छुट्टी मिल जाती है। समाजशास्त्री ना अर्थाँ (values) जन पूण गुणात्मक (qualitative) विषया का विश्लषण करना पता है। उस नतिकता और आचरणा क नैतिक (moral) उद्देश्या का हा अधिकतर निबचन करना पडता है परन्तु महीं अपना विषयक (objective) मत प्रकट करना और इनका प्रयोग (experiments) के लिय नियन्त्रित करना बहुधा अमभव ना है। चौथा दूसर समाज का पक्षपात रहित विषयक (objective) अध्ययन करना भी बग दुसह है। हर मनुष्य म जाति-केन्द्रीयता (ethnocentrism) हाता है। वह अपन समूह या समाज का प्रयासा परम्पराया सत्याना मूल्यो तथा आनाँ आनि को हमारा सबसे अच्छा समभा करता है। जव दूसर समाज क किसी आ का वह अध्ययन करता है ना उसना मूल्याकन अपन समाज के प्रमाणा (standards) क आधार पर करता है। अतएव समाजशास्त्री क लिए वैज्ञानिक विषयकता (objectivity) कामम रखना बहुत कठिन है। किन्तु यह अमभव नही है।

(२) समाज की जटिलता—समाजशास्त्री मानव-सम्बधी या सामाजिक सग-टा का अध्ययन करता है जो बहुत जटिल है। किसी भी एक सम्यघ को ल लीजिय उमक अनर कारका (factors) का समावेश हाता है। फिर ये कारक स्यायी नहीं रहन बचन रहन और यदि किसी सम्बध की सभी शक्तिया या कारको को मापन भी कर किया जाय तो उनर मापन प्रभाव या मत्व का निर्धारित करना बडा कठिन हा जाना है। भौतिक विज्ञान म वाय-कारण (effect-cause) सम्यघा का अध्ययन करन समय हम भिन्न भिन्न कारणो को आमाणी स अलग अलग कर मना है और प्रत्येक कारक का तापीक प्रभाव भा दग सनत है।

(३) मानव सम्बधों क साधभौमिक गुण का अभाव—भौतिक वस्तुओ क रूप व गुण निश्चित व साधभौमिक हाता है। भौतिक बानानिक समार क विगी भी कान म अपना प्रयोग कर साधभौमिक नतीजा पर पहुँच सकता है। किन्तु समाजशास्त्री का नियम-आमला अनरूपता स भरपूर है। प्रत्येक मनुष्य दूसरे से भिन्न है इनलिए एव मनुष्य के व्यवहार भी दूसर से भिन्न हैं। फिर समृति इन व्यवहारा और सम्बधो को और भा जटिल और अनरूप बाना देनी है। परिणामस्वरूप सामाजिक

सम्बन्ध में सावभौमिक गुण नहीं। एक समाज से दूसरे समाज में अत्यधिक भिन्नता होती है। अतएव, समाजशास्त्री द्वारा स्थानीय समाज के अध्ययन से निकाल गये नतीजे सावभौमिक सत्य नहीं माने।

(४) नियंत्रित परीक्षण की कठिनाई—प्राकृतिक वैज्ञानिक अपने विषय का प्रयोगशाला में नियंत्रित परीक्षणों के अधीन कर सकता है। समाजशास्त्री मनुष्य या सम्पत्ति को इस तरह के नियंत्रित परीक्षणों के अधीन नहीं रख सकता। इसलिए अधिकांश समाजशास्त्री मानव-व्यवहार को 'प्राकृतिक' (natural) परिस्थितियों में देखता है। मैकाडवर और पज कहते हैं कि समाजशास्त्री का क्षेत्र सदैव परिवर्तित होता रहा है। वह जब इसका अध्ययन कर रहा है उस समय भाँ यह बदलता रहता है। इस तथ्य का उसकी विधियाँ और परिणामों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

(५) निहित हिता द्वारा बाधा—समाजशास्त्री के वैज्ञानिक अध्ययन में निहित हिता (vested interests) द्वारा बहुत बाधा डाली जाती है। समाज की विद्यमान रचना या प्रचलित संस्थाएँ स बहुत लम्बा का लाभ हाता है। उसमें परिवर्तन होने से उनके स्वार्थ सिद्धि में रुकावट पड़ती है इसलिए वे किसी भी प्रकार के सामाजिक परिवर्तन का विरोध करते हैं। सामाजिक संस्थाएँ में अपसमायोजन (mal adjustment) रहते हुए भी उनको बदलने या उनमें सुधार करने का विरोध सामंती पर होता है। प्राकृतिक वैज्ञानिक ऐसे पदार्थों का अध्ययन करते हैं जो आम (common) आदमी की समझ से परे हाता है। समाजशास्त्री के अध्ययन के विषय परिवार, समूह, संस्थाएँ धर्म, प्रथाएँ तथा सामाजिक परिवर्तन आदि ऐसे विषय हैं जिनमें सामान्य आत्मी सम्मिलित होता रहता है और उनके बारे में कुछ न कुछ जान रखने के दावे समाजशास्त्री के कार्य में देखल देता है।

उपरोक्त कठिनाइयों के कारण समाजशास्त्री का अपने विषय के अनुरूप ही अध्ययन विधियाँ (methods of study) का अपना पड़ता है। समाजशास्त्र एक नया शास्त्र है इसलिए अभी तक अपने काम के लिए पूर्ण वैज्ञानिक विधि का विकास नहीं कर सका है। अब तक समाजशास्त्रियों ने प्राकृतिक और सामाजिक शास्त्रों से जिन भिन्न भिन्न विधियों का अपनाया है उन्हें इसी उद्देश्य से कि वे अपने विषय के अध्ययन में वैज्ञानिक विषयकता (objectivity) कायम रख सकें। सामाजिक सम्बन्धों की अनकल्पता और जटिलता से बचने के लिए समाजशास्त्री ने अपने अध्ययन के क्षेत्र को भी सीमित कर दिया है। इन विधियों का एक दूसरी दृष्टि से भी अपनाया गया है कि वे समाज की अध्ययन विधि की आधारभूत समस्या—सामाजिक सम्बन्धों में पारस्परिक सम्बन्ध के नियमों (Laws of correlation or Inter relation) को ढूँढना—का भी हल ढूँढ सकें।

अब प्रश्न यह है कि उपरोक्त कठिनाइयों से पार पाने के लिए समाजशास्त्र किस विधि को अपनायें। समाजशास्त्र की आदर्श विधि (Ideal Sociological Method) वह ही सकती है जिसके प्रयोग में निम्न बातों का पता लगाया जा सके—

(१) सामाजिक सम्बन्ध (तथ्यो अथवा घटनाया) म पारस्परिक सम्बन्ध का रूप (form of correlation),

(२) पारस्परिक सम्बन्ध का अंश (degree of correlation) अथवा भिन्नता की सीमा (extent or limit of variation),

(३) सामाजिक सम्बन्ध म सहचारिता या असहचारिता (compatibility or incompatibility in social relations),

(४) इन सम्बन्ध म नियमनद्धता या मुश्किलता का अंश (degree of order in social relations under study),

(५) एक सम्बन्ध म परिवर्तन का दूसर पर प्रभाव (effect of change in one upon another relation)

(६) सम्बन्ध म कारण-कार्य का सम्बन्ध ढूढना (finding cause effect relationship in relations)

(७) समाज म एक परिवर्तन होने के अतगत अय कितने परिवर्तन आ जात हैं (number of changes involved in (or following) one change in society),

(८) सामाजिक सम्बन्ध के कारको म सापथिक महत्ता की स्थापना (establishing relative significance of factors in social relations) ।

प्राथमिक परिभाषाएँ

प्रत्येक विज्ञान की अपनी पारिभाषिक शब्दावली (terminology) हानी है जिसमें कुछ ऐसे शब्द और शब्द-समूह शामिल होत हैं जिनका समझे बिना उस विज्ञान को समझना कठिन है। भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र, जीवशास्त्र या प्राणिशास्त्र अथवा अर्थशास्त्र और मनाविज्ञान आदि सभी प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों की अपनी अपनी पारिभाषिक शब्दावली है। प्राकृतिक तथा जैविक विज्ञान अपने लिए नवीन शब्दों की रचना कर लेते हैं किन्तु सामाजिक विज्ञानों की पारिभाषिक शब्दावली प्रधानतः रोजमर्रा के बोलचाल के शब्दों से ही बनी हानी है। समाजशास्त्र की अधिकांश पारिभाषिक शब्दावली भी साधारण बोलचाल के शब्दों तथा शब्द-समूहों में मिलकर बनी है। अतएव उनका सम्यक् प्रकार से समझ लेना इस शास्त्र के समुचित अध्ययन के लिए आवश्यक है। समाजशास्त्र के कुछ महत्वपूर्ण प्राथमिक शब्द निम्नलिखित हैं—समाज (society), समुदाय (community) संघ (association) एवं संस्था (institution)।¹

रोजमर्रा या साधारण बोलचाल में भी हम इन शब्दों का प्रयोग किया करते हैं बिना किसी मनुष्य की सामाजिक स्थिति अथवा उसके सामाजिक सम्बन्धों के बारे में बातचीत करते हैं। किन्तु इनमें से किसी भी शब्द का जब कोई व्यक्ति प्रयोग करता है तो उसका अर्थ वह पहले से ही नहीं बना देता। हम उस शब्द का अर्थ वक्ता की बात के प्रसंग या संदर्भ में निकाल लेते हैं। परन्तु यदि किसी शब्द का अर्थ उसके संदर्भ से निश्चित न हो तो हमारी मारी बोलचाल केवल कुछ परिचित ध्वनियों के अनिश्चित कुञ्ज न रहनी। प्रत्येक शब्द की अपनी व्युत्पत्ति होनी है और अपनी अर्थ। यह समाज में चलन (usage) के द्वारा निर्धारित होता है। इसलिए प्रत्येक शब्द की शक्ति का या उसके निश्चित अर्थ का बोध होना धनात्मक अध्ययन के लिए जरूरी है। किसी विज्ञान में प्रयुक्त होत बोलचाल के शब्दों के अर्थों का स्पष्टीकरण कर दिया जाय अथवा शब्दों के जाल में विषयों की स्पष्ट विवेचना नहीं हो पायगी।

1 Cf Sprott *Sociology* Ginsburg *Sociology* Weber *Basic Concepts in Sociology and Mannheim's Systematic Sociology*

समाजशास्त्र में हम एक शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग करना उचित नहीं समझते क्योंकि हम यहाँ राजमरा की बातचीत का मन्त्र नहीं मिल सकता। समाजशास्त्री का निश्चयी सामाजिक तथ्या या घटनाओं में होती है। इनका वस्तुनिष्ठ अध्ययन तभी संभव हो सकता है जब सामान्य प्रयोग होने वाले शब्दों का हम सही या निश्चय (precise) अर्थ समझ ले और उनका सामान्य अर्थ भी समझें। अभी तक समाजशास्त्रियों ने जो पारिभाषिक शब्दावली विकसित की है वह अत्यन्त विज्ञान की भाषा की भाँति भावात्मक (abstract) है और उसमें सभी धारणाएँ (concepts) सामान्य (generic) रूप में इस्तेमाल होती हैं।

समाजशास्त्र में जब हम संस्था शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा संकेत सामाजिक संगठन का एक ऐसे रूप से होता है जिस दूसरे रूपों से पृथक् समझा जा सकता है। हमारे लिए आवश्यक है कि हम सामाजिक संगठन के इस विशिष्ट रूप का सामान्य विशेषतायें समझें और उसका विविध प्रकारों को भी जानें। इसी प्रकार जब हम भीड़ शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा अभिप्राय किसी खास भीड़ से नहीं रहता। भीड़ें बना और बिगड़ा करती हैं। कहीं प्रधान मंत्री नेहरू के भाषण को सुनने के लिए भीड़ जमा जाती है तो कहीं उन्हीं पर डल बरसाने वाली भीड़ एकत्र हो जाती है। सिनेमा के सामने की भीड़ और मजदूरों की हड़ताल के समय की भीड़ इसी प्रकार की भीड़ें हैं। हमारा अभिप्राय किसी एक विशिष्ट भीड़ से नहीं होना चाहता। सभी भीड़ों का उस सामान्य रूप (general form) से जो सभी में विद्यमान है। सामाजिक संगठन के रूपों तथ्या तथा उनमें होने वाली घटनाओं के सामान्य रूप का अध्ययन समाजशास्त्र में होना है।

अतएव हमारा प्रारम्भिक प्रयत्न यह होना चाहिए कि समाज के शास्त्रीय अध्ययन के लिए हम समाजशास्त्र में प्रयोग होने वाले प्राथमिक शब्दों का निश्चय स्पष्ट और एक ही अर्थ दें यद्यपि साधारण बोलचाल में उनको बिलकुल ही विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। विभिन्न धारणाओं का सम्पूर्ण अर्थ, उनका प्रयोग की सीमाएँ तथा उनकी सम्पन्नता का आभास हम अपने व्यक्तिगत अनुभव के माध्यम से जानना चाहते हैं। किन्तु यदि हम सभी लोग एक शास्त्र का अध्ययन करना चाहते हैं तो यह है कि हम जिन शब्दों (terms) का प्रयोग करें उनका निश्चय और स्पष्ट अर्थों का अर्थ समझें। प्राथमिक शब्दों का विषय में यह बयान सरस अधिष्ठ महत्त्व का है।

समाजशास्त्र में प्रयुक्त मूल शब्दों का निश्चय और विशिष्ट अर्थ होना एक दूसरे कारण से भी आवश्यक है। प्राकृतिक विज्ञानों के विपरीत इस विज्ञान का विषय सामाजिक सम्बन्ध है। वे अमूर्त (abstract) अथवा निराकार (intangible) होते हैं। उनका कार्य स्पष्ट रूप में नहीं होता है। हम इनको न छू सकते हैं और न देख ही सकते हैं। प्राकृतिक घटनाओं की भाँति सामाजिक घटनाओं पर साधारण प्रयोगों में हम परीक्षण नहीं कर सकते। लेकिन उनकी मूर्तता और प्रभाव से

हम अपरिचित नहीं रह पाते। उनकी यथायता (reality) की अनुभूति हमें अपने जीवन में पग-पग पर होती है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि उनकी विवेचना में एक शब्द प्रयुक्त किए जाय जा सवमाय और स्पष्ट आशय प्रकट करें।

समाज

विशिष्ट समाज

साधारण बोल चाल में 'समाज' शब्द का प्रयोग अधिकतर मनुष्या के एक समूह के लिए किया जाता है। भारत, चीन इस इंग्लैण्ड लवा या मिस्र देशों में रहने वाली जनमर्या का उस देश का समाज कहा जाता है। ऐसे समाज निश्चित और मूल हाते हैं जिनको सीमित सामाजिक संपर्क वाले समूह भी कहा जा सकता है। एक समाज, जो मानव-समाज (या समाज) का भौगोलिक सीमाप्रा से बँधा हुआ एक भाग है, वह सगठन है जिसके लोगों का जीवन सामाय होता है।

एक समाज (जसे भारतीय समाज) पुरुषा, स्त्रिया और वरुचा का वह स्थायी और सतत् चलते रहने वाला समूह है जिसमें लोग स्वतः रूप से अपने साम्प्रतिक स्तर पर अपनी जाति का जीवित और कायम रखन में समय हो सकें।¹

गिटिन्ज समाज की परिभाषा इस प्रकार करता है समाज स्वयं एक सप है, एक सगठन है और औपचारिक व्यवहारा (formal behaviours) का एक योग है जिसमें सहयोगी व्यक्ति परस्पर सम्बद्ध है।" जब व्यक्तिया में समान होने की चेतना (consciousness of kind) होगी तभी उनमें पारस्परिक सम्बन्ध हगि।

जिसरा के अनुसार 'एक समाज व्यक्तिया का वह समूह है जो किही सम्बन्धा या व्यवहार के तरीका द्वारा सगठित है और जो उन व्यक्तिया से भिन्न है जा इन सम्बन्धा स नहीं बँधा है या जा उनसे भिन्न व्यवहार करत हैं।'²

ऊपर मूल और विशिष्ट (concrete and specific) समाज की परिभाषाएँ दी गई हैं।

सामाय समाज

जब किसी निश्चित देश और काल में सीमित समाज का नाम लेकर हम 'बल मानव समाज' या 'समाज कहते हैं ता समाज शब्द का व्यापक अर्थ होता है। इस अर्थ में, समाज अमूर्तता (abstraction या भावात्मक विचार) का

1 We may for our purposes here define a society as any permanent and continuing grouping of men women and children able to carry on independently the process of racial perpetuation and maintenance on their own cultural level — *Routledge Sociology* Dryden Press New York (1941) p 157

2 A Society is a collection of individuals united by certain relations or modes of behaviour which mark them off from others who do not enter into these relations or, who differ from them in behaviour — *Ginsberg op cit* p 40

बोध है। समाज व्यक्तियाँ म और उनके बीच स्थापित अन्त सम्बन्धों के जटिल (complex) का कहते हैं। अर्थात् अन्त क्रिया और संचार (interaction and communication) में समाज है न कि अन्त क्रिया करने वाले व्यक्तियाँ म।

जब साध-भाष्य रहने वाले व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन मानव सम्बन्धों की एक व्यवस्था के रूप में किया जाता है जब उसका कोई चित्र हाता है कोई प्रतिमान होता है तब इस प्रतिमान को, लागू को नहीं, समाज कहा जाता है।

समाज रूपों और प्रक्रियाओं का एक जटिल जाल है। ये दोनों एक दूसरे से अन्त क्रिया से जीते और बढ़ते हैं। सारे समाज में इतनी एकता होती है कि यदि इसके एक भाग में कोई बात हो तो उसका प्रभाव निश्चय ही शेष सारे भागों पर पड़ेगा। समाज पारस्परिक क्रिया (reciprocal activity) का एक विशाल जाल (tissue) है जो असम्य व्यवस्थाओं में भिन्नता प्रकट करता (differentiated) है। इन व्यवस्थाओं में से कुछ तो बिल्कुल स्पष्ट हैं लेकिन दूसरा को शीघ्रता से नहीं पहचाना जा सकता। परन्तु ये सब परस्पर इतनी निकटता से घुली मिली हैं कि आप जिस दृष्टिकोण में देखेंगे उन्हीं के अनुरूप भिन्न व्यवस्थाएँ दिखेंगी।¹

राइन् ने कहा है कि समाज व्यक्तियों का एक समूह नहीं बल्कि उनके बीच स्थापित सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। ला पियरे के अनुसार "समाज मनुष्यों का एक समूह न होकर अन्त क्रिया के आदर्शों के एक जटिल प्रतिमान है जो मनुष्यों में और उनके बीच उत्पन्न होते हैं। समूह के जीवन के लक्षणिक ढंग (characteristic ways) से निष्पन्न भावात्मक विचार (abstraction) को समाज कहते हैं। समाज एक वस्तु नहीं बल्कि एक प्रक्रिया है। यह एक रचना (structure) नहीं गति (motion) है।"²

मराड्वर और पज ने लिखा है कि 'समाज चलना काय विधि या सत्ता और पारस्परिक सहायता अथवा समूहों के अर्थों में, तथा मानव व्यवहार की स्वच्छन्दता और नियंत्रणों की एक व्यवस्था है। इस सत्तु परिवर्तनशील जटिल व्यवस्था को हम समाज कहते हैं। यह सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल है और यह सदैव बदलता रहता है।'³ संक्षेप में, समाज परिवर्तनशील सामाजिक सम्बन्धों का एक प्रतिमान है।

1 Society is a complex of forms or processes each of which is living and growing by interaction with the other the whole being so unified that what takes place in one part affects all the rest. It is vast tissue of reciprocal activity differentiated into innumerable systems some of which are quite distinct others not innumerable and all interwoven to such a degree that you see different systems according to the point of view you take —Lester p 157

2 La Pierte Sociology

3 "Society is a system of usages and procedure of authority and mutual aid of many groupings and division of controls of human behaviour and of liberties. This ever-changing complex system we call society. It is the web of social relationships. And it is always changing —MacJure & Page Society p 8

गिमवग 'समाज' शब्द के अर्थ में मानव सम्बन्धों के सम्पूर्ण जाल चाहे ये सम्बन्ध सगठित हा या असगठित, को सम्मिलित करता है। इसमें मनुष्या के सभी व्यवहार प्रत्यक्ष और परोक्ष, सगठित या अगठित, चेतन या अचेतन सहयोगी या विरोधी आते हैं।¹

मैकादवर, गिडिंग और कुछ अन्य समाजशास्त्री समाज को सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था अवश्य मानते हैं परन्तु वे कहते हैं कि व्यक्तियों में सामाजिक सम्बन्ध तभी स्थापित होते हैं जब उनको एक दूसरे की उपस्थिति से प्रतीति (awareness) हो अथवा उनके कुछ सामान्य उद्देश्य या स्वायत्तता हा। मैकादवर बड़े अधिकारपूर्ण शब्दों में कहता है कि बिना इस परिचय (recognition) के न तो कोई सामाजिक सम्बन्ध है और न कोई समाज। समाज वही स्थिति है जहाँ सामाजिक प्राणी एक दूसरे के प्रति उन तरीकों से व्यवहार करते हैं जिनका निवारण उनकी एक दूसरे की पहचान करती है। इस प्रकार निर्धारित सम्बन्ध ही सामाजिक है। परन्तु सामाजिक सम्बन्धों के लिए मानसिक दशा (psychic condition) को गिमवग आवश्यक नहीं मानता। वह कहता है कि सामाजिक जीवन में अप्रत्यक्ष और अचेतन सम्बन्धों का बहुत महत्त्व है।

मूल और अमूल धारणा

उपर्युक्त विश्लेषण से यह प्रकट होता है कि समाज शब्द का प्रयोग मूल और वास्तविक या विशिष्ट समाज के लिये होता है और अमूल भावात्मक सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था के लिए भी। समाज मूल और अमूल दोनों प्रकार का होता है। अमूल समाज में सामान्य समाज (general society) का बोध होता है जो देश या काल से नहीं बँधा है।

समाज मनुष्यों के संगठन (association) में बना एक ढाँचा है और उन्हीं सम्बन्धों और संस्कृतियों में जो सफलताएँ प्राप्त की हैं उनकी माप है। इसका अर्थ है कि विभिन्न क्षेत्रों में और स्तरों पर समाजों में भेद होता है। इसका कारण यह है कि समाज एक जनसमूह और उसके साधना संस्कृति और प्रविधि (technology) के अनुकूलन का दूसरा भाग और जातियाँ सँकटने हैं इसलिए समाजशास्त्र में सम्पूर्ण समाज की सामान्य धारणा (general concept) और इस सम्पूर्ण को बनाने वाली हर एक समाज की स्थूल और जीवित वास्तविकता (concrete and living reality) दोनों का अध्ययन होता है। हर विशिष्ट समाज, काल और स्थान तथा प्राकृतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में विद्यमान है और उनमें प्रभावित होता है।

समाज का काम

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसके स्वभाव की व्यञ्जना (expression) एक ऐसे सगठन के निर्माण और पुनर्निर्माण में होनी है जो अग्रणीतरीका से उसके

1 Ginsberg *op cit* p 40

2 H. W. Odum *Understanding Society* p 5

व्यवहार का नियंत्रण और शिक्षण करता है। इसी संगठन का नाम समाज है। उसका मुख्य कार्य व्यक्तियों के लिए एक प्रामाणिक व्यवहार का निर्धारण करना है और उसे मनवाना और कायम रखना है। मनुष्य के जीवन की हर आवश्यकता समाज में पूरी होती है। समाज साध्य नहीं साधन है।¹

सामाजिक जीवन

समाज व्यक्तियों से मिलकर बनता है। वे एक दूसरे के संपर्क में आते हैं चाहे वह संपर्क प्रत्यक्ष ही या परोक्ष। इस संपर्क के कारण उभय भ्रत क्रिया होती है जो उनमें दृढ़, स्थायी और स्थापक सम्बन्धों की स्थापना कराती है। इन सम्बन्धों की एक दूसरे के साथ क्रिया और प्रतिक्रिया होती है और सामाजिक क्रियाओं की अन्त क्रिया और अन्त सम्बन्ध से सामाजिक जीवन उत्पन्न होता है। समाज केवल सम्बन्धों में नहीं है वह सम्बन्धों से बंधे मनुष्यों में है। अतः व्यक्तियों में संचार के आधार पर होने वाले समागम को सामाजिक जीवन कहते हैं।

सामाजिक असामाजिक और समाज विरोधी

समाज से सम्बन्धित पन्ध्र व्यवस्था या व्यक्ति का सामाजिक (social) कहते हैं। यह समाज सेना से बना हुआ विशेषण है।

समाज से बाहर या पर वस्तु या पन्ध्र को अ-सामाजिक (asocial or nonsocial) कहते हैं। प्राकृतिक या जैविक संचार से सम्बन्धित बाई भी वस्तु आदि अ-सामाजिक कहनाएगी।

यह व्यक्ति जो समाज में अधिक ध्यानमिला है या समाज के प्रति, व्यवस्था और कल्याण का बढ़ाने की चिन्ता करता रह हम उस समाज प्रिय (social minded) मनुष्य कहते हैं। इसका विपरीत विचार रखने वाला या आधारण करने वाला व्यक्ति अ-सामाजिक (unsocial) कहा जाता है। यह समाज के प्रति अ-यत्नस्व (indifferent) का होता है। उन समाज का शत्रु या विरोधी नहीं कहा जा सकता।

जो वाय-व्यवस्था या व्यक्ति समाज के प्रति समृद्धि या कल्याण पर आघात करता है या उनकी प्रगति में जान-बूझ कर (deliberately) बाधा डालता है उसे हम समाज का शत्रु या समाज विरोधी (anti social) कहते हैं। चोर डाकू हत्यार आदि अपराधी समाज विरोधी कृत्य करते हैं।

समाज के दूसरे सदस्यों के साथ जो मनुष्य मित्रानुत्तर सहयोग और स्नेह में रहता है उसे हम मित्रानुत्तर या समाज प्रिय (social) व्यक्ति कहते हैं।

सामाजिक सम्बन्ध

मनुष्य के जीवन का प्रारम्भ समाज में होता है। निजुराज में वह अपने पालन पोषण के लिए अपने माता पिता के स्नेह-वर्ष्ण और अन्य सम्बन्धियों के सहयोग

और सहानुभूति का पात्र होना है। वयस्क होकर भोजन, कपड़ा आदि दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वह अनेक या अल्प परिवार के समूहों के सहयोग से आर्थिक कार्य करता है। शांति और सुव्यवस्था के लिये अथ लागू व साथ राजनीतिक क्रियाएँ करता है। इसी प्रकार अपनी तथा परिवार के आश्रित और स्वावलम्बी सदस्यों की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सांस्कृतिक, शैक्षिक, धार्मिक आदि क्रिया-कलाप करता है। पर यह सब कुछ वह समाज में रहकर प्रत्यक्ष रूप से अथ मनुष्यों के सम्पर्क में आकर करता है। अपने जीवन की रक्षा, निवाह और समृद्धि के लिये वह जो कुछ करता है उसमें उस अथ व्यक्तियों और उनके समूहों के महामा, प्रतिस्पर्धा या संधि की स्थिति में आना ही पड़ता है। इस स्थिति में अन्त क्रिया होती है जिसमें वे एक दूसरे के अनुभव से लाभ उठाते हैं या सब मिलकर विचार विनिमय से अधिक मजबूत और स्थिर जीवन दशाएँ बनाते हैं। यह मानसिक क्रिया व्यक्ति सचेत या अचेत होकर कर्तव्य है और कभी-कभी इसमें सम्मिलित होकर वाले व्यक्ति एक दूसरे से बिलकुल परिचित नहीं होते। किन्तु इन सभी व्यक्तियों में एक सामुदायिक भावना अवश्य होती है। सभी यह विभीषण विभीषण में समझते हैं कि वे अकेले नहीं हैं, उनके जमे और उड़ान से स्त्री-पुरुष उनके व्यवहारों पर प्रभाव डालते हैं और स्वयं भी प्रभावित होते हैं। दा या अधिक व्यक्तियों में उपरान्त प्रक्रिया से जो सम्बन्ध स्थापित होता है उसे सामाजिक सम्बन्ध (social relationship) कहते हैं।

महाश्वर और पेज कहते हैं कि सामाजिक सम्बन्धों में पारस्परिक अभिमान (mutual recognition) और क्रिया वस्तु या क्रिया में समान रूप से भागी होने की भावना (sense) होना आवश्यक है।

सामाजिक सम्बन्ध अमूर्त होते हैं। इनके जाल या प्रतिमान से समाज की रचना होती है। सामाजिक सम्बन्ध निरन्तर परिवर्तनशील हैं।

सामाजिक सम्बन्धों में क्या गुण होना चाहिये? ये सम्बन्ध अच्छे हो या बुरे। चाहे इनमें योग्यता में लड़ाई भगड़े हों और चाहे व्यक्तियों में प्रेम, स्नेह, सहानुभूति और सहयोग हो। मनुष्य में अन्त क्रिया का कोई रूप हो उससे सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं।

समाज के प्रकार

समाज के कई प्रकार हैं। कौटा मकोडा में समाज होता है। पशुओं का भी समाज होता है। इसी प्रकार आदिम मनुष्य और आधुनिक मनुष्य के समाज हैं। यदि हम कुछ मोटे तौर पर विभाजन करें तो मनुष्य का समाज और 'मनुष्यतर-समाज' दो श्रेणियों में सारे प्राणियों का विभाजन कर सकेंगे। कौट-समाज और पशु-समाज का मनुष्यतर (Sub-human societies) कहा जाता है। मनुष्य जाति (Human species) को दो प्रधान समाजों में विभाजित किया जाता है।

(१) आदिम समाज (Primitive Society)

(२) आधुनिक समाज (Modern Society)

समाजशास्त्र में आधुनिक मानव समाज का अध्ययन होता है ।

समाज में साम्य और भिन्नता दोनों होते हैं

समाज के किसी रूप को लीजिये उसमें साम्य और भिन्नता दोनों मिलेगी । सभी व्यक्ति समाज के सदस्य हैं । उनका जन्म, लालन पालन, और जीवन यापन मोटे तौर पर एक ही तरीके से होता है । उनकी शारीरिक और मानसिक रचनाओं में भी महत्वपूर्ण साम्य है । समूह और समितियाँ समाज के महत्वपूर्ण रूप हैं । इनका निर्माण तभी होता है जब व्यक्तिओं में सामान्य उद्देश्य हित और भावनाएँ होने हैं । इन्हीं समानताओं के कारण मनुष्य एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं और सहयोग तथा सहानुभूति लिखते हैं । गिडिंग्स (F H Giddings) ने कहा है कि "एक ही जाति के होने की भावना (consciousness of kind) से समाज का अस्तित्व सम्भव है । पूवज समाजों तथा अतीत के समाजों में इस चेतना का मूल स्रोत अधिक सम्बन्ध, युगवा या वंश रहा है । छोटे-बड़े समाज, राष्ट्र या अन्तर्राष्ट्रीय समाज सभी के यथाथ समाज होने के लिये उनके अर्थों में मूलभूत समानता की प्रतीति होना अनिवार्य है ।¹

परन्तु साम्य की भाँति भिन्नता भी सामाजिक व्यवस्था में सन्निहित है । यदि मनुष्यों में पूर्ण मानसिक और शारीरिक समानता होती तो शायद उनका सामाजिक सम्बन्ध चोटी या मधुमक्खी की तरह बहुत सीमित होते । उनमें परस्पर आदान प्रदान के लिये कोई गुंजाइश न रहे जाती और न पारस्परिकता ही होती । पति-पत्नी के यौन-सम्बन्धों तथा अन्य सम्बन्धों में इस भिन्नता को स्पष्ट देखा जा सकता है । एक-के-अभाव का दूसरा पूरक है । पारिवारिक व्यवस्था की भाँति सभी सामाजिक संगठन, मस्थाओं या व्यवस्थाओं में मनुष्यों में परस्पर आदान प्रदान और विनिमय होता है जिससे उनके अभाव और आवश्यकताएँ पूरे होते हैं ।

समाज में हर व्यक्ति दूसरे से कुछ लेता है और उस कुछ देता है । चाहे समाज आपस विषम अथवा अयायपूर्ण हो यह विनिमय होता ही रहना है । सामाजिक सम्बन्धों के सभी प्रतिमानों में भिन्नता की पारस्परिक भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है । ये भिन्नताएँ जिनके जन्म परिवार में अथवा स्वभावगत भिन्नताएँ (native differences) विशेष रसि (aptitude), क्षमता (capacity) एवं अभिरुचि (interest) में हो सकती हैं । अथवा प्रकार की भिन्नताओं का जन्म विशेषीकरण की प्रक्रिया से होता है । इन्हीं जन्मगत या विकसित भिन्नताओं का दृश्य हम अर्थ विभाजन में होता है ।

किंतु समाज में भिन्नता नहीं समानता प्रबल है

समाज में विद्यमान श्रम विभाजन पहले सहकारिता है तब विभाजन। समाज के सभी सदस्य—स्त्री पुरुष, और वच्चे, मानव हैं। उनके स्वभावा इच्छाया आवा क्षामा, आवश्यकताया और उद्देश्या में मूलभूत समानता है। इसी साम्य के कारण समाज की नींव पड़ सकी। हाँ, उनकी आवश्यकताया में विविधता अवश्य है और यह पूरा करन के तरीके भी विभिन्न हैं। यह भिन्नता उनकी जैविक एवं स्वभावगत भिन्नताया, पर्यावरण और आविष्कारक क्षमता (inventive capacity or ingenuity) की भिन्नता से सम्बद्ध है। समाज की स्थापना वृद्धि और भंगल में उनके तत्वा की समानता आधारभूत महत्व की है किन्तु यह कार्य इन्कार नहीं कर सकता कि भिन्नता से उनकी अभिवृद्धि होती है। समाज के विकास में भेदकरण और विशेषीकरण (differentiation and specialization) दोनों प्रक्रियाएँ कार्य करती हैं। सामाजिक संगठन में भेदकरण से पूर्व मनुष्या की समान आवश्यकताएँ अवश्यमेव रही हैं।¹

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है

अरस्तू (Aristotle) का यह कथन स्वयमिद्ध सत्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य समाज में जन्म लेकर उसी में पलता है। उसे जीवन की सफलताएँ समाज के सदस्य ही में मिल सकती हैं। मनुष्य अपनी रक्षा, सुविधा, पालन-पोषण, शिक्षा, सज्जा अवनर और समाज द्वारा प्रदत्त अन्य सवाया के लिये समाज पर निर्भर है। अपने विचार, स्वप्ना, और आकांक्षाया और शरीर तथा मस्तिष्क की व्याख्या के लिये भी मनुष्य अपने समाज पर निर्भर है। वह समाज के बाहर मनुष्य नहीं रहता। यदि उसे समाज से दूर या उसके बाहर फेंक दिया जाय तो उसकी मानव प्रकृति ही नष्ट हो जायेगी। मनुष्य प्राणिया में मनुष्य का अपनी गौरव मयी सम्मति और सत्कृति पर गव है। समाज में पृथक् रहकर उसे इन सफलताया से भी हाथ धाना पड़ेगा। सामाजिक मनुष्य के जीवन रहन और प्रगति करन के लिये सामाजिक सम्बन्धों की आवश्यकता है जो उसे समाज में रहन पर ही मिल सकते हैं।²

उपरोक्त विवेचन में स्पष्ट हो गया होगा कि मानव समाज के अध्ययन में तथ्या और उनके प्रति मान्यतात्मक मनोवृत्ति (normative attitude) दोनों का विचार करना चाहिए। सामाजिक-सांस्कृतिक यथायथा (socio-cultural reality) या समाज में दोनों ही समाविष्ट हैं।³

1 MacIver & Page *op cit.*, p 3

2 Normal humanity must have social relationships to make life livable
—MacIver & Page *op cit.* p 8

3 Kingsley Davis *Human Society* Macmillan New York (1908) p 49

समुदाय

समुदाय (Communities) और समितियाँ (associations) समाज के सबसे महत्वपूर्ण रूप हैं।

समाज के सन्ध्य मनुष्य समूहों और उपसमूहों (sub groups) में रहते हैं। एक-एक उपसमूह जिसमें समाज के अनेक लक्षण छोटे पैमाने पर पाये जाते हैं और जिनमें सामाजिक हित कम विस्तृत और कम एकीकृत होते हैं, समुदाय कहलाता है। एक गाँव, ग़हर, वंश (tribe) या राष्ट्र को समुदाय कहा जाता है। 'जब एक छोटे या बड़े समूह के सन्ध्य इस तरह साथ-साथ रहते हों कि उनमें एक या दो साथ सामाजिक न होकर वे सामाजिक जीवन की मूलभूत दशाओं में सम्मिलित (भागीदार) हों तो ऐसे समूह को समुदाय कहा जाता है।¹ समुदाय का जन्म स्वतः (spontaneously) होता है। इसकी स्थापना सोच-समझकर नहीं की जाती।

एक समुदाय के सन्ध्य का परिपूर्ण जीवन उसी में बीतता है। इन लोगों का जीवन एक सा होता है। इनकी आवश्यकताएँ समझाएँ और उद्देश्य सामाजिक होते हैं। इसमें इनकी प्रथाएँ परम्पराएँ, रूढ़ियाँ (mores) और संस्थाएँ—या इनके सामाजिक जीवन की सभी उपजें एक ही होती हैं। लोग अपने समुदाय में जन्म में मृत्युपर्यन्त रहते हैं। समुदाय का आधारभूत लक्षण यह है कि उनमें ही एक-एक व्यक्ति के सारे सामाजिक सम्बन्ध मिल सकते हैं। समुदाय की धारणा में भौतिक सभी पना गहरा अन्त व्यक्ति परिचय एवं संपर्क तथा सत्यापन (coherence) का कुछ विशेष आधार तो उस उपसमूह को पड़ोसी समूहों से पृथक् करता है अन्तर्निहित है। यद्यपि समुदाय में समाज की अधिकांश आत्मनिर्भरता (self-dependence) अधिकांश सामित होती है परन्तु उनमें अधिकांश गहरा समग्र तथा अधिकांश व्याप्त संवेदना होती है। उनमें एकता का विशेष मूल भी हो सकता है जन्म प्रजाति (race), राष्ट्रीय उत्पत्ति अधिकांश सामित सन्ध्य।²

लुम्ले (F. E. Lumley) समुदाय की यह परिभाषा देता है 'यह मनुष्यों का एक स्थायी स्थानिक सग्रह (permanent local aggregation) है जिसमें अनेक तथा गमान् हित हान हैं और जिनकी सेवा संस्थाओं का एक पुंज (constellation) करता है।'³

'समुदाय में एक निश्चित भूभाग (territory) में रहने वाली वह सम्पूर्ण जनसंख्या आती है जो एक सामाजिक नियम पद्धति से नियमित हान बात जीवन

1 Ma Iyer & Page Ibid p 9

2 H P Faure in Dictionary of Sociology p 60

3 F E Lumley Principles of Sociology p 209

व्यापार (intercourse of life) से एकभूत होनी है।¹ यह परिभाषा गिंसबर्ग ने दी है। इसका सबसे अच्छी परिभाषा कहा जा सकता है। वह आगे लिखता है कि समुदाय की एक विशिष्ट रचना होना अनिवार्य है। अर्थात् सदस्यों में परस्पर सम्बन्ध का निर्धारित करने वाले व्यवहारों के निश्चित नियम होने चाहिए। एक छोटा समुदाय बड़े समुदाय का अंग हो सकता है। अर्थात् समुदाय के भीतर समुदाय (communities within a community) हो सकते हैं। जैसे भारतीय समाज एक समुदाय है। इसके भीतर अनेक नागरिक, ग्रामीण धार्मिक आदि समुदाय हैं।

सक्षेप में, समुदाय समाज का वह समूह या उपसमूह है जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहता है और जिसके सदस्य एक सामान्य जीवन की मौलिक दशाओं में भाग लेते हैं। उनमें एक होने की भावना होती है और वे परस्पर मिल जुल कर सारा जीवन उसी समूह में बिताते हैं। सदस्यों के व्यवहार को नियमित करने के लिए विशेष संगठन छोटे समुदायों में नहीं होते। हाँ, उच्च या विकसित समुदायों में ऐसे संगठन प्रमुख लक्षण बन गए हैं। हर एक समुदाय का एक नाम होता है।

भारत में हिन्दू इस्लाम और ईसाई धर्म के अनुयायी पृथक् समुदायों के सदस्य कहे जाते हैं। कभी कभी भारत की सभी परिगणित जातियों को परिगणित समुदाय (scheduled caste community) कहा जाता है। समाज के विपरीत समुदाय मूल है। वह एक विशिष्ट मानव समूह का नाम है।

समुदाय के आवश्यक तत्व

मकाइवर और पज के अनुसार समुदाय के दो आवश्यक तत्व होते हैं —

(१) वास स्थान (locality) तथा (२) एक्य भावना या सामुदायिक भावना (community sentiment)। परन्तु समुदाय के लिए लोगों का एक ही स्थान पर रहना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि उनमें समुदाय भावना का होना। एक ही स्थान पर रहने वाला भी सामान्य भावना (common sentiment) नहीं भी हो सकती है। साथ-साथ एक ही स्थान पर रहते हुए कुछ लोग जो उस स्थान (locality) तथा वहाँ के निवासियों से ममत्व (affinity) नहीं होता। उनके सहवास में यदि एक सामान्य भूमि पर सामान्य जीवन में समभाव से सम्मिलित होने की भावना नहीं है तो वे समुदाय के अंग नहीं होते। उदाहरणार्थ

1 Morris Ginsberg *op cit* p 41 The community may be described as the entire population occupying a certain territory (or in the case of nomads habitually moving in association) held together by common system of rules regulating the intercourse of life — W Green K Davis and K Young have also give similar definitions of community All lay stress on four essential elements of community namely (i) a cluster of peoples (ii) a common territory (iii) a common way of life and (iv) all inclusive or almost self sufficient life

भारत के दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास, बम्बई या अन्य बड़े नगरों में रहने वाले विदेशी नगरों के समुदायों के अंग नहीं होते। वे वहाँ कुछ प्रयोजनवश रहते हैं। उनका जीवन और संस्कृति इन नगरों के निवासियों से भिन्न होते हैं। नगर के समुदाय के साथ जीन मरन या सुख-दुःख की भावना का इतना अभाव होता है। दूसरे लक्षक समुदाय के चार आवश्यक तत्त्व मानते हैं—(१) एक सामान्य स्थायी भूभाग, (२) नागा का एक समूह (३) सामान्य जीवन, और (४) स्वयं पूरा जीवन।

समुदाय के सभी सदस्यों में अपना वास्तविक या भूमि के प्रति स्वाभाविक ममत्व होता है। उस परंपरागत जीवन के प्रति उनकी श्रद्धा होती है तथा उसके इतिहास में गहरे। उसी से उन्हें प्रतिक्षण जीवन संप्रदाय में प्रेरणा मिलती है। वे उनकी उन्नति और समृद्धि के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं क्योंकि उन्हें यह भली भाँति पता रहता है कि उनके व्यक्तिगत जीवन का विकास और उन्नति समुदाय के विकास और उन्नत जीवन में ही संभव है।

सीमावर्ती समुदाय

आश्रम विहार (monasteries) या मठ जेल तथा आवासी समूह (immigrant group) समुदाय के सीमावर्ती (border line) उदाहरण हैं। उन्हें हम अर्ध-समुदाय (semi-communities) भी कह सकते हैं।

छोटे और बड़े समुदाय

सामाजिक विकास के साथ छोटे-छोटे समुदायों से बड़े समुदायों का विकास होता जाता है। प्राथमिक समुदायों जैसे गाँव, जाति, विरादरी से बड़े समुदाय नगर, राज्य (state) और राष्ट्र (nation) बनते हैं। अन्त में सारे विश्व के मनुष्य मात्र का एक समुदाय बन जाता है जिसमें हम विश्व-समुदाय (world community) कहते हैं। मनुष्य छोटे और बड़े सभी समुदायों का सदस्य होता है। बनता व्यक्ति का छोटे या प्राथमिक समुदायों से अपनापन या ममत्व अधिक गहरा होना स्वाभाविक है किन्तु जब कभी छोटे और बड़े समुदायों के हितों में संघर्ष होना का अवसर उपस्थित होता है तो वह गाँव, विरादरी या जाति की अपेक्षा राष्ट्र, राज्य या क्षेत्र (region) को अधिक महत्व देता है। प्रायः देखा गया है कि सामाजिक विभाग के साथ मनुष्य का समुदाय भावना विकसित होती जाती है। एकात्मिकता में छोटे-छोटे (small communities) टूट जाते हैं।

छोटे समुदायों के टूटने के कारण

छोटे समुदायों के टूटने के मुख्य चार कारण हैं—सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक।¹

1. दगिए विश्वरगम्या (पनुवाद), समाज, नवन प्रकाशन मन्दिर प्रकाश (१९६४), पृष्ठ १२

(१) सामाजिक कारण—ये समाज के गतिशील स्वभाव में निहित हैं। समाज गतिशील (moving), बढ़ता हुआ (growing) और क्रियाशील या गतिशील (active or dynamic) है। परिवर्तन उसका स्वभाव है। अतएव सामाजिक परिवर्तन में छोटे दायरे (smaller circles of society) सिर्फ प्रारम्भिक अवस्था में ही रह सकते थे। उन्नत अवस्थाओं में इन दायरों में छोटे समुदायों की प्रधानता नहीं रहती। मनुष्यों के सामाजिक सम्बन्धों का क्षेत्र बढ़ता जाता है। उनके सहयोग एवं सहानुभूति अपनी जानि विरादरी या समुदाय की छोटी परिधि (circumference) से निकलकर बड़ी परिधि में प्रवेश करते हैं। यदि ऐसा न हो तो विकसित समाज के विस्तार (extended) सपके का कोई अर्थ न रह जाये। सामाजिक विकास की प्रक्रिया में प्राथमिक समूह—गाँव, परिवार, कबीला, जाति या विरादरी—स माध्यमिक समूह या बड़े समुदायों का विकास होता है। व्यक्ति दोनों प्रकार के समुदायों—छोटे और बड़े का सदस्य होता है। दोहरी सन्धिता ही उसके सम्बन्धों (affiliations) को विस्तृत तथा मजबूत (affinity) को उदार बना देती है। व्यक्ति अपने परिवार का भरण पोषण करता है, जानि विरादरी से सम्बन्ध रखता है परन्तु ही विकसित जीवन की अनेक समितियों और संस्थाओं—आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि—का सदस्य भी बनना है। इनके प्रति उसे कुछ दायित्व निभाने पड़ते हैं। इनमें से कुछ जिम्मेदारियाँ वह स्वेच्छा से और कुछ का परम्परागत स्वीकार करता है। इन जिम्मेदारियों को निभाने के लिए उसे काम करना पड़ता है। इसी आचार-व्यवहार में वह छोटे दायरों से सम्बन्ध कम करता जाता है और समाज के बड़े दायरों के निकट चला जाता है।

(२) आर्थिक कारण—छोटे समुदायों के महत्व कम होने के आर्थिक कारण जनसंख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ नए पेशा अथवा उद्योगों का विकास है। जनसंख्या का जान पर समाज के जीवन-यापन के लिए परम्परागत पेशे अपर्याप्त हो जाते हैं। जब पारिवारिक पेशा, गृह-उद्योग तथा खेती से प्राप्त साधन पर्याप्त नहीं होने तो मनुष्य अपने छोटे सामुदायिक जीवन के बाहर जाकर नए पेशा और व्यवसायों का तलाश करता है। समृद्ध प्राकृतिक साधनों को उपयोग में लाने के लिए लकड़ी काटता है, खाना में काम करता है, उद्योग में काम करता है और भ्रमण अपने परिवार, गाँव तथा विरादरी से दूर बसे समुदायों, नगरों, का सदस्य हो जाता है। औद्योगिक उन्नति में शहरों में, नदियों और समुद्रों के तटों पर बड़े-बड़े कारखाने खड़े हो गए हैं। उनमें काम करने के लिए लाखों मजदूर अपना गाँव और क्षेत्र छोड़कर वहाँ जा बसते हैं। विभिन्न गाँवों, क्षेत्रों, विरादरी तथा जातियों के होने पर भी उनका जब एक-साथ मिलकर काम करना और रहना पड़ता है तो उनके सङ्कुचित विचार बदल जाते हैं। उनमें दृष्टिकोण की उदारता तथा विस्तृत सामुदायिक भावना जागृत हो जाती है।

आर्थिक उत्पत्ति में अंतर्राष्ट्रीय उद्योग और व्यापार सुलभ कर दिया है। अब एक दशक में नागरिक दूसरे दशक में उद्योग और व्यापार करते हैं। इन परिस्थितियों में सङ्गठित वा द्योत समुदायों का ही सामाजिक सम्बन्धों में प्रधानता देना मनुष्य के लिए कष्ट सम्भव हो सकता है? उस जाति-पाति, ऊँच नीच, अग्रज पराज की सङ्गठित भावना को विस्तृत समाज और समुदायों के प्रति एक हानि की भावना (sentiment of oneness) के समर्थन देना पड़ता है। उसी में उसका बचाव है और उसी में उसकी प्रगति।

(३) प्राविधिक कारण—सामाजिक सम्बन्धों के छोटे दायरों के टूटने का तीव्र कारण प्राविधिक (technological) है। नए-नए आविष्कारों में यातायात और संचार (transport and communication) को इतना उत्तम कर दिया है कि आज समस्त मनुष्य एक छोटा सा समुदाय हो गया है। समय और दूरी के अंतराधों (obstacles) को मानव ने उखाड़ फेंका है। एक देश के नागरिक महासागरों के दूसरी पार बसें गूढ़ देशों के नागरिकों से शारीरिक सम्पर्क ही नहीं स्थापित करते बल्कि उनका विचारों, प्रथाओं, विश्वासों तथा भावनाओं से आदान-प्रदान भी करते हैं। इस आदान-प्रदान का सहज परिणाम उनके मन और हृदय में समीपता का जन्म है जिससे अंतर्राष्ट्रीय घनिष्टता बढ़ गई है। रेल, माटर हवाई जहाज आदि यातायात के साधनों में दशक के अंतर-बाह्य सभी स्थान एक दूसरे के निकट आ गए हैं। सड़कें व माधनों जैसे टेलीफोन तार रेडियो मिनेमा और टेलीविजन में मनुष्य को छोटे दायरों से निकालकर बड़े दायरों में सम्मिलित होने की प्रेरणा ही नहीं दी बल्कि मिलकर बांध करने का अवसर भी दिया है।

(४) सांस्कृतिक कारण—आधुनिक सामाजिक जीवन के बड़े समुदायों के महत्त्व बढ़ जाने का चौथा कारण सांस्कृतिक है। ज्ञान विज्ञान के प्रसार के साथ मनुष्य की भक्ति (loyalty) छोटे समुदायों की ओर कम होती जाती है। वैज्ञानिक उत्पत्ति में सभी समाजों को लेकर एक प्राणण में उड़ाने का प्रयत्न किया है। मानव की मानस में यत्न एवम् (urge) रहो है कि वह अपने पारिवारिक तथा आध्यात्मिक जीवन को अधिकाधिक समृद्ध करे। अतः इस तीव्र इच्छा का समाधान उम्र ज्ञान विज्ञान के प्रसार में मिला है। मनुष्य का सामाजिक राजनितिक ज्ञान विभिन्न कारणों तथा विज्ञान—य सभी उम्र ज्ञान राष्ट्र और राज्य का परिधि में निकालकर मरिच्छा उन्नत है। वही वा ज्ञान, मनुष्य के सामाजिक नियम कौटिल्य का अर्थशास्त्र (राजनीति और शासन) वाल्टोविन और थॉमस भवभूति और वात्सल्य व महानाथ्य युद्ध शास्त्र और गांधी का शासन भारत में ही नहीं मनुष्य के लिए म पत्र गए हैं। इस प्रकार रूस (Rousseau) गतिविधियों—यूरोप एंडिया प्लेन सुकरात दान, गटे मरिन्सियर शमर गाम्पेन्स सभी के कारणों और गणनात्मक में सारा विश्व लाभ उठा रहा है। ज्ञान, मनीष, वसा, विज्ञान—यही वा सांस्कृतिक है। सांस्कृतिक के विकास

और प्रसार ने मानव की पृथक्ता या एकान्तता (isolation), सङ्कुचितता (narrowness) और पराधीनता (dependency) पर भयानक आघात किया है। सस्कृति का मुख्य कार्य मानव के जीवन को विशाल स्वतंत्र और प्रयोजन युक्त (purposeful) बनाना है। भावस की समाजवादी विचारधारा केवल जमनी में न रहकर ससार के सुदूर प्रदेशों में सम्मानित हो रही है। सस्कृति में उत्पत्ति और प्रसार होने पर मनुष्य छोटे समुदायों की रीति रिवाजों या प्रथाओं परम्पराओं, मूल्यों आदर्शों तथा विचारों का छोड़कर बड़े समुदायों की रीति रिवाजों परम्पराओं, मूल्यों आदर्शों तथा विचारों का तरजीह देता है। यही तो छोटे समुदायों तथा सङ्कुचित सामाजिक समूहों के वृत्त (circles) का ताड़ देना है। इनके टूटने से विस्तृत और विशाल सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है। समाज के विकास की प्रक्रिया एक प्रवाह है जो अनवरत (continuous) है और जिसका विस्तार सदैव बढ़ता जाता है। इस प्रवाह का रुक करना अथवा उसमें अवरोध डालना मनुष्य के अस्तित्व की जड़ काटना है।

क्या छोटे समुदाय नष्ट हो रहे हैं ?

अन्त में, हम अपने पाठकों का चेतावनी देना चाहते हैं कि वे उपरोक्त विवरणों से यह निष्कर्ष न निकालें कि मानव समाज में छोटे समुदायों या दायरों का विनाश एक निश्चित अवश्यता है। यह निष्कर्ष असंगत और अत्यावहारिक होगा। परिवार गाँव, विरादरी आदि छोटे समुदायों समाज की नींव हैं। मानव अपने अस्तित्व शक्ति की निरोधकता में परिवार में ही शरण पाता है। उसका व्यक्तित्व का विकास परिवार में ही प्रारम्भ होता है। उसका गाँव या नगर में रहना भी अनिवार्य है। वह जहाँ बड़ी भी रहेगा उस वाम-स्थान (locality) चाहिए और जिनके साथ रहेगा उनमें और स्वयं में सामाजिक भावना की जागृति भी अनिवार्य है। इसलिए जिन प्राथमिक समूहों में व्यक्ति रहेगा वे छोटे समुदाय ही तो होंगे। अतएव स्पष्ट है कि प्राथमिक समूहों या छोटे समुदायों का उन्मूलन कभी सम्भव नहीं है। वे व्यक्तित्व का विकास में प्राथमिक और स्वाभाविक कारण हैं। यह सच है कि व्यक्ति की आवश्यकताओं का क्षेत्र में विस्तार होने पर उसका सामाजिक सम्बन्धों का त्याग बनेगा। सामाजिक सम्बन्धों की परिधि बढ़ने पर व्यक्ति के व्यक्तित्व और कार्य में जान है। इस परिस्थिति में छोटे दायरों से बड़े दायरों में जाना उसके लिए स्वाभाविक हो जाता है। और इस व्यापार में उसकी सदस्यता अनेक रूपों में उसके समूहों या लगाव (affiliations) जटिल हो जाती है। इससे बड़े समुदायों का महत्त्व जीवन में बढ़ जाता है। किन्तु छोटे समुदायों का उन्मूलन हो जाना सम्भव नहीं।

समाज और समुदाय में अंतर

‘समाज’ सामाजिक सम्बन्धों का जान है। सामाजिक सम्बन्ध वास्तविक होते हुए भी अमूर्त होते हैं। इसलिए समाज अमूर्त है। एक निश्चित भू-भाग में बड़े

समाज 'एक' विशिष्ट समाज होता है उसे ही हम 'समुदाय' कहते हैं। 'एक समाज' राष्ट्रीय समुदाय का पयायवाची है। समुदाय समाज का एक भाग होता है। यह मनुष्या का एक समूह है और इसलिए मूलनिधान है। वह सदैव स्थायी निश्चित भूभाग में रहता है।

(१) एक समाज में कई समुदाय होते हैं।

(२) समाज के लिए सामुदायिक भावना या एक होने की भावना का होना अनावश्यक है। समाज व्यक्तियों के चेतन एक अचेतन व्यवहार से निष्पन्न सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। व्यक्तियों में एक होने की भावना का होना जरूरी नहीं होता। समुदाय में सामुदायिक भावना का होना अनिवार्य है।

(३) समाज की अपेक्षा समुदाय में सामाजिक हित कम विस्तृत (extensive) और कम समन्वित (coordinated) होते हैं।

संघों में समुदाय के निर्माण (या स्थापना) के लिए एक निश्चित भू-भाग में बसने वाले व्यक्तियों में सामाजिक जीवन और एक होना की भावना का होना आवश्यक है। समाज के लिए एक निश्चित भू-भाग तथा व्यक्तियों में एक होने की भावना का होना आवश्यक नहीं है। समाज मूलतः है और समुदाय मूलतः। समाज के मूल और मूल रूप को हम राष्ट्रीय समुदाय कहते हैं। जिसमें अनेक गाँव, नगर तथा प्रादेशिक समुदाय शामिल होते हैं। समुदाय या समुदायों में जो सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। उनकी व्यवस्था और विधा को समाज कहते हैं।

समूह (Group)

समूह सामाजिक व्यक्तियों का एक संग्रह (collection) को कहते हैं जिसमें उनके स्पष्ट पारस्परिक सम्बन्ध बन जाते हैं। उमने सम्बन्धों में पारस्परिकता (reciprocity) होता है। समूह द्वारा किसी विशिष्ट (particular) हित को पूरा करने के लिए बनता संगठन का संघ (association) कहते हैं। समाज मूलतः में मिनतर बना है। सामाजिक समूहों के अनेक रूप और प्रकार (forms and types) होते हैं जिनमें वर्ग (class), जाति (caste), गोत्र (clan), वंश (tribe) भीड़ (crowd) प्राथमिकता और माध्यमिक समूह (primary and secondary groups) और महासंघ (great associations)। समूहों द्वारा व्यक्ति सामाजिक जीवन में सम्मिलित होते हैं। समूह समुदाय से अलग नहीं होते। समूह सामाजिक जीवन की इकाई है। समूह में ही हर व्यक्ति का सामाजिक जीवन प्रारम्भ होता है और उन्हीं में उनका अन्त होता है।

संघ (Association)

महाइयत में निगा है कि मनुष्य किसी कार्य को करने के लिए तीन विकल्प (alternatives) का अन्त सत्ता है। पहला, वह किसी दूसरे मनुष्य की सहायता

के बिना स्वतंत्र रूप से, अपन आप जो कुछ चाहता हो उसे पूरा करे। दूसरा, अपन उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन सभी लोगों से लड़ जा उसकी पूर्ति में बाधक होने हैं। तीसरा उपाय यह है कि वह अपन उद्देश्य की मिद्धि में समाज या समूह के अथ व्यक्तियों का सहयोग ल। पहला उपाय व्यक्तिगत या असामाजिक (an individual or non-social) है। दूसरा रास्ता समाज विगर्ती (anti social) है क्योंकि उससे समाज में निर्माण न होकर विनाश का भाग चुन जाना है। तीसरा रास्ता ही जिसमें वह दूसरा का सहयोग लेता है सामाजिक कहा जा सकता है। सहयोग के रास्ते को अपनाकर जब एक समूह या समुदाय के कुछ सदस्य किसी विशेष उद्देश्य की सफलता के लिये एक निश्चित भाग को अपनाते हैं और उस पर सभी सहयोग या सहकारिता से चलते हैं ता उनका कार्य करने में जिन सामाजिक संगठन का विकास होगा उसे सफल कहा जायगा।

परिभाषा—सब समूह अथवा समुदाय के छोड़े या अरिच सदस्या द्वारा किसी विशिष्ट हित¹ की मिद्धि के लिये निर्मित संगठन होता है। मैनाइवर ने कहा है कि सभ सोच विचार कर स्थापित (या निर्मित) एक गम संगठन का कहन हैं जिनके सम्म्य अपन किसी हित के समूह का सामूहिक रूप से प्राप्त करने का

- 1 हित (interest) से हमारा अभिप्राय किसी ऐसे उद्देश्य या ध्येय (aim or objective) से है जिसकी प्राप्ति के लिये हम कार्य करने के लिये प्रेरित होते हैं। हमारी बहुत से इच्छाएँ (desires) होती हैं जो कभी पूरी नहीं हो पाती और जिनका हम भ्रम, असामयिक अथवा खतरनाक व निवृष्ट (evil) कह कर दबा देने हैं या जो अप्राप्य (सन्ताप से पर) हानी हैं और इमनिच उन्हें पूरा करने के लिये हम कार्य की प्रेरणा नहीं मिलती। हित में मनुष्यि प्राप्ति को किसी भी प्रकार की कम या अधिक चेतना समाहित रहती है और साथ ही उस दिशा में किया गया कुछ प्रयत्न। जय मनुष्या का सामाय हित जाना है ता व उसकी मनुष्यि के लिये समिति बनाने हैं। उदाहरण के लिये काम हित (sex interest) का सामान्य रूप से रखने वान स्त्री-पुरुष परिवार नामक समिति बनाने हैं। सामूहिक हित का सामायन मानने वाले राजनीतिक दल बनाने हैं। हित दो प्रकार के हान हैं—(१) अन्तम हित (ultimate interests) जो साधारण मानविक समानता पर निर्भर हैं तथा जो प्राकृतिक प्रकार के हान हैं जैम सभ्राज-नेवा समितिया, सामाजिक गार्थिया के साधारण में हित तथा काम हित (sexual interest) और मान पोत्र में हित (nonsexual interests), (२) व्युत्पन्न हित (derivative interests) जो मुख्यतया अपन में पर हितों की पूर्ति के लिए अपनाये जाने हैं। उदाहरणाय, आर्थिक, राजनतिक, सामुदायिक सामूहिक और निश्चित हित।

ध्यय रखते हैं। वागाड्म का भी यही विचार है। गिंसवग के अनुसार, "सब सामाजिक व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो आपस में एक सामान्य सगठन के द्वारा सम्बन्धित है जिस उद्देश्य के निश्चित साध्य या निश्चित साध्या (specific ends) की प्राप्ति के लिये विरासत से पाया है अथवा जिसका स्थापन किया है।"¹

समुदाय में मनुष्या के सभी हित और सम्बन्ध समाहित हात है चाहे वे सगठित हों अथवा अमगठित समितियों का आधार निश्चित प्रयोजन (specific purposes) होते हैं वे किसी निश्चित साध्य की पूर्ति के लिये बनती हैं। सभी समितियों स्वभाव (nature) में प्रयोजनारतम होती हैं।

समुदाय का आधार सामान्य हित (common interests) होते हैं। सब का आधार इन सामान्य हितों में से कई विशिष्ट हित (particular interest) होता है। व्यापार कर लाभ बचाना शिक्षा का प्रसार, धर्म प्रचार, मनोरंजन की व्यवस्था मजदूरी बढ़ाने के लिये सगठन बनाना अथवा किसी समूह की राजनैतिक या धार्मिक या सांस्कृतिक उन्नति करना ये सब निश्चित हित (specific interests) हैं। व्यापार के लिये कम्पनी (प्रमडन) शिक्षा प्रसार के लिये कमेटी, धर्म प्रचार के लिये धार्मिक सगठन जैसे आयसमाज कथार्थिक या प्रोटेस्टेंट दल, मनोरंजन के लिये क्लब विद्यार्थिकल पार्टी (नामक दल) मजदूरों का उत्थान करने वाले श्रमिक सघ (trade unions) अथवा समाजशास्त्र अथवा किसी ज्ञान शाखा के लिए अध्ययन प्रख्यापन सत्र और प्रगति कराने के लिये निर्मित सगठन नृत्य-संगीत के लिये बनती सांस्कृतिक या कला-समितियाँ सभी सगठन सघ हैं। परिवार एक सघ है छोटे राज्य भी। सघ से हम मनुष्या के समूह का बोध होता है इसलिये वह मूल होता है।

उपसमुदाय

एक ही समुदाय में कई उपसमुदाय हो सकते हैं। कर्म के अन्तर्गत या किसी नगर के अन्तर्गत नागरिकों का एक समुदाय है किन्तु इस समुदाय में पारसी हिन्दू आदि भिन्न भिन्न धर्मों के लोग रहते हैं जो कि उपसमुदाय (sub-communities) कह सकते हैं। प्रत्येक समुदाय में वे समितियाँ हो सकती हैं। सघ समुदाय की आंशिक रूप (partial forms) हैं। कुछ व्यवसाय वाले सघ बनाते हैं जैसे डाक्टरों का सघ, शिक्षकों का सघ, मजदूरों का सघ आदि। एक व्यक्ति जो डाक्टर है अपने समुदाय में साधारणतया सम्बन्ध होने के साथ डाक्टरों का समिति बनाने, धार्मिक पार्टी धार्मिक सघ राजनैतिक दल आदि सघ का सम्बन्ध बन सकता है।

1 Merton Ginsburg *Psychol of Society* London 1921 p 101

ऐच्छिक सदस्यता

समुदाय की सन्स्यता अवकल्पिक (involuntary) है जबकि सघ की सन्स्यता पूर्णतया ऐच्छिक या धकल्पिक (voluntary or optional) है। परिवार तथा राज्य दो ऐसे सघ हैं जिनकी सन्स्यता व्यक्ति के लिय अवकल्पिक है। अथवा सघ का सदस्य होना या न होना व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है। वह जब चाहे जिस सघ का सदस्य बन और जब इच्छा हो उन छोड़ दे। सघ स्थायी, अस्थायी तथा अस्थायी सभी प्रकार के होते हैं।

निश्चित नीति और काय पद्धति

चूँकि सघ का निर्माण निश्चित हितों की पूर्ति के लिय होना है इसलिए उनके सन्स्य निश्चित नीति और काय-पद्धति अपनाते हैं। अथवा उनमें से वे एक प्रवचक समिति या कार्यकारिणी चुनते हैं। कार्यकारिणी का कार्य समिति के हितों की निश्चि के लिए धन नियमों का पालन करना होता है। सघ के पदाधिकारी समिति के सामान्य सदस्यों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार सघ की कानूनी स्थिति होती है। सघ अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए धन या सम्पत्ति की स्वामिनी बन सकती है। उनके सदस्य पृथक्-पृथक् कार्य करते हुए भी एक ही नीति का अनुसरण करते हैं अर्थात् उनके कार्यों की एक दिशा होती है और सभी निर्दिष्ट उद्देश्यों के साधन हनु सामूहिक रूप से कार्य करते हैं। वे सब मिलकर एक सत्ता (authority) को जन्म देने हैं, इसकी कानून में स्वतंत्र स्थिति (independent position) या कानूनी व्यक्तित्व (legal personality) है। सघ के सदस्यों के पृथक्-पृथक् अधिकारों तथा समिति के अधिकारों में परस्पर विरोध नहीं होता है।

सघ विशिष्ट हितों की पूर्ति को एवन्ती हैं

सघ वे साधन (means) अथवा अभिकर्ता (agencies) हैं जिनके द्वारा उनके सदस्य समान अथवा सम्मिलित (similar or shared) हितों की पूर्ति करते हैं। ऐसे सामाजिक संगठन वास्तव में नानाओं के द्वारा नहीं बल्कि अधिकारियों या प्रतिनिधियों (representatives) के द्वारा—जो अभिकर्ता का काम करते हैं—अपना काम चलाते हैं।¹ आधुनिक समाज में महासघ (great associations) जैसे आर्थिक संगठन कम्पनी² तथा कारखाने³, राज्य और धार्मिक संगठन का बहुत अधिक महत्व है।

सघ, समाज और समुदाय

समाज मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। सघ मनुष्यों के एक समूह को कहते हैं जिसका संगठन किसी एक विशिष्ट उद्देश्य (object) के

1 MacIver & Page *op cit* p 14

2 प्रमण्डल

3 निगम

पूनि के लिए हाता है। समाज के संगठन का निर्माण मनुष्या के चेतन और अचेतन सम्बन्धों पर निर्भर रहता है। जहाँ वहाँ भा मनुष्य समूह में रहते हैं उनका एक समाज बन जाता है। सभ का संगठन स्वतः ही नहीं हो जाता। वह विचारपूर्वक स्थापित किया जाता है। दूसरे, समाज का सदस्य होना या न होना हमारी स्वेच्छा पर निर्भर नहीं है। समाज के बाहर रहने पर हमारा जीवन ही नहीं रहेगा और रहेगा भी तो हम में मनुष्योचित कोई गुण या लक्षण न होगा। सभ की सदस्यता व्यक्ति की स्वच्छा पर निर्भर रहती है। मनुष्य एक या अनेक सभों का सदस्य हो सकता है। तामें समाज में व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन बीतता है। उसमें सभी काय-कलाप अपने समाज में होने रहने हैं। सभ एक ऐसा समूह है जिसमें व्यक्ति का आशिक जीवन ही बीतता है। अर्थात् मनुष्य अपने जीवन के एक या दो-तीन विशेष काय ही समिति में रहकर कर पाता है। समाज में व्यक्ति का जीवन स्वयं पूर्ण (self-sufficient) है किन्तु सभ तो कवल उसमें जीवन के एक विशिष्ट परिसर सम्बन्धित रहता है। चौथे समाज चिरस्थायी है। मनुष्य जन्म और मृत है किन्तु समाज सत्य कायम रहता है। सभ का अस्तित्व पूरुणतया उसकी सम्स्था के अस्तित्व पर निर्भर है। यदि सभा साम्य एक सभ का छोट-मोटा वह नष्ट हो जायगा। सभ एक अस्थायी संगठन है।

समुदाय समाज का मूल तथा छाटा (या बराबर का) रूप है। भारतीय समाज में कई समुदाय हैं और हर समुदाय में अनेक समितियाँ हैं। समुदाय स्वतः स्वाभाविक रूप से विकसित होता है। सभ की स्थापना विचारपूर्वक की जाती है। एक समुदाय के सभी सदस्यों का आचरण उसका साम्य रहना ही पड़ता है। सभ तो साम्य होता या न होना व्यक्ति की स्वच्छा पर निर्भर है। समुदाय के दो प्रमुख आधार हैं—सामान्य आवश्यकताएँ और एक हीन का भावना। सभ का आधार अनेक एक है—एक विशिष्ट हित या उद्देश्य। समुदाय में हमारा जीवन प्रायः आत्म भक्ति होता है। मनुष्य के जीवन की अधिकाधिक आवश्यकताएँ—विशेषकर प्राथमिक आवश्यकताएँ समुदाय में पूरी होती हैं किन्तु समिति में कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति होती है। अतः ही समुदाय स्थायी होता है परन्तु सभ अल्पकालीन अस्थायी।

संस्थाएँ (Institutions)

हर एक समुदाय में कुछ सामान्य हित (general interests) होते हैं और कुछ विशिष्ट हित (particular interests)। विशिष्ट हितों की पूर्ति करने के उद्देश्य से सभ कायम है। ये सभ का साधन (means) कायविधि (procedure) या प्रणाली (systems) अपनाता है उनका स्थायी रूप का संस्थाएँ कहते हैं। संस्थाएँ समुदाय और मन द्वारा स्थापित होती हैं। महात्मा का विचार है कि संस्थाएँ विशिष्ट हितों का मूल रूप से कायविधियाँ (procedures) के रूप (forms)

हैं। अर्थात् सस्याआ से उभका अभिप्राय "कायविधि की दशाआ अथवा स्थापित रूपा स है जा मामूहिक क्रिया की विशेषता हाती है।"¹

सस्याआ की उत्पत्ति

जब एक सामान्य काय (common task) को पूरा करने के लिये एक समुदाय या मंत्र के कुछ या अधिक व्यक्तियाँ महयाग होता है तो उनके बीच कार्य विभाजन हा जाता है। साथ ही कायविधि के नियम निश्चित हो जाते हैं। इसका परिणामस्वरूप उन लोगों के सम्बन्ध निश्चित और स्थिर हो जाते हैं। इन सम्बन्धों की स्थिरता को जन्म देने और कायम रखने के लिये कुछ प्रथाएँ नियम काय-मदलियाँ आदि विकसित हो जाते हैं। इही मंत्र की सारभूत पद्धति को सस्या कहते हैं।

सब जीवित वस्तुएँ होती हैं जिनमें सामान्य ध्यया (ends) के लिए प्रयत्न करने वाले व्यक्ति शामिल हाते हैं। सस्याएँ इन व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों के रूप (form of relations) हैं। उह समाज द्वारा स्वीकृत (sanctioned) काय के ढंग (ways of action) भी कहा जा सकता है। सब सस्याआ का बनाते और चलाने हैं। सस्याआ की प्रतिक्रिया (reaction) सदा पर हाती है।²

परिभाषा—कूल (C H Cooley) ने सस्या की परिभाषा करते हुए लिखा है—'एक मस्या किसी अत्यन्त महत्वपूर्ण सन्त अनुभव होने वाली (persistent) आवश्यकता की पूर्ति के लिये सामाजिक विरासत (social heritage) में स्थापित व्यवहार का जटिल तथा एकभूत संगठन है।

हमारे विचार से सामूहिक जीवन की हर महत्वपूर्ण तथा बार-बार होने वाली आवश्यकता (persistent need) की पूर्ति के लिये सामूहिक क्रिया की प्रणालियाँ के प्रभावाँ और प्रतिष्ठित रूपा (effective and established forms of procedures of group activity) को सस्याएँ कहते हैं। यह परिभाषा निम्नलिखित परिभाषा के समकक्ष है।³ परिवार विवाह और सम्पत्ति प्रमुख धरेलू सस्याएँ हैं। इसी प्रकार आधुनिक सस्याओं के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। संयुक्त-स्वयं-कम्पनी (joint stock company) share market stock-exchange मर्जरिग एजेंसी सिस्टम, सहकारी मानव व्यवस्था ऐसी ही कुछ सस्याएँ हैं। जनता का दो दलीय संगठन (two party organisation) सविधान वयस्क चुनाव प्रणाली और प्रशामकाय क्षेत्र में आई० सी० एस० या आई० ए० एम० कुछ

1 By institutions we mean the established forms or conditions of procedure characteristic of group activity MacIver & Page *op cit* p 16

2 Morris Ginsberg *op cit* p 121
Also see P Constantain *Social Institutions*

3 An institution is a system of relationship or a pattern for carrying out an idea or desire which is regarded as necessary for the welfare of the group

प्रमुख सस्याएँ हैं। इन्को प्रकार शैक्षिक, आरोग्य सम्बन्धी, धार्मिक, सांस्कृतिक और मनोरञ्जनात्मक सस्याएँ हानी हैं।

हम (मनुष्य) किसी सस्या व होकर नहीं रहते। हा, समितिया के हाजर रहत हैं।¹

चूँकि सस्याएँ सामूहिक जीवन की क्रियाओं के प्रतिष्ठित रूप है इनतिये वे मनुष्या के आचरण पर नियंत्रण करती हैं।

सस्याएँ प्रणालियाँ होती हैं

सस्याएँ मानवक्रियाओं की समूहित व्यवस्थाएँ (प्रणालिया) होने व कारण निश्चित प्रयाजनों को प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं। जब भारतीय संविधान का प्रयाजन राज्य का अधिकतम बल्याण करना है।

सस्या की उत्पत्ति का स्रोत कोई निश्चित धारणा विचार या हित है। इसी का मूल करन व लिए धीरे धीरे कायविधि का कोई रूप स्वीकृत हो जाता है और तब सस्या की रचना (structure) भी बन जाती है। ममनर (W G Sumner) ने ठीक कहा है कि सस्या किसी धारणा (सिद्धांत हित या विचार) और रचना (structure) स मिलकर बनती है। उसके मतानुसार सस्याएँ विकसित (crescive) होनी हैं।²

प्रमुख विशेषताएँ

लॉयड बलार्ड (Lloyd V Ballard) न सस्याओं की सात विशेषताएँ बताई हैं—(१) विचार (ideation), (२) रचना (structure) (३) प्रयाजन (purpose) (४) अपक्षायन स्थायित्व (relative permanence), (५) सत्ता (authority) (६) सामाजिक नियंत्रण (social control), तथा (७) सदस्य समूह या पदाधिकारी (personnel)।³

सस्याओं व काय सामाजिक नियंत्रण संसृति का अक्षुण्ण धनाम रचना तथा उसका हस्तांतरण (transfer) करना है। गिनिन और गिलिन के अनुसार सस्याओं व निम्ननिमित्त काय हैं।⁴

- (१) व्यक्ति व हिन म सामाजिक या सामूहिक क्रिया को सरल करना,
- (२) सामाजिक नियंत्रण का साधन,
- (३) व्यक्ति का भूमिका और प्रभिति (role and status) प्रदान करना,
- (४) नय प्रतिमाग (patterns) की उत्पत्ति म सहायक होना,

1 We belong to associations but not to institutions—MacIver & Page
Societies

2 W G Sumner *Folkways* Boston 1907 p 51

3 L V Ballard *Social Institutions*

4 Gillin & Gillin *Cultural Sociology* (Macmillan New York 1948)
p 300

(५) सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था (configuration)¹ में एकता उत्पन्न करने के साधन,

(३) व्यक्ति के स्वार्थों को दबाना और उसको अनुत्तरदायी होने से रोचना ।

किंतु समस्याएँ कभी-कभी सामाजिक प्रगति में बाधना (hindrance) भी होती हैं । हम पहले यह चुके हैं कि समस्याएँ समाज या समुदाय के विशिष्ट हिता की पूर्ति करने के प्रतिष्ठित साधन हैं । जब लोग साध्य से दृष्टि हटाकर साधन को ही सच कुछ समझने लगते हैं तो साधन के भले-बुरे या पयाप्त अथवा अपयाप्त का विचार नहीं करते । सिर्फ उनके पुराने या प्रतिष्ठित हान के कारण उससे ममत्व बढ़ा लेते हैं और उसमें आवश्यकता हान पर भी परिवर्तन करना नहीं चाहते । यही कारण है कि कुछ समस्याएँ कभी-कभी अपने सदस्या के व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हान देनी ।

1 Mode of arrangement, outline—व्यवस्था, रूपरेखा, आकार ।

द्वितीय खण्ड

समाज और पर्यावरण

- ५ सामाजिक जीवन के कारक
- ६ मानव और पशु समाज
- ७ समाज और पर्यावरण
- ८ भौगोलिक पर्यावरण
- ९ मनुकृति और सम्यता
- १० सम्पूर्ण पर्यावरण
- ११ वशानुक्रमण और पर्यावरण
- १२ ग्रामीण और नगरीय जीवन
- १३ सामाजिक परिस्थितिसास्त्र

सामाजिक जीवन के कारक¹

हमारा विषय मनुष्य के सामाजिक जीवन का अध्ययन है। मनुष्येतर ममाजो म पशुआ अथवा कीडा के समाज हावे हैं। मनुष्य का सामाजिक जीवन पशुआ क सामाजिक जीवन स वस्तुतः एक बात म भिन्न है। मनुष्य व्यवहारा को सीख सकना है और इन सीखे हुए व्यवहारा को अपनी सत्ताम को भाषा और अय सचार साधनों से हस्तातरित कर सकना है। सामाजिक अनुभव को प्रौढ और समृद्ध करने के लिए य दाना बावें अनिवाय हैं। पशु मा कीडे इन दाना वाता म वचित हैं। मनुष्य समाज की इन विशेषता का परीकरण उसकी मस्कृति म होना है। मस्कृति मनुष्य समाज की अपनी अद्वितीय विशेषता है अर्थात् मनुष्य समाज का छाडवर यह किसी समाज क पास नहीं हाती है।

मनुष्य म व्यवहारा का साधन की क्षमता अवश्य है। परन्तु वह उहें तभी सीख सकना है जब तदनुसंग आवश्यक पर्यावरण मिले। जब मनुष्य पैदा होता है तो वह बस एक सावयव हाता है। चूँकि पशुआ और कीडा के वच्चा स वट एकदम भिन्न होता है इसलिए उसे व्यक्ति की सना नी जाता है। यह 'व्यक्ति' मनुष्य नहीं है। वह मनुष्य या मानव तभी होता है जब मानवोचित गुणा का उसम विकास हा। उसम मानवाचित गुणा का विकास परिवार म रहकर प्रारम्भ हा जाता है। परिवार उसकी नख-भ्याम और सरक्षण की प्राथमिक आवश्यकतामा का पूरा करता ह। परन्तु उनसे महत्तरपूण आवश्यकताएँ वे हैं जा उन समूह का सदस्य होने पर अनुभव हागी। परिवार इन आवश्यकतामा की पूर्ति के लिए भी ययानभव प्रवच करता है। साथ ही मनुष्य के शौचकाल मे उन एनी प्रशिक्षा देता है जिनस वह अपना उच्च आवश्यकतामा का पूरा करने की क्षमताएँ और याग्यनाएँ विकसित कर ल। परिवार के समान अय प्राथमिक समूह भी, जम पडास क्रीडा-समूह और स्कूल का वसा मनुष्य क मानविक और सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान करत हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मनुष्य के प्रारम्भिक जीवन का ही विकास

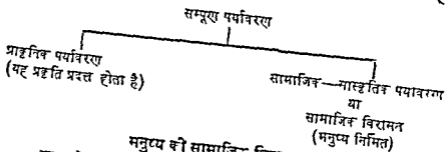
1 For Factors in Social Life of Man see Ogburn & Nimkoff *A Handbook of Sociology* Routledge & Kegan Paul London (1956)

महत्वपूर्ण है। उपरोक्त समूहों के अतिरिक्त अनेक माध्यमिक समूहों व समितियों उसके प्रौढ़ जीवन व विकास में महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। समूह व्यक्ति के शारीरिक और सामाजिक विकास के लिए अनिवार्य है। जब किसी मानव शिशु का उचित सामूहिक संरक्षण और सहायता नहीं मिलती तो उसका विकास अपर्याप्त रहता है। यदि किसी शिशु को समूह से विलुप्त पृथक् कर लिया जाय तो इस असीम पृथक्करण में वह कभी मानव नहीं बन सकता। बहन का तात्पर्य है कि व्यक्ति में मानव प्रकृति का विकास समूह में रहकर ही हो सकता है। समूह से पृथक् रहकर उसके विकास की बाईं राशकना नहीं रहती और पशु और व्यक्ति में बाईं अन्तर नहीं रहता। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी तभी बन सकता है जब उसे समाज से—अथवा परिवारण से अपनी प्रकृति व विनाश के लिए उपयुक्त उत्तेजना और अवसर मिले हों।

पर्यावरण के प्रकार

पर्यावरण के दो प्रकार (Kinds) होते हैं। पहले प्रकार का प्राकृतिक पर्यावरण कहलाता है। पशु इस पर्यावरण में पदा होते हैं जिसमें पानी, आकाश, सूर्य व जल, वायु, पशु, पौधा, एहिक शक्तियाँ तथा वृक्ष, पौधा, दूसरे प्रकार के अनेक जानवरों और उसी प्रकार के अन्य जानवरों को सम्मिलित किया जाता है। इस पर्यावरण का विशेषण भूगोलशास्त्री एवं जीवशास्त्री करते हैं। हबर्ट स्पेंसर इस सावयवी एवं जड़ पर्यावरण (organic and inorganic environment) कहता था।

दूसरे प्रकार का पर्यावरण मनुष्य के सम्पूर्ण पर्यावरण का वह भाग है जिसमें मनुष्य जन्म लेता है। यह मनुष्य की क्षमताओं को सीखने की विधि द्वारा निर्मित करता है। यह बहुत समृद्ध और विविधतापूर्ण होता है। इसमें इनकार और वस्तु के लिए विचारण धर्म और मनुष्य द्वारा कार्य करने के शक्यताएँ सम्मिलित होती हैं। मनुष्य जिस समूह में पैदा होता है। उसमें अनेक प्रकार के परिवारण और सातार के अन्य माध्यम होते हैं। पशुओं के समूह में एक प्रकार के पदाकरण नहीं होता है। यही तो मनुष्य के समाज की विशेषता है। प्राकृतिक पर्यावरण प्रकृति द्वारा बनाया जाता है। दूसरा पर्यावरण मनुष्य निर्मित है। जिन्से अनेक अध्यायी में हम यह स्पष्ट करेंगे कि यह पर्यावरण भी बहुत अपर्याप्त अथवा मनुष्य निर्मित है। एक प्राकृतिक पर्यावरण का एक नामा से पुकारा जाता है। बहुत ही समाजिक विरासत (Social heritage) कहा जाता है क्योंकि यह मनुष्य की प्राकृतिक या जैविक विरासत (natural or biological heritage) से भिन्न है। समाजशास्त्री और मानवशास्त्री इस कृत्रिम (artificial) पर्यावरण का सम्बन्ध करते हैं। हबर्ट स्पेंसर ने 'सुपरऑर्गेनिक' (Superorganic) कहा था। समृद्धि की परवादागामी अवस्था का अर्थ 'सम्यक्ता' शब्द से किया जाता है।



मनुष्य की सामाजिक विरासत

मनुष्य के सामाजिक जीवन पर सामाजिक विरासत का बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मनुष्य प्रारम्भ से ही अपने पर्यावरण में क्रियाशील रहा है। उन उसने सदैव अपनी आवश्यकताओं का अनुरूप संचालित किया है। संचालन की यह विधा संचयी (cumulative) होती है क्योंकि मनुष्य कभी भी अपनी पुरानी आशा तथा बवल उपस्थित दशाओं से जायाजन करके सन्तुष्ट नहीं रह सका है। परिस्थितियों को बदलने और उन्हें सुधारने की कला वह अपने पूर्वजों से सांगता आया है। साथ ही स्वयं उस कला में थोड़ी-बहुत वृद्धि करता रहा है। सामाजिक विरासत का अर्थ

सामाजिक विरासत शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ग्राहम वालास (Graham Wallas) ने किया था। यह उस गान उपाया (expedients) और आशा के लिए प्रयुक्त हुआ था जो जैविक रूप से नहीं बरक सामाजिक रूप से सबरित (transmit) हात रह हैं तथा शिक्षा और सामाजिक सम्मिलन (social participation) के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी का हस्तांतरित हात हैं।¹ कनाए युक्तियों (devices) प्रविधियों (lores) पुराण (myths) परम्पराएं प्रतीक (symbols) रूढ़ियाँ और मानव मस्याएँ—मनुष्य के बाह्य वातावरण का नियमित करने वाली उसका मनी एनेनिया—सामाजिक आती (social positions) हैं। यही मनुष्य का सांस्कृतिक पर्यावरण है। व्यापक प्रभाव

प्राकृतिक पर्यावरण की अपनी सामाजिक विरासत का मनुष्य के शारीरिक मानसिक और सामाजिक विकास पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। मनुष्य मकान वय तक एक ही प्राकृतिक पर्यावरण में रहता है। उसमें अनेक परिवर्तन हात पड़ते हैं। किन्तु इसका प्रभाव मनुष्य के जीवन पर बहुत कम पड़ता है। यदि दो मकानों में या दो विभिन्न स्थानों पर सामाजिक विरासत समान रहता तो प्राकृतिक पर्यावरण के अनेक हात पर भी मनुष्य के सामाजिक जीवन में बरक हृदय प्रभाव नहीं आणता। यथाक लान टाकिया तथा कनकता—इन विगात नगरों का प्राकृतिक पर्यावरण

¹ "Our Social Heritage" New Haven (1921) p 14 quoted by MacIver & Page op cit p 119

एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न है किन्तु इन नगरों के निवासियों में सामान्य नगरीय विशेषताओं की समानताएँ विद्यमान हैं।

जब मनुष्यों की सामाजिक विरासत में भिन्नता हाती है तो उनके सामाजिक जीवन का भिन्नता बनी स्पष्ट हो जाती है। उत्तरी भारत के मरदाना भाग के किसी गाँव के जीवन की यदि हम चीन की ह्लान्गहा नदी की घाटी के किसी गाँव के जीवन से तुलना करें तो इसकी भिन्नता स्पष्ट दिखेगी। अफ्रीका के नीग्रो समुदाय की सामाजिक विरासत काश्मीरी लोग की विरासत से त्रिखुल भिन्न है। इसी प्रकार, दुर्णव के एन्ड्रीमा लोग की सामाजिक विरासत आसाम के नागा लोग से त्रिखुल भिन्न है। सामाजिक विरासत की भिन्नता के कारण लोगों के व्यक्तित्व का विकास भिन्न आधार पर जाता है। मत्स्य सच्चरित्रता ईमानदारी महादुरी और प्रेम आदि महत्वपूर्ण सामाजिक गुणों का तत्परूप विभिन्न रूप निरूपण होता है। सामाजिक विरासत में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं इसलिए दो समयों के शक्ति विवाजों परम्पराओं एवं रीतियों में भी अन्तर आ जाता है। मध्ययुग में हर पितृमत्तारमक समाज (patriarchal society) में लड़कियों का उसी पुरुष से विवाह करना पड़ता था जिसे उसके माता-पिता चुन लेते थे। आजकल उसी समाज में लड़कियाँ अपनी इच्छानुसार चर चुनती हैं। १९वीं सदी के भारत में हर महिला (प्रतिष्ठित घरानों की) मृत, तीर्थ या बाजार डाली या पालकी में ही जाती थी। उस कठोर पर्व में रहना पड़ता था। आजकल पर्व करना अभद्रता और पिछड़ेपन की निशानी है।

मनुष्य सामाजिक विरासत पर आश्रित होता है

मनुष्य को अपने भरण-पोषण एवं सुरक्षण के लिए ही नहीं प्रगति के लिए भी सामाजिक विरासत पर निर्भर रहना पड़ता है। इसकी सहायता से वह बाह्य पर्यावरण (external environment) की शर में आता और आघातों का सफलता पूर्वक सामना करता है। मनुष्य के प्रच्छन्न गुणों (latent faculties) का अत्यधिक या सर्वोत्तम अनावरण उपयुक्त सामाजिक विरासत में ही हो सकता है। उसके व्यक्तित्व में उसका सामाजिक विरासत के अंग भरते हैं। आज की विगत गौरवमयी सभ्यता जिस पर मनुष्य को गर्व है उसकी सामाजिक विरासत के सचची विरासत का फल है।

सामाजिक विरासत और आर्थिक उत्तराधिकार

मानव समाज में शिक्षा का आधारभूत महत्व है। शिक्षा से ही मनुष्य सामाजिक प्राणी बनता है और शिक्षा सामाजिक विरासत का अभिन्न अंग है। इस कारण मनुष्य की सामाजिक विरासत पर निरपेक्ष निर्भरता है। आर्थिक उत्तराधिकार और सामाजिक विरासत में महत्वपूर्ण भूमिका है। आर्थिक उत्तराधिकार में हम अपने पूर्वजों का भाग पायित्व संपत्ति उपयोग करने या बचत करने को मिला जाता है। इस उपयोग

के लिए हम कोई शक्त नहीं पूरी करनी पड़ती। सामाजिक विरासत के हनु केवल स्थिति विषयक (conditional) उत्तराधिकारी हो सकते हैं। हम इसे प्राप्त करने के योग्य हैं तथा इसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न भी करें। दूसरे शब्दों में समाजिक उत्तराधिकार में पूवजा में उनकी सत्तान को सारी की सारी संपत्ति प्राप्त हो जाता है। सामाजिक शक्ति सभी मदस्य का सहज ही नहीं प्राप्त हो जाती। यह शायद ही प्रयत्नशील व्यक्तियों का केवल आंशिक (partial) रूप से प्राप्त हो सकता है अर्थात् व्यक्तियों या तो सामाजिक विरासत का बहुत कुछ अंग हो सकती है।

मानव व्यवहार और रूप

एक विशिष्ट सामाजिक विरासत और उसमें भाग लेने वाले व्यक्तियों के व्यवहार की प्रकृति में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जहाँ कहीं भी समाज है वहाँ मनुष्य अनुकरण और नुभाव द्राह्यता का विधाया में सामाजिक निरसन और अतिजीवन (social participation and survival) के लिए सामाजिक विरासत के आवश्यक तत्व सीप लेता है। मनुष्य जिन शौजारा का इन्मभान करता है जिसे बना का निर्माण करता है जिन देवा का पूजा करता है और विवाह के बनना, अथ आदना और विधारा की प्रतिष्ठा करता है उन सबके लिए वह अपनी सामाजिक विरासत पर आश्रित रहता है।

मनुष्य का जीवन के प्रति जो रूप (attitude) रहता है वह भी अपनी सामाजिक विरासत में सीपता है। हमारे आशौगा का जीवन के प्रति भाग्यवादी अथवा निराशावादी दृष्टिकोण है इसका कारण उनकी सामाजिक विरासत है। आज भारतीय युवकों में जो निराशा और हनुभाष्यता के विचार आ रहे हैं इनका मून सान भी हमारी सामाजिक विरासत है जिसमें दरिद्रता, बकारा, विपमता और अष्टाकार ने अष्टा सासा स्थान घर लिया है। हम क्या सीपते हैं और क्या हान हैं, यह उस विशिष्ट मस्कृति पर आश्रित है जिसमें हम पदा हुए हैं और हम जिसे प्रकार के जीवन का अर्पनात है वह समकन सस्कृति के उस भाग द्वारा निश्चिन हाता है जिसमें हम रहते हैं।¹

सामाजिक विरासत कैसे प्राप्त होती है

सामाजिक विरासत पार्थिव (maternal) और अपार्थिव (non maternal) हानी है। इसका पार्थिव भाग उपयागी वस्तुओं का है। इन मन्व्यता की सुविधाया और आराम देने वाली वस्तुओं को मनुष्य शान्ता और सरलता से अपना लेता है। पार्थिव आधिपकारा और यशो का हर साधनमुक्त व्यक्ति उपयोग कर सकता है। किन्तु अपार्थिव भाग जिसमें भाषा, जनरीनिया तथा अथ युक्तियाँ आती हैं और

1 What we learn and what we do come depend upon the particular culture into which we are born and the type of life follow is likely to be set for us by the particular part of the culture in which we live Ogburn & Nimkoff op cit p 4.

धीरे धीरे से प्राप्त की जा सकती हैं। सामाजिक विरासत के जिन भागों को सरलता से प्राप्त किया जा सकता है वे साधारणतया समाज की प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं न कि उनका विशिष्ट व्यक्तियों की प्रवृत्ति को। जिन भागों को सरलता से प्राप्त नहीं किया जा सकता है वे बहुत कुछ अज्ञान से व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर रहते हैं। जो लोग उन्हें प्राप्त करते हैं उनमें अधिक पूर्णता से व्यक्तिगत (individualized) हो जाते हैं। उनका अर्थ नियम अथवा चुनाव से होता है तथा वे हर व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत पहलू धारण करते हैं। इस प्रकार सगौन कला ब्रह्म साहित्य और धर्म के कुछ पहलू (aspects) हर एक व्यक्ति के लिए भिन्न भिन्न अर्थ वाले प्रतीत होते हैं। साथ ही उसी जिस समाज में उत्पत्ति होती है उसके गुणों की छाप उन पर लगी रहती है।

सामाजिक विरासत का असमान विभाजन

समाज के हर सभ्य को इस विरासत से समान भाग नहीं प्राप्त हो सकता। उनकी अनुमान मात्राएँ ही विभिन्न व्यक्तियों को प्राप्त होती हैं। समाज धीरे धीरे अग्रगण्य जटिल हो गए हैं। इनकी विरासत के केवल थोड़े से अर्थ ही कोई व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। सामाजिक विरासत की दो मूलभूत अवस्थाएँ (phases) मरुति और सम्यता है। इन दोनों के कुछ न कुछ अर्थ तो प्रत्येक व्यक्ति को अपना पाने हैं क्योंकि यह उनका मरुति और अर्द्ध जीवन के लिए अनिवार्य है।

वशानुक्रमण

व्यक्ति पर सत्प्रति का सघात (impact) के कुछ महत्वपूर्ण परिणामों का सांख्यिक विवेचन ऊपर किया गया है। अब आइए यह देखें कि जिस व्यक्ति पर यह सघात होता है क्या उसकी जैविक विरासत (biological heritage)¹ का सघात के परिणामों पर काय प्रभाव पड़ता है? हम कहना चाहते हैं कि बुद्धिमान माता पिता की संतान भी बुद्धिमान होती है। माँ-बाप के कुछ मानसिक दाय उनको संतान में भी धारा जाते हैं और मूर्ख बुद्धि (feeble minded) बच्चे बहुत अधिक नहीं पाए जाते। इससे स्वाभाविकतया यह निष्कर्ष निकलता है कि सघात के परिणामों पर व्यक्ति के जैविक प्रकार का बहुत प्रभाव पड़ता है। यह सत्य भी है कि व्यक्ति और मरुति के अंतःसम्बन्ध में वशानुक्रमण (heredity) का महत्त्व है।²

वशानुक्रमण का अर्थ

प्रख्यात मण्डन विद्वान् (Mendelian Law) की धारणा के पूर्व समाज में लगभग १०० वर्ष पूर्व तब यह मानना था कि बच्चा में माता पिता के शारीरिक

1 Also referred to as hereditary endowment. Whatever is genetically transmitted from the parents to the children is termed as hereditary endowment.

2 Ogburn & Nimkoff *op cit* p 5

आर मानसिक लक्षण का सम्मिश्रण (mixture) होना है क्योंकि संयुक्त (cohabitation) में दादा के रक्त का सम्मिश्रण हो जाता है। इस धारणा के अनुसार यह माना जाता था कि यदि माता काली है और पिता गार बग का है तो उनके बच्चा का बाल सावला होगा। ग्रथवा बुद्धिमान पिता और मूर्ख माता की नतन माघारण बुद्धि वाली होगी। मण्डल (Mendel) ने परीक्षण न कर निष्कर्ष निकाला कि वामनव में उत्त द्वारा वस्त्रा में पैरक गुण नष्ट आन। य गुण निष्पत्ता (genus) द्वारा हस्तानरित होत है। य एक पीढी में अनरी पीढी और वग्य म्म में हस्तानरित अघरिवननील रघुनम अस्तु होत है। इनकी वदत प्रतिक सन्धा हाती है। य हमार शरीर क अघरित लक्षण का निधारित करत है।

हर जीव की उत्पत्ति (origin) एक कोष्ठ (cell) में हाती है। उनके पत्र भाग होत है—(१) केंद्र (nucleus) और कोष्ठात्म (cytoplasm)। कोष्ठ क केंद्र में मूल्य लक्ष्य पण्य होत है या निष्पत्त (chromosomes) केंद्रात है। प्रत्येक शरीर कोष्ठ (body cell) में एक निष्पत्त होत है। इन अत में माता का प्रत्येक जी तट्ट निष्पत्त (genes) उठ रहत है। हम पहन ही कह चुक है कि यही क गुरिया जी तट्ट निष्पत्त (genes) उठ रहत है। इन अत में माता का प्रत्येक शरीर कोष्ठ (body cell) में एक निष्पत्त होत है। य एक पाठा न टूटी पीढी और फिर अनरी दम में (माता पिता न वच्चा में और इनक वच्चा में) हस्तानरित होत रहत है। पुनरुत्पन्न (reproduction) की यह प्रतिक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

निष्पत्त दो प्रकार क होत है—(१) प्रबल (dominant) आर गत (recessive)। मनुष्य क शारीरिक बौद्धिक लक्षण क निधारण में प्रबल निष्पत्त ही प्रभुत्व महव क है। गौण निष्पत्त शरीर में उपस्थित रहन पर भी अपना प्रभाव नष्ट नित्ता पात। यदि किसी वच्चा में माता पिता क गुण न आय हो वरन् बादा या नाना क लक्षण हो तो उनम बादा अथवा नाना के निष्पत्त प्रबल हो गय है और माता पिता क गौण। माता पिता और उनक पूर्वजा क या गुण या लक्षण हम शारीरिक सम्पत्ति क रूप में प्राप्त हुए हैं उठ जविक विरामन या मरण में वरानुकमण कहत है।¹

वसानुकमण का प्रभाव वसानुकमण का मनुष्य का शारीरिक क्रिया मन्त्रनी (physiological) आन्ता पर प्रत्यक्ष प्रभाव पडता है। पलका का खुलना या बन्द होना हृदय का धक्का पुतलिया का रार और शरीर रचना में मोठव (मुचौनपन) आदि वसानुकमण से निरन्तर हस्तानरित होत रहता है। इसी प्रकार न हर मनुष्य में भाग्य

1 यह सारा बखन मूलतः द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'What is Race' पर आधारित है।

दौडने की क्षमता हानी है किन्तु इस क्षमता का विकास शिकार के पीछे दौडने, या दूरस्थ वृत्ता को दौडने अथवा टनिस या फुटबाल क मदान पर दौडने से होता है। सन्तृति अथवा सामाजिक विरासन क कारण मनुष्या की दौडने की क्षमता क विकास और रूपा म अन्तर (variation) आ जाता है। हर व्यक्ति का दौडने की क्षमता समान नहा हानी पर फिर भी उसके कम या अधिक विकास अथवा विशिष्ट रूपा म विकास का काय सन्तृति पर गाथित है। उदाहरण के लिए दो भारतीय युवका म शारीरिक परिश्रम करने की क्षमता (capacity) समान हात हुए भी उनम शारीरिक परिश्रम की वास्तविक योग्यता असमान हो सकती है। जबकि विरासत स व्यक्ति को बुद्ध सम्भावनायें (possibilities) प्राप्त होता है। इनको यथावताया (actualities) म वन्दन का काय पर्यावरण करता है।

एक दूसरा उदाहरण लें। यदि एक परिवार की दा कयाया म, ढाड-तीन बप की आयु म संगीत म कम और अधिर अभिरुचि है ता कम अभिरुचि वाली लडकी का यदि संगीत की विशेष प्रशिक्षा दी जायगी ता उसम संगीत की विशेष योग्यता (special ability) विकसित हो जायगी। दूसरी लडकी म प्रारम्भ म अधिक अभिरुचि होने हुए भी विशेष प्रशिक्षा क अभाव म संगीत की कोई विशेष योग्यता नहीं विकसित होगी। अस स्पष्ट है कि विशेष योग्यताया के गुण और अश (quality and degree) दोनों पर प्रशिक्षा का गहन प्रभाव पडता है। इसी प्रकार, संगीत म समझ समुदाय के लोग म संगीत-सम्बन्धी पत्रिक गुणा का विकास निश्चित ही अर्था होगा अपेक्षाकृत उन समुदाय के इसी प्रकार के लोग म, जो संगीत परम्परा म उनना समझ नहीं है।

यह भा देवने म आया है कि दा समाजा की सन्तृतिया म भे का विस्तार (range) क्षमता म व्यक्ति म को कभी-कभी मिल्कुल ढाक (overshadow) लता है। उदाहरण क लिए अमरीना क सरकारी स्कूना म शिक्षा पान बाल नीघा क बच्च ज्यामिति और बीजगणित (Geometry and Algebra) के कठिन प्रश्ना को भागानो ग हल कर लत हैं। किन्तु सरस अधिक प्रतिभाशाली नीघो बच्चा भी अपनी सन्तृति म एसा कभी नहा कर पायगा। ब् अमेरिका के सरस मन् लन्वे स भी सुबावला नहीं कर सकना। सम्भवत विभिन्न समुदाया के लोग म मानसिक क्षम-साया म अन्तर उनना अधिक रही होता जितना उनकी विभिन्न सन्तृतिया का भारी अन्तर उनकी योग्यताया म आई मन् दा है। उपरका उदाहरणा स यह स्पष्ट हो गया है कि शारीरिक सम्भावनाया की अयगा सामाजिक और मानसिक क्षेत्र म णिग या गानने की सम्भावनाया का बड़ा अधिक महत्व है।¹

1 In the mental and social realm as contrasted with physiological possibilities the possibilities of learning are enormously great.—Ogburn & Nunkoff *op. cit.*, p. 7

समूह का कार्य

हम पहले कह चुके हैं कि समूह-जीवन व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। वह बच्चे को जीवन ही नहीं रखता बरन् उसे सस्कृति प्रदान करता है और उसके व्यवहार पर नियंत्रण रखता है। समूह व द्वारा ही सामाजिक विरासन का हस्तांतरण पीढ़ी-दर-पीढ़ी होता रहता है। समूह के माध्यम से ही व्यक्ति पर सस्कृति का सघात होता है।

सरल सस्कृतिया में अफ्रीका के नीग्रो या आस्ट्रेलिया व बुगमन या भारत व आर्या व समूह की सख्या बहुत अधिक नहीं होती। प्राय सभी समूह प्राथमिक होते हैं। साथ ही इन सस्कृतियों का परिमाण भी थोड़ा होता है और वे अधिक समरूप होती हैं। इनमें समूह का व्यक्ति पर प्रभाव बड़ा गहरा और स्थायी पड़ता है। यह प्रभाव बहुत-बुद्ध समरूप होता है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति (personality) का विकास समजातीय (homogeneous) रूप में होता है। व्यक्ति की विभिन्न भक्तियों (loyalties) और कृतव्या में हर कदम पर सघन नहीं होता है। व्यक्ति की जटिल सस्कृतिया जसी प्राथमिक विकसित और औद्योगिक देशों में हैं। इनमें प्राथमिक और द्वितीयक (primary and secondary) समूह होते हैं। इनमें प्रत्येक से हर व्यक्ति का सम्पर्क नहीं हो पाता। इनमें प्रत्येक समूह अपने-अपने स ऐसी भक्तियाँ और दायित्व चाहता है जिनमें परस्पर सघन होता है। इसलिए यहाँ समूह प्रवरण के साधन का कार्य करता है। हम सस्कृति व किन पहलुओं और रूपों (versions) को अपनाये इसका निर्धारण ये समूह ही करते हैं।

सस्कृति का सचार समूहों का एक महत्वपूर्ण कार्य अवश्य है पर इनके अन्य कार्यों का भी कम महत्व नहीं है। स्वयं समूह-जीवन का व्यक्ति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। समूह जीवन ही व्यक्ति को बनाता है। व्यक्ति में नृत्व आनाकारिता सटकारी अथवा प्रतियोगी सामाजिक अथवा असामाजिक गुणों का विकास समूह में प्राप्त अनुभवों पर आश्रित है। कुछ बातें तो हर प्रकार के समूह-जीवन में मिलती हैं। हर समूह अपने सदस्यों के व्यवहार पर नियंत्रण करता है और भयानक व्यवहारों के लिए उन्हें दण्ड देता है। समूह की भक्ति का सावभौमिक रूप से सर्वोत्तम गुण माना जाता है और भक्तिहीनता या विद्रोह एक अमाप पाप। समूह में व्यक्ति दूसरों से विचार विमल करता है उनसे सहयोग और प्रतियोगिता करता है तथा उनसे अमहमत होकर सघन भी करता है। अन्त में वह अपने साथियों से समा-याजन करता है। मानव अन्त क्रिया के इन गत्यात्मक प्रतिमानों (dynamic patterns) का हम सामाजिक विषयों कहते हैं। ये व्यक्ति के निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक हैं।

भिन्न भिन्न प्रकार और प्रतिमानों के समूहों का व्यक्ति पर भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ता है। छोटे-बड़े परिवार पत्नी, श्रीमान-समूह, बच्चा अथवा सघन, राज

केवल मनुष्य की शक्त का होता है। किन्तु इस जैविक व्यक्ति में मनस्क शारीरिक और मानसिक क्षमताएँ होती हैं। इनकी समुचित व्यंजना (expression) या अभिव्यक्ति और विकास संस्कृति में ही होना है। समूह व्यक्ति का जीवित रहने के लिए अपना भरसक ही नहीं देना बल्कि उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए समुचित सामग्री और अवसर प्रदान करना है। अतएव, मनुष्य के सामाजिक जीवन के चारों कारणों में अन्त-सम्बन्ध और अन्त-निभरता है। समाजशास्त्र के विद्यार्थी का इस सम्बन्ध को भली प्रकार समझ लेने पर ही सामाजिक संगठन का पथाप्त ज्ञान हाँ सकता है।

प्रधान कारणों के महत्त्व में भिन्नता

चारों प्रधान कारणों में से हर एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है और उसका अन्त-सम्बन्ध और अन्त-निभरता है। परन्तु मनुष्य के सामाजिक जीवन में इनका समान सापेक्षिक महत्त्व (relative significance) है। इस सापेक्षिकता का ठीक ठीक मालूम करना समाजशास्त्री का आवश्यक कार्य है। उसे उन लोगों के विचारों के साथ नहीं बह जाना चाहिये जो इनमें से किसी एक का ही सर्वाधिक महत्त्व का मान बैठते हैं। जैविक कारण (वशानुक्रमण) को सब कुछ मानने वाले घोषित करते हैं कि सभी महान पुरुष जन्मजात महान होते हैं। महान पुरुष बनने नहीं वे तो पत्ता होने हैं। इसी प्रकार प्रतिभा, सुसंस्कृति अथवा यश उसी व्यक्ति को प्राप्त होते हैं जो वशानुक्रमण में श्रेष्ठ हैं। शुद्ध प्रजातियों की संस्कृति श्रेष्ठ होती है आदि। इस तरह के विचार अज्ञानिक एवं एकांगी हैं। वे सामाजिक जीवन के अनेक कारणों में से केवल एक को अनुचित महत्त्व देते हैं। फिर भजे की बात यह है कि इस स्थिति का प्रामाणिकता देने के लिए उनके पास केवल साखली अज्ञानिय सामग्री होती है। अगले अध्यायों में हम प्रधान कारणों के सापेक्षिक महत्त्व का आकलन का प्रयास भी करेंगे।

दूसरी बात महत्त्व की यह है कि किसी विशिष्ट कारण का महत्त्व हर स्थिति में समान नहीं रहता। शारीरिक प्रतिशोष (physical reflexes) जैसे पलक मारना आदि में जैविक कारण सबसे महत्त्वपूर्ण है। इन पर पर्यावरण का नगण्य प्रभाव पड़ता है। सरल आन्तरिक संस्कृतियों में मनुष्य के जीवन को प्रकृति पर बहुत अधिक निर्भर रहना पड़ता है। परन्तु आधुनिक औद्योगिक समाज प्रकृति पर निर्भरता कम बैठे हैं। इस स्थिति में मनुष्य के सामाजिक जीवन में सामाजिक विरामन सबसे अधिक महत्त्व की है। अतएव मानव अनुभव में उपरोक्त चारों प्रधान कारणों के सापेक्षिक महत्त्व को समझना ही वैज्ञानिक आवश्यकता है।

भौतिक और सांस्कृतिक पर्यावरण, वशानुक्रमण और पर्यावरण के अनेक अध्यायों में इन प्रधान कारणों के अन्त-सम्बन्ध और सापेक्षिक महत्त्व का हम सविस्तार विश्लेषण करेंगे।

मानव और पशु समाज

समाजशास्त्र मानव समाज का एक वैज्ञानिक अध्ययन है। किन्तु मानव समाज के अनिश्चित अथवा जीवधारियों के समाज भी सत्तार में पाये जाते हैं। पशु पक्षी, कीड़े आदि भी व्यवस्थित रूप से सामाजिक जीवन व्यतीत करते हैं। वास्तव में यह एक अनायास तथ्य प्रदान होगा कि मनुष्य समाज और पशु समाज में हम कोई सम्बन्ध नहीं मानें। विभागवादी सिद्धांतों के अनुसार यह माना जाता है कि मनुष्य की उत्पत्ति पूर्वगामी पशुओं से हुई। अतः मानव समाज का अस्तित्व इस बात का साक्ष्य है कि पशु जगत में भी विभिन्न विभिन्न प्रकार का समाज होगा। परन्तु यह मान लेना गलत होगा कि दोनों प्रकार के समाजों में कोई अन्तर ही नहीं है। मनुष्य समाज समस्त ब्रह्माण्ड का एक घटना मात्र है। इससे विस्तृत अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि सत्तार के सभी समाजों का हम समान अध्ययन करें। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि समाज में कौन-कौन से तत्व सामान्य हैं। यह जानकारी हम मनुष्य समाज की विशेषताओं को समझने में सहायक होगी।

पशु और मनुष्य समाजों का तुलनात्मक विश्लेषण करने के लिए हमें सब प्रथम यह जानना चाहिए कि किसी भी समाज का बनाने के लिए कौन से तत्व आवश्यक हैं। इसके विचारों को मूर्त रूप में कुछ ऐसे आवश्यक तत्व हैं जो समाज के निर्माण में बतल जाग देते हैं। जो निम्न हैं—

समाज के निर्माण के तत्व

सभी समाजों में निश्चित रूप से ही निम्नलिखित बातें सामान्यतया पाई जाती हैं—¹

¹ See Kingsley Davis *Human Society* (1964) and Gillin and Gillin *Cultural Sociology* (1967)

Characteristics of a Society —

- (a) Maintenance of a population
- (b) A level of organization of members
- (c) Division of labour of members
- (d) Solidarity of the group
- (e) Continuation of Social System.

(१) जनसंख्या को बनाये रखना—जब जीव एक समूह में आकर रहने हैं तो उस समय उनका मुख्य ध्येय अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है और इस तरह समूह में आकर रहना ही उनकी एक जनसंख्या हो जाती है। उदाहरण स्वरूप जब मधुमक्खी एकत्रित होकर रहती हैं तो उस समाज में मधुमक्खियाँ जनसंख्या को जीवित रखने के लिए संयुक्त रूप से प्रयत्न करती हैं जिससे हम जनसंख्या को बनाये रखना कहते हैं। जनसंख्या को बनाये रखने के लिए समाज का तीन आवश्यक कार्य करने होते हैं

(अ) जनसंख्या के खान-पान की व्यवस्था—समाज के सदस्यों का जीवन उस समय खतरों में पड़ जाता है जबकि उनको अपना जीवन यापन करने के लिए भोजन ग्रहण करने में असुविधा हो। इस असुविधा के कारण उनका अस्तित्व भी समाप्त होना हुआ नजर आता है। इस तरह हमें मालूम होना है कि खान पान की व्यवस्था पशु के लिए उतना ही आवश्यक होती है जितनी मनुष्यों के लिए और सम्भवतः दोनों ही खान-पान को प्राप्त करने में प्राण का बलिदान करने के लिए तैयार हो जाते हैं। एक उदाहरण लेकर हम निश्चिन्त रूप से समझ सकते हैं कि भोजन कितना आवश्यक है। दुर्गा और ठण्डे प्रदेशों की बतखें हमारे देश में दिसम्बर और जनवरी के महीने में भोजन की खोज में ही आते हैं। इसी तरह मनुष्यों भी नये स्थानों समूहों और अज्ञात देशों में इसी ध्येय की पूर्ति के लिए जाता है।

(ब) आघात से रक्षा—आघात से रक्षा मनुष्यों के समाज की सदस्यों के लिए आवश्यक होता है। समाज के सदस्यों पर प्राकृतिक, अनाकस्मिक आदि प्रकार के संकट आ सकते हैं जो कि इनके अस्तित्व को समाप्त कर सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में समाज ही एक ऐसा साथी है जो सदस्यों की रक्षा समुचित रूप से कर सकता है।

(स) प्रजनन कार्य—समाज में मनुष्यों अनवरत रूप से मरते रहते हैं जिसके कारण यह सम्भावना रहती है कि कहीं समाज का अस्तित्व ही समाप्त न हो जाय। इसलिए समाज के अर्थ जीवन सदस्यों इस अस्तित्व को समाप्त से बचाने के लिए प्रजनन कार्य में शिथिलता नहीं आन देते। यही कारण है कि हम देखते हैं कि चाहे जानवर हों या मनुष्य, मछली हो या बंदर, सप हो या कीट, आय दिन मकड़ा की संख्या में मरते हैं तथा हजारों की संख्या में उत्पन्न हो जाते हैं जिससे समाज का अस्तित्व बना रहता है।

(२) सदस्यों के संगठन का एक स्तर—समाज के लिए यह आवश्यक है कि सदस्यों के संगठन का एक स्तर हो। आकस्मिक रूप से किसी भी जीव का टुकड़ा हो जाना संगठन नहीं होता है और न किसी दबी प्रकोप के कारण छोटे बड़े कीट पतंग जीव इकट्ठे हो जायें वह भी संगठन नहीं है। बल्कि जब प्राणी अपनी आवश्यकताओं

और शारीरिक अस्तित्व के लिए मिलकर रहते हैं तो हम उसे एक स्तर पर संगठन कह सकते हैं।

(३) सदस्यों के श्रम का विभेदीकरण—समाज में श्रम का विभेदीकरण भी आवश्यक तत्व है। श्रम विभाजन एक प्रकार की स्थिति व कार्य का निर्धारण करता है। श्रम विभाजन व अभाव में समाज का समुचित व्यवस्था चलाना असम्भव है। प्रथम विभाजन जो कि आर्यों द्वारा किया गया है उसे हम वर्ण-व्यवस्था कहते हैं। भिन्न प्रकार के वर्गों में समाज के सभी कार्यों का विभाजन कर दिया गया।

(४) समूह की सुदृढता—सदस्या में एक दूसरे के सम्पर्क व आने के कुछ विशेष कारण होने चाहिए और भिन्न कार्यों को लेकर उनमें अंत क्रिया भी होनी चाहिए। समूह की भावना तीव्र और समूह की दृढता उस समय होता है जब समाज के सदस्य एक दूसरे व सम्पर्क में आ जावें। साथ-साथ समूह की दृढता के लिए यह आवश्यक है कि एक दूसरे के लिए सहिष्णुता और सहयोग की भावना रखें जिसके लिए मुख्यतया उनको गर सदस्या और अपने सदस्यों में भेदभाव रखना पड़ता है। जैसे यह कहा जाता है कि मोहन भारतीय है तो सोहन विदेशी है। अपने और गर सदस्य दोनों ही साथ साथ नहा रह सकते जैसे जल में रहने वाला सप और स्थल पर रहने वाला सप ये दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते।

(५) सामाजिक व्यवस्था की निरन्तरता—प्रत्येक समाज में सुरक्षा व शान्ति, श्रम विभाजन सामाजिक संगठन आदि पाए जाते हैं और यह सामाजिक व्यवस्था पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। मनुष्य समाज में उत्पन्न होता है और समाज में ही मरता भी है उसकी वाढ़ अनवरतता नहीं होती। परन्तु प्रत्येक समाज अपनी निरन्तरता रखने के लिये ऐसी व्यवस्था बनाता है जिससे कि उसकी निरन्तरता में कोई बाधा न आवे।

समाज की रचना करने वाले मूलभूत तत्वों का ऊपर वर्णित कर दिया गया है। ये तत्व प्रत्येक समाज चाहें वह पशुओं का हा या मनुष्य का ही उस बनाने के लिये आवश्यक हैं। इन तत्वों ने एक बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है कि प्रत्येक समाज अपने सामाजिक प्रतिजीवन को बनाए रखना चाहता है, उसी के लिए वह चौबीसा घंटे श्रम करता है उसकी सुरक्षा के लिये साधन जुटाता है, अपनी शक्ति को बढ़ाता है और जीवन में होने वाले साधनों का सामना करता है।

समाजों का वर्गीकरण^१

विद्वान् पृष्ठा म हमन देगा कि जीवों की अनेक आवश्यकताएँ होती हैं जिनकी पूर्ति व निव मनुष्य प्राणी एक समूह में आ जाते हैं। इस तरह के एक समाज की

१. देखिए मेनिगमन 'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्स' में 'समाज पर सप'।

रचना करने हैं। इतना बहने के बाद अब हम समाजों का वर्गीकरण प्रस्तुत करें। सामाजिकता हम समाज का दो भाग में विभाजित कर सकते हैं।¹ पशु-समाज एक मानव-समाज। हमारे इन वर्गीकरण का आधार उत्पत्तिगत नहीं है, बल्कि इसके दो तांत्रिक आधार हैं। पशु-समाज में जो कुछ भी हम सामाजिक व्यवस्था पाते हैं, वह बस परम्परात्मक होती है। उदाहरणार्थ पशुओं के बछड़े जन्म लेते ही माता का दूध पीना आरम्भ कर देते हैं। चींटी जन्म लेते ही अपनी सामाजिक-व्यवस्था में भाग लेना आरम्भ कर देती है। इनका सारा व्यवहार शारीरिक हस्तान्तरण कहा जा सकता है। प्रा० डेविस ने इसको जैविक सामाजिक (bio-social) व्यवस्था के नाम से सम्बोधित किया है। उनका मत है कि जिन समाजों के सामाजिक प्रतिमान वंशानुक्रमण द्वारा निर्धारित होते हैं, वे जैविक-सामाजिक (bio-social) कह जाते हैं। इसके ठीक विपरीत मानव-समाज के आचरण-व्यवहार एक प्रतिमान समाज द्वारा निश्चित किया जाता है। मानव जन्म से ही जानि-पानि, अस्पृश्यता, प्रेम घृणा इत्यादि मानवीय व्यापारों का सीख कर नहीं आता है। समाज की सम्मति एक मस्तिष्क व्यक्ति के भावा, आचरणों एवं प्रतिमानों का निर्धारण करती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मानव-समाज के वर्गीकरण का आधार सामाजिक-सांस्कृतिक है। अब हम क्रमशः इन दोनों समाजों की विशेषताओं को प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

पशु समाज—एक जैविक सामाजिक व्यवस्था

(Animal Society—A Biological System)

जैसा हम यह निवेदन कर चुके हैं कि मानव शूय समाज में जीवधारी अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि ऐसी सामाजिक-व्यवस्था से करते हैं जिसका आधार वंशानुक्रमण है। मानव शूय समाज का दो भाग में वर्गीकृत किया जाता है

(१) एक कोषीय जीवधारी (Single celled organisms)

(२) बहुकोषीय जीवधारी (Multicellular)

अब हम दोनों जीवधारियों की चर्चा कुछ विस्तार में प्रस्तुत करेंगे।

(१) एक कोषीय जीवधारियों का समाज (Society of single-celled organisms)—इस प्रकार के जीवधारियों की प्रमुख विशेषता यह है कि शारीरिक दृष्टिकोण से वे परम्परा मन्विक रहते हैं। इन जीवधारियों का प्रजीव (Protozoa) भी कहा जाता है। ये प्रजीव परस्पर बहुत सन्निकट रहते हैं। हमें उनको देखकर ऐसा लगता है कि वे सब एक अणु (organism) ही हैं। ऐसे प्रजीवों में पाँचरा में पाए जाने वाली हरी शवाल (green volvox) का हम ल सकते हैं। ये परस्पर एक दूसरे से जुड़े पाए जाते हैं। ये 'शवाल' एक अणु की भाँति पानी में घूम

1. Societies having patterns fixed by heredity may be called bio social
Huxley Devis Ibid p 31

वन्ते जाते हैं। इनमें हम धर्मविभाजन भी मिलता है। शैवाल-समाज में धर्मविभाजन का आधार उनमें पाए जाने वाला शारीरिक भेद है। कुछ शैवाल पानी की धारा का चुनबुला करते हैं, ता श्रम भोजन एवं प्रजनन की व्यवस्था।

जीवशास्त्रिया का मत है कि जीवधारी-समाज में एकीकरण की भावना नहीं पाया जाती है। तभी मानव-समाज में पायी जाती है। इन समाजों की रचना का आधार शारीरिक है न कि मनावन्तानिक।

(२) बहुकोषीय जीवधारियों का समाज (Society of Multicellular organism)—ऐसे जीवधारियों में मानसिक निकटता पायी जाती है। ऐसे जीवधारियों में चीटी, मधुमक्खी, दीमक मछलियाँ, सप मगर बदर, कुत्ते आदि जीव आते हैं। इनका समाज व्यवस्थित होता है।

चींटे मधुमक्खी दीमक में तो एक रानी होती है जो केवल प्रजनन का काम सम्पादित करती है। उससे अतिरिक्त काम की अपेक्षा नहीं की जाती है। ये सामान्यतया माता चाटी या मधुमक्खी होती हैं। सभी कीट (Insects) सामाजिक जीवन यापन नहीं करते हैं। प्लथ में पाच हजार कीटा का पता लगाया जिनमें केवल तीन प्रतिशत सामाजिक जीवन यापन करते थे।

बहुकोषीय जीवधारी (Multicellular organism) अपने व्यवहारों को जन्मजात सीख कर आते हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री मिलिन और मिलिन का निम्न कथन हमारी विचार-श्रमण की पुष्टि करता है "व्यक्ति के रूप में प्रत्येक चीटी मधुमक्खी या ततम्या ऐसा प्रतीत होता है कि माना अपने व्यवहारों को जन्म से ही सीखकर पता हो अर्थात् उनका व्यवहार एक सहज जान है।¹ मानव-समाज की भाँति बहुकोषीय जीवधारी-समाज में बच्चा की प्रशिक्षण (Training) की अपेक्षा नहीं होती है।

शु-समाज में सामाजिक व्यवहार (Social Behaviour in Animal Society)

शु-समाज में हम सामाजिक व्यवहार के लक्षण परिलक्षित होते हैं। जैसे दीमक-जीवाणु अपनी समाज रचना के लिए प्रख्यात हैं। दीमक अपने निवास स्थान का गपाई एवं सुरक्षा के नियम ध्यान देती है। उनमें शत्रुता से रक्षा की भावना भी पाया जाती है।

चींटियाँ में भी सामाजिक व्यवस्था एवं सङ्गठन पाया जाता है। चींटी-समाज में धर्मविभाजन पाया जाता है। उनमें से कुछ धारदाण का काम सम्पादित करती हैं, कुछ भोजन व्यवस्था के काम का सम्पादित करती हैं। सक्षेप में हम इनके समाज में

1 Each individual ant bee or wasp seems to be born with its behaviour already learned that is its behaviour is instinctive Gillin and Gillin *Cultural Sociology* p 35

एक व्यवस्थित काम प्रणाली को पाते हैं। चौटिया अपना जीवन अनुशासनबद्ध यापन करती हैं। हम और भी पशु-समाज देखन को मिलते हैं जिनमें सामूहिक एव अनु-शाननगत जीवन व्यतीत करने के तौर-तरिके पाए जाते हैं।

सामूहिक-जीवन से पशु समाज को लाभ (Advantages of Group Life for Animals)

सामूहिक जीवन-यापन का महत्व न केवल मानव समाज के लिए है बल्कि पशु-समाज के लिए भी उतना काफी महत्व है। "अकेले चना भाड़ नहीं पाड़ सकता" यह कहावत पशु-समाज एव मानव-समाज के प्राणियों के ऊपर समान रूप से लागू होती है। सामूहिक जीवन में रहित मानव या पशु-समाज की कल्पना हम ताकिक आधार पर कभी कर ही नहीं सकते हैं। अकेले काई भी प्राणी हा, चाहे उसका सम्बन्ध पशु-समाज या मानव-समाज से हो, वह अपने जीवन की आवश्यक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि अकेले नहीं कर सकता है। उस अपने समाज के प्राणियों के साथ सामूहिक सम्बन्ध रखना ही पड़ेगा। अब हम सामूहिक जीवन से पशु-समाज के लाभों को प्रस्तुत करेंगे।

(१) सघ से शक्ति बढ़ती है—संघे शक्ति कनि युग' प्रत्येक युग में लोगो का विचार रहा है कि सघ में शक्ति हाती है। पशु समाज में सघ की स्थापना से उनमें शक्ति बढ़ती है। जम हड्डे के टुकड़ों के नीचे बटन का साहम किसी को भी न होगा।

(२) सामूहिक प्रयत्नों से कार्यक्षमता की वृद्धि होती है—पशु समाज में सभी प्राणी समुक्त रूप से प्रयास करने हैं। समुक्त रूप से (jointly) काय-व्यापार करने से काय-व्यापार एव उसके संचालन में सहायता मिलती है। कार्य-सम्पादन आसानी से हो भी जाता है।

(३) स्थायी वस्तुओं का निर्माण—पशु-समाज के प्राणी सामूहिक जीवन यापन करते से अपने निवास स्थान आरक्षण ऐसे स्थान की रचना कर लते हैं जो स्थायी रूप में उनके जीवन का अड्डा बन कर उनकी सहायता करते हैं। उदाहरणार्थ, गुफा, घोंसले, धीन आदि स्थायी वस्तुओं के निर्माणान्तगत रखा जा सकता है।

अब हम मानवीय-समाज की कुछ विशेषताओं की तरफ पाठक का ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे।

मानव-समाज—सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था (Human Society—Social Cultural System)

जैसा कि हम स्पष्ट कर चुके हैं कि मानव-समाज का आधार सामाजिक सामूहिक (Social Cultural) है जबकि पशु-समाज का आधार बशानुक्रमणबद्ध है। मानव-समाज के आधार में जैविक कारक (Biological factors) का कुछ योग-

दान माता गया है अतः हम यहाँ मानवाय समाज के जविय एव सामाजिक सांस्कृतिक तत्वा पर प्रकाश डालेंगे।

मानव समाज का जविय आधार (Biological Basis of Human Society)

शारीरिक संरचना के दृष्टिकोण से मानव एव पशु में कोई विभेदीकरण की रस्ता खींचना सम्भव नहीं है। इसी कारण वनानिक मानव की शारीरिक संरचना (Biological Structure) को समझने के लिये पशु समाज के प्राणियों की प्रयोगशाला में खींच फाड़ करत है। पशु-समाज एव मानव-समाज में जविय आधार पर बहुत सी सामान्य (Common) बातें पाई जाती है। मानव-समाज में नर मादा की भ्रांति पशु समाज में नर मादाएँ पाई जाती है।

पशुओं का भ्रांति मानव में काम प्रवृत्ति पायी जाती है। मानव एव पशु दोनों में प्रजनन प्रक्रियाएँ समान रूप से पाई जाती हैं। परिणामतः दोनों समाजों का अस्तित्व जारी रहता है। जीवधारियों के समान ही मानव में गान इन्द्रियाँ पायी जाती हैं जिसके माध्यम से गान प्राणि में वह सफल होता है। दानों में मनावनानिक आधार पर भी समानताएँ हैं। दानों में आशा निराशा, सुख-दुख भय क्रोध इत्यादि मनो वनानिक प्रवृत्तियाँ उपस्थित रहती हैं। हम उनमें मानसिक संरचना (Mental Structure) के आधार पर भी समानताएँ पाते हैं। इन दोनों में बहुत कुछ जविय समानताएँ हान हुए विभिन्नताएँ भी पायी जाती हैं। इन दानों में जो जविय आधार पर विभिन्नताएँ हैं उनको यहाँ प्रस्तुत करना असंगत न होगा।

(१) मानव के पास मुख्यस्थित और केन्द्रित चेतना सहित (Man has a highly organized and centralized nervous system)—शारीरिक संरचना के दृष्टिकोण से पशु संरचना एव मानव संरचना समान है। फिर भी कुछ मूलभूत भिन्नताएँ हैं। जन्म एक पुरुष की खापडी (Skull) की दायता १४५० क्यूबिक सेंटीमीटर होती है जबकि एक गोरिल्ला बन्दर का बन्दर ५०० क्यूबिक सेंटीमीटर। इसके साथ ही मनुष्य का मस्तिष्क बन्दर का जटिल (complex) होता है। उसका प्रमस्तिष्क (Cerebrum) काफी विकसित होता है। ऐसा जानकरा के प्रमस्तिष्क के विषय में नहीं कहा जा सकता।

(२) मनुष्य की सीधे खड़े होने की स्थिति (Man's upright posture)—शारीरिक दृष्टिकोण से व्यक्ति की यह विशेषता है कि वह खड़े होकर अपने कार्यों का सम्पन्न कर सकता है। पशु-समाज के प्राणिमा के लिये ऐसा सम्भव नहीं है। पशु-समाज के प्राणियों का मस्तिष्क गिरा कर किसी कार्य के लिये बाध्य किया जाय तो सम्भवतः वह उन कार्य को खड़े होकर सम्पन्न कर नहीं कर पायेगा। वे सीधे खड़े हो सकते हैं किन्तु हाथ भंग कर के लिये ही। सीधे खड़े होकर कार्य करना उनका निरवधारण है।

(३) मनुष्य के पास वाणी है (Man has speech)—जैविकीय दृष्टिकोण से मनुष्य के पास विकसित वाणी (Developed speech) है। जानवरा के पास भी वाली है, किन्तु अपनी भावाभिव्यक्ति के परस्पर नहीं कर सकते हैं। मनुष्य वाणी द्वारा अपनी भावाभिव्यक्ति सरलता से कर लेते हैं। पशु अपनी वाणी द्वारा भावाभिव्यक्ति कर सकते हैं और करते भी हैं किन्तु उनकी बोली विकसित नहीं है।

(४) अथ शारीरिक विशेषतायें (Subsidiary physical peculiarities)—उपरोक्त शारीरिक सरचनात्मक विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ और भी हैं जिनकी चर्चा करना भी समीचीन होगा। मानव शरीर पर अपेक्षाकृत कम बाल होते हैं। बन्दर शेर रोछ आदि का सारा शरीर बालों से आच्छादित रहता है। मानव का बालाभाव म गर्मी सर्दी से शरीर रक्षाय कृत्रिम साधना की सहायता करती पड़ती है। मनुष्य के नाक की सरचना पशुओं से काफी भिन्न होती है। मानव समाज में नवजात शिशु जन्म लेते ही पराश्रित हो जाता है वह स्वयं कुछ नहीं कर सकता है। जानवर के बच्चे लग भग जन्म ही आत्मनिभर हो जाते हैं।

मानवीय समाज पर मानव जीवन के जविय और शारीरिक सरचनात्मक विशेषताओं का प्रभाव उसने सामाजिक जीवन पर पड़ता है। परिणामतः जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में वह पशुओं से भिन्न है। अब हम पशु समाज एवं मानव समाज में जो विभिन्नताएँ हैं उसकी चर्चा करेंगे।

पशु और मनुष्य समाज में अंतर (Difference in Animal and Human Society)

पशु एवं मानव जीवन में जो मूलभूत भेद हैं वे इस प्रकार हैं —

(१) मनुष्य के सामाजिक जीवन की विविधता (Variety of human social life)—मानव समाज पर विचार करते समय पहली बात जो दिमाग को मक-भोरती है वह है मानव जावन की विविधता। मानव जीवन में विविधताओं का आधार जाति, रंग इत्यादि है लेकिन सभी वानिका का क्या है कि वे सब एक ही होमो सेपियन्स (Homo Sapien) की सन्तानें हैं। मूलतः मनुष्य एक ही है किन्तु प्रकार का सामाजिक जीवन व्यतीत करते हैं। यूरोप में वे बहुत ही तरफ काँपुर के लोच ऊँची ऊँची श्रृंखलाओं में जीवन यापन करते हैं। सभार के प्रत्येक देश में गाँवों के लोग भाषणियाँ में अपनी जीवन यापन करते हैं। असार के प्रत्येक देश में व्यक्तियों के आचारा, विचारा, सभृति-सभ्यताओं, प्रतिमानों प्रथाओं एवं रहन-सहन में काफी भिन्नताएँ दिताई पड़ती हैं। पशु समाज उदाहरणार्थ, बन्दर, चींटी मच्छर अपने समाज में एक ही प्रकार का जीवन यापन करते हैं।

(२) मनुष्य समाज तीव्रता से और मौलिक रूप से परिवर्तित हो सकता है (Human society may change rapidly and radically)—पशु समाज में

परिवर्तन के लिए स्थान नहीं है। पशु जीवन वशानुक्रमणगत निर्धारित होता है, उसमें परिवर्तन तब के लिए उनका बाह्यकारणों का परिवर्तन लाना पड़ेगा। चींटियाँ हजार वर्ष पहले भी पत्तिका बनाकर चलती थी आज भी चल रही हैं। मानव-समाज से वर्ष पहले जसा था, इस समय वसा नहीं है। माता पिता एवं पुत्र के व्यवहार में भी आए दिन परिवर्तन दिखायी दे रहे हैं। मानव समाज दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ता जा रहा है। मानव समाज गतिहीन (Static) नहीं बल्कि गत्यात्मक (dynamic) है। पशु-समाज में गतिशीलता नहीं पाई जाती है। जो पाई जाती है वह भी मन्द गति से।

(३) मनुष्य की एक सृष्टि है (Man has a culture)—पशु-समाज के पास भाषा की भाँति अपनी सृष्टि नहीं है। हमारे खान पीन, वातवीत करने, चिन्तन पद्धति कला-मृष्टि दर्शन एवं साहित्य मृजन की अपनी मायताएँ हैं जो पशु समाज में नहीं पाई जाती हैं। हम जो समाज में त्योहार सस्कार पर्व, भाषा, जाति रंग भ्राँति देख रहे हैं ये मानव कृत हैं। मानव को पशु से अलग करने में सृष्टि एक बड़ा बड़ा आधार है।

(४) मनुष्य का काम नियंत्रित रहता है (Man controls his sexuality)—मानव एवं पशु दोनों में काम एवं प्रजनन की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। पशु में काम नियंत्रण (Sex control) का अभाव रहता है। उसमें स्वच्छन्दता होती है। उसमें मानव समाज की भाँति विवाह सस्कार का अभाव सा है। मानव-समाज में काम सन्तुष्टि का नियम समाज द्वारा मायता प्राप्त विवाह सस्कार, सामाजिक-स्त्रियाँ, सामाजिक प्रतिमान प्रस्थापित हैं जो मानव जीवन की काम प्रवृत्ति पर नियंत्रण करते हैं।

(५) मनुष्य में सांकेतिक संचार की क्षमता है (Man is capable of symbolic communication)—Cosses का कथन है कि Man is a symbol using animal पशु प्रतीका का प्रयोग नहीं करते हैं। मनुष्य प्रतीका का माध्यम से परस्पर अपनी भावाभिव्यक्ति करते हैं। मानव और पशु दोनों में ज्ञान-द्रवियों पाई जाती हैं किन्तु मनुष्य पशु की अपेक्षा अधिक साक्षर है। वह अपने भावा विचारों को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। उत्तराखण्ड राष्ट्रीय भण्डा राष्ट्रीय एनता की तरफ सभी देशवासियों का ध्यान आकृष्ट करता है। प्रतीकों के माध्यम से परम्परामें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी का हस्तांतरण होता है।

(६) मनुष्य का भाषा है (Man has language)—ध्वनि अपने भावा को एक से दूसरे तक पहुँचाना चाहता है। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से वह अपनी बात दूसरे तक पहुँचा सकता है। भाषा प्रतीकवाद का उच्चतम स्वरूप है। एम्. के. सगर का कथन है कि "Language is a high form of symbolism" विचारों एवं अनुभवों का प्रत्यय (Concepts) में बहसना भाषा का

मुख्य लक्ष्य है। व्यक्ति के पास एक विकसित भाषा है, जिसे द्वारा वह अपने विचार और भावा का आदान प्रदान करता है। पशु-समाज में भाषा का अभाव है। वह अपने आशा निराशा, सुख-दुःख को भाषा के माध्यम से लिखकर अभिव्यक्त नहीं कर सकता है।

(७) मनुष्य समाज का आदर्शात्मक नियंत्रण होता है (Human Society possesses normative control)—मनुष्य के प्रत्येक काम में दो तत्त्व हैं

(i) तथ्य (facts)

(ii) तथ्य के प्रति दृष्टिकोण (Attitude towards facts)

इस हम या समझ सकते हैं। प्रत्येक समाज में कुछ लक्ष्य (goals) निश्चित होते हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिये साधन (means) भी समाज द्वारा हम प्राप्त होते हैं। Trend की Terminology में 'Renunciation of instinctual gratification' समाज का सुचारु-रूपण संचालित करने के लिये आवश्यक है। यही पर हम समाज द्वारा मायता प्राप्त साधना का उपयोग करता पढ़ता है। समाजशास्त्री ऐसे तरीके (devices) का Social Control कहते हैं। जैसे यदि कोई काम सन्तुष्टि चाहता है तो उसके लिये आवश्यक है कि वह विवाह सस्कार के माध्यम से काम सन्तुष्टि करे। काम सन्तुष्टि तथ्य है, उसे विवाह सस्कार के माध्यम से सन्तुष्टि करना उस तथ्य का प्रति दृष्टिकोण है। मानव समाज अपने सभ्यता का सामाजिक मूल्य (Social values) का प्रदान करता है ताकि समाज में Conformity स्थापित रह सके। मनुष्य समाज में तथ्यात्मक एवं नैतिक दाना व्यवस्थाएँ पायी जाती हैं। किंग्सले डेविस कहता है "इस तरह (मनुष्य) समाज के पास न केवल तथ्यात्मक व्यवस्था हानी है बल्कि एक नैतिक व्यवस्था भी होती है और साधारणतया ये दाना एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं।¹ संक्षेप में प्रत्येक मनुष्य-समाज में लक्ष्य एवं साधना का प्राप्ति करने के लिये प्रतिमान भी हैं।

उपसंहार (Conclusion)

इस अध्याय में हमने पशु-समाज एवं मानव समाज का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उनमें विभेद करने वाली सीमा रेखाओं को तरफ भी ध्यान दिया गया। प्रत्येक समाज पशु समाज या मानव समाज है उसकी कुछ सामाजिक आवश्यकताएँ हानी हैं। उदाहरणार्थ जविय सुरक्षा काम सन्तुष्टि, आराम मोजन आदि जीवन की सामान्य आवश्यकताएँ हैं। प्रत्येक समाज इन आवश्यकताओं को पूरा करता है। मानव समाज एवं पशु समाज इस लिए अपवाद नहीं हैं। ये दाना समाज भी अपनी उपरान्त आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। यहाँ तक तो दोनों समाजों में साम्य है किन्तु इन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के साधनों में महान अन्तर है। जहाँ पशु-समाज अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति वानुनमणवद प्राप्त

1 'The human society has not only a factual order but also moral order and the two are causally interdependent — Kingsley Davis Ibid p 46

परिवर्तन के लिए स्थान नहीं है। पशु जीवन वशानुक्रमणगत निर्धारित होता है, उसमें परिवर्तन लाने के लिए ऊर्ध्व बाह्यकारणों का म परिवर्तन लाता पड़ेगा। चींटियाँ हजार वर्ष पहले भी पत्ति बनाकर चलती थी, आज भी चल रही हैं। मानव समाज सी वर्ष पहले जसा था, इस समय वसा नहीं है। माता पिता एवं पुत्र के व्यवहार में भी आए दिन परिवर्तन दिखायी दे रहे हैं। मानव समाज दिन दूनी रात चौथुनी बढ़ता जा रहा है। मानव समान गतिहीन (Static) नहीं बल्कि गत्यात्मक (dynamic) है। पशु-समाज में गतिशीलता नहीं पाई जाती है। जो पाई जाती है वह भी मन्द गति से।

(३) मनुष्य की एक सस्कृति है (Man has a culture)—पशु-समाज के पास मानव की भाँति अपनी सस्कृति नहीं है। हमारे खान-पीने, बातचीत करने, चिन्तन पद्धति कला मृष्टि, दान एवं सान्त्वित्य मृजन की अपनी मायताएँ हैं जो पशु समाज में नहीं पाई जाती हैं। हम जा ससार में त्यौहार, सस्कार एवं भाषा जाति, रंग आदि देख रहे हैं ये मानव कृत हैं। मानव को पशु से अलग करने में सस्कृति एक बहुत बड़ा आधार है।

(४) मनुष्य का काम नियंत्रित रहता है (Man controls his sexuality)—मानव एवं पशु दोनों में काम एवं प्रजनन की प्रवृत्ति पाई जाती है। पशु में काम नियंत्रण (Sex control) का अभाव रहता है। उसमें स्वच्छेदता होती है। उसमें मानव समाज की भाँति विवाह सस्कार का अभाव सा है। मानव-समाज में काम सन्तुष्टि के लिये समाज द्वारा मायता प्राप्त विवाह सस्कार, सामाजिक-रूढ़ियाँ सामाजिक प्रतिमान प्रस्थापित हैं, जो मानव जीवन की काम प्रवृत्ति पर नियंत्रण करते हैं।

(५) मनुष्य में साकेतिक संचार की क्षमता है (Man is capable of symbolic communication)—Cosses का कथन है कि Man is a symbol using animal पशु प्रतीका का प्रयोग नहीं करते हैं। मनुष्य प्रतीका के माध्यम से परस्पर अपनी भावाभिव्यक्ति करते हैं। मानव और पशु दोनों में तान्त्रियाँ पाई जाती हैं किन्तु मनुष्य पशु की अपेक्षा अधिक सीखता है। वह अपने भावों विचारों को प्रतीका के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय झण्डा राष्ट्रीय एकता की तरफ सभी देशवासियों का ध्यान आकृष्ट करता है। प्रतीका के माध्यम से परम्पराएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती हैं।

(६) मनुष्य के पास भाषा है (Man has language)—व्यक्ति अपने भावों को एक से दूसरे तक पहुँचाना चाहता है। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से वह अपनी बात दूसरे तक पहुँचा सकता है। भाषा प्रतीकवाद का उच्चतम स्वरूप है। एस० के० लगर का कथन है कि 'Language is a high form of symbolism' विचारा एवं अनुभवाओं की प्रत्यया (Concepts) में बदलना भाषा का

मुख्य लक्ष्य है। व्यक्ति के पास एक विकसित भाषा है जिसके द्वारा वह अपने विचारों और भावा का आदान प्रदान करता है। पशु-समाज में भाषा का अभाव है। वह अपने भाषा निराशा, सुख-दुःख का भाषा के माध्यम से लिखकर अभिव्यक्त नहीं कर सकता है।

(७) मनुष्य समाज का आदर्शात्मक नियंत्रण होता है (Human Society possesses normative control)—मनुष्य के प्रत्येक कार्य में दो तत्त्व हात हैं

(i) तथ्य (facts)

(ii) तथ्य के प्रति दृष्टिकोण (Attitude towards facts)

इसे हम या समझ सकते हैं। प्रत्येक समाज में कुछ लक्ष्य (goals) निश्चित होते हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिए साधन (means) भी समाज द्वारा हमें प्राप्त होते हैं। Trend की Terminology में Renunciation of instinctual gratification समाज को सुचारु-रूप से संचालित करने के लिए आवश्यक है। यही पर हमें समाज द्वारा मायता प्राप्त साधनों का उपयोग करना पड़ता है। समाजशास्त्री ऐसे तरीके (devices) का Social Control कहते हैं। जैसे यदि कोई काम सन्तुष्टि चाहता है तो उसके लिए आवश्यक है कि वह विवाह सस्कार के माध्यम से काम सन्तुष्टि करे। काम सन्तुष्टि तथ्य है उसे विवाह सस्कार के माध्यम से सन्तुष्टि करना उस तथ्य के प्रति दृष्टिकोण है। मानव समाज अपने सदस्यों का सामाजिक मूल्य (Social values) का प्रदान करता है ताकि समाज में Conformity स्थापित रह सके। मनुष्य समाज में तथ्यात्मक एवं नैतिक दोनों व्यवस्थाएँ पायी जाती हैं। किम्वला द्विभ्रम कहना है इस तरह (मनुष्य) समाज के पास न केवल तथ्यात्मक व्यवस्था होती है बल्कि एक नैतिक व्यवस्था भी होती है और साधारणतया ये दोनों एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं।¹ संक्षेप में प्रत्येक मनुष्य-समाज में लक्ष्य एवं लक्ष्य का प्राप्त करने के लिए प्रतिमान भी हैं।

उपसंहार (Conclusion)

इस अध्याय में हमने पशु-समाज एवं मानव समाज का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उनमें विभेद करने वाली सीमा रेखाओं का तरफ भी ध्यान दिया गया। प्रत्येक समाज, पशु समाज या मानव समाज ही उनकी कुछ सामाजिक आवश्यकताएँ होती हैं। उत्तरदायक जन्म सुगन्धा काम सन्तुष्टि, आराम भोजन आदि जीवन की सामान्य आवश्यकताएँ हैं। प्रत्येक समाज इन आवश्यकताओं को पूरा करता है। मानव समाज एवं पशु समाज इनके लिए अलग-अलग नहीं हैं। ये दोनों समाज भी अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। यहाँ तक तो दोनों समाजों में साम्य है किन्तु इन आवश्यकताओं का सन्तुष्टि के साधनों में महान अन्तर है। जहाँ पशु-समाज अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति वगानुत्पन्नत्व प्राप्त

1 Thus human society has not only a factual order but also moral order and the two are causally interdependent — Kingsley Davis *Ibid* p 46

साधना से करता है वही मनुष्य समाज अपने समाज द्वारा प्राप्त सांस्कृतिक प्रतिमानों से। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि पशुओं में जन्मजात सहज वक्तियाँ (instincts) पायी जाती हैं। पशु अपने कार्य-यापार का संचालन त्रिना प्रशिक्षण से इन सहज प्रवक्तियों के माध्यम से कर लेते हैं। उच्च प्रशिक्षण की अपेक्षा नहीं होती है। उदाहरणार्थ—संसार की चींटियों में एक ही जसी सामाजिक व्यवस्था पायी जाती है। ऐसी बात मनुष्य के लिये नहीं लागू होती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का यहाँ तक कथन है कि मनुष्य में सहज वक्तियाँ नहीं हैं लेकिन पूरुणतया ऐसा स्वीकार नहीं किया जा सकता। दूसरी तरफ मनोविज्ञान के अविश्वविद्वानों का विचार है कि यदि मनुष्य के पास सहज वक्तियाँ हैं तो वे बहुत थोड़ी मात्रा में होती हैं और वे जन्म के समय अविकसित होती हैं। इसलिए पशुओं की तरह मनुष्य को जन्म से ही व्यवहार के प्रतिमान प्राप्त नहीं होते।¹ व्यक्ति समाज में आकर अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार को सीखता है। यही पशु एवं मानव समाज में स्पष्ट अंतर है। अभिमान का वरण हमें अपमान के रूप में मिलता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पशु समाज एवं मानव समाज में काफी भेद है। इस भेद का आधार शारीरिक संरचना, व्यवहार, प्रतिमान, कला, भाषा, संस्कृति एवं सभ्यता के प्रतीक इत्यादि हैं। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो प्रतीकों का निर्माण और उपयोग (Symbol making and using) करता है। श्रीमती तैंगर तथा राधाकमल मुखर्जी प्रभृति विद्वान मानव और पशु समाज के भेद का आधार मनुष्य की उपरोक्त क्षमता ही मानते हैं।²

1 गिलिन और गिनिन वही पृष्ठ ४३।

2 राधाकमल मुखर्जी 'निम्बालिक लाइफ ऑफ मनु और जगत् फिलॉसफी इन एन्यू बी।

समाज और पर्यावरण

जब हम अपना प्रदेश के विभिन्न भागों में जाते हैं तो इन भागों के सामाजिक जीवन में बहुत अन्तर दिखाई पड़ता है। उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व कम है गाँव दूर-दूर बसे हैं। मकान पथर और लकड़ी के बने हैं। निवासियों का भोजन, वेप भूषा, भाषा सामाजिक रीति रिवाज और संस्कृति सभी तो मैदानी से भिन्न लगते हैं। इसी प्रकार पूर्वी उत्तर प्रदेश का सामाजिक जीवन प्रायः हर बात में पश्चिमी क्षेत्र के जीवन से भिन्न है। जिन भागों में भारत के विभिन्न प्रदेशों में दाखल भी भ्रमण किया जाता है वगल और राजस्थान इनमें बम्बई पंजाब तथा काश्मीर या उत्तर प्रदेश और दिल्ली भारत के सामाजिक जीवन में बहुत भिन्नता में आश्चर्य प्रकट होता है। राजस्थान के रजिस्तानी प्रदेशों में दूर-दूर गाँव बसे हैं जहाँ वहाँ भी गाँव हैं बड़े-बड़े हैं। मकान पथर और मिट्टी के बने हैं। फसलें में ज्वार, बाजरा, मक्का आदि शुष्क जलवायु में उगने वाली फसलें ही प्रचलित हैं। आन-आन के साधन मछलें, रेलें आदि बहुत कम हैं। माल टान और मखारी के लिए ऊँट काम में लाया जाता है। यहाँ लागू होने वाले पहने हैं गिर पर साफ़ या पाटा धावन हैं। स्त्री-पुरुष सभी जूत पहनते हैं। इनके रीति रिवाज और संस्कारों में निराला है। इनके अपने स्वीटार और पत्र हैं। इनकी भाषा अथवा प्रशासकीय भाषा से भिन्न है। अब आइये भारत के पश्चिमी समुद्र-तटस्थ कारण प्रदेशों में चलें। यहाँ के गाँव, खेतों के तरीकें, आवागमन के साधन लोगों के पत्र भोजन पहनावा, संस्कारों और प्रथाओं उमर और पत्र अपने ढंग के निराले हैं। बहन का अभिप्राय यह है कि भारत के कोई भी भिन्न क्षेत्र या प्रदेश ले लीजिए। उनके सामाजिक जीवन में पर्याप्त भिन्नता देखने का मिलेगी।

सामाजिक भिन्नता तो गाँव और नगरों में भी मिलती है। एक ही बड़े नगर के विभिन्न भागों का सामाजिक जीवन भी तो समान नहीं होता। जिन भागों में भूगर्भ पत्ता है अथवा सस्यार का प्रमाण किया है वह भी विभिन्न देशों के समाजों में

भिन्नता के अन्वेष्य दर्शन हुए होंगे। मध्य यूरोप और केन्द्रीय एशिया के घास के मैदानों के निवासियों का सामाजिक जीवन आस्ट्रेलिया के चरागाही मैदानों से भिन्न है। काश्मीर स्पाम और चीन के कुछ भागों में लोग नावों पर मकान बना कर रहते हैं। अमरीका के गहरे उगाने वाले प्रदेशों में विशाल नगर घसे हैं। टुण्ड्रा में लोग बरफ के मकानों में रहते हैं और राख मछली आदि का शिकार करके पेट पालते हैं। समुद्रों के किनारों पर बसे लोगों का मछली का शिकार ही मुख्य पेशा है। इंग्लैंड के लकड़ा शायर और मैनचेस्टर का सामाजिक जीवन तिब्बत या लकड़ा के सामाजिक जीवन से इतना भिन्न है कि दोनों में भारी असमानता है। क्या इस सामाजिक असमानता का कारण भौगोलिक भिन्नताएँ हैं ?

सामाजिक जीवन में इस भिन्नता का कारण पर्यावरण की भिन्नता है। हर समाज एक विशिष्ट पर्यावरण में रहता है। पशुओं और पेड़-पौधों में जो भिन्नता पाई जाती है उसका कारण भी पर्यावरण की भिन्नता है। पेड़ या पौधों के लिये जमीन, जिसमें वह उगता और फूलता फलता है, पर्यावरण का काम करती है। किन्तु जमीन तो उसके सम्पूर्ण पर्यावरण का एक अंश ही है। जलवायु, हवा, प्राकृतिक शक्तियाँ, अथवा पेड़-पौधे, पशु और मनुष्य—य सब उनके पर्यावरण का अंग हैं। अर्थात् पेड़ के पर्यावरण में वे सभी जीवित और निर्जीव पदार्थ, प्राकृतिक दशाय और शक्तियाँ, पशु और मनुष्य शामिल होते हैं जो उसके बाहर हैं और उस पर अपना प्रभाव डालते हैं। दूसरे शब्दों में पेड़ का अतिरिक्त जो कुछ उससे बाहर है और जो उसे प्रभावित करता है वह उसका पर्यावरण है।

पर्यावरण की धारणा

किन्तु पर्यावरण की उपरोक्त धारणा भ्रामक है। पर्यावरण केवल वह वस्तु नहीं जो पेड़ या मनुष्य—एक प्राणी से बाहर और पृथक् है और जो उसी सिफ चारों ओर से घेर है। पर्यावरण प्राणियों के जीवन से इतना असम्बद्ध और स्वतन्त्र नहीं है। पर्यावरण (परि=चारा और, आवरण=ढकने वाला) के शाब्दिक अर्थ से हम पर्यावरण और जीवन के सम्बन्ध को कदापि नहीं समझ पायेंगे। पर्यावरण का यह अर्थ लेना उसके महत्त्व को कम करना है। सच तो यह है कि पर्यावरण और जीवन का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। मनुष्य एक पर्यावरण में जन्म लेता है और उसी में बढ़ता और प्रौढ़ होता है। उसका सारा शरीर, उसके जीवन की रचना सभी तो गत जीवन और भूत पर्यावरण की उत्पत्ति है। पर्यावरण तो जीवन के बीज-कोष्ठ में भी उपस्थित रहता है। हमारे शरीर की दृढ़ताएँ और गुण हमारे सम्पूर्ण पर्यावरण से सम्बन्धित हैं जिसमें वे प्रकट होते हैं।¹ मेकाइवर पर्यावरण को केवल प्रभाव डालने वाला धारक नहीं मानता। वह कहता है कि हम ऐसे किसी जीवन का पान नहीं जो प्रतिवृत्त पर्यावरण में भी अपना अस्तित्व रख सका हो। जीवन

(या जीव) उसी पर्यावरण में रहना है जिसमें उसका पूव से ही ममायाजन हो गया है। वास्तव में जीवन और पर्यावरण परस्पर मह-सम्बन्धी हैं।

पर्यावरण एवं जीवन

पर्यावरण और जीवन दोनों सन्निकटता में मिले जुले हैं कि जीवन के हर एक किस्म और हर एक जाति और व्यक्तिगत जीवन पदान का पर्यावरण विनिष्ठ और पृथक् होता है। अर्थात् पर्यावरण एक नहीं किन्तु उत्तम अग्रणी विभिन्नताएँ हैं। यदि हम पशुओं की भाँति या मनुष्यों का समाज के विभिन्न भागों में देखें तो स्पष्ट होगा कि जीवन के विशेषीकरण के साथ उस पर्यावरण का विशेषीकरण भी होता जाता है जिसमें वे रहते हैं।

यदि हम अपने चारों ओर सूक्ष्म अवलोकन करें तो पाते हैं कि एक प्राणी में जब कभी कोई परिवर्तन होता है तो उसमें जीव और पर्यावरण में स्थापित संबंध में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य आता है। उसी तरह पर्यावरण में हरेक परिवर्तन उसमें रहने वाले जीव की उसकी प्रति अनुकूलिता में अनिवार्य परिवर्तन लाता है। पर्यावरण में कोई परिवर्तन हो, हमारी आत्मा और जीवन तरीकों में अंतर आ जाता है और जब हमारी आदतों जीवन के ढंग या समसामयिकता में कोई अन्तर आता है तो हम अपने पर्यावरण में भी परिवर्तन लाते हैं। कभी-कभी तो हमारा पर्यावरण बिना नवीन ही हो जाता है। उसमें एक भिन्न प्रवृत्ति (चुनाव) और एक भिन्न अनुकूलन हो जाता है। जीवन और पर्यावरण में गणितीय अनुकूलन अन्तर्गत प्रवृत्ति और उपयोजन का प्रक्रिया द्वारा कायम रहता है।

पर्यावरण एवं समाज

समाज और पर्यावरण में भी ऐसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम देख चुके हैं कि समाज के विभिन्न दशों के सामाजिक जीवन में भिन्नता है। एक दश या प्रदान के विभिन्न क्षेत्रों का जीवन ही भिन्न है। भारत के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों के निवासियों और गंगा-यमुना के मैदान अथवा दक्षिणी पठार के निवासियों के जीवन में विपुल अन्तर को कौन नहीं जानता। हमारा सामाजिक अवलोकन यह बतलाता है कि जहाँ ही लोग गाँव में रहते हैं अथवा कृषि में उद्योग, पहाड़ों में मदाना अथवा गमल पीना प्य जलवायु में जाते हैं उन्हें न तो दवाओं से समाधान कर लेना पड़ता है। पर्यावरण के बदल जाने से उनके जीवन में भी परिवर्तन आता है। इसी प्रकार हम यह भी जानते हैं कि एक गरीब समूह की अपेक्षा एक समृद्ध समूह का पर्यावरण भिन्न होता है। अर्थात् चाहे किनी विशाल राष्ट्र का लीजिए चाहे किसी छोटे समूह या समिति—गाँव परिवार या वगैरह—का सभी का स्वभाव एक स्पष्ट और महत्वपूर्ण ढंग से सम्पूर्ण पर्यावरण के स्वभाव में सर्वाधिक मिलेगा। हर स्थान पर जीवन और पर्यावरण में पारस्परिक संबंध प्रकट होता है।

भिन्नता के अवश्य दर्शन हुए हंगे। मध्य यूरोप और केन्द्रीय एशिया के घास के मैदानों के निवासियों का सामाजिक जीवन आस्ट्रेलिया के चरागाही मैदानों से भिन्न है। काश्मीर, स्याम और चीन के कुछ भागों में लोग नावों पर मकान बना कर रहते हैं। अमरीका के गहूँ उगाने वाले प्रदेशों में विशाल नगर बसे हैं। टुण्ड्रा में लाग बरफ के मकानों में रहते हैं और रीछ मछली आदि का शिकार करके पेट पालते हैं। समुद्रों के किनारों पर बसे लोगों का मछली का शिकार ही मुख्य पेशा है। इंग्लैंड के लकाशायर और मनचेस्टर का सामाजिक जीवन तिब्बत या लका के सामाजिक जीवन से इतना भिन्न है कि दोनों में भारी असमानता है। क्या इस सामाजिक असमानता का कारण भौगोलिक भिन्नताएँ हैं ?

सामाजिक जीवन में इस भिन्नता का कारण परिवारण की भिन्नता है। हर समाज एक विशिष्ट परिवारण में रहता है। पशुओं और पेड़ पौधों में जो भिन्नता पाई जाती है उसका कारण भी परिवारण की भिन्नता है। पेड़ या पौधों के लिये जमीन जिसमें वह उगता और फूलता फलता है, परिवारण का काम करती है। किन्तु जमीन तो उनके सम्पूर्ण परिवारण का एक अंग ही है। जलवायु ऋतुएँ प्राकृतिक शक्तियाँ, अथवा पेड़ पौधों पशुओं और मनुष्यों—ये सब उनके परिवारण का अंग हैं। अर्थात् पेड़ के परिवारण में वे सभी जीवित और निर्जीव पदार्थ, प्राकृतिक दशाएँ और शक्तियाँ पशुओं और मनुष्यों शामिल होते हैं जो उनके बाहर हैं और उस पर अपना प्रभाव डालते हैं। दूसरे शब्दों में, पेड़ के अतिरिक्त जो कुछ उससे बाहर है और जो उस पर प्रभाव डालता है वह उसका परिवारण है।

परिवारण की धारणा

किन्तु परिवारण की उपरोक्त धारणा भ्रामक है। परिवारण केवल वह वस्तु नहीं जो पेड़ या मनुष्य—एक प्राणी से बाहर और पृथक् है और जो उसे सिर्फ चारा और शरीर है। परिवारण प्राणियों के जीवन से इतना असम्बद्ध और स्वतंत्र नहीं है। परिवारण (परि=घरों और आवरण=ढकने वाला) के शाब्दिक अर्थ से हम परिवारण और जीवन के सम्बन्ध को कदापि नहीं समझ पायेंगे। परिवारण का यह अर्थ लाना उसके महत्त्व को कम करना है। सच तो यह है कि परिवारण और जीवन का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। मनुष्य एक परिवारण में जन्म लेता है और उमा में बढ़ता और प्रौढ़ होता है। उसका सारा शरीर उसके जीवन की रचना, सभी तो गत जीवन और भूत परिवारणों की उत्पत्ति है। परिवारण ही जीवन के बीज-कोष में भी उपस्थित रहता है। हमारे शरीर की दृढ़ताएँ और गुण हमारे सम्पूर्ण परिवारण से सम्बन्धित हैं जिसमें वे प्रकट होते हैं।¹ मेकाइवर परिवारण को केवल प्रभाव डालने वाला कारण नहीं मानता। वह कहता है कि हम ऐसे किसी जीवन का पान नहीं जो प्रतिफल परिवारण में भी अपना अस्तित्व रख सके हो। जीवन

(या नीव) उसी पर्यावरण में रहना है जिसमें उसका पूव से ही समायोजन हो गया हो। वास्तव में जीवन और पर्यावरण परस्पर सह-सम्बन्धी हैं।

पर्यावरण एवं जीवन

पर्यावरण और जीवन दोनों सन्निकटना में मित्र जुड़े हैं कि जीवन के हरेक निम्न और हरेक जाति और व्यक्तिगत जीवन पदार्थ का पर्यावरण विनिष्ठ और पृथक् होता है। अर्थात् पर्यावरण एक नहीं किन्तु उसमें अगणित विभिन्नताएँ हैं। यदि हम पशुओं की भाँति या मनुष्यों का समार के विभिन्न भागों में देखें तो स्पष्ट होगा कि जीवन के विशेषीकरण के साथ उस पर्यावरण का विशेषीकरण भी होता जाता है जिसमें वे रहते हैं।

यदि हम अपने चारों ओर मूक अवलोकन करें तो पाते हैं कि एक प्राणी में जब कभी कोई परिवर्तन होता है तो उसमें जीव और पर्यावरण में स्थापित सम्बन्ध में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य आता है। उदाहरण के लिए पर्यावरण में हरेक परिवर्तन उसमें रहने वाले जीव की उमक प्रति अनुकूलता में अनिवार्य परिवर्तन लाता है। पर्यावरण में कोई परिवर्तन होना हमारी आदतों और जीवन शैलियों में अन्तर आना है और जब हमारी आदतों और जीवन शैली या समस्याओं में कोई अन्तर आता है तो हम अपने पर्यावरण में भी परिवर्तन लाते हैं। कभी-कभी तो हमारा पर्यावरण बिना किसी भी कारण के ही बदल जाता है। उदाहरण के लिए मित्र प्रवण (जुनाव) और एक मित्र अनुकूलन हो जाता है। जीवन और पर्यावरण में गतिशील अनुकूलन प्रवण और उपयोजन की प्रक्रिया द्वारा कायम रहता है।

पर्यावरण एवं समाज

समाज और पर्यावरण में भी ऐसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम देख चुके हैं कि समाज के विभिन्न देशों के सामाजिक जीवन में भिन्नता है। एक देश या प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों का जीवन ही भिन्न है। भारत के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों के निवासियों और गंगा-यमुना के मैदान अथवा दक्षिणी पठार के निवासियों के जीवन में अन्तर को कौन नहीं जानता। हमारा सामाजिक अवलोकन यह बतलाता है कि जहाँ हमें लागू गांव में गहरा अथवा कृषि से उद्योग, पहाड़ों से मैदान अथवा गम से शीतल जलवायु में जाते हैं उन्हें नई दशाओं में अनुकूलन कर लेना पड़ता है। पर्यावरण के बदल जाने से उनके जीवन में भी परिवर्तन आता है। इसी प्रकार हम यह भी जानते हैं कि एक शरीर समूह की अथवा एक समूह का पर्यावरण भिन्न होता है। अमीरों में रहने वाली यूरोपीय जातियों की अथवा देश के नीचे या एशियाई लोगों का पर्यावरण भिन्न होता है। अर्थात् चाहे किसी विगत राष्ट्र का लागिँ चाहे किसी छोटे समूह या समिति—गांव परिवार या वा—का सभी का स्वभाव एक स्पष्ट और महत्वपूर्ण ढंग में सम्पूर्ण पर्यावरण के स्वभाव में दर्शाते मिलेगा। हर स्थान पर जीवन और पर्यावरण में पारस्परिक सम्बन्ध प्रकट होता है।

पर्यावरण से उपयोजन

हम देख चुके हैं कि पर्यावरण हमेशा जीवन के अनुकूल ही नहीं होता, प्रतिकूल भी होता है। अनुकूल पर्यावरण में जीवन का यथेष्ट विकास होता है और प्रतिकूल पर्यावरण उसके विकास या समृद्धि में बाधा डालता है। कभी-कभी तो प्रतिकूल पर्यावरण जीवन (प्राणी) का अस्तित्व ही भंग देता है। हम प्रकार के जीवन जानि और हर प्राणी का पृथक् और विशेषीकृत पर्यावरण होता है। इसलिये वही पर्यावरण किसी प्राणी के लिये अनुकूल है और किमा के लिये प्रतिकूल। प्राणी हमारे या बदल हुए पर्यावरण से उपयोजन कर लेते हैं किन्तु मनुष्य प्राणियों में उपयोजन की क्षमता (या सामर्थ्य) समान नहीं होती। इसी पर्यावरण में मानव बाल परिवर्तन से अथवा हमारे पर्यावरण में अपने को उसके अनुसार बदल लेना उपयोजन कहलाता है।¹

उपयोजन के तीन स्तर होते हैं दूसरे शब्दों में उनमें तीन प्रकार होते हैं—
(१) भौतिक उपयोजन (२) जैविक उपयोजन और (३) सामाजिक उपयोजन।

भौतिक उपयोजन—पौधा या प्राणी के अपने पर्यावरण से उपयोजन की यह निरंतर और अनिश्चित प्रक्रिया है। उसकी इच्छा अविच्छेद्य या उद्देश्य, प्रयत्नों का उस पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक दशाएँ और शक्तियाँ हमारे शरीर पर अपना प्रभाव डाला करता है। उष्ण कटिबंध में मनुष्यों का त्वचा काली हो जाती है। ताज़ी हवा में हम उद्दीपन होता है। पहाड़ों पर रहने वाला के फफड़े स्वच्छ हवा से शक्तिशाली हो जाते हैं। उद्योग के क्षेत्रों में वातावरण में हमेशा जहरीला गंध मिली रहता है इसलिये उनमें मनुष्यों के फफड़े कमजोर पड़ जाते हैं। इसी प्रकार मनुष्यों की वातावरण एक विशेष पर्यावरण में स्वस्थ और दृष्ट पुष्ट शरीर वाला हो जाता शरीर पर कम या अधिक बल होना ये सभी भौतिक उपयोजन के रूप हैं। मृत्यु प्राकृतिक उपयोजन का सबसे गम्भीर रूप है। शुद्ध प्राकृतिक उपयोजन से हमारा अभिप्राय उस भौतिक विधा में है जिसमें हमारा शरीर निरंतर परिवर्तित होता रहता है। इस विधा में अपसमायोजन नहीं हो पाता। पृथ्वी पर वर्तमान जनसंख्या अपने पर्यावरण से उपयोजित होने का प्रतिनिधि है।

1 Adaptation is the process of acquiring fitness to live in a given environment. Commonly and most correctly the term is applicable to changes in morphological traits of the physical body. It may also be used to indicate cultural modification to suit any particular human environment. Fairchild *Dictionary of Sociology*

Adaptation applies to those changes which tend to equip the organism as such or provide auxiliary aids for its security and survival in relation to its physical environment. This is the process of biological change through selective survival that fits an animal or plant from more perfectly to the conditions of its environment. Reuter *Sociology*

From the above clarifications of the concept of adaptation it may be inferred that it is preferable to include biological adaptation in physical adaptation. MacIver has however discussed these concepts separately.

जैविक उपयोग—इसका तात्पर्य है कि हर प्राणी के जीवित रहने और समृद्ध होने के लिए पर्यावरण की विशिष्ट दशाएँ जरूरी हैं। यदि ये दशाएँ न मिलें तो जीवन समाप्त हो जाता है। जैसे मछलियाँ पानी में, शेर चीने घने जंगल में और सस्त शरीर वाले प्राणियों की शीत जनवायु में रहते हैं। यदि इन प्राणियों का अपने विशिष्ट पर्यावरण से निकाल कर दूसरे में रखा दिया जाये तो वे मर जायेंगे या उनका जीवन दुस्तर्ह ही जाएगा। मछली पानी में रहती है, जहाँ पानी या पहाड़ पर नहीं बचता। अर्थात् जीवन के कारण रहने और समृद्ध होने के लिए विशिष्ट प्राणी पर्यावरण का कुछ विशिष्ट दशाएँ से ही उपयुक्त होते हैं। भौतिक उपयोग—या जैविक उपयोग के अन्तर्गत प्राणियों का कार्य निम्नलिखित है। जैविक उपयोग का तात्पर्य प्राणियों की जन्मजात विधा है।

भौतिक और जैविक उपयोग में मूलतः कोई अंतर नहीं है क्योंकि दोनों प्राणी (या पौधा) की शारीरिक और जैविक रचना या लक्षणों में इसलिये अन्तर होता है जिससे कि वह पर्यावरण में रहने के लिए आवश्यक समय तक सके।

सामाजिक उपयोग¹—समाजशास्त्रीय साहित्य में 'सामाजिक उपयोग का प्रयोग तथापि कर सामाजिक अनुकूलन' अथवा सामाजिक व्यवस्था' का प्रयोग उचित माना जाता है। सामाजिक उपयोग में मनुष्य अपने लिए पर्यावरण का चुनाव और उसका समाधान इस तरह करता है कि उसकी अभिप्रायिक आवश्यकताएँ पूरी हों। यह वह कुछ मूल्य (values) के आधार पर सावधि विचार कर करता है। सामाजिक उपयोग में हमेशा मूल्योत्पत्ति निहित रहता है। यह एक स्थिति विशेष उपयोग है। यदि मनुष्य अपने टंग से जीना चाहता है तो उस उपयुक्त पर्यावरण का निर्माण करना पड़ता है। एक देश का निवासी उस देश की प्रथाओं, नियमों और मर्यादों से अपना व्यवहार करता है। दूसरे देश में जाने पर उस देश के प्रथाओं, मर्यादों और नियमों के अनुकूल रहना पड़ता है। वह इसे भाग्यसफलता में कर सकता है। दूसरे शब्दों में यदि किसी पर्यावरण में रहने पर कठिनाई का अनुभव होता है तो उस पर्यावरण में भी अपना आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन कर लेता है।

पर हमें अब 'उपयोग या अनुकूलन' की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय है कि वर्तमान सामाजिक उपयोग में हमारी आवश्यकताओं और आशाओं की संश्लेषण नहीं हुई है। यह तभी हो सकता है जब हम अपने पर्यावरण का एक विशिष्ट दशा में बदल दें। मनुष्य की दृष्टि और आवश्यकताएँ हमेशा बढ़ती रहती हैं। अतः हमें उन लक्ष्यों के प्रति उपयोग पर्याप्त नहीं है।

1 Social adaptation is very infrequently used in sociological literature. The other terms such as accommodation, adjustment or assimilation correctly refer to processes of human adjustment to environment.

2 यह उपयोग का अर्थ है सुरक्षा।

इसी दशा को वह अप उपयोगन कहता है। समाजशास्त्र के विद्यार्थी के लिय सामाजिक उपयाजन की विधा बहुत महत्वपूर्ण है। यह विधा प्रकट करती है कि मनुष्य किस प्रकार अपन जीवन की बलती दशाओं से निरन्तर समायोजन करता रहता है। सम्यता के विकास क साथ मनुष्य अपन पर्यावरण का तेजा स और विगद रूप स उपयाजित करता है। सामाजिक उपयाजन का विस्तृत विवेचन अनुकूलन' या 'यवस्थापन' की प्रक्रियाओं क वर्णन म किया जायगा।

मनुष्य का बाह्य और आन्तरिक पर्यावरण

मनुष्य के समाज म रहने पर उसक जिस पर्यावरण का निर्माण होता है वह दो प्रकार का होता है—बाह्य और आन्तरिक।

बाह्य पर्यावरण म प्रकृति के भौतिक सशोधन शामिल रहत है। यह हमारे मकानो शहरा यातायात और सबहन के साधना हमारे स्वनिर्मित सुविधाजनक प्लाथों विविध उपकरणो, तथा हमारी सम्यता के समस्त भागो स मिन कर बनता है। मानवशास्त्री इसी पर्यावरण को पार्थिक संस्कृति कहता है। इस पर्यावरण का कुछ भाग ता समाज के नष्ट होने पर भी जीवित रहता है। इस भाग को भौतिक सांखिक कहते हैं। सिंधु घाटी तथा प्राचीन मिस्र की मृत सम्यताओं का भौतिक सांखिक भाग आज भी जीवित है।

मनुष्य का आन्तरिक पर्यावरण स्वय उसका समाज है। यह पर्यावरण सामाजिक संगठन नियमा परम्पराओं तथा मस्याओं और सामाजिक जावन की मुक्त और प्रतिबन्धित क्रियाओं से मिलकर बनता है। इन सबका सामूहिक नाम सामाजिक विरासत है। हर मनुष्य के लिय आन्तरिक पर्यावरण का उतना ही महत्व है जितना बाह्य का। किन्तु आन्तरिक पर्यावरण के प्रति समायोजन मे उतनी कठोरता नहीं होती जितनी बाह्य पर्यावरण के प्रति। बाह्य पर्यावरण मे मनुष्य को प्राकृतिक विधान की सत्ता के नीचे कराहना पना है। सामाजिक विरासत या आन्तरिक पर्यावरण के प्रभाव स कोई मनुष्य नहीं बच सकता। इसी स उसे प्रशिक्षण मिलता है और यही उसकी आदता को बनाता है। इस पर्यावरण को हम सामाजिक पर्यावरण भी कहते हैं। मनुष्य इसम समायोजन चेतन अनुनियता और आन्तें ढाल कर करता है।

सम्पूर्ण पर्यावरण

अनप्य हर मनुष्य का सम्पूर्ण पर्यावरण दो भागो से मिलकर बना है। (१) बाह्य पर्यावरण जिस मनुष्य न विविध उपाया स सशाधित किया है (और सम्यता की उप्रति क साथ जिसका विगद सशाधन कर लिया गया है)। इसके प्रति हर दशा म भौतिक उपयोजन की जरूरत पडती है। (२) आन्तरिक या सामाजिक पर्यावरण जिसम मनुष्य का समायोजन चेतन अनुक्रिया और आदता द्वारा होता है।

यह दोना पृथक नहीं हैं। इनमें सर्वत्र अन्त क्रिया हाती रहती है। मनुष्य के बाह्य और आन्तरिक सत्कारों में अबाध गति में परिवर्तन होता रहता है और इस परिवर्तन का प्रभाव उसके जीवन पर भी निरन्तर पड़ता है।¹

मनुष्य पर्यावरण की धारणा का भली भाँति समझने के लिए हम इसके उस वर्गीकरण का देना लाभकर समझते हैं जिसका अन्तर्गत न अपनी पुस्तक में किया है।

मनुष्य पर्यावरण = प्राकृतिक पर्यावरण + सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण

प्राकृतिक पर्यावरण

मनुष्य द्वारा असाधित
(भौगोलिक पर्यावरण)

मनुष्य द्वारा ससाधित
(प्रायोगिक अथवा तांत्रिक पर्यावरण)

या

स० प० = भौ० प० + प्रौ० प० + सा० प०

मनुष्य ममान में रहता है और समाज का एक प्राकृतिक वासस्थान होता है। मनुष्य के मनुष्य पर्यावरण में प्राकृतिक वासस्थान तथा उसका समाज शामिल होते हैं। प्राकृतिक वासस्थान का दो भागों में बाँट सकते हैं—(१) भौगोलिक पर्यावरण जो मनुष्य के हस्तक्षेप के अभाव में बाहर है, (२) मनुष्य निर्मित प्राकृतिक पर्यावरण जिसमें मनुष्य ने अपनी बुद्धि और तान से प्राकृतिक साधनों को ससाधित कर बनाया है। भौगोलिक पर्यावरण में वे सभी तथ्यों शामिल होती हैं जिन्हें प्रकृति ने मनुष्य को दिया है। इसमें पृथ्वी का घटतल उसकी भौतिक विशेषताएँ तथा प्राकृतिक साधन शामिल हैं। भूमि और जल का वितरण, पवन और मैदान खनिज पदार्थ, पौधे और जानवर जलवायु तथा अन्य ब्रह्माण्ड शक्तियाँ गुह्यत्वात्परण शक्ति, विज्ञान सभी मिलकर भौगोलिक पर्यावरण बनाते हैं। ये सभी मनुष्य के जीवन पर प्रभाव डालते हैं। यह प्राथमिक पर्यावरण है। इस प्राथमिक पर्यावरण में मनुष्य प्रविष्टि या तंत्र की सहायता से ससाधित करता है। भूमि को जोत कर खेती करना है जंगल का साफ़ करना है, सबके तथा रत्नों बनाना है नदियों से नहरें काटता है पत्तों से सुरों निष्कासना है शहर बनाता है खनिजों का निकाल कर उनका उपयोग और अस्त्र-पन्थ तथा प्राकृतिक शक्तियों का विभिन्न प्रकार से साधन करने अपनी विविध आवश्यकताओं को पूर्ति करता है। यह एक नया पर्यावरण बन जाता है जिसमें प्राकृतिक पर्यावरण कहते हैं। इसी के समृद्ध रूप को सम्यक्ता कहते हैं। इसी तरह प्राथमिक पर्यावरण से भिन्न मनुष्य का आन्तरिक या सामाजिक पर्यावरण है। सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण समूह, समुदाय, रीति, नियम परम्पराओं सम्पादों आदर्शों और मूल्यों अथवा सामाजिक विरासत से मिलकर बनता है।

पर्यावरण जीवन को किस प्रकार ढालता है और स्वयं जीवन द्वारा किस तरह सशोधित होता है। इसके विषय में विशिष्ट ज्ञान का संचय सामाजिक विज्ञान की सफलता है। मानवशास्त्र सामाजिक इतिहास नवशास्त्र (Ethnology) मानव भूगोल (anthropogeography) भूगोल राजशास्त्र (Geopolitics), मानव या सामाजिक पारिस्थिकी¹ (Human or Social Ecology) सभी में पर्यावरण और मानव जीवन के घनिष्ठ सम्बन्ध का अध्ययन होता है। भौगोलिकवाद और क्षेत्रवाद (Geographical school and Regionalism) में भी इसी विषय का अध्ययन किया जाता है। आधुनिक समाज में कई सामाजिक और वैयक्तिक रोगों का निदान पर्यावरण नियंत्रण की विधि द्वारा किया जा रहा है।

1 अथवा 'परिस्थिति शास्त्र'

भौगोलिक पर्यावरण

प्राकृतिक अथवा भौगोलिक पर्यावरण मनुष्य और उसके समाज का प्राथमिक पर्यावरण होता है। इसलिए मनुष्य और समाज की उत्पत्ति से लेकर उनके चरम विकास तक भौगोलिक पर्यावरण का उन पर प्रभाव पड़ता है। इस पर्यावरण और सामाजिक जीवन के वास्तविक सम्बन्ध के ज्ञान की खोज अत्यन्त प्राचीन है। हर समाज के विचार-आहित्य में इस सम्बन्ध को समझने का छोटा या अधिक प्रयास मिलता है।

पिछले अध्याय में भौगोलिक पर्यावरण के बारे में हमने पढ़ा है। यह उन सब दशांगों से मिलकर बनता है जिन्हें प्रकृति ने मनुष्य को दी हैं। पृथ्वी का घरातल, भूमि और जमीन सारा प्राकृतिक दशांगों प्राकृतिक साधन जैसे पर्वत, मैदान, खनिज पदार्थ, पौधे पशु और जलवायु का वितरण तथा इन पृथ्वी की समस्त प्राकृतिक शक्तियाँ जिन पृथ्वी की आकषण शक्ति (गुरुत्वाकर्षण), विद्युत्शक्ति और विकिरण शक्तियाँ, जो यहाँ विद्यमान हैं और जो मनुष्य के जीवन का प्रभावित करती हैं इसमें अन्तर्गत आती हैं।¹ सारांशिक रूप से भौगोलिक पर्यावरण की धारणा अपेक्षा स्पष्ट है। उसके मतानुसार 'भौगोलिक' पर्यावरण का तात्पर्य दृष्टाण्ड का एसी दशांगों और घटनाओं से है जिनका अस्तित्व मनुष्य के कार्यों से स्वतंत्र है जिनका मनुष्य ने सृजन नहीं किया है और जो मनुष्य के अस्तित्व तथा क्रिया से स्वतंत्र स्वतः परिवर्तित होती है। - मनुष्य के बाह्य पर्यावरण का वह भाग जो मनुष्य ने अभी सशोषित या नियंत्रित नहीं कर पाया है, भौगोलिक पर्यावरण कहलाता है।

भौगोलिक पर्यावरण और सामाजिक जीवन के सम्बन्ध का हम अभी समझ सकते हैं जब यह स्मरण रखें कि जिसे कोई समाज अपना प्राविधिक पर्यावरण कहता है वह मूलतः भौगोलिक पर्यावरण का ही एक भाग था। अतः, यह भौगो

1 MacIver & Page *op cit* p 69

2 P A Sorokin *Contemporary Sociological Theories* Harper & Bros New York (1929) p 101

निक पर्यावरण का वह भाग है जिसका मनुष्य ने सशोषण और नियंत्रण कर लिया है। यह तथ्य हम एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर ले जाता है। सम्यता के विकास के साथ समाज पर प्रकृति का प्रभाव कम होता जाता है। समाज की उस पर निर्भरता कम होती जाती है अर्थात् भौगोलिक पर्यावरण का समाज पर प्रारम्भिक प्रभाव बहुत गहरा और यापक होता है। समाज के विकास के साथ इस प्रभाव में कमी आती जाती है किन्तु आधुनिक शौरवमयी सम्यता में भी इस प्रभाव का परिष्करण नहीं हो सकता है और नायद सामाजिक विकास की चरम (सर्वोच्च) अवस्था में भी यह प्रभाव महत्वपूर्ण बना रहगा।

भौगोलिकवाद

भौगोलिक पर्यावरण तथा मानव जीवन के संबंध के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए मनुष्य प्रारम्भ से ही उत्सुक रहा है। पहले यह अध्ययन बहुत कुछ प्रयोग सिद्ध ज्ञान पर आधारित रहा है। पहाड़ा मदाना सागर तथा जगला रंगिस्ताना घास के मदाना बर्फील प्रदेशों तथा दलदली क्षत्रा में वसे मनुष्य के जीवन के ढगा और अति आवश्यकताओं को देखकर कई विचारकों ने मानव जीवन पर प्राकृतिक दशाओं के प्रभाव को बहुत महत्व दिया है। कुछ न तो यहा तक कहा है कि सामाजिक जीवन का मुख्य निर्धारक भौगोलिक पर्यावरण ही है। मनुष्य की समृद्धि और उसका स्वास्थ्य जनसंख्या का वितरण प्रजातियों के शारीरिक लक्षण मनुष्य की वलिपटना कद और काय कुशलता एव शक्ति सामाजिक प्रथाओं और संगठन, धर्म और दर्शन सभी का प्रारम्भिक निर्धारण प्राकृतिक पर्यावरण द्वारा होना है। इन विचारों की व्यवस्थित शृंखला को १९वीं शताब्दी में मानव या सामाजिक भूगोल कहा जान लगा। इस विशिष्ट विचारधारा के समर्थकों का भौगोलिक सम्प्रदाय कहा जाता है।

यूनान का प्रसिद्ध विद्वान् अरस्तू और १८वीं सदी का विचारक माटेस्व्यू दोना इमी प्रकार के थे। आधुनिक सामाजिक भूगोल में अग्रणी फ्रांस का विद्वान फ टरिब लप्ले था जिसका अनुयायी डिमालिस था। लप्ले के विचारों का अनुकरण फ्रांस में ही नहीं अंगलड जर्मनी और अमरीका में भी हुआ। जर्मनी के रेजल न मानव भूगोल की उन्नति की। अंगलड के वक्त्र ने अपनी सम्यता के इतिहास की पुस्तक का आधार समकक्षीय विचारों को धनाया। अमरीका के विचारकों ने मानव परिस्थिती और क्षेत्रवाद के उत्पत्ति और विकास में लप्ले और रेजल के विचारों से प्रेरणा ली। रेजल के विचारों में बहुत प्रबलता थी। उसने कहा था— मानव प्रकृति अपना मर आकाश में जितना चाहे उठा सकती है किन्तु उसके पर हमशा पृथ्वी पर टिके रहगे और धूल धूल को ही लौट कर आएगी। क्षेत्रवाद के प्रमुख विचारक आल्म और उनके साथी हैं। भौगोलिकवाद के अग्र अमरीकी विचारकों में कुमारी सम्पल डेवसटन और एल्मवर्थ हर्टिगन के नाम से प्रसिद्ध हैं। हर्टिगन ने कई पुस्तकें लिखी और उन सबमें नस्ल या प्रजाति (race) तथा जलवायु की दशाओं का प्रभाव या

सघन मानव-समाज और सस्कृति पर दिखान का प्रयत्न किया। ब्लेश, लैमाक, हम्बान्ट, ब्रून्टम और मूर को भी इस सम्प्रदाय में ख्याति प्राप्त है।

इस विचार परम्परा के विद्वानों ने सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं— राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सांस्कृतिक—तथा प्राकृतिक पर्यावरण (भौगोलिक) के विविध अंगों से हानि वाली अन्तःक्रिया में सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण तथ्यों को हमें दिया है। मानव विकास में प्रकृति के महत्त्व का समझना ही भौगोलिकवाद बहुत सहायक हुआ है किन्तु इस विचार परम्परा ने हमें इस विषय पर कई बार परेशान भी किया है।¹

भौगोलिक निर्धारणवाद

भौगोलिकवाद के समर्थकों में से रोजल और उनके अनुयायियों, लाड कामे, वॉन डिमालिम और हट्टिंग्टन ने प्रकृति और सामाजिक जीवन के सम्बन्ध की प्रति-रचना की है। उनके मतानुसार सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं का प्राथमिक नियंत्रण प्राकृतिक दशाएँ और शक्तियाँ करती हैं। अर्थात् किसी देश या प्रदेश का सामाजिक संगठन आर्थिक संस्थाएँ राजनीतिक व्यवस्था सस्कृति और सम्यता उसके भौगोलिक पर्यावरण पर ही निर्भर हैं। भौगोलिक पर्यावरण ही निश्चित करता है कि अमुक समाज कैसा होगा।

भौगोलिकवादियों का विश्वास है कि प्रत्येक प्रकार के सामाजिक व्यवहार, परिवर्तन या नवीन सामाजिक रचना का रहस्य भौगोलिक पर्यावरण के गहन में छिपा हुआ है। इसके प्रतिपक्ष उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

(१) "समस्त एक नाटकशाला है और पृथ्वी एक रंगमंच जिस पर ईश्वर और प्रकृति अभिनय करती हैं।

—टॉमस हबुड

(२) "किन्तु 'मनुष्य पृथ्वी पर रहता है इसलिए वह पृथ्वी पर निर्भर है।

—जॉन ब्रून्टम

(३) हमारी बुद्धि और सस्कृति की या उन सबकी जिसे हम सम्यता की प्रगति कहते हैं, अधिक अच्छी तुलना चिन्तना को अमीमिन उद्धान में न होकर एक पौध के जड़ों तक से हो सकती है, हम सदैव पृथ्वी से बंधे रहते हैं क्योंकि टहनियाँ तब पर ही उग सकती हैं। मानव प्रकृति अपना सिर आकाश में उठाने जैसा चाहें उठावे किन्तु उनके

1 भौगोलिकवाद का विस्तृत विवेचन मागाकिन की पुस्तक 'कॉम्प्याररी सांशियोलॉजिकल थ्योरीज में पढ़िये। Nicholas S Timasheff की पुस्तक 'Sociological Theory', Random House New York (1955) को भी देखिए।

पर सदब धरती पर टिके रहगे और धूल अवश्य ही धूल का लोट
घाएगी ।
—फ डरिक रजल

(४) कद अतत भोजन पर निभर है और इसलिए भौगोलिक पर्यावरण
पर' ।
—सेम्पल

(५) किसी समाज क पास कितनी सम्पदा है यह उसके प्राकृतिक पर्यावरण
पर आधिन है' ।
—बबन

(६) मनुष्य धरती का पुत्र है । उन दोनो को कभी पृथक नहीं किया जा
सकता ।'
—श्राम

(७) जम सग्या म ऋतुओ के अनुसार परिवतन होता रहता है ।

(अ) यदि ऋतुएँ न होती तो शायद मनुष्य जाति कभी सम्य न हो
पाती ।'

(आ) खनिज पदार्था का भौगोलिक वितरण अंतर्राष्ट्रीय सक्टा और
युद्धो का एक सबम बडा कारण है ।

(इ) हवा म नमी की मात्रा स्वास्थ्य और शक्ति के नियम म एक व न
महत्वपूर्ण कारक है ।'

(ई) तापमान के बहुत अधिक गिर जाने पर शारीरिक प्रयास की अपक्षा
मानसिक प्रयास अधिक गिर जाता है ।'

(उ) जलवायु के उतार चढाव स सम्यताआ का पनन और उत्थान हुना
है । अर्द्धी जलवायु म उन्नत सम्यताए होती हैं और खराब जल
वायु म अर्नुन्नत सम्यताए । क्याकि स्वास्थ्य और शक्ति पर स्पष्टत
जलवायु का प्रभाव पडता है और वे पुन सम्यता का प्रभावित
करत है ।
—एस्सवव हटिंग्टन

जालोचना—(१) भौगोलिक निर्धारणवाद समाज के सम्पूर्ण पर्यावरण म
एक अक को निराल कर उसके महत्व को ही सब कुछ मान बैठता है । सामाजिक
जीवन का पर्याप्त और पृथक कारण भौगोलिक पर्यावरण ही नहो है । समाज पर
अनक प्रभाव पडते है और उनम भौगोलिक प्रभाव केवल एक है । किन्तु यह प्रभाव
अय प्रभावा मे गहराइ मे उलभा है । इम पृथक करना कठिन ही नहीं असम्भव है ।
लेप्ल क मतानुसार परिवार के विशिष्ट रूप पशा काय की दशाआ पर निभर रहत
हैं जो स्वय वासस्थान की प्रकृति द्वारा निधारित हात हैं । किन्तु वास्तविकता दूमरी
ही है । एक ही प्राकृतिक दशाआ म परिवार के कई रूप उन्नत हुए हैं । बकल का
कथन कि सम्पत्ता की समृद्धि पूणतया भूमि और जलवायु पर निभर है आधुनिक
सम्यता के प्रसंग म असत्य प्रकट होता है । अमरीका का यू इगलैण एक शून्य और
घट्टाना प्रदेश था फिर भी इसकी सम्पत्ता म महान् वृद्धि हो गई । इसी प्रकार, एल्सवथ
हटिंग्टन का यह दावा कि सम्यता की प्रगति म प्रधान निर्धारक अनुन्नत जलवायु है

जापान की उन्नत सम्यता असत्य कर देती है। जापान की जलवायु को हटिगटन कभी भी अनुकूल नहीं मानता।

(२) भौगोलिक निर्धारणवाद के समयक मनुष्य को कीड़े मकाड़ा और पशुआ जसा ही प्रकृति का दास समझते हैं। सामाजिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में चाहे मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताओं की सतुष्टि के लिए प्रकृति का पूरा दाम रहा हो परन्तु उन्नत अवस्थाओं में वह इस दासता से बहुत कुछ मुक्त हो गया है। मनुष्य में हर प्रकार की भौगोलिक दशाओं से उपयोजन करने की विलक्षण क्षमता है। अपनी बुद्धि और सामाजिक विरासत के सहारे वह प्रारम्भ से ही प्रकृति को सशोधित और नियंत्रित करता रहा है। आधुनिक और प्राचीन विज्ञान तथा गौरवशाली सम्यताय इसका साक्ष्य हैं। इस विचारधारा के विद्वानों ने शायद एकान्ती अध्ययन की अघाघुच में ऐसे उदाहरणों को सकलित करने की ओर ध्यान नहीं दिया जो भौगोलिक पर्यावरण पर मनुष्य के नियंत्रण और स्वामित्व को सिद्ध करते हैं। सोरोकिन भौगोलिक निर्धारणवाद की आलोचना करते हुए लिखता है कि इस अन्तर्गत सिद्धांतों में इतना विरोध और अस्पष्टता है कि द्विविधापूर्ण और मत्स्य में भेद करना दुस्साध्य है।¹

(३) सामाजिक भूगोल की शाखाओं—मानव भूगोल आर्थिक भूगोल और राजनतिक भूगोल में से राजनीतिक भूगोल ने जर्मनी, इटली तथा जापान को प्रथम तथा द्वितीय विश्व महायुद्धों के बीच में बहुत प्रभावित किया था। उन्होंने अपनी राजनतिक नीतियों के निर्माण और कार्य-परिणामों में इस ज्ञानशाखा से प्रेरणा ली। भौगोलिक राजनीतिशास्त्र ने भूमिखण्डों और सागरों की विशेषताओं का राष्ट्रीय शक्ति और ऐतिहासिक भाग्य का मूल कारण ठहराया। वे राज्य विस्तार की नीति को इसलिए उचित समझते थे कि राज्य जस जीवित पन्थ की वृद्धि के साथ उभरने के साथ ही विस्तार जाना स्वाभाविक है। यह भौगोलिक निर्धारणवाद का अन्तिम रूप था।

हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि इंग्लैंड की महान् व्यापारिक सामरिक और राजनतिक शक्ति का कारण उसकी अच्छी स्थिति है और इसी प्रकार संसार के सबशक्तिशाली राष्ट्रों—रूस और अमरीका को महानता और शक्ति अन्त में उनकी भौगोलिक स्थिति पर निर्भर है। किन्तु विचार करने पर हम पाते हैं कि उनकी शक्ति और वृद्धि के ठोस बन्धन में औद्योगिक कलाओं की अवस्था, शैतिक मन्त्र, लोगों की आकांक्षाओं, उनकी एकता, देशभक्ति तथा नेतृत्व का महत्वपूर्ण योग है। जो भी पृथ्वी के तट्य हैं उसका हमेशा सामाजिक विरोध से सम्बन्धित करने ही देखना चाहिये। दस्तूर में उचित ही कहा है कि प्रकृति केवल सामग्री प्रदान करती है

अपनी आवश्यकताओं, प्रतिभा और योग्यता से बाध्य होकर मनुष्य उसका अपने प्रयाजना के लिए उपयोग करता है।¹

हमारे समकालीन भौगोलिक विचारकों ने पुरानी भौगोलिक विचार परम्परा को यानिर्णय निर्धारणवाद को त्याग दिया है। परन्तु नेश और मम्पन के उन कथनों में मत्स्यता का भारी अंश है कि नगरीय पूव निणय और मनुष्य को बर्णानिक प्रगति के धूम बढ़ाके म हम प्राकृतिन पयावरण से पूण स्वतन्त्रता प्राप्त करने या अप्रभावित हान का गवा नही कर सकत। सत्य तो यह है कि हमने पयावरण से अचाव नहा कर पाया है उस अधिक विस्तृत भर बना लिया है। पृथ्वी के तथ्य मानव समाज की प्रकृति और उन्नति के रूप का निर्धारित नही करते। बराबर नवीन पृथ्वी-तथ्यो की छाज होती जा रही है और पुगने तथ्यो को नया महत्व मिलता जा रहा है जस-जस मानव ज्ञान विचार और सामाजिक क्रिया में उन्नति होती जा रही है। समाज तथा भूमि के तथ्यो में पारस्परिक सम्बन्ध है।²

आइए, अब हम भौगोलिक पर्यावरण (प्राकृतिक दशाओं) तथा सामाजिक जीवन के कुछ निश्चिन्त सम्बन्धों का विश्लेषण कर।

भौगोलिक पर्यावरण का वास्तविक प्रभाव

उपरोक्त आलोचना में हमने प्राकृतिक तथ्यों के प्रभाव को सामाजिक जीवन में नगण्य नहीं माना है। वास्तव में ये तथ्य आज भी समाज के जीवन पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं।

प्रत्यक्ष प्रभाव

भगल से समाज को कुछ ऐसी शक्तें मिलती हैं जो उनके लिये प्राथमिक महत्व की हैं। जिन द्रष्टेस ने लिखा है कि निम्नलिखित छ मुख्य प्रकार की मानवीय क्रियाओं पर भौगोलिक पर्यावरण का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है—(१) आवास और महान (२) सड़का का स्वरूप और दिशा (३) पौष की खेती (४) ज्ञानवर्ग का पानन (५) खनिज पदार्थों का शापण और (६) पौष और ज्ञानवर्ग का नाश।³ हम द्रष्टेस के कथन से सहमत हैं। किन्तु उपरोक्त क्रियाओं के लिये भौगोलिक तथ्यों का महत्व तांत्रिक उन्नति और मन्मता में हान वाल दूसरे परिवर्तना के साथ बदला करना है।

वस्ती—मनुष्य वही बसता है और नगर और गाँव बनाना है जहाँ जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि सरलता से हो सके। अर्थात् मनुष्य के आवास के नियम प्रकृति के वे भाग ही लाभदायक हैं जहाँ जीवन के लिये अनुकूल दशाएँ पाई जायें। ससार के सभी समाजों ने अपने आवास मदाना या नदिया की घाटियाँ में

1 A J Dastur *Man and His Environment* Bombay (1954) p 3

* MacIver & Page *op cit* p 102

see Brunhes : *Human Geography* (1920) Chapters I & II

बनाये हैं। बर्फील पहाड़ पर, बयावान जंगल में, समुद्र के खतरनाक किनारा पर अथवा सुनसान रगिस्तानी प्रदेश में वही भी मनुष्य की आवादी नहीं पाई जाती है और यदि वहाँ है भी तो नगण्य है। इसी प्रकार, सप्ताह के सभी बड़े नगर आवागमन के भागों पर—अर्थात् और मर्यादी भागों पर बसे हैं। सम्यता के इन विविध हान पर भी सप्ताह के किसी देश में बड़े नगर ऐसे स्थानों पर नहीं बसाये जा सके हैं जहाँ जनसंख्या की जटिलता को पूरा करने के साधन न हों। आधुनिक समय में जो उद्योग नगर, पठार और जंगलों के किनारे बसे हैं उसका कारण बड़ा बहुमूल्य खनिज पदार्थों की बहुलता है। लौह, जिन्को, अलुमिना, अदन, बम्बई, कलकत्ता, रंगून, मिनापुर हांगकांग आदि बन्दरगाहों की स्थापना और उन्नति में भौगोलिक दशाओं का प्रत्यक्ष प्रमाण है। ये सभी स्थान व्यापार और युद्ध की दृष्टि में केन्द्रीय महत्व के हैं।

हमारे मकानों की बनावट पर भी प्रकृति का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। उष्ण कटिबंध के मकान खुले और हवादार बनते हैं। उनमें आग या शूलान का हाना भी जरूरी नमना जाता है। ठंडे देशों के मकानों में खुले हुये स्थान या आग की जरूरत नहीं पड़ती। अमरीका और यूरोपीय देशों के नगरों में १०० मजिल तक के मकान इसीलिए बनाये गये हैं कि वहाँ ऊँची मजिलों में आग बनाने की जरूरत नहीं है। भारत के बड़े नगरों में भी १० या १५ मजिल तक की इमारतें बनाने लगी हैं किन्तु इनमें आग न बनने के कारण निवासियों का काफी असुविधा होती है। मकानों का स्वभाव और उनमें लगे हुए सामान का भी प्राकृतिक दशाओं से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। जापान में अधिकांश भूचाल आने के कारण वहाँ लकड़ी के मकान बनते हैं। उत्तर प्रदेश (भारत) में पहाड़ी इलाकों में भी लकड़ी और पत्थर के छोट-छोटे मकान बनते हैं। उत्तरी ध्रुव के निवासी एस्कीमो लोग बरफ के मकानों में रहते हैं। मैदानों में इटा के बनाने की मिट्टी सरलता से उपलब्ध होने के कारण वहाँ इटा के ही मकान बनते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों या पत्थर की खानों के निकटवर्ती प्रदेशों में पत्थर के मकान बनते हैं। जहाँ मिट्टी पानी में जल्दी गल कर धुलती नहीं वहाँ गाँवों के मकानों की छतें कच्ची होती हैं। किन्तु जहाँ मिट्टी बड़ी जल्दी धुल जाती है और वर्षा ज्यादा होती है वहाँ छतों के मकान छाये जाते हैं। भवन निर्माण कला (आस्तिकला) पर भौगोलिक दशाओं का प्रभाव तो अवश्य पड़ता है किन्तु सिर्फ प्रारम्भिक ही। मनुष्य के विकास का माय मनुष्य की हर कला में उन्नति होती है। अतएव गृह निर्माण कला में भी उन्नति होती है। इन उन्नतियों में सामाजिक प्रतिष्ठा और सौंदर्य की भावना का प्रभाव समाविष्ट रहता है।

भागों और सड़कें का स्वभाव और दिशा का निर्धारण मूलतः प्राकृतिक दशाओं से होता है। मकानों में सड़कें चौड़ी और लम्बी होती हैं। पठारों में या पहाड़ियों की तलहटी में पत्तियों छोटी और टंगी मेड़ी सड़कें होती हैं। आवागमन के

सभी साधना के लिये मार्गों की दिशा भी भूगोल पर निर्भर करती है। भारत की बलकत्ता-मशावर ग्राड-ट्रंक रोड सिव और गंगा के मैदान में उत्तर पश्चिम से पूव की ओर जाती है। पृथ्वी पर चलने वाली सवारियाँ को ताँ प्राकृतिक दशाओं—नदियाँ, पहाड़, दलदल या जंगल आदि के कठोर प्रतिबंधों को मानना ही पड़ता है। समुद्री पानी तथा वायुयानों को भी अपने मार्गों को वही से बनाना पड़ता है जहाँ प्रकृति—सागर पर्वत या भूभावात् उनके प्रतिकूल नहीं हैं। रेगिस्तान में उट ही प्रमुखतः माल और गन्नारी ढाने के काम आता है और पहाड़ों प्रदेश में टटटू। पहाड़ी इलाका में रेल नहीं बिछ सकती। वहाँ मोटर से ही यातायात होता है अधिक दुर्गम क्षेत्रों में ताँ यातायात का कोई आधुनिक साधन नहीं प्रयोग हो सकता।

वस्त्र और नोजन—मनुष्य के वस्त्रों पर भौगोलिक परिवर्तण का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। ठण्डे देशों में लोग मोटा कपड़ा और गम कपड़े पहनते हैं। गर्म प्रदेशों में लोग हल्के, ढीले और ठण्डे कपड़े पहनते हैं। नदियों बहने के साथ भारत में हम अपने वस्त्रों को बदलते हैं। उष्ण कटिबंध के लोग कड़ा घुँघुँ से बचने के लिये साफ या टापी पहनते हैं। ठण्डे या बर्फ पड़ने वाले देशों में लोग रात में भी टापी पहनते हैं किन्तु बपभूषण सस्कृति का एक प्रमुख अंग है। इसके बारे में सामाजिक सम्मान का भाव लगा रहता है। सौन्दर्य का उपयोग भी वस्त्रों में होता है। बाहरी सम्मूर्तियाँ का प्रभाव भी वस्त्रों पर पड़ता है। ठण्डे देशों में वे कपड़े पहन जा सकते हैं जो गर्म देशों के लिये ही उपयुक्त हैं। भारतवर्ष में ही वेपभूषण के कई प्रकार हैं। शरीर और पाश्चात्य सस्कृति का इस पर स्पष्ट प्रभाव दिखता है। एक ही भौगोलिक क्षेत्र में कई प्रकार के वस्त्र पहने जाने लगे हैं। किन्तु ध्यान से देखने से पता चलेगा कि बहुसंख्यक जनसंख्या की वेपभूषण का स्वभाव मूलतः भौगोलिक दशाओं पर निर्भर रहता है।

भूगोल या स्थानीय दशाएँ स्वाभाविकतया भोजन के प्रतिमानों पर प्रभाव डालती हैं। हमारे भोजन और पान में वही पदार्थ तथा उनके उत्पादन शामिल रहते हैं जो हमारे प्रदेश या क्षेत्र में पदा होते हैं। बंगाल, बिहार तथा मद्रास के निवासी अदिक चावल खाते हैं। पंजाब और उत्तर प्रदेश के निवासी गहूँ अधिक खाते हैं। राजपूताना के लोगों का आहार जौ ज्वार बाजरा और मक्का है। काश्मीर के सीमा प्रांत के निवासी पत्ता का खूब खाते हैं। हिमाचल प्रदेश के लोग आलू खूब खाते हैं। इसी प्रकार से बर्मा और जापान के लोग चावल मध्य अमरीका और कनाडा के लोग गन्ना का बहुत उपयोग करते हैं जबकि जापान में, जहाँ चावल का उत्पादन बहुत होता है चावल मुख्य भोजन है। इटली और फ्रांस के दक्षिणी भाग में अमूर बहुत पना हात है इसलिये यहाँ के निवासी शराब खूब पीते हैं। हिन्दुस्तान में घाम खूब पाया जाता है जबकि रूस, अमरीका या यूरोप के अधिकांश निवासी दमका स्वाद तक नहीं जानते। विभिन्न प्रदेशों या देशों में खाद्य और पेय पदार्थों की

वृद्धता उनकी प्राकृतिक दशाग्रा पर निर्भर होती है। जहाँ जो पदार्थ अधिक मात्रा में पत्तों होगा वही वह खाद्य या पशु पदार्थ बन जाता है। किंतु भोजन और पान के सम्बन्ध में अनेक प्रतिबंध भी धार्मिक और साम्प्रदायिक आधार पर लग जाते हैं। पिछले सौ साल में विज्ञान और प्रविधि के विकास एवं साम्प्रदायिक सम्पत्तियों में भाजन-प्रतिमानों पर भूगोल के प्रभाव को बहुत घटा दिया है। प्रथम, उपयोगी खाद्य पौधों और खाद्य-सामग्री उपलब्ध करने वाले जानवरों को उनके उदभव क्षेत्र से लगे जाकर दूर-दूर प्रदशा में फला दिया गया है। द्वितीय, परिवहन या प्रविधि के निष्पत्ति से भी बहुत से लोगों की स्थानांतरण खाद्य पदार्थों पर निर्भरता कम हो गई है। बहुत से देश जहाँ कच्चा इजरायल, बनेजूसी आयात किया हुआ खाद्य पदार्थों पर ही निर्भर रहते हैं। त्रितीय, अपने निवासियों की भाजन का प्रायः सम्पूर्ण आवश्यकता ही आयात से पूरा करता है। इसी प्रकार, कृत्रिम शान निमाण और अन्य प्राविधिक युक्तियाँ से घनी लागू सत्कार के किन्हीं भी प्रदेशों में मनचाहा भाजन प्राप्त कर सकते हैं। इससे स्पष्ट है, सम्यता की उत्पत्ति भाग्य पदार्थों के मामले में निकटस्थ प्रकृति पर हमारी आश्रयता का अभाव घटाने जाती है। पर स्मरण रहें, अभी भी आर्थिक या मन्यता की दृष्टि से पिछड़े देशों के बहुसंख्यक निवासियों अपने प्रदेश में उत्पन्न भाग्य पदार्थों तथा पशु पर ही निर्भर हैं। प्रकृति तथा भोजन का अति घनिष्ठ सम्बन्ध है।

जनसंख्या—जनसंख्या के विस्तार वितरण और घनत्व (density) तथा प्राकृतिक दशाग्रा में सीमा सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। वस्तिवा वही पर स्थापित होती है जहाँ जीवन का आवश्यकताओं की सन्तुष्टि सुविधा से होती है। नदियों की घाटियों में विशाल जनसंख्याएँ रही थीं और आज भी पाई जाती हैं। भारत के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में जनसंख्या बहुत घाटी है। राजस्थान भी घाटी जनसंख्या वाला प्रदेश है। निम्नतम हजारों वर्षों में ही जनसंख्या का अपना विस्तार नहीं हुआ पाया। नितना अमरीका और रूस में पिछले ५० साल में। भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में जनसंख्या का घनत्व और वितरण अमान्य है जिसमें एक महत्वपूर्ण कारक भौगोलिक दृष्टियों से है। तक विशिष्ट भूमि-स्वल्प में एक परिमित (सीमित) जनसंख्या ही रह सकती है। इंग्लैंड या इण्डोनेशिया में चाहें जितनी औद्योगिक उत्पत्ति हो जाय भारत या चीन की जनसंख्या का मुकाबला वहाँ की जनसंख्या शायद कभी नहीं कर सकती। जनसंख्या के घनत्व और वितरण में प्रतिबद्ध भौगोलिक दशाग्रे बड़ी बाधा बनती हैं। इन बाधाओं पर तब तथा सम्यता की उत्पत्ति में बहुत कुछ काबू कर लेना सम्भव है। सन्निज पशुओं वाले पठारी प्रदेशों में विशाल जनसंख्याएँ बस सकती हैं। उत्तरांचल प्रदेश का पठार और अमरीका के 'यू एगलण्ड' आजकल बड़े औद्योगिक क्षेत्र बन गये हैं। जनसंख्या के विस्तार, वितरण और उत्पत्ति में सामाजिक कारकों का महत्व प्रकृति से किन्हीं भी तरह कम नहीं है।

यूरोप और एशिया की वर्तमान सम्यताओं की महानता में अंतर का कारण जलवायु की भिन्नता बताई जाती है। डा० हंटिंग्टन ने अपने एक गहन अध्ययन में यह सिद्धान्त बनाया कि जलवायु से स्वास्थ्य, शारीरिक कुशलता बुद्धिमत्ता और प्रतिभा निश्चित हानी है तथा इस सम्यताओं की उत्पत्ति या अवनति हानी है। जलवायु सम्यता के जन्म, विकास, उत्पत्ति, अवनति और लोप का प्रधान कारक है। इस सिद्धान्त की पुष्टि में हमने सस्यार के तीन मानचित्र बनाये। पहले में सस्यार की विभिन्न जलवायु को दिखाया और दूसरे में पृथ्वी की सम्यताओं के विस्तार को दिखाया और अंतिम नक्शे में उन स्थापना को प्रदर्शित किया जहाँ प्रतिभाशाली व्यक्तियाँ जन्म लियीं। उसी इन तीनों मानचित्रों में अत्यधिक समानता पाई। अच्छा जलवायु में उत्तम स्वास्थ्य बनता है जो सम्यता की उत्पत्ति और प्रतिभाशाली व्यक्तियों के जन्म का मूल कारक है।¹ अच्छी जलवायु में बसी जातियाँ को थोड़ा और बुरी जलवायु वाली जातियों को हीन बनाया जाता है। एशिया का पिछड़ी अवस्था तथा गुलामी का प्रत्यक्ष सम्बन्ध यहाँ की जलवायु और मौसम से बताया जाता है।

किन्तु इस प्रकार के पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना हमें मयता की ओर नहीं ले जाता। स्वास्थ्य, शक्ति शारीरिक और मानसिक कुशलता केवल जलवायु पर ही निर्भर नहीं होती। व मनुष्य का पैतृकता या वशानुक्रमण, अच्छा भोजन, सफाई जीवन-स्तर तथा उनके सामाजिक जीवन की प्रेरणाओं तथा मूल्या पर निर्भर रहते हैं।

कुछ विद्वानों ने यह सिद्ध किया था कि ऋतुओं के परिवर्तन के साथ आत्म-हत्याओं की दर में भी परिवर्तन आता है। यूरोप में गर्मियों में यह दर मध्यम ऊँची वसन्त में कम और जाड़े में सबसे कम। फ्रांस के विद्वान दुरखीम ने आत्म-हत्याओं तथा जलवायु के कारकों के सम्बन्ध जानने के लिए कुछ अन्वेषण किए। उसने सिद्ध किया कि आत्म हत्याओं तथा भौगोलिक स्थानों में कोई निश्चित पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है। उत्तम सम्यताओं में आत्म हत्याओं अधिक होती हैं। गाबो की अफगाण नगरों में भी आत्म हत्याओं की दर ऊँची रहती है। इसी प्रकार विवाहिता तथा अशिक्षितों की अफगाण अविवाहिता विधुरा और अशिक्षितों में अधिक आत्महत्याएँ होती हैं। आत्महत्या एक सामाजिक घटना है। ऐसी परिस्थितियों में आत्म-हत्याओं का अनुपात अधिक होता है जहाँ सामाजिक पृष्ठभूमि की दशाएँ पदा होती हैं। पारिवारिक कठिनाइयाँ, कलह, विधनता, निराशा अपराध तथा सामाजिक विरोध से बचने का इच्छा आत्महत्या के कुछ महत्वपूर्ण कारण हैं।

अपराध—इसी प्रकार पागलपन और अपराध पर जलवायु या ऋतुओं का प्रभाव माना जाता है। किन्तु अधिक से अधिक यह प्रभाव अप्रत्यक्ष और बहुत कम

1 Based on Huntington's (1) *Civilization and Climate* and (2) *Main Springs of Civilization*

हो सकता है। विभिन्न देशों वर्गा और गाँवों तथा नगरों में अपराधों के अनुपात में इतनी विभिन्नता पाई जाती है कि हम इसका जलवायु व प्रभाव द्वारा नहीं समझ सकते। किसी देश या नगर या गाँवों को ले लीजिए। हरक वष यहाँ अपराधों की दरों में इतनी असमानता रहती है कि ऋतुओं तथा जलवायु के प्रभाव द्वारा इस उतार चढ़ाव को नहीं समझा जा सकता। औद्योगिक देशों में और खेतिहर देशों में अपराधों की दरों की भिन्नता का कारण जलवायु या ऋतुओं व दायि नहीं हैं। अपराधों के सामाजिक आर्थिक, व्यक्तिगत, धार्मिक, राजनतिक और शासन सम्बन्धी आदि कारण होते हैं। वास्तव में कृषि प्रधान देशों में भी जलवायु का अपराधों से बहुत दूर का और अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। ऋतु के प्रतिबल होने से फसल अच्छी नहीं होती लगातार फसलें नष्ट हो जाने से किमान निधन हो जाता है। इस स्थिति में बहुत से किसान और मजदूर चोगी या डकती करने लगते हैं। किन्तु यह कोई निश्चित नियम नहीं। सांस्कृतिक प्रभाव इतने अधिक और प्रभावशाली होते हैं कि वे जलवायु के प्रभाव को नगण्य कर देते हैं। वही तरह पागलपन तथा जलवायु या ऋतुओं के बीच में कोई सम्बन्ध नहीं स्थापित हो पाया है।

आर्थिक जीवन और सगठन—आर्थिक जीवन और सगठन पर भौगोलिक पर्यावरण का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक साधनों का शोषण कर पेशा तथा उद्योग धंधों का विकास किया जाता है। मानी तौर पर पेशों तथा उद्योग धंधों का स्वभाव और विकास प्राकृतिक दशाओं पर निर्भर है। पशुपालन खेती, लकड़ी काटना खानें खोलना मछली पकाना आदि पृथ्वी से सम्बद्ध पेशों पर भूगोल का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। बंगाल में जूट की खेती और उद्योग होता है। छोटा नागपुर व पठार में टाटानगर (जमशेदपुर) तथा अन्य औद्योगिक केंद्रों की उत्पत्ति और उत्थिति अनुकूल प्रकृति से ही सम्भव हो सकी है। कपड़े के कारखानों की स्थापना काली मिट्टी के क्षेत्रों—जहाँ रुई पैदा होती है—के आस पास होती है। उद्योगों का स्थानीयकरण के प्रमुख कारण कच्चे माल की प्राप्ति बाजार या विजली की शक्ति के साधनों का होना और आवागमन के लिए सुलभ स्थिति सभी तो प्राकृतिक दशाएँ हैं। आर्थिक सम्पन्नता पर भी भौगोलिक पर्यावरण का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। स्विटजरलैण्ड में घड़ी तथा कल पुर्जा का उत्पादन ही सम्भव हो सना है खनिज पदार्थों की अल्प मात्रा में प्राप्ति तथा पहाड़ी और पठारी भूमि में बड़े उद्योगों की स्थापना और उत्थिति सम्भव नहीं हो सकी। अमरीका आज समस्त में सबसे अधिक समृद्ध औद्योगिक देश है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण उस देश की उत्कृष्ट प्राकृतिक दशाएँ हैं। पर उत्कृष्ट प्राकृतिक साधनों की उपस्थिति मात्र से कोई देश समृद्ध नहीं हो जाता। हमारी सामाजिक परिस्थिति इस बात का निर्णय करती है कि उनका उपयोग कितना और किस प्रकार किया जाय। प्राकृतिक साधनों का शोषण कर उनसे विविध उद्योगों का विकास करना मनुष्य व हजारों वर्षों के अनुभव और अर्थ

पण का परिणाम है। सत्तार म जो औद्योगिक उन्नति हुई है इमका सबसे महत्वपूर्ण कारक मनुष्य का वह ज्ञान और उसका प्रयोग है जिसका सवप्रथम औद्योगिक क्रान्ति ने प्रकट किया।

राजनैतिक-संगठन—राजनैतिक संगठन तथा सस्थाओं का प्रथम सवध आर्थिक संगठन और सामाजिक सस्थाओं से है। और आर्थिक संगठन का अग्रथम सम्बन्ध प्राकृतिक दशाओं (भौगोलिक पर्यावरण) से है। इसलिये राजनीतिक संगठन तथा भूगोल से बहुत दूर का अग्रथम सम्बन्ध माना जा सकता है। भूगोल शास्त्रियों ने विषाल उपजाऊ भूमियाँ और जनतंत्र तथा पहाड़ी और ऊँचे-नीचे कम उपजाऊ क्षत्रों और राजतंत्र म पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किये हैं। व वास्तविकता से मेल नहीं पाते। एक ही देश में अनेक प्रकार के शासन-तंत्र स्थापित होत पाये गये हैं। रूस और भारत म राजतंत्र से लेकर प्रजातंत्र और समाजवादी प्रजातंत्र की स्थापना इसका साक्ष्य है। राजनीतिक सस्थाओं और संगठन का विकास सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास पर निर्भर रहता है। एक भौगोलिक पर्यावरण म कई प्रकार का राजनैतिक सस्थाएँ पाई गई हैं। समान भौगोलिक पर्यावरण वाले देशों म विभिन्न राजनैतिक संगठन पाये जाते हैं और विभिन्न भौगोलिक पर्यावरण वाले देशों म एक-सा राजनैतिक संगठन पाया जाता है। अतएव राजनैतिक संगठन या सस्थाओं की उत्पत्ति और उन्नति, उनको एक ही भौगोलिक पर्यावरण म विभिन्नता और प्राकृतिक दशाओं के बिना परिवर्तित हुए उनका बदलना यह सभी सामाजिक पर्यावरण द्वारा ही समझाया जा सकता है। आज मसार के सभी सम्य देशों म भौगोलिक पर्यावरण की विभिन्नता हान पर भी प्रजातन्त्रीय तथा समाजवादी शासन व्यवस्था स्थापित है या हान जा रही है।

धर्म कला और साहित्य—सभी प्राचीन धर्मों म प्राकृतिक पदार्थों या शक्तियों को देवी-देवता मानकर पूजा की जाती है। सूर्य सागर के देवता वायु देवता वर्षा के देवता आदि की पूजा इन धर्मों की विशेषता है। भारतीय धर्म म ही इंद्र, वरुण, सूर्य वायु आदि को पूजते हैं। आदिम समुदायों म भी प्राकृतिक पदार्थों और शक्तियों की पूजा होती है। मनुष्य या असाधारण मनुष्य तथा अलौकिक शक्तियों या दवों को पूजन की प्रथा अनेकानुगत प्राचीन है। सभी धर्मों म स्वर्ग और नरक का अस्तित्व माना गया है। इनकी कल्पना भी अनुकूल और मानव हितकारी तथा प्रतिबुद्ध और नर-सहारक प्राकृतिक दशाओं पर आधारित है। धर्म की उत्पत्ति मनुष्य की उस प्रयत्न-इच्छा का फलस्वरूप हुई जिससे वह अपने जीवन म भयकर अनिश्चितता को कम करना चाहता था। सामाजिक विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं म मनुष्य के जीवन म अत्यन्त अनिश्चितता थी। इन अवस्थाओं म धर्म का प्रभाव मानव-जीवन पर सर्वाधिक रहा था। मम्यता के विकास न इस अनिश्चितता को कम कर दिया और विचारों की उन्नति से धार्मिक विश्वासों म भी ह्रास हुआ। धार्मिक

शायद धार्मिक लोप में अन्त हो। पर यदि कभी विज्ञान और सम्यता का नाश हुआ और मानवता जीत्रित रही तो उसका धर्म पुनः प्रकृति से अप्रत्यक्ष प्रभावित होगा।

साहित्य समाज का दर्पण होना है। उसमें समाज की सम्यता और सस्कृति का चित्रण होता है। अतएव प्रकृति का जितना प्रभाव सामाजिक जीवन पर होता है उतना साहित्य पर होना स्वाभाविक है। प्रकृति वरुण ससार के सभी साहित्या का एक ममृद्ध अंग है। महाभारत रामायण कालिदास का काव्य, शेक्सपियर और बड सवथ की रचनाओं—सभी पर प्रकृति की गहरी छाप है।

काव्यकार को अपनी कृति के लिये प्रकृति से बहुत कुछ प्रेरणा मिलती है। नृत्य, संगीत चित्रकारी आदि पर प्रकृति की रंगीन और मनमोहक दशाओं का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की सौन्दर्य की कल्पना भी प्राकृतिक सौन्दर्य से अनुरजित है। श्रौद्धोगिक भौतिकवादी सम्यता में भी मनुष्य का प्रकृति प्रेम कम नहीं हुआ। नागरिक वातावरण से ऊँचकर शहरी लोग रमणीय, उन्मुक्त और अनियंत्रित प्रकृति के प्राण की ओर भागते हैं।

धर्म साहित्य और कला की उत्पत्ति में भौगोलिक पर्यावरण बाधा नहीं डाल सकता। इसका तो उन पर अप्रत्यक्ष प्रभाव ही पड़ता है।

सम्यता तथा सस्कृति—विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य निकटस्थ पर्यावरण का सहारा लेता है। उसी के आधार पर वह अपनी सस्कृति विकसित करता है। किन्तु आवागमन के मार्गों और साधनों में उन्नति होने से विभिन्न समूहों या समुदायों की सस्कृति में सम्पर्क होता है। यह सम्पर्क सस्कृति के प्रसार को संभव कर देता है। इस प्रकार समूहों और समुदायों की मौलिक सस्कृतियों में दूसरी सस्कृतियों का सम्मिश्रण हो जाता है। स्थानीय सस्कृति का कहीं कहीं बिल्कुल रूप बन जाता है। अमरीका के रेन इंडियनों की स्थानीय सस्कृति बहुत कुछ भौगोलिक पर्यावरण से प्रभावित हो सकती है। किसी समूह या समुदाय की जो दूसरे समुदायों से पृथक् रहा है सस्कृति पर भौगोलिक पर्यावरण का निकट अप्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है किन्तु भारतीय सस्कृति या ईरान और जापान की सस्कृति पर प्राकृतिक पर्यावरण का तो अप्रत्यक्ष प्रभाव भी दूढ़ना मुश्किल होगा। राबर्ट लावी ने लिखा है कि पर्यावरण सास्कृतिक ढांचा के निर्माणकर्ताओं की ईंट और चूना तो देता है किन्तु उन्हें गिल्पकार की योजना नहीं देता।

सम्यता और प्राकृतिक पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्ध की हम पहले चर्चा कर चुके हैं। हमने देखा है कि केवल भौगोलिक दशाएँ सम्यता के उत्पन्न का कारण नहीं हो सकती। हाँ इन दशाओं से सम्यता की उत्पत्ति और उत्पत्ति के लिये उद्दीपन आवश्यक मिलना है। प्राकृतिक साधनों का क्या उपयोग हो यह निश्चित करना समाज पर निर्भर है। पर प्रकृति की उत्पन्नता सम्यता की उत्पत्ति के लिये एक महयोगी कारण है। सिंधु घाटी की सम्यता और मिस्र में नील नदी की घाटी की सम्यता

म कथन के ज्वलत साक्ष्य हैं। भूमध्यसागर के तटा पर भी सम्यता के विकास के उदाहरण मिलते हैं। किन्तु गाल्डनबीजर ने उचित ही कहा है कि "कार्डे भी पर्यावरण खेता एक निश्चित प्रकार की सम्यता के जन्म के नियम उत्तरदायी नहीं माना जा सकता और न कार्डे पर्यावरण जब तक अत्यन्त कक्षा न हो एक सम्यता के विकास से ही रोक सकता है।

आनॉल्ड टॉयनबी के कथन से हम सहमत हैं। वह लिखता है कि भौगोलिक प्रावास का सम्यता पर चाहे जितना प्रभाव हो अभी तक यह निर्विवाद सत्य नहीं उदराया जा सका कि मनुष्य के कार्यों और सवधा में भूगोल एक निमायक शक्ति है। इस विद्वान सखक न भारतीय, केन्द्रीय अमरीका की माया और पारानेशियन सम्यताओं से उदाहरण दत्त हुए यह सिद्ध किया है कि महाद और शक्तिशाली सम्यताओं का उदय और उनकी समृद्धि प्रकृति की चुनौती में सम्भव हुआ है। मानव प्रकृति की चुनौती तब समझता है जब वह विराघी और अनियंत्रणशील होती है।¹

भौगोलिक पर्यावरण और सामाजिक जीवन में प्राकृतिक परिस्थितियों की भांति काय-कारण सबब नहीं टूटा जा सकता। एक स्थान पर भौगोलिक सम्भावनाएँ हानि से एक विभिन्न प्रकार के आर्थिक राजनिक सामाजिक या धार्मिक संगठन का विकास होना चहती नहीं है। सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का क्या संगठन होगा यह सामाजिक परिस्थिति पर निर्भर होना है। मनुष्य ने अपनी सम्यता के बल पर बहुत सी ऐसा बातों को कर लिया है जो भौगोलिक पर्यावरण से कभी सम्भव नहीं थी। सी० बलाकस ने ठीक कहा है— भौगोलिक कारकों का प्रभाव नकारात्मक है पर निश्चयात्मक नहीं है, वे कारक एक घटना में प्रायः बाधा डाल सकते हैं पर वे यह नियम नहीं करते कि क्या होगा।

सम्यता और भूगोल के सबब में सत्रम महत्वपूर्ण बात यह है कि सम्यता मनुष्य के बाह्य पर्यावरण का नियंत्रित करने के साधन जुटाती है। जस-जस मनुष्य का प्रकृति पर नियंत्रण बढ़ता जाता है प्रकृति पर उसकी प्रत्यक्ष और पूरा निर्भरता बस बस कम जाती जाती है। साथ ही उसके वासस्थान के अति निकटवर्ती पर्यावरण का उस पर प्रभाव भी कम होता जाता है। मानवविक्रम के इतिहास में यह बात पुष्ट हो जाती है। जस-जैसे मनुष्य की आर्थिक सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति उन्नत होता गई वह प्रकृति पर अपभ्रांत कम निर्भर रहने लगा और उसके अति निकटवर्ती भौगोलिक कारकों का प्रभाव उस पर घुन होना गया। नारो किन इस मत की पुष्टि करता है।²

सम्यता की वृद्धि स्थानांतरण भौगोलिक दशाओं के प्रत्यक्ष प्रभाव का बन्दनी और कम करती है। आधुनिक युग में मनुष्य अपनी जन्मत की वस्तुओं का अनेक क्षेत्रों से प्राप्त करता है। उसके बन्दन में एम पने हैं जिनमें तथा भौगोलिक पर्यावरण

1 A J Toynbee *A Study of History* (Abridged Ed. by D C Somervell)

2 Sorokin *op cit* p 10.

म कोई सबध नहीं मिलता । सबहन के साधनों की उन्नति से उसने दूरस्थ देशों से सम्पर्क स्थापित कर लिया है । इससे सस्कृतियों में परस्पर आदान प्रदान होता है या एक सशक्त सस्कृति का दूसरी सस्कृतियाँ पर व्यापक प्रभाव पड़ता है । सस्कृति के प्रसार में जो सबसे बड़ी बाधा है वह राजनीति और पूव निगम की दीवार है, प्राकृतिक दीवारें नहीं । यदि आज आप किसी पिछले प्रदेश में जायें तो वहाँ के निवासियों के जीवन के ढंगों में प्राचीनता और प्राधुनिकता का विचित्र समागम पायेंगे । इसका श्रेय सम्भ्यता को है ।

सम्भ्यता की उन्नति में मनुष्य प्रकृति के विधानों को अपने साधनों की पूर्ति के लिये उपयोग करने लगता है । इस स्थिति में उसकी निकटस्थ या स्थानिक भौगोलिक दशाभा पर उसकी अधीनता में दो प्राथमिक तरीकों से सशोधन होता है । प्रथम, उसकी भौगोलिक गतिशीलता में वृद्धि हो जाती है जो स्थानीय प्रकृति के बदलने और प्रवरण करने की उसकी शक्ति को बढ़ाती है । वह कम परियम और कम खर्च से दूसरे स्थानों को जा सकता है । उसके निष्क्रमण में प्रकृति प्रभावी बाधाएँ नहीं डाल पाती । द्वितीय दूरस्थ पर्यावरण में उन्नत प्रभावों का सघन उसके जीवन पर होता है । उसके जीवन में विचार तथा सामाजिक संघटन सभी हजारों मील पर बसे मनुष्यों के जीवन में विचारों और सामाजिक सन्वाद्यों से प्रभावित होने हैं । भारत के निवासी अग्रजों के पहले हैं और भोजन में यूरोप और अमरीका का अनुकरण करते हैं । वे चीन जापान और रूस की उन्नति और सम्भ्यताओं से प्रेरणा लेते हैं । इसी प्रकार भारत की आध्यात्मिक सम्भ्यता का प्रभाव रूस अमरीका और अन्य भौतिकवादी सम्भ्यता वाले देशों पर पड़ा है । भारतीय नारियों की प्रिय साड़ी का प्रचार अमरीका में जोरों से हो रहा है । इसी प्रकार भारत की शांतिमय अहिंसात्मक विधियाँ को दूसरे देश भी अपनी आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में प्रयोग कर रहे हैं । रूस और चीन को महान् बना देने वाली साम्यवादी विचारधारा से परतन और औपनिवेशिक देश प्रेरणा ले रहे हैं । डेनमार्क की श्रृष्टि सहकारिता संस्थाओं को आज अनेक श्रृष्टि प्रधान देशों में स्थापित किया जा रहा है । सधेय में, सामाजिक विरासत में बढ़ि के साथ-साथ समाज के जीवन में अति निकटस्थ भौगोलिक कारकों की निर्धारक भूमिका कम हो जाती है ।¹ रीक्स मम्फोड की उक्ति हम सही स्थिति का दिग्दर्शन कराती है— ज्या ज्या सांस्कृतिक विरासत में बढ़ि होती है भौगोलिक पर्यावरण का अधिक भाग उपयोगी और अधपूर्ण होना जाता है । निम्न क्षेत्र की प्राकृतिक दशाओं को सांस्कृतिक और तांत्रिक दक्षताएँ विनष्ट नहीं करती अपितु उन्हें विस्तृत कर लेती हैं ।²

उपसंहार—भौगोलिक पर्यावरण की सामाजिक जीवन में केवल सीमित भूमिका है । भूगोल कुछ बाह्य दशाओं का निर्माण करता है । इनमें हमारा जीवन

1 MacIver & Page *op cit* p 106

2 Moford *The Culture of Cities* London (1933) p 313

चलता है और उसके विभिन्न पहलुओं के लिये महत्वपूर्ण हैं। समाजशास्त्र का विद्यार्थी भौगोलिक पर्यावरण की उपेक्षा नहीं कर सकता क्योंकि "सामाजिक घटनाओं का कोई भी विश्लेषण जो भौगोलिक कारकों का विचार नहीं करता, अधूरा है।"¹ सामाजिक घटनाओं के प्रत्यक्ष निर्धारक मनुष्य के हित और रुचि, चालक हैं जिन पर भौगोलिक दशाओं के अनिश्चित अथवा दशाओं का भी प्रभाव पड़ता है। भूगोल और सामाजिक जीवन के सम्बन्ध की शृंगारिता मनुष्य के मध्यस्थ कड़ियाँ हैं। रायटर ने लिखा है प्राकृतिक पर्यावरण वे दशाएँ प्रस्तुत कर देता है जिनमें मनुष्य का सामाजिक जीवन चलना चाहिये किन्तु वह सामाजिक विघातों के स्वभाव को निर्धारित नहीं करता जिनका अध्ययन समाजशास्त्री करता है।²

1 Any analysis of social phenomena which does not take into consideration geographical factors is incomplete —Sorokin *Contemporary Sociological Theories* p 193

2 The natural environment sets the conditions within which human social life must be carried on but it does not determine the character of the social processes that the sociologist seeks to analyse —Reuter *Sociology* p 26

संस्कृति और सभ्यता

मानव जीवन और समाज को समझने के लिए यह आधार भूत है कि उनका सांस्कृतिक आधार (cultural basis) जाना जाय। संस्कृति तो समाज विनाश की बुनियादी खाज है। यद्यपि कुछ विनाश संस्कृति की प्रवृत्ति और उसका विविधता तथा सूक्ष्म अध्ययन किए बिना काम चला भी सकते हैं किंतु समाजशास्त्र मानव शास्त्र और समाज विज्ञान के लिए संस्कृति की विवेचना करना अत्यावश्यक है। चूंकि संस्कृति मूलतः मानव समाज की अपनी विशेषता है इसलिए समाजशास्त्र के अध्ययन में इसका केन्द्रीय महत्त्व है।

संस्कृति' का लौकिक (popular) या साधारण अर्थ

जन-साधारण में संस्कृति शब्द का प्रयोग बहुत हीना है। हमने लोगों को कहते सुना है कि अमुक व्यक्ति या परिवार सुसंस्कृत (cultured) है अथवा अमुक काय सांस्कृतिक (cultural) है। जन-मस्तिष्क में प्रायः संस्कृति की धारणा मूलतः कला के रूप में पाई जाती है। जो बातें अच्छी और वांछित हैं तथा जो सदगुणा से युक्त हैं उन्हें इन गुणों से रहित वस्तुओं से पृथक् करने के लिए सांस्कृतिक कहा जाता है। जब साधारण लोग कहते हैं कि हम अपनी संस्कृति प्यारी है अथवा हम अपनी महान् संस्कृति की रक्षा करेंगे तो सम्भवतः उनका अभिप्राय अपने जीवन के उम्र व्यय या निधि से होना है जो उन्हें अपने पिता-पितामहों से विरासत में मिली है और उनके जीवन का समृद्ध और सफ़ल बनाती है।

दार्शनिक हीगेल (Hegel) और कांत (Kant) संस्कृति में नतिकता को मानव सन्निहित मानते थे। मैथ्यू आरनोल्ड (Matthew Arnold) सम्पूर्णता (perfection) के अध्ययन, मधुरता और प्रकाश की विशिष्ट लोच को संस्कृति कहता था। वह शिक्षिता और प्रकाशन (enlightenment) को

संस्कृति मानता था। उमकी धारणा के अनुसार संस्कृति व्यक्ति के स्वयं कुछ होने में है न कि किसी वस्तु के अपनाने में। संस्कृति, वास्तव में व्यक्ति की आन्तरिक मानसिक अवस्था (inward state of mind) का ही पर्याय है।

एक दूसरे अंग्रेज कवि एलियट (T S Eliot) ने जीवन के सम्पूर्ण ढंग को संस्कृति कहा है। उमका विश्वास है कि 'हम कभी भी अपनी संस्कृति से पूर्णतया सचेत नहीं हो पाते।' और इसलिए हम दूसरा की संस्कृति को भी पूर्णतया नहीं समझ सकते। वह संस्कृति का समाज के घम का अवतार कहता है। घम और संस्कृति दाना एक ही वस्तु के दो भिन्न पहलू हैं। इसलिए एक समाज की संस्कृति को समझने के लिए उनके घम की उपमा करना मूल्यता हापी।

जमन विद्वान, जोसेफ पीपर के मत से 'संस्कृति संसार का समस्त प्राकृतिक वस्तुआ और मनुष्य के उन उपहारा और गुणा, जो उसकी जहूरता और आवश्यक्ताओं के सबसे निम्नवर्ती क्षेत्र से बाहर है का सार है।' पीपर¹ संस्कृति और अवकाश का ज्ञान (उद्गम स्थान) एक मानता है। संस्कृति तो अपने अस्तित्व के लिए भी अवकाश पर निर्भर है और अवकाश तब तक अममभव है जब तक उसका स्थायी, सजीव सम्बन्ध देवी आराधना से नहीं है। संस्कृति में समाविष्ट गुणा शक्तियां तथा वस्तुआ के लिए 'यावहारिक जीवन में लाभप्रद होना सदैव जरूरी नहीं पर मानव उनके बगर अपना जीवन सफल नहीं बना सकता।

अंग्रेजी के 'कल्चर' शब्द का हिंदी पर्याय संस्कृति है। 'संस्कृति विश्व का आद्य भाषा संस्कृत का शब्द है। यह समूह उपसर्ग और कुं धातु में लित प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है। सरल शब्दां में यह 'संस्कार' का समानार्थक है। मानव-जीवन पर पड़े संस्कारों के 'द्राभूत समष्टि का संस्कृति कहा जा सकता है। व्यक्ति जिस प्रकार अपने ऊपर पड़े हुए संस्कारों के अनुसार ही चेटाएँ व्यवहार तथा काम करता है एक राष्ट्र की प्रवृत्तियां भी ठीक उसी प्रकार मूलभूत संस्कृति का अपनी परिधि का क्षेत्र बनाकर गतिशील रहती हैं। दश और काल गत संस्कारों से प्रेरित मनुष्य के काम, व्यवहार तथा चेटाएँ संस्कृति के स्मूल शरीर का निर्माण करती हैं। यही कारण है कि विश्व की विभिन्न राष्ट्रीय संस्कृतियां तात्त्विक समानता रखते हुए भी अलग अलग हैं जिनका उदय अस्त भी अपनी अपनी सजीवनी गति के आधार पर हुआ करता है। संस्कृतियों का परिचय राष्ट्रा के इतिहास और साहित्य में मिलता है।

संस्कृति का मानवशास्त्रीय अर्थ

समाजशास्त्र और मानव शास्त्र में संस्कृति का अर्थ साधारण अर्थ से भिन्न और निश्चित है। प्रसिद्ध मानव-शास्त्री टायलर के शब्दां में संस्कृति वह जटिल

1 Culture is the quintessence of all natural goods of the world and of those gifts and qualities which while belonging to man lie beyond the immediate sphere of his needs and wants. —Joseph Pieper *Lessons on the Basis of Culture* (1932) p. 10

पूरणता है जिसमें ज्ञान, विश्वास कलायें, नीति विधि, रीतिरिवाज और समाज के मंदस्य होकर मनुष्य की अर्जित अथ योग्यताएँ और आदत सम्मिलित है।¹ रेडफील्ड के अनुसार सस्कृति कला और उपकरणों में व्यक्त परम्परात्मक ज्ञान का वह संगठित रूप है जो परम्परा में संरक्षित होकर मानव समूह की विशेषता बन जाता है।² एडवर्ड सपिर मनुष्य के प्राकृतिक और आभ्यात्मिक जीवन में सामाजिक विरासत से समाविष्ट तत्व का सस्कृति की सजा देता है।³ रडक्लिफ ब्राउन मनुष्य के सतत् भौतिक और नतिक सुधार (material) वय से सम्य अथवस्थाओं की प्राप्ति—का सम्बन्धि समनता है।

इसी प्रकार बोधस विज्ञान, डिक्सन और रूथ बनेटिक एव मारगरेट मीड सस्कृति में अर्जित क्षमताओं आदतों और प्रथाओं को शामिल करते हैं। उनके विचार से सस्कृति का अर्थ मानव व्यवहार के ऐसे गुण या लक्षण से है जिनका समाज से स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। निटन और कार्डीनर के अनुसार सस्कृति सीखे हुए व्यवहारों के अनवरत परिवर्तनीय प्रतिमानों एवं सीखे हुए व्यवहारों की उपजाओं कहते हैं जिनमें मनोवृत्तियाँ मूल्य ज्ञान और भौतिक पदार्थ शामिल हैं तथा जो समाज के संस्थाओं द्वारा समग्रहात होते हैं और जो उनमें संचरित होते हैं।

यद्यपि सभी उपरोक्त परिभाषाएँ समान नहीं हैं और कुछ सस्कृति का सही अर्थ भी नहीं बताती फिर भी उनमें एक सादृश्य है। वे यह स्पष्ट करती हैं कि एक मानव समूह की जीवन कला को सस्कृति कहते हैं। सस्कृति में भाषा प्राविधिक प्राप्ति प्रथाएँ और धर्म आदि का समावेश होता है। दूसरे यह भी निश्चित सके हैं कि सस्कृति एक सामाजिक घाती है जिसका संक्रमण विरासत के रूप में होता है। सस्कृति व्यक्तिगत प्राप्ति नहीं हो सकती। तीसरे मानवशास्त्र में सस्कृति उत्कृष्टता की धातव नहीं। आदिवासी और आधुनिक समाजों—दोनों में—सस्कृति पाई जाती है। चौथे मानवशास्त्री किसी मानव-समूह की आभ्यात्मिक घाती को सस्कृति का पर्याय नहीं समझते। अतः वे सस्कृति को समाज के सम्पूर्ण जीवन-दण्ड का समानार्थी मानते हैं जिसमें भौतिक और अभौतिक दोनों पदार्थ मिलते हैं।

समाजशास्त्रीय अर्थ

पाचवें अध्याय में हम देख चुके हैं कि मनुष्य केवल सामाजिक (या सामूहिक) प्राणी ही नहीं है वह सांस्कृतिक प्राणी है। सम्पूर्ण जगत में मनुष्य ही सस्कृति

- 1 Culture is that complex whole which includes knowledge belief art morals law custom and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society —E B Tylor *Primitive Culture* p 1
- 2 Redfield "An organized body of conventional understandings manifested in art and artifacts which persisting through tradition characterizes human groups"
- 3 Edward Sapir "Culture is a socially inherited element in the life of man natural and spiritual"

विकसित कर पाया है। इस संस्कृति में उनका सभी रख, विश्वास, मूल्य और पूव नियम सम्मिलित होते हैं। संस्कृति उनके सामाजिक जीवन में कितना महत्वपूर्ण कारक है, यथा भी सखिण्य परिचय हम मिल चुका है। मनुष्य को अपने पूर्वजों से जो सामाजिक विरासत प्राप्त होती है इसमें उसके जीवन में सफलता के प्रति बहुत विश्वास आ जाता है। इस विरासत में उनके पूर्वजों का हर परिस्थिति और घटना से सम्बन्धित अनुभव मगहीन है। उनके समूह में इस विरासत का हस्तांतरित करने में एक अस्थायी माध्यम का काम किया है। किन्तु इस माध्यम से होकर जाने पर सामाजिक विरासत के कुछ तत्वों का अर्थ नियम समूह में अपने दग से किया है और थोड़ा बहुत विरासत का मगधिन भी कर दिया है। सामाजिक विरासत के संचरण का यह विधा पाठो-दर पीठी चला करती है।

समूह का अपने पूर्वजों से प्राप्त सामाजिक विरासत ही उनकी संस्कृति है। टायलर ने संस्कृति की जो परिभाषा की है वह सबसे अधिक प्रसिद्ध है उसमें सामूहिक जीवन की सभी उपजों जैसे जनरीनिया प्रविधि रीनिया, ऋद्धिमा और अर्थ समूह-अपमनाएँ और मनुष्य के द्वारा निर्मित सभी उपयोगी पार्थिव पदार्थों और अन्ततः संस्कृति के प्रतीकात्मक निवचना का सम्मिलन किया गया है। इस प्रकार प्रयाएँ पार्थिव पदार्थ, अर्थपूर्ण सम्बन्ध में लीना संस्कृति के प्रधान पदार्थ हैं। संस्कृति एक मगठन है। इसमें रचना और काय दोनों का समावेश होता है।

कुछ लेखकों ने संस्कृति के प्रतीकात्मक पहलू पर विशेष बल दिया है। लेमली व्हाइट लिखता है कि संस्कृति घटनाओं का वह मगठन है जिसमें कार्यों (व्यवहार के प्रतिमानों), पदार्थों (औजारों और उनके द्वारा बनी वस्तुएँ), विचार (विश्वास और ज्ञान), और भावनाओं (रख और मूल्य) का समावेश होता है जो प्रतीकों के उपयोग पर निर्भर है।¹ संस्कृति के प्रतीकात्मक स्वभाव पर बने दन से यह स्पष्ट किया जाता है कि इस स्वभाव के कारण वह एक मनुष्य से दूसरे का किन्तु सरलता से संचारित हो जाता है। हजारों वर्षों से संस्कृति इसी तरह एक से दूसरे पीढ़ियों में संचारित होती रही है और संचार में इसमें नये-नये तत्वों का समावेश होता गया है। इसके कुछ तत्व नष्ट हो गये और कुछ का मौलिक रूप बदल गया है और कुछ नये तत्व जुड़ते गये—परन्तु संस्कृति स्वयं बनी रहती है। इसलिए व्हाइट इन निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'संस्कृति एक प्रतीकात्मक, मर्यादा और प्रगतिशील विधा है।'²

1 Culture is an organisation of phenomena—acts (patterns of behaviour) objects (tools, things made with the tools) ideas (beliefs, knowledge) and sentiments (attitudes and values)—that is dependent upon the use of symbols.—Leslie A. White *American Sociological Review* 1^o 686-693 (Dec 1947)

2 Culture is a symbolic continuous cumulative and progressive process. *Ibid*

फयरचाइल्ड ने लिखा है कि प्रतीका द्वारा सामाजिक रूप से प्राप्त और संचारित सभी व्यवहार प्रतिमानों के लिये सामूहिक नाम सस्कृति है। मानव समूहों की सभी निराली सफलताओं का सस्कृति कहते हैं जिसमें भाषा और आचारों का निमाण, उद्योग कला, विधि, शासन नीतियाँ धर्म और पारिवारिक साधन या शिल्पी पदाय जिनमें सांस्कृतिक सफलताओं का समावेश होता है और जिनमें बौद्धिक सांस्कृतिक लक्षणाओं को इमारतों यंत्रा सवहन की युक्तियाँ और कला पदार्थों में व्यावहारिक रूप दिया जाता है को सम्मिलित किया जाता है। इसमें वह सभी कुछ सम्मिलित होता है जो अतः संचार से सीखा जाता है। भाषा परम्परायें प्रथायें और सस्यायें सभी तो सस्कृति के अंग हैं। ससार में ऐसा कोई मानव समूह नहीं है जिसमें भाषा, परम्परायें, प्रथायें और सस्यायें न हों। इसीलिए तो सस्कृति सावभौमिक रूप में मानव समाजों की निराली विशेषता है।¹ सावभौमिकता और निरालेपन के कारण यह समाजशास्त्र की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण धारणा बन गई है।

सस्कृति का संचार औपचारिक या अनौपचारिक शिक्षण और सीखने की विधियों से होता है। इसलिए सस्कृति का सारभूत भाग तो सामाजिक परम्परायें, अर्थात् समूह में प्रचलित ज्ञान विचार आस्थाओं मूल्यों प्रमाणों और भावनाओं के प्रतिमानों में निहित है। सस्कृति का प्रत्यक्ष (बाह्य या प्रकट) भाग समूह का वास्तविक व्यवहार है जो सामान्यतः उसके चलना प्रथायें और सस्थाओं में व्यक्त होता है। किन्तु प्रथायें सस्थायें तो बहुधा सदैव ही समूह के विचारों, आस्थाओं मूल्यों और भावनाओं की अभिव्यक्ति होती हैं। अतएव सस्कृति का सारभूत भाग जीवन की दशाओं के प्रसंग में मूल्यों का गुणागुण ज्ञान प्रतीत होता है। इसलिए सस्कृति की शुद्ध व्यवहारवादी परिभाषा अपर्याप्त है। वही परिभाषा पूर्ण कहा जायगा जिसमें सस्कृति के दोनों पहलुओं—अन्तरंग और विषयक का समावेश होता है। व्यवहारिकता की दृष्टि में मानव समूह की परम्पराओं और प्रथाओं को ही सस्कृति कहा जाता है परन्तु परम्परायें सस्कृति का अन्तरंग पहलू हैं और उसका सारभूत अन्तर्भाग हैं।

मकाइवर और पजन सस्कृति और सम्यता में कुछ भेद बताते हैं। वे सम्यता में मनुष्य द्वारा निर्मित सभी उपयोगी पदार्थों को सम्मिलित करते हैं। जैसे माटरकारक, मुद्राचलन-पद्धति रजगाडियाँ छापाखाना कारखाना टारपीनरइटर आदि। सम्यता में दो प्रकार की प्रविधियाँ का समावेश होता है (१) आध्यात्मिक प्रविधि और (२) सामाजिक प्रविधि। आध्यात्मिक प्रविधि का उद्देश्य प्रकृति पर मनुष्य का नियंत्रण स्थापित करना है। सामाजिक प्रविधि का ध्येय मनुष्यों के आर्थिक, राजनीतिक आदि व्यवहारों का नियंत्रण करना है। सम्यता एक विशाल व्यवस्था है। इस व्यवस्था में विपरीत एवं दूसरी व्यवस्था है जिसमें एसी वस्तुएँ सम्मिलित हैं जिनमें उपयोग, चित्र कविता, नाटक चलचित्र श्रृंखला दशन विचारधारा और मन्दिर

आदि। इन सभी चीजों का निर्माण मनुष्य ने इसलिए किया है क्योंकि हम उन्हें ही चाहते हैं। क्योंकि वे हम प्रत्यक्ष रूप से वह प्रदान करती हैं जिस हम चाहते हैं। आवश्यक है। य वस्तुएँ किसी अन्य आवश्यकता या इच्छा की पूर्ति का माध्यम ही हैं। य सब उन ढंगों की प्रतिनिधि हैं जिनमें हम अपनी अभिव्यक्ति करते हैं। हमारी आन्तरिक आवश्यकता की पूर्ति करती हैं न कि किसी बाह्य आवश्यकता। इन सबको संस्कृति की व्यवस्था में रखा जाता है। यह (संस्कृति) मूल्यों तथा भावात्मक लगावा बौद्धिक अभियानों का मसारा है। इसलिए संस्कृति का ना का विलुप्त विषय है। संस्कृति हमारे रहने और सांकेतिक ढंगों में दैनिक काम-कलापों में कला में साहित्य में मनोरंजन और आनन्द में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।¹

इतने सब विवेचन का सार यह है कि संस्कृति मनुष्य की व निराली सफलताओं है जिन्हें उमर और उमरके पूर्वजों ने हर परिस्थिति और घटना से अनुभव के रूप में प्राप्त किया है और जो शिक्षा और सीखने की विद्यार्थियों द्वारा क्रमशः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी का सामाजिक अनुभव के रूप में हस्तांतरित होती रही हैं। संस्कृति का सारभूत भाग सामाजिक परम्पराओं अर्थात् समूह में प्रचलित ज्ञान विचार आस्थाओं मूल्य प्रमाण भावनाओं हैं। संस्कृति का प्रकट भाग पन्था सामूहिक व्यवहार है जो सामान्य समूह के चलना प्रथाओं और संस्थाओं में व्यक्त होता है जो स्व समूह के विचारों मूल्यों आस्थाओं और भावनाओं की अभिव्यक्ति हानी है। अनएव संस्कृति जीवन के मूल्यों के प्रति सामाजिक रूप है। संस्कृति हमारे रहने और सोचने के ढंगों में दैनिक काम-कलापों में कला में, साहित्य में घम मनोरंजन और आनन्द में अभिव्यक्ति हमारी प्रकृति है। एक शब्द में संस्कृति हमारे जीवन का निराला सम्पूर्ण टुकड़ा है। यह सामाजिक जीवन में प्रवेश करने की एक सामूहिक रीति है।²

संस्कृति के सारभूत (या आवश्यक) तत्व

संस्कृति में निम्नलिखित सारभूत तत्वों का समावेश होता है —

- (१) यह मनुष्य निर्मित होता है और उन सब पदार्थों से भिन्न होता है जो प्रकृति की सृष्टि है तथा जिन पर कोई सशोधन नहीं कर सकता।
- (२) इसमें मानसिक उपजों का समावेश होता है जो अमूर्त और अपारिचित हैं तथा जो मनुष्य के हाथों से निर्मित पारिचित रूपों में भी प्रकट होते हैं। परन्तु सामा-

¹ This (cultural realm) is the realm of values of style of emotional attainments of intellectual adventures. Culture then is the antithesis of civilization. It is the expression of our nature in our modes of living and thinking in our every day intercourse in art in literature in religion in recreation and enjoyment — MacIver & Page op cit p 499

² Culture is a distinctive whole way of our life. It is a collective approach to our social life.

जिक परम्परायें (समूह में पचलित ज्ञान, विचार, आस्था, मूल्य प्रमाण और भावनायें) ही सारभूत तत्व हैं।

(३) यह मरक्षणशील और सचयी है और नये तत्वा के मनावेश से जटिलता और गुण दोनों में ही बढ़ती रहती है।

(४) यह व्यक्ति से व्यक्ति समूह से समूह और पीढ़ी से पीढ़ी को मानसिक रूप से संचारित होती रहती है।

(५) यह वेदल मानव समाज में पाई जाती है। उसकी अतीत और वर्तमान परिस्थितियों और दशाओं में उपलब्ध विशिष्ट सफलताओं का समावेश संस्कृति में होता है।

संस्कृति की प्रकृति

संस्कृति या सामाजिक विरासन की कुछ अद्वितीय (विलक्षण) अनुभूति अपूर्व या अनोखी) विशेषतायें होती हैं। इसमें से महत्त्वपूर्ण विशेषतायें इस प्रकार हैं —

(१) संस्कृति एक सीखा हुआ गुण है—यह मनुष्य की जबकि सज्जा में नहीं होता अर्थात् कोई भी मनुष्य “ज मजात संस्कृति” अपने साथ नहीं लाता है। जन्म के पश्चात् समाजीकरण की विधा में व्यक्ति सामाजिक रूप से प्राप्त जिन सामूहिक आदतों को सीखता है वही संस्कृति है। मनुष्य में प्रतीकात्मक संचार की योग्यता होती है जिससे वह अपने समान दूसरे व्यक्तियों की संस्कृति को सीखने के व्यवहार से प्राप्त कर लेता है।

(२) संस्कृति संचारशील है—यह सीखी तो जाती ही है इसको व्यक्ति से व्यक्ति और पीढ़ी से पीढ़ी संचारित भी किया जा सकता है। जानबूरा में सीखने की योग्यता तो होती है पर वे अपने ज्ञान को अपनी सत्तान को सबहमें से हस्तांतरित नहीं कर सकते। मनुष्य पशुओं से इस बात में बहुत श्रेष्ठ है। वह पूवगामी पीढ़ियों की सफलताओं पर अपना जीवन प्राप्त करने कर सकता है। हर नई पीढ़ी के मनुष्य को विवशतावश नये सिरे से नहीं चलना पड़ता है। संचरण (या संचार) की विधा में संस्कृति अच स्थायी सी हो जाती है। यह भी मनुष्य के लिए बड़े लाभ की बात है। उस किसी एक व्यक्ति या समूह पर ही निर्भर नहीं रहना पड़ना।

(३) संस्कृति सामाजिक है व्यक्तिगत नहीं—संस्कृति का कुछ भाग हर व्यक्ति में होता है और हर व्यक्ति उसके सबद में और संचार में कुछ न कुछ भाग लेता है परन्तु संस्कृति व्यक्तिगत नहीं है। संस्कृति समूह के सदस्यों की व सामाज्य अपक्षतायें हैं जो आन्तरिक गुण बन जाती हैं। ये अपक्षतायें अनुभव या आदतों की उपज हैं। व्यक्ति समूह के बाहर रह कर किसी प्रकार की संस्कृति की सृष्टि नहीं कर सकता। संस्कृति वस्तुतः एक सामाजिक घाती है।

(४) संस्कृति आदर्शात्मक होती है—मरडोज ने लिखा है कि बहुत अधिक हद तक संस्कृति में जिन समूह आदतों का समावेश होता है वे व्यवहार के प्रतिमानों

अथवा आदर्श प्रमाणा के रूप में विचारणीय होते हैं। इसका यह अर्थ है कि समूह के मध्यम संस्कृति को व्यवहार का वह आदर्श प्रतिमान मानने हैं जिसमें अनुरूप ही उन्हें आचरण करना चाहिए। यद्यपि आदर्श और व्यवहार में बहुत बाधा अन्तर्गता है फिर भी आदर्श की कल्पना तो सामान्यतः रहती ही है। सभी वैयक्तिक आदर्शों संस्कृति में नहीं शामिल की जा सकती क्योंकि उनमें सामाजिक गुण का अभाव है। सामान के मध्यम यह भी साधारण रूप से जानते रहते हैं कि संस्कृति—आदर्श व्यवहारों या आदर्शों का समाज का अनुमादन है और उनका अग्रहणना हात ही के भ्रमना या दण्ड के भागी होते।

(५) संस्कृति हमारे कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति करता है—हम पहले यह चुने हैं कि संस्कृति हमारी आंतरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है जो दोना प्रकार की—सामाजिक और जैविक होता है। ये आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं जिनकी पूर्ति किसी अन्य उद्देश्य से नहीं बरन् उन्हीं के लिए की जाती है। संस्कृति का हर उपकरण और प्रतिमान किसी न किसी आन्तरिक या सामाजिक रूप में उपकरण प्रेरणा या इच्छा की पूर्ति करता है। हम जानते हैं कि मनुष्य की बड़ी आदर्शों बनी रहती हैं जो उसकी किसी सचन इच्छा की पूर्ति करती हैं। संस्कृति में सामूहिक आदर्शों का समावेश होता है। ये सामूहिक आदर्शों भी तभी तक कायम रहती हैं जब तक वे समूह की आवश्यकताओं का पूरा करती हैं। अगर सामाजिक मनाप प्राप्त करने में कोई प्रतिमान या पूर्ण संस्कृति निरन्तर अग्रगण्य रहती है तो वह निश्चय ही गायब हो जाती है। सामाजिक विरासत का अस्तित्व तभी मजबूत है जब वह आर्थिक या पूर्ण रूप से समूह की इच्छाओं की पूर्ति करने में समर्थ रहे।

(६) संस्कृति से उपयोगन करने की योग्यता होता है—इन विशेषता के दो अर्थ हैं—(१) संस्कृति में परिवर्तन होता रहता है और (२) उन परिवर्तन से संस्कृति का बाहर की शक्तियाँ से उपजाजन होता है। जगला या उत्तरी ध्रुव के निवासियों की प्रकृति की आवश्यकताओं के अनुरूप अपनी संस्कृति में परिवर्तन और संशोधन करने पड़ते हैं। यह संस्कृति के उपजाजन का सचन अर्थिक प्रकट रूप है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि भौगोलिक पर्यावरण संस्कृति के विकास को निर्धारित करता है। वास्तव में सभी संस्कृतियाँ एक समान विकसित नहीं होती हैं। जो संस्कृति जितनी ही अधिक विकसित होगी उनका ही अधिक वह प्राकृतिक पर्यावरण का प्रभाव से बाहर होगी। यदि कोई संस्कृति कम विकसित है तो अवश्य मजबूत प्राकृतिक पर्यावरण की आवश्यकताओं के अनुरूप उप-योजन करना पड़ेगा। दूसरे संस्कृति में स्वयं आन्तरिक उप-योजन ही रहना आवश्यक है। संस्कृति गत्यात्मक है। अपने विकास से उसके विभिन्न भागों या तत्वों का भी विकास होता है। यदि इसके कुछ पहलुओं में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है तो अन्य भागों या पहलुओं में भी समकक्ष परिवर्तन अनिवार्य होता जाता है। संस्कृति की इस विशेषता

का सीधा परिणाम यह होता है कि मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों में सबसे अधिक उपयोजनशील है।

(७) सस्कृति में एकभूत होने का गुण है—सस्कृति के अनेक भाग या पहलू होते हैं। ये सब एक दूसरे से असंबद्ध और अयवस्थित नहीं होते। वरन् सभी भाग परस्पर सम्बद्ध होते हैं। वे अत आश्रित भी होते हैं और सब मिल कर एक योग्य और परस्पर सहयोगी व्यवस्था में बद्ध होते हैं। सस्कृति मरुम है और यह एक सगठन है। जो भी नया तत्व सस्कृति में सम्मिलित होता है वह भी ऐसे नहीं जैसे कि बर्फ के गले में तिनके बकड इत्यादि अनन्य तत्व जा परस्पर त्रिकुल असंबद्ध हैं। सस्कृति के सभी भागों अथवा निर्मायक अंगों में चाह वे नये हों अथवा पुगने, सयोग या हृदता की ओर जाने की प्रवृत्ति होती है जो सस्कृति के विविध भागों का मिलाकर एक बहुत कुछ एकभूत सम्पूर्ण बना देती है। एक मरुम और पृथक् सस्कृति में एक भूत होने की विशेषता बड़ी स्पष्ट होती है क्योंकि इसमें बाहरी तत्व नहीं होते और निर्मायक तत्व शीघ्र परिवर्तित भी नहीं होते। हा अधिः विक्रमित और शीघ्रता से परिवर्तित होने वाली सस्कृतियों में बाहरी तत्व भी बहुत अधिक हात हैं और उनके निर्मायक तत्व भी अति शीघ्रता से बदलते हैं। हमारी आधुनिक सस्कृतियाँ ऐसी ही हैं। ये अत निभर और विजातीय होती हैं लेकिन इनकी निरन्तर शीघ्र परिवर्तन की विधा में भी एकभूतता की प्रवृत्ति इनमें अवश्य दिखाई देगी। यदि इस के द्रगामी शक्ति का यूनतम अंश भी किसी सस्कृति में न हो तो उसका अस्तित्व असम्भव है।

इन सब विशेषताओं के समझ लेने पर स्पष्ट हो जाता है कि सस्कृति कोई दवी शक्ति नहीं है जो मनुष्यों से जो इस धारण करते हैं स्वतंत्र हो। यह तो मनुष्य की मृष्टि है और इसका निरन्तर अस्तित्व (जीवन) मनुष्यों द्वारा अतीत की विरासत के प्रतीकात्मक संचार पर निभर है। सस्कृति वस्तुतः मनुष्य की एक उपज है लेकिन इसमें प्राण नहीं होते।

सामान्य और विशिष्ट सस्कृति

ससार में अनेक समाज हैं। इनमें प्रत्येक की अपनी सस्कृति हाती है। चूंकि एक समाज की सस्कृति उसके जीवन का एक निगला ढग है इसलिए विभिन्न समाजों की सस्कृतियों में भेद होता है। अमरीका समाज की सस्कृति भारत की सस्कृति से भिन्न है। हाँ इन दोनों और अन्य सस्कृति के सावभौमिक तत्व त्रिकुल समान हैं। उनके व्योरो में अंतर है। एक राष्ट्र की सस्कृति जैसे भारतीय सस्कृति, में अनेक उप-सस्कृतियाँ होती हैं। ये समुदाय, शह या नगरीय और ग्रामीण आधार पर होती हैं। हिंदू और मुसलमान दो समुदाय हैं। इनकी सस्कृतियाँ भिन्न भिन्न हैं। इसी प्रकार भारत के विभिन्न राज्यों की सस्कृतियाँ (शुद्ध प्रयोग उपसस्कृतियाँ हैं) एक दूसरे से बहुत कुछ पृथक् हैं। हमारे देश के ग्रामीण और नगरीय समुदायों की सस्कृति में भी अंतर है। इनके अनिर्दिष्ट बड़े-बड़े नगरों में कई प्रकार की उप

संस्कृतियाँ मिलती हैं। घनिक-वापारी वर्गों के मुहल्ला में जो उप-संस्कृति मिलती है वह उत्तम पृथक् है जो प्रशासकीय कर्मचारियों की नियोजित बस्तियों या मिल मजदूरों की गली बस्तियों में मिलती है।

किंतु समाज की विभिन्न संस्कृतियाँ या राष्ट्र या एक नगर की उप-संस्कृतियाँ हर बात में एक दूसरे से विल्कुल भिन्न नहीं हैं। पर्याप्त वातावरण या पहलुओं में हृद्य भेद होना हुए भी उनमें सबसे प्रधान तत्व सांस्कृतिक रूप से विद्यमान है। जैसे परिवार, राज्य या धर्म तो सबमें पाया जाता है। हाँ इनके रूपा में अंतर कम या अधिक हो सकता है। आगे हम संस्कृतियों की समरूपता और अनन्यरूपता पर कुछ विस्तार से विचार करेंगे।

जब हम किसी विशिष्ट संस्कृतियाँ रामान, अंग्रेजों द्विड मिछा, भारतीय या सिंधानी का जिक्र करते हैं तो विशिष्ट संस्कृतियाँ सगंभीराय हाता है। लकिन जब विशिष्ट संस्कृतियाँ का नाम न लेकर 'मानव संस्कृति का वरुण' या विश्वपरण करते हैं तो सामान्य संस्कृति स अभिप्राय हाता है। सामान्य संस्कृति विशिष्ट दश काल या परिस्थिति से बधी नहीं होनी है।

एक विशिष्ट संस्कृति अमुक समाज या राष्ट्र की सामाजिक विरासत हाती है। वह हमरी संस्कृतियाँ स भिन्न और अद्वितीय होती है। सामान्य संस्कृति सम्पूर्ण मनुष्य समाज की सामाजिक विरासत है। वाम्त्व में, समाजशास्त्र की अध्ययन सुविधा क लिए दन दो धारणाओं का प्रयोग किया गया है। मद्धातित्व अध्ययन क निय एसा करना निरान आवश्यक है। सामान्यान्त्री दोना प्रकार की संस्कृतियाँ का भावार्थक अध्ययन करता है और जहा कहा किंसा विशिष्ट समाज का समभन की आवश्यकता हाता है वन् उसकी संस्कृति का व्याखार अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है। मनुष्य और उसके समाज को समभने के लिए दोना प्रकार का अध्ययन अनिवार्य है।

सांस्कृतिक समरूपता और अनेकरूपता

जिन लागों में संसार की यात्रा का है वे बहूत हैं कि सभा समाज एक दूसरे से भिन्न है। भारत में ही बंगाल तथा पंजाब क त्रिवासियाँ में खान-पोन, बेश भूया, रहन-सहन क ढंगा और प्रथाओं परम्पराओं एक संस्थाओं में इतना अन्तर है कि दोना प्रस्था क लागों को हम सरलता से भिन्न कह सकते हैं। ये दोना प्रदेश ता भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरे में पृथक् हैं। ये लाग भी जो एक ही भौगोलिक क्षेत्र में रहते हैं उनमें भी विभिन्न सांस्कृतिक प्रतिमान पाये जाते हैं।

लकिन जब हम लाग उत्तर प्रदेश, राजस्थान या मध्य प्रदेश क त्रिवासी बंगालियाँ या आसामियाँ के बीच में जाकर रहते हैं उन लागों क भिन्न जीवन ढंग में ध्यान को ध्यानवा पाते हैं। कभी-कभी हम उन लागों से मिलन जुवन का प्रयास भी करते हैं और कई बार इसमें इतना सफल होते हैं कि हम कह सकते हैं कि उनको

संस्कृति की हमने समझ लिया है। पर वास्तविकता यह है कि बाहरी लाग दूसरों की संस्कृति का अन्तर्लापन कर उसका बलवर पूरी तरीके से नहीं जान पाता। उन्हें उस संस्कृति के अल्पतम अवलाकन का ही अवसर मिलता है। इसका कारण यह है कि उनकी निजी भाषा है और स्वयं के आदर्श विश्वास और पूज्य निरूपण से भिन्न होने हैं। हमारे देश में आने वाले पर्यटक जब यहाँ से वापस लौट जाते हैं तो हमारी संस्कृति की वे जो धारणा प्रदान करते हैं वह बहुत कुछ छिछरी और बक या अशुद्ध हो सकती है। दूसरे की संस्कृति को हम १० साल वहाँ रह कर भी पूरातया नहीं पहचान सकते। दूसरे की संस्कृति का समझ जानने का शायद एकमात्र उपाय यह है कि आप उसी की संस्कृति का अपना न। संस्कृतियों का भली भाँति समझना और फिर उनके बीच में तुलना करना आवश्यक है। परन्तु यह एक साम्य ज्ञान का आधार पर जाना चाहिए जो गम्भीर गवेषणा आलोचना और अत्यन्त वैज्ञानिक विधियाँ द्वारा एकत्र किया गया हो। संस्कृतियों के बारे में सङ्गृहित ज्ञान का आधार पर कुछ कहना खतरनाक है।

संस्कृतियों की तुलना

विभिन्न संस्कृतियों की परस्पर तुलना विज्ञान के हित में है। उससे साक्षात् धारणियों तथा विचित्रता की खोज करने काता द्वारा गठी हुई अजीब गरीब कहानियों का खोखलापन प्रकट हो गया है। विज्ञान ने संस्कृतियों के बारे में अथवा ज्ञान प्रस्तुत करने में बहुत उन्नति करनी है। संस्कृतियों की तुलना करने में उनकी अनैक्यता का सही निरूपण होने की आशा है। इससे तीन केन्द्रीय प्रश्नों का उत्तर सम्भजन मिल सकता है

- (१) संस्कृतियों में अनेकरूपता कितनी घनी है ?
- (२) इस अनेकरूपता का क्या कारण है ? और
- (३) क्या उस अनेकरूपता में भी संस्कृतियों में कुछ समरूपताय भी विद्यमान है ?

संस्कृतियों में अनेकरूपता

विवाह और परिवार

संसार के सभी समुदायों में स्त्री पुरुष रहते हैं। उनमें यौग-सम्बन्ध होता है और वे एक ही जिविक विद्या में संतान उत्पन्न करते हैं। विवाह और परिवार तो सभी समाजों में सामान्यतः पाये जाते हैं। पर इन आधारभूत समस्याओं में भी समान स्थान और परिस्थिति के अनुसार अनेकरूपताएँ पाई जाती हैं। परिवार की रचना को लाजिए। अमरीका, भारत में इगनण्ड आदि सम्य देशों में एक विवाह परिवार पाया जाता है। इनके विरुद्ध कुछ आधुनिक और आधुनिक समाजों में बहु विवाह प्रथा पाई जाती है। हिन्दुस्तान के मध्य प्रदेश के हिन्दुओं में बहुभार्या (बहुपत्नी) व्यवस्था

है। उत्तर प्रदेश के थारू लोग म बहुपति प्रथा पाई जाती है। प्रायः सभी विक्रमिण देशों में पितृसत्तात्मक परिवार प्रचलित है। किन्तु मलाबार के टोडा में मातृसत्तात्मक परिवार प्रचलित है। मुसलमानों और ईसाइयों में तलाक सामाजिक रूप से वैध है किन्तु हिन्दुओं में विवाह विच्छेद या तलाक को एसी कोई वधता प्राप्त नहीं थी। सामाजिक कानून बनाकर यहाँ भी अब विवाह विच्छेद वैध है। कुछ मानव शास्त्रियों ने कहा है कि कहीं-कहीं आदिवासियों में यून्य विवाह की रिवाज है। आजकल कुछ जगहों या गाँवों में सीमित यौन-सम्बन्ध स्वच्छिन्ना अवश्य पाई जाती है।

हमारे समाज में कुंवारी ब्याँस ही विवाह हो सकता है। विवाह के पूर्व जमका लज्जा का अपहरण या माँ बन जाना घोर पातक माना जाता है। किन्तु कुछ समाजों में जमी खो का गृहणी याम्य समझते हैं जाँक न। बच्चा की माँ बन गई है। सम्भवतः यह इसलिए करत हैं कि उसकी वध्याता (दास्यता) का पता चल जाँक। वर-वधू के चुनाव में अलग तरीक से विभिन्न प्रथायें प्रचलित हैं। पश्चिमी समाजों में विवाह के पूर्व काँटशिप की अवधि हानी है जिसमें भावी वर-वधू का यौन सम्बन्ध सम्भाँक कर लेना भी अवाँछित नहीं माना जाना। इसी तरह इन समाजों में विवाह के पूर्व की गलतियाँ काँ घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाना। भारत में यह मर मुन कर ही हम घृणा पान लगती है। यहाँ हिन्दू और मुसलमानों में विवाह के पूर्व कम में कम लडकी का पवित्र रहना अनिवार्य माना जाना है।

वर वधू के चुनाव का क्षेत्र भी विभिन्न समाजों में भिन्न हाना है। समूह के भीतर (अथवा उसी समूह के दूसरे सदस्य से) विवाह करना और समूह बाहर के विवाह प्रायः नभी सम्य समाजों में प्रचलित हैं किन्तु इन दोनों प्रकार की प्रथाओं का रूप भिन्न भिन्न है।

खान-पान

विभिन्न संस्कृतियों में खान पान के बारे में अत्यधिक विभिन्नता है। हिन्दुओं में शाकाहारी और माँसाहारी दोनों पाये जाने हैं। शाकाहारी अपने भोजन को साँधिक और भक्ष्य कहते हैं और माँस का रसाँसा का भोजन बताते हैं। माँसाहारी मान भक्षण नतिक ही नहीं पुण्य काय मानते हैं। आमाँस के कुछ लोग माँस, गिरगिट द्विपक्षता, चूँह आँसि का बडे शाक में खाते हैं। मुना है निवाँकुर कोचीन के बहून में व्यापारी अमरीका का ममुद्री मटवा का माँस बहा के निवासियों के भोजन के लिये भजन है। नका की वण जानि मडो लकडी का रुचि में खाती है। हिन्दू गाय का माँस खाना अध्यात्मिक और मुद्रर का माँस खाना उचित समझना है। मुसलमान ठीक इसका उल्नी धारणा रखते हैं। पश्चिमी अमजेनिया के इसाजपुरा कबीले के लोग दूँगर के सर के जुँरे भी खा जान हैं और वर और मधुमक्खी की इल्नी (larvae) का वर शौक में खान हैं पर इन्हें चिडिया के अंडों से घृणा है।

यह तो रहा भ्याँस्य का प्रश्न। खान पान का समय तरीके आँसि सभी तो विभिन्नता लिये दृश्य हुये हैं।

धार्मिक अनेक रूपता

धार्मिक विश्वासा और अभ्यासा में भी भिन्नता पाई जाती है। आदिवासी पहा, पारिव पत्थरों और जानवरों की पूजा करते हैं। इसकी टाटम पूजा कहते हैं। वही (हिन्दू म) पत्थर की मूर्तियों की पूजा होती है तो कहीं मुसलमानों और दसा इया में बुत परस्ती (मूर्तिपूजा) का नीचता और मूर्खता माना जाता है। अर्थात् हरेक संस्कृति में देवी-देवताओं का रूप और सरया भिन्न होने ह। भारत में सभी प्रकार के देवता हैं और अब शायद इनकी संख्या ६० करोड़ हो गई है। पूजा और आराधना के ढंग स्थान समय और उपकरण भी विभिन्न हैं। यदि ध्यान से देखा जाय तो धर्म में साधना नृत्य उपवास भोज देना दया के काम कूरता और नृसना मोनधारण और भयानक चीख पुकार यौन बहिष्कार और पवित्र वेश्यागमन, सटिप्पुना और अन्य धर्मों की घृणा आदि अनेक अनक रूपताएँ पाई जाती हैं। किन्हीं दो प्रधान धर्मों के विभिन्न पंथों की तुलना कर डालिये। यह कथन सत्य निकलेगा। मनुष्य ने अपनी आविष्कारक बुद्धि से अनेक धर्मों की स्थापना की है। इस बुद्धि की ताइ सीमा नहीं है। इसी प्रकार उसने विभिन्न विश्वासा और अभ्यासा की जो पारयाय की हैं उनका भी अंत नहीं है।

शासन प्रणालियाँ

हर देश में शासन-काय चलाने के लिए सरकार होती है। इसका निमाण देश में संविधान के आधार पर होता है। विभिन्न देशों के संविधानों में भेद होते हैं या तो आधारभूत या मामूली। शासन प्रणालियों में भेदों को जानने से पता चलता है कि आज भी ईरान इराक, सऊदी अरब कम्बोडिया जाडन, जापान और इंग्लैंड में वशातुगत राजतंत्र है। हाँ इस प्रकार के राजतंत्र में कहीं तो राजा सर्वोच्च है और कहीं उसका अधिकार विशेषाधिकार और शक्तियाँ बहुत सीमित हैं। जस ब्रिटन का राजा केवल नाममात्र का है जर्मनी या इरान का पूरा सत्ताधारी। जनतंत्रीय शासन तो आधुनिक युग में अमेरिका फ्रांस, भारत, चीन रूस आदि सभी सम्य और विकसित देशों में पाया जाता है। पर जनतंत्र भी कई प्रकार का होता है। फ्रांस अमेरिका भारत और चीन में गणतंत्र है। फ्रांस के जनतंत्र का अधिनायकवादी राज्य बड़ा जाता है। फिर प्रजातान्त्रिक सरकार कहीं धनधानों के हाथ में है कहीं किसानों और मजदूरों के प्रतिनिधियों के हाथ में। तीसरे प्रजातान्त्रिक सरकार सभारमक एकात्मक अथवा बहुजनीय हों सकती हैं। ब्रिटन का प्रजातंत्र दूसरे प्रकार का है। भाग्य और अमेरिका पहले प्रकार का और स्विटजरलैंड तीसरे प्रकार का। कहने का अभिप्राय यह है कि विभिन्न देशों की शासन व्यवस्था, उसका विभिन्न अंगों का अधिकार क्षेत्र और पारस्परिक सम्बन्ध भिन्न भिन्न हैं।

आर्थिक प्रणाली

सभी संस्कृतियों में लागू आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये रोजगार, उद्योग

संस्कृति और सम्यता

अथवा ब्रुपि या पशे करत हैं । परन्तु इन रोजगारा आदि की संख्या और रूप सभी संस्कृतिना मे समान नहीं है । आर्थिक विचार और मूल्यों मे भी भिन्नता पाई जाती है । अमरीकी समाज बहुत अधिक प्रतियोगी है । वह सम्पदा के संग्रह मे धार तल्लीन है । यद्यपि अमरीके के अथ देश भी अपनी निघनता दूर करने के लिय प्रयत्नशील है किन्तु व अमरीका की भाति पाश्चिमा के पुजारो नहीं हैं । बहुत स समाजों मे पाई वना की अपेक्षा आध्यात्मिकता वा प्राथमिकता दी जाती है । कुछ संस्कृतिया एमो भी है जहा न लाग बडा परिधम करत है और न घन को बचान को महत्वपूर्ण मानत है । व केवल अपनी दैनिक आवश्यकताभा की सन्तुष्टि मे ही मुन्की रहत है । यदि किसी दिन अपना स अधिक काम लिया ता जब तक उस वठ के रा नहीं डालन के काम नही करत है ।

आधुनिक संस्कृति मे युवाभावोर्गे को सभी जगह समान महत्व नहीं प्राप्त है । हां, बहुत से एन दगा मे लाभ का काम करन का प्ररव स्वीकार लिया जाता है । पर अथ दगा मे काम के प्रेरन लाभ की अपथा सामाजिक प्रतिष्ठा पारिवारिक जिम्मेदारी अथवा बक्तिगत महत्वाकांक्षा होते हैं ।

इसी प्रकार हर संस्कृति मे धनवाना का ही शक्ति और प्रतिष्ठा का पात्र नहीं माना जाता । यद्यत स समाज मे निघन लोग का धनवाना मे कही अधिक प्रतिष्ठा मिलती है यदि व (निघन) सच्चरित्र हैं और समाज सेवा मे लग हैं । कुछ ऐसी भी संस्कृतिया हैं जहा यदि काइ व्यक्ति अपन विरादरा और पढामिया का साल भर में दो दावों मे तो उमे समाज मे सम्मान और प्रतिष्ठा मिलत है ।

समार मे अनेक आर्थिक प्रणालिया मिलती हैं । म्म और पूर्वी यूरोप क दगा मे साम्यवाद है । इंगलण्ड फ्रांस बनावडा और अमरीका मे पूनीवा है । भारत मे मिथिन अथ-प्रबन्धा है जो पूजावाद और साम्यवाद का सुगम मिलन माना जाता है । चीन मे साम्यवा की ओर बट रना है । जपनी इटनी स्वीडन और कुछ अथ दश अपन का समाजवादा कहत है । फिर समाजवाद मे भी अनेक विभिन्नताएँ हैं ।

निष्प मे यह कह सकत हैं कि भिन्न भिन्न समाज मे संस्कृति द्वारा अनुमानित और सुदृढ अम्याम विविधता भेदा और विषयवा स अगपूर है । इन इनता अधिक अनवरपता है फिर भा मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताए सभी जगह पूरी हानी रहती हैं । एक विविष्ट आवश्यकता की पूर्ति का परस्पर विरोधी अम्यासा या क्रियाया मे हानी है । ये अम्याम या ध्वस्तुर प्रनिमान निरन्तर परिवतनशील हान हैं । परन्तु उनको करन वाल उनक प्रति बफादार हात हैं । व उन्हें ही अपने लिय सताप जनक मानते हैं ।

संस्कृतिया की विविधता का समझ लन स हम एक मनस से बच जात है । फिर भी हम दूसरी संस्कृति के बारे मे धिदनी धारणाएँ नहीं बना सकते ।

क्या हर समाज के लिये उसके ढंग सर्वोत्तम होते हैं ?

बहुधा यह सुनने में आता है कि हर समाज के ढंग विद्यमान परिस्थितियों से उसके सर्वोत्तम समायाजन के छातन हैं। एक दृष्टिकोण से यह विचार महा है। समाज के ढंग परिवर्तित होते रहते हैं और इनका सम्बन्ध सदैव समाज के ज्ञान, मूल्य और विचारों से रहता है।

प्रत्येक समाज में कुछ ऐसी प्रथाएँ या अभ्यास होते हैं जो पश्चात् रश्मि दृष्टि से उसका नियम हानिकारक या अवाञ्छित होते हैं। पश्चिमी देशों में प्रेम करने की तरिका की साथ भ्रमण बहुत प्रचलित है। डाक्टरों ने इस रिवाज को स्वाम्भय के लिये हानिकारक बताया है। सुम्बन से रागा के कीटाणु दूसरे व्यक्ति में प्रवेश कर जाते हैं। परन्तु पाश्चात्य देशों ने इस तथ्य को जानते हुये भी अभी तक इस रिवाज का नहीं छोड़ा है। इससे हम अनिवाद्य परिणाम पर पहुँचते हैं कि हर समाज में कुछ प्रथाएँ या रिवाज हानिकारक होते हुये भी इसलिए प्रचलित रहते हैं कि लोग अभी तक बर्ना करते रहे हैं और उनके साथ सामाजिक मूल्यों का विचार भी सलग्न है। हर अभ्यास व्यवहार अथवा प्रथा जो हम बुरी लगे उसका विषयक अयनिराग नहीं करना चाहिए। यह करना गलत होगा। बल्कि प्रथाओं या अभ्यासों की उत्पत्ति हजारों वर्षों से जानने पर भी अचकार में आइ है। वे अवाञ्छित ज्ञान हुए भी समाज के लिए शायद सर्वोत्तम हैं। हाँ स्वयं समाज उनमें परिवर्तन या मशोधन कर लेता है। प्रत्येक अभ्यास या प्रथा आदि साधारणतया कम या अधिक रूप से मस्तिष्क के शरीर में एक तन्मयुक्त स्थान प्राप्त कर लेते हैं। उन्हें बदलने के लिये अन्य भागों में भी आवश्यक मशोधन करने पड़ेंगे।

संस्कृतियों में समरूपताएँ

आइए संस्कृतियों में कुछ समरूपताओं की खोज करें। क्लार्क विसलर ने आठों समाजों की संस्कृति के सावभौमिक उपकरणों का नौ सूचियों में विभाजन किया — (१) वाणी (२) पार्थिव उपकरण पत्थ और तन्मयधी प्रथाएँ (३) कलाएँ (४) पुराण और धार्मिक ज्ञान (५) धार्मिक अभ्यास (६) परिवार और सामाजिक व्यवस्था (७) संपत्ति (८) सरकार और (९) युद्ध।^१ विसलर कहता है कि यहाँ सावभौमिक प्रतिमान सभी संस्कृतियों में विद्यमान हैं। आधुनिक समाजों में भी ये प्रमुख प्रतिमान अवश्य मिलते हैं।

यदि 'सावभौमिक' शब्द का विलुप्त सीमित अर्थ लिया जाय तो ससार का संस्कृतियों में सावभौमिक अभ्यास कदापि नहीं मिल सकता। किन्तु फिर भी भिन्न संस्कृतियों के बीच अभ्यास और विचार समरूप हैं और उन्हें लगभग सावभौमिक कहा जा सकता है। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि कुछ प्राचीन समाजों में बड़ी विचित्र

प्रथाएँ प्रचलित थीं। कुल समाज में पिता और पुत्री का विवाह हो जाता था। मित्र में भाद्र वहिन का विवाह राजपराना में प्रचलित था। परन्तु आज समाज के किन्हीं समाज में भी भाद्र-वहिन या पिता पुत्री का विवाह नहीं होता। ये सम्बन्ध अबाधित ही नहीं स्वाम्य के लिए अनिवार्य और अनिवार्य मान जाते हैं। हर समाज में यह नियम है कि सहोदर नया निकट स्तर सम्बन्धों में परस्पर जान-भावना या विवाह नहीं हो सकता। इस प्रकार के नियमों का incest taboos कहा जाता है। ये नियमों का प्रायः भावभूमिक हैं। लेकिन हरि के निकट सम्बन्धों के बारे में विभिन्न समाजों में भिन्न भिन्न विचार हैं। हिन्दुओं में परस्पर विवाह नहीं हो सकता किन्तु मुसलमानों में यह सम्बन्ध बंध है। अमरीका के कुछ प्रदेशों में भी यह प्रचलित है। दूसरे निकट-भाद्र भूमिक अर्थों में एक विवाह की सम्प्रदाय है। समाज के सभी सम्बन्ध समाजों में इन प्रादुर्भाव माना जाता है। परन्तु इनमें बहुत से समाजों में बहुत विवाह के दाना प्रकार—बहुपत्नी और बहुपत्नी आज भी प्रचलित हैं। पर इनमें कोई संदेह नहीं कि सभी सम्बन्ध समाजों में एक विवाह को एक सामान्य नियम माना जाना लगा है।

इसी प्रकार विभिन्न सम्बन्धों के आर्थिक, आधुनिक, धार्मिक, नैतिक और सामाजिक कानून धर्मों में परिवर्तन और विवाह के समान ही निकट-भावभूमिक-ताएँ पायी जाती हैं। आर्थिक और राजस्व के क्षेत्र में आज जिन नैतिक और समाजिक विचारों का अभाव और अर्थों में प्रायः भावभूमिक रूप में पाये जाते हैं। इसी प्रकार में मानववाद का प्रकार हो रहा है और धार्मिक प्रसिद्धिप्राप्त और मन्त्रणा का ज्ञान हो रहा है।

सांस्कृतिक सम्बन्धों की एक सूची बनाना तो सम्भव न होगा पर यदि यह बन न सके तो सारयुक्त होगी। विभिन्न सम्बन्धों में जो सामान्य प्रतिमान दिखते हैं वे निम्नलिखित हैं¹

- (१) भाषा—विभिन्न भाषा का ज्ञान आवश्यक नहीं।
- (२) परिवार और विवाह।
- (३) आनुवंशिक नियमों का अभाव पर भी विभिन्न आनुवंशिक और विचारों के ज्ञान से विद्यमान भिन्न व्यवस्था प्रतिमान।
- (४) अर्थ व्यवस्था—समाज के समान सम्बन्धों में आर्थिक व्यवस्था के प्रतिमान।
- (५) ज्ञान व्यवस्था—आधुनिक ज्ञान, ज्ञान और वास्तविक अनुभवों में सुरक्षा के लिए सामाजिक व्यवस्था एक रास्ता प्रणाली होता है।
- (६) धर्म—हर समाज में पवित्र के बारे में विचार और व्यवहारों में प्रतिमान होते हैं। पूजा-पाठ के लिए, मन्दिर-मस्जिद, पुजारी और पुण्डित आदि सभी देना में पाये जाते हैं।

- (७) ज्ञान—हर देश में ज्ञान की व्यवस्था होती है जो पुराण एव वनानिक ज्ञान में विभक्त होती है ।
- (८) मनोरजन तथा क्रीडा के लिये सभ्यताओं और अभ्यास ।
- (९) कला—जीवन की परिस्थितियां से चित्रण तथा पत्थरों की मूर्ति करने के लिये अनुपयोगी क्रियाएँ हर समाज में होती हैं ।

सांस्कृतिक अनेकरूपता के कारण

आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी सभ्यताओं की अनेकरूपता के कारणों के बारे में मिस्रिया धारणाएँ प्रचलित हैं । बहुत से लोग भौगोलिक दशाओं अथवा नस्ल (प्रजाति) की भिन्नता से सांस्कृतिक अनेकरूपता की व्याख्या करते हैं । सातवें अध्याय में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि यद्यपि भौगोलिक दशाएँ, जलवायु प्राकृतिक साधन [प्रकाश आदि सभ्यता के कलेवर को कुछ अंशों में सीमित और निषिद्ध कर सकते हैं तथापि मनुष्य अपने ज्ञान और तंत्र से इन सीमाओं और निषेधों का बहुत अधिक अंश तक सीमित कर देता है । भूगोल सांस्कृतिक विविधता के उदय के लिये किसी प्रकार से भी एक कारण नहीं मानी जा सकती । यही बात नस्ल के सम्बन्ध पर प्रभाव के बारे में सत्य है । नीग्रो सभ्यता जादिया अथवा मंगोल हरक की सभ्यता में अनेक विविधताएँ पाई जाती हैं । परन्तु एक ही प्रकार के विशिष्ट सांस्कृतिक प्रतिमान को विभिन्न प्रजातियों में पाया जाता है । इसलिये सांस्कृतिक विविधता का जन्म देने वाले कारण प्राकृतिक दशाएँ अथवा नस्ल की श्रेष्ठता या हीनता नहीं हो सकते ।

वास्तविक कारण

- (१) मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं में भोजन यौन क्रिया और रक्षा, की पूर्ति के अनेक तरीके हैं इनमें से भिन्न भिन्न तरीके अपनाए जा सकते हैं ।
- (२) समाजों के भौगोलिक पर्यावरणों में भी भिन्नता है ।
- (३) मनुष्य समझ-समाधान करने वाला प्राणी है । इसलिए वह सदैव अपनी निरन्तर घटती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नए-नए तरीके आविष्कार करता रहता है । मनुष्य सभ्यता के निर्माण में निश्चय ही नहीं है जसा कि ऐतिहासिक घटना सिद्धांत स्वीकार करता है ।²

संस्कृति का सगठन और विकास

पारिव और अपारिव संस्कृति¹

मनुष्य न प्रकृति व साधना और शक्तिया का परिवर्तित और नियंत्रित करके जिन पदार्थों को उत्पन्न है उन्हें पारिव संस्कृति में समावेश किया जाता है। औजार, गहन मकान, परिवहन और संचार के साधन जम बाधुयान रत्न, माटर तार और रस्सा प्रेस आदि सभी पारिव संस्कृति के भाग हैं। आदि काल से ही मनुष्य इनके अभाव में अन्धकार में वृद्धि करता रहा है। यह एक वात ध्यान देने की है। इन पारिव पदार्थों का कोई उपयोग नहीं यदि इनके उपयोग की दरता मनुष्य में न हो। शारीरिक एवं मानसिक यावता तथा कुशलता, इन वस्तुओं की उपयोगिता का ज्ञान उनके निर्माण का ज्ञान—य भी संस्कृति का भाग है। मनुष्य की यह भी सामाजिक विरासत है। संस्कृति के इन भाग का अपारिव संस्कृति कहने हैं।

इसलिए संस्कृति का यदा प्रयाग वग है। पारिव संस्कृति में उन सभी औजारों का समावेश होता है जिन्हें मनुष्य अपने जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं का जम भागन वरुण और मकान की पूर्ति के लिए करता है। अपारिव संस्कृति में मनुष्य की आदता (जननीनिदा और रटियों) आस्थाओं और अनुभाषा का समावेश होता है जिनका विकास मनुष्य के सामूहिक रूप से रहने और काम करने में होता है। भाषा विवाह का रूप मरुदारों आर्थिक रचनाओं और सभ्यताओं घम शीला मगीन, गिष्ट मस्कार पर प्रदानों और दमी प्रकार के प्रतिष्ठित व्यवहारों का उपयोग या मनुष्य समाज में विकसित होते हैं अपारिव संस्कृति के भाग हैं।

पारिव संस्कृति का आधुनिक युग में अत्यधिक मजबूत हो रहा है। इसी कारण पारिव संस्कृति का आधुनिक सभ्यता कहा जाता है।

पारिव एवं अपारिव संस्कृति का उपयोग अतिरिक्त साधन-साधन होता है। माटर और उन चक्रान की कुशलता में ही माटर बन सकती है। एक व बिना दूसरे का उपयोग नहीं हो सकता। इसी तरह ज्ञान प्रणाली का चक्रान में पारिव और अपारिव संस्कृति का महत्त्व अटल है। किन्तु यह जानना अधिक उपयुक्त होगा कि अपारिव संस्कृति पारिव से पूर्वगामी है। विचार ज्ञान से ही वस्तु बनती है। गणन-सुध्या प्रामाद पारिव पन्था है। स्त्रिया का मताधिकार अपारिव अध्याय है। पर दाना हा एक दृष्टिकोण में समान हैं। दाना ही मनुष्य की समस्याओं का समाधान करने का प्रयाग की रूपज हैं। अर्थात् दानो मनुष्य के मस्तिक की उत्पत्ति है। किन्तु समाज का आस्तव के लिए पारिव वस्तुओं की अभाव उन्हें निर्माण के ज्ञान को

1 'सक लिए 'भौतिक' और 'समौतिक' संस्कृति का प्रयाग भी कई पुस्तकों में किया गया है।

2 T F Cuber op cit., p 119

वनाय रचना अधिक आवश्यक है।¹ आज यदि ससार की सारी पार्थिव वस्तुएँ नष्ट हो जाय तो मनुष्य अपने ज्ञान विज्ञान के सहारे उनका पुनर्निर्माण कर सकता है। किन्तु यदि उसका ज्ञान विज्ञान ही समूल नष्ट हो जाय तो पार्थिव सस्कृति समाज के लिए बन्दार (यथ) सिद्ध होगी।

सस्कृति एक सम्पूर्ण व्यवस्था होती है। इसका दोना पहलुया—पार्थिव और अपार्थिव में अतः सम्बन्ध और अतः निभरता हाती है। यदि एक में परिवर्तन हो ता शेष सस्कृति में भी तदनु रूप संशोधन या समायोजन करना अविकल आवश्यकता हो जाती है। एक भाग में विकास होने पर दूसरे का विकास भी अनिवार्य हो जाता है। दाना के विकास की गति में बहुत अधिक अंतर बहुत समय तक नहीं रह सकता।²

सस्कृति के विभिन्न भागों में अतः सम्बन्ध

पीछे बराबर यह बात दाहराई गई है कि सस्कृति एक जटिल सम्पूर्ण है। इस तो हमने इसके पार्थिव और अपार्थिव पहलुया की ओर अभी सकेन किया है परंतु स्मरण रहे कि सस्कृति के सबसे महत्वपूर्ण रूप मनुष्यों के मस्तिष्क में विद्यमान हैं। सस्कृति के इस सम्पूर्ण निमायक भाग की मक्षिप्त विवचना भी यहां कर लेना लाभदायक होगा। अपने विवेचन में हम सस्कृति के निर्मायक भागों की प्रकृति उनके परस्पर सम्बन्ध और फिर उनके तथा सम्पूर्ण सस्कृति के सम्बन्ध पर प्रकाश डालेंगे।

उपकरण

सस्कृति की सबसे छोटी इकाई उपकरण होता है। यह सबसे सरल तत्व है। सरल और अविचलित सस्कृतियों में इन उपकरणों की सरया बहुत थोड़ी हाती है। इससे विपरीत जटिल और उन्नत सस्कृतियों में इनकी सरया अगणित हो सकती है। सामाजिक विरामत की ज्या ज्या उन्नति हाती जाती है उसमें नये उपकरण जुड़ते जाते हैं। उपकरण पार्थिव और अपार्थिव दोनों प्रकार के होत हैं। एक कील जूत का पीला फुत्ताल सना भाषा वाली अखबार बटन और दुर्सी पार्थिव उपकरण के उपकरण हैं। इनमें प्रकार एक प्रया सस्कार, पथ या परम्परा रूढ़ि या प्रविधि रीति अपार्थिव उपकरण हैं। अधिकांश पार्थिव उपकरणों के साथ काइ न की प्रया प्रविधि या व्यवहार क्रम सलग्न हाता है। मनुष्य के जीवन यापन के लिए दाना प्रकार के उपकरण अनिवार्य हैं। काइ भी उपकरण स्वतंत्र नहीं रहता। दूसरे उपकरण के साथ रहकर ही वह सायक हाता है।

अतः यह स्पष्ट हो गया होगा कि किसी सस्कृति के लघुतम उप विभाजन को

1 La Perre *op cit* p 69

2 सस्कृति की वृद्धि और विनास में सांस्कृतिक विलम्ब को देखिये।

उपकरण कहते हैं अर्थात् उपकरण का पुन विभाजन असम्भव है। एक संस्कृति उपकरण के विशाल संचय, संगठन और एकीकरण से बनती है।

विभिन्न समाजों की संस्कृतियाँ जो भिन्नता दिखायी देती हैं वह उपकरणों की कम या अधिक संख्या तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध में विविधता के कारण हैं।

प्रत्येक उपकरण की उत्पत्ति और विकास का निजी इतिहास होता है। विशिष्ट उपकरण एक समाज या काल में उत्पन्न होकर दूसरे समाज या काल में चल जा सकते हैं अर्थात् उपकरण गतिशील होते हैं। वे संस्कृतियों में घुमाव करते हैं। कुछ उपकरण दूसरी संस्कृतियों में शीघ्रता और सरलता से अपना लिये जाते हैं और कुछ को अपनाएँ में विरोध और कठिनाई होती है। कई भी उपकरण सदैव अपने मौलिक रूप में नहीं स्थिर रहते। उसमें परिवर्तन प्रथम संशोधन होना स्वाभाविक है।

जटिल या संयुक्त

संस्कृति के विभिन्न उपकरण एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं रहते हैं और संस्कृति उपकरणों का समूह मात्र भी नहीं है। वस्तुतः यह अयो-यायिन सांस्कृतिक उपकरणों की एक व्यवस्था है। इस व्यवस्था की उत्पत्ति सांस्कृतिक संयुक्त कह जाते हैं। एक संयुक्त में कई उपकरण सम्मिलित रहते हैं जिनमें परस्पर कायात्मक या भाविक सम्बन्ध रहता है। विदाह एक सांस्कृतिक संयुक्त है जिसमें सत्कार द्वारा दावों प्रादि उपकरण हैं। इसी प्रकार हाकी का खेल एक संयुक्त है। इसके उपकरण हैं गेंद, एक विशेष प्रकार का मूँड़ एक विशेष नाप का मदान गोल के पम्पे और खेल का एक विशिष्ट टग प्रादि। वही प्रकार घम राजनीति या आर्थिक क्षेत्र में सांस्कृतिक संयुक्त होते हैं। जब किसी प्रथम सांस्कृतिक उपकरण से अनेक अन्य उपकरण आकर सम्बन्धित हो जाते हैं तो एक सांस्कृतिक संयुक्त बन जाता है। संयुक्त में उपकरणों का पारस्परिक सम्बन्ध संस्कृति के प्रमाण भागों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध की अपेक्षा निकटतर होता है।¹

सांस्कृतिक उपकरणों और संयुक्तों में भेद करना बड़े बड़े कठिन हो जाता है किन्तु यह कठिनाई सरलता में दूर हो जायगी यदि पाठक यह याद रखें कि यन्त्र संस्कृति के विचारार्थीन भाग का उपविभाजन हो सके तो वह संयुक्त है और यन्त्र नहीं तो उपकरण। यन्त्र उपकरण का फिर विभाजन किया जायगा तो वह वस्तु अथवा वस्तुओं में टूट जायगा।

उपकरण और संयुक्त में परस्पर जो सम्बन्ध है वही ही सम्बन्ध संयुक्त और सम्पूर्ण संस्कृति में होता है। संस्कृति संयुक्त का सरल रूप है। संयुक्त का संस्कृति से पृथक् या स्वतंत्र रह कर कोई अर्थ नहीं होता है। विभिन्न संयुक्तों में अन्त सम्बन्ध

और अत निभरता हानी है। सयुक्तों के सामञ्जस्य (harmony) से ही सस्कृति बनती है।

प्रतिमान

सस्कृति के भिन्न भिन्न भागों के बीच अत सम्बन्ध से जो व्यवस्था बनता है उस सास्कृतिक प्रतिमान कहते हैं।¹ सस्कृति के हरेक प्रधान भाग को एक प्रतिमान कहा जाता है जैसे धार्मिक प्रतिमान परिवार का प्रतिमान अथवा आर्थिक प्रतिमान। यह प्रतिमान शास्त्र का अत्यधिक प्रचलित अर्थ है। सास्कृतिक प्रतिमान में सम्मिलित सभी उपकरणों और सयुक्तों में परस्पर कार्यात्मक सम्बन्ध होता है और वे सभी विना कर्त्रीय स्वायत्त या हिन से सलग्न होते हैं। प्रतिमान की साधकता तभी तक है जब वह इस कर्त्रीय हिन से सम्बद्ध रहे या उसकी पूर्ति का सफल उपाय रहे।

हर सस्कृति या उपसस्कृति में प्रतिमानों की एक व्यवस्था होती है। यह व्यक्तियों के व्यवहार का प्रभावित करता है और उनमें 'युनतम' एकरूपता को निश्चित कर देती है। प्रतिमानों के आधार में अनुमानों होते हैं जो जननीयता, रीति या सामूहिक अपेक्षाओं के रूप में निष्पन्न होते हैं। मनुष्यों के किसी कर्त्रीय हिन से सम्बद्ध 'यवहार' में अचेतन अथवा चेतन नियमितता का ही दूसरा नाम प्रतिमान है।

यह प्रतिमान अमूर्त होते हैं और किसी समूह के सदस्यों के मस्तिष्कों अथवा आत्मा की रचना में रहते हैं। 'यक्ति' जब समूह के सामान्य प्रेरणा में नियमित आचरण करने लगते हैं तो प्रतिमान दृश्य होते हैं। परन्तु यह दृश्यता भिन्न भिन्न अर्थों का हानी है। किसी क्षेत्र में बहुत बड़े प्रतिमान होते हैं और किसी में कम कठोर या बहुत शिथिल।

सास्कृतिक प्रतिमानों का वाय मनुष्यों के व्यवहारों अथवा पारस्परिक सम्बन्धों का प्रमाणीकरण करना है। यह प्रमाणीकरण कम या अधिक अर्थों में और औपचारिक अथवा अनौपचारिक होता है। आदिम समाजों में 'यवहारों' का प्रमाणित करने में मौखिक आशा या दृष्टि अथवा प्रत्यक्ष उदाहरण काफी हान हैं। आधुनिक विज्ञान आटनिटीन (mass) समाजों (अमरीका रूस) में 'यवहारों' में नियमितता मचार के उच्च साधनों के द्वारा होती है। यहाँ प्रतिमान बहुत जटिल और विजातीय हान हैं।

इन प्रतिमानों का विकास दोषा अनियोजित और सुनियोजित ढंग से होता है। समाजवादी (साम्यवादी) समाजों में सास्कृतिक प्रतिमानों की विशेषता यह है कि वे मूर्त के लोको के आचरण और विश्वास आदि में कठोर एकरूपता लाने में

1 cf Ruth Benedict *Patterns of Culture* (London 1935)

2 Shapel ss having no distinct shape

मर्यादा होते हैं। चाहे जिस दृष्टिकोण से विचारें एक प्रतिमान बड़ी संस्कृति की काय रत इकाई है।¹

प्रतिमान का संस्कृति में केंद्रीय महत्त्व है। एक विशिष्ट समाज की संपूर्ण संस्कृति के समस्त प्रतिमान को सामाजिक संस्कृतिक प्रतिमान या राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रतिमान कह सकते हैं यदि वह समाज एक राष्ट्र भी है। हर राष्ट्रीय संस्कृति का प्रतिमान अद्वितीय होता है। जर्म, भारतीय संस्कृति में तत्वात् एक संगठन का समावेश है जो दूसरे राष्ट्रों की संस्कृति के तत्वात् संगठन में तुलना करने पर निगता प्रतीत होगा। मानव कल्याण के लिए कौनसा राष्ट्रीय संस्कृति प्रतिमान अधिक वांछित है यह नहीं कहा जा सकता।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रतिमान में समाविष्ट वैयक्तिक प्रतिमानों में एक निश्चित समावेश होता है। इनमें ऐतिहासिक निरंतरता होती है।

संस्कृति का विभिन्न भागों का परस्पर सम्बन्ध है। उनमें प्रत्येक काय और अस्तित्व दूसरे के काय और अस्तित्व से स्वतंत्र नहीं है। जिसे हम संस्कृति कहते हैं वह उपकरण, समुदाय और प्रतिमानों का एकता है। इन सबके सम्बन्ध तथा अन्तर्भावना में एक विशाल संगठन बनता है। इसे ही संस्कृति कहते हैं। संस्कृतियों में अथवा एक-दूसरे में अन्तर्भावना होती है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हर संस्कृति का प्रत्येक अंग पर-उपकरण समुदाय अथवा प्रतिमानों का समान भाग और निश्चित रूप से एक-दूसरे में होता है। वास्तव में इन व्यवस्थाओं में कई अन्तर्भावनाएँ तब पड़े रहती हैं और पूरा एकीकरण एक आदर्श है यथायथ नहीं। इस आदर्श की प्राप्ति की ओर प्रवृत्ति अवश्य होती है। सामाजिक रूप से हर संस्कृति में अन्तर्भावना आवश्यकता से ता अधिक एकीकरण होता है।²

विशिष्ट संस्कृति की सामाजिक प्रवृत्ति

एक विशिष्ट संस्कृति की वैयक्तिकता दर्शाने वाले उनके मुख्य उपकरणों में उनकी सामाजिक प्रवृत्ति मायम होती है। अर्थात् एक संस्कृति की सामाजिक प्रवृत्ति उन मुख्य उपकरणों में प्रकट होती है जो उनकी (संस्कृति) की वैयक्तिकता के चेतक हैं। उदाहरण के लिए अमरीकी संस्कृति की मुख्य विशेषताएँ हैं अति उन्नत प्रौद्योगिकी वित्तीय सफलता का सर्वश्रेष्ठ महत्त्व उच्च जीवन स्तर, बगदनी जीवन शक्ति आनन्दवादी दान जनता में विश्वास और नावर्तमानिक निराल्प और अन्तर्भावना। भारतीय संस्कृति का भी अपना विशिष्ट स्वभाव है। इसकी सामाजिक प्रवृत्ति की धारणा ये विशेषताएँ हैं —

१. उन प्रौद्योगिकी, आध्यात्मिक नीतिक सफलता का सर्वश्रेष्ठ महत्त्व

1 Merrill & Eldredge *op cit* p 52

2. cf For details Merrill & Eldredge *op cit* p 54

निम्न जीवन स्तर उच्च विचार और सरल जीवन, शिथिल जीवन आत्मात्मवादी दशन, जनतन्त्र में विश्वास होने पर भी वशानुगत विपमता अथवा दबी कृपा पर असीम श्रद्धा, समवयात्मकता धार्मिक उदारता और अतिविधित्ता में भी एकता। इसी प्रकार हर सस्कृति की सामान्य प्रकृति दूसरी की सामान्य प्रकृति से भिन्न होती है। परंतु इस भेद का कुछ शब्द समूह से दर्शाता नितान्त कठिन कार्य है।¹ सांस्कृतिक प्रतिमान और सस्कृति की सामान्य प्रकृति में बहुत भेद है। प्रथम में सांपूर्ण सस्कृति का एक चित्र उगम्वित हो जाता है।

सस्कृति की उन्नति

यह हमारा दुभाग्य है कि अभी तक विज्ञान ने यह निश्चित रूप से हम नहीं बताया है कि सस्कृति की उत्पत्ति कहाँ कब और कैसे हुई? फिर भी विज्ञान ने प्रारम्भिक सस्कृति से उपलब्ध कुछ ऐसी साध्य हमारे सामने प्रस्तुत किये हैं जिनसे प्रागैतिहासिक जातियों की जननीतियों आदि से सम्बन्धित हम कुछ निष्कर्षों पर पहुँच जाते हैं। हाँ इन निष्कर्षों तक पहुँचने में हम अत्यधिक सावधानी (caution) रखना पड़ेगा।

पुरातत्वशास्त्रज्ञ कहते हैं कि मानव सस्कृति के आदि चिह्न लगभग दस लाख वर्षों इसा पूर्व प्रकट हुए थे। इस आदि सस्कृति के उपलब्ध औजार वास्तव में विल्कुल भद्दे हैं। इनमें से कुछ कटे हुए पत्थर के औजार हैं जो शायद लकड़ी काटने या चौरने के लिये उपयोग किये जाते हैं। इसके पश्चात् इस बड़ी अवधि (१० लाख वर्षों इसा पूर्व से लेकर आज तक) के आधे भाग तक मनुष्य इन औजारों में बहुत अधिक सशोधन न कर पाया। जो भी परिवर्तन हुआ होगा उसके बारे में साक्ष्यों के अभाव में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

लगभग १ लाख वर्षों इसा पूर्व पत्थर के औजारों के अनिश्चित हड्डियों के भी कुछ औजार बने। इनमें कुछ शक्ति मिलती है जो लगातार बढ़ती ही गई। एक बात मार्को की है कि इन औजारों में सजावट के लिये कुछ खुदाई भी है। कुछ अन्य साम्य भी मिलते हैं जो इस समय का पार्थिव सस्कृति में अनुपयोगितावादी कारीगरी और अनिश्चित का सक्त देते हैं।

७५ हजार से लेकर १४ हजार वर्षों इसा पूर्व की अवधि में सस्कृतियों में अधिक तीव्रता से उन्नति हुई प्रगीत होती है। इस अवधि के अन्त तक लागो में मृतका का दफनान की रिवाज चल पड़ी थी। खाहो के अन्दर लोग रहने थे और पत्थर और हड्डियों के औजारों के अनिश्चित खेती के अन्त भी बनाने लगे थे। इस युग में कुछ ऐसा मूर्तिप्रा भी बनी जो आज पहचानी जा सकती है। दस हजार वर्षों इसा पूर्व

तक मानव संस्कृति में अनेक पार्थिव और अपार्थिव तत्व, जैसे पालतू कृषि-जानवर और मिट्टी के बरतन आदि मिलन लग भ ।

भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार मानव संस्कृतियों के विकास की निम्नलिखित अवस्थाएँ र्हा हैं —

1	Pleistocene or Great Ice Age	10 00 000 B C
2	Paleolithic Period	8 00 000 to
	Lower Paleolithic Age	6 00 000 B C
	Upper Paleolithic Age	6 00 000 to
		25 000 B C
		25 000 to
		8 000 B C
3	Mesolithic Period	8,000 to
		3 000 B C
4	Neolithic Period	3 000 to
		1800 B C

और नव-पाषाण युग (Neolithic Age) से आधुनिक युग (Modern Age) तक की अवधि का सामूहिक विकास की दृष्टि में इस प्रकार विभाजित किया गया है —

- (अ) नवपाषाण युग (Neolithic Age)
- (आ) पाषाण युग (Stone Age)
- (इ) कांस्य युग (Bronze Age)
- (ई) लौह युग (Iron Age)
- (उ) कोयला युग (Coal Age)
- (ऊ) परमाणु युग (Atomic Age)

हम लिखित इतिहास इन्सा से क्वन ५००० वष पूव तक ही उपलब्ध है । एमलिय इन्सा से १००० वष पूव की अवधि का पूव-इतिहासिक काल कहा जाता है । प्राचीन सभ्यताएँ (संस्कृतियाँ) जैसे भारत, मिस्र, चीन, रोम, वदीलन, असीरिया, यूनान आदि का काल भी र्मा से ५००० वष पूव तक का ही है । कहा जाता है कि लिखित इतिहास और सभ्यता का जन्म साथ-साथ हुआ । अतएव सभ्यता की उत्पत्ति आज से लगभग ७००० वष पूव मानी जा सकती है । आधुनिक सभ्यता प्राचीन सभ्यताएँ की उत्तराधिकारिणी है ।

इस काल से हम दो निष्पन्न निकाल सकते हैं कि (१) आज से ३०० वष पूव तक संस्कृतियों में परिवर्तन की गति बहुत धीमी रही है और (२) पारश्वात्य

सभ्यता का जन्म प्रधान सस्कृतियां में सब से बाल में हुआ है। अरब और अफ्रीका की एक भूमध्यसागरीय और प्राच्य (oriental) सस्कृतियां जब बहुत अधिक उन्नत हो चुकी थी तब तक यूरोप के लोग आदिम और असभ्य अवस्था में ही थे। जब यूरोप के निवासी रीढ़ा की खात पहनते थे कच्चा गांठ साते थे और भट्टि (crude) नोपडा में रहते थे ता उस समय चीन भारत और निम्न आदि के नागरिक विशाल प्रासादों में रहते थे और भौतिक जीवन में ही नहीं अधौतिक (आध्यात्मिक) जीवन में बहुत अधिक उन्नत थे।

सांस्कृतिक उन्नति का स्वभाव

मानवशास्त्रियों ने सस्कृति की उन्नति के इतिहास का अध्ययन कर निम्न लिखित महत्वपूर्ण तथ्य संकलित किए हैं —

(१) कि सस्कृति का इतिहास एक निरंतर विधा (continuous process) है जिसमें अनक उत्थान-पतन (vicissitudes) आते हैं। परंतु फिर भी यह एक क्रमिक उन्नति (progression) है जो प्रागैतिहासिक घुघल युग में जाकर समाप्त होता है।

(२) कि सस्कृति मनुष्य ने स्वयं निर्मित की है और वही उसकी क्षमताओं और सामाग्रियों के लिये उत्तरदायी है।

(३) कि सस्कृति में शाश्वतकाल से परिवर्तन होते रहे हैं।

(४) कि सस्कृति के निर्माण और संचार में सभी नस्ला (human races) का योगदान (contribution) है। हा, आदि-सभ्यता में भूमध्यसागरीय काकेशियन और नोड्रोयड नस्ला के लोग द्वारा आविष्कृत तत्व सम्मिलित थे और

(५) कि सस्कृति के अधिकांश भागों की वृद्धि स्वतंत्र आविष्कार वृद्धि के प्रयोग का परिणाम नहीं है इसमें अनेक महत्वपूर्ण भाग सामूहिक प्राप्ति (collective achievements) का परिणाम है।¹

सांस्कृतिक वृद्धि और परिवर्तन

सस्कृति की वृद्धि (growth) उसके उपकरणों की वृद्धि पर निर्भर है। ज्यों ज्यों सस्कृति में नवान उपकरण आकर समात जायेंगे त्यों-त्यों वह बढ़ती जायगी। किन्तु सस्कृति की वृद्धि उपकरणों के साधारण संचय से नहीं होती। उसमें तो नुन नुए नये उपकरण सम्मिलित होते रहते हैं और नुन से प्राचीन उपकरण निकल कर पृथक् होत रहते हैं। अर्थात् सस्कृति में उपकरणों के नुने नुए भाग और परिवर्तन से वृद्धि जाना है। मनुष्य की सस्कृति की वृद्धि वस संचय से नहीं हुई जैसे कि वरफ का एक गेंद बनाकर यदि पहाड के नीचे लुडना दिया जाय तो लुडकते-लुडकते उसका

1 Merrill & Eldredge *op cit* p 20

आकार विगान हा जायगा । जम करीर-करीर हर चीज लिपट जायगी जो रम्य म पनेगी । इस प्रकार बुद्धि के साथ क्रमश उसकी गति म वृद्धि हानी जायगी । संस्कृति म निरन्तर नय उपकरण या सयुक्ता का समावेश हाता रहता है । जस-जमे मनुष्य को नय और अच्छे उपकरण प्रयवा मयुक्त मिलने जाते हैं वतुन स पुरान और कम लाभदायी उपकरण आदि संस्कृति स पृथक् होकर नष्ट होने जाते हैं । नष्ट हो जान वाले तत्वा को सच्चा प्रवेश करने वाले तत्वा को अपना बहुत कम होनी है ।¹

संस्कृति म वद्धि अटकलपञ्चू नहीं होनी । यह साधारण चुनी हुई होनी है । एक समाज के लागे के सामन अनक विकल्प अथवा चुनाव रहते हैं । अपनी तात्कालिक परिस्थिति या तथा मानसिक दशा के अनुरूप वे उनम से कुछ को चुन लेते हैं और शेष का छाड देते हैं । हमने सिद्ध होता है कि संस्कृति की वृद्धि का वही सिद्धान्त (principle) है जो अन्य वस्तुओं की वद्धि का ।

संस्कृति वद्धि के सिद्धान्त

संस्कृति की वद्धि के बारे मे विद्वानों ने दो प्रकार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है —

(१) कि प्रत्येक संस्कृति दूसरी संस्कृतिया सम्बन्ध है और उसका जम और विभ्रम विलुन स्वतंत्र रूप स हुए हैं ।

(२) कि संस्कृति के प्रमुख उपकरण एक ही स्थान पर पैदा हुए हैं और प्रसार क साथ व दूसरे उपकरण स मिल गए हैं जिनस नई संस्कृतिया का जम हुआ है ।

(१) पहले प्रकार की विचारधारा का संस्कृति के विकासवाद की भना दी जाती है । विकासवादी मानते हैं कि संस्कृति के उपकरण क पारम्परिक मन (मयांग) एव परिवर्धन को महत्व नहीं देना चाहिए । संस्कृतिया म जो समानता लिखाई रनी है व प्रधानत उनके समान विकास के कारण है । १९वीं शती के विकासवादी सिद्धान्त स प्रभावित मक्लेनान मॉरगन टायनर हैडन आदि मानवशास्त्रियों न संस्कृति के विकासवादी सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की । उनका विचार था कि मनुष्य का मत्र मानसिक विकास एव ही प्रकार स हुआ है । इमनिय विभिन्न संस्कृतिया में अनक सामान्य उपकरण उपलब्ध हाता स्वभाविक है । विभिन्न संस्कृतिया म एक ही प्रकार के उपकरण या मयाया म यदि कई विभिन्नताएँ हैं तो व परावरण का परिणाम है । मॉरगन ने लिखा है कि समार की समस्त जातियाँ जगलीपन बधरना और मयता का मोडिया मे क्रमश हाकर मुजरी हैं । सारी सामाजिक मस्याएँ मनुष्य क कुछ प्राथमिक विचारा क चीज से उत्पन्न हुई हैं । ज्या-ज्या मनुष्य न यात्रिक उन्नति की है उमन प्राकृतिक परावरण का नियंत्रित करने वाले अनक सफल माधन प्राप्त

कर लिए। यही तो उसकी सस्कृति के विकास की धुंजी रही है। भाषा ने मनुष्या को पशुओं से बहुत श्रेष्ठ स्थिति में ला खड़ा किया। भाषा के द्वारा वह अपने गान एवं अनुभव को दूसरे व्यक्तियों तथा भावी पीढ़ियों को दे सके। इस विद्या से ही उसकी सस्कृति का दिन-दिन विकास होता चला गया।¹

मर्फी लिखता है कि जिस प्रकार समार के सभी मनुष्यों की शारीरिक रचना समान है उसी प्रकार उनका मस्तिष्क और उसकी वायशीलता, शक्ति और विचार सभी स्थानों में एक जैसे ही हैं। इसी कारण दो भिन्न-भिन्न स्थानों पर उपकरणों की एक सी खोज सम्भव है। इसी कारण से विभिन्न जातियों में टोटम अंतर्जातीय विवाह तथा बहुत से अन्य रीति-रिवाज एक से मिलते हैं।²

फ्रीमन ने भी विकासवादी सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उसके लिये उमने विभिन्न जातियों में एक-सी राजनतिक सस्याओं की उपस्थिति के साक्ष्य एकत्र किए। उसका विचार था कि दूर-दूर के देशों में समान सस्याएँ केवल इसलिये उत्पन्न होती हैं कि उनको बनाने वाली परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न समय और स्थानों में समान रूप से उत्पन्न हुई हैं।³

उपरोक्त विवेचन से यह बात होता है कि विकासवादी सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक सस्कृति स्वतंत्र है। उसका अपना जीवन है और स्वतंत्र विकास हुआ है। यदि दो सस्कृतियों में कोई समानता दीखती है तो केवल इस कारण से कि उनका उत्पन्न करने वाली मनुष्य की बुद्धि और सामाजिक परिस्थितियाँ में साम्य है।

इस सिद्धान्त का अति सूक्ष्म विवेचन स्पेंगलर ने किया है। उसने ससार की समस्त सस्कृतियों को नौ वर्गों में विभाजित किया है। उसका मत है कि प्रत्येक सस्कृति का जीवन स्वतंत्र होता है और उसका विकास और पर्यावसान भी अपने स्वतंत्र रूप से। प्रत्येक सस्कृति में विशिष्ट लक्षण होते हैं और प्रत्येक का अपना भाग्य। प्रत्येक का जीवन काल लगभग १४०० से १६०० वर्ष होता है। प्रत्येक का जीवन बाल्य, यौवन, प्रौढ़ता और पतन अथवा मृत्यु की अवस्थाओं से इसी निश्चित क्रम से होकर गुजरता है। नई सस्कृति जन्म से पूर्व गभकाल में रहती है। इस काल की अवधि कभी-कभी कई शताब्दियों तक हो सकती है। किसी नई सस्कृति का अपनी भ्रान्तिक शक्तियों के कारण, याह्य शक्तियों के कारण नहीं जन्म होता है जैसे मानव शिशु का जन्म। प्रत्येक सस्कृति की अपनी आत्मा अपनी विचार शक्ति और अपनी भावना होती है जो उसके प्रत्येक उपकरण अथवा सश्लिष्ट उपकरणों को स्फुरित करते रहते हैं।⁴

1 H Morgan *Ancient Society* (1877)

2 Murphy *Primitive Man His Essential Quest* pp 89

3 Freeman *Comparative Politics* p 30

4 Herr Oswald Spengler *Decline of the West Introduction*

(२) संस्कृति का प्रसार सिद्धान्त—संस्कृति का विकासवादी सिद्धान्त को संस्कृति का तुलनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन से बड़ा धक्का लगा। जर्मन के मानव शास्त्री प्रेन्जर ने संस्कृति के प्रसार का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उसने इस बात पर विशेष जोर दिया कि विभिन्न स्थानों में एक ही प्रकार के सांस्कृतिक उपकरणों की उपस्थिति केवल यही बतलाती है कि वे किसी एक ही स्थान से उद्भूत होकर अथवा स्थानों में धीरे-धीरे फैल गए। डाक्टर एलिफ्ट सिमथ अपनी दो पुस्तकों में यह विचार प्रस्तुत करता है कि संसार की समस्त संस्कृतियों के आवश्यक उपकरण केवल मिस्र में ही पाए जाते हैं। जब उनका बाहर के स्थानों में प्रसार हुआ तो प्रसारण क्रिया में उनमें से कुछ का रूप बदलता गया। इस प्रक्रिया से नई संस्कृतियाँ बन सकीं किन्तु उन सबका उद्गम स्थल मिस्र ही था।

पेरी और रिक्स महोदय ने इसी प्रकार के विचार प्रस्तुत किये हैं। उनका मत है कि संसार के सांस्कृतिक क्षेत्रों में आज जो लोग पाये जाते हैं वे वही दूसरे भागों से आये हैं। इन क्षेत्रों की संस्कृति स्थानीय नहीं है बल्कि उसकी उत्पत्ति वहाँ हुई थी जहाँ से लाया गया है। भिन्न भिन्न भौगोलिक पर्यावरणों और मानवीय समूहों का सम्पर्क में आने से संस्कृतियाँ एक दूसरे की प्रभावित करती रहीं और नया-नया रूप धारण करती रही।

संक्षेप में प्रसार सिद्धान्त कहता है कि (१) मनुष्य संस्कृति का अन्वयक नहीं है। संस्कृति अनुकूल परिस्थितियों में ही जन्मती है। ये परिस्थितियाँ सभी स्थानों पर नहीं मिल सकती। (२) ऐसी अनुकूल परिस्थितियाँ प्रारम्भ में केवल मिस्र में विद्यमान थीं। उनमें संस्कृति का जन्म हुआ जिसका प्रसार अन्तर्गत भी हुआ गया। (३) इस प्रसार का कारण, सम्यता ज्यों-ज्यों केन्द्र में दूर गई त्यों-त्यों उसकी मौलिकता अशुद्ध होती गई। इसी कारण मिस्र से दूसरे देशों में गिरी हुई सम्यता मिलती थी।

सिद्धान्तों की आलोचना

विकासवादी और प्रसार सिद्धान्तों में से कोई एकले संस्कृति में वृद्धि और परिवर्तन की मतापेक्षित व्याख्या नहीं कर पाता। दोनों अपने दृष्टिकोण को अतिरिक्त करने के दावे हैं। फिर भी दोनों सिद्धान्तों में कुछ न कुछ सत्य है। संसार में प्रत्येक संस्कृति के समस्त उपकरणों का जन्म और विकास प्रसार से हुआ है यह कदापि नहीं स्वीकार किया जा सकता। प्रसारण का सिद्धान्त केवल कुछ जटिल महत्वपूर्ण उपकरणों के बारे में सत्य हो सकता है। छोटी छोटो चीजें या अन्वयण सभी देशों में होते रहे हैं। संस्कृति पर स्थानिक और भौगोलिक परिस्थितियों की छाप अवश्य लगी है।¹ प्राधुनिक संस्कृतिशास्त्र में हम उपकरणों का आदान-प्रदान भी मानना है और अपनी परिस्थितियों के अनुकूल विकसित होने की प्रवृत्ति भी। यह सभी

जानते हैं कि आन्तिकाल से व्यापार, युद्ध, विजय और गुलामी की प्रथा से विभिन्न स्थानों के लोगों में सम्पर्क होता रहा है। एक सस्कृति के उपकरण दूसरी के उपकरण से मिलते रहे हैं। अतएव, यह साचना कि समस्त सस्कृतियों का उद्गम स्थल मिस्र की नील नदी की घाटी है अत्यन्त बारी कल्पना है। प्रत्येक सस्कृति ने दूसरी सस्कृति से केवल उही उपकरणों को चुना है जो उसके लिए अधिक लाभदायक थे और जो उसकी सामान्य प्रवृत्ति से मेल खा सकते थे। यदि कहीं कोई उपकरण दूसरी सस्कृति पर बलपूर्वक लादे गये हैं तो या तो उन्हें कालांतर में निकाल फेंका गया है अथवा उनका रूप ही इस सस्कृति की आवश्यकतानुसार बदल गया है। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि प्रत्येक सस्कृति के समस्त उपकरणों में पूरे सामंजस्य या एकीकरण होता है। इस प्रकार की धारणा निराधार है। हर सस्कृति में कुछ तत्व या उपकरण ऐसे होते हैं जो उसके प्रमुख तत्वा से मेल नहीं खाते हैं। परन्तु यह विजातीयता बहुत अधिक नहीं होती।

उपसंहार—सस्कृति या सभ्यता की वृद्धि में आविष्कार या प्रसार किसका अधिक महत्व है यह व्यय का विवाद है। जो लोग अपनी सस्कृति में आविष्कार को अधिक महत्व देते हैं वह उनकी जाति के द्वियता की तीव्र इच्छा की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह तो स्पष्ट है कि जिना आविष्कार के प्रसार नहीं हो सकता। किसी वस्तु का आविष्कार हा चुकने पर ही उसका प्रसार सम्भव है और यदि हमारी पूज्य सस्कृतियों के उपकरणों का प्रसार न हुआ होता तो आज भी ससार के समाज शायद पाषाण युगीन जीवन बिता रहे होते। पृथक्ता जड़ता की सूचक है और सम्पर्क वृद्धि की। सस्कृति में वृद्धि और सशोधन के काय में आविष्कार और प्रसार की मूल भूत समानता है। उन्नत होने के लिए समाज में आविष्कार और प्रसार दोनों ही अनिवार्य हैं। यदि सस्कृति के स्वतंत्र प्रसरण में कुछ बाधा पड़ती है तो समाज अवनत होने लगता है। मनुष्य के मस्तिष्क की समस्त उपजें—कलाशा से लेकर भौतिक विज्ञान तक उन्नति के लिए विनिमय की स्वतंत्रता चाहनी है।¹

सस्कृति के विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया

आइए अब सस्कृति की वृद्धि की दोनों प्रक्रियाओं आविष्कार और प्रसार, का जिनका ऊपर मकेत किया गया है कुछ विस्तार से विश्लेषण करें।

(१) आविष्कार—आवश्यकता आविष्कार की जननी है। विद्यमान सस्कृति ही आविष्कार की माँ हानी है। आविष्कार की विधा का स्वभाव लगभग स्वतः चालित है। एक ही समय में दो पृथक् स्थानों पर स्वतंत्र आविष्कार इसका

1. In order to develop society must promote both invention and diffusion. When barriers are placed in the way of free diffusion of culture the group tends to retrogress. The products of the human mind from the arts to the physical sciences require freedom of exchange in order to develop.—Merrell & Eldredge *op cit* p 105

साक्ष्य है। अंग्रेजों ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सोशल वेज' में एक साथ होने वाले आविष्कारों की एक विशाल सूची दी है। आविष्कारों में कोई नई वस्तु नहीं बन जाती जिसमें अग्नि या रूपा का सत्कार में कोई अस्तित्व न हो। आविष्कार वस्तुतः विद्यमान सांस्कृतिक उपकरणों का नवीन संयोग है। यही कारण है कि आविष्कारों की सम्भावनाएँ ज्यामितीय क्रम में बढ़ती हैं। इस सम्भावना को दर्शाने के लिए एक उदाहरण देखिये। एक संस्कृति (क) में तीन उपकरण (अ, ब, स) ऐसे हैं जिनका संयोग हो सकता है तो आविष्कारों की सम्भावना इस प्रकार बढ़ेगी —

समाप्य आविष्कार

प्रथम अवस्था	अ, ब, स,	
द्वितीय अवस्था	अ, ब, अ, स, ब, स, अ, ब, स	— ७
तृतीय अवस्था	(अ) (अ, ब), (ब) (अ, स), आदि,	१२७
चतुर्थ अवस्था—कुल योग	१७०, १४१, १८३, ४६०, ४६९, २३१, ७३१, ६८७, ३०३, ७१५, ८८४, १०५, ७२७,	

प्रत्येक संस्कृति में साधारणतया पारिवर्णिक आविष्कारों की अपेक्षा अधिक संख्या में और सरल हो सकते हैं। परन्तु पारिवर्णिक आविष्कारों में हर बात सरल नहीं होती है। अपारिवर्णिक आविष्कारों की समस्या बहुत कठिन होती है। रूस, इंग्लैंड और अमरीका आदि औद्योगिक देशों में जबकि भौतिक क्षेत्र में नित नये आविष्कार होते रहते हैं। जितनी ही अधिक विकसित कोई संस्कृति होगी आविष्कारों की उतनी ही अधिक सम्भावनाएँ उसमें होंगी।

सामाजिक या सांस्कृतिक क्षेत्र में आविष्कारों में समस्या बड़ी जटिल है। हर मनुष्य को (समाज-वैधानिक समत) अपनी संस्कृति में सुदृढ़ मातात्मक लिपि होती है। यहाँ नैतिक अभियानों में जो तांगा की जाति-वैदिकता बाधक होती है। फिर, समाज या संस्कृति में नियंत्रित परीक्षण भी नहीं हो सकता। अतएव एक अपारिवर्णिक आविष्कार जैसे एक नया घम परिवार व्यवस्था या शासन प्रणाली की सफलता अथवा असफलता पर अनेक नियंत्रणशील एवं अनियंत्रणशील कारणों का प्रभाव पड़ता है। संस्कृति में आविष्कारों की समस्या इसलिए और भी जटिल हो जाती है कि यहाँ विपक्ष परीक्षा करना लगभग असंभव है। तांत्रिक समस्याओं का समाधान स्वीकृत लक्ष्यों के आधार पर हो जाता है। जैसे हवाई जहाज की गति बढ़ाना नदी पर पुल बनाना, कीटाणुनाशक का नाश करना, कोई अस्वास्थ्य बनाना अथवा किसी भयानक रोग की औषधि का निमाण करना आदि सभी स्वीकृत लक्ष्य हो सकते हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिए आविष्कार किये जाते हैं। परन्तु दूसरी ओर संस्कृति क क्या लक्ष्य है वह तो इन्हीं पर बहुत मनभंग रहता है। फिर यदि आविष्कार करके इन लक्ष्यों की प्राप्ति की चेष्टा भी की जाय तो इसमें विनियोगवाद उठ सकता है कि ये लक्ष्य पूरे होंगे या नहीं। सामाजिक आविष्कारों को नापने की इकाई, उनके

लक्ष्य, और प्राप्त किये जाने वाले मूल्या पर कभी-कभी एकमत नहीं हो पाता। इस प्रकार के मतभेद का साक्ष्य भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान के लिये किए गये आविष्कारों (सामाजिक कानून आदि) या सम्भाव्य आविष्कारों के बारे में हम लोगों में परम्पर भारी मतभेद है। जनतन्त्रीय समाजवाद के, जिसे कांग्रेस ने सरकार और समाज का लक्ष्य माना है सम्भवतः हमारे समाज में ही लाखों विरोधी हैं।

पार्थिव आविष्कारों को आज के युग में उच्च सम्मान और पारितोषिक मिलता है। परन्तु अपार्थिव आविष्कारों का बहुधा सशय धृष्टा और तिरस्कार से स्वागत हुआ है। जहाँ किसी मनुष्य ने तात्कालिक समाज या संस्कृति के पवित्र सत्त्वों प्रतिमान को दोषपूर्ण या व्यथित बताया उसे धृष्टा, वंदनस्य, तिरस्कार और मृत्यु तक का उपहार मिल जाना निश्चित है। ससार की महाविभूतियाँ के जीवन इस तथ्य के उत्कट प्रमाण हैं।

किन्तु जब अर्वाचीन युग में तान्त्रिक आविष्कारों की धूम है तब सामाजिक आविष्कारों की आवश्यकता बढ़ रही है। यदि संस्कृति के पार्थिव और अपार्थिव भागों के विकास और परिवर्तन की दृष्टि में अधिक अन्तर होगा तो फिर संस्कृति का स्वस्थ और मंगलमय विकास नहीं हो सकता।

मेरिल और एल्डरिज ने लिखा है कि अपार्थिव आविष्कारों का निर्धारण (१) सांस्कृतिक लक्ष्यों (२) प्राकृतिक शक्तियों (३) परिवर्तन की ओर लोगों के रुझान, और (४) सांस्कृतिक संयोग से होता है।¹

अंगवतन और निमकाफ लिखते हैं कि पार्थिव आविष्कारों से अपार्थिव आविष्कारों के लिये प्रोत्साहन मिलता है और अपार्थिव से पार्थिव आविष्कारों को।²

निरन्तरता का नियम

संस्कृति की वृद्धि को समझने के लिये इस नियम को पूरी तरह से जान लेना लाभदायक होगा। यह नियम बनाता है कि संस्कृति में निरन्तर वृद्धि होती है। हर नया सांस्कृतिक उपकरण विद्यमान उपकरणों से उत्पन्न होता है। हर आविष्कार एक विकासशील विधा का परिणाम है।³ पुरानी कहावत है कि विश्व में कोई भी वस्तु नवीन नहीं है। सामाजिक अथवा सांस्कृतिक समस्याओं के अध्ययन की ऐतिहासिक रीति को इस नियम से बड़ी पुष्टि मिलती है। किसी भी सामाजिक समस्या को समझने के लिये उसके इतिहास को ज्ञात करना चाहिए और भविष्य में जो कुछ होगा वह विद्यमान दशाओं की ही वृद्धि होगी। अतएव विकासवादी उन्नति में

1 Merrill & Eldredge *op cit* pp-112-13

2 Ogburn & Niskoff *Handbook of Sociology* Chap XXIV

3 Every new culture trait is the outgrowth of existing culture traits
Every invention is the result of an evolutionary process *Ibid* p 520

आविष्कार एक सीढ़ी (step) है। हर आविष्कारक आदि काल से चली आई मानव जाति के कथों पर खड हो कर कई आविष्कार करना है। यूटन न कहा था कि यदि मैं अधिक दूर तक देखता हूँ तो इस कारण से कि मैं महाकाय कथा पर खड़ा हूँ।¹

अपर नियमन का नियम

आविष्कार का नात वस्तुआ से ही विकास होना है। इस कथन की पुष्टि इन नियम से होती है। जब दो संस्कृतिया के लाग परस्पर सम्पर्क में आत हैं तो उनमें विचारों, आदर्शों, मूल्या अथवा पार्थिव उपकरण का आदान प्रदान होता है। इस विनिमय से एसी स्थिति पदा होती है जिससे दोनों संस्कृतिया को लाभ होता है। दाना में नवीनता और ताजगी आती है। उनकी बुध मण्डूकता कम या नष्ट हो जाती है। अतएव, किसी भी संस्कृति के सभी आविष्कार बिल्कुल स्वतन्त्र नहीं होते। उनमें से अधिकांश उस संस्कृति और अथ संस्कृतियों के उपकरणों में अपरनियमन का परिणाम होते हैं।

प्रसार—प्रसार संस्कृति की वृद्धि की दूसरी प्रक्रिया है। जब संस्कृति के पार्थिव अथवा अपार्थिव तत्व (या उपकरण) उसी समाज में या उससे बाहर अथ समाजों में फल जाते हैं तो इस फल का प्रसार कहा जाता है अर्थात् जब किसी सांस्कृतिक उपकरण का आविष्कार हो जाता है तो पहले वह उसी समाज में और फिर दूसरे समाजों में भौगोलिक रूप से फल जाता है।² मरिख और एडरिज प्रसारण की प्रकृति की विवचना करते हुए लिखते हैं —

The classic analogy of the expanding concentric circles produced by dropping a pebble in a pond is, however too simple to explain this process. Culture does not diffuse in tidy circles at an equal rate of speed and in a homogeneous medium. According to this explanation there should be one central point of origin from which these innovations would spread. Presumably the oldest traits would then have the widest distribution and the newest the most restricted.

अर्थात् संस्कृति का प्रसार बम ही होना है जैसे उन गहरा का जो पानी में एक पत्थर डालने पर उठती है और केन्द्र में धीरे धीरे विचारों की ओर वृत्ताक रूप में फलती जाती है। — इस व्याख्या के अनुसार, सभी आविष्कारों का जन्म एक केन्द्र पर होता है। वही सबके चारों ओर फैलते हैं। इसका अर्थ तो यह होता है कि सबसे पुराने आविष्कारों का विस्तार सबसे अधिक और सबसे नवीन आविष्कारों का सबसे कम। यह व्याख्या सदेहाम्पद है।

1 If I saw farther it was because I stood on giant shoulders. —Newton

2 Merrill Eldredge *op cit.*, pp 105 & 113

इन विद्वानों का मत है, जो सत्य प्रतीत होता है कि सस्कृति का प्रसार में बहुत बार ऐसा होता है कि उसने उपकरण बूढ़ कर दूर जाकर फैलते हैं, और बीच का सारा स्थान अप्रभावित छोड़ देते हैं जैसे भेड़क बूढ़-बूढ़ कर चलता है।¹

सांस्कृतिक प्रसार में सबसे अधिक सहायक तत्व विभिन्न जातियों में सम्पर्क और विचारों का आदान प्रदान है। इसमें बाधा डालने वाले तत्व भौगोलिक और राजनतिक प्राचीन हैं। प्रसरण के एजेंट विविध हैं जैसे व्यापार युद्ध युद्धबंदी, अन्त जातीय, या अन्त देशीय विवाह, कूटनीतिक, साहित्य, यानी विश्वविद्यालय, समाचार-पत्र, सिनेमा, रेडियो टेलीविजन आदि। एकांतता सस्कृति के प्रसार में बाधक है।

प्रसरण की प्रक्रिया में काम करने वाले कुछ मुख्य नियमों को समझ लेना यहाँ असंगत न होगा। ये नियम इस प्रकार हैं—(१) अनुकूलन का नियम, (२) पारस्परिक सांस्कृतिक विनिमय का नियम, और (३) सांत्मीकरण का नियम।

(१) अनुकूलन का नियम

जब बाहरी सस्कृति का कोई उपकरण हमारी सस्कृति में प्रवेश करता है तो हम उसका विरोध करते हैं और यदि बहुत आकर्षण हुआ तो खुला विरोध तो नहीं करते बरन् उसने प्रति सशक्त रहते हैं। इस प्रकार विद्यमान सस्कृति में किसी नवीन तत्व का प्रवेश सदेह घृणा या विरोध की दृष्टि से देखा जाता है। किन्तु यदि वह उपकरण बहुत प्रबल है, बहुत आकर्षक है अथवा दूसरे लोग उस स्वीकार करने का हम विवश कर देते हैं तो धीरे धीरे हमारी प्रारम्भ की मनोवृत्ति बदल जाती है। जीवन की परिवर्तित दशाओं में उसको अपना लेने के लिए तत्पुरुष आदता और स्वा का हममें विकास हो जाता है। वह उपकरण धीरे धीरे हमारी सस्कृति में समा जाता है।

(२) पारस्परिक सांस्कृतिक विनिमय का नियम

जब विभिन्न समूह, बग या समाज दीर्घकाल तक सम्पर्क में रहते हैं तो वे एक दूसरे की सस्कृति के बाहर से उपकरणों को अपना लेते हैं। पारस्परिक सांस्कृतिक विनिमय उन समस्त रीतियों को कहते हैं जिसमें व्यक्ति या समूह नये सांस्कृतिक उपकरणों को अपनाकर उन्हें अपने जीवन-ढंग में ढाल लेते हैं। यह सब ही होता है जब एक सस्कृति में पले हुए व्यक्ति दूसरी सस्कृति में जाकर रहने पर उसके व्यवहार प्रतिमानों को अपना लेते हैं।

(३) सांत्मीकरण का नियम

जब लोग या समूह दूसरे समाज या लोगों की स्मृतियों भावनाओं परम्पराओं और रीतों में उसी प्रकार से भागी हो जाते हैं जैसे दूसरे समाज के लोग तो वे उन

1 The leap frogging or dissemination at a distance is a well known phenomenon of diffusion of culture

सोचों के साथ एक सामान्य संस्कृति में घुल मिल जाते हैं। जैसे नौगो लागो ने ध्वन श्रमरीकी निवासिया की संस्कृति में अपने को डुबो दिया है। मात्मीकरण की विधा बहुत धीरे-धीरे और अशा में काय करती है। पूरा सात्मीकरण बहुत क्रमिक रूप में होता है।

सांस्कृतिक वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारक

संस्कृति की वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों में सामाजिक संगठन, भौगोलिक पर्यावरण, तांत्रिक और वनानिक उन्नति प्रधान हैं। चूंकि ये कारक सब एक से नहीं रहते इसलिए उनका प्रभाव कम या अधिक पड़ता रहता है। आधुनिक समाज की संस्कृति की वृद्धि को प्रभावित करने में ज्ञान विज्ञान और औद्योगिकी का सबसे अधिक महत्व है। सब समाजों की संस्कृति में वृद्धि की दर समान नहीं होती है।

सांस्कृतिक वृद्धि या परिष्करण की दर

समाज के विकास के साथ संस्कृति की वृद्धि की गति की दर में भी साधारण वृद्धि होता है। आज से २०० वर्ष पूर्व संस्कृति की वृद्धि की दर जो थी उसमें कहीं अधिक आज है। पहले यह विश्वास किया जाता था कि संस्कृति वृद्धि की दर में अधिकता का कारण मनुष्य की मानसिक योग्यता में वृद्धि है और मानसिक योग्यता का मनुष्य ही जैविक क्षमता पर प्रभाव माना जाता था। यह विचार भ्रमालय है। हो सकता है मनुष्य की जैविक मानसिक क्षमता में कुछ वृद्धि हुई हो परन्तु वह इतनी नहीं है कि उसी का आद्य के युग में संस्कृति की वृद्धि की अत्यधिक दर का मुख्य कारण मान लिया जाय।

संस्कृति में वृद्धि आविष्कार और प्रसार से होती है। आविष्कृत उपकरणों का ही प्रसार सम्भव है। आविष्कार की दर तथा विद्यमान ज्ञान में प्रयत्न सम्बन्ध है। यदि विद्यमान ज्ञान का कलवर्धन बढ़ेगा तो आविष्कार की दर में वृद्धि भी हो सकती है। इतिहास हम बात का साक्षी है। आधुनिक युग में ज्ञान विज्ञान की वृद्धि उन्नति हो गई है। यही कारण है कि आए दिन आविष्कारों की संख्या बढ़ती जाती है।

व्याख्यात्मक सिद्धान्त

संस्कृति की वृद्धि के तथ्या से यह बात परिपुष्ट होती है कि एक पुरानी पाथिव संस्कृति के विद्यमान सचय और एक समय पर किये गये तांत्रिक आविष्कारों की संख्या में निश्चयात्मक पारस्परिक सम्बन्ध है। जैसे-जैसे संस्कृति उपकरणों का सचय बढ़ता जाता है वैसा-वैसा नये आविष्कार और खोजें होते जाते हैं जिनसे विद्यमान ज्ञान का भण्डार भी तीव्रता से बढ़ता जाता है। यह गति सदैव अधिकतर होती रहती है जिससे कि संस्कृति के सचय में अधिक तीव्रता आती है ज्यों-ज्यों ज्ञान का भण्डार अधिक और अधिक समृद्ध होता है। संस्कृति की वृद्धि की इसी सामान्य प्रवृत्ति को

आगवन 'याम्यात्मक सिद्धांत' कहता है।¹ इस नियम से किसी विशिष्ट स्थानिक क्षेत्र की सस्कृति की वृद्धि की 'यारपा' उतनी सही अथवा सतापप्रद नहीं हो सकती जितनी कि सम्पूर्ण ससार की सस्कृति की वृद्धि की।

सस्कृति की वृद्धि की प्रवृत्ति अनियमित होती है। एक सस्कृति के सभी भागों में वृद्धि की दर अवश्य ही समान नहीं हो सकती। इसी प्रकार एक ही अवधि में दो सस्कृतियों की वृद्धि की दर या दो अवधियों में एक विशिष्ट सस्कृति की वृद्धि की दर निश्चय ही असमान होती है। अर्थात् सस्कृति की वृद्धि कभी धीरे धीरे होती है और कभी बड़ी शीघ्रता से। इसके दो कारण हैं। प्रथम, आविष्कारों का प्रसरण अनियमित ढंग से होता है। द्वितीय, सभी आविष्कार समान महत्व के नहीं होते। असमान महत्व के आविष्कारों का स्वागत भी असमान उत्साह से होता है। हम पूछ ही यह सकेन कर चुके हैं कि उपयोगी पार्थिव आविष्कारों का स्वागत बहुत अधिक उत्साह से होता है। किंतु अपार्थिव आविष्कारों या नवीनताओं के प्रति सामान्यतः संदेह घृणा, विरोध या हिचक होती है।

आधुनिक सस्कृतियों में वृद्धि की दर बड़ी तीव्र है। इसका कारण वर्तमान ज्ञान विज्ञान का विशाल क्षेत्र और नित नई समस्याओं के समाधान के लिये नये आविष्कारों के करने की प्रेरणा है। परिवहन और संचार के साधनों में अभूतपूर्व उन्नति हुई है। सारा ससार एक छोटा परिवार सा हो गया है। समय और दूरी को विज्ञान ने नगण्य कर लिया है। इन परिस्थितियों में प्रसरण के अवसर विविध और व्यापक हो गये हैं। संक्षेप में आधुनिक युग में आविष्कारों के निर्माण, अत्यधिक तीव्र दर और प्रसरण के अयुक्तम अवसर वर्तमान सस्कृति की अत्यधिक तीव्र दर के लिये उत्तरदायी हैं।

सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण

सस्कृति में परिवर्तन के कारण आविष्कार और प्रसार हैं। परंतु एक अत्यधिक प्रचलित पुराण है जिसमें सांस्कृतिक परिवर्तन पर कुछ महान् व्यक्तियों के आविष्कार अथवा नवीन पद्धतियों के प्रभाव का सर्वाधिक माना जाता है। सांस्कृतिक परिवर्तन के कारणों से सम्बद्ध यह निरा थाया विचार है। किसी विशिष्ट आविष्कार का सम्पूर्ण अर्थ एक महान् विभूति को ही देना भारी गलती है। यहाँ उन समस्याओं को भुला दिया जाता है जो आविष्कारों और सस्कृति में आविष्कारों के समा

1 The facts of the growth of culture conform to the general theory that a positive correlation exists between the number of mechanical inventions made at any given time and the size of the existing accumulation of old material culture. As the accumulation becomes larger more discoveries were made and the stock of existing knowledge piled up faster. The speed seems to have been accelerated so that the movement becomes faster and faster as the knowledge gets large and large.—William F. Ogburn *Social Change* quoted in Ogburn & Niskoff *op cit* p. 59

मिशन दोनों के कारण हैं। हमें यह न भूलना चाहिए (१) एक आविष्कार को विशिष्ट आविष्कार करने का पूरा श्रेय नहीं है। 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है। आवश्यकताएँ किसी एक व्यक्ति के सामने विलकुल नवीन नहीं आती। उन्हें दूसरे लोग भी अनुभव करते हैं। इसलिए एक आवश्यकता (या समस्या) के समाधान के लिए बहुत से लोग एक साथ (पृथक्-पृथक्) प्रयत्न करते रहते हैं। प्रायः सभी कुछ न कुछ उपाय ढूँढ़ निकालते हैं। इन सब दृश्यों में जो सर्वोत्तम हाना है उसी तरीके को आविष्कार की श्रेणी में रखा जाता है। इस सर्वोत्तम तरीके पर स्पष्टतया शेष सब तरीकों का प्रभाव पड़ा है।

(२) आविष्कार का मनुष्य के अस्तित्व में सजीव भाग तभी हो सकता है जब समाज उसे स्वीकार कर ले।

(३) सभी आविष्कार अपने पूर्वगामी ज्ञान और विद्यमान प्रविधियों से बहुत कुछ लेते हैं। उनके ज्ञान मूल्यांकन को भी समाज में जनप्रियता पर निर्भर रहना पड़ता है। इन दो कारणों से वास्तविक आविष्कारों के पूर्व ही उन्हें प्रत्याशित कर लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी सिद्ध हो गया है कि विभिन्न समयों पर कई व्यक्तियों ने स्वतंत्र रूप से एक ही आविष्कार किया।

उपरोक्त विवेचन से हमारा अभिप्राय आविष्कारक की महत्ता को नगण्य करना नहीं है। हम यह दिखाना अभीष्ट है कि यह विश्वास भ्रमात्मक है कि मानव-उन्नति का भाग का निर्माण अविज्ञान से महान् व्यक्तियों ने किया है। हाँ, सत्यता तो यह है कि इन महान् विभूतियों ने मानव जीवन को प्रशस्त करने में अत्यन्त योगदान दिया है। हम तथा हमारी भावी पीढ़ियाँ उनके सत्य कृतज्ञ रहें।

सांस्कृतिक विलम्ब

सबप्रथम आगधन (अमरीकी समाजशास्त्री) ने 'सांस्कृतिक विलम्ब' की धारणा का प्रयोग किया था। उसने लिखा है कि आधुनिक संस्कृति के भिन्न भिन्न भागों में समान गति में परिवर्तन नहीं होता है। कुछ अंगों में दूसरों की अपेक्षा परिवर्तन अधिक तीव्रता से होता है। परन्तु संस्कृति एक व्यवस्था है जिससे अंगों में पारस्परिक सम्बन्ध और अन्तर्निभरता होती है। यह व्यवस्था तभी बनी रह सकती है जब इसके एक भाग में तीव्र परिवर्तन होने पर दूसरे भागों में भी समान परिवर्तन हो। यथायथ होता यह है कि जब संस्कृति का एक भाग किसी खोज या आविष्कार के प्रभाव से बदलता है तो उससे सम्बन्धित या उस पर निर्भर भागों में भी परिवर्तन होता है। परन्तु दूसरे भागों में परिवर्तन होने में पर्याप्त समय लगता है। उस भाग के परिवर्तन में कितना समय लगाया या वह परिवर्तन पहले परिवर्तन से कितना पिछड़ा जायगा यह दूसरे भाग की प्रवृत्ति पर निर्भर होता है। यह पिछड़ाव (पश्चाद्यन अथवा विलम्ब) कई वर्षों तक रह सकता है जिससे संस्कृति में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती

है। सस्कृति के दो सम्बन्धित या अतः निभर भागों के परिवर्तन में यह पिछड़ाव 'सास्कृतिक विलम्ब' कहलाता है।

फेयरचाइल्ड ने लिखा है कि सस्कृति के अतः सम्बन्धित अथवा अयो-याश्चित दो भागों के परिवर्तन की गति में समकालीनता के अभाव को 'सास्कृतिक पश्चायन' कहा जाएगा जिससे सस्कृति में अयवस्था या अपसमायोजन उत्पन्न हो जाता है।¹

सस्कृति के पार्थिव एवं अपार्थिक भागों के परिवर्तन में सास्कृतिक विलम्ब अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। विधान में नवीन आविष्कारों के प्रभाव से पार्थिव सस्कृति में बहुत तीव्र परिवर्तन होता है किन्तु अपार्थिक सस्कृति से सम्बन्धित विचार, सिद्धान्त, दर्शन, भूयः सस्थाओं आदि में परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे होता है। परिणामतः हमारी सस्कृति की व्यवस्था में शिथिलता आ जाती है।

चूँकि सस्कृति के विभिन्न अंगों का पारस्परिक सम्बन्ध अनेक प्रकार का है और एक भाग के परिवर्तन का प्रभाव दूसरे भाग पर अनेक रूपों में पड़ता है इसलिए अधिकांश समाजशास्त्री सास्कृतिक विलम्ब को एक 'यापक' नियम मानते हैं। उनके विचार से सस्कृति के भिन्न-भिन्न अंगों के विभिन्न प्रकार के पश्चायन का अध्ययन करने के लिये अधिक सूक्ष्म नियमों की आवश्यकता है।

मैकाइवर और पज आगवन द्वारा सास्कृतिक विलम्ब की धारणा के प्रयोग को बहुत उचित नहीं मानते। वे केवल आन्तरिक अर्थात् अंगों के लिये 'सस्कृति' शब्द का प्रयोग करते हैं। इसलिये सास्कृतिक पश्चायन के स्थान पर वे तांत्रिक पश्चायन कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं। उनके मत में 'सास्कृतिक पश्चायन के आन्तरिक अर्थात् अंगों के परिवर्तन की गति में पिछड़ाव का कहना चाहिये। अतएव, सामाजिक परिवर्तन का विधा के अतगत उत्पन्न सभी प्रकार के असंतुलन या अपसमायोजन के लिये प्रचलित सास्कृतिक पश्चायन का प्रयोग अस्मत्क और अशुद्ध है। इसका प्रयोग एक ही व्यवस्था के अतगत कायस्थिता में असमानताओं तक सीमित करना ठीक है।² सस्कृति और सम्मता में अंतर है। इसलिये पश्चायन शब्द का प्रयोग आधारभूत तंत्र और उच्च तांत्रिक संगठन अथवा राजनितिक आर्थिक व्यवस्था के अतगत समायाजन की कुछ विफलताओं के लिये ही करना चाहिये। तांत्रिक कारकों और सास्कृतिक प्रतिमान अथवा स्वयं सास्कृतिक प्रतिमान के विभिन्न निर्मायकों के बीच में सम्मता के लिये इसका प्रयोग अनुपयुक्त है।³

सस्कृति का महत्व

पाचवें और आठवें अध्याय में हमने मनुष्य के सामाजिक जीवन में सस्कृति के

1 Fairchild : *Dictionary of Sociology*

2 MacIver & Page *Society* p 575

3 *Ibid* p 575 Refer also to a discussion on Cultural Factors of Social Change for further elaboration of their analysis

कुछ महत्वा की ओर सकेत किया है। प्रस्तुत अध्याय में उसके कुछ अर्थ महत्वों का बखान कर देना लाभप्रद होगा।

(१) समस्त प्राणि-जगत में मनुष्य का अद्वितीय स्थान उसकी संस्कृति में ही उस प्रदान किया है। उसी के बल पर वह आज के गौरवशाली युग में आकर खड़ा हुआ है।

(२) संस्कृति मनुष्य को अपने पूर्वजा में उपलब्ध एसी अमूल्य विरासत है जिसके उपयोग से उस आन्तिकाल से संकलित मानव अनुभव के उपयोग का अवसर प्राप्त होता है। मनुष्य की हर पीढ़ी का अपने जग का निर्माण नये सिरे से करने का हुस्सह वाय नहीं करता पड़ता।

(३) मानव विकास में संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान है। उसकी सहायता से ही मनुष्य अपने शारीरिक अभावों पर काबू पा लेता है। यदि उसके पास संस्कृति नहीं होती तो उसकी जैविक (या पार्श्विक) निचलता और निराश्रयता जो पशु जगत में सबसे गम्भीर है, का कोई अंत न था। संस्कृति के अभाव में शायद उसका अस्तित्व ही असम्भव हो जाता।

(४) संस्कृति ने मनुष्य को प्राकृतिक प्रवरण के नियम को निरन्तर करने योग्य बना दिया है। कुछ सीमाओं के अन्तर्गत मनुष्य अपने साथियों का चुनाव स्वयं करता है और इन प्रकार उसकी मन्तान उस जैसी ही होती है। भाजन आरोग्य और जाति-मुधार शास्त्र की सहायता से वह कृत्रिम प्रवरण में अत्यधिक सफल हो गया है।

(५) संस्कृति ऐसे अवसरों को प्रदान करती है जो मनुष्य को अपनी मानसिक क्षमता का सर्वोत्तम विचार करने में सहायता देते हैं।

(६) भौतिक कारकों में सहोचन कर उनको अधिकतम लाभदायक बनाना मनुष्य ने संस्कृति की सहायता में ही सीखा है। आधुनिक विशाल और यशस्वी सम्पत्ता इस तथ्य का ज्वलंत साक्ष्य है।

सारांश यह है कि मानव विकास में जैविक मनाबतानिक और भौतिक सभी कारक अतिवायत आवश्यक हैं किन्तु संस्कृति जो मनुष्य की निराधी विशेषता है के कारण ही मनुष्य ससार की आधुनिक अवस्था में पदापग कर गया है।

प्रथाएँ

मनुष्य एव सत्साम्राज्य को संशुद्ध रखने के लिये उनका आधार में स्थित चलन अथवा व्यवहार के ढंगों की एक जटिल व्यवस्था हानी है। स्थान, कपड़े पहिनने बात चीत, मित्रों में बरन तथा वस्त्रों को प्रशिक्षण केन आदि व्यवहारों के स्वीकृत तरीके हर समाज में प्रचलित होते हैं। इन्हीं का हर व्यक्ति अपनाता है और अन्धकार मानता है। व्यवहार के इन्हीं ढंगों अथवा तरीकों को उपयोगी ज्ञान के कारण समाज में मान्यता मिल जाती है। कालान्तर में वे सामाजिक प्रथाएँ हो जाती हैं। हर मनुष्य अपने समाज की मर्यादों के अनुरूप ही आचरण करता है। उसका यह व्यवहार

अचेतन अवस्था में ही हो जाता है। सामाजिक प्रथाएँ हमारे सामाजिक जीवन में गहराई से भिदी होती हैं। कभी कभी हम इन प्रथाओं के अनुसार आचरण को स्वाभाविक (natural) आचरण या मनुष्य का स्वभाव मान लेते हैं। इस दशा में प्रथाओं का पालन ही उचित आचरण समझा जाता है।

प्रथा और सस्था

सामाजिक चलन या प्रथा (social usage or custom) तथा सस्था में केवल अर्थों का भेद है। सस्थाएँ प्रथाओं के इट गारं स बनती हैं और इनको समाज से निश्चित मायता प्राप्त होती है, पुत्र के जन्म पर प्रायः सभी समाजों में अपने-सगे सम्बन्धियों तथा मित्रों को दावत देने का रिवाज है इसे हम सस्था कह सकते हैं। इसी प्रकार दहेज एक प्रकार की सस्था है किन्तु दावत तथा दहेज देने लेने के साथ अनेक प्रथाएँ जुड़ी रहती हैं। इन प्रथाओं में समाज और काल के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं। विवाह एक सस्था है जिसे करने में अनेक चलन का पालन होता है। यही चलन प्रथाएँ हैं। विवाह की सस्था तो सभी समाजों और सभी युगों में रही है परन्तु इसमें सम्बन्धित प्रथाओं में परिवर्तन और कभी बढती होती रहती है। कुछ प्रथाओं को व्यर्थ तथा हानिप्रद होने के कारण त्याग दिया जाता है। प्रथाएँ सामाजिक आचरण के वे ढंग हैं जो व्यक्ति के लिये सामाजिक क्रिया को सरल कर देते हैं तथा जो व्यक्ति को सामाजिक जीवन में सफल होने के लिये सरल तथा उपयोगी तराके प्रस्तुत करते हैं।

सस्थाओं के विशेष लक्षण बाह्य परिचय चिह्न (insignia) और सांकेतिक स्वीकृति हैं जो प्रथाओं में नहीं होते। सस्थाओं पर किसी प्रकार का आक्रमण होते ही जनता के मस्तिष्क में एक तूफान खग्न हो जाता है। यह बात प्रथाओं के तोड़ने या उनके बदलने में नहीं आती। इससे सस्था और प्रथा में एक दूररा अन्तर भी मालूम होता है। सस्था में सामाजिक सम्बन्धों का अव्यक्तिक कारक (impersonal factor) प्रधान है। जब हम प्रथाओं की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय उन स्वीकृत तरीकों से होता है जिनमें लोग एक-दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं। यहाँ व्यक्तिगत सम्पत्त पर जोर दिया जाता है। सस्थाएँ तो वास्तव में नियंत्रण की वह व्यवस्था आती हैं जो व्यक्तिगत सम्बन्धों पर हैं और जो भूत और वर्तमान वर्तमान तथा भविष्य के बीच सम्बन्ध कायम करती हैं। इसमें व्यक्ति अपने पूज्य देवा तथा अपनी सन्तान से सम्बन्धित होता है। सस्था का बलतन स इस सम्बन्ध के टूटने का खतरा रहता है जो मनुष्य पसन्द नहीं करता।

जनरीतियाँ और रूढ़ियाँ (Folkways and Mores)

हम सभी अपने समाज की प्रथाओं को मानते हैं और सस्थाओं द्वारा निर्धारित तरीकों पर चलते हैं। इन सभी व्यवहारों तथा तरीकों को समाज में मायता प्राप्त होती है। इन्हीं सबको एक शब्द में कहने के लिए समनर (W G Sumner)

ने 'जनरीतिया' (Folkways) का प्रयोग किया था। इस शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में किया जाता है।

रुढ़िया अन्य सामाजिक आचरण के तरीके

जनरीतिया समाज द्वारा स्वीकृत तथा माय आचरण के तरीके का कहते हैं। वे समाज की आदतें होती हैं। उनमें उन परिपाटिया (conventions), शिष्टाचार (etiquette) और मनुष्य द्वारा पूर्ण विकसित या अब भी विकासोन्मुख व्यवहार के ढंगों को शामिल करते हैं जो हमारे सामाजिक जीवन की सुव्यवस्था और उन्नति के लिये आवश्यक हैं। इनमें समाज तथा काल के अनुसार परिवर्तन भी होते रहते हैं। दैनिक जीवन में व्यवहार या आचरण के माय तरीके—जनरीतिया का दिग्दर्शन हमें नम-नदम पर मिलता रहता है।

मनुष्य सामूहिक जीवन में रहने पर कई अपने विचित्र रीत रिवाज विकसित कर लेते हैं। जब अमरीका में कोई पुष्प किसी महिला से सडक पर या अन्यत्र मिलता है तो उसका अभिनन्दन उसकी टोपी को हटाने या तिरछा करके करता है। गिरजे में धुमने पर पुष्प अपनी टोपी उतार डालते हैं किन्तु स्त्रिया पहने रहती हैं। जापान या हार्लैंड में जब कोई आदमी अपने मकान में धुमता है तो जूते बाहर निकाल देता है। भारत में मन्दिर मन्जिद या गुरुद्वारा में जूते उतार कर ही प्रवेश करते हैं। हमारे देश में छोटी आयु, जानि, पद या प्रतिष्ठा वाले लोग जब अपने से बड़े से मिलते हैं तो सादर अभिवादन करते हैं। हमारी स्त्रिया अजाबी पुष्पा से तो पर्दा करती ही हैं अपने सम्बन्धी पुष्पा से भी पर्दा करती हैं। इस प्रकार के व्यवहार जनरीतिया कहलाते हैं। इन्हें व्यक्ति अपने समूह के अन्य व्यक्तियों के व्यवहार का अनुकरण करके सीख लेता है। काय की सामूहिक आदतों का जनरीतिया कहने हैं।

रुढ़िया

जब यही जनरीतिया हमारे व्यवहार को नियमित करने लगती हैं तो उन्हें हम रुढ़ियाँ कहते हैं। हम जानते हैं कि हर सामाजिक चरण तथा हर जनरीति हमारे सामाजिक व्यवहार का नियंत्रित करती है। जनरीतिया अच्छी और बुरी सभी प्रकार की होती हैं। जब ये समूह के मानका (standards) की अभिव्यक्ति करती हैं कि क्या उचित है क्या सत्य है अथवा उनके कल्याण के लिये है तो इन्हें रुढ़िया कहने लगते हैं। सभ्यता के आधार पर यह माना जाने लगा है कि जब जनरीतिया से सामूहिक कल्याण उचित या अनुचित के मानकों का भ्रम होता है तो उन्हें रुढ़ियाँ कहना चाहिये।

रुढ़ियाँ काय के सही और आवश्यक रूप

जब जनरीतियाँ इतनी प्रबल हो जाती हैं कि उन्हें केवल ठीक माना जाता है और सामूहिक कल्याण के लिये उन्हें आवश्यक स्वीकार किया जाता है तो

व रुढ़िया कही जाती हैं। समूह द्वारा काय के सही और आवश्यक तरीके समझे जाने वाले कार्यों के रूपा को रुढ़िया कहते हैं।¹ जिस हर समाज में कपडा पहनना एक रुढ़ि है। अपने देश में मेहमानों को केवल भोजन या जलपान करने के लिए घर में प्रवेश करने दिया जाता है। वैसे व जब तक मेहमानी में रह बाहर पुष्पो को बैठक में घर की स्त्रियों से पृथक् ही रहते हैं। गाँव में उच्च जातियाँ की स्त्रियाँ अपने पुत्रों के साथ खेता में बाहर काम करने नहीं जाती। ये सब रुढ़ियों के उदाहरण हैं।

स्वीकृति और नियम

हर समाज या समूह में कुछ काय या व्यवहार निषिद्ध होते हैं। निषिद्ध (taboos) के रुढ़ियाँ हैं जो हमें किसी काय या व्यवहार करने से रोकती हैं और वे रुढ़ियाँ जो हमें अमुक काय या व्यवहार करने की अनुमति देती हैं सामाजिक सम्मोदन (social sanctions) कहलाती हैं। इन्हें ही हम नैतिक आचार या सदाचार (morals) कहते हैं।

रुढ़ियों में समूह का सारा अनुभव संचित रहता है। वे हर समाज में निरंतर होती हैं। समूह अपनी रुढ़ियों को हमेशा उचित मानता है और इसलिए उनको बदलने के प्रश्न पर वह प्रतिगामी (conservative) रहता है। प्रो० मकाइवर के अनुसार रुढ़ियाँ समाज में व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण ही नहीं करती उसे और समूह का एक-लक्ष्यी बनाती हैं तथा वे समूह या समाज की सुदृढता या एकता की अभिभावक हैं।

समाज के विकास के साथ रुढ़ियाँ विशेषीकृत होती जाती हैं। उनका रूप विशिष्ट स्मृतियों या संहिताओं (codes) की श्रृंखला प्रथा पुराण तथा विधि और विभिन्न धार्मिक तथा सांस्कृतिक समूहों की स्मृतियों में प्रकट होना है। इस दशा में उनका निष्कर्षण अधिक लोचपूर्ण हो जाता है तथा वे सामाजिक अनुभव की विविधता का स्वतंत्र तथा पूर्ण अभिव्यक्ति देने की अनुमति देती हैं।²

परिपाटी तथा परम्परा

सामाजिक समूह में प्रचलित एक सामान्य अभ्यास या चलन को परिपाटी कहते हैं।³ जब हम समूह की जनरलियाँ तथा रुढ़ियों अथवा समाज में सबसे अधिक सामान्य रग्य और व्यवहार के अनुकूल बिना किसी आलोचना के आचरण करते हैं तो हम परिपाटी को मान रहे हैं। परिपाटी परम्परा से कुछ कम सामाजिक मान्यता और इसलिए कम भक्ति भी प्राप्त किये होती है।

1 Mores are forms of action which the group regards as essential and right

2 MacIver & Page op cit p 2^o

3 H P Fairchild Dictionary of Sociology

परम्परा (tradition) सामाजिक परिस्थितियाँ की वह प्रक्रिया है जिनमें सामूहिक विरासत के तत्व (elements of cultural heritage) पीढ़ी-दर-पीढ़ी अन्वयान् न्यायान्तरित हो रहे हैं। एम ग्रन्थात् विचार या कथार्ये (lore) का एक पाठान् दूसरी पीढ़ी और सभी अंश न घात चेतनान् है मिलकर परम्परा कहलाती है। सामाजिक परम्पराओं में हमारा अभिप्राय किसी मूल्य की संस्कृति के उस अन्वयान् (subjective aspect) में जो भाषा के माध्यम से अथवा मूल्य ग्रन्थात् मावनात् मनोवैज्ञानिक या अन्य अर्थान् अनुभव करने तथा क्रिया के अर्थ तीकात् माध्यम से मौखिक प्रतीक (verbal symbols) के रूप में एक पीढ़ी में अगली पीढ़ी तक पहुँचाना है।¹

परम्परा का अर्थ सभी विचारों, आत्मा तथा प्रथाओं के उन योग्य हैं जो जिनका ज्ञान के होना है तथा जिनका संचरण पीढ़ी-दर-पीढ़ी होना होता है।² परम्परा का अर्थ सामाजिक विरासत कह सकते हैं। यह हमारे कर्म का मातृनी है तथा व्यवहार का निरन्तरता बनाये और सम्भूत रूप में निरन्तरता का सिद्धान्त (principle of continuity) है जो अतीत की उपस्थिति का भविष्य तक ल जाता है। परम्परा व्यक्ति के सामाजिक जीवन में सम्मिलित होकर मजबूत होना मभवस अर्थिक महापद बना है।

संस्कृति और सम्यता

वर्तमान मूल्य मनाजा में एक अर्थ मन्वता का महान् उत्पत्ति हुई है वर्णान् द्वारा संस्कृति का भा वृद्ध अर्थिक विकास हुआ है। मानव क्रियाओं और अनुभवितियों के रूप में विनाश साठना में अधिकधिक अन्त क्रिया हो रहा है। ज्ञान क्षेत्रों में वृद्धि सभी वर्णों समानरूप में मिलती है जिनका हम मन्वता कह या संस्कृति यह निश्चित नहीं कर पाते। वेदों की बात यह है कि आधुनिक विद्वान् और शास्त्रज्ञ भी बताना शुरू किया का एक दूसरे के लिए अन्वयान् कर एसा प्रयाग करत हैं कि इनका निश्चित और स्पष्ट अर्थ समझना कठिन हो जाता है। यहाँ हम परन्तु संस्कृति मन्वता का तुलना करके निम्न इन ज्ञानान् म स्पष्ट ममाजात्मीय न् मातृम संगठन में इन ज्ञानान् व्यवस्थाओं का क्या महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान जीवन की पर्याप्त जानकारी के लिए आधुनिक विद्वान् विचारों द्वारा बनाए और मनोरंजन के सामाजिक मूल्यों के अर्थान् अर्थिक इन युग की नारीय और अर्थिक उत्पन्न प्राविष्टि या औद्योगिक मन्वता के मनात पर अन्वय प्रभाव का भी समझना होगा।

1 Ibid

2 Mors & Ginsberg *Psychology of Society* p-104

आधुनिक समाज में विराट् औद्योगिक संस्थानों परित्यक्त और संचार के साधनों जैसे रेल वायुयान और समुद्री पाठ मोटर तथा प्रेम रेडियो और डाक-तार व्यवस्था मुद्रा और अधिवोपण व्यवस्था, सेनाओं का लक्ष्य करने के आधुनिक शस्त्र आधुनिक सभ्यता की वस्तुएँ हैं। नगरों के विद्युत् प्रकाश में जगमगाते विशाल प्रासाद सिनेमा हॉटेल विद्यालय यावर्मायिक संगठन और तडक भटक तथा प्रचुरता से भरे जीवन का दखकर मनुष्य चकाचाध में ही जाता है। जीवन की अधिकांश क्रियाओं में मशीन तथा नये आविष्कारों का बहुत अधिक प्रयोग होने लगा है। प्राकृतिक साधनों का ऐसा उपयोग हुआ है कि हमारा जीवन प्रचुरता और समृद्धि का पर्यायवाची हो गया है। प्रकृति पर मनुष्य का उत्तरात्तर नियंत्रण बढ़ गया है। समाज की इस अवस्था को सम्यता कहते हैं। सम्यता मूलतः उपयोगवादी वस्तुओं का एक संगठन है। इसलिए सम्यता का अर्थ हम वह सम्पूर्ण यत्र और संगठन समझ सकते हैं जिस मनुष्य को अपने जीवन की दशाओं पर नियंत्रण करने के प्रयास से निर्मित किया है।¹ इसमें सामाजिक संगठन की हमारी व्यवस्थाएँ प्रविधियाँ और भौतिक उपकरण शामिल किए जाते हैं। सम्यता में आधारभूत और सामाजिक प्रविधियों का समावेश होता है। आधारभूत प्रविधि का प्रमुख उद्देश्य प्राकृतिक घटनाओं पर मनुष्य के नियंत्रण का बढ़ाना है। सामाजिक प्रविधि जिसमें आर्थिक संगठन और संस्थाएँ शासनतंत्र और कानून आदि सम्मिलित होते हैं प्रमुखतः मनुष्यों के व्यवहार के नियमन से सम्बद्ध होती है।

वर्तमान संस्कृति में परम्पराएँ प्रयाएँ रहने रहने और सोचने के ढंग, कविता नाटक चलचित्र मसकूँ दशन और विश्वास का समावेश होता है। ये सभी वस्तुएँ मनुष्य की आंतरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। उनका प्राथमिक कार्य हमारे अंदर की आवश्यकताओं को पूरा करना है न कि बाह्य आवश्यकताओं का। वे हमारी इच्छा या आवश्यकता के लिए माध्यम या साधनमान नहीं हैं। बल्कि वे प्रत्यक्ष सन्तुष्टि का साधन नहीं हैं इसलिए उन्हें हम उपयोगवादी नहीं कह सकते। उनसे हमारे भौतिक कल्याण में प्रत्यक्ष रूप से कोई वृद्धि नहीं होती। संस्कृति हमारे मन और आत्मा की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। संस्कृति के क्षेत्र में मूल्यो शक्तियाँ और उद्भवपूर्ण लगावा और बौद्धिक साहसा का समावेश होता है। संस्कृति सम्यता के त्रिकुल विपरीत है। वह हमारे रहने-सहने और सोचने के ढंग में दैनिक वायकलापा में कला में साहित्य में, धर्म में मनोरंजन और आनंद में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।²

1 By civilization we mean the whole mechanism and organization which man has devised in his endeavour to control the conditions of his life
MacIver & Page *Society* p 408

2 It (Culture) is the expression of our nature in our modes of living and of thinking in our everyday intercourse in art in literature in religion in recreation and enjoyment *Ibid* p 409

तुलना—घाटये, हम संस्कृति और सभ्यता के कुछ प्रमुख भेदों की व्याख्या करें।

१ प्रगति की विभिन्न माप—जीवन की आवश्यकताओं का पूरा बनाने के लिए उत्तम और प्रचुर मात्रा का प्रतिनिधि सभ्यता है। यह साधन विना ही अधिक आवश्यकताओं को सम्भरना उत्तम नहीं जायगी। सभ्यता का एक प्रमाण आवश्यकता है। सभ्यता को विभिन्न वस्तुओं और प्रक्रियाओं में आवश्यकताओं का समाधान पर प्रेरणा प्राप्त है। सभ्यता के आधुनिक युग में एक टैकनिक कारणों से जीवन का प्रत्येक आवश्यकताओं की वस्तुओं का निराकरण करना उत्तम है। उत्पन्न करना से बंधना काय कृतज्ञ है। वह एक मान्य है जो हमारे जीवन का भौतिक आवश्यकताओं का उत्तमतर बानी हुई आवश्यकताओं में पूरा करने हैं।

संस्कृति का माप का निर्दिष्ट प्रमाण नहीं है। आधुनिक समाज की संस्कृतियाँ और आदिवासियों की संस्कृति की तुलना करने यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि उनमें से कौन श्रेष्ठ या हीन है। महानाटक-काल का कला महीन नाटक या दान का आनंद की कला प्रोग्राम से तुलना कर ऊँचा या नीचा बनना भी अनुपयुक्त होगा। संस्कृति का विकास अवश्य है किन्तु इस विकास में उन्नत निर्दिष्ट ही प्राप्ति हो रही है इस पर मत एकमत नहीं हो सकता। प्रगति के हमारे विभिन्न मापक हैं और हमारे एक विभिन्न सांस्कृतिक प्रवृत्ति या वस्तु का समाधान प्रगति नहीं कहें। संस्कृति में समाज की प्रत्येक उपलब्धियों का समाधान होता है जिसका आन्तरिक मूल्य है समाज के लिए सच कुछ है और समाज उन्हें मान्य के रूप में चाहता है। संस्कृति का विभिन्न समाज का सम्पूर्ण टग कहते हैं। वह अनायास है क्योंकि जीवन की समस्याओं के समाधान के लिए समाज न जो विभिन्न पद्धति चुनी है वह समाज की प्रतिनिधि है। सभ्यता संस्कृति के एक और (जान विज्ञान) का परिणाम है, वह सांस्कृतिक आवश्यकताओं के लिए मान्य तुल्य है।

२ विकास के सिद्धान्तों में भेद—सभ्यता सदैव उत्तमोत्तम है। उन्नत उत्तमोत्तम श्रेष्ठ ज्ञान का प्रवर्धन है। सभ्यता की प्रत्येक उपलब्धियों का उत्कृष्ट और उत्तम करने का प्रयत्न तब तक चलता रहता है जब तक उत्तम श्रेष्ठ अन्य आविष्कार न हो जाय। यह मत है कि उत्तम सभ्यताओं की सभी उपलब्धियाँ आज उपलब्ध नहीं हैं किन्तु सभ्यताओं का पूरा विना तभी सम्भव होता है जब एसी कार्य देखी या मानवीय घटना घट जा सभ्यता का समूह नष्ट कर दे। सभ्यता के क्षेत्र में विज्ञान से और उत्कृष्ट आविष्कारों और आविष्कारों से वह सामाजिक विरासत का एक स्थायी भाग हो जाती है और भविष्य की उपलब्धियों का प्रभावित करती है।

इसके विपरीत सांस्कृतिक उपलब्धियाँ निश्चय ही सर्व उन्नत नहीं हो पाती । सभ्यता में निरन्तर आगे बढ़ने की क्षमता नहीं होती उमम अनका उत्थान पतन हान है । निम्नी सभ्यता का अतीत बड़ा गौरवशाली है, इसलिए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता कि उसका भविष्य अथवा गौरवशाली होगा ।

३ **उनका ग्रहण और उपयोग**—सभ्यता के साधना का उपयोग वे समान भा मग्यता में कर सकते हैं जिन्होंने उनसे निर्माण में काद योग नहीं दिया । सभ्यता की वस्तुओं का उपयोग करने के लिये हम में उम क्षमता का होना आवश्यक नहीं ता उन निर्माण के लिए आवश्यक है । सभ्यता में बड़ी लो सभ्यता में ही मिलती है जिनका उसने निर्माण में काई हाथ है । कला की प्रशंसा कथाकार ही कर सकते हैं मग्यता का सच्चा आनन्द भव नहीं ता सकते । दशन और विश्वास का समझने की इच्छा होते हुए भी सबका समान सफ्यता नहीं मिल सकता ।

सभ्यता और सभ्यता की सृष्टि की प्रक्रिया भी भिन्न भिन्न है । सगीत का दशन अथवा सभ्यता के अर्थ तर्कों की हर काई सृष्टि नहीं कर पाता । उम ता गिन चुन योग का ही प्रतिकार होता है । किसी महाकवि सृष्टि शक्तता के काय या दान में मामूली आदमी का उच्छ्वेता नहीं ता सकता । किन्तु सभ्यता के आविष्कारों में बन्धा अनर नागा का योग होता है । महान् आविष्कारों में भी कई बार माभूता आदमा सगा अन कर उह उच्छ्वेता बना देता है । कलाकार की सृष्टि पर उसने यत्न के अगिठ छाप है किन्तु आविष्कार या यत्र पर वनातिक अथवा प्रविधिवता की नहीं । हम अपने पूजका की सभ्यता के उनसे हा अथ का पा सकते हैं जितने को प्राप्त करने की हम में क्षमता है । सभ्यता के उहरी पदुश्रुता को हम अपना पाते हैं जिसे याग्य हम है । अपन पूजका की समूची की समूची गौरवमया सभ्यता हम उत्तराधिकार में नहा भिन पाती । परन्तु सभ्यता हम उत्तराधिकार में मिल जाती है हम चाह उसके याग्य हा अथवा न हा विशय प्रयत्न कर अथवा न कर । इच्छा हान पर हम सभ्यता की महानतम उपलब्धियाँ का उपयोग कर आनन्द ले सकते हैं । रणियो, टनीविजन प्रेस और अय उपनधिया का कोई भी साधन होते हुए उपयोग कर सकता है । उस ऐसा करने के लिए आत्मा का उच्छ्वेता करने की आवश्यक्ता नहीं पडती । सभ्यता सभ्यता का बाह्य है । सभ्यता में सुधार इस बात का गारणनी ता है कि जिन वस्तुओं या विचारों का वादन होता है उनका गुण भी उच्छ्वेता हा नाएगा । रणियो स एक भाषण का ससार के नभा कौना तन पहुँचाया जा सकता है किन्तु इसका मतनब यह नहीं कि प्रसारित भाषण में भी उसके बाह्य का भाँति उच्छ्वेता आ ग हा । सभ्यता की उन्नति तभी सम्भव है जब हमारी आत्मा उच्छ्वेता प्रयत्न करने में सफल हा क्याकि सभ्यता मनुष्य की आत्मा की निकटस्थ अभिव्यक्ति है ।

४ **विस्तार की सीमाएँ**—सभ्यता किसी भी अदल समाज की सम्पत्ति नहीं रहती । वह ज्या ज्या उत्पन्न होती जाती है त्यास्या उनका उपयोग का अवसर

सभी मानवता के नियम बढ़ता जाता है। उसका दूसरे लोग बड़ी मरलना और उतु कना म अपनात हैं जब तक कि उसके सचार मे किसी प्रकार की बाधा न पटे। काई सभ्यता एक दश की सीमाओं स नती बँधी रहती। यहा कारण है कि आज नमन त्रिज्व म सभ्यता की एक अकली व्यवस्था पननी गा रही है। भारत क 'बलकन' या वस्पट नगरा का बाह्य जावन बहुत-बहुत 'यूमाक' ल'दन भास्का जमा ही है। उद्योग वाद की प्रगति भी समस्त ससार म एक प्रकार क परिणाम लानी ह।

एक मस्कृति को दूसरी मस्कृति के लाग आसानी और उत्सुकता म नगी अपनात। मस्कृति ममाच की अनायी त्रिपणना है और उसकी अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर बननी है। यह सम्भव है कि विभिन्न मस्कृतिया म कुछ समन्वयताए हा परन्तु उनके व्यौरा म इतनी अनकटपता हाती है कि मस्कृतिया म पन्ना आगम प्रदान बहुत सीमित रहता है। मस्कृतिया दश और काल की सीमाओं स बधी रहती हैं। वे वि-व व्यापी नही हा पाती। नयाकथित उन्नत मस्कृतिया क कई विचार मूल्य और सभ्यताएँ दूसरा मस्कृतिया अपना लेनी हैं परन्तु अपनी केन्द्राय विशपताओं को व नही छाटता। भारतीय मस्कृति पर ब्रिटिश और मुस्लिम मस्कृतिया का बहुत प्रभाव पडा है फिर भी 'सकी अन्नरात्मा ज्ञान-की-त्या बनी ह। दूसरा मस्कृतिया क तिन उपकरणों का हम अपनात भी हैं उन पर हमारा रग चढ जाना है और हमारी मस्कृति की आत्मा के अनुस्य उहें बनाना पडना है। अतएव स्पष्ट है कि सभ्यता के विम्वार क जा विद्वान्त हैं वही सान्स्कृतिक उन्नति के नहा।

मस्कृति और सभ्यता के इन भेग का समभन मे निम्नांकित उद्धरण सहायक हो सकना है —

Culture is youthful ideological informal realistic and is the essence of the spirit and soul of mankind whereas civilization tends towards the intellectual the organized the technological and utopian, the mechanical Culture grows from the bottom up whereas civilization is superimposed Culture represents the broader societal determinism civilization reflects the technical determinism¹

उपरान्त पत्तिया क लेखक (आउम) न सभ्यता की पाच विशपताएँ भी बताई हैं नर्वेसवा राज्य नगरीकरण प्रविधि बुद्धिवाद के-रीयकरण और शक्ति। सभ्यता का माधारण नशण उसकी कृत्रिमता है।

मस्कृति और सभ्यता का अतःसम्बन्ध

मस्कृति और सभ्यता क साठन व्यावहारिक जीवन म एक दूसरे मे धुनव मिलत हैं। उनके बीच म काई कठार विभाजन माचता अव्यावहारिक है। समाज का आन्तरिक और बाह्य व्यवहार (मस्कृति एव सभ्यता) एक दूसरे से सम्बन्धित

1 H W Odum *Understanding Society* p 280

2 MacIver & Lajo op cit pp 502, 506

हैं। ऐसी वस्तुओं में जिन्हें हम प्रधानतया सभ्यता की श्रेणी में रखते हैं साधारणतया "यूनायिक् अथो म सांस्कृतिक" पहलू भी होता है और इसी प्रकार से प्रधानतया साम्प्रतिक कह जाने वाले पदार्थों में सदा एक प्राविधिक या उपयोगितादायक माध्यम होता है। सस्कृति सभ्यता की वस्तुओं का रजित करती है। हम केवल गर्मी या सर्मी से बचने के लिए किसी भी प्रकार का कपड़ा पहन कर सन्तुष्ट नहीं हान, उसके रंग रूप, बनावट आदि पर हम बहुत ध्यान देते हैं। रन्वियो सेट या मोटर सरीखे समय हम उमकी दीघकालिक सेवा का ही विचार नहीं करते बल्कि उसके सौंदर्य और आनन्द का भी। जीब्रन निर्वाह के (साधना वस्तुओं और सेवाओं) की उपयोगिता के साथ सौंदर्य और सचकता के विचार भी करते हैं।

सभ्यता जीवन की दशाओं पर नियन्त्रण करने के उद्देश्य से वस्तुओं और नवाग्रा का संगठन है। वह भौतिक जीवन यापन की एक दशा है इसलिये सस्कृति पर उसका प्रभाव अवश्यम्भावी है। पूंजीवाद दशा की सस्कृति पर वहा के औद्योगिक पूंजीवाद् का अग्रिम प्रभाव पडा है। भौतिकवादी विचार व दृष्टिकरण और मूल्य इस बात के सार्थी हैं। सभ्यता की विभिन्न अवस्थाओं के समकक्ष समाज की सस्कृतियों का स्वरूप होता है। सम्भवतया सम्पदा की समृद्धि के साथ सस्कृति का स्वरूप निरवतरता चला जाता है। सस्कृति और सभ्यता में परस्पर आदान प्रदान हान का एक मूल्यपूर्ण परिणाम यह होता है कि उनका विरोध कम या खत्म हो जाते हैं। सभ्यता की उन्नति से ज्ञान विज्ञान इतने उन्नत हुए हैं कि वे धर्म और आचार को भी नवीनता के रंग में रंग देते हैं। मानववाद और सामाजिक आचार का विकास इस बात का प्रतिपादन करता है। सभ्यता सस्कृति के बाहन और व्यजना के लिये एक पयावरण है। सस्कृति में आविष्कार और उत्कृष्टताओं से अनेक सामाजिक आविष्कार जाते हैं ज. पुन सभ्यता को सशार्धित करते हैं।

सस्कृति अन्तिम मूल्यनाओं का प्रदेश है और मनुष्य इन्हां मूल्यनाओं का प्रकाश में सभ्यता सन्नि समस्त ससार का अयनियम करता है। प्रत्येक युग के विश्वास, प्रमाण और शक्तियाँ सभ्यता के उपयोग के ढंग की प्रभावित करती हैं। सस्कृति में सन्निन्नि मूल्यनाएँ ही समूह भक्तियों और समूह में एकताएँ सृजित करती हैं। समुदाय के विस्तार को सकुचित या विस्तृत करना भी उनका काम है और अन्त में वे समाज के साधना और शक्तियों का सामाज्य उद्देश्यों की सिद्धि के लिये संगठन करती हैं।

उपरोक्त विश्लेषण से सस्कृति और सभ्यता का भेद बहुत बुद्ध स्पष्ट हो गया किन्तु मनाइवर के इस कथन से कि सस्कृति वह है जो हम हैं और सभ्यता वह है जिम्हें हम उपयोग करत हैं।¹³ हम सदैव सहमत नहीं हो सकते। सभ्यता और

संस्कृति में माधन और साध्य का भेद बनाए रखना बड़ा मुश्किल है। समाज या जीवन में माधन और साध्य के भेद को आविरे तक नहीं बनाए रखा जा सकता क्योंकि हर साध्य अतः माधन हो सकता है।¹ दूसरे संस्कृति और सम्यता की उत्पत्ति की प्रक्रिया में भी कोई मूलभूत अन्तर नहीं है। सम्यता की उत्पत्ति सम रैखिक और सचयी प्रक्रिया है और संस्कृति की समुन्नत और समृद्धि भी एक निरन्तर समरथिक और सचयी प्रक्रिया में होती है। धर्म-नीतियाँ ज्ञान और कला के विकास में अनेक मकट अन्त पर भी उनके विकास का एक निरन्तर प्रक्रिया कहा जा सकता है।

आधुनिक सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ

आधुनिक सम्य समाजों की संस्कृति के प्रत्येक भाग पर सम्यता का व्यापक प्रभाव पड़ रहा है। विशिष्ट सामाजिक संस्थाओं की विवेचना करते समय हमें इन प्रभावों का यथासंभव निर्देश करना है। यहाँ उन सबका मिहाबलाकन कर लेना आधुनिक सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का समझने में सहायक होगा।

सम्यता का उत्पत्ति से हमारी खान-पान एवं रहने-सहन की आदतें बदल गई हैं। हमार खान-पान में अनेक ऐसे पन्थ शामिल करने हैं जो दूरस्थ देशों से मगाए गए हैं अथवा जो रासायनिक प्रक्रियाओं से बनाए गए हैं। हम उन्हें बड़े चाव से खाते-पियते हैं। किस स्थान पर किस किस समय और क्या कपड़े पहनकर भाग्य या जलपान किया जाए इस पर भी सम्यता का प्रभाव है। किसी बड़े नाग के निवासियों के कम उमर में तरीके और आदतें देखते से इसका अनुमान हो सकता है। रसाई में कुकर, रेफ्रिजरेटर का प्रयोग हो गया है। पर से बाहर हाटला, स्नोर में खाना-पीना करना नगर निवासियों को साधारण आदत बन गई है। घरा की सजावट और उनमें रहने के तरीके में अतिव्ययिता और कुमिता धुम गई है।

परिवार के भीतर और समुदाय में हमारा सामाजिक व्यापार अब नई प्रथाओं व जनसंख्या में होना है। कोडम न इन पर प्रविष्टि-रीतियों की प्रबलता स्वीकार की है। विश्व के परिवार सम्बन्धी प्रथा में बड़ा परिवर्तन हुआ है। व कवन मूर्खों के ज्ञान में नहीं पड़ा रहना चाहती। उन्हें गांधिया कनवा थियटरों सना-समितिना तना दस्तग व कारगना में खान एवं काम करने की जरूरतों का भी पूरा करना है। घर से बाहर के सामुदायिक जीवन में स्टाउन विचरण उन्हें निपट आनन्दना महसूस हाती है। बिना उमरे उन्हें जीवन में आनन्द नहीं आता। सन्तान-पालन दाम्पत्य प्रेम तथा यौन आचार के प्रति नर-नारिया के परम्परात्मक दृष्टिकोण बदल गए हैं।

सामुदायिक जीवन में प्रत्येक नर-नारा अपने पश या काम को करने में भी बने औद्योगिकता शिक्षा है। कमचारों और सेवायान्त के पारम्परिक सम्बन्ध बड़े

आनुवंशिक और द्वितीयक हात हैं। वे अतःकरण से एक दूसरे के प्रति व्यवहार नहीं करत। भौतिकवादी समाज होने के कारण नेतृत्व भी उन्हीं लोगों के हाथ में होता है जो धार्मिक या राजनतिक क्षेत्र में जनता का प्रभावी मागन्शन करत है। आध्यात्मिक अथवा धार्मिक नेतृत्व बड़ा निचल हो गया है। उस बहुधा एहिक नेताओं के सहार रहना पडता है। सम्य समाज में विरोधी वादा का सघप भी उग्र है। नवीनतम साधना स वाता' का प्रचार होता है।

शिक्षा विचार क्ता मनोरजन और स्पीटा के क्षेत्र में अनेक प्रकार की समिनिया काम करती है। शिक्षा अधिकाधिक प्राविधिक और शौद्यागिक हाी जाती है। कला और दशन की शिक्षा गौण समभी जाती है। शिक्षा को प्रधानतया औद्यागिक प्रयाजना से सम्बद्ध करत हैं। शीडा, मनारजन और कला के साधना में आविष्कार और प्रविधिया का दिनादिन महत्व बढ रहा है। पेजेवर कलाकार और खिताटी विशाल जन-समुहया क मनारजन का साधन होते हैं। उनके काय का सफ सता की माप सब साधारण की रुचि का तुष्ट करने की उनकी क्षमता है। वे विवेक को शिथिल कर रुचि का विवृत कर दत है। रनिया टेलिविजन समाचार मत्र एव पत्रिकाए सिनेमा सभी की जनप्रियता सबसाधारण के मानदण्डा से आकी गता है। लोगों का अवकाश-समय घुडदौड जुआ रानि कलवा थियेटरो नृत्य कन्द्रा और सिनेमा, या खेल के मदान में बीतता है। यह सब व्यापारिक मनोरजन के साधन हैं। सबसाधारण मनारजन उद्योग सामुदायिक जीवन क लिए बडा हानिकारक है क्यकि जीवन की यथायता का चित्रण न करके भनाशाओ और तरग या निरथक कलना को प्राक्पक रगा में यक्त किया जाता है। व्यक्ति आनन्दजीवी बनन को ही परम लक्ष्य मानता है।

सम्यता का प्रभाव हमारे अग्र रखा दृष्टिकोणा और मूल्यो पर भी पता है। जीवन के प्रति भाग्यवादी रख छोडकर हम आशावादी हो गए हैं। जीवन का मुयी समृद्ध बनाना हमारे क्त व्य पर निभर है। जीवन और ससार के प्रति हमारे सकुचित दृष्टिकोण मिट रहे है। हम सदब भास हाता रहता है कि विशात ब्रह्माण्ड को प्रत्यक घटना हमे प्रभावित करगी। पहले हमारी जा क्रियाए भावना और उद्वेग से सगवार रहती है आज उन्ही को तक और बौद्धिकता से दखन के हम आदी होते गा रह है। हम अब जीवन के प्रति गहरी आशा इसलिए भी है कि सम्यता की प्रगति स प्रकृति और रागा की भयकरता बहूत कुछ सगाप्त हो गई है। अब अधिक समय तक समृद्ध जीवन बिताने के अवसर मौजूद हैं। सातानात्पति सम्बधी नई प्रगति हम मानति निग्रह में सहायक हानी है और आवश्यकता पडन पर टेस्ट ट्यूब बच्च पदा करन में भी।

अन्त में सम्यता की उन्नति और प्रसार से ग्राम्य और नगरीय जावन की पनिपटना बढ़ी है उनके बीच की सार्द वेग से पट रही है। उनमें अन्त निभरता को

बल मिल रहा है। यही बात विशाल जगत के बारे में पाई जाती है। समस्त जगत् की संस्कृतियाँ एक दूसरे के निकट आ रही हैं। उनमें कई स्थला पर आदान-प्रदान ही रहा है। मंचार के साधना की उत्पत्ति न विभिन्न समाजों की एकान्तता नष्ट करके उनमें अन्त-निभरता और सहयोग का बढावा दिया है। आज मानव समाज में उनका उत्कृष्ट प्रवृत्तियाँ सावभौमिक बन रही हैं।

एन सब बातों के साथ इतना स्मरण रखना आवश्यक है कि सम्यता की उत्पत्ति और प्रसार से संस्कृतियों में तीव्र परिवर्तन होने के कारण अनेक अपममायान भी आए हैं। पुराने व्यवहार प्रथिमानों के स्थान पर जब तक नए प्रथिमान प्रथिष्ठित नहीं हो जाते कुछ अव्यवस्था और गड़बड़ी पैदा होना अनिवार्य है। इनमें अनेक समस्याएँ पैदा होती हैं जिनका यथाशीघ्र पयाप्त समाधान न होने पर हम सामाजिक विगठन का खतरा खिखता है।

सम्पूर्ण पर्यावरण

विद्वल अन्वयायो म इमन मनुष्य और उसके समूह के विभिन्न पर्यावरणों का विवेचन किया। इस विवेचन में यह स्पष्ट हुआ कि मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन समूहों और समुदायों में चलता है। यह समूह और समुदाय किसी न किसी भूखण्ड में होते हैं। अतएव मनुष्य के सामाजिक जीवन पर उन विशिष्ट भूखण्डों की भौगोलिक दशाओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इसी प्रकार उसके समूहों की प्रथाओं, रीतियों और मन्थाओं आदि अर्थात् पूरे सभ्यता का प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक है। मनुष्य को हम सम्पूर्ण पर्यावरण कहते हैं। इस सम्पूर्ण पर्यावरण का प्रभाव मनुष्य अपने ऊपर एक निष्क्रिय अथवा समवेदनारहित जीव की तरह नहीं पड़ने देता। वह बुद्धियुक्त जीव है और उसके जीवन का निश्चित ध्येय भी होता है। इसलिये सम्पूर्ण पर्यावरण एक प्रति वह सक्रिय रूप से अनुकूलिया किया करता है। इस समस्त पर्यावरण का वह सब अन्वयपूर्ण बनाने की चेष्टा भी करता रहता है। फलतः उस पर (उसके व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन पर) सम्पूर्ण पर्यावरण अथवा उसके किसी भाग का प्रभाव पड़ना भी मौलिक अथवा असशोधित रूप में नहीं पड़ पाता। पर्यावरण के जिन प्रभावों का मनुष्य हानिकारक अथवा अवाञ्छित समझता है उनके प्रति सघप करता है और उन्हें 'नाभ्रम' तथा वाञ्छित बनाने का प्रयास करता है। कई बार यह सघप सफल हो जाता है और कई बार विफल। विफल होने पर मनुष्य के लिए केवल यही चारा सघप रहता है कि वह उक्त प्रभाव में व्यवस्थापन कर ले। पर्यावरण के लाभप्रद अथवा अनुकूल प्रभावों से तो मनुष्य व्यवस्थापन सुविधापूर्वक करता है। रहता है। इस तरह मनुष्य का सम्पूर्ण पर्यावरण से जो भी समायोजन हो पाता है वह सघप और व्यवस्थापन का सरलप होता है।

पर्यावरण का वर्गीकरण

व्यक्ति और समूह दोनों की दृष्टि से सम्पूर्ण पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं का एक साधारण वर्गीकरण निम्न प्रकार से हो सकता है —

(प्र) समुदाय और अन्य सामाजिक समूहों के व्यक्तिगत समूहों का परिवारण भौगोलिक दसाएँ हैं ।

(प्रा) सामाजिक विरासत (मस्जुनि) पयावरण का दूसरा पहलू है । यह समुदाय, अथवा सामाजिक समूहों अथवा उनके सदस्यों का परिवारण है ।

(इ) व्यक्ति समूहों और समुदायों में रहता है अथवा उनके परिवारण हैं ।

(४) हरेक समुदाय में अनेक छोटे-बड़े समूह होते हैं । इन समूहों का परिवारण समुदाय है । छोटों समूहों का परिवारण पुनः बड़े समूहों में है ।¹

आधुनिक मनुष्य और परिवारण

(१) आधुनिक मनुष्य का अपने परिवारण के प्रति समायोजन इतना विभिन्न और जटिल है कि यहाँ हम उनका विवेचन केवल मौखिक तौर पर कर सकते हैं । उच्च मध्यमता में रहने वाला मनुष्य जिन समस्त दशाओं से घिरा रहता है उनमें उनका समायोजन पूर्ण अथवा सन्तुलित नहीं हो पाता । यह समायोजन केवल क्रोध या अधिक आतंक होना है । हम पहले कहते थे कि मनुष्य का परिवारण में समायोजन सघन और व्यवस्थापन का मन्त्रण होता है । व्यवस्थापन वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अथवा समूह उपस्थित परिस्थिति से इन प्रकार अनुकूलन कर लेता है या उनमें ठीक बैठ जाता है कि उस फिर किसी कठिनाई अथवा अटपटपन का अनुभव नही लेता । आधुनिक मनुष्य का अपने चारों ओर की दशाओं से पूर्ण सन्तुलन कभी नहीं हो पाता । यह सन्तुलन कभी ही नहीं सम्भव है । शायद माधु-म-प्रा-मिया अथवा चरम आयु और समृद्धि का प्राप्त व्यक्तियों में पूर्ण सन्तुलन का भाव कभी-कभी आ जाता है । किन्तु आधुनिक औसत व्यक्ति में तो कभी यह भावना नहीं आ पाती । फलतः वह चिर-असन्तुष्टि का शिकार रहता है । यही शायद असन्तुष्टि उसे नई मन्त्रणाओं अथवा प्राप्ति का लिए निरंतर प्रेरणा देती रहती है । वस्तुतः हमारा हर पीढ़ी असन्तुष्टि का होती है ।

(२) मनुष्य का परिवारण में समायोजन कम स्थिर भी होता है । उनके परिवारण का नियंत्रित करने के अपरन्तया अधिक माध्यम उपलब्ध हैं । वह कम मजबूत होता है । वह प्रकृति प्रदान परिवारण का जिनका अधिक सुधार लेता है उनका ही अधिक प्रबल इच्छा उन आर-अधिक ज्यादा सुधारण का होती है । यही कारण है कि जिसने आधुनिक मनुष्य का परिवारण में मन्त्रण परिवर्तन-योग्य अस्थिर होता है ।

(३) आत्मिक मनुष्य का तुलना में आधुनिक मनुष्य का परिवारण में समायोजन बहुत ज़ुना दुःखों और भिन्न प्रकार होता है । प्रत्येक मनुष्य के लिए परिवारण की पृथक विशेषता और अर्थ है । फिर वह अपनी बुद्धि क्षमता और योग्यता

के अनुसार उससे समायोजन करता है। समायोजन की रीतियाँ में विपरीतता या भिन्नता होती है। उदाहरण के लिए शहर की एक समृद्ध बस्ती में रहने वाले लोग गंदी बस्ती (slum) का जीवन नरक समान मानते हैं। किंतु यदि उनमें से किसी को विवश होकर गंदी बस्ती में रहना पड़े तो वे वहाँ के मौलिक विवासियों की भाँति न रह कर भिन्न ढंग में ही रहेंगे।

(४) पुनः समायोजन अपेक्षाकृत सरल होता है। सम्यक् मनुष्य का समायोजन बहुत जटिल बातें हुए भी अत्यधिक गतिशील होता है। मनुष्य में नितांत नये और विपरीत परिवर्तन से शीघ्रता से समायोजन करने का क्षमता होती है। सम्यक् मनुष्य में बहुत अधिक मानसिक चपलता होती है जिसके चलते वह परिवर्तनीय और जटिल स्थिति में भी सफल हो सकता है। वह उल्टे कटिबंध से लेकर ध्रुव प्रदेशों तक किसी भी भाग में बस सकता है और अपने जीवन को समृद्ध बना सकता है। उसका जीवन ऐसी विपरीत दशाओं में जैसे गरीबी, सम्पन्नता और रक्षा में बीन जाता है। वह अत्यधिक क्रम और असाधारण एकता और उदार लोकता दोनों से अपना समायोजन कर लेता है। इसी प्रकार के अनेक तथ्यों से निस्संदेह सिद्ध हो जाता है कि वर्तमान समय में मनुष्य को प्राणिकगत में अपूर्व लाभ प्राप्त कर उसे सर्वोत्कृष्ट प्राणी बना दिया है।

नये परिवर्तन से पुनः समायोजन

आदिम सरल समाजों के मनुष्य की अपेक्षा आधुनिक मनुष्य नये परिवर्तन से पुनः समायोजन करने में अधिक समर्थ है। परंतु कभी कभी वह ऐसी स्थिति में फँस जाता है कि पुनः समायोजन केवल शक्तिशाली ही नहीं बल्कि कठिन भी होता है। यह कठिनाई दो कारणों से आती है। प्रथम यह समाज की रचना में आंतरिक अस्थिरता का परिणाम हो सकता है जिसका विस्फोट शांतिमय अथवा हिंसात्मक भ्रान्ति में होता है जिससे पुराने व्यवस्था का उखाड़ फेंका जाता है। ज्ञानिक वर्ग लोगों को उच्च परिस्थिति का अनुकूल बनना ही पड़ता है। उन्हें अपनी पुरानी प्रिय परम्पराएँ, विश्वास, भक्तियाँ, विशेषाधिकार और पूर्वनिश्चय तथा दावे छोड़ने पड़ते हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद रुम और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारत और चीन की शान्ति इस बात की साक्ष्य हैं।

द्वितीय वर्तमान जीवन की वृद्धि (बढ़ते हुए) गतिशीलता में अचानक पुनः समायोजन की समस्या निरन्तर ही बार उठ खड़ी होती है। लोगों को बार बार नये परिवर्तन में रहना पड़ता है जहाँ पुरानी आदतों से काम नहीं चलता। यदि प्राचीण जातक नगर में बसता है अथवा बोर्डिंग में एक छोटे नगर को छोड़कर दूसरे महानगर में जा बसता है तो उस पर इसी परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। यही दंगा विभी समुदाय में शामिल होने वाले आवासियों की होती है। पाकिस्तान से विस्थापित लोगों को भारत में आने पर आवासियों की समस्याओं से लड़ना पड़ता

था। उच्च औद्योगिक समाजों में जनसंख्या का निरन्तर निरन्तरता न पुनः समायाजन की दूसरी स्थिति का जन्म होता है। पुनः समायाजन में सम्पूर्ण—सुनदसुनता अथवा प्रच्छन्न—का स्थान नगण्य नहीं होता। दोनों प्रकार की जनसंख्याओं का आन्तरी और मूल निवासी—का पुनः समायाजन की कठिनाई और व्यापकता का अनुभव करना पड़ता है। दक्षिणी अफ्रीका तथा लता में आवासीय भागनीया तथा मृदातापमिया को पुनः समायाजन का नयी स्थिति का सामना करना पड़ रहा है।

व्यवस्थापन

समायाजन और पुनः समायाजन (adjustment and readjustment) का व्यवस्थापन (accommodation) की प्रक्रिया का ही रूप है। व्यवस्थापन का अर्थ सामाजिक अनुकूलन के जटिल विषय का अध्ययन होता है जो जैविकीय उपसाधन (biological adaptation) से भिन्न है। नये पर्यावरण से व्यवस्थापन (नया अनुकूलन) की प्रक्रिया में मनुष्य या समूह की भावना में क्या होना चाहिए। कठोरता का बन्धन निर्जित का महत्व स्वीकार कर लेता है। कठोरता स्थिति का प्रति उत्तर मन्विक में अद्भुत और अनादर का दृष्टि चला करता है। अन्त में नये स्थिति का पूर्ण विरोधी हो जाता है। नये पर्यावरण में समायाजन का नया सबसे सफल और सरलतम रीति आवास्या द्वारा नई बन्धिया अथवा अथ प्रतिस्था की स्थापना होता है। ये बन्धिया उनमें लिये सामाजिक द्वीप (cultural island) का समान होती है। इन बन्धिया का जीवन का आन्तरी दीर्घकाल तक अपना नवम्ब मान्य रहते हैं। उदाहरण के तौर पर बम्बई में पारसी समुदाय अथवा लखनऊ काजपुर का शिल्पी मजदूर मराठी मारवाहा या मद्रासी-बन्धिया या अन्त-बन्धिया। बड़े नगरों में निहडबर्नी देहाता लोका में आकर बसने वाले मजदूरों की बन्धिया में भी नयी प्रकार का जीवन होता है।

सांभोकरण

असमान व्यक्तियों और समूहों का भी सम्पर्क होता है। साथ-साथ रहने पर नये व्यवस्थापन करना पड़ता है। कभी-कभी इन असमान व्यक्तियों और समूहों में सामाजिक प्रक्रिया व्यवस्थापन में आगे बढ़ जाती है। यही उनमें सम्पर्क घुन-निवृत्त कर एक या समान हो जाने का प्रवृत्ति दिखाई देने लगता है। जब नया जीवन टग, दृष्टिकोण और जिन नये में सामाजिक का जाता है तो सामांभोकरण (assimilation) की प्रक्रिया सम्पन्न हो जाती है। सामांभोकरण अन्तःप्रवेश (interpenetration) और एकीकरण (fusion) का बड़े प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति और समूह दूसरे व्यक्तियों और समूहों की स्मृतियाँ भावनाओं और रीति का अन्तर्गत हो जाते हैं और उनका (द्वारा का) अनुभव और इतिहास में आन्तरी बनकर एक सामाजिक जीवन में प्रविष्ट हो जाते हैं। सारे में सामांभोकरण वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें असमान व्यक्तियों और समूहों में एक ही भावनाओं, भावनाओं और धर्मों का रूपता लिया

है। उन सबसे एक ऐसा समूह बन जाता है जिसमें एकता होती है। सात्मीकरण की प्रक्रिया में दो अममान अथवा दिनातीय समूहों में परस्पर आदान प्रदान होता है परन्तु सशक्त समूह के जीवन ढंग को अपनाते म निजल समूह अधिक बाध्य होता है। निजल समूह का सशक्त समूह के हितों धर्मों और भावनाओं को यहाँ तक अपनाता पटना है कि वह सशक्त समूह में खप जाता है। धीरे धीरे उसका पृथक् अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है। सशक्त समूह उसे अपना अंग ही मानने लगता है। भारत में १००० इसवी तक अनेक प्रजातीय आर्य कि तु वे सब यहाँ के ग्राससमाज में घुल मिल गये। अमरीका का आधुनिक समाज अनेक यूरोपीय प्रजातीय समूहों और सांस्कृतिक वर्गों के सफल सात्मीकरण का ज्वलंत उदाहरण है। अनेक असमान समूह और सम्मुनिया एकीकृत होकर एक ठोस और सामंजस्यपूर्ण समाज बन गये हैं। बड़े-बड़े नगरों में अममान समूहों के सम्पर्क में भी सात्मीकरण काय करता है। दूरी से ता नगरों में जीवन का एक सामान्य प्रतिमान विकसित हो जाता है।

आवासी और सात्मीकरण

हम बच्चा सुनते हैं कि आवासी समूह (immigrant group) अल्पसंख्यक होता है। स्वाभाविकतया वह निबल भी होता है। इस समूह का मूल या जन्म से बम समूह में सात्मीकरण होना आवश्यक या सामाजिक दृष्टि से बाधित हो जाता है। इस स्थिति में सात्मीकरण की प्रक्रिया में कुछ बाधाएँ और सहायताएँ मिलती हैं। यदि आवासी या मूल समूह में सामाजिक विलगाव (social distance) की एक सशक्त भावना नहीं है तो सात्मीकरण की प्रक्रिया बड़ी सगल और तीव्र हो जाती है। इसके विपरीत जब आवासी समूह में मूल समूह के प्रति विरोधी भावनाएँ बनी सुल हो या आवासी समूह का विरोध मूल समूह करे तो सात्मीकरण की प्रक्रिया बहुत जटिल और कठिन हो जाती है। ऐसी स्थिति में दोनों असमान समूहों में सामाजिक दूरी की भावना बनी प्रबल होती है। ऐसी ही कुछ स्थितियों में सात्मीकरण की जटिलता और विभिन्नता का समझने के लिये कुछ अन्त सम्बंधित कारणों की ओर सर्वत नीचे किया जा रहा है।

(१) नये समाज की अवस्था—नई भूमि में प्रवेश करने पर आवासियों का स्वागत होगा अथवा नहीं यह प्रवेश करते समय की दशाओं पर निर्भर होगा। यदि नय प्रश्न की आर्थिक अवस्था पिछड़ी है और आवासी उसमें उन्नति करने में समर्थ हैं तो उह इस प्रश्न में शीघ्र स्थान मिल जायगा। इसके विपरीत यदि नय देश का विकास अच्छा खासा हो चुका है, समाज उन्नत है और पशा और व्यवसायों में भी उन्नति हो चुकी है तो आवासी को अपनाते में या उस स्वीकार करने में यह समाज हिचकगा ही नहीं अपितु अपने हितों की रक्षा के लिये आवासियों का विरोध भी करेगा। इसी प्रकार यदि नई भूमि को विकसित करने के लिये उद्योगों की स्थापना जरूरी है और ये उद्योग आवासी स्थापित करने में समर्थ हैं तो उन्हें बहुत शीघ्र

स्वीकार किया जाया। यही बात आवासियों के पशों में दम्भता के बारे में नहीं है। यदि नया दान को एसे लागू की जायगी है जो कुछ विनिष्ठ पशु में दम्भता है तो प्रवाण पर व शीघ्र स्वीकार कर लिये जायेंगे। शहरों में आवासियों की बड़ी संख्या आनन्द वसतनी है और उसे शहरी जीवन में प्रवाण का प्रवर्णन भी मिलना है क्योंकि शहरों में प्रवाण भी पूर्ण नहीं रहती है।

(२) आवासियों की संख्या—यह कहा जाता है कि नया प्रवाण में आवासियों की संख्या तक महिष्णुता बढ़ती जाती है जब तक कि उनकी संख्या घटती रहती है। भारी संख्या में आनन्द पर भूख समान व निवासियों की संख्या हीनता है। अभी-अभी यह प्रवर्णन प्रवाण विचार में प्रकट होती है। आवासियों की संख्या संख्या उचित है प्रवाण निवासियों की संख्या व प्रति महिष्णुता दिखाने वाली यह परिस्थिति पर निर्भर है।

(३) शारीरिक संस्था—यदि नया आवासियों शारीरिक वनावट में भूख निवासियों की संख्या है अर्थात् यदि उनके रंग, मुद्राङ्गण तथा अन्य शारीरिक अंगों में और भूख निवासियों की संख्या अंतर है तो नया आवासियों की संख्या में बाधा पड़ती है। आवासियों में शारीरिक वनावट खुद भूख निवासियों की संख्या का जन्म नहीं देती। शारीरिक वनावट में अक्षयता या हीनता की भावना तभी उभरती है जब अन्य कारणों के कारण हीनता का संघर्ष उपस्थित हो।

(४) संस्कृतियों में समानता एवं असमानता—नया आवासियों और भूख निवासियों की संख्या में निवासियों की संख्या अधिक साम्य होगा उनका ही मूल और शीघ्र संस्था में प्रवाण होगा। भारत के तमिल प्रदेश जाने वाले प्रवाणों में विशेष कठिनाई की संख्या के समाज में घुल मिल गया। दानों की भाषा और धर्म में बहुत नाम्य था। संस्कृतिक विशेषताओं में धर्म और भाषा की भिन्नता साम्य में अधिक बाधा डालती है और वसतनी वसतनी भाषा, प्रथाएँ, विश्वास और धर्म सभी की भिन्नता साम्य में विचारों का कठिन बना देता है।

(५) अथ समुदायों का स्थान—हमने देखा है कि आवासियों बहुत नया दान, शहर या प्रान्त में अपने पृथक् उपनिवेश या वस्तियों बनाते हैं। ये उपनिवेश या अथ समुदाय साम्य में महत्वपूर्ण शहरी भूमिका अदा करते हैं। पहले ये नया आवासियों का सुरक्षा की भावना प्रदान करते हैं। व आनन्द ही 'संस्कृतिक संस्था' नहीं पाते। इस प्रकार ये वस्तियाँ नई परिस्थितियों में समायोजन और धीरे धीरे आनन्द कठिनाई में बराबरी हैं। दूसरे तबूँकि ये वस्तियाँ आवासियों की पुरानी परम्पराएँ उनके रीति रिवाज और रीति का धारण करने में सहायक होती हैं नया दान का समाज इन्हें विदेशी अजनबी और अवांछित समझकर देता है। इससे साम्य में विचारों में अवरोध आता है।

सात्मीकरण और आवासियो की भावो पीढियाँ

मूल निवासिया और आवासियो में सात्मीकरण की विधा से जो समान जावन बनता है वह एक ही पीढी में बन सकता है अथवा आवासियो की कई पीढियाँ में बाँटा ही आ पाय। नये आवासियो में अपने जीवन के प्रति माह्र रहता है। उसमें निमृण विरोध या राक्ष नये जावन में उह नही खपन दती। किंतु इनकी सत्ताने उनके पुरान जीवन के आरूपण से दूर होनी जाती है और नये समान की प्रथायें, विश्राम भाषा धम आदि अपनाते जाते हैं। आवासिया में बच्चा और इन बच्चा में खेल और व्यवहार बहुत कुछ बदल जाते हैं। मूल निवासियो और आवासियो में सहवास के अनिश्चित शान्ति ब्याह भी होने लगते हैं। य अत विवाह दाना समूह में विरोध के कम होने या नष्ट हो जान के साक्ष्य है। धीरे-धीरे आवासिया की सत्तान मूल निवासिया की पाशाक भाषा, धम त्योहार और परम्परायें अपना लेते हैं।

कभी-कभी सत्ताने वाले में आवासी के बच्चा में अपने परिवार और पडोस में नियंत्रण के विनाश विद्रोह उठ खडा होता है। जत्र उह मातृम होता है कि उनमें माता पिता के विश्वास प्रथायाँ, विचार या पाशाक का मूलनिवासी घृणा या अनादर से देखते हैं जब उह विद्यार्थ खल के भदान और काम क कर्ता में अपने पूजना की सञ्चित के प्रति घृणा का वातावरण दिखाइ देता है ता य अपने परिवार और पडोस के नियंत्रण को दूर फेर देने है, परिपाटी और परम्परा की अवहलना करते हैं और किशोर अपराधी बन जाते हैं। वास्तव में आवासिया के बच्चा का सम्पूर्ण सामाजिक पर्यावरण से अनुकूलन करन में बड़ी कठिनाता आती है क्याकि उनमें परिवार तथा समुदाय की रूढियाँ में भेद ही नहीं कभी-कभी मध्य पाया जाता है। उनके सामने ऐसी स्थिति होती है कि उह अपने लिये जीवन का एक नया प्रतिमान बनाने की अतीव आवश्यकता प्रतीत होती है।

अनुकूलन का सिद्धांत

यक्ति और समूह जिन तरीका से और जितने अशा में नये पर्यावरण की सामाजिक दशाया से अनुकूलन करते हैं उसके बार में ऊपर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। हमने यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि उह अनुकूलन की विधा में कई समस्यायाँ और अवरोधा का मुकाबला भी करना पता है। आइये अब अनुकूलन के सिद्धान्त का विवरण करें।

ऊँची या अल्प विकसित सम्यतायाँ में अनुकूलन कम लोचनीय होता है। अल्प विकसित और अधिक जटिल समाज में विभेतीकरण की मात्रा अधिक होती है। उम्र समुदाय के प्रतिमानों से नये आन वाले का पूण सरूपीकरण नही होता। तरिका नीतियाँ, प्रथायाँ तथा विश्वासों में भेद होने में समुदाय की मात्रा कम लोचनीय और कम व्याप्य होती है। नये सम्य को अपने सामाजिक सम्यक चुनने, अपने

नियमन नैटन तथा नई दशाश्रम अपनी व्यक्तित्वता की अभिव्यक्ति करने के अतिरिक्त न्याय मिलता है। जटिल समाज के आगन्तुक के लिए तथा मूल निवासी के लिए अलग-अलग स्थान है। उस वहाँ के वातावरण में अपने अनुकूलन स्थान या सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम रहना नहीं है। वास्तव में जटिल समाज की विविधता (heterogeneity) एक अनुकूलन का मरलता तथा गतिशीलता में ही जान देती है। एक ही स्थान में रहना चाहिये कि उपरोक्त अनुकूलन मिश्रण के अभाव में भी है। जिस सुविधा में आगन्तुक नये समाज की दशाश्रम से अनुकूलन कर लेता है यह हमारा समाज की उपवासन क्षमता (adaptability) के अभाव में पूर्णतया समाज की विविधता पर निर्भर नहीं है। कुछ समाज आगन्तुक के प्रति अतिरिक्त सहिष्णुता है और कुछ अन्य समान तथा कुछ तो हर प्रकार के आगन्तुक का प्रवेश अवांछित तथा अस्वीकार्य समझते हैं। उनके लिए वह कारण दिए जा सकते हैं। इतिहास और महत्त्व में इन विविधता का खानता पड़ेगा। मध्यकाल में आज भारत में अतिरिक्त विकसित हो चुका है किन्तु मुसलमानों के प्रति सहिष्णुता हाना तो हो रहा है कि आज भी उन्हीं धृष्टता की दृष्टि में देखता है। इस सब के कारण में ऐतिहासिक घटनाएँ हैं। इस प्रकार समाज के किसी भी देश में यूजी (Jews) नाम लगे पाए किन्तु चीन के समाज में वे अपना पृथक घम स्वरूप ही विकसित हो गये हैं।

सामाजिक अनुकूलन तथा भौतिक उपयोजन (Social Accommodation and Physical Adaptation)

जिस तरीके से समाज अपना उपवासन अपने प्राकृतिक या भौतिक वातावरण (habitat) में करते हैं उन प्राकृतिक उपयोजन कहते हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि जिस विधा में समाज एक पूर्वस्थित सामाजिक प्राकृतिक स्थिति से समायाजन करते हैं उन अनुकूलन कहते हैं।

प्राकृतिक उपयोजन एक जिवित विधा है अनुकूलन एक सामाजिक विधा। यदि मनुष्य के कुशलता जाकर पनाह में घम जायें और उनके बच्चा का बढ़ना तथा रोग सामान्य मनुष्यात्मिक बच्चा में भिन्न हो जाय तो वे नई दशाश्रम में (प्राकृतिक और सामाजिक) में नैतिक उपवासन करते मान जायेंगे। परन्तु जब इन्हीं बच्चा में हिंसामक या आक्रामक स्व विकसित हो जायें अथवा वे शहर का गरीब स्थिति के कारण अपराधियों के परिवार में शामिल हो जायें। इन दोनों उपकरणों में सामाजिक अनुकूलन की विधा कार्य करती है।

सम्पूर्ण पयावर्ण के द्वारा भौतिक एवं सामाजिक पदों मनुष्य का सम्बन्ध प्रभावित करने रहते हैं। सामाजिक रचना और सामाजिक परिवर्तन का विचारण करने समय भी हम मनुष्य पर इस प्रभाव की ओर महत्त्व करेंगे। यहाँ इस प्रभाव के कारण न केवल कुछ साधारण और प्रारम्भिक विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

वशानुमण और पर्यावरण

मनुष्य और समाज में भेद होता है। हमारा साधारण अनुभव यह बतलाता है कि कोई भी दो व्यक्ति शारीरिक विशेषताओं, बुद्धि अथवा अन्य गुणों में एक समान नहीं होते हैं। वही प्रकार सामाजिक समूहों और समुदायों की विशेषताओं और गुणों में भेद होता है। इन भेदों को निश्चित करने वाले कारकों को जानने का प्रयत्न पारम्भ से होता रहा है। मनुष्यों और समूहों के विकास में जिन कारकों का हाथ है, उनमें से वशानुमण¹ और पर्यावरण दो सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक हैं।

बहुत प्राचीन काल से प्रायः सभी समाज और जातियाँ यह विश्वास करती आई हैं कि सन्तान में माता-पिता का रुधिर बहता है। समान से समान ही का जन्म होता है। एक दम्पति की सन्तान में उसके समान ही गुण और विशेषताएँ मिलती हैं। विद्वान् दम्पति की सन्तान में विद्वान्, अपराधी की अपराधी और गीच की सन्तान नीच होती है। हमें सन्देह नहीं है कि खानदान का मनुष्य के व्यक्ति-विकास पर जबरन प्रभाव पड़ता है। यदि खानदान ऊँचा है उसमें शीशुवाण और महान् व्यक्ति हैं तो उनकी सन्तान भी महान् और शीशुवान् होगी। इसके विपरीत नीच निकम्मे और चरित्रहीन खानदान की सन्तति नीच, निकम्मी और पतित होगी। इसी सहज विश्वास का फल है कि 'याहू शास्त्रियों के समय युवक युवतियों को माता-पिता खानदान देखते हैं और जहाँ तक जाना है प्रतिष्ठित और पवित्र खानदान से अपनी सन्तान का विवाह करना ठीक समझते हैं।

दूसरी ओर हमने उन कथायुक्तों को भी पढ़ा और सुना है जिनमें मनुष्य-व्यक्तित्व के विकास में पर्यावरण के महत्वपूर्ण प्रभाव को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया जाता है। सगीत ही मनुष्य का बनाती और बिगाड़ती है।' नीच की सगीत व्यक्त

1 इसके स्थान पर पशुवृत्ता या 'वशानुमण' शब्दों का प्रयोग भी हो सकता है।

का नीच ही बना सकती है। बहावन भी है वाजर की काठरी म कमा हू सयानो जाय एक ठीक काजर की लागिहै पै लागिहै।

उपरालत लोना प्रकार की प्रचलित धारणाया का आधार सामाय अनुभव है। इसलिये इनम एवागी दृष्टिकोण भरा है। वास्तव म जिक जीवन म हम प्रमग तथा अपनी भावना के आवश म वह जात हैं। विन्नु मनुष्य और समाज क विकास मे किना हाय पर्यावरण का है और किना वशानुक्रमण का इसकी पडनाल कग्ना मूल स जात हैं। मनुष्य क सामाजिक जीवन म इन दाना कारका क मापनिक महत्व का निधारण करत पर गम्भीर ध्यान ही नहा लिया जाता है। हम प्राय अपन पूवानुभव तथा पूवनिगया म किमी एक कारक क पक्ष म वह जाने हैं। अस्तु हमारा लियेय प्रमनुलित और विवृत रप्ता है।

वशानुक्रमण और पर्यावरण का विवाद

कुछ बानिक भी सामाय ब्यक्ति क तथा म नहीं बच। जाव शास्त्रा ब्यक्तिया और समूहा के गुणा और विशेषताया म अन्तर का कारण मनुष्य क वशानुक्रमण म भेदा का बतात हैं। उनकी यह धारणा है कि पर्यावरण चाह जितना भिन्न हा जाय इन सत्यता म काद अन्तर नहीं पडना है। कुछ समान शास्त्रिया और मनावनानिका न भी उपरोक्त धारणा म महमति प्रप्त की है। मनुष्य क नामाजिक जावन म पर्यावरण का सदश्रेष्ठ प्रभावित कारक मानन वाल विद्वान इस दान पर जात दत हैं कि मनुष्य क गुणा और स्वभाव एक समूहा क विकास पर पर्यावरण का सबसे अधिक और स्थायी प्रभाव पप्ता है।

हम अन्त पाठका का ध्यान एक दात की आर आदृष्ट करना चाहत हैं। कुछ नवीन बचका न समानशास्त्र की पुस्तका म लिखा ह कि पर्यावरण को मवश्रेष्ठ कारक मानन वाल विद्वान साम्यवादी हैं। एक निपरान वशानुक्रमण का मनुष्य और समान क जावन म प्राथमिक प्रभाव मानन वाल विद्वान् पूजोवादी हैं। यह मान बवल अन्त सही है। आधुनिक विद्वान्—जाना पूजोवादी तथा साम्यवादी रप्ता क—यह स्वीकार करते हैं कि मनुष्य क ब्यक्ति क विकास और नामाजिक जीवन की सफलता म पर्यावरण तथा वशानुक्रमण राना का महत्व है।

वशानुक्रमण के प्रभाव का अध्ययन

फ्रांसिस गाल्टन न मवन पत्रल १८६८ ई० म अपनी पुस्तक¹ म लिखा कि यद्यपि प्रतिभा क सम्बन्ध म सयाग का कुछ स्थान ह फिर भी बच्चा क अग्रिक बुद्धिमान हान की बहुत सम्भावनायें हैं यदि उनक माता पिता की बुद्धि श्रेष्ठ हा। वह प्राग बहता है कि मनुष्य क शारीरिक और मानसिक नमरणा म भिन्नता पत्रुक्ता की भिन्नता क कारण होता है। क वजन वग स्वाम्य स्फूर्ति, मानसिक शक्ति

¹ Francis Galton, *Hereditary Genius* (1869)

यूथचारिता बुद्धि वायक्षमता आदि गुण मनुष्य की पतृकता पर अवलम्बित हैं। बड़े बड़े यायाचीशा राजनीतिज्ञा सैनिक अधिकारिया, साहित्यिकता तथा विलाडिया व जीवन चरित्रा को पढ़न स जात हाना है कि इन लागे व कुटुम्बा म इहा क्षत्रा मे प्रग्यात अय यक्ति भी हुण है। यह दम बात को सिद्ध करता है कि महानता का निधारण पतृकता म हाना है। उच्च वर्गो म गिन्न वर्गो की अपक्षा अदिक महान् प्रिभूतियाँ पश हइ हैं। पतृकता के कारण नी मनुष्य की एक जाति का वायक्षमता और धादिक विकास दूसरी जाति स भिन्न होने ह।

(२) गाट्टन के अनुयाइया म फ्रांस के अल्फ्रजा डि कण्डाल और गिन्न के वान पियसन के नाम प्रसिद्ध हैं। इन दोना न गाट्टन की पारम्परिक सम्बन्धी रीति का उपरोक्त मस्य्या व अध्ययन म प्रयोग किया। उहान यह सिद्ध किया कि व्यवसायी और कुनीन वशा म जम लोगो न ही साहित्य विज्ञान और राजनीति व क्षत्रा म यश कमाया है। बाल पियसन ने यहा तक लिखा है कि मनुष्या व महत्व पूरा भेगो के निरारण म पतृकता की अपक्षा पर्यावरण का बहुत कम प्रभाव है। उमका यह टावा था कि पर्यावरण और पतृकता की सापेक्षिक प्रभावकता का नापा भी जा सकता है। उसने कुछ एस साध्य एकर किय थे जिसत यह सिद्ध होता था कि एर समुदाय म एक ही जाति के लागे व दिए पतृकता म पर्यावरण की अपक्षा सात गुना अधिक प्रभाव है।¹

(३) पियसन का अनुसरण अय कइ अवपगा म किया गया है। इतम स कुछ म वग अथवा व्यावसायिक श्रेणियो का अध्ययन कर यह प्रतिपात्त किया गया है कि उन समुदाय म जिनकी सामाजिक अथवा बौद्धिक प्रतिष्ठा उन्नत थी, प्रतिभावाद् और प्रतिष्ठित व्यक्तिया की सग्या मदक उची रही है। साथ ही कुट्ट म निश्चयात्मक पारम्परिक सम्बन्ध का उपाहरणा द्वारा पुष्ट किया गया ह। राज घराना म अय परिवारा की अपक्षा अधिक प्रतिभाशाली यक्ति जमत ह। अमरीका व पाल्सी परिवारा म प्रख्यात यक्तिया की सग्या सजस अघिन रहा है। दूसरा स्थान पशेवर परिवारा और तत्पश्चान यापारिया, किसाना और मजदूरा व परिवारा का स्थान है। मवीन कटल न अमरिक्न मन आव साइम म लिखा है कि अमरीका के ६६५ वैज्ञानिका म से मसम अधिक सग्या पशेवर वर्गो म जमन वाला की थी। सबम कम मस्या उन वैज्ञानिका को थी जिनका जम कृषक वर्गो म हुआ था। परन्तु पशेवर वर्गो म अमरीका की जनसख्या का कवल १% था जबकि कृषक वग म लगभग ४० प्रतिशत।

(४) दूसर विद्वाना न मनुष्य और समाज पर पतृकता के प्रभाव का अध्ययन करन टुण प्रजाति (race) या राष्ट्र का श्रेणिया का लकर बौद्धिक परीक्षाया

1 Karl Pearson *Nature and Nurture* (London 1910) & other papers in the Eugenics Laboratory Lecture Series

किन्तु हमें ध्यान रखना चाहिए इस प्रकार की समस्याओं हमको पतृकता और पयावरण में स किसी के बारे में भी नहीं बताती। उनसे इन दोनों कारकों के विभिन्न भेदों की बात ही कुछ बात हो सकती है। इसी प्रकार कि तथ्य इकट्ठे करने वाले बहुत स अधिक इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पयावरण की अपेक्षा पतृकता अधिक शक्तिशाली कारक है। किन्तु इसी तथ्य का इससे उलटा निष्कर्ष निकालने के लिये भी प्रयोग किया जा सकता है। हमने यह कई बार दोहराया है कि हर विशिष्ट समूह का विशिष्ट पर्यावरण होता है। पयावरण तथा जीवन की अनवरत अंतर्निहित होती रहती है। अगर इस तथ्य को हम भुला दें तो उपरोक्त अध्ययन द्वारा एकत्र साक्ष्य के आधार पर केवल एकांगी निष्कर्ष निकल सकेगा।

इस प्रकार के कुछ अन्य अध्ययन द्वारा यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि विभिन्न यावसायिक व्यवस्थाओं के समूहों के सदस्यों की प्राप्ति के विभिन्न अनुपात में मिलते हैं। प्रायः कहा जाता है उच्च श्रेणियों के बच्चों में निम्न श्रेणियों के बच्चों की अपेक्षा प्राप्ति का अंश अधिक होता है। यह भी कहा जाता है कि विभिन्न पेशा या व्यवसायों में लग लागा कि समूहों की जनसंख्या का वितरण नैसर्गिक योग्यता के आधार पर होता है परन्तु इन निष्कर्षों में भी समस्या के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं की अपेक्षा की गई है। पेशा के अनुसार जनसंख्या का वितरण एक जटिल सामाजिक घटना है। इस वितरण का आधार जैविक नहीं है और न इसी प्रकार के किसी अकेले कारक को हम जानते हैं जिससे विभिन्न पेशा में शीघ्र गतिशीलता पाई जाये। छात्र या निम्न श्रेणियों के पेशा के लोग कई बार उच्च श्रेणियों के पेशा में चले जाते हैं। आधुनिक समय में यावसायिक गतिशीलता बहुत अधिक हो गई है। एक दूसरी बात और है कि उनकी उपमा उपरोक्त अध्ययन करते हैं। किसी समय भी छोटे से छोटे पेशे में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो साधारण जाति से पर्याप्त उच्च बुद्धि या प्रतिभा के हान हैं।

उपसंहार

पतृकता के अनुगन्धान अधिक सतोपजनक नहीं हैं। इनसे यह नहीं सिद्ध हो सकता है कि अनुपत्त्या की महानता पयावरण के कारण नहीं है। मजदूर वर्ग में सामाजिक वर्गों की अपेक्षा में महान् पुष्प हुए हैं—इस तथ्य से यह निष्कर्ष भी निकल सकता है कि मजदूर-वर्ग का पर्यावरण ही ऐसा है जिसमें महानता के गुणों का प्राप्ताहन नहीं मिलता। मजदूरों के बच्चों को अभाव और निधनता में पालना पड़ता है। उनकी शिक्षा बहुत अपेक्षा होती है। अभिप्राय यह है कि उनका सामाजिक मास्त्वैतिक पर्यावरण अवनत अथवा अभावग्रस्त होता है। कृत्रिम रूप से उनमें एक नव जीवनियम पैदा करने के लिए कि सम्पत्तिजनक आब रसज में इस बात पर बल दिया है कि महान बुद्धिनिष्ठा के जीवन चरित्र इस बात के साक्ष्य हैं कि समाज में प्रतिष्ठा और स्वाति प्राप्त साधनों का अनुकूल पर्यावरण मिला है। इतिहास में उन लोगों का कोई वर्णन नहीं है

निम्न मजतना के गुण विद्यमान थे और जा प्रतिकूल परिस्थितिया के विराम म भी अपनी श्रेष्ठ पत्रकता के बल पर आगे बढे । जून के कथन की मजतना हम नहरे परिवार के सदस्या की न्याति का दृष्टि म रमकर मालूम कर सकन है । इम परिवार के सभी सदस्य उत्तमि उन्नति कर सके है कि उन्हें उन्नति करन और महात् बनन के लिए उपयुक्त पर्यावरण मिन सता था । एक हुनग उदाहरण लीनिय मिनमा जगत की प्रसिद्ध पात्र गात्रिकायें—लना मगाकर आशा नामले आदि सभी बहिन इम लिए उतना न्याति प्राप्त कर रही है कि उन्हें मगोन कता का ययष्ठ प्रीशा मिली । एम कता म दयता प्राप्ति के लिए उन्हें अपन पिता म प्रेम्णा मिली और पिता तना उनके अप मित्रा म मिलकर नचित पर्यावरण भी मित । मनुष्य की सामाजिक न्याति का प्रदान कारण उनकी अपरित पिता-दीशा है । हाँ पत्रकता के श्रेष्ठ हान म उन पिता-दीशा का परिणाम बहून अच्छा हो सकता है ।

जितन ही परिवार यान्त्री लुण और फिर अवनति और नगष्यना के गन म डूब गय । इनकी उन्नति और अवनति म पर्यावरण और पत्रकता का कितना हाय रहा म निश्चित रूप म नहो कहा जा सकता । पर्यावरण का तुनना एक कारीगर स की जा सकती है । कुन कारीगर कन्व मान म मुन्दर और श्रेष्ठ माल तयार कर तना है । अकान कारीगर उनी कच्चे मान म रूप और निम्न श्रेणी का मान तयार करता है । यहा कच्चे मान म मनुष्य के वानुगन गुणा की तुनना की जा सकती है ।

पत्रकता और बुद्धि

विभिन्न विद्वाना न (विनयकर मनावनानिकान) मिन मिनल वर्गो या नस्या के लोगो की बुद्धि परीशाएँ कक उनकी पत्रकता और उच्च म मध्य न्याति मिया । नीन पत्रकता दाल बन्वा या तारा की बुद्धि का मन्मन्त नीचा हाना । उनके विपिन श्रेष्ठ पत्रकता वात लागो की बुद्धि का मन्मन्त उचा हाना है ।

पत्रकता के अध्ययना के निम्नप श्रेष्ठ है क्यकि बुद्धि-परीशा की रीति अभी दायभूत । विभिन्न पर्यावरणा म उन पात्र-पान मय तथा मुमन्तन तागा की मन्मन्ति म नेप हाना अनिवाय है । एक समूह के व्यक्तिया का जिन जना की विनय जानकारी है, बहून मभव है कि दूसर समूह के जना का उन बातों की जिविन मात्र भी जानकारी न ल । जिनाना का खेती की जवन मूखम जानकारा हा मन्ती है । शहर म आकर बहा जिनान अज्ञोय भौतकहा हो जाता है । जय य मक्क के बायें जिनान पर नही चल पाना ना विवाग गैवार' कहा जाता है । बुद्धि परीशा के लिए प्रयुक्त प्राना म मक्के वना मय यह हाना है कि वे मावमौमिक नही हैं जिनके उत्तरा की अपशा हर समूह के सदस्या स का जा मक । एक समूह के लिए बनाय गय प्रान इमर समुदाय के लिए उपयुक्त नान हान । यदि एक ग्रामीण आर एक नगरीय विद्वानय के विद्यापिया

स कुछ सामान्य प्रश्न पूछे जायें तो बहुत सम्भव है कि कुछ ग्रामीण विद्यार्थियों के उत्तर नगरीय विद्यार्थियों के उत्तरों से कहीं अधिक अच्छे हों। इसी प्रकार, यदि कोई चार प्रश्न सामान्य रूप से ब्राह्मणों और चमारों से पूछे जायें तो सम्भवतया ब्राह्मणों के उत्तर अनाप शनाप हों सकते हैं और चमारों के सर्वोत्तम। या कबल कुछ चमारों के उत्तर सर्वोत्तम हों लेकिन श्रौतनन ब्राह्मणों के उत्तर अच्छे हों। इसमें बुद्धि-परायणता की रीति-कटाव प्रत्यक्ष हों जाते हैं। बुद्धि परीक्षाओं से किसी विवादाधीन निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता।

नैसर्गिक योग्यता में अंतर

यदि हम यह भी स्वीकार कर लें कि विभिन्न वर्गों या नस्लों के सम्बन्ध में नैसर्गिक योग्यता असमान होती है तो यह तो नहीं मिथ्या होता कि यह असमानता उनकी भिन्न पतृकता के ही कारण है। इस असमानता पर पर्यावरण का प्रभाव भी निस्सन्देह पड़ा होगा।

शारीरिक विशेषताओं में भेद

कुछ विद्वानों ने शारीरिक विशेषताओं में भिन्नता का कारण भी श्रेष्ठ या हीन पतृकता बताया है। अमरीकी सैनिक गेरोर ऊँचे कद का और बलिष्ठ शरीर का है। क्या? उसकी पतृकता श्रेष्ठ है। इसके विपरीत जापानी या चीनी सैनिक न तो शरीर गारा ही होता है और न इतना ऊँचा और बलिष्ठ ही। क्या? उत्तर उनकी पतृकता अमरीकी सैनिकों की पतृकता से हीन है। कुछ लोग तो मनुष्यों के शारीरिक और चारित्रिक गुणों की श्रेष्ठता अथवा हीनता का कारण पतृकता ही मानते हैं। इस प्रकार के विचार भ्रमात्मक और अज्ञानिक हैं। शरीर की रचना, कृष्ण और बलिष्ठता आदि विशेषताओं पर जलवायु, भोजन, रहन-सहन तथा प्रारम्भिक संस्कारों का प्रभाव उत्तम ही महत्वपूर्ण है जितना पतृकता का। गीनफर्ड लिखता है कि गेरोर के क्षण से लेकर बीस तक बढ़कर बाल ब्राह्मणों पर कद बाता का प्रभाव पड़ा है। माता के स्तनपान, पशुधारा की व्यवस्था, खान-पान, रहन-सहन का परिस्थितियाँ व्यवस्थित ध्यायमान करना, किशोरों का दण्ड आदि कद बाता का प्रभाव सनातन का शारीरिक रचना पर पड़ता है।¹

फ्रेंज बोशम ने कुछ मायों से मिथ्या किता है कि कई पीढ़ियों में अमरीका में रहने वाले आदिवासी जापानी और यूरोपीय प्रजातियों के लोगों की औसत ऊँचाई २ फुट ६ इंच तक बढ़ गई है। उनकी शारीरिक रचना में भी परिवर्तन हुआ है। प्रत्यक्ष है यह परिवर्तन अच्छे पर्यावरण और प्रजाति मिश्रण के कारण हुआ है।

उपसंहार

मनुष्य के ऊपर पतृकता एवं पर्यावरण दोनों का प्रभाव पड़ता है। इन दोनों प्रभावों के पृथक्-पृथक् का पृथक् पृथक् कटाव असम्भव सा है।

स हृद्या है उन्हें अध्ययन के लिए अलग अलग करना नितांत असम्भव है। बहुत सम्भव है दोनों कारका का मनुष्य के विकास में समान प्रभाव हो।¹

सामान्य पर्यावरण और विभिन्न पतृकता

गिणु कान्ग या अनाथालया में पल बच्चा का पर्यावरण सामान्य रहता है। यह तो स्मरण ही रहेगा कि इन स्थानों पर बच्चे विभिन्न माता पिता की सन्तान होते हैं। अतएव इन विभिन्न पतृकता के बच्चों को सामान्य पर्यावरण में पलने का अवसर मिलता है। कुमारी बक्स (Barks) ने इस प्रकार के बच्चों का अध्ययन कर यह सिद्ध किया कि मनुष्य की बुद्धि व विकास में पतृकता का २०% तथा पर्यावरण का ८०% प्रभाव पड़ता है। अच्छे परिवार के पर्यावरण के बच्चों के बुद्धिफल में २० प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है।

डविन् एवाहमन ने जो कहा है उससे पर्यावरण और पतृकता में उचित सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। उसने कहा था कि मनुष्य क्या कर सकता है? अथवा उसको क्या काय-क्षमता है? यह पतृकता निर्धारित करती है। और मनुष्य क्या करता है? यह पर्यावरण निर्दिष्ट करता है। मनुष्य की शक्तियाँ पतृकता में निर्मित होती हैं और उनको बाहर निकालना पर्यावरण का कार्य है। बीज पतृक गुणों का काप है किन्तु बीज का विकसित होना पर्यावरण पर अवलम्बित है। यह कहना व्यर्थ है कि पतृकता किसका प्रभाव कम या अधिक है।²

पतृकता और पर्यावरण की अभिन्नता

(Inseparability of Heredity and Environment)

हमारे जीवन की प्रत्येक घटना पर्यावरण और पतृकता दोनों कारकों की उत्पत्ति है। इन परिणामों में दोनों की समान आवश्यकता है। इन कारकों में से एक का भी हम अपने जीवों से हटा (eliminate) नहीं सकते और न किसी एक को पृथक् (isolate) ही कर सकते हैं। हमारे जीवन की हर विशिष्ट स्थिति में दोनों का अत्यन्त जटिल मेल है। कल्पनातीत समय से माना जा रहा है कि विकसित स्थिति का उत्पन्न करने में क्रियाशील (operative) रह है। व दोनों हमारे जीवों से अत्यन्त अधिक जुनमित हैं कि उनका मापनिय महत्व अत्यन्त असम्भव है। लूम्ल (Lumley) का मत है कि हमारे जीवन पर हर प्रभाव दोनों का मिश्रण है।

शरीर और पर्यावरण में सम्बन्ध की स्थापना सातमीकरण विधा (asimilation process) से होती है। शरीर पर्यावरण के भागों को चुनता है और उन्हें

1 Twin A Study of Heredity and Environment (Chicago 1947)

2 To argue which of the two is more important for the development of human being would seem to be about as futile as an argument whether the male's sperm or the female's ovum is the more important in effecting a conception. Either without the other is essentially useless. J. F. Sociology (1931) p 174

अपन म ममा लेता है । फलस्वरूप सार्वगिक विकास इस बात पर निर्भर है कि (१) व्यक्ति न अपने माता पिता से कितने और किस प्रकार वशानुगत गुण प्राप्त किए हैं और (२) पयावरण न उनमें क्या आत्मसात किया है ।

मिच्युरिन (Michurin) ने अपन अन्वेषण का निष्कर्ष इन बातों में किया है । अपन अध्ययन में मुझे विश्वास हुआ गया है कि पैतृकता प्राचीन पयावरण का कृत याग है । पयावरण प्रत्येक शरीर में समा जाता है । इसके कुछ अणु पिन्डिका (genes) द्वारा आती पीढियाँ की मूलान में हस्तान्तरित हो जाते हैं ।

पतृकता, जिम्का हस्तान्तरण बीज कोष (germ cells) के द्वारा होता है म जावन की सम्भावनाएँ निहित होती हैं किन्तु इन सम्भावनाओं की यथावताप्रा (actualities) को जागृत और उपस्थित होना का अवसर पयावरण में मिलता है । जिन मनुष्यों अथवा ममाजा में पयावरण में परिवर्तन आन पर तदनुसृत ममा-याजना करने की क्षमता नहीं होती व अन्ध पयावरण में रहकर भी पिछड़े रहता । अष्ट पतृकता का समुचित और सम्पूर्ण विकास तभी सम्भव है जब उसके अनुकूल पयावरण मिले । अच्छा बीज अनुकूल पयावरण मिलने पर खूब फल-फलेगा । किन्तु यदि बीज खराब है तो उभी पयावरण में रहने पर भी कोई अच्छा परिणाम नहीं दिखे मरना । लार्सेनका (Lysenko) भी इस तक की पुष्टि करता है ।

मच तो यह है कि पतृकता हम विकसित होना की क्षमताएँ (capacities) प्रदान करती है परन्तु इन क्षमताओं का विकास का अवसर पयावरण में मिलता है । पतृकता में हम विशाल पूंजी (working capital) प्राप्त होता है और पयावरण से इनके निदान (investment) के पयाप्त अवसर ।¹

मराद्वर और पज के मन का उद्भूत कर हम इस अध्याय का समाप्त करते हैं । व निखन है कि जना आवश्यक है कि पतृकता जितनी अधिक लेख हागी उतना ही वह पयावरण का प्रतिबलना का लोघन की बाणिज करगी और सम्भव है मदन भी हो जाय । इस प्रकार पयावरण जितना अच्छा होगा उतनी ही अधिक जगता से वह मनुष्य की पैतृकता की सम्भावनाओं (potentialities) का यथावताप्रा (actualities) बनने का अवसर देगा ।²

1 Landis and Landis *Social Living* p 8

2 MacIver & Page *op cit* p 98

ग्रामीण और नगरीय जीवन

हमारे सामाजिक जीवन के दो यापक सगठन गाँव और नगरों के रूप में मिलते हैं। वास्तव में सामुदायिक संगठन के ये दो प्रधान प्रकार हैं। नगर एक ऐसा पर्यावरण है जिसे समाज में बनाया है। इसमें सामुदायिक जीवन के प्रयाजना के लिये प्राकृतिक पर्यावरण के अनक पहलुओं में संशोधन कर लिया जाता है। कभी कभी सा प्राकृतिक पर्यावरण का समूल नष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। गाँव का जीवन अधिक प्राकृतिक पर्यावरण के अनुकूल होता है। पिछले अनेक वर्षों में हम समाज पर पर्यावरण के प्रभावा की विवेचना कर चुके हैं। इस अर्थ में गाँव और नगर के सामाजिक जीवन का अध्ययन हमें इस उद्देश्य से करेंगे कि सामाजिक पर्यावरण के कौन कौन से माट माट प्रकार हो सकते हैं। गाँव और नगर ये दोना सामुदायिक दो प्रकार के यापक सामाजिक पर्यावरण के उदाहरण हैं। किन्तु गाँव सामुदायिक जीवन के भय का वगान कराने को सरल कार्य नहीं है।

ग्रामीण और नगरीय जीवन की तुलना में कठिनाइयाँ (Difficulties in Comparing Rural with Urban Life)

सामाजिक समूहों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए हमें दो समूहों का या समुदायों का अध्ययन करना पड़ेगा। हमें अपने-अपने निष्कर्षों पर पहुँचने का भय रहता है कि उन-उन निर्मातृत्वित जटिल कारकों का हमें भ्रमनात्मक न समझ लें। साधारणतया यक्ति-द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के लिए केवल कुछ उदाहरणों का ही पर्याप्त समझ देना है। दो सम्पूर्ण स्थितियों में तुलना करने के समय यह उन दोनों में से किसी एक तत्व को चुनकर उमी के आधार पर साधारण नियम (generalisations) देना देना है। किन्तु दो सामुदायिक जीवन के समझने के लिये केवल प्रकृति के व्यवसाय या जलवायु आदि जिन अनेक कारकों का आधार मानना नरामकर चलता है। सा पृथक स्थितियों की मही तुलना के लिये आवश्यक है कि हम उस ऐतिहासिक विधा का, जिसमें उनका अध्ययन

विक्रम हुआ है, विश्लेषण करें। दूसरे, प्रत्येक तुलनीय स्थिति के वर्तमान स्वरूप को निर्मित करने वाले विभिन्न कारकों का विश्लेषण भी करें।

ग्रामीण और नगरीय समाज की तुलना में निम्नलिखित कठिनाइयाँ हैं —

(१) अनेक शताब्दों से मनुष्य के वास्तविक मानचित्र और माट प्रकार गाव और नगर रह हैं। किन्तु दाना के बीच में बर्तमान स्पष्ट भेद नहीं है ता यह बताने कि अनेक स्थान पर गाव समाप्त हो जाता है अथवा अनेक स्थान पर नगर प्रारम्भ होता है। नगर और गावा में बचने अशा का अन्तर (difference of degree) है। यदि कलकत्ता या बम्बई से २० मील दूर कुछ गावा न जगते में विशाल प्रमाणात बना कर रहना प्रारम्भ कर दिया है ता उसको एक नगर नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए नगर के बीच-बीच में किसी समस्त घगन में एक बड़ा बाग लगाकर उसमें कुछ छाट-छाट मसान बना लिये हैं ता वहाँ प्राकृतिक वातावरण हीन हीन गाव नहीं कहा जा सकता। गाव और नगर भौगोलिक स्थान मात्र नहीं हैं। वे सामुदायिक जीवन के रूप में अलग हैं।¹

एक समुदाय का नाम कहा जाय अथवा गाव इस पर सभी सम्य दशा के वर्तमान गणना में भिन्न भिन्न प्रमाण (criteria) का स्वीकार किया है। फ्रांस में १०० की आबादी वाले समुदाय का नगरीय क्षेत्र कहा जाता है। अमेरिका में २५०० और जापान में १००० की जनसंख्या वाले समुदाय का नगरीय क्षेत्र कहा जाता है। भारत में ५००० से कम जनसंख्या के अनेक कस्बे (townships) हैं। १९११ में की जनगणना प्रतिवर्तन में भारत के नगर (towns) को चार वर्ग में विभाजित किया गया है

- १ महानगर (cities)—१ लाख या अधिक जनसंख्या
- २ बड़े नगर (major towns)—२० हजार से १ लाख जनसंख्या
- ३ नगर (minor towns)—५ हजार से २० हजार जनसंख्या
- ४ कस्बे (townships)—५ हजार से कम जनसंख्या

जनगणना रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया है कि किसी क्षेत्र का नगर अथवा ग्रामीण मानने के लिए कुछ कारकों पर ध्यान दिया जाता है। नगरीय क्षेत्र का निर्माण के कई कारक हैं। जनसंख्या जनसंख्या से बचने एक कारक है। भारत में विभिन्न राज्यों में ही ये कारक भिन्न भिन्न (असमान) हैं।

समाज के विभिन्न वर्गों में नगर क्षेत्र के निर्धारण के भिन्न भिन्न प्रमाण माने जाते हैं। वही जनसंख्या है, वही जनसंख्या का घनत्व, वही समुदाय की वैधानिक स्थिति और वहाँ पर का प्रचलित ढंग। फिर जिन समूहों को ग्रामीण अथवा

1 Rural and urban dept et modes of community life not simply geographical location MacIver & Page Society p 311
2 Census of India 1931 M in Report

नगरीय कहा जाता है। उनका अतगत अनक भेद होते हैं। इससे नगरों और गावा की तुलना का प्रश्न और भी जटिल हो जाता है।

अतएव ग्राम और नगर की तुलना के अतगत अनेक तुलनाया का एक क्रम स्थापित करना पडता है। मान लोजिये कि हमारे पास एक रंग विरगा चित्र है। उनका एक किनार पर ग्राम और दूसरे पर महानगर है। इन दाना किनारो क बीच अनक रगा की भाति एस अनक समुदाय हैं जा लघुतम ग्राम और विशालतम महा मागर क दो छोरा के बीच मे क्रम से खडे है। दा छोरा के बीच नगरीकरण क विभिन्न अशा क दशन हाते हैं। महानगरा से भी सबसे विशाल एक नगर कहा जाता ह। ससार के प्राय सभी बडे और सभ्य दशा म एक एसा नगर होना है जो राष्ट्रीय सीमा के अन्दर के सभी नगरो का पितामह होता है। भारत का कलकत्ता, जापान का टोकिया इगलण्ड का लटन अमरीका का 'न्यूयार्क', रुस का मास्को, फ्रांस का पेरिस एसे ही नगर है। ग्रामीण और नगरीय जीवन म भेद की स्पष्ट रेखा न हान के कारण कुछ समाज शास्त्रियो ने इन जीवना की सुपरिचिन विभाज्यता का कवल सड़ा तिक कहा है। किन्तु इस विचार म सत्यता नही है। ग्राम और नगर सामुदायिक जीवन के दा यथाथ रूप है। हम म प्रत्येक जानता है कि गाव क्या है और नगर क्या।

(२) एक नगर मे अनेक पर्यावरण—दूसरी कठिनाई यह है कि मुख्यतया बडे नगर को एक ही समुदाय नही कहा जा सकता। बडे नगर म विभिन्न संस्कृतिया वाल अनेक समूह बसत है। उनम स प्रत्येक का सामाजिक पर्यावरण दूसरा के सामा जिक पर्यावरणो से थिलकुल भिन्न होता है। इस तरह विशाल नगर म अत्यधिक भिन्न सामाजिक पर्यावरणो का एक क्रम होता है। विभिन्न गांवा म अत्तर अवश्य हाना है किन्तु एक गाव के नागरिको पर एक सामाय प्रभाव ही पडता है। गाव के सभा निवासिया का सामाजिक पर्यावरण सामाय हाना है। नगर क निवासिया पर कई विभिन्न पर्यावरणो का प्रभाव पडता है। शहर म जीवन की अग्रणित रीनिया है। मनुष्य न नगरीय जीवन की साज सज्जा और अवसरा मे अत्यधिक विविधता की मृष्टि की है। गाव के निवासिया का एक प्रकार की भूमि जलवायु ऋतुआ आदि म रहना पडता है। उनका पेशा मे अधिक विविधता नहा हाती है। उनका मुख-सुविधा को मामग्री म भा तीव्र अन्तर नहा है। एक से प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण म जीवन बिताने क कारण ग्रामीणो मे सामाय भूमि सामाय भाग्य और सामाय सम्पन्नता की भावना प्रबल हाती है। इसका विपरीत नगर म निवासिया के पर्यावरण, पशा हित स्वार्थो रखा और आदर्शो सभी म तीव्र एक अत्यधिक भेद हाता है। क सामाय रूप स या सभी मिलकर जीवन के शायद ही एकाध कार्यों को करत हो। उनकी सम्पन्नता और विपन्नता की धारणा भी एक नही होती। अतएव, नगर क सारा म सामाय भूमि, सामाय भाग्य और सामाय सम्पन्नता की भावना का विकास

ज्ञाना दुर्लभ है। न तो नगर के सभी या अधिकांश लोगों के स्वाथ समान हैं और न उठन-बैठन विधाम करने या मनोरंजन के स्थान और घण्टे सामान्य हैं। इस निशा में उनमें घनिष्ठ और अनौपचारिक जीवन का विकास करना कसे हो सकता है ?

नगर के जीवन में बहुत अधिक विजातीयता¹ होती है। यह मुहल्ले के ही निवासियों में परिचय नहीं होता। उसी में धनी, निचले मद्रासी बंगाली हिन्दू मुसलमान आदि पारसा अथवा लम्बी अवधि में बसने वाले और नवीन आगन्तुक एक दूसरे में अन्तर्भेद और विचित्र जीवन बिताते हैं। इसी प्रकार दो मुहल्लों के जीवन में भारी अन्तर रहता है। जनसंख्या की संरचना वृद्धि की दर (जन्म और मृत्यु दर का अन्तर) निष्कर्मणाधिया का स्तर और गन्तव्य निवासियों के आर्थिक स्वाथ राजनैतिक मर्यादा सामाजिक सम्बन्धों और प्रथाओं धार्मिक विश्वास अथवा सांस्कृतिक रीतियों सभी विषयों में भारी भेद मिलता है। बस्तुतः नगर विराटा का घर है। इसलिए नगर और गांव के अंतर को तुलना करना व्यर्थ लगता है।

(३) गांव और नगर में परिवर्तनशीलता—नगर और गांव की तुलना करने में तीव्र गतिविधि इस तथ्य में आती है कि दोनों में स्थिर (गतिहीन) नहीं है। वह गत्यात्मक है। उनमें बहुत परिवर्तनशीलता है। सभी देशों में ग्रामीण जीवन नगर के सम्पर्क में आना चला रहा है। उस पर औद्योगिकीकरण का प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा है। इस कारण गांव के जीवन का भी धन धन नगरीकरण हो रहा है। दूसरी ओर गांवों में जनसंख्या और माधुन्यता का शासन करने नगरों का विकास द्रुतगति में हो रहा है। नगर में आना में पहले गांवों की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है। उस तरह नगरों में एक गांवों के जीवन का भेद धीरे धीरे घूमने (धुंधलाना) पड़ता जा रहा है। यदि गांव और नगर की अन्तर्क्रिया की एक नवीनतम विधा 'ग्राम-नगरीकरण' का प्रसार इसी गति से होना चला गांवा और नगरों के जीवन के अंतर में अंतर ही बहुत कम हो जायगी। एक बात यह पस्मरण रखने की है। कई बार नगरीय जीवन की कई विशेषताओं बस्तुतः में उन घटनाओं के कारण होती हैं जो नगरों की आर्थिक गति का परिणाम होती हैं। गांवों में आकर नगर में बसने वाले अपने साथ अनेक ऐसी समस्याएँ और समस्याओं का साथ हैं जो नगरीय जीवन के स्वभाव पर गम्भीर एवं व्यापक प्रभाव डालती हैं। उदाहरण के लिए शहरों में एकाकीपन अथवा मित्रहीनता का अनुभव मूलतः आवासियों का होता है। इसी प्रकार वैयक्तिक और पारिवारिक विघटन की मात्रा उन मनुष्यों में अधिक होती है जो शहरों के पर्यावरण में समायात्रित पर्याप्त और उचित समय में नहीं कर पाते।

1 The state of being heterogeneous Heterogeneous means of diverse character or having diverse origin भिन्न अथवा विरुद्ध जाति का (बमेल)।

नगरीय कहा जाता है। उनके अतगत अनक भेद हाते ह। इससे नगरा और गावा की तुलना का प्रश्न और भी जटिल हो जाता है।

अतएव ग्राम और नगर की तुलना के अतगत अनक तुलनाया का एक क्रम स्थापित करना पडता है। मान लोजिय कि हमार पास एक रग विरगा चिन है। उसक एक किनार पर ग्राम और दूसरे पर महानगर है। इन दाना किनारो क बीच अनक रगा की भाति एसे अनेक समुदाय है जो लघुनम ग्राम और विशालतम महा सागर के टा छारो क बीच म क्रम स लडे है। दा छारा के बीच नगरीकरण क विभिन्न अशा क दशन हाते है। महानगरा से भी सबसे विशाल एक नगर कहा जाता है। सनार के प्राय सभी बडे और सभ्य देशा म एक एसा नगर हाता है जो राष्ट्रीय सीमा के अदर के सभी नगरा का पितामह हाता ह। भारत का कलकत्ता, जापान का टाकिया इगलण का ल लन अमरीका का यूयाक रस का मास्को, फ्रास का परिम एम ही नगर है। ग्रामीण और नगरीय जीवन म भेद की स्पष्ट रखा न हान के कारण कुछ समाज शास्त्रिया न इन जीवना की मुपरिचित विभाज्यता को केवल सडा तिक कहा है। किंतु इस विचार म सत्यता नही है। ग्राम और नगर सामुदायिक जीवन क दा यथाथ रूप हैं। हम मे प्रत्यक जानता है कि गाव क्या है और नगर क्या।

(२) एक नगर मे अनेक पर्यावरण—दूसरी कठिनाइ यह है कि मुग्यनया बडे नगर को एक ही समुदाय नही कहा जा सकता। बडे नगर म विभिन्न सम्कृतिया वाले अनेक समूह बसते हैं। उनमे स प्रत्येक का सामाजिक पर्यावरण दूसरो के सामाजिक पर्यावरणा से बिल्कुल भिन्न होता है। इस तरह विशाल नगर म अत्यधिक भिन्न सामाजिक पर्यावरणो का एक क्रम हाता है। विभिन्न गावा म अततर अवश्य हाता है किंतु एक गाव के नागरिका पर एक सामाय प्रभाव ही पडता है। गाव के सभा निवासिया का नामाजिक पर्यावरण सामाय हाता है। नगर के निवासिया पर कई विभिन्न पर्यावरणा का प्रभाव पडता है। शहर म जीवन की अगणित रीनिया हैं। मनुष्य ने नगरीय जीवन की साज मज्जा और अवसरा मे अत्यधिक विविधता की सृष्टि की है। गाव क निवासिया को एक प्रकार की भूमि जलवायु ऋतुआ आदि म रहना पडता है। उनके पशा म अधिक विविधता नही हाती है। उनके सुख-सुविधा को सामग्री म भी तीव्र अतर नहा है। एक स प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण म जीवन त्रिताने के कारण ग्रामीणा म सामाय भूमि सामाय भाग्य और सामाय सम्पन्नता की भावना प्रबल हाती है। इसक विपत नगर म निवासिया के पर्यावरण पशा हिता स्वाधो रखा और आदर्शो सभी म तीव्र एव अत्यधिक भेद होता है। वे सामाय रूप स या सभी मिलकर जीवन के शायद ही एकाध कार्यों को करत हा। उनकी सम्पन्नता और विपन्नता की धारणा भी एक नहीं हाती। अतएव नगर के सागा म सामाय भूमि सामाय भाग्य और सामाय सम्पन्नता की भावना का विकास

होना दुर्लभ है। न तो नगर के सभी या अधिकांश लोग के स्वायत्त समान हैं और न उठन बैठन विधायन करन या मनोरंजन के स्थान और घण्टे सामान्य हैं। इस दिशा में उनमें घनिष्ठ और औद्योगिक जीवन का विकास बना क्या हो सकता है ?

नगर के जीवन में बहुत अधिक विज्ञानीयता¹ होती है। यह मुहल्ले के ही निवासियों में परिचय नहीं होता। उसी में घनी, निघन मद्रासी बंगाली हिन्दू-मुसलमान तथा पारसी अथवा लम्बी प्रवृत्ति से बचन वाले और नवीन प्रागल्भिक एक दूसरे से अभिन्न और विविध जीवन बिताते हैं। इसी प्रकार का मुहल्ला के जीवन में भारी अंतर रहता है। जनसंख्या की संरचना वृद्धि की दर (जन्म और मृत्यु दरों का अंतर) निष्कर्मणाधिकियों का स्थान और गन्तव्य निवासियों के आर्थिक स्वायत्त राजनैतिक भूमि सामाजिक समस्याओं और प्रयासों धार्मिक विश्वास अथवा मासुटिक रीतियों सभी विषयों में भारी भेद मिलता है। बस्तुतः नगर विराट का घर है। इसलिए नगर और गाँव के अंतरों की तुलना करना व्यर्थ लगता है।

(३) गाँव और नगर से परिवर्तनशीलता—नगर और गाँव की तुलना करने में तीसरी कठिनाई इस तथ्य से आती है कि दोनों समुदायों का जीवन स्थिर (स्थिर) नहीं है। वह गत्यात्मक है। उनमें सतत परिवर्तनशीलता है। मन्दा गाँव में ग्रामीण जीवन नाश के सम्पर्क में आता जा रहा है। उस पर औद्योगिकीकरण का प्रभाव स्थिति स्थिति बढ रहा है। इस कारण गाँव के जीवन का भी शनैः शनैः नशीब करण हो रहा है। दूसरी ओर गाँव में जनसंख्या और नाशना का शोषण कर नगरों का विकास द्रुतगति में हो रहा है। नगर में गाँव में पहले लागू की गयी निरन्तर बढती जाती है। इस तरह नगरों एवं गाँवों के जीवन का भेद घटने और घुमिल (घुँघला) पड़ता जा रहा है। यदि गाँव और नगर की अलग क्रिया की एक नवीनतम विधा ग्राम-नगरीकरण का प्रकार इसी गति से उभरता गया तो गाँव और नगरों के जीवन के अंतर में शीघ्र ही बहुत कमी आ जायेगी। एक बात यहाँ पर स्मरण रखने का है। कई बार नगरीय जीवन की कई विशेषताएँ वास्तव में उस घटना के कारण होती हैं जो नगरों की ओर निष्क्रमण का परिणाम होती हैं। गाँव में आकर नगर में बचन वाले अपने भाव अनेक ऐसी दशाओं और समस्याओं का लाल हैं जो नगरीय जीवन के स्वभाव पर गम्भीर एवं व्यापक प्रभाव डालती हैं। उदाहरण के लिए, शहरों में एकाकीपन अथवा मित्रहीनता का अनुभव मूलतः आवासियों को होता है। इसी प्रकार वैयक्तिक और पारिवारिक विघटन की मात्रा उन समूहों में अधिक होती है जो शहर के पर्यावरण में समायाजित पर्याप्त और उचित समय में नहीं कर पाते।

1 The state of being heterogeneous Heterogeneous means of diverse character or having diverse origin मिश्र अथवा विरुद्ध जाति का (बमेल)।

उपर जिन कठिनाइयों की ओर संकेत किया गया है उनका समाधान बहुत सख्त नहीं है। पर यदि हम जनसंगण और सामाजिक पर्यावरण इन दोनों का आधार पर नगर की परिभाषा कर तो सम्भवतः हमारी समस्या का निराकरण हो सकता है। जनसंगण के आधार पर विचार करते समय निम्नलिखित जनसंगण, निरपेक्ष क्षेत्रफल और जनसंगण का घनत्व इन तीनों पर विचार करना आवश्यक है। इन तीनों कारणों तथा सामाजिक पर्यावरण का आधार का प्रायः कम अथवा अधिक महत्व देकर संभावनाएँ कर सकते हैं। जनसंगण का घनत्व विस्तार और परिमाण का नगर के पर्यावरण से वायु कारण सम्बन्ध है। नगर में जनसंगण विशाल परिमाण में होती है जो स्वाभाविकतया एक विस्तृत क्षेत्रफल में बसी होगी और जिनकी वृद्धि में जनसंगण का घनत्व बढ़ेगा। इसलिए नगरों का सामुदायिक संगठन निराले ढंग का होता है। नगरवासियों का जीवन प्रकृति से दूर बहुत अदृशित होता है। उनके सम्बन्ध में कम घनिष्टता और अधिक औपचारिकता चित्रित लोग और समूहों की प्रथाओं विचारों आदि से समाप्त करने की अधिक कुशलता उदारता एवं सहनशीलता तथा आर्थिक भावों का टिप्पणी कर नगर के सामाजिक जीवन के अनुरूप रहने की कला का विकास होता है।

गाँवों का क्षेत्रफल थोड़ा होता है। उसमें बसने वाली जनसंगण भी कम होती है। जनसंगण का घनत्व भी बहुत कम होता है। इस कारण से ग्रामीण जीवन में घनिष्टता अनौपचारिकता एक एक सामाजिक जीवन की अधिक गहरी भावना होने सम्भव होता है।

गाँवों की उत्पत्ति और विकास

हम पिछले अध्यायों में संकेत कर चुके हैं कि जल भोजन की पूर्ति नियमित रूप से प्रचुर रूप से होने लगती है तो स्थायी जीवन का प्रादुर्भाव होता है। जीवन की स्थायी दशाओं में जिन समूहों का विकास होता है। उनमें से एक गाँव है। गाँव लोगों का एक स्थायी परंतु छोटा समूह होता है जिनके घर और अन्य खेती करने के साधन एक स्थान पर होते हैं। गाँवों के जन्म की मूल परिस्थितियाँ आज से लगभग १०,००० वर्ष पूर्व नव पाषाण युग में उपस्थित रही होगी। उस समय कृषि प्रारम्भ हो गई थी। कृषि करने वालों को एक स्थान पर स्थायी रूप से बसना अनिवार्य हो जाता है। पर एसे स्थान प्रारम्भ में नन्धियाँ या पहाड़ों की घाटियों की उपजाऊ मिट्टी का मरना में रहें हुए और जहाँ कृषि और पशुपालन दोनों ही व्यवसाय साथ-साथ हो सकते हैं। जहाँ-तहाँ कृषि की उन्नति होने लगी गाँवों की स्थिति में अधिक स्थायित्व आता गया। भोजन की पर्याप्त और नियमित पूर्ति, तथा सुरक्षा के सफल साधनों ने गाँवों की जनसंगण में वृद्धि की। घोर जंग ५० या ६० आठमियों वाले गाँवों की जनसंगण ६००-५०० पहुँच गई और आधुनिक युग में भारत में कुछ ऐसे भी गाँव मिलते हैं जिनकी जनसंख्या ६५०० अथवा कुछ अधिक है। ग्रामीण क्षेत्रों में

बुद्ध स्थाना की जनसंख्या ता १०,००० के निकट भी पहुँच गई है। आज के विविध गावा म सामुदायिक जीवन क सभी आवश्यक तत्व उपलब्ध हैं।

समय क ममस्त दशा म गाव हैं। फिर भी सभी दशा के गावा म बहुत अधिक नद है। सभी गावा का का सामाय वर्गीकरण करना कठिन ही नहीं है, वह केवल वाद्विध अन्वयस रह जायगा। विभिन्न और गिलिन न यूरोप अमरीका संस्कृतिया के गावा का चार प्रकार म विभाजित किया है। (१) खती करन बाल गाव, (२) खती न करन बाल गाव () औद्योगिक गाव और (४) उपनगरीय गाव।¹ अमरीका और रूस क गावा क स्वरूप में विभन्नता ता है ही। याराप और अमरीका क गावा में भा काषा भिन्नता है। अमरीका में नगरीकरण का इतना अधिक विकास हुआ है कि वहाँ केवल २४% लोग ग्रामीण हैं। भारत चान आर दक्षिणी पूर्वी एशिया क गाव में अनेक सामाय साम्य हैं परन्तु भारत चीन और मित्र के गावा में सबसे अधिक साम्य है।

गाँवों के प्रकार

समय के विभिन्न भागा की जातियाँ के इतिहास में कृषि क विकास और प्रकार क साथ विभिन्न प्रकार क गावा की स्थापना हुई। इनका मुख्य कारण इन लोग क नौगतिक पयावरण में भेदा था। इमन अतिरिक्त लोग क आरम्भिक गावा में कालान्तर में अनेक परिवर्तन हुए। उनके आकार प्रकार पर तात्विज्ञ² आर्थिक एवं सामाजिक विकास तथा अय समाजा का प्रभाव पडा।

ग्राम का विभिन्न प्राणा एवं काला म जा इतिहास रहा है उसने जान हाता है कि ग्रामा के अनेक प्रकार रह हैं। नैवमन ग्राम जमनी का भाव रूस का सीर भारत का स्वावन्तबी ग्राम नामलवाणी यूराप का ग्राम और अन्त आधुनिक ग्राम, जा गण्टीय और विश्व की आर्थिक प्रगती का एक अतिभन्न अंग है। आधुनिक ग्राम भी क प्रकार क हैं जैसे अमरीकी गाँव पश्चिमी यूरोप का गाव एशिया के निछड़े किन्तु आधुनिक दशा के गाँव और साधुतिक खनी पर आधारित माविपन रूस का गाँव।

ग्रामीण समुदायो के वर्गीकरण के चिह्न

(घ)—(१) निम्नमणनीन कृषि-गाव जहाँ लोग एक निश्चित स्थान पर स्थाया घरा म केवल कुछ मराना क निग रहत हैं।

(२) अय-संस्थाया कृषि गाँव जहाँ लोग कुछ वर्षों तक स्थायी घरा म रहत ह और तापरचात भूमि की उवरता समाप्त हान ही दूसर स्थान पर जा वसत हैं।

1 Gillin & Gillin *Cultural Sociology* (Macmillan New York 1945)
 pp 270-3 [1: Farming vill ges 11 non farming villages 111 Industrial
 villages and 14 suburban villages]
 2 Peoples and not castes
 3 Technological

(२) स्थायी कृषि-गाव जहाँ लोग स्थायी घरा में पीड़ियों अथवा गनाटियों तक रहते हैं।

ये सीता प्रकार के व गाव है जिनका विनाम मनुष्य की भ्रमणशील स्थिति से स्थायी स्थिति में संक्रमण की अवधि में हुआ।

(आ) इस वर्ग के गावों का प्रधान चिह्न स्थानिक दूरी या निकटता है। इस वर्ग में दो प्रकार के गाव होते हैं।

(१) केंद्रित गाव—एक गावा में किमान भूण्ड बनाकर पास पाम रहने है। उनके घेत गाव में बाहर उसने आस पास होते है। एक ही वास स्थान में रहने के कारण इन लोगों का जीवन बड़ा घनिष्ठ और घुना मिला हा जाता है। भारत में मनावा के गाव इसा प्रकार के होते है।

(२) छितरे हुए गाव¹—इन गावा में किसान पृथक् पृथक् अपने खेतों पर मकान बनाकर रहत हैं। जैसे अमरीका में फार्मों पर बस गांव। उनके मकान किसी एक वास स्थान पर नहा बन हाते। निवासियों के घरा के बीच काफी अंतर हाता है। यहा का सामाजिक जीवन केंद्रित गावा के सामाजिक जीवन से बहुत भिन्न हाता है। इसमें सामाजिक घनिष्टता और सामाज्य भाग की उतनी प्रबल भावना नही घाने पाती।

(इ) सामाजिक भेदोत्तरण एवं स्तरीकरण गतिशीलता एवं भू-स्वामित्व के आधार पर भी गावों का वर्गीकरण किया गया है। इसके अनुसार गाव ६ प्रकार के हाते हैं —

- (१) संयुक्त स्वामी कृषकों वाले गाव
- (२) संयुक्त जात कृषकों वाले गाव,
- (३) व्यक्तिगत अधिकारी कृषकों वाले गाव जिसमें कुछ जोना और मजदूर भी रहते हैं।
- (४) व्यक्तिगत जात कृषकों वाले गाव
- (५) एक बड़े भू स्वामी के कर्मचारियों वाले गाव और
- (६) राज्य नगरपालिका अथवा सावजनिक भू-स्वामी के कर्मचारियों और मजदूरों वाले गाव।^२

भारतीय ग्रामों का निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है —

- (१) छोटे गांव जिनकी जनसंख्या ५०० से कम है,
- (२) मध्यम आकार के गांव जिनकी जनसंख्या ५०० से २००० तक है
- (३) बड़े गाव जिनकी जनसंख्या २००० से ५००० तक है और
- (४) बहुत बड़े गांव जिनकी जनसंख्या ५,००० के ऊपर है।

1 इधर उधर मिले हुए (scattered)

2 Zimmerman & Galpin *A Systematic Source Book in Rural Sociology* 3 vols p 560

ग्रामीण जनसंख्या का क्रम २६४, ४८८ १२४ और ५३ प्रतिशत इन चार प्रकार के ग्रामों में रहना है।

भारतीय पद्धति में जमींदारी विनाश कानून का लागू होना से पहले भूमिस्वामिन्व या राजस्व के आधार पर कई प्रकार के गांव थे।^१

हमारे पाठकों का सम्मेलन यह जान होगा कि भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या का ८३% ग्रामों और केवल १७% नगरों में वास करता है।

जनसंख्या प्रतिक्रमा में भारतीय ग्रामों का जो वर्गीकरण आकार के आधार पर किया गया है वह अधिक मनुष्यजनक नहीं है। भारतीय गांवों के एक व्यवस्थित वर्गीकरण का आवश्यकता है। क्योंकि इन प्रकार के वर्गीकरण एवं गांवों के स्थापना की जानकारी से ही ग्रामीण जीवन का यथेष्ट परिचय मिल सकता है।

नगरों का जन्म तथा विकास

सामुदायिक विकास में नगरों की उत्पत्ति अत्यंत प्राथमिक है। जब कृषि बढ़ने लगती है तो विद्यमान जनसंख्या की भोजन की आवश्यकताओं पूरी होकर भी कुछ साधन फालतू बच रहते हैं। इन फालतू साधनों का उपयोग कर नगरों के जीवन का अधिक सुव्यवस्थित बनाने की सम्भावना पर मनुष्य विचार करने लगता है। उच्च सामाजिक सुरक्षा में अभिवृद्धि हुई और सामाजिक संगठन में काफी स्थानों भी आगम्य था। अतः सामाजिक पर्यावरण ऐसा अनुभूत मिला कि साधनों की अतिरिक्तता का कुशल उपयोग किया जा सके।

नद-साधारण युग के उत्तरार्ध में सभ्यता के अधिकांश भाग में नगरीय समुदायों की स्थापना हुई और उनका विकास होना लगा। मसोपासामिया मिस्र भाग में चीन में इसा से ५,००० वर्ष पूर्व अनेक नगर बसे थे। फिर भूमध्यसागर के आसपास और पूर्वोत्तरी एशिया में अनेक ४००० वर्षों में अनेक विज्ञान नगरों का विकास हुआ। भारत में महानगरों और हरियाणा में जो स्थापित हैं उनसे ज्ञात होता है कि सिन्धु घाटी में इसा से ४००० वर्ष पूर्व काफी उत्तम नगरीय सभ्यता मिनती थी। इस प्रकार तुर्की चीन पर और मस्किना में विज्ञान नगरों का विकास इसा के जन्म से पूर्व ही हुआ था।

इसमें स्पष्ट है कि नगरीय जीवन का विकास आदरजन्यतावश यत्र प्रविधि पर निर्भर नहीं है। आधुनिक यंत्र प्रविधि के विकास से हजारों वर्ष पूर्व नगरीय यंत्र स्थापित हो चुके थे। ही यंत्र प्रविधि के विकास और बड़े कारखानों का स्थापना ने आधुनिक समाज में नगरों के तीव्र विकास में निस्सन्देह भागी योग दिया है। गांवों से श्रमिकों का विभाजन संख्या में निष्क्रमण हुआ है। वे औद्योगिक नगरों में बसे गए हैं। नगरीय विकास का प्रधान कारण एक ऐसी सांस्कृतिक स्तरता है जो जीवन-

१. सम्बरदारी महालबागी और रैयतदारी गांव।

निवाह अथवा विलासिता के पर्याप्त साधना की उत्पत्ति के लिये समय हो सके ताकि जनसंख्या का एक भाग कृषि के अलावा अन्य कार्यों को कर सके और वह दूसरा के द्वारा उत्पन्न भोजन व नगरीय समूहों में सुव्यवस्था से प्राप्त कर सके।¹

नगरीय विकास के कारक

नगरों की उत्पत्ति और विकास के निम्नलिखित प्रमुख कारक हैं —

- (१) साधना का आधिक्य
- (२) उपयुक्त अथवा सुविधाजनक प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण,
- (३) परिवहन और साधना का विकास, और
- (४) औद्योगिक आर्थिक राजनतिक मानसिक एवं साम्बन्धिक दशाद्य।

१ साधना का आधिक्य—नगरों की स्थापना में सबसे महत्वपूर्ण कारक है। कृषि कला में उत्थिति होने पर भाजनादि साधना की प्रचुरता हो गई। जनसंख्या के एक भाग का धर्म अतिरिक्त हो गया जिस कृषि के अलावा हस्तकला तथा अन्य कार्यों में लगाना सम्भव हुआ। ज्यादा-ज्यादा कृषि कला में उत्थिति हुई तथा-तथा जनसंख्या का अतिरिक्त भाग नगरीय केंद्रों में रहने-बसने लगा। आधुनिक युग में यंत्रों के आविष्कार तथा प्रविधि के विकास में नवीन कारखानों की स्थापना हुई। उनमें काम करने के लिए ग्रामों से श्रमिक और कमचारा आकर उद्योग केंद्रों में बसे गए। उधर कृषि उत्पादन का प्रविधि में भी अभूतपूर्व उत्थिति हुई। अतएव थोड़ी जनसंख्या ही कृषि करने लगी और नगरीय लोगों के लिये पर्याप्त भोजन तथा उद्योगों के लिये प्रचुर कच्चा माल उत्पन्न करने लगी।

२ उपयुक्त प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण — हमारा क सभी प्रसिद्ध नगर ऐसे स्थानों पर ही बसे हैं जहाँ तो उपजाऊ और सुरक्षित नदी घाटियाँ हैं अथवा समुद्र तटों पर। यदि किसी स्थान की भूमि उपजाऊ है वहाँ की जलवायु स्वास्थ्यकर है तथा वहाँ साधन तथा आवागमन की सुविधाएँ उपलब्ध हो सकती हैं तो बड़े गाँवों और नगरों का विकास सम्भव हो जाता है। इसी प्रकार अनुकूल सामाजिक पर्यावरण में नगरों के विकास को प्रोत्साहन मिलता है। शांति और व्यवस्था, सुसंगठन और बौद्धिक विकास का सामाजिक पर्यावरण में विशाल महत्व है। सत्कार के सभी प्रसिद्ध नगरों की स्थिति उपयुक्त प्राकृतिक पर्यावरण में ही है।

३ परिवहन और संचार के साधनों का विकास—नगरों के विकास में यह तीसरा महत्वपूर्ण कारक है। पृथ्वी धर जन प्राणों के विकास से ग्रामीण निष्क्रमण होता है। प्रकृति में उपलब्ध सम्पत्तियों का शोषण भी अधिक-अधिक अच्छा सम्भव हो

1 The sine qua non of urban development is a cultural configuration able to produce sufficient means of subsistence or of luxury so that a portion of the population may devote itself to other pursuits and may be supported in large urban groups by the food producing efforts of others
Gill in & Gillin *op cit* p 29

मका है। सड़का नदी मार्गों समुद्री-मार्गों यथवा रेल तथा वायु मार्गों की उन्नति न नगरों का उन्नति बड़ी तीव्रता से की है। संचार के साधना, जस, ममाचारपत्र रेडियो टेलीफोन मिनमा टेलीविजन आदि के विकास न सार ससार का एक छाया मा गाय बना दिया है। अनएव संचार और परिवहन के विकास से अनिरिक्त माधना का उपयोग अयुक्तम हो सकना है। गावों और नगरों के बीच गहरा सम्बन्ध स्थापित हा जाता है तथा अम विभाजन और विशेषाकरण भी सुलभ हा जाता है। अन्तराष्ट्रीय उद्योग और व्यापार का सबसे अधिक प्रास्ताहन इहीं कारणों से मिलता है। इनमें राष्ट्रीय सुरक्षा और हठता को भी अभूतपूर्व भाग मिला है। राष्ट्रीय सुरक्षा, प्रज्ञामय व्यक्तमय व्यापार और उद्योग से सम्बन्धित अग्रगण्य कार्यों का करने वाली जनमय्या भाग से अर्द्धित हा गई है।

४ औद्योगिक, राजनैतिक, आर्थिक, मानसिक तथा सांस्कृतिक कारण— औद्योगिक क्रांति की स्थापना और उद्योगों की द्रुत उन्नति न नगरों के विकास का बहुत तीव्र कर दिया है। ससार के अनेक नगर प्रधानतया औद्योगिक मूल्य के हैं। कानपुर अहमदाबाद बम्बई जमशेदपुर कलकत्ता, शर्माद तदन यूयाक, मैनचेस्टर, बर्लिन लन्दनब्राड, गिकागा आदि एम ही नगर हैं।¹

दृष्टि की उन्नति व्यापार और उद्योगों का विकास उद्योगों का स्थानापरम्परा अन्तराष्ट्रीय अम विभाजन तथा बाजारों का विस्तार नई वितरण प्रणाली कुछ एम आर्थिक कारण हैं अिनहीं नगरीय विकास का बहुत द्रुतवान बना दिया है। राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय आर्थिक अन्तःआश्रयिता न नगरों का बहुत उन्नत किया है। आधुनिक युग में राष्ट्रीय स्वावलम्बन का प्राप्ति करने के लिये अनेक उद्योगों का विकास हा रहा है। परिणामस्वरूप नवीन नगरों की स्थापना और पुराने नगरों की उन्नति न व्यापक और शीघ्रगामी नगरीकरण हा रहा है।

बहुत से नगरों की उत्पत्ति और विकास राजनैतिक कारणों से हात हैं। एम या प्रायः के क्राय और मुगलिन स्थानों पर राजधानियां बनाए गईं। इसमें अनेक राज अधिकारों और कमचारी रहने लगे। बहा नना और पुलिस की छावनियां भी स्थापित हुईं। राजधानियों तथा उच्च अधिकारीगणों का विलासिताया की साधना का उन्नत करने और पूर्ति के लिये बारागारा और व्यापारियों का जमघट लग गया। साथ ही पुलिस मना, प्रशासनिक कमचारियों और उनके परिवारों की आवश्यकताया की पूर्ति के लिये अनेक नये प्रकार के व्यवसाय-व्यापार करने वाले लोगों न नगरों में रहना प्रारम्भ किया। बहुतों इहीं राजधानी-नगरों में युद्ध के लिये शकाल अाति का निर्माण हात लगा। अनएव ऐम नगरों का उन्नति होना स्वाभाविक था। भाग्य में ही अिनहीं के अतिरिक्त प्रणाली की राजधानियों, जिला और तहसीलों के बड़े नगरों

1 For industrial revolution and development of cities consult Davis *Human Society* p 311

या कस्वा म ही है। जयलपुर, कानपुर, किङ्की पूना बगलौर आदि ऐसे नगर हैं जो युद्ध के लिये शस्त्रास्त्र का निर्माण करने के उद्योग के केन्द्र हैं।

नगरों के विकास में सांस्कृतिक कारक कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। तीर्थ, शिक्षा और कला, मनोरंजन प्रदान करने वाले संस्थान और अन्य सांस्कृतिक संस्थाओं का उपस्थिति भी नगरों का विकास करने में सहायक हुए हैं। भारत के काशी, प्रयाग पुरी द्वारका, हरिद्वार, रडकी आगरा, अमृतसर बौद्ध गया आदि ऐसे नगर हैं जिनका मुख्यतया सांस्कृतिक महत्व है।

नगरों के विकास के मानसिक कारक बड़े महत्वपूर्ण हैं। नगरीय जीवन अपेक्षित अधिक आकर्षक रहा है। यहाँ जीवन की प्रायः सभी सुविधाएँ ग्रामों की अपेक्षा अधिक विकसित प्रचुर होती हैं। नगर संस्कृति और सम्यक्ता के केन्द्र माने जाते हैं। यहाँ कार्य की विविध सुविधाएँ रोजगार के अभाव और प्रचुर अवसर तथा महत्वाकांक्षियों के लिये अनेक अवसर उपलब्ध हो सकते हैं। शरीर और सम्पत्ति की सुरक्षा के साधन भी यहाँ गाँवों की अपेक्षा बहुत अधिक और सरलता से उपलब्ध होते हैं। इन सब कारणों से ग्रामों के अधिकांश सांस्कृतिक महत्वाकांक्षी एवं प्रतिभाशाली युवक नगरों में जा बसते हैं। आधुनिक संसार के सभी देशों में नगरों की ओर प्रामाण्य निष्क्रमण बहुत तीव्रगति से बढ़ रहा है। अमरीका और इंग्लैंड में तो प्रामाण्य जनसंख्या का अनुपात बहुत कम हो गया है। भारत में भी यह प्रवृत्ति¹ अधिक जोर पकड़ रही है।

अतः, एक बात स्मरण रखनी चाहिए। नगरों के विकास में उपरोक्त कारकों में कोई एकल कारक ही पूर्णतया उत्तरदायी नहीं है। ऐसा कोई नगर नहीं है जो किसी अकेले कारक के कारण ही विकसित हुआ हो। आजकल बृद्धा नगरीकरण में अनेक कारकों का योग है। वे अयोग्यताएँ होती हैं तथा एक दूसरे के साथ मिल कर सप्रभाविक होते हैं। आधुनिक भारत में कुछ ऐसे कस्बों का विकास हुआ है जो पूर्वोक्त या पश्चिमाफ़िस्तान से आए हुए विस्थापितों के पुनर्वास के लिए बसाए गए हैं। नीलोदरी (पंजाब) कान्पुर (बंगाल) फरीदाबाद (दिल्ली) गोविन्दनगर (उत्तरप्रदेश) जैसे नौ कस्बों का उदाहरण है।

दूसरे सभी देशों में उपरोक्त कारकों का समान मूल नगरों के विकास के लिये उत्तरदायी नहीं है। मनाइवर और पञ्ज नगरों के विकास के तीन प्रधान कारक माने हैं—(१) अतिरिक्त साधन (२) उद्योग और व्यापार की जननी और (३) शहर का आर्थिक आकर्षण।²

1 शहरों का ओर निष्क्रमण।

2 For detailed discussion see *Society* pp 314-16

नगरों का वर्गीकरण (Classification of Towns and Cities)

१ प्रधान कार्या (predominant functions) के अनुसार नगरों का वर्गीकरण हो सकता है। इस प्रकार नगरों के आठ वर्ग हो सकते हैं

- (१) प्रतिरक्षा नगर
- (२) व्यापारिक केन्द्र
- (३) औद्योगिक अथवा उत्पादन केन्द्र
- (४) राजनितिक राजधानियाँ
- (५) धार्मिक केन्द्र
- (६) शिक्षण केन्द्र
- (७) आराम्य तथा आनन्द प्रमोद केन्द्र और
- (८) विविध प्रयोजनाय नगर

२ जनसंख्या और आकार के आधार पर भी नगरों का वर्गीकरण किया जा सकता है

- १ ५,००० से १०,००० जनसंख्या छोटे कस्बे
- २ १०,००० से २०,००० , कस्बे
- ३ २०,००० से ५०,००० ,, बड़े कस्बे
- ४ ५०,००० से १,००,००० ,, नगर
- ५ १,००,००० से १०,००,००० , महानगर
- ६ १०,००,००० से अधिक , मेट्रोपॉलिटन नगर
- ७ राष्ट्र का सबसे विशाल नगर

भारत में नगरों का विकास

भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से अनेक विशाल राजनितिक राजधानियाँ सामरिक सामूहिक और व्यापारिक नगर रहे हैं। महाभारत और रामायण काल (Epic Period) के नगरों के विकास के बारे में बार्ट्ट एन्टिक्विट्री सामग्री आज उपलब्ध नहीं है। गुप्त काल (Gupta Period) के चन्द्रगुप्त तथा अशोक आदि सम्राटों के समय यहाँ अनेक विशाल नगर बने थे। फिर मध्ययुगीन राजाशाही (राजपूत और मुगल) के शासनकाल में अनेक प्रसिद्ध नगर बने। आधुनिक काल में भी लगभग १५ विशाल नगर हैं। किन्तु आधुनिक काल में भारतीय नगरों के विकास की गति अत्यन्त आधुनिक देशों में नगरीकरण की गति से निरन्तर ही घटती है।

भारत की समस्त जनसंख्या का केवल १७% नगरों और शेष ८३% गाँवों में रहता है। भारत का गाँवों का देश इसीलिए कहते हैं। लगभग ७०% जनसंख्या

का मुख्य घटा खेती है।¹ १९५६ ई० में भारत के कच्चा और नगरा की संख्या ३०१८ और गावा का ५५८,०८६ थी।

आधुनिक नगर और नगरीकृत समाज

(The Modern City and Urbanised Society)

ऊपर जो लिखा गया है उसमें सदैव एक बात की ओर संकेत किया गया है। वह यह है कि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, नगर जीवन का एक ढंग है। इस जीवन ढंग के लिये प्रयुक्त विशेषण नगरीय (urbane) इस बात का बिल्कुल स्पष्ट कर देता है। यह विशेष व्यक्तियों के वस्तुओं तथा दूसरे लोगों ने विस्तृत परिचय, इस परिचय से जनित कुछ सहिष्णुता और सावर्गिक वातावरण में विविध संसर्गों से जनित एक शिष्ट और विनीत व्यवहार की ओर संकेत करता है। शहरी व्यक्ति शीलवान अथवा शिष्ट हाता है। उसमें बाह्य अनुरूपता की कला आ जाती है और उसमें आंतरिक उद्वेग तथा मनोदशा को प्रच्यन्न करने में समर्थ छिछली शिष्टता भी आ जाती है। विभिन्न सत्तर्मा में विभिन्न प्रकार का जीवन बिताना वह सील जाता है और अवसरानुसार अनभिन्नता और विषय मंत्री से लाभ भी उठाने सकता है। वह नगरीय पद्धति का एक निराले पर्यावरण की उपज है।

क्या नगरीय जीवन रीति केवल नगर-वासियों तक ही सीमित रहती है? नगर में विशाल जनसंख्या होती है। इसलिये इसमें नगरीय सामाजिक संगठन का विकास अवश्यभावो है। इस संगठन की प्रकृति ऐसी है कि लोगों को विचित्र (अजनान या अजनबी strange) व्यक्तियों के सम्पर्क में रहना पड़ना है। इसमें समाचारा और पशुओं का अति शीघ्र संचार हो जाता है। इसमें प्रतिबन्धिता का बहुत ऊंचा अंश पलता है। इसके अतिरिक्त नगरीय संगठन आविष्कारों सामाजिक गतिशालना एवं धर्म निरपेक्षता के विकास को प्रोत्साहित करता है। यह एक ऐसा जटिल आर्थिक प्रणाली पर आश्रित होता है जिसमें वस्तुओं का शीघ्र आदान प्रदान धर्म का अति सूक्ष्म विभाजन और विचारयुक्त (या यत्नानिक) साहम का एक उच्च अंश सम्भव हो सकता है। किंतु जहाँ एक बार नगर बन और इन रीतियों और वस्तुओं का विकास हुआ फिर व नगर की सीमाओं से बाहर दूरस्थ प्रदेशों में अपना प्रभाव फैलाने चल जाते हैं। यही कारण है कि नगरों से दूर गावा और पुरानों का अपक्षयता मरल निवासियों पर शहरीयन का रंग चढ़ जाता है। आधुनिक संयुक्त देशों के ग्रामीण क्षेत्रों में नगरीकरण का शीघ्रता से प्रसार हो रहा है।

यह सत्य है कि नगर का प्रभाव उसकी सीमा से अधिक विस्तृत जाना है। अतएव यह कहना अतिक बुद्धिसंगत होगा कि समाज या क्षेत्र ही नगरीकृत हो जाते

1 The predominance of agriculture in the economy obscures the fact that India ranks among the first ten industrial nations of modern world

हैं। परन्तु नगरीकृत समाज या क्षेत्र का प्रयोग भ्रमात्मक भी हो सकता है। साधारण-तया नगरीकृत विशेषण का प्रयोग में यह सूचित होना चाहिये कि क्षेत्र की जनसंख्या किस सीमा तक नगरीकृत है अथवा समस्त जनसंख्या में नगरीय ऋचा का कितना प्रसार हो गया है। यह मान्य रहता है कि जनसंख्या की दृष्टि से एक देश अधिक नगरीय माना जाए भी सामाजिक रूप से दूसरे देश की अपेक्षा अधिक ग्रामीण हो सकता है। चिनी और कनाडा की तुलना कीजिए। कनाडा का अपेक्षा चिली की जनसंख्या का अधिक प्रतिशत नगरों में रहता है परन्तु उसके निवासी हर विचार से नगरीय प्रभाव में कम रहते हैं।¹

पिछले १२० वर्षों में सर्वत्र नगरीय जनसंख्या में अपेक्षाकृत तीव्र वृद्धि हुई है। और सर्वत्र नगर ही जीवन का प्रतिमान को निश्चिन्त कर रहा है। यह नवीन यांत्रिक युग का प्रसार का प्रधान कारण और उसकी (यांत्रिक युग की) मुख्य सतान हो गया है। नगरों की वेगयुक्त उत्पत्ति में मनुष्य को एक नया समाज—'नगरीकृत समाज' प्रदान किया है। अभी हाल में ही विशाल क्षेत्रों की अधिकधिक जनसंख्या नगरों में बसने लगी है और दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में भी नगरीय रस प्रवेश कर गए हैं। किन्तु यह वेगयुक्त परिवर्तन अभी प्रारम्भ भर हुआ है। बहुत दिन दूर नहीं जब सारा समाज एक प्रकार से नगरीकृत हो जाएगा। तब मानव समाज में अपेक्ष्य भागी स्थापना हो जाएगी।²

नगरीय विकेंद्रीकरण

समाज का अत्यधिक नगरीकृत होना में 'नगरीय विकेंद्रीकरण' की जगह से चर्चा चल रही है। नगरीय जीवन का कुछ दावा से लागू इतना अधिक भयभीत हो गए हैं, कि वे पुनः मरल सजातीय और प्राथमिक सामाजिक समूहों के जीवन की ओर ध्यान दे रहे हैं। अमेरिका इंग्लैण्ड आदि देशों में तो नगरीय विकेंद्रीकरण के आन्दोलन का प्रणामकीय स्तर पर चलाया जा रहा है। यह एक तथ्य भी है कि अत्यधिक नगरीकृत देशों में विशाल नगरों का आसपास के क्षेत्रों में कितना ताप गति से वृद्धि हो रही है उतना ही नगरों के केंद्र में नहीं। अमेरिका में १९२० से १९४० ई० तक ८५ मैटापालिटन डिस्ट्रिक्ट्स की औसतन वार्षिक वृद्धि दरें इस प्रकार थीं—

तालिका—

	१९२०	१९३०
केंद्रीय नगर	१६	०.३
बाह्य क्षेत्रीय नगर	३६	१३

1 Kingslay Davis *Human Society* (Macmillan New York 1956) pp 31-18

2 *Ibid* pp. 341-43

परंतु इस प्रकार का विकेंद्रीकरण विल्कुल स्वाभाविक है। विशाल महानगरों में वृद्धि तो ही रही है। परंतु यह वृद्धि केवल जनसंख्या के घनत्व की वृद्धि में ही नहीं समा सकती। जनसंख्या में वृद्धि होने से केंद्र से बाहर की आरंभिक नगरों की सीमाओं का विस्तार होता जाता है। आवागमन के साधनों में उन्नति होने से नगर के केंद्र में जमघट लगाने की हानियाँ से लोग बच सकते हैं। वे केंद्र से दूर बाहरी सीमाओं पर बसते जाते हैं। उपनगरों का विकास इसी का परिणाम है।

परंतु यह विकेंद्रीकरण इस बात का साक्ष्य नहीं है कि नगरीकरण में ह्रास या शिथिलता आ रही है। सच तो यह है कि सबसे अधिक विभिन्न लोग गाँवों को छोड़कर नगरों में जाकर बस रहे हैं। 'हमारा तथाकथित नगरीय विकेंद्रीकरण वस्तुतः एक अनुकूलन है जिसमें निरंतर वृद्धिमान नगरीकरण हो रहा है। नगरीय वृद्धि अग्रोच गति से बढ़ रही है और इसका अभिप्राय है कि व्यापार और उद्योग गाँवों की ओर नहीं जा रहे हैं।¹ मैकाइवर और पेज का विचार है कि पिछले १५० वर्षों में नगरीय उन्नति का आकार और ढंग आधुनिक सामाजिक संगठन की प्रकृति के निर्धारण के महत्वपूर्ण कारक हैं। विशाल महानगरों जैसे लंदन, न्यूयार्क, पेरिस, मास्को, शंघाई, दिल्ली कलकत्ता और ब्यूनस आयर्स के प्रभाव और शक्ति अपने देशों का साम्राज्य के पार बहुत दूर तक विचारण होते हैं।'

नगर के सामाजिक प्रभाव

नगर के सामाजिक प्रभावों के विषय पर बहुत विविध विचार व्यक्त किए गए हैं। कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि नगरीय जीवन नवीन है और शायद कृत्रिम भी। किंतु मानव समाज के लिए जब ऐसे विचारों का जन्म असामान्य या कृत्रिम अथवा अस्वाभाविक का प्रयोग किया जाता है तो इस प्रयोग में वचनिकता का अभाव आ जाता है। ये धारणाएँ तो आदर्शात्मक या आध्यात्मिक हैं। न तो नगरीय जीवन कोई नवीन या अनहानी बस्तु है और न समाज में विकास में कोई अस्वाभाविक अवस्था। सामाजिक विकास में नगर का जन्म और उन्नति उतना ही स्वाभाविक है जितना परिवार या धर्म।

नगरीय प्रभावों के प्रश्न का विश्लेषण अथवा गवेषणा करने से पूर्व उसे अज्ञान प्रकार समझ लेना चाहिए। पहले नगर एक परिवर्तनीय कारक है जिसे अन्य कारकों से पृथक् करना प्रति कठिन है। दूसरे नगर के आंदर और बाहर के निवासियों पर नगर के प्रभाव समान नहीं पड़ते। यह आवश्यक नहीं कि नगरीय प्रभाव के पार पड़ जाँ नगर निवासी हों। नगर एक प्रसार केंद्र है जहाँ अप्रत्यक्ष उपकरणों

1 Our so called urban decentralization is really an accommodation by which an ever greater urbanisation is accomplished. Urban growth is continuing and this means that business and industry are not moving to the country — Davis *op cit* p 320

का जन्म हाकर ब दू-दूर तक अनगरीय जनसंख्या में फैल जाते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि समकालीन समाज में ग्रामीण नगरीय अन्तरा का दशांतर नगरीय जीवन के पूरा प्रभावा को नहीं मापा जा सकता। क्योंकि दोनों तुलनाय वस्तुओं (ग्राम और नगर) में नगरीय प्रभाव का प्रतिबिम्ब मिलता है। हा नगरीय जीवन के प्रभावा का अधिक पूरा माप एक आधुनिक नगर और एक पृथक आश्रिताना समुदाय की तुलना करने में सम्भव हो सकती है। पर इतने पर भी हम यह कदापि नहीं मानें हा सकता कि नगर में नगर के प्रभाव कौन-कौन से हैं। हममें बट्टा एक गतनी हा जाया करता है। हम अनेक सामाजिक घटनाओं को नगर का प्रभाव मान बैठते हैं जब वस्तुतः वे अन्य कारणों के प्रभाव हैं।

डेविन नगर प्रकाश की गलतियाँ के कई उदाहरण दिए हैं। वह लिखता है कि कभी-कभी एक प्रश्न में, जिसे हम नगर के सामाजिक प्रभाव कहते हैं वे विस्फरण करने पर दूसरे प्रश्न में अन्य किन्हीं कारणों का प्रभाव सिद्ध होते हैं। अग्रणीका में समुदाय की विविधता और भागी संख्या में विज्ञानी आवासीय नगर के प्रभाव नहीं हैं वे ता वस्तुतः उम्र का नवीन समाज-संस्था के कारण हैं। इसी प्रकार अग्रणीका में नगर नगरीकरण के प्रभावा में विवाह विच्छेद और अपराध की ऊँची दरों की सम्मिलित किया जाता है। किन्तु इन्टरलस्ट में जो स्वयं आधुनिक नगरीयन है इस प्रकार के कार्य प्रभाव उल्टे में नहीं दिखते। फिर नगर नगरीकरण के साथ नगर आधुनिकीकरण का होना आवश्यक नहीं है। लड़के अग्रणीका इस कथन का साक्ष्य है। मिश्र बिली और रिवाकुर काचीन (भारत), नाबों में माथरल बट्टन अधिक है किन्तु वहाँ नगरीकरण बट्टन कम। अन्त में स्पष्ट है कि हम वस्तुतः सामाजिक प्रभावा की नगरीकरण से सम्बद्ध कर कल्पना पर अधिक आश्रित रहते हैं न कि वास्तविक संस्था पर।

जीवनस्तर में उन्नति औद्योगिक क्रान्ति और विज्ञान के विकास का नगर का प्रभाव नहीं कहा जा सकता। नगर का स्वयं नगर परिणाम है। उपराल घटनाओं का नगर समाज में वृत्तियाँ परिवर्तन हैं। डेविन लिखते हैं कि यदि हम नगर के प्रभावा के प्रश्न का उद्घाटन, अर्थशास्त्रिक और कल्पना के स्तर पर सुव्यवस्था चाहते हैं तो नगर बना ही भागी गलती करेंगे जसा डेविन मन्फाट न की है। मन्फाट आधुनिक महानगर के बाधा का सूची में 'बाधा' चले साम्राज्यवादी दुष्ट नीति-नीति सामाजिक उपद्रव और समाज की सभी उन्नत वृत्तियाँ का पलायन (नकल) सम्मिलित करते हैं।¹

दूसरे प्रकार की गलतियाँ से बचने का एक ही रास्ता है। हम नगर के दशांतर प्रभावा का किता प्रकाश में पृथक कर लें। यह सबसे सम्भाव्य प्रश्न ही सकता है जहाँ नगर के प्रभाव सामाजिक कारणों का उनकी जनसंख्यात्मक अद्वितीयता के आधार

पर मासूम किया जाये। नगर की जनसंख्या के आकार और घनत्व के कारण उसके सामाजिक संगठन में एक निराली प्रकृति आ जाती है। नगर के प्रधान सामाजिक लक्षणों का विश्लेषण कर उनकी तुलना प्रयोगसिद्ध परिणामों से की जाये।

नगरीय समाज के विशिष्ट लक्षण

उबिस ने उपरोक्त तर्कों के आधार पर नगरीय समाज रचना के निम्नलिखित लक्षणों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया है।^१

- (१) सामाजिक विजातायता,
- (२) माध्यमिक संगति,
- (३) सामाजिक सहिष्णुता
- (४) माध्यमिक नियन्त्रण,
- (५) सामाजिक गतिशीलता,
- (६) स्वच्छिन्न समिति
- (७) व्यक्तिकता, और
- (८) स्थानिक पृथक्त्व।

हम नगर की सामाजिक रचना में इन लक्षणों का केवल सक्षिप्त विश्लेषण करेंगे।

१ सामाजिक विजातायता—नगरों में निवासी विभिन्न श्रेणियों के गाँवों से आते हैं। वे भी सभी एक-दूसरे पर निर्भर नहीं रह सकते। इसलिये अनन्त प्रकार के व्यवसाय व्यापार या उद्योग करते हैं। उनके विशिष्ट हित होते हैं जिनकी पूर्ति के लिये वे विशिष्ट कार्य करते हैं। नगर में सबके सब भिन्न प्रदेशों से आकर आते हैं और प्रजातियों के लोग आकर बसते रहते हैं। यहाँ जैविक और सांस्कृतिक वर्णमन्त्रों की सर्वोत्तम पर्यावरण मिलता है। नगर में व्यक्तिक भेदों को सहन ही नहीं उठाने प्रोत्साहित भी किया जाता है। यहाँ के निवासियों के व्यक्तिक लक्षणों में विशेष सांस्कृतिक चोखे, संस्थाओं के विचार आदि सभी तो अधिक-से-अधिक भिन्न-भिन्न हैं।

२ माध्यमिक संगति (अथवा समूह)—नगर विशाल आकार का होता है। इसलिये उसके लिये माध्यमिक समूह होना स्वाभाविक है। परस्पर अनभिन्न (अजनबी) लोगों का घुन मिल कर रहना पड़ता है। अतएव उनमें दृष्टिकोणों की उदारता सहनशीलता और छिद्रनापन अथवा उदासीनता आ जाती है। उनके छिद्रनापन, छिद्र और विनीत व्यवहार केवल यांत्रिक होते हैं। शहरी व्यक्ति अपने-अपने अतिरिक्त अथवा परिचितों के प्रति बड़ा औपचारिक व्यवहार किया करता है।

1 Kinsley Davis *Human Society* pp 379-386 Davis has himself drawn liberally upon a stimulating article 'Urbanism as a way of life in American Journal of Sociology' vol 44 (July 1939) written by Louis Wirth

2 We have liberally drawn upon Davis *Human Society* for this discussion

वह हजारों साखा स अनभिन्न है और इसी प्रकार दूसर भी उससे अनभिन्न हैं। अजनबीपन एवं अनभिन्नता के इस अथाह मागर में तैरना या डूबना हर नागरिक की व्यवहार कुशलता और अनुकूलन शक्ति पर निर्भर है। जीवन के विभिन्न शोका में विभिन्न मित्र या परिचित होने हैं। वे परस्पर एक दूसरे पर केवल अनेक सीमाओं के अन्दर रह कर निर्भर रह सकते हैं। हम दूसरे नागरिक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का सम्पर्क या उभके प्रति त्रिपाशील हान का अवसर नहीं मिलता। इसी कारण नगर में सम्पर्कों का अव्यक्तिक शोका बत खण्डन समान कहा जाता है। वहाँ आप लोगो के बचत अशा का जानते हैं, उनकी पूणता का नहीं।

३ सामाजिक सहिष्णुता—नगर की जनसंख्या अनेक प्रकार की होती है। उभके निवासियों के पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त और अव्यक्तिक हान है। ऐसी स्थिति में नगरीय जीवन में कुछ न कुछ सहिष्णुता हाना अनिवार्य है। शिक्षा अशिक्षा, सम्पत्तिका और दरिद्रता इत्यादि अनेक प्रकार की विषमताय नगर में मिलती हैं। इनका जानते हुए भी यहाँ का निवासी इन विषमताओं के प्रति उदासीन हो जाता है। सुशालता और सुविधा के आधार पर नगर के निवासी सब प्रकार की घटनाओं अथवा प्रसंगों में समान व्यवहार कर सकते हैं। वे बाह्य अनुकूलता के लिये छिड़ने और औद्योगिक तरीके सरलता से अपना करते हैं। किन्तु जब नगर में कोई ऐसी घटना हो जाता है जो सामाजिक सहिष्णुता को उखाड़ फेंके तो सामाजिक अनसहिष्णुता एवं समाज विरोधी क्रिया की भी सीमा नहीं रहती। दगा में दमो प्रकार की प्रवृत्ति प्रगट होती है। नगर में व्यक्ति के सावजनिक आचरण पर नियन्त्रण रहता है उसके निजी आचरण पर नहीं। वस्तुतः नगर निजी आचरण की अपेक्षा करता है। नगरीय जीवन में नियन्त्रण साधारण और अव्यक्तिक हाना है। गाव में यह नियन्त्रण व्यक्तिक और विविष्ट हाना है।

४ माध्यमिक नियन्त्रण—नगर में प्राथमिक समूहों की अपेक्षा माध्यमिक समूहों का अधिकता होती है। नगर में दो प्रकार के सामाजिक मसाले होते हैं। व्यक्ति का इनमें बड़ा नाम होता है। वह आवश्यकतानुसार इनमें से किये का कारण में जा सकता है। यदि किसी प्राथमिक समूह के बड़े नियन्त्रण में वह बचना चाह तो अनजान लागे के समुदाय में वह छिप सकता है। नगर की अनभिन्नता प्रसिद्ध है। यही तो व्यक्ति का निकट निकट नियन्त्रण से मुक्त करती है। अपन पडाम से दूर हुए कि आप अनजान लागे में बचतेके माध्यमिक अपेक्षित और अनुत्तरदायी व्यवहार भी कर सकते हैं। नगर में निकट नियन्त्रण होने का जान का यही कारण है। अष्टाचार, अनुत्तरदायी, अवाञ्छित व्यवहार और व्यभिचार का नगर में प्रोत्साहन मिलता है। और यदि व्यक्ति नगर की अव्यक्तिकता और अनुत्तरदायी में उब जाय और उमम बचना चाह तो वह किसी प्राथमिक समूह में घनिष्ठता और महानुभूति पा सकता है। वह परिवार गिराह मित्रमण्डली या अन्य अन्तरंग समूह में पुन

भावात्मक सुरक्षा की अपनी भावना को प्राप्त कर सकता है। उनमें रह कर वह पुनः पूरा मनुष्य हो सकता है। नगर के माध्यमिक सप्ताह में वह केवल अपूर्ण नगण्य रहता है। इस सप्ताह में पृथक्-पृथक् व्यक्ति का गहरा एकाकीपन की अनुभूति होती है। इस एकाकीपन को वह प्राथमिक समूह का सदस्य होकर मिटा सकता है। वैसे तो नगर एक माध्यमिक समूह है पर इतना भी शक्य नहीं मिश्रित और एक दूसरे का किनारा बने हुए प्राथमिक समूह होना है। इनका व्यक्ति पर बहुत अधिक नियंत्रण रहता है परन्तु पूरातया ग्रामीण समाज के नियंत्रण की अपेक्षा यह पर्याप्त शिथिल होता है। नगर में प्राथमिक नियंत्रण का उल्लंघन सरलता से हो सकता है। इसीलिए माध्यमिक नियंत्रणों वानून पुलिस गुप्तचर तथा अनेक प्रशासनिक विभागों का जाल साजिश रहता है। नगर में नियंत्रण की समस्या अति कठिन और जटिल होती है। यहाँ आवश्यकतावत् नैतिक नियंत्रण कठोर होता जा रहा है। जन रीतियाँ तथा रूढ़ियों में गाँवों के समान सप्रभाविकता नहीं रह पाती।

५ सामाजिक गतिशीलता—नगर में भौगोलिक गतिशीलता आवश्यक है और उस वहाँ प्रोत्साहन भी मिलता है। इसी तरह यहाँ सामाजिक गतिशीलता भी आवश्यक है। उसे भी यहाँ प्रोत्साहन मिलता है। नगर निवासी की प्रस्थिति का निवारण उसके कृत्य और प्रदर्शन करते हैं। चाहे कोई किसी परिवार में जन्म ले चाहे उसके पूजा नाच हो अथवा प्रतिष्ठित धनी हो अथवा निधन उसे अपनी स्थिति सुधार कर उच्चतम सामाजिक सम्मान या प्रतिष्ठा प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध हो सकते हैं। हर नगरवासी अपने जीवन काल में ही अपनी स्थिति को उन्नत या अवन्न कर सकता है। अतएव, नगर के निवासियों में स्थिति के लिए प्रतियोगिता होती है जिसका स्वाभाविक परिणाम स्थिति की सुरक्षा है। स्थिति को उन्नत करने के अवसर तो यहाँ हैं परन्तु यहाँ विपदायें या असमानतायें भी गम्भीर होती हैं। महासत्रको समान सफलतायें नहीं मिल पाती। पर फिर भी नगर में सामाजिक उत्थान अत्यधिक प्रचलित है। भारत के नगरों में जातिपाति के भेदभाव समाप्तप्राय हैं। अमरीकी नगरों में नीग्रो को सामाजिक अपेक्ष्यताओं की दूरता को नहीं सहना पड़ता। नगर वास्तव में निम्न और पतित वर्गों का उन्नति के अधिकाधिक अवसर प्रदान करता है। नगर के समाज में समानीकरण और जनताप्रीयता के अधिक प्रचुर अवसर उपलब्ध हैं। यहाँ सबके सभी एक वर्ग का बालबाला नहीं रह सकता।

६ ऐच्छिक समितियाँ—नगरीय जनसंख्या के विशाल आकार, उसकी अति निकट समीपता, भिन्नता और सरल सम्पर्क से ऐच्छिक समग्र के लिए आदेश वातावरण मिलता है। हर आदमी का समान हितवाले दूसरे व्यक्ति आसानी से मिल जाते हैं। इस कारण, नगर में हर आदमी का समूह का स्वभाव ऐच्छिक हो जाता है। इन समूहों की सदस्यता भौगोलिक सयोग अथवा रक्षित सम्बन्ध पर आधारित नहीं होती। ऐच्छिक समग्र की प्रबल प्रवृत्ति से प्राथमिक समूह भी अछूते नहीं रह पाते। धीरे

घोर उन्मत्त भी अविश्व ऐच्छिकता और विशेषीकरण की प्रवृत्ति प्राप्ति जाती है। इसके अनिश्चित एक नये प्रकार के समूह का उद्भव होता है जिसका आधार प्रकृत विशेषीकरण हीन है। उस तरह हर व्यक्ति प्रकृत समूह का सम्बन्ध होता है। वह एक ही साथ राष्ट्रीय जाति राष्ट्रीय अन्तर्गत गुट पञ्चन सम्पत्ती आदि का सम्बन्ध हो जाता है। उस एक मन्त्र उतना ही सम्बन्ध है जहाँ तक य उसकी विशिष्ट आवश्यकताओं अथवा हिता की पूर्ति करता है। अर्थात् नगर में माध्यमिक मन्त्र अनिश्चित पटित द्विष्ट और विचारयुक्त हो जाते हैं। यहाँ हर समूह संगठित होता है नहीं तो उसके हिता का ध्यान होता। सभी का मान है कि नगर में व्यक्ति का अर्थता आवाज का कोई मूल्य नहीं। सामूहिक या संगठित प्रतिनिधित्व और मांग का आदेश होता है। यहाँ बजह है कि नगर में विभिन्न हिता की समितियाँ या मण्डल हैं। अपना मांग को पूरा कराने के लिए वे अविश्व वाचाल और मन्त्रिय होते हैं।

७ व्यक्तित्वता—नगर के विशाल जनसमूह में व्यक्ति का व्यक्तित्वता दर्शनी नहीं वह सतत उभरता रहता है। यह बड़े आश्चर्य का बात है। नगरीय मन्त्र की ऐच्छिकता और माध्यमिकता अवमर्या की अनकता और सामाजिक गतिशीलता सभी व्यक्ति का अपने जीवन यापन के लिए नियत लक्ष्य और नियोजन करने का मन्त्र बन कर रहते हैं। हर व्यक्ति अनेक विविध समूहों का सदस्य हो सकता है। वह विविध हिताओं के लिए कार्य कर सकता है। इस कारण उसका सामाजिक व्यक्तित्व निराना हो जाता है। सम्भवतः किसी दूसरे व्यक्ति का ठाक वसा ही सामाजिक व्यक्तित्व नहीं होता। उस अतिरिक्त नगर में इतनी अनेक प्रतियोगिता है कि हर व्यक्ति अपने दूसरे के प्रतिपक्ष में खड़ा होता है। वह किसी विशेष समूह या हिता से मदद नहीं करता। उस अपना पक्ष स्वयं बनाना पड़ता है और फिर गन्तव्य के लिए अन्तर्गत अभियान करना पड़ता है। उस दूसरे के भेद तथा मानवाय मापनता का परिणाम हो जाता है जिससे वह सदा दृष्टिकोण से स्वयं का समन्वय कर जीवन में अनेक विषयवस्तु में कार्यरत होता है। वह दूसरे से लाभ अवश्य उठाता है और मदद भी चुन ले रहता है कि दूसरे उसमें अपना ऊँचा न भोगा कर पावे। इसीलिए वह स्वयं और दूसरे में स्पष्ट अन्तर करता है। परिणामतः प्रत्येक नगर निवासी अन्तर्गत अनेक बन जाता है। वह अत्यन्त आत्म चेतन और विचित्र होता है। दूसरे आगे, नगर का विशाल सम्पत्तियों और समितियाँ हैं जिनका वह सदस्य है। नगर में व्यक्ति कभी भी पूरनया एक समूह में विलीन नहीं हो पाता। वह सार नगर के ऊपर खड़ा रहता है।

८ स्थानिक पृथक्ता—नगरीय जनसन्ध्या का स्थानिक वितरण और पृथक्ता उसके विविध विशेषीकरण हिता के आधार पर होती है। नगर के केंद्र में वह जनसन्ध्या रहती है जिसके कार्य नगर के जीवन के लिए प्राथमिक आवश्यकता के हैं। सरकारी कार्यालय, प्रशासनिक सम्पत्तियाँ वित्तीय मन्त्रालय और व्यापारिक नियम नगर

क केंद्र में होते हैं। उनके अतिरिक्त अधिकाधिक लोग के आकषण तथा सम्पन्न लोग की वृत्तांतता के केंद्र जैसे बकीला, बड़े डाक्टर, विशेषज्ञ, नियोजक आदि के दफ्तर या नगर के मध्य में होते हैं। मजदूर बस्तियां कारखाना के समीप होती हैं। छाट छाट यापारी और यावसायिक वर्ग भी नगर के केंद्र के समीप रहते हैं। उनके कार्य स्थान और निवास स्थान में अधिक दूरी नहीं होती। कलाकार वैज्ञानिक तथा अन्य उदार यावसायी नगर के किनारे पर रहते हैं। वे नगर की भीड़ भाड़, धूल-धुआं और शोर से बचने के लिए अपेक्षाकृत स्वस्थ खुले और एकान्त स्थानों पर अपने भवन बनाते हैं। अत्यधिक सम्पन्न लोग उपनगरों में रहते हैं। इस तरह प्रत्येक बड़े नगर में विभिन्न वर्गों यावसायी वर्गों की संस्कृतियां अथवा आर्थिक हितों के लक्षणों में स्थानिक पृथक्ता होती है। बहुधा यह पृथक्ता लक्षणों के सामाजिक स्तर का प्रतिबिम्ब होती है।

स्थानिक पृथक्ता के आधार पर नगर सामाजिक संगठन का बड़ा सुविधा पूर्ण अध्ययन हो जाता है। एक निश्चित क्षेत्र के निवासियों का माध्यम तथा एक ही सामाजिक स्तर होता है और उनमें अनेक सामान्य लक्षण मिलते हैं। यह बात हुआ है कि सामाजिक व्यवहार के अनेक निर्देश जैसे उबरता, मृत्युता, निश्चय, अपराध, तलाक आत्महत्या पागलपन अवध सतति, निरक्षरता आदि में नगर के विभिन्न क्षेत्रों में तीव्र अंतर होता है। सामाजिक संगठन का स्थानिक वितरण के आधार पर अध्ययन करने वाली शाखा को सामाजिक परिस्थिति शास्त्र कहते हैं।¹

ग्रामीण और नगरीय जीवन की तुलनाएँ

गाँव का सामाजिक जीवन एक ग्रामीण पर्यावरण में क्रियाशील एवं विकसित होता है। वैसे ही नगरीय जीवन एक नगरीय पर्यावरण में चालित और विकसित होता है। उनके पर्यावरण ही क्रमशः उनके सामाजिक जीवन को बहुत अधिक निर्धारित करते हैं। दोनों पर्यावरण एक दूसरे से भिन्न हैं अतएव ग्रामीण और नगरीय सामाजिक जीवन में भेद है।

ग्रामीण और नगरीय जीवन में भेद के महत्वपूर्ण आधार—प्रचलित समाज शास्त्रियों ने इन दोनों में अंतर करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कसौटियाँ निश्चित की हैं। वे ये हैं—सामाजिक संरचना, सामाजिक विरासत पार्थिव सम्पत्ति की मात्रा जनसंख्या का सामाजिक स्तरीकरण, सामाजिक रचना और सामाजिक जीवन की जटिलता का अर्थ सामाजिक संपर्क की गहनता और विविधता आदि। अतएव इन्होंने दो प्रकार के सामाजिक संसारों में—गाँव और नगर में—उन दोनों के पर्यावरणों के आधारभूत भेदों के आधार पर तीव्र भेदों को ठोस रूप से प्रयत्न किया है।

1 Kingsley Davis *Human Society* p 340 Social Ecology is also known as Human Ecology. The discipline studying ecological pattern of urban area is called Urban Ecology.

ग्रामीण और नगरीय समाज में भेद करने के निम्नलिखित सबसे महत्वपूर्ण आधार माने जाते हैं¹

- (१) पेशेवर अन्तर
- (२) पयावरण के अन्तर
- (३) समुदाय के आकार में अन्तर
- (४) जनसंख्या के घनत्व में अन्तर
- (५) जनसंख्या की सजातीयता और विजातीयता में अन्तर
- (६) सामाजिक विभेदीकरण और स्तरीकरण में अन्तर
- (७) सामाजिक गतिशीलता और निष्क्रमण की दिशा में अन्तर
- (८) सामाजिक अल्प श्रिया की पहचान में अन्तर

सारांशिक और विमर्शपूर्ण न उल्लेख आधार पर ग्रामीण और नगरीय जगत् में भेद दिखाने के लिए जा तालिका दी है उसमें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।²

तालिका—

आधार	ग्रामीण जात	नगरीय जात
१. पेशे	सम्पूर्ण कृषक और उनके परिवार। समुदाय में कृषि के अनिश्चित साधारणतया अर्थपेशा के कुछ प्रतिनिधि हाते हैं।	सम्पूर्ण जात प्रदाननता बन्धुओं के निमाण, यात्रिक कार्यों व्यापार उद्योगों व्यवसायों, प्रशासनिक तथा अन्य कृषि विहीन पेशा का करते हैं।
२. पर्यावरण	मानवीय सामाजिक पर्यावरण के ऊपर प्रकृति की प्रवृत्ति होती है। लोग का प्रकृति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।	प्रकृति में अधिक पृथक्ता। प्राकृतिक पर्यावरण के ऊपर मनुष्य निमित्त पर्यावरण की प्रवृत्ति। बुरी हवा, पत्थर और लाल।
३. समुदाय के आकार	छोटे समुदाय। कथिवाद और समुदाय के आकार में नकारात्मक पारम्परिक सम्बन्ध है।	उसी देश और उसी काल में ग्रामीण समुदाय की अपेक्षा नगरीय समुदाय का आकार निश्चित हा बड़ा होता है। अर्थात् नगरीयता और समुदाय के आकार में नकारात्मक पारम्परिक सम्बन्ध है।

1 The following are the most important criteria for distinguishing the rural social world from the urban social world

(i) Occupational differences (ii) Environmental differences, (iii) Differences in the size of the communities (iv) Differences in the density of the population (v) Differences in the homogeneity and heterogeneity of the population (vi) Differences in the social mobility (vii) Differences in the direction of migration (viii) Differences in the social differentiation and stratification (ix) Differences in the nature of social interaction—A. R. Desai, *Introduction to Rural Sociology in India* (Bombay 1953) p. 10

2. Adapted from *Principles of Rural Urban Sociology* pp. 16-7

आधार	ग्रामीण जगत्	नगरीय जगत्
४ जनसंख्या का घनत्व	उसी दश अर उसी काल म नगरीय समुदाय की अपेक्षा जन संख्या का घनत्व कम होता है। साधारणतया घनत्व और ग्रामीणता म नकारात्मक पारस्परिक सम्बन्ध ह।	ग्रामीण समुदाय स कहीं अधिक। नगरीयता और घनत्व म सकारात्मक पारस्परिक सम्बन्ध है।
५ जनसंख्या का सजातीयता एव विजातीयता	नगरीय जनसंख्याओं की तुलना म ग्रामीण समुदाय म प्रजातीय और मानसिक लक्षणों म अधिक सजातीयता हाती है। (विजातीयता स नकारात्मक पारस्परिक सम्बन्ध)	ग्रामीण समुदायों की तुलना में (उसी देश और उसी काल म) अधिक विजातीयता। नगरीयता एव विजातीयता म सकारात्मक पारस्परिक सम्बन्ध।
६ सामाजिक विभेदीकरण और स्तरीकरण	ग्रामीण विभेदीकरण और स्तरीकरण नगरीय का अपेक्षा कम।	विभेदीकरण और स्तरीकरण का नगरीयता से सकारात्मक पारस्परिक सम्बन्ध प्रकट हाता है।
७ गतिशीलता	जनसंख्या की प्रादेशिक पेशेवर और अन्य प्रकार की गतिशीलता तुलनात्मक दृष्टि स कम गहन हाती है। सामान्यतः गावा स नगरों को अधिक लोगों का निष्क्रमण हाता है।	अधिक गहन। नगरीयता और गतिशीलता में सकारात्मक पारस्परिक सम्बन्ध। कवल सामाजिक आपदाओं (भयंकर) के समय नगरों से गावा की ओर अपभ्रंशतया अधिक निष्क्रमण होता है।
८ अन्त क्रिया की पद्धति	प्रति मनुष्य कम संख्या में मपक। उसका मनुष्य और सम्पूर्ण समाज के लिये अन्त क्रिया पद्धति का सकुचित क्षेत्र। प्राथमिक सम्पर्कों का अधिक महत्व। व्यक्तिगत और अपेक्षा कृत अधिक स्थायी सम्बन्धों की प्रबलता। सम्बन्धों म तुलनीय सरलता और निष्पटता। मनुष्य के साथ मानव प्राणी की तरह अन्त क्रिया हाती है।	अधिक संख्या में सम्पर्क। प्रति मनुष्य और प्रति समूह अन्त क्रिया पद्धति का अधिक विस्तृत क्षेत्र। माध्यमिक सम्पर्कों की प्रबलता। अव्यक्तिक व्यवस्था नुसूल और अल्पकालिक सम्बन्धों की प्रबलता। अधिक जटिलता, अनेकरूपता, छिछलापन और सम्बन्धों का प्रतिमानीकरण। मनुष्य के प्रति संख्या या पना की भाँति अन्त क्रिया हाती है।

सौराकिन और जिमरमन न ग्राम और नगर के सामाजिक जीवन के जिन आधारभूत भेदों का दर्शाता है उनको पूरातया समझ लेन पर ही हम नगरीय और ग्रामीण जीवन की विशेषताओं का भलीभाँति समझ सकेंगे।

। मकाइवर और पञ्ज न लिखा है कि सवत्र ग्रामीण जीवन म नगरीय प्रभावो के कारण काफी परिवर्तन आगया ह। फिर मा सभी दशा मे ग्रामीण जीवन का एक विशेष सामाय जीवन-रुग अभी भी अक्षुण्ण है। प्रजाति, जनवायु, स्थान और मायता के आक मिश्रित भन्ना के बावजूद भी हर देश म ग्राम्य और नगरीय जीवन म सामाय भेद पाय जाते हैं। अधान ग्राम्य जीवन के कुछ लक्षण विशेषकर प्रचल हात हैं जो नगरीय जीवन म नही मिलत।

उन विद्वान लेखका न प्रथम ग्रामीण जीवन के विशय सामाजिक लक्षणा का विश्लेषण किया है फिर ग्राम्य और नगर की सामाजिक रचना, संस्कृति आदि के बीच भेदा का विवचन किया है।¹

ग्राम्य जीवन के विशेष सामाजिक लक्षण

१ परिवार और प्राथमिक सम्बन्ध की प्रबलता—ग्रामीण जीवन का सबसे स्पष्ट लक्षण है कि वह नगर की अपक्षा शेष समार से बहुत पृथक रहता है। ग्रामीण म ग्रामीण जीवन सता पर विखर हुए परिवार मे वासना है। यहा के परिवार प्राय अध-पृथक से हाते हैं। चीन भारत आदि देशा म ग्राम अत्र बी केन्द्रित प्रकार के हैं। उनक परिवार ग्रामीण के परिवार की भाति पृथक नही हात। गाव के सभी परिवार परस्पर घनिष्ठ अथवा निवृत्त सम्बन्ध से रहते हैं। परन्तु मवन गाव दूमरे गावा और नगरा से पृथक रहन वाला इकाइयाँ हात हैं। ग्रामीण जीवन म परिवार का अत्यधिक महत्व हाता है। वह जपन संस्था की अविनाश आधिक और सामाजिक आवश्यकताया की पूनि करता है। सामान्य परिश्रम और पारस्परिक सेवाया की आवश्यकता परिवार के सभी संस्था म मुहड़ और घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर रती है। समय और न्यान की आवश्यकतायें परिवार म अचन हड एकता पना कर रती हैं। ग्राम्य परिवार म आम केन्द्रित और मानसिक रूप म स्वावलम्बी हो की प्रवृत्ति होनी ह।

ग्राम-परिवार का बाह्य समार म बहुत पून सम्पन्न होता है। उत्तरी प्रयाया की जड धन्ये गहराई म होता है। ग्रामवासी का अपनी रीनियाँ सर्वोत्तम लगती हैं और उन्हें ही बहु मुहड करता जाता ह। उस विसृन आर उदार विचारा का अवसर नही मिलता। न वह नवीनता ग्राजन के लिय प्रामाह्न ही पाता है। इमलिए प्रयाएँ उम पर शासन करती हैं। नवानता और पान का उमके लिये कम महत्व है। उमके जीवन क डगा और आदना मे काई अतर तभी आता है जत्र प्रवृत्ति मे नयकर परिवर्तन हा या समाज म काद विशेष क्रान्ति।

बाहर बालो से ग्रामवासी के सम्बन्ध बहुत कम और अव्यक्तिक होते हैं। किन्तु परिवार के अर्थ सम्स्या तथा पड़ोसिया से उनके सम्बन्ध बड़े घनिष्ठ और प्राथमिक होते हैं। उसका सारा सामाजिक अस्तित्व ग्रामने सामन की स्थितियां म वीतता है। उसके सहयोगी सम्पूर्ण व्यक्ति होते हैं जिनके साथ वह सहकारिता या मघप करता रहता है। अपने छोटे से गांव के सम्पूर्ण लागा से वह इतना अधिक परिचित होता है कि उसे सारा समुदाय एक परिवार मानता है।

२ पेशे का ढंग—अधिकांश ग्रामीणों का पेशा खेती या उससे सम्बंधित काय होने हैं। चाहे ग्रामवासी कृषक मछुआ हा, शिकारी अथवा मत्तकार या मजदूर हो वह सनत प्रकृति के सम्पन्न म रहता है। वह भूमि से ही अपना जीवन निवाह करता है। उसकी जड़ें भूमि में होती हैं। वह प्रकृति को मित्र सहयोगी शत्रु अर्थात् हरा म देखता है। अतएव सान भर बदलत हुए मौसमों के साथ वह भी प्रकृति के साथ सघप करता है अथवा उसकी क्रूरताओं से पराजित होकर उसकी दासता स्वीकार करता है। वह समस्त प्रकृति को जीवित मानता है। उसका धर्म विचार आदर्श और रव सभी तो प्रकृति से उसका विशेष सम्बन्ध के रण म रगे रहते हैं। उसके भाग्यवादी और परम्परावादी (रूढ़िवादी) होने का यही कारण है।

ग्रामवासी का प्रधान व्यवसाय कृषि है। इसलिये उसकी मानसिकता और सामाजिक जीवन पर व्यवसाय की स्पष्ट छाप रहनी है। उसका काय, विभ्रान्ति तीव्रता और शिथिलता सभी तो प्रकृति म दैनिक और ऋतु सम्बन्धी परिवर्तना से निर्देशित हाते हैं। नगर के मजदूर या व्यवसायी को घड़ी की गति के साथ या स्थिति का आवश्यकतानुसूल काय और विभ्राम आदि करना पड़ता है।

ग्रामीण मनुष्य का सर्वात्मिक धन भूमि है उससे उसे बड़ी ममता और लिप्ति हो जाती है। इसका फल यह हाता है कि वह अपनी सामाजिक संस्थाओं और प्रथाओं म भी रूढ़िवादी हा जाता है।

३ विविध काय—गाँवों म कृषि प्रधान व्यवसाय है किन्तु इस व्यवसाय में व्यक्ति को अनक काय करने पड़त हैं। कृषि की अनक प्रक्रियाय होती है और प्रत्यक प्रक्रिया म कई प्रकार के काय करन पड़त हैं। दूसर, किसान का सुहारी बड़ईगोरी, पशुचिकित्सक राज या लकठारा आदि सभी के काय बहुत कुछ स्वयं करने पड़त हैं। वह अपने बच्चा को इन मत्र कलाओं की शिक्षा भी दता है। आधुनिक युग के आदिपारा म किसान के बाह्य का जहाँ एक ओर हतका किया वहाँ दूसरी ओर उसके लिए यह भी आवश्यक कर लिया है कि वह बिनली यंत्रा अर्थात् स काम लना सीख त। इसी प्रकार ग्रामीण मित्रया के काय अत्यधिक विविध हैं। विज्ञान आयागमन के

साधना और प्रविधि की उत्पत्ति के बाद भी किसान को अनक प्रकार के बाध करन पन्ते हैं। उनकी काम काफा कठिन और निश्चिन है। इसका स्पष्ट प्रभाव उमर सामाजिक तथा आर्थिक तथा जीवन दशा पर पडता है। उसे कृषक रहने हुए रिनी तरकी अथवा पशु की तदनीरी की आशा करना बोरी कल्पना लगना है। सामाजिक जीवन म उमर काम बडी गहराई म निश्चिन है और इसी प्रकार उमर विचार, रीतिरिवा और आनापाने नी।

४ सरल और मितव्ययी जीवन निर्वाह—किसाना के विशेषकर छान्द किसाना के परिश्रम का फन यदाकदा ही प्रचुर हाता है। उह विवश हाकर अकि चनता और प्रबुग्ना रहिन जीवनयापन की सीमाग्रा म ही रहता पडता है। बुरे साता म किसान कज म लड जाता है और अरुद्र माल म इस कज ने मुक्त हाकर मुन का सौम भर न सकता है। उनकी आय साधारणतया अथ शारीरिक परिश्रम करन वाला के स्तर मे ऊंची नही हा पाती। नगर के मकान मानिको अथवा राजगारिया और उद्यागपतिया की आय की ता वह कल्पना भी नही कर पाता। अमरीका एन सम्पद्र दशा म नी प्रकारा किसान केवन मितव्ययी जीवन विना सकता है। इस अतिराश म अपनी अनिवाय आवश्यकताग्रा की पूर्ति के साधन ही उपलब्ध हो पात हैं। भारतीय किसान के निम्न जीवन स्तर और दरिद्रता का अनुमान हम उनकी आय म लगा सकन हैं। भारत के ६०% किसाना की प्रति व्यक्ति वार्षिक औसत आय २७२)१० म ना कम है।

नामोण क पाम धाडवर और प्रदशन के निये घन या सम्पत्ति नही हाता। उन लिवावा करन की इतनी आवश्यकता नही रहनी जितनी नगर के निवासी मजदूर या बतक को। उसक सीधे साद अहनिम जीवन म एक अज्ञात आकपण है। पर उनकी निराश्रयता तथा मितव्ययता पर हम बटुधा कणा आती है। उनकी आकाशाग्रा का नी पृथ्वी पर रहता पल्ता है। अपन जीवन-स्तर का उच्च करन क निये उमके पाम साधना का दयनीय अभाव है। उमम प्रतिस्पर्धात्मक मूल्य नाम मात्र का हा हात है। फिर वह कपार नय विचार आदर्शों और रया का अपना सवे ? यदि न सम्पन धरना अथवा नगर की तटक भटक का दस्तकर भी उमम उद्यान करन और गनिमान हात की भावना शायद ही आ पाती है। यही कारण है कि ग्रामीण अपनी भूमि म और अपन अनात स जकडा टुधा बंधा है। उत्तकी स्थिति म मुधार तभी सम्भव हा सकता है जब उस यह निस्सन्दह समभा दिया जाय कि स्वयं उमक प्राकृतिक और सामाजिक पयावरण म उत्यान करन म प्रचुर अवसर समाहित है। यदि वह कपन कम कर विश्वस्त पगा म आगे बड तो उमका अविष्य अति उम्ग्वन हा सकता और वह भी गीत्र सभ्य मानव के जीवन-यापन की आकाशा कर सकता है।

उपरोक्त को मकाइवर और पेज प्राथमिक कारक कहते हैं जो ग्रामीण जीवन की नगरीय जीवन से पृथक् विशेषता बताते हैं। उन सबसे मिलकर एक ऐसा पया वरण बताता है जो ग्रामवासी के सामाजिक अनुभवा को गम्भीरता से प्रभावित करता है।

नगर में साधारणतया उसका आकार के अनुपात में उपरोक्त की विराधा दशाएँ मिलती हैं। नगर के विनाश जनसमूह में अति निरुत्त सम्पन्न हाता है। वहा अनक प्रकार की समितिया होती हैं जो परिवार और ग्रामीण पडोस के कार्यों को बहुत बुद्ध स्वयं करने लगती हैं अथवा उनमें अनुभवा का अनावश्यक कर देती हैं। नगर में माध्यमिक अथवा श्रेणीबद्ध सम्बन्धा की प्रयत्ना होती हैं। मनुष्या और सम्पत्ताओं में मनुष्य के इतने अपरिचित सम्पन्न हो जाते हैं कि फिर प्रकृति से उसका सम्पन्न समाप्त प्राय हो जाता है। आर्थिक वर्गों का विभेदीकरण और आर्थिक कार्यों का विशेषीकरण, मनुष्यों को ऊँचे नीचे पद और श्रेणी में इतने प्रकार रखते हैं जो ग्रामवासियों की कल्पना से परे हाता है। सीमित और प्रगाण कार्य, उसकी अनन्त विविधताएँ और अक्सर तथा भाग्य की विपन्नताएँ नगर के जीवन में एक अति जटिल प्रतिस्पर्धात्मक जीवन उत्पन्न कर देती हैं जो गाव की परम्परा का विराधी हैं।

माध्यमिक कारकों के आधार पर ग्राम्य और नगरीय जीवन में तुलना करना अपेक्षाकृत कठिन है। मैकाइवर और पेज ने इनमें से कुछ प्रमुख कारक चुन कर अधोलिखित तुलनाएँ की हैं —

सामाजिक तुलनाएँ

(१) पारिवारिक दृष्टता एवं सामाजिक नियंत्रण—ग्राम्य परिवार अपक्षतया प्रबल है और आत्ममरित भी। इसलिये गाव में सामूहिक उत्तरदायित्व प्रचलित हाता है जो नगर में धीरे धीरे धुल जाता है। गावा में बहुधा पितृमत्तात्मक परिवार एक महत्वपूर्ण सामाजिक सम्बन्ध है। अपन सत्स्था पर उसका बहुत अधिक नियंत्रण हाता है। व्यक्ति की परिस्थिति का निर्धारण उसकी पारिवारिक परिस्थिति पर निर्भर हाता है। मारी संपत्ति परिवार की हाती है। सभी मामला में व्यक्ति पारिवारिक अभिमान सन्निहित हाता है। बहुधा व्यक्ति परिवार की उपेक्षा या उल्लंघन करने का मात्म नहा करता। यहाँ तक कि वित्तुल व्यक्तिक मामला जस विवाह शिक्षा आदि में व्यक्ति परिवार के करवाण और प्रतिष्ठा पान के लिये अपनी इच्छाओं अथवा आकांक्षाओं की बलि दे देता है।

इसी प्रकार धर्म पक्षे, जीवन रीति, मनोरजन, और राजनीति में ग्रामीण गाव परिवार की परम्परा में अधिक प्रभावित हाते हैं। मनुष्य की नतिकताय वस्तुत परिवार की एकता की नैतिकताएँ हाती हैं। प्रतिष्ठित संहिताओं का उल्लंघन ग्रामीण मनुष्य में अमहनीय है विशेषकर यौन-सम्बन्धा में इस प्रकार के उल्लंघन बहुत कम हाते

ह और यदि होने हैं तो अग्रराधियों का क्या दण्ड भोगना पड़ता है। गाँव के परिवार में एता और हडना नगरीय परिवार की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। वहाँ तनाक या निवाह बिच्छेद अनि भूत होने हैं। गाँव में ऐसी स्त्री अथवा पुरुष को जो, किसी परिवार से सम्बद्ध नहीं है, काइ स्थान नहीं मिलता। गृहस्थ होकर ही वहाँ सामाजिक प्रतिष्ठा मिल सकती है।

परिवार की प्रथम स्थिति व कारण ग्रामीण जीवन में सामाजिक नियंत्रण धूननम औपचारिक होता है। परन्तु फिर भी उत्तम अर्थविक शक्ति होती है। सामूहिक दृष्टिया का प्रभाव बनना अधिक है कि उनका विराय अथवा अनादर करन का माहम बदाचित हा कोइ करता है। इन दृष्टिया के परिपालन के निचे किसी विाप एजेन्सी की कोइ आशय्यता नहीं। गाव की चौपाल की गणशय या कुएँ पर पतिहारिया की बाना होती अथवा मेला में किसान का प्रताप—य ही प्राय धामिया से संहिताया में प्रनिरू जाने से रोकन के सत्रभाविर् मावन हैं। गहर में परिवार उत्तम लीन रही भेना जितना गाँव में। यहा तो परिवार के बटुन से दामिन्ना और कृत्या को धार्मिक राजननिक विक्रिमा सम्प्रयो और शक्षणिक एव साम्प्रतिक समितियाँ और विशेषीकृत सम्पार्ये लीन लता हैं। नगर के परिवार में व्यक्ति के सम्बन्ध कम पूण और सर्वांगीण होने हैं। उसके बटुन में सपक अप्रत्यक्ष द्वार अवैयत्तिक हा जात हैं। परिवार में रहकर भी नगरधामिया को अपने दिन का अधिकश भाग उमसे बाहर ममितिवा और सधा में बिताना पडता है। फिर परिवार से उमरी प्रगाड निजि कम हो सकती है? जिशा धार्मिक काय व्यवसाय अथवा धार्मिक द्वार साम्प्रतिक हिता की पूति में वह परिवार को परम्परा और कल्याण में नहा बधा रहता है। नगर में जीवन-यापन की परिस्थितिया उम प्रनियोगी और महत्वात्मायी कार्यों व निय दिवश कर रती हैं। परिणामन हर नगरधामी अपने सफन जीवन व निय स्वय निगुय कर लता है और पय तथा पडति का चुनना है। इस कारण उम अतक धा परिवार की मत्ता और प्रतिष्ठित संहितायो का निरम्पन अथवा अन्वयन करना पडता है। उसके निय पडाम से अतरी है। बहा व्यक्ति का दिग्ध हिता की पूति के निय विगिष्ट सम्पन्न स्यापित करन पन्न है। और न जान कितन प्रकार व अल्पकालिक एव तन्नि सम्प्रय बनाय रना पटन है। उन परिस्थितिया में परिवार से उमका सम्प्रय अथय मीमित गता। अत परिवार का नियन्त्रण गिदित एव उतक आदर्शों ग्या प्रादि की छाप व्यक्ति पर बटुन भूत होती।

गाँव और महानगरों में सामाजिक नियंत्रण की समस्या कही जटिल और गम्भीर हो जाती है। यहाँ ग्रामीण समुदाय के संगठन, औपचारिक अथवा प्राथमिक से काठ काम नहीं चलता। गणराज (प्राजाप), प्रथाया, नीतियों एव दृष्टिया के अन्तर्गत धार्मिक नियमों को व्यक्ति सरनता से निरम्पन कर देता है। कारण यह है कि इन नियमों के अधिनार क्षेत्र में वह बहुत सीमित उद्देश्य व निय ही काम करता है।

उसके सामाजिक सम्पर्क बहुत अधिक होते हैं। नगर में अनेक प्रकार की सामाजिक सहिताया तथा माध्यमिक सम्बन्धों से उसका वास्ता पड़ता है। इन दशाया में उसे विभिन्न भूमिकाया में बाध करना पड़ता है। उसे अनेक बार निश्चित और धूमिल परिस्थितियां में रटना पड़ता है। ऐसे में उस पर नियंत्रण केवल विशिष्ट मस्याएँ अथवा समितियां ही कर सकती हैं। कम्पनी विश्वविद्यालय प्रशासकीय कार्यालय, पुलिस गुप्तचर विभाग, सेना तथा न्यायालय सभी तो नगर वासा पर नियंत्रण करने में तत्पर रहते हैं। लेकिन यह नियंत्रण अधिकांशतः व्यक्ति के सावजनिक आचरण पर अत्यधिक प्रभावपूर्ण होता है। प्रायः उसका निजी जीवन नगर के अवयक्तिक संसार में अदृश्य ही रहता है।

(२) पेशों का विशेषीकरण—ग्रामीण जीवन में प्रायः सभी लोग कृषि अथवा उससे सम्बन्धित पेशों का करते हैं। वहाँ पेशा की सराया थोड़ी है। उनमें विशेषीकरण का अत्यल्प अंश है। ग्रामीणों में आर्थिक विभेदीकरण भी नगण्य सा होता है। अतएव वहाँ प्रतिस्पर्धा और जटिल प्रवर्णन नहीं प्रचलित हो पाता।

नगर में गाव की स्थिति के विपरीत अनेक प्रकार के असम्बद्ध बाध हात हैं। उह करने के लिये एक विशेषीकरण का सहारा लेना पड़ता है। किसी बड़े नगर के चौराह पर सुबह जाकर खड़े हो जाइय आप को हजारों प्रकार के काम पेशे सब साथ अथवा रोजगार करने वाले लोग आत जाते मिलेंगे। इन कार्यों में दक्षता और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। अतएव हजारों प्रकार के दक्ष और विशिष्ट कामों को करने के लिये विशेषीकरण का अत्यधिक अंश नगर में मिलता है। कौन नहीं जानता कि नगरों के दक्ष तथा विशेषियों की अनन्त सूची बन सकती है।

(३) सामाजिक स्तरीकरण—उपरोक्त आर्थिक विशेषीकरण से ही नगर के समाज की रचना होती है। यहाँ शीघ्र और क्षतिज सामाजिक स्तरीकरण बना जन्म हो जाता है। यहाँ के सामाजिक स्तरों का एक ताँता सा लगा रहता है। परन्तु सामाजिक स्तरों के उस तम में नगरवासी को उठने और गिरने के अवसर भी अग्रणित हैं। यदि कोई चतुर है परिश्रम या तिकड़म से अथवा नागरिकों की अपेक्षा आर्थिक प्रतिस्पर्धा और हाड में अग्र निरत जाता है तो उसका भविष्य अति उज्ज्वल हो जाता है। वह सहज ही सामाजिक प्रतिष्ठा और आनंद का भागी हो जाता है। नगर में व्यक्ति की सफलताएँ या गुण उसके सामाजिक स्थान को निर्धारित करती हैं। एक पंज से दूसरे पेशे अथवा एक बग से दूसरे बग में चल जाने के लिये नगर निवासी को अग्रणित अवसर प्राप्त हो सकते हैं। नगर में योग्य व्यक्तियों को अपने विशेष गुणों को उपयोग करने के अवसर मिलते हैं। व्यक्तिगत चुनाव और निरी प्रतिस्पर्धा को नगर में बहुत महत्व है। किन्तु इसके साथ ही व्यक्ति स्तर या प्रस्थिति की अनुरक्षा भी बन जाती है। उस अपने से अधिक योग्य और कुशल लोगों से प्रतिस्पर्धा करने में असफलता का भय अधिष्ठ रहता है।

(४) सामाजिक गतिशीलता, और सयोग के अवसर—गावा में सामाजिक गतिशीलता—प्रादेशिक, व्यावसायिक अथवा स्थानिक—शायद नहीं के बराबर होती है। वहाँ निष्क्रमण कब नगरों की ओर होता है। परसे इनका सीमित ज्ञान है कि उनमें गतिशीलता का क्षेत्र अत्यधिक संकुचित होता है। रहते सामाजिक स्थिति में गतिशीलता की बात—वहाँ नहीं बड़ी शिथिल होती है। ग्रामीण जीवन में प्राथमिक श्रद्धा की बढतना होती है। वे और श्रेष्ठिया की सख्या गिनी चुनी जाती है। अनाथ शोध गतिशीलता का क्षेत्र प्रति सीमित होता है। मारवा यह है कि ग्रामीण जीवन में व्यक्ति का व्यवसाय और सामाजिक स्थान बहुत कुछ पूर्व निश्चित होता है। वहाँ विशेष गुण अथवा चतुरता के प्रमाण के अवसर भी नहीं के बराबर मिलते हैं। मनुस्वाकाशा और प्रतियोगिता के प्रति परिमित होने से गाव में सामाजिक गतिशीलता बड़ी शिथिल और सीमित होती है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण का मध्यम अवसर बहुत नीचे बिस्व और यूननम मिलते हैं। उसी आशा निराशा भी कुछ पूर्व निश्चित होती है।

नगरीय जीवन में सामाजिक गतिशीलता बहुत अधिक होती है। यहाँ ठाट बग श्रेष्ठिया या सामाजिक स्तर में उच्चतम बग, श्रेष्ठिया या सामाजिक स्तर पर एक चरण के अनेक अवसर मिलते हैं। व्यक्ति के जीवन यापन और सामाजिक प्रस्थिति के निर्धारण में उस पदार्थ स्वतन्त्रता होती है। नगर में सहाय अवसर प्राप्त होते मिलते रहते हैं। इन सहाय अवसरों से नाम उठाने की विषय चतुरता नगर-वासियों में आ जाती है। ये व्यक्ति के भविष्य का कारण भर में प्रतिभय बना देते हैं। लाटरी, रैकट मट्टा या सामाजिक-मालो मम्पक या किसी फलन या विचार का सहयोग पतिवतन—ये सभी ता व्यक्ति को अप्रत्याशित लाभ देना सकते हैं।

(५) विशेषीकरण के क्षेत्र—हम अपने पाठकों का ध्यान अपनी अध्याय में फीट्टे नगर के विभिन्न क्षेत्रों की ओर खिंचा चुके हैं। नगर में स्थानिक प्रयोजना होती है। विभिन्न वर्गों के लोगों के रत्न के नियम विभिन्न विशेष क्षेत्र होते हैं। इसी प्रकार विभिन्न शारीरिक, शैक्षणिक, नैतिक, प्रशासकीय, मासुतिक अथवा सामाजिक प्रमाद सम्बन्धी कार्यों के नियम नगर में क्षत्रा का स्पष्ट विभाजन होता है। वही नीति का क्षेत्र है ता वही फुटकर या दालि व्यापार का वही बहाराओं का क्षेत्र वही मन्दम श्रेष्ठिया के सागा का क्षेत्र है ता वही प्रशासकीय कमचारिया का। मगरा के इन विभिन्न क्षेत्रों की व्यवस्था का एक साधारण प्रविमान होता है।

गावा में इन प्रकार के बार्द विशेष क्षेत्र नहीं होते। ता ज्ञानि अथवा मनुस्वामिक के साधारण पर नाम स्थान का कुछ विवरण अवश्य होता है।

नगरों के इन क्षेत्रीय विशेषीकरण का बहुत व्यापक प्रभाव वहाँ की सामाजिक रचना पर पड़ता है। इन आप स्वयं अनुभव कर सकते हैं यदि अपने नगर के विभिन्न

विशेष क्षेत्रों की सत्यान्ना प्रथाओं, जननीयों और सामाजिक रस्त्रों का ध्यान स भवलावन करें।

(६) स्त्रिया की सामाजिक स्थिति—गावा की त्रपेक्षा नगरो म स्त्रिया का सामाजिक स्थिति अच्छी हाती है। वहा उह युगा-युगा की जडता, हडिवादिता एव अज्ञाना के अन्नार से नितल कर नवीन प्रगतिशील जीवा प्रिताने के प्रचुर अवसर मितत ह। नगर के काग्वाना म स्त्रिया मन्हुरा ही नहीं बरनी, वे कतन म तोक उच्च आपारिक और प्रशासकीय अधिकारी भी बन जाती ह। नितत कलाआ और बुद्ध उत्तर व्यवसाया म तो उनका प्रशाननाय स्थान होता है। उह घर म भी गदे और अति परिश्रम बाल कार्या की नहीं करना पन्ता। नवीन आविष्कार और प्रिजली उनक घरख दायित्व का सुखमय बना दिया है। प्रमदकाल की अनीव पीडा तथा तज्जनित अनन शारीरिअ असुविधाआ स भी उह बहुधा मुक्ति मिल जाती है। सागस यह ह कि स्त्रिया के काय क्षेत्र मे आशानीत विस्तार तो हो ही गया है उह आर्थिक राजनतिक सामाजिक शशरिअ और सास्कृतिक प्रगति करने क अनेक सुलभ अवसर उपलब्ध है।

नगर की स्त्रिया का सबसे अधिन सुखमय अनुभव तत्र हुआ जब व युगा-युगा की आर्थिक दासता स मुक्त हुई। उनम स योग्य और मह वाकाक्षी आर्थिक स्वावलम्बन पाप्न कर लता ह और पुरुषा के तूर व्यवहार को चुनौती दे सकती हैं। उनकी मानसिक परनिभरता डह रही है और वे धीरे धीर समाज म पुरुषा के समान स्तर पर आन का प्रयास कर रही है। यहा तक कि वे परम्परागत विवाह और परिवार क बधन म भी बुडिमान नागी की हैमियत स बंधना चाहनी हैं। वास्तव म नगरीकरण औद्योगिकरण एव जनत भोकरण न नारों का अपन वास्तविक रूप म प्रनट होने का मुयाग प्रदान किया है। अब गारी कवल घररू वस्तु अथवा चकरी चून्हा और बच्चा का जनन वाली मूख और निराश्रय स्त्री नहीं रहना चाहनी। वह प्रगतिशील मानवता क कल्याण और गौरव म अपना उचित याग लिए बिना नहीं जीना चाहनी। म तैप म रना क सामाजिक जीवन मार रुवा म आतिकारी परिवतन हा रहा है।

(७) लिंगो का अनुपात—किन्तु नगरो की सामाजिक रचना म एक बात चिन्तनीय है। अमराका इगण्ड आरि औद्योगिक पाश्चात्य दगो मे नगरा की जन नन्या म युवतिया का अनुपात पुरुषा का अपेक्षा अधिक है। १९८० ई० म जिनागा त्रूयाक फिसात्पिया सट हुई कसास नार म प्रति १०० स्त्रिया के पाछे केवन प्रमन ९८ ९७ ५ ९५ ३ ९२ ४ और ९१ स कम पुरुष ये। और स्त्रिया की सन्या म यूनन अविवाहिता का था। भारत म पाश्चात्य त्णा की उपराक्त स्थिति क विपरीत अवस्था विद्यमान है। यहाँ क नगरीय जीवन की एक विशेषता स्त्रिया का तुाना म पुरुषा की अधिवता है। नगरा म औमत प्रति १००० पुरुषा पर ८६० स्त्रिया हैं। बुद्ध नगरा म ता यह स्थिति बडी उग्र है। बहतर कलनता ६०२,

वहनर बम्बई ५६६ मद्रास ८०१, दिल्ली ७५० हैदराबाद ६८६ प्रहमदासाद ७६४, बानौर ८८ बानपुर ६६६ पूना ८०३ और लखनऊ ८८३ ।

हमारे शैक्षणिक नारा के अधिकांश मन्त्र अन्नी भी गावा और ग्रामीण स मन्दीयन हैं । नारा म निवास-स्थान के अभाव के कारण स्त्री-युवा का गाय नहीं रहन । यही हाल नारा कावायया उद्यागा आदि म नौकरी करन वाते हारा दुबका वा ह । वे भी उच्चिन वानस्थान के अभाव म तथा अय बारगा म या ता ऊँचो प्रायु तक हारे रहत है अथवा अपनी पत्निया को माय नहीं रहन ।

अन्य पान्चाय और पूवात्य नारा म गाना निगा की जनमाया म विनमना ह । इनरी वान यह है कि नारा की अतिन जनमाया अधिवाहिता की है । दा स्थान का नाग्वामिया की नैतिकता पर गाना प्रभाव पानता है । स्वस्थ पागिवा-रिज जीवन क प्रभाव म नगर के युवक-युवनी अभिचार और अय अवाहित बायी की धार प्रभावित होत हैं । बेमालय नानादी गम मिया का धातरण, स्कून मायन और अस्पताल के युवक-युवनिया म चरित की शिथिलता बेअजनक विपय बनता जा रहा है ।

सामाजिक-मनोवज्ञानिक भेद

उपर हमन ग्रामीण और नगरीय समुदाय के जिन विशिष्ट लक्षणों की विव-चना की है उनही प्रयक दशा म लापा के व्यवहारा और रवा म प्रतिक्रिया हानी है जा उनके जावन राति की विशेषता को व्यक्त करती है ।

(१) समागमी व्यक्तिवाद—नगर क परावरण का समुक्त प्रभाव यह हाता है कि नाग्वामिया म समागमी व्यक्तिवाद का उदय हा जाना है । नगरों के विगत जमपट और बहा क निवासिया की विशेषाङ्गन नवाग्रा स व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्ध चुनाक क आधार पर म्यानिन होत हैं । उनका सामाजिक आचरणनाएँ एक पवित्र अथवा पवित्र म पूरी नहीं हा पानी । प्रत्युत यह पूरा करन क लिए वह कम या अधिक स्वतन्त्र सम्प्रदा की एक श्रुतना भी स्थापित करता है । उनके समन एक नववयन नमया म् हाती है कि बह न विविध विष्णोहून सम्प्रदा का अपन सामाजिक जीवन म नदय बन कर । दशा म समकी सम्प्रदा अथवा विष्णवा क अराजना अधिक अवसर सन्निहित हैं । ग्रामवासी की तुलना म उन समन और व्यक्ति के समाधानन म अपनी मासध्य की पूरा गाम उगना चाहिए । वह स्वच्छा म चाह ता या निराग निधि रगे परन्तु बत म् निर्दिष्ट रह नक्तता ह । नार म इन प्रकार प्राथमिक सम्प्रदा मे माध्यमिक सम्बन्ध अति प्रबल हात हैं । परिणामस्वरूप नार म सामाजिक रवा का अति विम्वृत भवे हाता है ।

ग्रामीण जीवन म सामाजिक सम्बन्ध अपभाहून था म सोचित हात हैं । अन्व वहाँ क निवना का नर समय तयी गिा में बटने की आवापक्ता नहीं पानती । इन कारण दमके बटन स गुण अविचलित बन रहने हैं । गाँव के जीवन मे

परम्परा और स्थिरता का अधिक महत्त्व है। इनके विपरीत नगर में अनेक सामाजिक सम्बन्ध हात हैं। उन सब में नित या प्रतिक्षण नगरवासियों को आरम्भिक कदम उठाना पड़ता है। इससे उसमें अनेक गुणों का विकास होता है। नगर में व्यक्ति का अधिक सतक रहने की आवश्यकता है। उस बदलती हुई परिस्थितियों से नीत्र प्रतिक्रिया करनी पड़ती है। कभी कभी तो नगर के निवासियों को इतनी शीघ्रता से व्यक्तिगत समायोजन करना पड़ता है कि वे जरा चूक नहीं कि भयकर मुसीबतों में पड़ गए। उसके तराका में शीघ्र समायोजन के प्रति सतवृत्ता और बुद्धिमत्ता प्रतिबिम्बित होती है। उसका नतिक धारणाएँ तो और भी स्पष्ट रूप से इस तथ्य का पक्क करती है। वह अनेक प्रकार के यक्तियों और स्थितियों से जिस सरलता से सम्पर्क रखता है अथवा जितनी सुगमता से अनुकूल करता है उसका कारण उसकी नतिक धारणाओं का भारी विविधता है। अनेक धर्मों में नतिक संहिताओं जीवन ढंगा अभिरुचियाँ, मतमतान्तरों के बीच में नगर निवासी सहिष्णु और उत्तर रहता है। गाव में परम्परा के विरुद्ध कोई विचार नहीं सहन किया जाता। वहाँ के जाग को उसी ढंग से रहना आवश्यक है जिसमें वहाँ का बहुमत रहता आया है। उत्कृष्टता का प्राप्त करने के लिए तुलनात्मक आलोचना अथवा अवस्थाओं का परिशीलन यामीण नहीं स्वीकार कर पाता। ग्रामीण आर्थिक एवं राजनतिक सिद्धांतों की भाँति वहाँ के नतिक नियम भी बड़े बठार हात है। गाँव में नतिक नियमों का उल्लंघन अत्यंत निन्दनीय माना जाता है। किन्तु सृष्टिवादिता और परम्परात्मकता में ग्रामवासियों के जीवन में सुरक्षा की अधिक सुदृढ भावना बनाय रखने में प्रयत्नशील वाय किया है। उसके कमजोर विश्वास भी शीघ्र नहीं डगमगाते। नगर में तक नवीनता परम्परा विराध एवं व्यक्तिकता के कारण निबन शाध्र ढह जाते हैं और व्यक्ति के सामन असुरक्षा और अनिश्चितता मुँह वाय लटी रहती है।

(२) सामुदायिक भावना—ग्राम-वासियों में सामुदायिक भावना बड़ी प्रगाढ होती है। उसे अपनी भूमि और समूह से बड़ा प्रेम हाता है। सभी ग्रामीणों में इस भावना बड़ी सुदृढ हाती है। प्रत्येक को समाज में अपने कार्यों का निश्चिन जान रता है। वह गाव के अय लोग पर किमा न किमी प्रकार निभर रहता है। उनमें पृष्ठ स्वतंत्र हाकर वह सभवत अधिक निराशय और अनिश्चिन हो जाता है। एक शब्द में ग्राम-वासियों का अपने समुदाय के प्रति प्रगाढ प्रेम होता है। वह उमका है और उमी में गृहगा मरगा। उसमें पृथक् और स्वतंत्र रहकर वह सबलहीन और प्रयाजन हीन जीवन मितान से भयभीत रहता है।

इसके विपरीत नगरवासी में नगर के प्रति न तो प्रगाढ प्रेम हाता है, न उसे उससे निम्ति हाती है और न वह उसको अपना ही समझता है। उसमें 'हम भावना' निबल पड जाती है। वह वैयक्तिकता और स्वायत्त का पुजागी हो जाता है। उसके कार्यों में इतना उलट फर हुआ करता है कि वह शायद ही कभी अपनी भूमिका

का निश्चिन्त रूप से समझ पाता है। अपने दूसरे साथियों में से अधिकांश के दार्यों का भी वह नहीं जान पाता। उसमें समुदाय के अर्थ लाना उस भी अत्यंत आश्रित होने की भावना भी बड़ी दुबल होती है। वह तो अपक्षतया अल्प-पृथक् और स्वतंत्र रहना चाहता है। यदि एक नगर से दूसरे का जाना पड़ता है तो बड़ी मरलता से वह अपने पुराने समुदाय पड़ोस और सम्बन्धों का छोड़ कर नवीन स्थानों की ओर चल जाता है। उसमें समुदाय के प्रति ममत्व तो आ ही नहीं पाता।

सांस्कृतिक अंतर और सम्बन्ध

ग्रामीण और नगरीय समुदायों की संस्कृति में भेद होता है। इसका कारण उन दोनों में विभिन्न पर्यावरण और समझौते हैं। किन्तु सांस्कृतिक भेद इन समुदायों में मोटन या सांस्कृतिकता प्रभावित भी करते हैं। मानव संस्कृति का जन्म गांव में हुआ था और मंदब उसकी जड़ें गांव में रहगी। नगर में तो इस संस्कृति का विकास हुआ है। हम पहले कह चुके हैं कि नगरीकरण और संस्कृति दोनों का सामाजिक अर्थ है। ग्रामीण संस्कृति पर प्रकृति की गहरी छाप है। उसमें प्रकृति की अद्भुत मन्त्र-प्रतिविधि मनाहारी आदृतियाँ का चित्रण है। ग्रामीण संस्कृति में अल्पसंख्या में ग्रामवासियों की लोक कथाएँ, लोक पुराण लोक नृत्य और लोक संगीत आदि का समावेश होता है। उसमें पृथ्वी और मनुष्य के घनिष्ठ सम्बन्ध का प्रतिबन्ध है।

नगर की संस्कृति अप्राकृतिक, यांत्रिक और अव्यक्तिक है। वह कृत्रिम जीवन और विचारों की पापक है। उसमें सरल लोक संस्कृति का आधार बनाकर नगर वातावरण में विविध आवश्यकताओं, आवश्यक और नवीनता की पूर्ति का साज-सामान सम्मिलित है। नगर की संस्कृति लोक-संस्कृति की आधारशिला पर निर्मित वह प्रानाद है जिसमें अनेक प्रकार की कला का चमत्कार दर्शाया गया है जो नगरीय है और जिसमें जनता-जनानुदान की सत्ता, मधुर और स्वाभाविक आवश्यकताओं को भी अनिश्चित कर दिया जाता है तथा जो क्षणिक और परिवर्तनशील आवृत्तियों और नवीनताओं से भरपूर है। नगर की संस्कृति अत्यंत बड़ी जटिल और विज्ञान-कलेक्टर धारी होती है। इसमें अनिश्चय और उतार-चढ़ावों की विविधता सकलित है। ग्रामीण संस्कृति में विशिष्ट भेदों को दर्शाने हेतु यह अपने दबाव प्रगाढ़ता और कपटता के रूपों का लेकर खड़ी है। नगर में स्वदेश की संस्कृति ही विकसित नहीं होती क्योंकि वहाँ तो विदेशी संस्कृति भी अपनी स्तृहाणीय है जिनकी स्वदेशी संस्कृति वह नागरिकों का उत्तम और कौतुकता दे सकने में समर्थ है। भारत में कनकता, बम्बई शिवाजी, मद्रास आदि महानगरों में पारश्वात्य संस्कृति भारतीय संस्कृति से अलग कर रही है। खान-दान वगैरे भूषण रीति रिवाज, शिवा और धर्म सभी में तो विदेशीय धुन मिल रहा है।

ग्रामीण और नगरीय जीवन की अत क्रिया

ऊपर हमने ग्राम और नगर के जीवन में तुलना करते समय दोनों को स्वतंत्र अथवा आत्म भरित माना था और यह समझ लिया था कि उनमें से किसी के प्रभावों का दूसरे पर कोई असर नहीं पड़ता है। यथाथय, इस प्रकार की मान्यता असत्य है। नगर और ग्रामीण जीवन में सतत अन्तर्क्रिया होती रहती है। वे एक दूसरे से पृथक् होते हुए भी पूर्ण स्वतंत्र नहीं हैं उनका पारस्परिक सम्बन्ध स्थिर नहीं है। वह निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। तो आइए उनके अत सम्बन्ध का संक्षेप में विवरण करें।

नगर की प्रबलता—आर्थिक और सामाजिक विकास में गाँव की अत निभरता का नमोस्त कर दिया है। वह अपनी अनेक आवश्यकताओं के लिए नगरों पर निर्भर रहती है। नगरों का अपने उत्तमिष्ठ उद्योग और व्यापार के लिए क्रमशः कच्चे माल और उत्पादित वस्तुओं के लिए बाजार गाँव में ही ढूँढना पड़ता है। अतएव गाँव और नगर का सम्पर्क निकटतर एवं अधिकतर होता जा रहा है।

गाँव और नगर की इस अत क्रिया में नगरीय जीवन के रुखा ढंगों और सम्थाओं की ग्रामीण जीवन पर प्रबलता हो जाती है। इसके कारणों को ढूँढना कठिन नहीं है। नगर के पास सम्पन्न शक्ति और विशिष्ट ज्ञान का प्रतिष्ठा है। वित्त का बुजुर्ग उसी का हाथ में है। ग्राम के कच्चे माल का बाजार नगर में है। वही उसके जीवन की अयिक्ताश आवश्यकताएँ पूरी करने के साधन उपलब्ध है। इसी प्रकार, सांस्कृतिक और राजनितिक मामलों में भी ग्रामवासियों को नगर की अत ताकत पड़ती है। इन सब कारणों से नगर के जीवन की प्रबलता दिनदिन बढ़ रही है। गाँव का जीवन-ढंग विचारों एवं प्रधान हितों पर नगरीय जीवन का व्यापक प्रभाव पड़ता है। गाँव में नगर के सम्पर्क में नगरवासी को अपने ज्ञान शक्ति और सम्पदा का बड़ा लाभ मिलता है। वह ग्रामवासियों को अपने ढर्रे में सरलता में डाल सकता है। साथ ही, ग्रामीण जीवन के साधनों का शोषण भी नगर कुशलता से कर सकता है। जिन दशा में नगरीय जनसंख्या का अनुपात ग्रामीणों की अयिक्ता बढ़ गया है वहाँ तो गाँव का जीवन पर नगरीय प्रभाव का प्रभुत्व सा हो गया है।

मकाश्वर और पञ्च न ग्रामीण जीवन पर नगरों की प्रबलता को तीन स्तरों पर देखने का प्रयत्न किया है—(१) प्राविधिक उत्पत्ति, (२) उत्त सामाजिक संगठन और (३) नगरों का ग्रामीण निष्क्रमण। नगरों का प्राविधिक उत्पत्ति का मुख्य साधन कहा जा सकता है। गाँवों को प्रवृत्ति का शोषण करने के लिए नगर में निकलने प्रविधि का आश्रय लेना पड़ता है। दूसरे, नगरों में सामाजिक विकास इतना आग बढ़ गया है कि आने दिन नए संगठन और नई सामाजिक प्रविधियाँ नगरों में उत्पन्न होती रहती हैं। उत्पत्ति की आकांक्षा करने वाले गाँवों को उन्हें अपना

पटता है अथवा उनका अनुकरण करना पड़ता है। तीसरे, नगर के सामाजिक और आर्थिक आकषणा का अनिश्चित लोभ महत्वाकांक्षी प्रतिभांगाली, नाटकीय एवं अल्पाही ग्रामीण युवक-युवतियों का गाव छोड़न पर बाध्य कर देता है। इन तीनों स्थितियों में दिवंगत टाकर गाव का नगर की प्रवृत्ता को नीकार करना ही पड़ता है।¹

गाव और नगर का मेल-क्षेत्र

मान्यता के विकास में गाव और नगर-सामाजिक मान्यतात्मिक समार के इन दो स्वरूपों का एक दूसरे में स्वतंत्र और पृथक् रहना तथा परस्पर अप्रभावित होना असम्भव कर लिया है। उनके विराट्ता में घुसना आ रही है। प्रत्येक के विविध लक्षणों में दूसरे के लक्षणों के अन्तर्गत प्रवेश कर तथाकथित परिपुष्टता का मूलान कर रहे हैं। नगर का प्रभाव गाव पर और गाव का नगर पर पड़ रहा है। नगर का बर्तनी हुई प्रवृत्ता में इस समस्या को और भी जटिल कर दिया है। इसलिए समान शक्तियों का यह आभास हो रहा है कि इन दो प्रकार के सामाजिक संगठना और मानव पर्यावरण में परस्पर मिला जुनन और समरम हान को प्रवृत्ति धीरे धीरे जार पकट रही है। इसी प्रवृत्ति के कारण में सारांशिक इस प्रकार कहत हैं —

जिसमें विशिष्ट ग्रामीण और नगरीय लक्षण परस्पर विलीन हो जात हैं और जिसमें दोनों के गुण सरक्षित रहत हैं तथा अभाव कम हो जात हैं। यह नए प्रवृत्ति बर्तन कुछ ही क्षत्रा और दशा में प्रकट हो रही है, परन्तु इसकी अर्थव्यवस्था वृद्धि अवश्यम्भावी है। इसमें सामाजिक सांस्कृतिक नमर के एक नए रूप की सृष्टि होगा।²

इस प्रवृत्ति को ग्रामनगरीकरण की विधा कहते हैं। इनके दान इस तथ्य में हात है कि गाव के बहुत से पहलुओं में नगरीयता आती जा रही है जमी तरह जम बटून नगरवासियों के लिये एक नए सामाजिक पर्यावरण में रहना पड़ता है जिसमें ग्रामीण जीवन के अन्तर्गत मिलते हैं। उपनगरों का विकास और नए कस्बा की स्थापना ग्रामनगरीकरण विधा की ही अभिव्यक्ति है। ग्रामीण, हम, जमनी और भारत में कुछ एम क्षेत्र मिलत हैं जहाँ ग्रामनगरीकरण की विधा काय कर रही है— अथवा गाव और नगर के जीवना का सुवद सम्मिलन हो रहा है।

1 MacIver and Page *op cit* pp 329-40

2 There is a tendency for the two types of social organisation and human environment to coalesce (a trend according to one sociologist Sorokin) in which the specifically urban and rural traits are merged together preserving the pulses of both and decreasing the shortcomings of each of these agglomerations. The new trend is emerging in only a few regions and countries but it is bound to develop more and more creating thus a new form of socio-cultural world. Sorokin *Society Culture and Personality* (New York 1947) p 30 quoted by MacIver and Page *op cit* p. 341

गाँव और नगर का भविष्य

अतः मैं आइए इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करें कि अन्ततः गाँव और नगर का भविष्य क्या है ? क्या नगरीकरण की आधुनिक प्रगति सारे सखार को अन्ततः नगर बना देगी ? अथवा गाँव का भी अस्तित्व बना रहेगा ? पीछे एक स्थान पर हम यह कह सकन कर चुके हैं कि आधुनिक जगत में माध्यमिक समुदायों या समितियों की प्रबलता हाते हुए भी प्राथमिक समुदाय बन रहे हैं । भविष्य में भी माध्यमिक समूहों—विशेषकर नगरों की अधिकतम प्रगति हात पर भी गाँव कायम रहेंगे । हाँ, गाँव का रूप में आवश्यक परिवर्तन हो जाना अनिवाय होगा । संभवतः नवीनतम प्रवृत्ति—ग्राम नगरीकरण भविष्य की इसी स्थिति का प्रारंभ है । ग्राम और नगर दोनों प्रगति करग और दोनों बने रहेंगे । किंतु भविष्य में उनमें निकटतम सामीप्य और अधिकतम सम्पर्क यह अनिवाय कर देगा कि वे दोनों एक दूसरे के सहोदर, पूरक और सहयोगी बन कर रहें ।

सामाजिक परिस्थितिशास्त्र¹

परिस्थितिशास्त्र (ecology) जीवा और उनका पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्ध का एक अध्ययन है। हम लोग का यह सामान्य अनुभव है कि सस्यार के भिन्न भिन्न प्राकृतिक क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के जीव जन्तु, पक्षी और पौधे पाये जाते हैं। हर प्राणी अथवा पौधे का अपने विशिष्ट पर्यावरण से एक विशेष प्रकार का उप-योजन (adaptation) रहता है। यदि कोई जीव या पौधा अपने इस विशिष्ट पर्यावरण से बाहर और दूर कर दिया जाय तो उसका जीवन अति कठिन अथवा असंभव भी हो जाता है। मछलियाँ पानी के बाहर जीवित नहीं रह सकती। अमीबा और आमाम अथवा गुजराल के विशेष प्रकार के जगल में ही हाथी पलते हैं। सहारा का प्रख्यात जीव सुतुरमुग गधा के मैदान में अपना घर बनाकर नहीं फल-फूल सकता। इसी प्रकार सस्यार के भिन्न भिन्न दशा और प्रदशा में विशेष प्रकार के पौधे या अन्न और फल प्राणि उपस्थित हैं। इन दृष्टान्तों से इस बात का सुभाव मिलता है कि जीवधारियों के प्रकारों और सस्यारों पर पर्यावरण के प्रकारों का भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ता है। परिस्थितिशास्त्र जीवधारियों का एक प्राकृतिक इतिहास है। परिस्थितिशास्त्र में जीवधारियों की जातियों के विकास पर ज़रूर नहीं दिया जाता। इसका सम्बन्ध समूहों की सस्यार और उनके स्थानिक (spatial) प्रवाह तथा पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्ध से है।² परिस्थितिशास्त्र प्राणिशास्त्र (Biology) की एक शाखा है। वनस्पतिशास्त्र (Botany) एवं जीवविज्ञान (Zoology) में परिस्थितिशास्त्र एवं

1 Ecology का हिन्दी पर्याय 'परिस्थितिशास्त्र', 'परिस्थिकी' अथवा 'परिवेशशास्त्र' है।

2 Ecology is a natural history of organisms. Ecology does not emphasize inquiry into the evolution of species but rather is concerned with the evolution of environment to numbers and to the spatial arrangement of groups. Ogburn & Nimkoff *A Handbook of Sociology* Chapter XIV

विशिष्ट विभाग है जिसमें क्रमशः जीवा तथा वनस्पतियों का उनके पर्यावरण से सम्बन्ध का अध्ययन होता है। इन्हीं विभागों के आधार पर समाजशास्त्र में सामाजिक परिस्थिति शास्त्र (social ecology) का विकास हुआ है। इसे मानवीय परिस्थिति शास्त्र (human ecology) भी कहा जा सकता है।

मानवीय परिस्थिति शास्त्र सामान्य परिस्थिति शास्त्र (General ecology) की एक शाखा है। ऑगबर्न तथा निमकोफ के अनुसार, इसमें मानव प्राणियों तथा उनके पर्यावरण के सम्बन्ध का अध्ययन होता है।¹ वास्तव में इस नान शाखा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। प्राकृतिक पर्यावरण और मनुष्य के सम्बन्ध का अध्ययन मानव परिस्थिति शास्त्र का एक पहलू मात्र है। परिस्थिति शास्त्रीय और भौगोलिक सम्प्रदायों की परम्परा में सामाजिक घटनाओं और प्राकृतिक पर्यावरण के बीच के सम्बन्धों पर बहुत जोर दिया गया था। समाजशास्त्रीय विचारों के विकास के इतिहास में क्षेत्रीय सम्प्रदाय (Regional School) का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है जिसके समर्थकों में पाक वर्गों ओट्टम मकेजी और राधाकमल मुकर्जी आदि के नाम प्रख्यात हैं। वास्तव में उपरोक्त सम्प्रदाय में सामाजिक जीवन के स्थानिक पहलुओं (Spatial affects of social life) का विवेचन किया गया है। मानव परिस्थिति शास्त्रियों ने विशेषकर मनुष्य की स्थानिक व्यवस्थाओं (Spatial arrangements) की समस्याओं तथा सामाजिक जीवन पर उनके प्रभाव का अध्ययन किया है। विभिन्न प्रकार के स्थानों में समुदायों के विभिन्न प्रकार (ग्रामीण, नगरीय, खनिजों का समुदाय, चाय बागानों का समुदाय आदि) पाये जाते हैं। बड़े बड़े समुदायों के भीतर भिन्न भिन्न प्रकार के स्थान अथवा मुहल्ले मिलते हैं जिनमें से हरेक के निवासियों का अपना विभिन्न जीवन ढंग (way of life) होता है। किसी गाँव अथवा शहर को ही ले लीजिये उसके विभिन्न भागों में भिन्न भिन्न प्रकार के समूह पाये जाते हैं जिनके सामाजिक जीवन में बहुत सी भिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। वास्तव में ऐसी ऐतिहासिक साक्ष्यों की कमी नहीं जिससे यह निश्चित होता है कि ससार के विभिन्न भागों में विभिन्न पर्यावरणों ने मनुष्य के वास्तविक स्थानों को बहुत-बहुत रूप से प्रभावित किया है। अरब और राजस्थान के रमिस्तानों, स्विट्जरलैण्ड की पहाड़ियों, तिब्बती पठारी भागों, गंगा ब्रह्मपुत्र और सिंधु की घाटियाँ अथवा भारत के समुद्रतटीय प्रदेशों में मानव समूहों अथवा समुदायों में जो विचित्र भिन्नता मिलती है उससे समाजशास्त्री मानव समाज और उसकी समस्याओं पर स्थानिक पर्यावरणों के विविध प्रभावों का विश्लेषण करने को बाध्य होता है। पिछले अर्धशताब्दी में हमने मानव समाज पर प्राकृतिक अथवा भौगोलिक पर्यावरण के प्रभावों का सविस्तार विश्लेषण किया है और यह

1 Human ecology is a branch of general ecology but is concerned with the relations of human organisms to their environment.

भी दशनि का प्रयास किया है कि मनुष्य द्वारा विकसित सभ्यता और सम्यता किस प्रकार उपरोक्त भौगोलिक प्रभावा का परिमोमित और नियंत्रित करने में सहायक होता है।¹ आगवन और निमकाफ न अपनी पुस्तक में मानव या मानवीय परिस्थिति शास्त्र में प्राकृतिक पर्यावरण के स्थान का बहुत विशाल विवचन किया है। उन्होंने यह निष्कर्ष लिया है कि पौधा और पशुओं के वास्तविक स्थान का निर्धारण प्राकृतिक पर्यावरण से होता है और सत्तार में किस स्थान पर इनकी उत्पत्ति और विकास के लिए उपयुक्त स्थान मिलते हैं इस सम्बन्ध में भी मानव परिस्थिति शास्त्र के दृष्टिकोण का विशद उल्लेख किया है।² मकाइवर और पेज ने अपनी प्रख्यात कृति सामाजिक जीवन में भी वास्तविक स्थान का मनुष्य के सामाजिक जीवन पर जो प्रभाव पड़ता है इसका विविध विवचन किया है। उनके अनुसार मानवीय अथवा सामाजिक परिस्थिति शास्त्र का विकास बनस्पति और पशु परिस्थिति शास्त्र के दृष्टान्तों के आधार पर हुआ है और इस शास्त्र में (मानव अथवा सामाजिक परिस्थितिशास्त्र) में विभिन्न नागरिक क्षेत्रों से सम्बन्धित सामाजिक और सांस्कृतिक घटनाओं के प्रति गहरी शिखरों की सामाजिक प्रक्रिया के सामंजस्य है।³ इस प्रकार पारिवारिक संगठन के प्रतिमानों से लेकर अस्तिष्क सम्बन्धी रोगों के प्रकारों तक की सामाजिक घटनाएँ एक प्रकार से मनुष्य के जीवन की प्रक्रिया के उपस्थित की जाती हैं। स्थानीय क्षेत्रों के सामाजिक प्रभावा का विचार केन्द्र मानकर परिस्थितिशास्त्रवेत्ताओं ने गतिशील प्रक्रिया का विशाल विवचन किया है—प्रतिस्पर्धा और सहयोग के द्वारा और विवेकीकरण और विवेकीकरण द्वारा और अलग-अलग तथा अलग-अलग और उत्तराधिकार का—जो ग्रामीण तथा शहरी समुदायों के अलग-अलग रूपों के रूप में हैं उनकी सौज सामाजिक जीवन के 'शून्य स्थानीय पृष्ठभूमि' से सम्बन्धित हमारी गान शक्ति का मुद्रण करती है।⁴

मानव परिस्थितिशास्त्र का स्थितिक क्षेत्र अमरीकी समाजशास्त्र के अग्रणी तथा प्राधुनिक क्षेत्रीय सम्प्रदाय में बार-बार विभिन्न प्रकार का बल देकर दुहराया गया है। टर्नर, ई. मूर, एच. डब्ल्यू. ओहम न वास्तव में ली प्ले की गवपणाओं को प्राधुनिक सम्प्रदाय में नया स्वरूप दिया है और मनुष्य के प्राकृतिक पर्यावरण तथा मनुष्य के सामाजिक जीवन के सम्बन्ध तथा वास्तविक अन्तःक्रिया पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है। इस आधार पर प्राधुनिक सामाजिक परिस्थितिशास्त्र न अमरीका

1 दैनिक अध्याय ६ (सभ्यता और सम्यता)।

2 देखिये, ए. हैण्डबुक ऑफ सोसियोलॉजी अध्याय १४ (प्राधुनिक समुदायों का स्थाननिश्चय और संगठन)।

3 मकाइवर और पेज, सोसाइटी पृष्ठ ७५।

4 वही पृष्ठ ७५।

(प्राधुनिक समुदायों का

को कई प्राकृतिक क्षेत्रों में विभक्त किया है जिनमें से प्रत्येक के भीतर सन्तुलित जीवन ढंग में पाई जाने वाली सामाजिक और भौगोलिक दशाओं का एकीकरण दृढ़ जा सकता है। परिवेश और सामाजिक दशाओं में एकीकरण और सन्तुलन के लिए की गई इस गवेषणा में क्षेत्रवाद के अन्तर्गत सामुदायिक जीवन के विकास के लिए एक ऐसी योजना प्रस्तुत की गई है जिसमें मनुष्य के वायकलापो और इसके आस पास की परिस्थितियों के बीच के एकीकरण के प्रमुख महत्व पर बल दिया गया है। प्रख्यात विद्वान् लुई मम्फोड ने क्षेत्रीय नियोजन के लिए एक सशक्त दलील प्रस्तुत की है।¹ मानव परिवेशशास्त्रीय अध्ययनों और क्षेत्रवाद की दलील ने मुख्यतया दो प्रश्नों पर बल दिया है (१) एक सामाजिक समूह के जीवन में परिवेश कितनी पूर्णता से प्रविष्ट है? और (२) मानव प्राणियों और सामाजिक समूहों के बीच के भेदों के परिवेश सम्बन्धी भेदों के आधार पर कहाँ तक व्याख्या की जा सकती है?² जिस प्रकार समूह स्वयं अपने भौतिक आवास के प्रति धादी हाने, उन्हें उस प्रक्रिया से भ्रम में नहीं डालना चाहिये जिसमें वे एक पूरे स्थित सामाजिक वातावरण के अनु रूप होते हैं। प्रथम, जबकि प्रक्रिया (भारत में ग्राये हुए यूरोपीय आवासियों के कव अथवा उनके सिर की शकल में परिवर्तन है)। इसे जबकि उपयोजन कहा जाता है। द्वितीय यह एक सामाजिक प्रक्रिया है। उदाहरणार्थ सामाजिक रूपा में परिवर्तन एक विशेष सामाजिक परिवेश जैसे गदी बस्ती अथवा उच्च सरकारी अधिकारियों की बस्ती में सामाजिक संस्थाओं के कार्यों और स्वरूप में परिवर्तन। इसे सामाजिक व्यवस्थापन की प्रक्रिया कहते हैं।³ भौतिक विज्ञान तथा समाजशास्त्र द्वारा 'परिस्थितिकी (ecology) शब्द का प्रयोग हमारे इस विभेद का धु धला कर देता है। सस्य विज्ञान (Botany) या प्राणी विज्ञान (Zoology) में सस्य या प्राणी जीवन के उनके भेदों के लिए परिस्थितिकी शब्द प्रयुक्त होता है जो भौतिक वातावरण की विभिन्नताओं के लिये प्रयोग किया जा सकता है। मानव समूहों में या उनके द्वारा प्रदर्शित सामाजिक भेद इस दृष्टि से परिस्थितिकी नहीं समझी जा सकती। मानव का समग्र वातावरण अभी भी केवल भौतिक वातावरण नहीं रह सकता। सामाजिक अनुसन्धान के आधार के रूप में हम स्थानीय भौगोलिक क्षेत्रों को अवश्य ही ल सकते हैं किन्तु कभी हम यह धारणा नहीं बना सकते कि हमारे द्वारा खोजी गई दशाओं इन क्षेत्रों की बाहरी विशिष्टताओं द्वारा समझाई जा सकती हैं। सामाजिक परिस्थितिकी के जानकारों ने यह बताया है कि व्यापारिक जिलों से सट हुए क्षेत्रों में अपराधों की मन्दा ऊँची होती जाती है और उन क्षेत्रों से बाहर जाते जाते

1 देखिये लुई मम्फोड 'द कल्चर आफ सिटीज'।

2 देखिये मकाइवर और पज बहो, अध्याय १३ (सामाजिक परिवेशशास्त्र और क्षेत्रवाद के कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष)।

3 वही पृष्ठ १३२।

सह्या कम होती है। परन्तु हमें हम यह धारणा नहीं बना सकते कि स्थानीय क्षेत्र किस मात्रा में उत्तरोत्तरी हैं और अपगवा की अधिकता क्षेत्र व भौतिक कारण व प्रति समजन की प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है। एक सामाजिक वातावरण में भौगोलिक वितरण किसी भी अर्थ में भौगोलिक निश्चय नहीं है। प्रत्येक सामाजिक तत्व समप्रस्थिति का कार्य नहीं। जब हमें एक भौतिक वातावरण की शब्दावली में उसे अभिहित कर दिया तो कारणों की खोज शुरू होगी।

इसके अतिरिक्त, हम यह देख चुके हैं कि सामाजिक वातावरण बहुत विविधतापूर्ण होता है और उसके जीवन प्रभा में प्रतिनिधित्व करने वाले असंख्य पहलुओं के प्रति अनुसंधान करने व सब प्रकार तथा मापने हैं।¹

वासस्थान का समुदाय से सम्बन्ध

स्थानीय क्षेत्र समूह का सहित करने वाले तथा उसे स्पष्ट रूप देने वाले सामाजिक सम्बन्धों की न केवल मौलिक स्थिति है अपितु स्थानीय समूह में सम्बद्ध विशिष्ट लक्षणा का निर्दिष्ट वातावरण भी है। इस कारण स्थानीयता एक सांस्कृतिक विकास के बीच सम्बन्ध के प्रभाव से सहित पारिस्थितिक तथा प्रादेशिक उपगमना की ओर ध्यान देंगे। नगर या देश के भीतर प्राप्त वातावरण के भिन्न प्ररूपों में ज्या-ज्या मानव करने सामुदायिक अस्तित्व का निर्माण करेगा, मानवी परिस्थिति का माहिय मनुष्य के उपजाऊन प्रतिमानों को व्यक्त करता है। उपनगरीय मध्यवर्ग के माय गन्दी बस्ती में निवास करने वाले उपवासियों व सामुदायिक जीवन से अथवा औद्योगिक नगर व साय ग्राम्य जीवन का वैयम्य प्रदर्शन हो जाता है। तीटल के समय से प्रादेशिकतावादियों ने प्रादेशिक वनस्पति, वृष्टि योग्य विविध प्रकार की मिट्टी, प्रदेश में अनुकूलित पशु-पानन तथा जनवायु की स्थितियों जैसे स्थानीय कारणों का समुदाय के निर्माण में महत्व सूचित किया है। जैसा कि हम अनुभवों अध्याप में देखेंगे, ये अध्ययन निष्कर्ष रूप से सूचित करते हैं कि स्थानीय भौतिक वातावरण का चाहे पथरीले सू इ गलब की पहाड़ी भूमि हो या नैऋत्य का भाग हो, स्थानीय सामाजिक जीवन पर अथवा प्रभाव होता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि भौतिक अनुकूलन की प्रक्रिया और सामाजिक उपजाऊन की विज्ञान प्रक्रिया के बीच पूर्ण अनुसंधान है।²

साधुनिक समुदायों की स्थिति और सगठन

वृष्टियुग में मनुष्यों के समूह गाँव बनाकर नदी की घाटियों में बस गए। जहाँ खेती के नियममूलक और उपजाऊ भूमि उपलब्ध थी और जल यातायात का सुविधाएँ

1. देखिए भकाइवर और पेज, सासाइटी (समाज, अनु० जी० विश्वरवरय्या) पृष्ठ १४३।

2. वही, पृष्ठ २८४।

भी। गंगा-यमुना की घाटी में बनारस, दिल्ली, आगरा, कलकत्ता, इलाहाबाद, कानपुर आदि आधुनिक नगरों की स्थापना सैकड़ों वर्ष पहले उल्लिखित आधार पर ही थी। यांत्रिक शक्ति के विकास से समुदायों की स्थापना और संगठन में नये भौगोलिक कारणों का प्रवेश हुआ। कोयला शक्ति उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण साधन था और भारी होने के कारण उसका यातायात अधिक महंगा था। अतः शक्तियुग में बहुत से नगरों की स्थापना कोयला की खानों के निकट हुई और वर्तमान समय में नगरीकरण की यह प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई पड़ती है कि औद्योगिक अथवा उत्पादक नगरों की स्थापना कोयला, बिजला अथवा आणविक शक्ति के केंद्रों के निकट हो। कोयला और लोहा दोनों ही जिस स्थान पर पाये जाते हैं औद्योगिक नगरों की स्थापना के लिये वही स्थान सबसे उपयुक्त समझे जाते हैं। जैसे जमनी के रूढ़ क्षेत्रों में नगर और छोटा नागपुर पठार का जमशेदपुर। इसके अतिरिक्त आदिवासी क्षेत्रों के वर्तमान युग में भाप से चलने वाले जहाज और रेलगाड़ियों के केंद्रों के निकट महानगरों जैसे ग्लासगो, लिवरपूल, बम्बई, कलकत्ता, टाकियो, 'यूयाव', लंदन आदि का विकास हुआ है।

औद्योगिक शक्ति के प्रथम चरण में औद्योगिक केंद्रों की स्थापना कम थी क्योंकि उस युग में आवागमन के साधनों की सुविधा कम थी। ऐसे स्थानों पर गरीब श्रमिक परिवारों एवं ऐसे ही श्रम परिवारों की गंदी वस्तिभूमि अधिक थी। इन स्थानों पर जनसंख्या का घनत्व बहुत ही अधिक है। ऐसी जगहों पर यातायात के साधनों में टाम कार बस इत्यादि प्रमुख हैं जिनके कारण जनसंख्या में वृद्धि के साथ ही साथ नगरों के क्षेत्रों का भी विस्तार होता जा रहा है। इनका प्रभाव आधुनिक नगरीय क्षेत्रों के विकास एवं श्रम स्थानों के विकास (सिनेमा हाउस आदि के विकास) पर भी पड़ा। आधुनिक नगरीय जीवन में ऐसे विशिष्ट क्षेत्रों का विकास अधिक हो रहा है जिन क्षेत्रों में कि एक विशिष्ट प्रकार के कार्य भी होते हैं। पूर्व कालीन नगरों में उपयुक्त क्षेत्रों या यातायात के साधनों के अभाव के कारण विशिष्ट नगरीय क्षेत्रों का विकास संभव नहीं हो सका। आधुनिक नगर एक ऐसा समुदाय है जो अपने अंगों से अपने कार्यों के आधार पर पूर्णतया अलग है। प्राकृतिक क्षेत्रों आर्थिक स्थिति, प्रजाति अथवा संस्कृति के आधार पर निर्मित, राजनीतिक या प्रशासकीय क्षेत्रों से बिल्कुल ही भिन्न है। आधुनिक नगरों में व्यक्तियों एवं समुदायों के मध्य प्रतिस्पर्धा दिखाई देती है विशेषतया इसीलिये कि क्षेत्र सीमित हैं और जनसंख्या बहुत ही अधिक है।

नगरों की परिस्थिति

एक शहर का प्रतिमान उद्योगों, संस्थाओं एवं सामाजिक वर्गों की प्रतिस्पर्धा में उत्पन्न होता है जो वे अधिकधिक लाभदायक स्थितियों के लिए करते हैं। हर प्रकार के उद्योग अपने उचित स्थापन के लिये एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा में लगे हुए हैं।

व वही पारिस्थितिक देंगे जो कि वे देने में क्षम्य होंगे। भूमिगत मूल्य ही नगरीय परिस्थिति का मूल है। प्रत्येक नगर में माधारणतया उच्चतम मूल्य के दो क्षेत्र पाये जाते हैं—१—पहाड़ के क्षेत्र हैं जहाँ नगर का प्रमुख बाँक स्थित है, तथा दूसरे के स्थान हैं जहाँ नगर के प्रमुख बाँक स्थित है। ये ही स्थान प्रभुत्वशाली क्षेत्र हैं क्योंकि इनका उन दशाघ्रा पर प्रभाव पड़ता है जिन दशाघ्रा को श्रम्य क्षेत्र धारण करते हैं। किमी भी शहर के मध्य व्यापारिक क्षेत्र में परिवर्तन या विस्तार अपना प्रभाव उस शहर के श्रम्य चारों तरफ स्थित क्षेत्रों पर अवश्य ही डालता है।

पारिस्थितिक प्रक्रियाएँ

एक प्रगतिशील आर्थिक व्यवस्था में स्थिति बहुत ही गतिशील है, ऐसी दशा में नगराय सपुदाया के लक्षण क्षीण ही बदन जाने हैं। बढ़ते हुआ व्यापार, निर्माण बढ़ती हुई जनसंख्या एवं मातायात के विरहित साधन आदि ऐसे कारण हैं जो वर्तमान सामाजिक प्रतिमानों को विचलित कर रहे हैं एवं पुनर्व्यवस्थापन को बढ़ावा दे रहे हैं। केन्द्रीय व्यापारिक क्षेत्रों का निवास क्षेत्रों की श्रार तीव्रगति से बढ़ना व्यक्तियों को बाध्य कर रहा है कि वे इन व्यावसायिक क्षेत्रों से दूर जाकर बसें। व्यक्तियों या संस्थाओं का इस प्रकार का यह स्थानमण, एक ऐसे क्षेत्र में जो पहले ही अधिवृत्त है श्रम्य निवासियों या संस्थाओं द्वारा, दो प्रभाव दिखता मकता है। एक तो यह कि जब नये लोग एक ऐसे क्षेत्र में जहाँ कि लाग बस हुए हैं जाते हैं तो ये नये लोग वहाँ के पूर्व निवासियों या पूर्व संगठित संस्थाओं का निष्वासन करने हैं या दूसरे पूर्व निवासित व्यक्तियों या संस्थाओं के सहयोगी बनते हैं। उदाहरणार्थ श्रावामी माधारणतया एक शहर में कम प्रतिशत वाले स्थानों में ही आते हैं श्रम्य केन्द्रीय क्षेत्रों के ही पास धान हैं। ज्या ही उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ हो जाती है उनकी प्रवृत्ति नये क्षेत्रों में घूमने एवं बस जाने की हो जाती है। परिणामतः पहलू में एक परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। इस प्रक्रिया का उत्तराधिकार (succession) कहा गया है। पारिस्थितिकीय प्रक्रियाएँ (ecological processes) जैसे—अलगवाव, केन्द्रीकरण, विकेन्द्रीकरण, आक्रमण और उत्तराधिकार सामुदायिक संगठन का गतिशील प्रक्रिया की तरफ उन्मुख करते हैं। विशेषकर इस प्रकार का तीव्र परिवर्तन हमारे आधुनिक सभानों में होता है।

महानगरीय समुदाय

नगर केन्द्रामुख और केन्द्र बहुमुख शक्तियों का सदैव एक केन्द्र रहा है। केन्द्रामुख शक्तियों का तात्पर्य है केन्द्रीकरण और केन्द्र बहुमुख शक्तियों का तात्पर्य है विकेन्द्रीकरण। द्राम का चल जान से नगर के क्षेत्र में वृद्धि हुई है। उपनगरीय, मोटरवार ने शहरों की जनसंख्या को नगरों के वरिणमन की श्रार अधिका संख्या में

संचालित किया। लारी यातायात का सुविधा ने कारखानों की स्थिति को ग्रहनगरीय क्षेत्रों की ओर अभिमुख किया जहाँ भूमिगत सम्पत्ति की कीमत अपक्षतया कम है। कम्पनियों के इस बहिर्गमन ने कम कीमत की उपयोगी वस्तुओं को उत्पन्न किया। उदाहरणार्थ जूते, कम्पनिया के बने कपड़े इत्यादि। मानवीय परिस्थितियों को दो प्रकार के आवागमन के साधनों ने प्रभावित किया है

(१) वे साधन हैं जो अधिक दूर के क्षेत्रों में जाने के उपयुक्त हैं, जस वायुयान, रेल वाष्प चालित नौका एवं लारी।

(२) वे साधन हैं जो नजदीक स्थानों तक जाने के उपयुक्त हैं जैसे ट्राम, बस, शीपगामी रेलगाडिया इत्यादि।

इन दो प्रकार के आवागमन के साधनों के समुच्चय ने महानगरों के क्षेत्रों के मानवीय संप्रदाय को सम्भव बनाया है। महानगर क्षेत्र हैं, इसके समीप चारों तरफ छोटे छोटे शहरों के झुण्ड बस गए हैं। क्षेत्रीय एवं दूरस्थ क्षेत्रों को यातायात ने एक जगह समीप लाने की कोशिश की है। इन दोनों क्षेत्रों के समुदाय एक दूसरे से भिन्न हैं जहाँ एक स्थान से दूसरे स्थान के लोगों को धाय करने के लिए जाना पड़ता है। यातायात ने इस प्रकार ऐसे नगरीय क्षेत्रों को वंचित किया है जिसे Megalopolis कहते हैं। जिसे औद्योगिक क्षेत्रों के चारों तरफ का निपेधात्मक क्षेत्र कहते हैं। ऐसे समुदायों का एकीकरण जिनसे महानगरीय क्षेत्र बनते हैं। इनकी उत्पत्ति प्रमुखतया वैद्रीय शहरों के प्रभाव के कारण होती है। नगरों में काय-यापार, शिक्षा आदि के उद्देश्य से अधिकाधिक आवागमन व्याप्त है। सांस्कृतिक रूप से वे संगठित हैं।

स्थानीय क्षेत्रों के कार्यों का ह्रास—सम्यता के प्रथम चरण में यातायात के साधनों की बड़ी कमी थी एवं जाना करने में अनेक समय अधिकाधिक प्राकृतिक कठिनाइयाँ थी। इस कारण छोटे छोटे अपेक्षाकृत एक दूसरे से पृथक वस्तियाँ बन जाती थी। ऐसी वस्तियाँ में लोगों में आपस में शादी, विवाह होते थे जिससे उनके विशिष्ट प्रकार की स्थानीय समुदाय बन जाते थे। स्वाभाविक है कि ऐसे छोटे समुदायों में रीति रिवाज, मकानों और वेषभूषा में स्थानीय भेद विकसित नहीं हो पाते थे इसलिए आरम्भिक कालों में मानवीय परिस्थितिशास्त्र की दशाएँ स्थानिक प्रकारों का विकास के लिए अधिक सहायक होती थी।¹ किन्तु आविष्कारों की बढ़ती हुई सट्टा एवं परिवहन एवं संचार के विस्तार के साधनों ने एक क्षेत्र के विभिन्न स्थानीय समुदायों सामान्य रीतिरिवाजों और आविष्कारों का प्रचलन सम्भव कर दिया है। यात्रिक उत्पादन ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि स्थानिक समुदायों की विचित्रताएँ (बोली, रीतिरिवाज, वेषभूषा, धार्मिक

1 दक्षिण मैकाइवर और पेज, 'सोसाइटी' में 'समुदाय' पर अध्याय।

परम्पराएँ आदि) प्रायः समाप्त कर दी हैं। इस प्रक्रिया का विशेषतया बहुमात्रा उत्पादन की आधुनिक प्रविधियाँ और प्रतिमानित तथा लवुल सग मान और विक्री की आधुनिक विधियाँ जिनमें समाचार पत्रा, रेडियो टेलीविजन क विनापना का सहयोग लिया जाता है, न स्थानिक समुदायों क विनाश की प्रक्रिया में बड़ी सहायता पहुँचायी है। बड़ी-बड़ा इकाइया का विकास हुआ है और आधुनिक जनसंख्याएँ अत्यधिक गतिशील हान के कारण अब आपस में केवल विवाह छादी करन तथाकथित स्थिर घुड़ना बनाए रखन में सफल नहीं होतीं। विभिन्न प्रजातियाँ एव सांस्कृतिक समूहों में परस्पर विवाह सम्बन्ध बढ़ते जा रहे हैं जिससे कि पृथक्-पृथक् जातीय प्रकार भी निश्चित ही समाप्त प्रायः है। इस परिस्थिति में एक क्षेत्र में राष्ट्रीय राज्य और अन्तरराष्ट्रीय सहयोग का विकसित हो जाना स्वाभाविक है। सारा सारा एक छाना झुंझ रहा गया है जिनमें, आर्थिक राजनतिक और सांस्कृतिक समानताएँ शीघ्रता में और अधिक बलवती हानी जानी हैं। आगबन एव निमकाफ न ठीक हो रहा है कि जन समुदाय का क्षेत्रीय आधार विस्तृत होना जाता है स्थानिक भेदा का महत्व अपेक्षितता कम हो गया है।¹

वर्तमान समाज में लग छोटे छोटे स्थानों में रहते हुए भी दूरस्थ स्थानों के साथ में अनेक प्रकार की अभिवृत्ति रखत हैं। एक नम्य समाज के काय शिक्षा, मनोरंजन, सेवा के कायकलाप सामाजिक कल्याण और सामाजिक सम्बन्ध अधिक बढ़े और दूर तक फैल गए क्षेत्रों में शीघ्रता से फैल जात हैं। अतीत में स्थानवाद (Localism) का अन्त विषय महत्व था और लोग अपने समीपस्थ स्थानिक समुदाय की परम्पराओं के पूणतया अनुसरण रहत थे किन्तु आधुनिक जगत में इस प्रकार का स्थानवाद रूपमणूकता कही जानी है। वास्तव में छोटे-छोटे समुदायों की संख्या पूर्ववत् अथवा बढ़ जाी पर भी उपरोक्त प्रवृत्ति में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। काय तथा दूर न ग्रामीण समाज का अध्ययन कर एक बड़े मार्के की बात कही है 'पसटन और वार्ता करन तथा सत्या भेजन की आधुनिक प्रावधिक सुविधाओं ने ग्रामवासियों का स्थानीय समुदाय के अनेक प्रतिबंधों से मुक्त कर दिया है। अब उन्हें इस बात की छूट है कि अपनी इच्छा या योजना के अनुसार किसी भी समूह या समूहों में सम्मिलित होकर अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकत हैं।

बढ़ता हुआ समुदाय और पिछड़ता हुआ सामाजिक समूह—यद्यपि आधुनिक जगत में छोट छोट समुदाय टूट रहे हैं तथा विस्तृत समुदायों की स्थापना हो रही है। मार्ग विस्तृत ही एक अनायास समुदाय बन गया है। फिर भी, मनुष्य के लिए दुर्भाग्य की बात है कि उसके सामाजिक समूहों में इस बदनी हुई दशा के अपेक्षित परिवर्तन नहीं हो पाए। उसके ऐतिहासिक संस्थाएँ, संस्कृति, भाषा और अर्थव्यवस्था तथा

राजनैतिक परम्पराएँ अभी बहुत कुछ छोटे तथा स्थानिक समुदायों की परम्परा से प्रभावित हैं। वही वही तो मानव मस्तिष्क में इतनी जड़ता है कि वह आधुनिक जगत् निरन्तर परिवर्तन, शक्ति एवं प्रगतिवादी शक्तियों के अनुरूप अपने विचारों एवं भावनाओं को नहीं बदल सकता।

क्षेत्र (Region)

एक ऐसे मुलुख क्षेत्र का 'Region' कहा जाता है जिसके निवासियों में बहुत कुछ समानताएँ हैं और यह क्षेत्र समुच्च नहीं, पर्वत जैसे किसी प्राकृतिक वस्तु से परिसीमित है। ऐसे क्षेत्र में अनेक प्रकार की समानताएँ होने के कारण यात्रा करना सरल होता है और इसके निवासियों से परिचित होना भी।¹

एक क्षेत्र के निवासियों की सामान्य विशेषताओं का अभिप्राय है कि उनकी समस्याएँ एवं रुचियाँ समान होती हैं। अतः एक क्षेत्रीय राजनैतिक एवं आर्थिक संगठन का विकास होता है। आधुनिक जगत् में आविष्कारों में वृद्धि के कारण क्षेत्र शक्तिशाली आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक काम करनेवाले का एक महत्वपूर्ण प्रशासकीय इकाई बन गया है। आविष्कार एक गत्यात्मक और प्रगतिशील कारक है। इस कारण समुच्च का क्षेत्रीय आधार राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय रूप में परिवर्तित हो गया है। क्षेत्र के सामाजिक संगठन का विस्तार बढ़ता सम्पूर्ण राष्ट्र तक और कभी-कभी राष्ट्र की सीमाओं के बाहर विदेशों तक हो जाता है। आज का मानव विज्ञान एवं प्रविधि की सफलता के बूते एक विश्व समुदाय की स्थापना के लिए यथायत्न प्रयत्नशील है।²

1 वही पृष्ठ २८८।

2 वही, पृष्ठ २६२।

मकाइवर और पेज 'सोसाइटी' के तरहवें अध्याय पृष्ठ ३४१-३४७, को भी देखिए।

तृतीय खण्ड

सामाजिक समूह

- १४ सामाजिक संगठन या व्यवस्था के रूप
- १५ सामाजिक व्यवस्था के स्तर
- १६ सामाजिक विभिन्निकरण
- १७ सामाजिक समूह
- १८ समुदाय एवं राष्ट्र
- १९ प्रजातिक एवं जातीय समूह
- २० सामाजिक स्तरण—जाति और वर्ग
- २१ सामूहिक व्यवहार—भीड, धातागण एवं जनता

सामाजिक संगठन या व्यवस्था के रूप

समाज मनुष्या के सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों के विभिन्न पहलुओं में अन्न सम्बन्ध है। वे एक दूसरे से अन्नम्बन्ध और स्वतंत्र हाकर नहीं रहते हैं। वे सब एक एकभूत सम्पूर्ण के संयुक्त भाग हैं। इसी एकभूत सम्पूर्ण को सामाजिक संगठन कहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में हम इसी सामाजिक संगठन के कुछ पहलुओं का विश्लेषण करेंगे। इस संगठन के निर्माण संबंधित मनुष्य और संगठन के विविध विधानों तथा तथ्यों की स्पष्ट विवेचना करते समय हम सबके उन संस्थाओं तथा प्रक्रियाओं का संविस्तार निरूपण करेंगे जो समकालीन सामाजिक संगठन में महत्वपूर्ण हैं।

समाज एक संगठन है

एक समाज¹ पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का वह स्याई और मनन चलन वाला समूह है जिसमें लोग स्वतंत्र रूप से अपने सामूहिक स्तर पर अपनी जानि का जीवित और वायम रखने में समय हा मक्के। अर्थात् एक समाज व्यक्तियों का वह समूह है जो कि-हीं निश्चित सम्बन्धों या व्यवहार के तरीकों द्वारा संगठित है। यही संगठन उसे भूत और विशिष्ट बनाना है। सामाजिक समाज सहाय्यी जीवन बिताने वाले व्यक्तियों और समूहों के सम्बन्धों का एक संगठन है। संगठन शब्द का अर्थ सदैव एक बस्तु के निर्मायक भागों की एक व्यवस्था जाना है। जय कांड बस्तु संगठित होती है ता उसका भागों की एक दूसरे के प्रयोग में एक निश्चित प्रतिमान में व्यवस्था होती है। किन्तु क्या संगठित बस्तु के भागों में कोई निश्चित व्यवस्था नहीं

1 'एक समाज' समाज में हम बात में भिन्न है कि 'समाज' मनुष्य सामाजिक सम्बन्धों के तान-बाने से बना एक व्यापक और समूह संगठन है। यह किमी विशिष्ट भूभाग में बसने वाला मानव समूह नहीं है। यह ता मनुष्य के सामूहिक जीवन की एक प्रक्रिया है। (दक्षिण अध्याय ४)

रहती है उन सब में असयुक्त और अनियमित व्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। जब विद्यार्थी किसी कक्षा में नियमित रूप से बैठे पढ़ रहे हैं तो उनमें परस्पर तथा उनके और अध्यापक के बीच में एक निश्चित सम्बन्ध होता है। वे सब किसी विशेष प्रयोजन की पूर्ति में कार्यरत होते हैं। इस समूह में किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होती है। उसकी एक निश्चित और प्रतिमानित व्यवस्था है। समूह के सभी सदस्यों के कार्य और सम्बन्ध निर्धारित रहते हैं। संक्षेप में क्या इसीलिए संगठित लिखती है कि उसके सदस्यों के बीच के सम्बन्ध निश्चित और असुक्त हैं। किन्तु जहाँ पार्थिव समाप्त होती है अध्यापक बाहर चला जाता है और विद्यार्थी निकलकर दूसरे कमरे की ओर आते जाते हैं तो उनमें पड़ली जैसी निश्चित और प्रतिमानित व्यवस्था भंग हो जाती है। वे बात करते हँसे, शोर मचाते और रुकते रुकते इधर उधर चलते जाते हैं। इस समय वे एक भीड़ मात्र रह जाते हैं। क्या में पाई जाने वाली व्यवस्था में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है तथा उसके पारस्परिक सम्बन्ध और कार्य दोनों अस्तव्यस्त अथवा अनिश्चित हो जाते हैं। यह संगठन की स्थिति है। इसी प्रकार खेल के मैदान में जब हाकी या फुटबाल की टीम खेल रही होती है तो उनमें बड़ा साठन होता है। क्या के विद्यार्थियों की टीम के खिलाड़ियों में परिपक्व के सदस्यों, श्रमिक संघों तथा प्रशासन इकाइयों आदि में भी में युनायिक्त संगठन होता है। समाज एक व्यापकतम समूह है जिसमें अनेक प्रकार के युनायिक्त संगठित समूहों तथा मानव सभ्यता का समावेश होता है। समाज के निमायक भाग—समूहों समितियों और संस्थाओं—का परस्पर तथा पूरे समाज से एक निश्चित सम्बन्ध होता है और इन सबका स्पष्ट कार्य और स्थान। इसी प्रकार इन समस्त इकाइयों में कार्यरत व्यक्तियों के बीच निश्चित सम्बन्ध तथा प्रत्येक के निर्धारित कार्य होते हैं। यही कारण है कि समाज में सर्वत्र एक प्रतिमान या व्यवस्था बनी रहती है।

अतएव संगठन काई रहस्यमय वस्तु नहीं है। इसका सरल अर्थ यह है कि पदार्थ के निमायक भाग अथवा एक समूह के लोगों, के बीच एक दूसरे से सम्बन्धों की एक व्यवस्था होती है। इस व्यवस्था पर वस्तु अथवा समूह के प्रयोजन का प्रभाव पड़ता है। संगठन के दो प्रकार हो सकते हैं (१) विचारयुक्त प्रयोजन का परिणाम अथवा (२) स्वाभाविक तथा अपने विक्रम में अधिक्तया अनिर्दिष्ट। समनर न इन्हें अथवा रचित (enacted) और स्वाभाविक रूप से विकसित (creative) कहा है।

एक व्यापारिक कम्पनी विश्वविद्यालय स्वास्थ्य विभाग अथवा औद्योगिक निगम विचारयुक्त प्रयोजन से स्थापित संगठन है। समुदाय का विनाश अनेक वर्षों में धीरे धीरे तथा बिना किसी सर्वांगीण प्रयोजन के होता है। इसका प्रारम्भ एक घाट से समूह से होता है। जनसंख्या बढ़ती है और विशिष्ट क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नये-नये समूहों और

व्यवसाय बनते जाते हैं। सामाजिक सम्थाओं, आर्थिक और राजनैतिक समितियों पर तथा सम्पत्ति और मनोरंजन ममी क्षेत्रों में विस्तार और जटिलता आती जाती है। साराण यह है कि समुदाय के विकास की प्रक्रिया अपने विविध पहलुओं में निरंतर कायम रहता है। इस प्रक्रिया के अन्त में एक संगठित समुदाय की स्थापना हा जाती है। किन्तु इस संगठन का सूनपान किसी निश्चिन्त मुनियोजित योजना से नहीं हुआ है। यह तो परिवर्तित स्थितियाँ के प्रति प्रतिक्रियात्मक से विकसित हुई है। इस प्रकार के विकसित संगठन में कुछ अव्यवस्था बना रहना नितान्त स्वाभाविक है। संगठन में कुछ सघर्ष रत और विरोधी तत्वा की उपस्थिति से विगठन का एक भ्रम पनपा करता है।

सामाजिक संगठन का अर्थ

सामाजिक संगठन इसी प्रकार की स्वाभाविकता विकसित एक व्यवस्था है। इस धनियाजित संगठन में विगठन की महत्वपूर्ण सम्भावनाएँ विद्यमान रहती हैं। इरियट और मरिन ने लिखा है 'सामाजिक संगठन वह दशा या स्थिति है जिसमें एक समाज की विभिन्न सस्थाएँ अपने स्वाकृत अथवा उल्लिखित (मूर्चिन्) उद्देश्य के अनुसार काय कर रही हैं।¹ रायटर और हाट ने सामाजिक संगठन के अर्थ में मपूर्ण सामाजिक और सामूहिक मस्थाथा और उनके बीच के सम्बन्धों एवं समूह के अर्थ संगठन काय का भी सम्मिलित किया है।² समाजशास्त्र के 'गोप' में सामाजिक संगठन का यह अर्थ लिखा है 'एक समाज का उप-समूहों में संगठन जिनमें विशेष-कर प्रायु विग नाता पना निवास, सम्पत्ति विशेषाधिकार, सत्ता और प्रस्थिति के भेदों पर आधारित समूह का सम्मिलित किया जाता है।'³ जान्स ने सामाजिक संगठन को इस प्रकार परिभाषा दी है — सामाजिक संगठन वह व्यवस्था है जिसमें समाज के दो भागों में—व्यक्तियाँ समूहों मस्थाथा और सग्रहों में—परस्पर तथा पूरे समाज के साथ एक साथ एक ढंग से सम्बन्ध स्थापित हाना है।⁴ सामाजिक संगठन के उपरोक्त सभी अर्थ समान हैं। किन्तु जान की परिभाषा सर्वत्र मूल और

- 1 Social organisation is a state of being a condition in which the various institutions in a society are functioning in accordance with their recognized or implied purposes. Eliot and Merrill *Social Disorganization* Harper and Bros. New York (1950 3rd Edition) p 4
- 2 Peuter and Hart *Introduction to Sociology* McGraw Hill Book Co Inc. New York (1933) p 161
- 3 'The organisation of a society into sub-groups including in particular those based on differences in age sex kinship occupation residence property privilege authority and status. Fairchild H P *Dictionary of Sociology* (1944) p 287
- 4 Social organisation is the system by which the parts of society are related to each other and to the whole society in a meaningful way" Jones *Basic Sociological Principles* Ginn and Co New York and London (1949) p 195

अधिकृत है। मेकाइवर, मटन, साराकिन और गिंसवग ने इससे मिलती-जुलती परिभाषाएँ दी हैं। आँगवन ने भी सम्बन्धों तथा समितियों के संगठन को ही सामाजिक संगठन कहा है।

सामाजिक व्यवस्था सामाजिक संगठन का पर्याय सा है। किसी वस्तु का भाग अथवा क्रिया के कर्मों के संगठन को एक व्यवस्था कहते हैं। अतएव सामाजिक व्यवस्था से समाज के उस संगठन का तात्पर्य है जिसमें उसके भाग अथवा रचना के तत्वों में कायरेत सामंजस्य तथा एकीकरण विद्यमान रहते हैं। इसी प्रकार से, मोटे तौर पर सामाजिक सुक्रम (social order) का तात्पर्य एक निश्चित क्षेत्र तथा काल में प्राप्य सम्पूर्ण मानव-सम्बन्धों तथा सस्कृति से है। आलाचनात्मक दृष्टि से, सामाजिक सुक्रम समाज की एक स्वस्थ दशा का द्योतक है। यदि समाज में सभी समूह तथा व्यक्ति अबाधित काम-कुशल तार्किक, सौन्दर्यात्मक और नतिक अन्त क्रिया से अपना अपना काम कर रहे हैं तो समाज में स्वस्थ होने का गुण विद्यमान कहा जायेगा परन्तु आधुनिक समाजशास्त्रीय साहित्य में समाज की समग्र व्यवस्था को सामाजिक संगठन और आर्थिक राजनतिक, धार्मिक तथा साम्कृतिक उपसंगठनों को व्यवस्थाएँ (system or orders) तथा सस्थाओं परिवार या विचारों आदि के संगठन को प्रतिमान (patterns) कहते हैं। संक्षेप में समाज एक ऐसा संगठन है जिसमें परिवार, पेशा, सम्पत्ति राजनतिक सत्ता, धर्म और सस्कृति के विभिन्न भागों की व्यवस्थाओं और प्रतिमानों का समावेश है। अगले पृष्ठा में हमें जब कभी समूह, समुदाय अथवा किसी विशिष्ट सस्था के संगठन की बात कहनी होगी तो हम उसी नाम से संगठन कहेंगे। अर्थात् समूह सस्था, समुदाय अथवा राजनीति अथ के संगठनों को क्रमशः सामूहिक सस्थागत, सामुदायिक, राजनतिक अथवा आर्थिक संगठन कहा जायेगा।

एक छोटे समूह के सामाजिक संगठन से तात्पर्य उसके अतगत किता निश्चित समय पर अत सम्बन्धित भूमिकाओं का संगठन है जो कुछ स्थाई और अथ स्थायी संरचनात्मक मिद्वानता की योजना करता है। एक विशाल सघ या समूह (जैसे हिन्दू समाज) का सामाजिक संगठन उसके अन्तर्गत अतसमूह-सम्बन्धों का एक प्रतिमान है। डा० मजूमदार ने लिखा है, 'जब हमारा अभिप्राय किसी सामाजिक संगठन से होता है तो हमारा तात्पर्य उन साधारणीकरणों से होता है जिन्हें हम सामाजिक संरचना के लिये अतसमूह तथा समूह से इन सम्बन्धों के प्रतिमानों की तुलनात्मक विवेचना से विकसित करते हैं।¹ अत सामाजिक संगठन में विशेष प्रकार के समूहों के बीच के अन्त सम्बन्ध शामिल होते हैं जिनसे सामाजिक जीवन सम्भव हो पाता है।

1 When we refer to any social organisation we imply those generalizations which we may make about social structure after a comparative study of the inter and intra group relationship patterns. Majumdar and Madan *An Introduction to Social Anthropology* Asia Publishing House Bombay (1957) p 245

समाज एक ऐसा समूह है जिसमें आत्म निरभरता या स्वावलम्बन की शक्यता पाई जाती है। गिलिन तथा गिलिन न लिखा है 'हम मनुष्या के एक स्वतन्त्र नित्य (Self perpetuating) समूह को समाज कह सकते हैं। इस समूह को व सामाजिक हित निश्चित सांस्कृतिक प्रतिमानों तथा सामूहिक क्रिया में व्यक्तियों के स्थान और कार्य के संगठन की एक स्पष्ट योजना से समन्वित समूह स्वीकार करते हैं।¹ अथ प्रमुख आधुनिक समाजशास्त्रियों ने उपरोक्त से मिलती-जुलती समाज की परिभाषाएँ दी हैं। एक वैयक्तिक लोगो के एक समूह को समाज कहा जा सके। नव्या अर्थों में साथ-साथ रहने और काम करने का अर्थ है जिसमें व संगठित न गण न और अपने को सुस्पष्ट सामाजिक सचेत एक सामाजिक इकाई मानने लगे हैं। दूसरे पक्ष में एक समाज के नाश में उपलब्ध सामाजिक आदतों प्रथाओं और आदर्शों पर ध्यान दिया जा सके। उनकी विशेषता है तथा जो उन्हें दूसरे समूहों से भेद अथवा विराय का दृष्टिकोण बना लेने को प्रोत्साहित करते हैं। तभी, लक्ष्य न समाज का आधार प्रथाओं, परम्पराओं एवं दृष्टिकोणों की सामान्यता (commonness) को माना है साथ ही वह उत्तम एकता की भावना, का आवश्यक मानना है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम एक समाज के प्रमुख लक्षणों का निष्कर्ष कर सकते हैं (१) समाज लोगों का एक ऐसा समूह है जिसमें अनेक छोटे-छोटे समूह होते हैं, (२) ये सभी समूह अन्तर्सम्बन्धित हैं और उनका निश्चित स्थान तथा कार्य है (३) व्यक्तियों के बीच में कुछ निश्चित सम्बन्ध हैं जिनमें उनके स्थान और कार्य निश्चित होते हैं (४) समाज के सदस्यों में सामाजिक हित सम्बन्धि प्रथाएँ परम्पराएँ और दृष्टिकोण हैं तथा एकता की भावना तिनका विकास एक दीर्घ काल तक उनके साथ-साथ रहने-बसने और काम करने से हो गया है (५) समाज के निर्माण भागों के बीच तथा उनके और सम्पूर्ण समाज के बीच निश्चित सम्बन्ध होने से वह एक संगठित व्यवस्था बन गया है तथा (६) इस व्यवस्था में आत्म निरभरता अथवा आत्म भरता की शक्यता है अर्थात् दूसरे जीवन किन्ना एक या दूसरे समूह पर आश्रित नहीं है।

इसमें स्पष्ट हो गया है कि समाज एक स्थिर तथा गत्यात्मक दोनों प्रकार का संगठन है। कौन नहीं जानता कि समाज का संरचना में व्यक्तियों समूहों, समितियों तथा समूहों का समावेश होता है। किन्तु यह समाजिक भी है क्योंकि इनके संगठन में निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं तथा परिवर्तित प्रथाओं में इनके व्यन्तार में नए-नए विभिन्न प्रकार प्रकट होते हैं। फिर, समाज की संरचना भी तो स्थिर नहीं है। जिनमें भी समाज और समाजिक हो रहे हैं। समाज एक जीवन बन्तु के समान

1 Cultural Sociology Max-Millan (1945) p 194

है। यद्यपि किसी समय में एक समाज के सामाजिक सम्बन्ध पुनर्गठन या स्थिर दीख सकने परन्तु कालान्तर में उनमें परिवर्तन प्रत्यक्ष दिखना है। समाज की गत्यात्मकता से व्यक्तियों और समूहों के बीच सम्बन्ध अतः क्रियाशील रहती है। इसी कारण तथा क्रमों को सामाजिक प्रक्रियाएँ कहते हैं। संक्षेप में समाज (या सामाजिक संगठन) मनुष्यों के सम्बन्धों के निर्माण, स्थिरता और निरन्तर परिवर्तन का एक संगठन है। समूह या समितियाँ और संस्थाएँ इसकी संरचना की सामग्री हैं। इस संगठन में सत्याग तथा स्थिरता की पापक शक्तियाँ तथा प्रक्रियाओं से समाज नियंत्रण स्थापित है जो निरन्तर अयोग्य या विघटन की शक्तियों से बगिडा करता है और जिनसे परिवर्तन समाज का एक स्थायी तथा सतत तक्षण बन जाता है। समाज में पूर्वनिर्मित संतुलन बिगड़ कर नए संतुलनों को बनाने का क्रम चला करता है। इसलिये सामाजिक संगठन को संतुलनों के एक क्रम की एक व्यवस्था कहते हैं। जब कभी सामाजिक संतुलन में इतनी अधिक गड़बड़ी आ जाती है कि उसके अग्रे (व्यक्तियों समूहों तथा संस्थाओं) का साधारण कार्य अवरुद्ध हो जाता है तो समाज में अपसमायोजन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसे सामाजिक विगठन की अवस्था कहा जाता है। वहाँ पर यह ध्यान रहे कि सामाजिक विगठन सामाजिक संगठन की ठीक पर्याप्त अवस्था नहीं है। सामाजिक विगठन तो सामाजिक संगठन के स्वास्थ्य में अनाधिक अपसमायोजन का सूचक है। सत्य तो यह है कि तीव्र गति से परिवर्तित आधुनिक समाजों के संगठन में विगठन के तत्त्व स्थायी रूप से उपस्थित रहते हैं। न तो आधुनिक समाजों में पूर्ण संगठन रहता है और न पूर्ण विगठन। पूर्ण विगठन की निकट अवस्था भी समाज के अस्तित्व को मिटा देगी।

समाज के विभिन्न भागों जिनका एक दूसरे में सम्बन्ध है कई प्रकार के हो सकता है व्यक्ति समूह संस्थाएँ अथवा संग्रह। जब समाज के इन भिन्न भिन्न प्रकार के भागों में समुक्त कार्य होता है तभी समाज में आत्मभरता उत्पन्न हो सकती है। यदि व्यक्तियों और समूहों तथा समूहों के कार्य असंयुक्त और समाज से बिल्कुल अलग हो तो संगठित सामाजिक जीवन का होना असंभव है। परिवार उत्पादन तथा अन्य आर्थिक संस्थाएँ राज्य प्रायः प्रशासन संस्कृति धर्म तथा शिक्षा और मनोरंजन की संस्थाएँ, सभी तो सामाजिक संगठन के अंग हैं जिनकी पृथक्-पृथक् क्रियाओं में समन्वय और संगठन होता है। इसी प्रकार के समन्वय को सामाजिक संगठन कहते हैं। इन भिन्न भिन्न सम्बन्धित अंगों का एकाकार होना स्वयं उनके लिए ही अत्यन्त आवश्यक न हो बल्कि समाज के लिए भी।

सामाजिक विगठन के स्रोत

हम में से प्रत्येक व्यक्ति के हित और उद्देश्य सम्बन्ध में दूसरे व्यक्तियों के हित और उद्देश्यों के समान नहीं होते हैं। प्रत्येक की कुछ आवश्यकताएँ होती हैं जिन्हें वह

अपन साजना का अपनी याग्यता व अनुमा उन्वाग करक पूरा करने का प्रयास करता है। इन प्रयास में उन कई बाग अमफलता अथवा आशिक सफलता हो मिलती है। इसमें उस विनाता और निराशा हाती है। वह अपन प्रयत्ना में मदद मकनता ही चाहता है चाहे कि उस दूसरा क हित का मुचनता ही पडे। यही स्थिति उनमें स्वार्थी हान का प्रवृत्ति का जन दती है। बहुत प्रयत्न व्यक्ति स्वार्थी हाता है और तब मन्त्र अतिप्र प्रमत्त हाता है जब समूह अथवा ममान (उमन गार्ह क दूसरे व्यक्ति) उनक स्वार्थी की निधि का प्रायमेवता न्न हैं। परिणामत व्यक्तिता में परस्पर मध्य तथा विगत की अनक ग्णाए उन्नत हा जाता स्वभाविक हा जाता है। यदि यह मध्य अथवा विगत पद और खुन्नम-खुन्ता प्रो-मान् मिले ता उनके बीच के सम्बन्ध ममानप्राय हो जायेंगे। सम्बन्ध क अन्वयम् अथवा पूरा भग हा जाने स समूह और सामाजिक जीवन दाना ही अमम्भव हो सकते हैं। अतएव व्यक्ति तथा समूह अपन कार्यो का जा अथ नान हैं ममान उनकी क्रियाप्रा स उनसे बहुत मित अन्न लाता है। समाज के दृष्टिकोण से व्यक्ति और समूह नाना उही क्रियाप्रा का उनो डग स करे जिनकी अपना समाज उनम करता है। किन्तु समाज की य अमनतायें सन्ध पूरी नहीं हा पाता। इमनिय समाज क सामन यह ममस्या निरन्तर बनी रहता है कि उनक निमायक भागा के बाय उनरे दृष्टिकोण स साथक रहें निमम उन मवक बीच तथा उनक तथा पूर ममान क बीच क सम्बन्ध अथयुगु बन न्ते। सम्बन्ध की यह मायकता बेवन भागा क लिए ही नहीं सचमुच पूर समाज क निय भा आत्रमक और हिनर है।

यह बाय तभी मम्भत हा मकता है जब समाज क भागा (व्यक्तिता समूहा तथा मम्पाप्रा) क व्यवहार पर नियन्त्रण बना रह। सामाजिक संगठन में मन्करण तथा एकाकरण की मूत्रमूत्र प्रक्रियाप्रा पर इम प्रकार नियन्त्रण रता जाता है कि उनम सन्वुन बना है। सामाजिक सरचना क तन्वा के क्रियाशील हान पर भी उनम सापथिक स्थिरता बनाय ग्वन क निवे सरणामन शक्तिता का मञ्जल हाता आत्रमक हाता है। समाज के संगठन को सरथित करन की प्रक्रिया का सामाजिक नियन्त्रण वान है।

समाज क सदस्या, समूह संगठना और मम्पाप्रा में व्यक्तित्वाने स्वार्थी दृष्टि-बाण प्रक्रियाप्रा और परिस्थितिता में ममानाजन करन की अनमान धमनाप्रा की उपस्थिति में सामाजिक संगठन में अमगठन के बीच पनपत्त ग्वन हैं। विगतन की प्रवृत्ति, विन्ता तथा परिणामा का विरनपग भी प्रन्तुत पुम्भक में किया जायगा। सामाजिक संगठन की प्रवृत्ति

(१) निश्चित बाय और प्रस्थिति—सामाजिक संगठन क निमायक भागा क दान में स्थायित सम्बन्ध निश्चित हाता है। साप हा उनमे तथा पूरा संगठन के बीच में भी निश्चित सम्बन्ध हाता है। इसमें प्रत्येक भाग की भूमिका और प्रस्थिति क बार

म निश्चितता विकसित होना नितांत स्वाभाविक है। यदि उनमें से किसी भी भाग के कार्य तथा प्रस्थिति किसी समय पर अनिश्चित हो जाए तो पूरा सामाजिक संगठन के साधारण कार्य में बाधा पड़ जायगी। इसलिये सामाजिक संगठन के विभिन्न भागों के सम्बन्ध में निश्चितता तथा सायकता बनाय रखने का प्रयत्न होना चाहता है।

(२) उद्देश्यो लक्ष्यो तथा कार्यक्रमो की एकमतता—सामाजिक संगठन के विभिन्न भागों की भूमिकाओं तथा प्रवृत्तियों की निश्चितता बनाय रखने के लिये उनके भिन्न भिन्न उद्देश्यों लक्ष्यों तथा कार्यक्रमों की प्रवृत्तियों में एकता तथा सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है। प्रत्येक भाग के व्यक्तिगत अथ (प्रयाजन) का अंततः सम्पूर्ण समाज के अर्थ में विलीन कर देने में ही सामाजिक व्यवस्था बनी रह सकती है। दूसरे शब्दों में सामाजिक संगठन के अस्तित्व और संरक्षण के लिये उसके निर्मायिक भागों के उद्देश्यों लक्ष्यों तथा कार्यक्रमों और सम्पूर्ण समाज के उद्देश्यों लक्ष्यों काय क्रमों में अंततोगत्वा एकमतता होना अनिवार्य है। सभी भागों के कार्य यथासंभव समाज के समग्रप्रयाजन के समकक्ष हों व उससे प्रतिकूल न जाए। इस एकमतता के अभाव में सामाजिक संगठन तथा स्वयं भागों का संगठन अवश्यभावी हो जाता है।

सामाजिक संगठन की प्रक्रियाएँ

सामाजिक संगठन दो महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाओं से घटित होता है। जब इसका विकास स्वाभाविक रूप से बिना किसी समग्र आयोजना के होता है तो भी इसके सम्पूर्ण प्रतिमान में हम इन दो प्रक्रियाओं का प्रभाव देख सकते हैं।

इनमें से पहली प्रक्रिया भेदकरण (विभिन्नता) की है। इससे ही समाज के भागों में व्यक्तिगतता विकसित होती है व एक-दूसरे में पृथक् पहचान जा सकते हैं। कारण यह है कि व सभी पृथक् प्रकार के कार्य करते हैं उनकी विभिन्न पाशवगत विशेषताएँ हैं तथा उनके उद्देश्यों लक्ष्यों तथा कार्यक्रमों में भी भेद है। यदि सभी व्यक्ति अथवा समूह एक प्रकार के ही होते तो उनमें बीच में भेद करना असम्भव होता। प्रत्येक का संगठन दूसरे के जमा ही होगा। इस स्थिति में न तो व्यक्तियों तथा समूहों के बीच किसी प्रकार के भेद होंगे और न उनका संगठन ही अर्थपूर्ण अथवा अभिप्रायपूर्ण होगा।

दूसरी प्रक्रिया का नाम एकांतरण है। इस प्रक्रिया से विभिन्न भागों के बीच सामंजस्य उत्पन्न होता है। एकीकरण से भागों में एक-दूसरे जसा मामूय नहीं पना हो जाता। इनमें तो प्रसमान भागों की साथ-साथ समग्र सामाजिक क्रिया सम्भव हो जाती है।

योजना प्रक्रियाएँ यूनानिक रूप में निरन्तर क्रियाशील रहती हैं। जनसामाजिक सगठन एक गतिहीन अथवा अपरिवर्तनीय व्यवस्था नहीं रह सकती। भेदकरण तथा एकाकरण की प्रक्रियाओं के बीच में अन्त क्रिया का शुद्ध परिणाम सामाजिक सगठन है।

हमारे समान क वनमान सगठन में उपरोक्त दोनों प्रक्रियाएँ निरन्तर कायम रहती हैं। इनके विकास में भी अन्त विभाजन तथा विश्वपीकरण का निरन्तर महत्त्व है जो भेदकरण की प्रक्रिया के ही दो पहलू हैं। सम्भवतः अन्त अन्तर्गत सामाजिक प्रक्रियाओं जैसे प्रतियोगिता, सघर्ष तथा प्रतिकूलता का भी भेदकरण का प्रक्रियात्मक महत्त्वपूर्ण योग हम समझ सकते हैं। इसी प्रकार सामाजिक विकास के प्रारम्भ में ही महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रियाओं जैसे सहयोग, समायाजन और मात्मीकरण का विभिन्न सामाजिक भागों में साथ-साथ सामंजस्य से प्रभावपूर्ण काय करना सम्भव है।

सामाजिक सगठन में भेदकरण और एकीकरण की प्रक्रियाओं का इतना महत्त्वपूर्ण काय है कि एक दृष्टिकोण से स्वयं सामाजिक सगठन का वास्तव में एक प्रक्रिया कहा जा सकता है। सत्य तो यह है कि यह भागों की एक परिवर्तनशील व्यवस्था है। यदि हम सामाजिक सगठन का विश्लेषण किसी एक समय पर करें तो उसकी व्यवस्था का प्रतिमान हम महत्त्वपूर्ण दिखता है। किन्तु यदि उसका विश्लेषण एक लम्बा अवधि के दृष्टिकोण से करें तो उसमें तात्कालिक उमर का परिवर्तन हमें महत्त्वपूर्ण दिखेगा। सामाजिक सगठन का इन दोनों पहलुओं को क्रमशः गतिहीन और गन्तव्य कहा जाता है। अतएव सामाजिक सगठन का अन्तर्गत में इन दोनों पहलुओं पर ध्यान देना ही दिलचस्प और लाभदायक होगा। इन दोनों पहलुओं में से किसी एक की उपेक्षा करके दूसरे का सारा महत्त्व देना अपूर्ण तथा अनुपयोगी टग होगा। परिवार किसी आर्थिक समस्या का अथवा किसी सांस्कृतिक समस्या का वनमान स्वरूप समझने के लिए उसके विकास का इतिहास समझ लेना आवश्यक है। किसी भी वनमान समस्या का पर्याप्त जानकारी के बिना उसे स्थितियाँ का समझना आवश्यक है जिनकी प्रतिक्रियाओं से वह समस्या विकसित हुई है। यदि यह अच्छा तरह समझ लें कि मानव समुदाय की आधा-भूत अन्त क्रिया का समझना महत्त्वपूर्ण है। डॉ० जेम्स के वयल ने किन्हीं मन्तव्य है। हमारा वनमान सामाजिक सगठन प्रत्येक दूसरी सामाजिक घटना के समान अन्त की स्थितियाँ से हमारा प्रक्रियाओं का परिणाम है। सामाजिक सगठन हमारी भूतकालीन अन्त-क्रियाओं की उत्पत्ति है और हमारे समकालीन अन्त क्रिया प्रतिमानों में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य भी है।¹

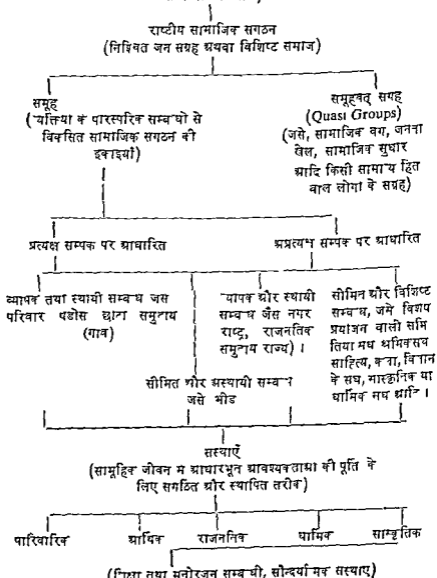
विश्लेषण के लिए प्रस्तावित योजना

सामाजिक संगठन को उसके दाना पहलुओं—गतिहीन और गत्यात्मक अथवा सरचनात्मक तथा कार्यात्मक—का विश्लेषण करने के लिये हम जो योजना अपनाएंगे उसका निम्नलिखित चित्रा म दिया जा रहा है —

१

(अ) सामाजिक संगठन (सरचना)

(समाज सामाजिक व्यवहार की सम्पूर्ण जटिल व्यवस्था और सामाजिक सम्बन्धों का जाल)



२ (आ) सामाजिक संगठन (गत्यात्मकता)

- (१) व्यक्तियों समूह, समितिया तथा संस्थाओं के काररत होन स उनकी आन्तरिक—सामाजिक अन्त क्रिया के रूप
- (२) सामाजिक परिवर्तन
- (३) सामाजिक विगठन
- (४) सामाजिक पुनर्गठन और आयोजन

उपरोक़्त चित्रा म दिग्गशिण याजना से यह स्पष्ट सवेत मिल रहा है कि हम प्रस्तुत प्रथम म विषया के विश्लेषण का कसा प्रम रखेंगे। चतुथ खण्ड म समूह, समितिया, और संस्थाओं की सरचना तथा काय का विश्लेषण हागा। ग्राम तथा नगर के सामाजिक जीवन का विवेचन किया जा चुका है। पाचवें खण्ड मे सामूहिक व्यवहार म मनावनानिक कारका तथा भौड जत्ता आदि का विवेचन करेंगे। छठवें खण्ड मे व्यक्ति तथा समाज के सम्बन्ध, व्यक्तित्व का विकास एव विगठन और सामाजिक नियन्त्रण और मातवें खण्ड म सामाजिक विगठन पुनर्गठन और आयोजन पर विचार किया जायगा। तक की दृष्टि से अन्तिम खण्ड म ही सामाजिक अन्त क्रिया परिवर्तन और विकास का भा विवेचन सम्मिलित होना चाहिए था। किन्तु पाठ्यक्रम के एक विशेष प्रवच के कारण हमन इन विषया का विश्लेषण तीमर खण्ड मे समाविष्ट कर लिया है।

सामाजिक व्यवस्था के स्तर¹

सामाजिक घटनाओं के विश्लेषण का एक आधार मनुष्य की प्रस्थितियाँ (Statuses) और मानक (norms) हैं। किन्तु इससे इन घटनाओं का अपक्षित विश्लेषण नहीं हो पाता। उपरोक्त विश्लेषण में व्यक्ति को एक स्वचालित मशीन मान लेने का खतरा छिपा रहता है। हम यह स्मरण रखना चाहिये कि जो भी वस्तु सामाजिक है उसके साथ मनुष्य के चुनाव विचार सवेग और प्रत्यक्ष ज्ञान (Perception) अभिन्न रूप से सलग्न है। बहुधा सामाजिक विज्ञान में यह मान लिया जाता है कि सामाजिक व्यवहार में वैयक्तिक मानसिकता (Subjective mentality) सर्व स्थित है और इसका अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। इसके साथ ही यह मान्यता बहुधा प्रचलित है। सामाजिक व्यवहार के कुछ वस्तुनिष्ठ सूचक (objective indices) हैं और उनमें काय-कारण का सह सम्बन्ध है। किन्तु डेविस का विचार इसके विपरीत है। उसके अनुसार सामाजिक व्यवहार के विश्लेषण का वास्तविक सिद्धांत तभी बन सकता है जब कि उसमें वैयक्तिक घटनाओं का अस्तित्व माना जाय किन्तु मानव क्रिया के अनिवार्य तत्व (irreducible components) का अस्तित्व भी स्वीकार किया जाय। उसका मत से एस ही किताब सिद्धांत को पूर्वकथित सिद्धांत को अपेक्षा अधिक व्यवस्थित और अधिक ग्राह्यपूर्ण बना जा सकता है। इस मत को स्पष्ट करने के लिये डेविस कर्ता के दृष्टिकोण का लेता है। मनुष्य जिन सामाजिक सम्बन्धों में भाग लेता है उनमें प्रति उसका एक अपना दृष्टिकोण होता है और किसी भी क्रिया के लिए उस कुछ सामाजिक प्रेरणा मिलती है और उस करने का उसका अपना ढंग होता है। अतएव सामाजिक सम्बन्धों का विवेचन करने में हम उनमें सम्मिलित हाने वाले की दृष्टि पर यह अवश्य ही ध्यान देना

1 यह सम्पूर्ण विवेचन किंगले डेविस कृत 'ह्यूमन सोसाइटी के लेवल्स ऑफ सोशल आर्डर' नामक अध्याय पर आधारित है।

चाहिए। किसी एक विशिष्ट कार्य या क्रिया को ले लिया जाय और उमका विशेषण बना का ध्यान म रखकर क्रिया जाय।

सामाजिक क्रिया के तत्व

वर्षिक अथवा म्वच्छा क दृष्टि विटु मे यदि किसा एक कार्य का विशेषण किया जाय ता उसम चार अपरिहाय और अविच्छिन्न कारक मिलेंगे —

(अ) एक कर्ता (actor) (आ) एक ध्यय (end) या उद्देश्य (objective) भविष्य म हान वाले कार्य कलापा की एक दशा (condition) जिसके प्रति कर्ता क मस्तिष्क म कार्य की प्रारम्भ लम्बित है, (इ) कुछ आर्ये—स्थिति (situation) क व पहलू जिन पर कर्ता का कोई नियन्त्रण नहीं ह (ए) कुछ साधन—स्थिति के व पहलू जिन पर कर्ता का नि सदह नियन्त्रण है।

कर्ता—कर्ता स अभिप्राय मनुष्य क शरीर स नहीं बरन उसके अह (ego) अथवा उसके "स्व" (self) से है जिनके लिय मैं अथवा "मुझका" जैसे सबनाम प्रयुक्त होते है। अथान् मनुष्य क अह का अर्थ उसके मस्तिष्क म स्थित वह भाव अथवा विचार है जिनम किसी वस्तु की प्रतीति अथवा उमका अनुभव करन की योग्यता है जिसके आचार पर मनुष्य कुछ निश्चित करता ह और इन् निश्चया पर भावात्मक दृष्टि म भोग्ता है। इसी म वह अनीति की घटनाआ का परस्पर जाड सकता है और भावी घटनाआ क बारे म कल्पना कर सकता है। मनुष्य क व्यवहार का समझन क लिय यह अपरिहाय सका ह कि उमके समार का दखन तथा अनुभव करन अथवा साधन का तथा ढग ह। ध्यय अथवा उद्देश्य पर विचार भविष्य क सदम पर हा सकता है कयानि हमम वनमान म पर कार्यकलापा की एक स्थिति या दशा स सम्बन्ध रहना है। उद्देश्य को प्रतिनिधि मानन क निय कल्पना का उपयोग हाता है और उमका प्राप्त करन क निय प्रयाम और दृष्टा का उपयोग होता है। हमार निकटस्थ (immediate) समार का घटनाआ क अनिश्चित और उमक बाहर ही उद्देश्य क अस्तित्व का माना वा सजना है इनलिए उद्देश्य आन्नात्मक व्यवस्था (normative order) क अनुस्य हाता है। यन् व्यवस्था भी माननिक है और बाह्य तथ्या क मसार क अनिश्चित है। उन् उद्देश्य प्राप्त हा जाता ह तो कार्य समाप्त हा जाना है। हम प्रकार प्रथम उद्देश्य क स्थान पर दूसरा उद्देश्य आ खना हाता है। इस कारण क्रिया की नद शिशाआ का जम मिलता है। इस टग म प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार म परस्पर सम्बन्धित कार्यों की एक शृंखला समाइ रहती है फिर चाह वह उद्देश्य अचेतन (unconscious) हा अथवा चेतन (conscious)।

ध्यय विशुद्ध परिणाम स बहुत कुछ भिन्न है। यदि कर्ता क हस्तमप क हात हुए भी कार्य कलापा की एक भाव्य दशा का विकास हाता है तो यह कार्य

कर्ताप्रा की एक भावी दशा है किन्तु इसके पास अत तक तभी पहुँचा जा सकता है जब कर्ता को इसकी आवश्यकता है और वह उनका प्राप्त करने के लिये बड़ा परिश्रम करता है। समाज में इस उद्देश्य का चुनाव जाता है जिनकी मायता हो और यह भा निश्चित करना होता है कि वांछित अथवा प्राप्त करने योग्य ही उद्देश्य सामने रखे जाए।

दशाएँ—काय के उद्देश्य की प्राप्ति के माग में जो अलक्ष्य कठिनाइयाँ हैं उह दशाएँ कहते हैं। इही दशाओं से वह मच तयार हाता है जिस पर प्रिया हाती है। कुछ दशाएँ वाह्य होनी हैं कुछ आंतरिक। जा दशाएँ उद्देश्य की उपलब्धि को सीमित कर देती हैं वे बहुधा तीन छातो से जन्म लती हैं।

भौगोलिक पर्यावरण जन्मजात अथवा सहज क्षमता (innate capacity) और समाज। मनुष्य उन उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयास नहीं करता जिह वह असम्भव मानता ह। व अक्सर ऐसी मृत्यताओं के प्रति आकृष्ट होत हैं जिह प्राप्त नहीं किया जा सकता और वह ऐसे मनाभाव (sentiments) अपनात हैं जिनका झुकाव अप्राप्य लक्ष्य की आर होता है। किन्तु यथाय परिस्थितियाँ में जिन विशिष्ट लक्ष्य (specific ends) की ओर आकृष्ट हाते हैं व प्राप्य (realizable) लगत है। लक्ष्य का प्राप्त करने में विफलता से बहुधा दुःख होता है और सफलता में सुख। जीवन मुखा और दुःखा की एक शृंखला है।

साधन—एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कुछ न कुछ साधना का उपयोग किया जाता है। साधन कई प्रकार के होत हैं। कुछ तो बहुत सरल जैसे बोली और कुछ बहुत जटिल होत हैं जैसे कारखाना व्यवस्था। इही विभिन्न प्रकार के साधना से विभिन्न लक्ष्यो का प्राप्त किया जाता है। एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कई बार एक से अधिक साधन प्रयुक्त हात हैं। इससे कर्ता को साधना का चुनाव करन में काफी छूट रहती है। साधना के चुनाव में त्रुटि होने की भी सम्भावना रहती है। इस कारण मानव क्रिया में अनिश्चितता का तत्व आ जाता है। कर्ता चायद भी कभी अपन लक्ष्य तक पहुँचने में पूर्ण आश्वस्त रह। एक कर्ता के लिए जा साधन है वही दूसरे के लिए दगा हा सकता है। इसी प्रकार एक स्थिति में जो साधन है वही दूसरी स्थिति में एक लक्ष्य हा सकता है। इस प्रकार कर्ता का सम्पूर्ण व्यवहार अन्त सम्बन्धित साधना और लक्ष्यो का एक जटिल तानाबाना है। यह है क्रिया की एक अत निमित्त शृंखला।

एक दूरस्थ साध्य का प्राप्त करने के लिए मनुष्य अस्याई लक्ष्यो तक पहुँचने का प्रयास करता है। अपन बहुत से सामाजिक जीवन में उस अस्याइ साध्या को पाने के लिए प्रास्ताहिन किया जाता है जिसमें वह अधिक दूरस्थ और महत्वपूर्ण साध्या तक अतत पहुँच सके।

सारास—मनुष्य के व्यवहार में सबसे महत्वपूर्ण स्थान उसकी इच्छाओं मना-वगा, आकांक्षाओं और भावनाओं आदि का है। इन सबका केन्द्र है अहम् अथवा आत्म। उसकी क्रिया का निर्देशन उस लक्ष्य में जाना है जिसे अहम् किसी स्थिति में अनुभव करता है। स्थिति के जिन पहलुओं पर कर्ता नियंत्रण कर सकता है व उसका साधन हैं और जिन पर उसका नियंत्रण नहीं हो सकता व उसकी दशाय हैं। किन्तु वह यह निर्णय करने में अशक्त स्वयं जिम्मेदार है कि कितने पहलुओं पर उसका नियंत्रण हो सकता है और कितने पर नहीं। अतएव पर्याप्त क्रिया व तत्त्व एक दूसरे से भिन्न हैं फिर भी व परस्पर आश्रित हैं। यदि मानव व्यवहार का विषयक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया जाय तो उपरोक्त तत्त्वों में से किसी की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

मानव क्रिया में तार्किकता का तत्व

एक अर्थ में प्रत्येक मानव क्रिया का कुछ तार्किक आधार जाना है। मनुष्य को उपलब्ध साधनों से अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए सबसे अधिक उपयुक्त साधन का चुनाव करना पड़ता है। किन्तु उसे इस बात का अनुभव हो अथवा नहीं तो साधन उसे उपलब्ध होते हैं अपेक्षानुसार धाड़े होत हैं। अथवा वे जान नहीं जाने जिनका कि होना चाहिये था। ऐसे कई ढंग होते हैं जिनमें वास्तविक सामाजिक जीवन में कर्ता की स्थिति के अनुरूप साधन दशाओं में बदल जाते हैं। किंग्सले डेविम ने एक चार ढंगों का उल्लेख किया है

(१) कर्ता ऐसे लक्ष्यों का प्राप्ति करता है जो आदि भौतिक हैं जिनमें मोक्ष। ऐसे लक्ष्य दुर्लभ अर्थ में काल्पनिक हैं। व केवल ऐसी भावी स्थितियाँ नहीं हैं जो आज उपस्थित नहीं हैं किन्तु वे ऐसी भविष्य की स्थितियाँ हैं जो समार में कभी विद्यमान नहीं होगी। वनानिक ढंग से ऐसे लक्ष्यों का पूर्ति के लिए कौन साधन पर्याप्त है यह सिद्ध अथवा असिद्ध करना असम्भव है। अतएव सम्मान्य साधनों में चुनाव का कोई तार्किक आधार नहीं है। वास्तव में ऐसा कोई तरीका नहीं है जिनमें निर्णय किया जा सक कि अमुक साधन है और अमुक दशा। फलस्वरूप तार्किकता अमंगल हो जाती है और क्रिया का स्वभाव तार्किकता रहित (Non Rational) हो जाता है। कर्ता व पाठ साधनों की पर्याप्तता निश्चित करने के लिए केवल सामाजिक परंपरा के स्रोत से ही साध्य मिल सकते हैं जिसके आधार पर अनेक सम्मान्य प्रतीकाल्पक साधनों में से एक या दो युक्तियों का चुनाव हो सकता है।

(२) कभी-कभी कर्ता का अपने लक्ष्यों की वशी अस्पष्ट और अस्पष्ट धारणा जानी है जिनमें वह उनके अनुकूल साधनों को खोजने में कठिनाई का अनुभव करता है। इस स्थिति में वह साधनों और लक्ष्यों के बीच कारण-कारण का सम्बन्ध नहीं जाह पाना। यहाँ लक्ष्य के प्रारम्भिक और बहुधा धूमिल स्वभाव के स्रोत से तत् रहितता निकलती है। टास्म नरिन्की ने ऐसे लक्ष्यों का नय अनुभव के लिए इच्छा

की सजा दी है जिसमें त्रिया का प्रयोजन अद्वैतदर्शी परिणाम हात है। धार० के० मन्त्र भी उपरोक्त विचार से सहमत है। इस लक्ष्य का एक सरल सा उदाहरण होगा बच्चा का अपने ही घर में आग लगाकर नया अनुभव का प्राप्त करने की इच्छा करना। बहुधा विशास एव तन्मया में इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यगता होती है। इसी को कविता में रामाचर्य अनुभूति कहा जाता है।

(३) बहुधा कत्ता को सभी साधना का बाध नहीं होता। यदि अधिक सावधान रहें अधिक विद्वान् हों अथवा वह अपनी अपनी सस्कृति या पं के सम्बन्ध में अधिक भाव्यशाला हो तो साधना की अधिक जानकारी होगी। एक स्थिति में कर्ता को सभी सम्भव साधना की जानकारी कभी नहीं हो सकती नहीं ता वह किन्हीं गलत साधना का चुनाव कर लेगा।

(४) तकहीनता का एक चौथा स्रोत भी है। यह है साधना के चुनाव पर आदर्शों से प्रेरित प्रतिबन्ध। एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये मनुष्य को समाज द्वारा अनुमोदित साधना का ही उपयोग करना होता है। उस अप्राकृतिक अथवा समाज विरुद्ध साधना से बचना पड़ता है। दूसरे शब्दों में समक्ष अनेक लक्ष्य रहते हैं एक विशिष्ट लक्ष्य का पूर्ति के लिये वह केवल सीमित साधना ही प्रयोग कर सकता है। अपने समस्त लक्ष्य के लिये उपलब्ध अपने सीमित साधनों में उसे सन्तुलन बनाए रखना पड़ता है। उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी के समक्ष कई उद्देश्य हो सकते हैं जैसे पुस्तक खरीदना कपड़े बनवाना मित्रों के साथ होटल अथवा सिनेमा जाना और विद्यालय की फीस देना। किन्तु इन विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उस अपने मातापिता से दृष्टा सामित धन मिलता है। उपरोक्त उद्देश्यों में से कमा नहीं कर सकता। अतएव वह अपने ज्ञान में प्राथमिकता निश्चित करे और उपयुक्त सीमित साधना का चुनाव करने का वाक्य है। मनुष्य समाज में किसी व्यक्ति अथवा समूह के अपार संपन्न नहीं हाने। नये अनेक हो सकते हैं और साधना का सीमा में विस्तार हाने का मायनाय लक्ष्य का सत्यापन परिधि में बढनी जाती है। इसीसे मानव जीवन एक समस्या है। वह अपने सीमित साधना से असामित लक्ष्य की पूर्ति करने में ही अनवरत प्रयत्न करना रहना है।

इसी प्रकार एक समाज में सभी व्यक्तियों के लक्ष्य की समस्त व्यवस्था में विना प्रसार सन्तुलन और स्थिरता बनाइ रखा जाती है। साधन सीमित है और लक्ष्य है अपरिमित। समाज को आन्तिकात्मक व्यवस्था में प्रकाश काय करती है जिससे एक व्यक्ति को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के दूसरे लोगों का अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में प्रसीमित अनुविधा न उत्पन्न हो। उचित और वैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए धावापडा हत्या चारा अथवा छीना भपटी वर्जित है।

उपलब्ध साधना को सीमित करने के अनिश्चित आदर्शात्मक व्यवस्था उनकी वृद्धि भी करती है। उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वह आवश्यकताओं का विस्तार करनी

है। उदाहरण के लिये एक भूखा व्यक्ति भोजन प्राप्त करने के लिये कई परम्परानु-
मोदित माघा अपना सकता है और अपनी कल्पना और सूझ-बूझ से नये साधना को
सलाह कर सकता है। व्यक्ति जिन स्थितियों और पदा पर रहता है उनका व्यवहार स
जा आदर्शात्मक व्यवस्था व्यक्त होती है यह एसा पधाकरण है जो केवल साधना
पर ही प्रतिबन्ध नहीं लगाना परन्तु स्वयं साधना को परिभाषित भी करता है और
जो उद्देश्य तक पहुँचने के लिये कृत्रिम किन्तु सामाजिक दृष्टि से आवश्यक माघना
को मूढि करता है।

मनुष्य के व्यवहार में तत्कालीनता के जो चार विस्तृत ज्ञान बनाये गये हैं उनका
अतिरिक्त होने हुए भी ज्ञान का बहुधा यह भ्रम रहता है कि उसकी सभी क्रियाओं
तक पूरा है। यह स्थिति एतना है कि ज्ञाना ध्यान जो सत्र साधना पर केंद्रित रहता
है जो वह उपन्यास कर सकता है और जो सत्र साधना पर नहीं जिनका वास्तव में
वह उपयोग कर सकता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि मनुष्य के लिये प्राप्य
साधना और वास्तव में उपयोग के लिये उपलब्ध साधनों में भी एक खाई है। कर्ता
का ताकिकता का जो भ्रम रहता है उससे उसका अहम् और उसके समाज ज्ञान को
रना होती है। काइ भी समाज एसा यक्तिया से मिलकर नहीं बनता जो अपने माध्या
की पूर्ति के लिये चाहे जो साधन हों उस प्रयोग करने की इच्छा रखें। इससे स्पष्ट
है कि किमी भी सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत केवल ताकिक व्यवहार ही सम्मिलित
है और न वह व्यवहार ज्ञाना तकपूरा है जिनका कि समाज के मन्स्या को वह एसा
संगत है।

सामाजिक स्थितियों की व्यवस्था और क्रिया का सम्बन्ध

क्रिया मनुष्य का एसा व्यवहार है जिसे किसी लक्ष्य पूर्ति के लिए प्रारम्भ
किया जाता है। किन्तु सभी प्रकार का व्यवहार लक्ष्य ही की पूर्ति के लिए नहीं
होता। बहुत सा मानव व्यवहार गुड रूप से अज्ञान प्रना (Intuition) अथवा सहज
क्रिया (Reflex action) से चालित होता है। जो प्रयोजन-परक (Purposeful)
व्यवहार होता है वह समाज का समझने में अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है क्योंकि
प्रनावात्मक संचरण (Symbolic communication) और सम्बन्धित वास्तविक
प्रक्रियाओं माघना और साधना के पारम्परिक सामाजिक के माध्यम से ही मनुष्या
पर सामाजिक प्रभाव पड़ता है।

मनुष्य अपनी विभिन्न स्थितियों के अनुस्यू ही क्रिया करता है। वह
एसा निदान प्रीणशण (Indoctrination) अथवा अपने अनुभव अथवा अपना पटुता
(Ingenuity) के प्रभाव में करता है। यदि अपनी स्थिति को आवश्यकताओं का पूरा
करने में वह सफल होता है तो उसे सन्तोष होता है। दूसरा जो उसे तब नमान
भी मिलता है। यदि एक दृष्टि स्थिति वास्तविकता का अपने कल्पना के पानन

मे बाधाघात के कारण सामित रहना पड़ता है ता उन बाधाओं पर बाधू पान के लिए वह समाज द्वारा अनुमोदित साधना के चुनाव अथवा अपनी पटुता का उपयोग करना है ।

उपरोक्त विश्लेषण मे हमने एक अनेकी क्रिया के तत्वों का विवेचन किया है । आर्य्य अब देखें कि विभिन्न क्रियाओं और इसलिए विभिन्न उद्देश्या का एक दूसरे से क्या सम्बन्ध रहता है । ऐसा करने के लिए आवश्यक है कि व्यक्तिया अथवा समाज के नात्या का ध्यान मे रखकर हम एकीकरण के विभिन्न स्तरों (Defferent levels of integration) को एक दूसरे से पृथक् करके देखें और यह विचार करें कि जिन उद्देश्या का हम विश्लेषण कर रहे हैं वे यन्त्रात्मक (Instrumental) अथवा चरम (ultimate) साध्य हैं ।

सामाजिक व्यवस्था में कार्यों और लक्ष्यों के एकीकरण के विभिन्न स्तर

सामाजिक व्यवस्था में कार्या और तत्वा के एकीकरण के व्यावहारिक और सद्धान्तिक दृष्टि से तीन प्रकार के स्तर होते हैं

१ प्राविधिक—आर्थिक एकीकरण (Technological Economic Integration) ।

२ राजनतिक वधानिक एकीकरण (Politico legal Integration)

३ धार्मिक साम्प्रतिक एकीकरण (Religious Cultural Integration)

उपरोक्त तीनों प्रकार के स्तरों के आन्धार पर ही मह कहा जा सकता है कि सामाजिक व्यवस्था तीन विभिन्न स्तरों में विभक्त है । इन्हीं का सामाजिक व्यवस्था के स्तर (Levels of social order) की सना दी जाती है । इन स्तरों की व्याख्या करने के पूर्व व्यक्ति के प्राविधिक एवं आर्थिक लक्ष्यों के एकीकरण पर संशेष में विचार कर लेने से सामाजिक सद्भ में लक्ष्यों के एकीकरण का विश्लेषण करना सरल होगा ।

प्राविधिक एकीकरण—प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार की परिधि में हजारों पृथक् काम आते हैं जो परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं । एक सद्भ में जो काम साध्य है वही दूसरे सद्भ में एक साधन हो सकता है । कुछ साध्य अन्तिम कभी नहीं होते किन्तु सन्ध मध्यस्थ ही रहते हैं । उदाहरण के लिए यदि एक मजदूर फावड़ा खरीता है तो उसका यह काम कभी साध्य नहीं हो सकता, ये तो केवल एक साधन है । इसी प्रकार में विद्याधिया का पुस्तकें खरीदना अथवा पीस देना या किसी खिताडी द्वारा किसी मच में भाग लेने के लिए अभ्यास करना, यह सब मध्यस्थ साध्या के अथवा साधना के उदाहरण हैं । यदि हम साध्यों को केवल यत्र के रूप में देखते हैं तो समाज विचार एक प्राविधिक प्रकार का है । इस स्तर पर साध्य सवेगों से मुक्त होते हैं । जब प्रति हमारा वाइ भावात्मक लगाव नष्ट होता और हम साधना की

उपयोगिता का निगम उनकी कार्यप्रणाली के आधार पर करते हैं। यदि साधना और साधकों की श्रुतता पर समझ रूप में हम दृष्टि में विचार करें कि उनके लिए पर चरम प्रयत्नार्थ हैं तो प्राविधिक श्रेष्ठ मदैव तनद्वी में मिलता। यथा जहाँ कर्ता व कार्यो का माध्य केवल कुछ मय यंत्रा या युक्तिया (Instruments or devices) के रूप में वस्तुधा का प्रयोग करना है वहाँ ये मात्र नुद्ध रूप में प्राविधिक हैं। प्राविधिक साधना की परिभाषा शुद्ध रूप से यथात्मक है। जिस हम प्राविधिक कहते हैं उसमें एक निकटस्थ माध्य का मध्यम उत्तम प्रयोगता का सम्भव रूप में परिमित साध्या का उपयोग सन्निहित है। इसमें विभिन्न माध्या व बीच में साधना का का विवरण सम्मिलित नहीं होता।

आर्थिक एकीकरण—साधना और साध्या की श्रुतता में कबल पहल के बाद बाल दूसरे माध्य की पूर्ति के लिए मनुष्य की क्रियाओं मात्रात्मक नहीं होती। व वास्तव में एक ही समय पर कई विभिन्न साध्यों की पूर्ति में यंत्र का कार्य करती हैं। इस क्रिया में व्यक्ति शुद्ध रूप में एक प्राविधिक रण का लक्ष्य नहीं धन सकता। उस निश्चय है एक लक्ष्य को दूसरे के साथ रखकर सन्तुलन करना पड़ता है और अन्तिम अथवा अधिमान (Preference) के किमी क्रम के अनुसार उन लक्ष्या को ध्यान में रखकर अन्तर्निमित्त साधना का बाँटना पड़ता। जिन साध्या की मापनिक दृष्टि में स्वस अधिक मत्ता होगा उनमें पूर्ति के लिए अपन उपरच्य साधना का उपयोग पड़ेगा। विभिन्न माध्या अथवा लक्ष्या की पूर्ति के लिए अन्तिम साधना का उपयोग का प्रक्रिया का ही आर्थिक क्रिया कहते हैं और इसके बाद जा प्रेरणा होती है उस आर्थिक चालक शक्ति (Economic motivation) कहते हैं। आर्थिक स्तर पर व्यक्ति का अपन प्रतियोगी लक्ष्या की मापनिक मत्ता (Relative importance) का निगम करना पड़ता है और उनकी तुलना के लिए प्राविधिक उपकरणों का तक-दूग दृष्टि से वितरित करना पड़ता है। आर्थिक क्रिया प्राविधिक क्रिया की भाँति अन्तर्निमित्त रूप से तक-दूग है।

एक व्यक्ति के आर्थिक कार्यों के परिणाम परस्पर कारण और कार्य रूप में सम्बन्धित होते हैं। आर्थिक क्रिया में कर्ता के विभिन्न माध्य या लक्ष्य एक व्यवस्थित रूप में अन्तर्निमित्त होते हैं। यद्यपि उनमें अन्तर्निमित्त सम्भावना होती है किन्तु यथाय म व सम्बन्धों की पारस्परिकता (Reciprocity of relationships) और साधना का परिमितता (Scarcity of means) में शामिल होते हैं।

समाज के अन्तर्निमित्त साध्यों का एकीकरण

ऊपर हमने प्राविधिक और आर्थिक एकीकरण के शीघ्र व अन्तर्निमित्त शक्ति के माध्या के एकीकरण की समस्या पर प्रकाश डाला। व्यक्ति के लिए कबल यही समस्या बड़ी जटिल है। किन्तु समाज में तो बहुत से व्यक्ति होते

हैं और इनमें से प्रत्येक के अनेकानेक साध्य अथवा लक्ष्य हात है। इससे समाज के भीतर विभिन्न प्रकार के लक्ष्यों का एकीकरण की समस्या बहुत गम्भीर और जटिल हो जाती है। 'यक्ति के लक्ष्यों के एकीकरण में उसके स्वयं भावात्मक विचार उस बात का निर्देश करते हैं कि प्रतियोगी लक्ष्यों में किस की सापेक्षिक महत्ता कितनी है। किंतु समाज में प्रतियोगी लक्ष्यों का अधिमान अथवा प्राथमिकता के आधार पर संतुष्टि के लिए चुनते समय ऐसी कोई निर्देशक शक्ति नहीं होती। मानव समाज में समस्त यह सब एक आधारभूत कठिनाई खड़ी रहती है कि वह समुदाय में विभिन्न समस्याओं के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सामित साधनों का वितरण कैसे करे। समाज का काम ऐसा कोई आंतरिक आधार नहीं है। न तो इस का अर्थ व्यक्ति के सम्बन्ध में है और न समाज पर शासन करने वाला कोई समूह। स्वयं भगवान भी इस कार्य का करने में कतराते हैं। किंतु फिर भी प्रत्येक समाज में एक वितरण सम्बन्धी व्यवस्था (Distributive order) पाई जाती है जो समाज के घटक समस्याओं के मस्तिकों के माध्यम से कार्यान्वित होती है। यहाँ यह स्मरण रहे कि समाज के पास अपना कोई मस्तिक नहीं होता। उन समाज मनाशानिकों अथवा समाज शास्त्रियों के विचारों का हम पहले ही त्याग चुके हैं जिन्होंने समाज का अपना मस्तिक अथवा एक सामूहिक इच्छा शक्ति होने का दावा किया था। इतने पर भी यह तो मानना ही पड़गा कि हर समाज में विभिन्न प्रकार के साधनों के एकीकरण की कोई न कोई व्यवस्था अवश्य ही मिलती है भले ही यह एकीकरण समाज के बहुमत समस्याओं के हित में न हो। जैसा कि पूजावादी दशा में। उपरोक्त एकीकरण में अनियमितताएँ होने से ही बड़े और छोटे पमानों का आर्थिक और सामाजिक शोषण होता है।

नीचे के पराग्राहों में हम सामाजिक साधनों के एकीकरण के तीन विभिन्न स्तरों अर्थात् आर्थिक, राजनतिक और नतिक प्रक्रिया का मक्षेप में विश्लेषण करेंगे।

साधनों का प्राथमिक आर्थिक एकीकरण

यदि भिन्न भिन्न व्यक्ति अपने आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए हमारे व्यक्तियों का साधन रूप में प्रयोग करने लगे और शक्ति और धाखाधनी का प्रयोग करे तो वस्तुओं अथवा साधनों का एक व्यवस्थित वितरण सम्भव नहीं है। इस स्थिति से सामाजिक अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हो सकती है। कोई भी समाज अपने समस्याओं को अपने आर्थिक साधनों की पूर्ति के लिए गलाकाट प्रतियोगिता करने की छूट नहीं दे सकता। जंगल का प्रयोग राजन के लिए आर्थिक वस्तुओं का विनिमय कुछ नियमों के अधीन होता है। विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अधिकांश साधन वस्तुओं और भवनों के प्रतियोगी विनिमय के माध्यम में वितरित हाते हैं किंतु इन विनिमय पर सब ही नियमों और शर्तों का एक व्यवस्था का गमन करना रहता है। यहाँ

पर यह प्रश्न उठ सकता है कि आर्थिक व्यवस्था को समयित एवं शासित करने के लिए ऊपर जिन नियमों का उल्लेख किया गया उनका क्या स्रोत है? उन नियमों का कौन लागू करता है? और उसे एमा करने का क्या अधिकार है? इन प्रश्नों के उत्तर के लिए हम समाज के राजनतिक और नैतिक स्तर की ओर जाना होगा क्योंकि इन प्रश्नों का उत्तर आर्थिक व्यवस्था के मन्दम म नहीं दिया जा सकता।

साध्यों का राजनतिक-बधानिक एकीकरण

आर्थिक क्षेत्र में विभिन्न वर्गों की प्रतियोगी निपाट्टा का नियमन राज-नैतिक अतिकरण (Authorities) द्वारा होता है। यह समाज द्वारा परिभाषित म्चिनिया पर रहने और उनमें उपयुक्त कार्य करने की स्वतन्त्रता हानी है। इन अधिकरणों का अपने अधिकारों के प्रयोग में या ना बल प्रयोग का शूट होना है अथवा य उम अधिकारों को हथिया लने हैं और अन्य बल में बनी बनाकर प्रचार और विचारों को अभिव्यक्ति पर नियंत्रण करके समुदाय अथवा समाज के विभागाओं का राजनतिक नियमों को मानने पर विवग कर देते हैं। किन्तु जब तक इस प्रकार के नियमों का पालन कराने के लिये शान्तिमय अथवा बलप्रयोग के साधनों का उपयोग राजनतिक मत्ता समाज के हित में करनी रहती है तब तक वह अपनी अधिकार सीमा के भीतर है लेकिन जब राजनतिक नियमों, कानूनों और विशेषाधिकारों का उपभाग राजनतिक और अधिकारियों के स्वाधपूण साध्यों की पूर्ण के लिये होना है तो अष्टाचार भाई भनीजावाण अनाचार और कपट का बालजाला हा जाना है और साधारणतया राजनतिक अपराध होने लगते हैं। प्रत्येक समाज में और प्रत्येक काल में राजनतिक सत्ता को बलपूर्वक धीमे धीमे युद्ध और जानि तथा प्रतिशान्ति (Counter revolution) की घटनाएँ होती रहती हैं। जिन किमी व्यक्ति अथवा समूह के पास शक्ति के एकाधिकार पर नियंत्रण होना है वही समाज पर शासन करता है और साधारणतया राज्य का प्रमुख होता है। विभिन्न समूहों अथवा मस्हनिया या अन्य विविध तत्वा के कारण विजातीयतुक्त युक्त समुदाय (Heterogeneous Community) स्वयं नियमों का परिपालन नहीं करा सकती क्योंकि सम विभी भी एक समूह के पास प्रयत्न शक्ति ता हो सकती है किन्तु शक्ति का समाधिकार होना अमम्भन है। इतनीय एउ समुदाय में समाज के जीवन के अनुगामन के लिये एक राजनीतिक सत्ता की आवश्यकता होती है जिसे सरकार कहते हैं। सरकारें अथवा शासन कई प्रकार के होते हैं और य अपने अपने टग में समाज के घटक सदस्यों के लक्ष्यों में एकीकरण करने के विधि विधानों का पालन कराना हैं।

एक समाज के सत्स्य नियमों का पालन बवल कानून के भय में नहीं करण। उनका जीवन को समाज के अनक लोसाचार और म्चियों (Folkways and mores) मस्चार यन प्रभाविता करते हैं और चू कि य समाज के सदस्यों की आदत अथवा स्वभाव का एक भाग बन जाते हैं उनकी भावनाओं और मवेगा में इनकी जड़ें गन्नाई

तक पहुँच जाती है इंग्लिय नियमा और कानूना का उत्तम उह अस्वाभाविक लगता है । राजनतिक सत्ता की धारणा भी उनकी भावनात्मक हाती है और उसक अणेश का पातन व इसलिय करते हैं कि राज्य की प्रतिष्ठा मोर समादर करना वे अपना कर्तव्य समझते हैं । स्वयं राजनतिक अधिकरण जनसमूह के साकाचारो और रुडिया के प्रति गहन गवावा व कारण अपन काया म उनमे निर्देशित होने रहत है । विभिन्न राजनीतिक मस्थाप्रा मने देश का मविधान, को नागरिक प्रतिष्ठा और आदर की दृष्टि से दखन है । इसका तात्पर्य यह है कि जनसाधारण के लिय जो मस्थायें एक मूल्यता (Value) के समान ह उन मस्थाप्रा व निर्देशा के अन्तगत काय करना उह स्वाभाविक और प्रतिष्ठापूण लगता है । इससे यह कदापि न समझ जाय कि जहा कुछ नागरिक प्रगतिशीलता के नाम पर विद्यमान राजनतिक सत्ता का निराध करने है अथवा उसकी नीतियो और कायक्रमा के विरोध म आवाज उठाते है वे ऐसा किसी वाछनीय मूल्यता की प्राप्ति के लिय नहीं करत । प्रत्येक आधुनिक राष्ट्र म शासक दल के निराधी दल हाते ह जो शान्तिपूण और बधानिक ढगा सं और कभी कभी हिंसात्मक शक्ति के द्वारा भी समाजहित म शासन का तस्ता उलट देने हैं । जनतन्त्रीय देशा मे इस प्रकार की शक्तिया और शासन के बदलन का घटनाय बहुत साधारण बात हो गइ है । इससे स्पष्ट हुआ कि राजनतिक-बधानिक म्ग पर केवल ऐसी ही क्रियायें त्नी होती जो परम्परा और रुडि की अनुगामी हा परन्तु ऐसी क्रियाया को भी ममान का अनुमानन प्राप्त होना है भन्ने ही देर स जा परम्परा स विचलित होती है ।

समाज मे साध्यो का धार्मिक नतिक एकीकरण

ऊपर हमने समाज व मन्स्या के आर्थिक और राजनतिक साध्या का जा प्रनियागी होने हैं विवेचन किया । इनके अतिरिक्त मनुष्या के कुछ अर्थ सामान्य साध्या (Common ends) भी होत है जिनका प्राप्त करने म साधारणतया पूर्वोलिखित प्रनियोगिता नहीं होती । विभिन्न स्थितिया म रहन और काम करने वाल व्यक्तिया म त्रिण भिन्न भिन्न स्थितिया म सही (Right) और अच्छे (Good) तरीके से काम करने की अपक्षा की जाती है कयाकि सामाजिक कल्याण मे स्थिरता और बद्धि के लिए क्रिया के यही सही और अच्छे ढग आवश्यक माने जाते है ।

इसी प्रकार समाज के समुचित सगठन और सचालन के लिए कुछ विचारा और आशों का अनुगमन आवश्यक माना जाता है । बहुधा य विचार अथवा आश यहन स्पष्ट नहीं होत किन्तु इतिहास इस बात का साधी है कि उनके लिए समाजा न हर सम्भव त्याग और बन्दिता किया है । इन आशों की अवहेलना अथवा अना दर करने वाले व्यक्तिया अथवा समूहो का दण्ड दिया जाता है जिसम दण निष्कासन भी सम्मिलित है ।

अतएव इन आदर्शों का ही नैतिक साध्य (Moral ends) कहते हैं। और जैसा पहले कहा जा चुका है इनकी प्राप्ति में मनुष्यों को प्रतियोगिता करने की छूट नहीं है। वे समूह का सामाजिक सम्पत्ति हैं। उनका समादर और प्रतिष्ठा करना सारे समूह के लिए एक महत्त्वपूर्ण मूल्य है। इन साध्यों के उपर अथवा परे कोई अन्य साध्य नहीं है। अतः समस्त साध्य नैतिक साध्यों के अर्थात् माने जाते हैं। नैतिक साध्यों का सामाजिक चरम साध्य (Common ultimate ends) कहा जाता है और सामाजिकतया ममान के सभी सदस्य इनके प्रति वफादार और जागरूक रहते हैं।

यही वे साध्य हैं जो मानव समाज में समस्त अर्थ प्रकार के साध्यों के एकीकरण की कुंजी हैं। नैतिक साध्य समस्त साध्यों के पद-सोपान (Hierarchy) के शिखर पर होते हैं और इसलिए प्राविधिक आर्थिक व्यवस्था तथा राजनैतिक-व्यवस्था के अन्तर्गत साध्यों का नियंत्रण और नियमन करते हैं। उपरोक्त संक्षिप्त विवरण समाज में धार्मिक-नैतिक साध्यों (Religio moral ends) के एकीकरण का विश्लेषण है।

सामाजिक चरम साध्यों का स्रोत क्या है ?

अब प्रश्न यह उठता है कि ऊपर जिन धार्मिक-नैतिक साध्यों—सामाजिक चरम साध्यों—का उल्लेख किया गया इनका स्रोत क्या है ? इसका वैज्ञानिक और समाज-शास्त्रीय उत्तर देना इतनी सरल बात नहीं है। भूतकाल में मानव सम्बन्धों के व्याख्याताओं ने विभिन्न उत्तर देने का प्रयास किया है। बृहत् न उपरोक्त साध्यों का स्रोत मानव प्रकृति बनाया, बृहत् विचारका न उच्च अतीत से प्राप्त सामाजिक धरोहर (Social Heritage) की सहायता और बृहत् ने उन साध्यों का इश्वर प्रदत्त साध्य कहा किन्तु ये सभी उत्तर असातोपजक और अवैज्ञानिक हैं। इनका सही उत्तर यह है कि विभिन्न समाजों के सभ्यता द्वारा सामाजिक चरम साध्यों अथवा मूल्यनाओं की प्रतिष्ठा सामाजिक विकास की प्रक्रिया में क्रमशः हुई है। सामाजिक आधार पर नैतिक चुनाव की प्रक्रिया का ही ये परिणाम हैं। मानव ने आन्विकाल से प्रकृति के विरुद्ध जा सघप किया और विभिन्न मानव समाजों के बीच जो युगा युगा में सघप हुआ है उसमें केवल वही समूह अस्तित्व में (Survived) रहें हैं और अपनी सभ्यता का धनाय रख सके हैं जिन्होंने अपने सदस्यों द्वारा परम साध्यों को एक व्यवस्था का विकास कर उनका शाश्वत बनाया है। परम साध्यों की स्मरण और शाश्वतता समूह के सहयोग और मुठदना के लिए आवश्यक है और किसी भी सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था में होता है।

स्मरण रह यह धार्मिक नैतिक साध्य वस्तुतः काल्पनिक बातें हैं। वे मदद भविष्य के प्रति अभिमुख रहते हैं और यथायत्न ममान में उपस्थित दशाओं में इनका बर्तन सम्पूर्ण सामाजिक नष्ट हो पाता। किन्तु फिर भी प्रत्येक सुन्दर और स्थायी

समाज इन साध्या को बड़ी मजबूती से कायम रखता है। इनके प्रति गहरी आस्था और विश्वास रखता है। इनका स्रोत समाज का धर्म है। धार्मिक आस्थाएँ इन सामान्य चरम साध्यों की व्याख्या करती हैं और इनका यथायथा प्रगटन करती हैं। धार्मिक संस्कार अथवा कर्म काण्डों से ये साध्य परिपुष्ट होते हैं और समाज के सदस्यों के मस्तिष्का में इन साध्या का संच नवीनीकरण होता रहना है। अर्थात् धार्मिक आस्थाएँ और अभ्यास इन सामान्य चरम साध्यों की समुचितता को प्रतिपादित करते हैं। ये साध्य स्वयं भ्रम तक रहित हात हैं। इनकी प्रतिष्ठा और अनुगमन किसी तक या बौद्धिकता के आधार पर नहीं जाती। इसके विपरीत सामाजिक व्यवस्था के सबसे निचले स्तर अर्थात् आर्थिक प्राथमिक स्तर पर साध्या का अनुगमन अथवा प्राप्ति पूर्ण तांत्रिक आधार पर होती है। इसलिए यह कहना ठीक होगा कि धार्मिक नतिक व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था का दिखरस्थ स्तर है। इसी क्षेत्र में समाज की एकता का स्रोत है और यहाँ समाज के अन्य निचले स्तरों के संचालन और नियमन के लिए जिम्मेदार है।

सामाजिक विभिन्नोत्करण

समाज में व्यक्तियों की विभिन्न भूमिकाएँ हाती हैं। हम दखते हैं कि समाज में व्यक्ति विभिन्न कार्य करते रहते हैं। सभी के कार्य एक से नहीं होते। समाज में इन्हीं कार्यों के तदनु रूप सामाजिक स्थितियाँ होती हैं। इन्हीं सामाजिक स्थितियों के अनुरूप वह भूमिकाएँ करता है। आदिम और जटिल समाजों में आयु, लिंग, परिवार नाम, व्यवसाय आदि के आधार पर व्यक्तियों और समूहों में विभिन्नोत्करण (differentiation) पाते हैं। व्यक्तिगत अथवा समूहगत विभिन्नताओं के आधार पर समुदाय या समाज का विभिन्न प्रकार का समूहों में विभक्त हो जाना की प्रक्रिया को सामाजिक विभिन्नोत्करण (social differentiation) कहते हैं।

प्रयोजन—विभिन्नोत्करण समाज का एक आवश्यक तत्त्व है। प्रत्येक समाज अनेक प्रकार के समूहों में विभक्त है। प्रत्येक समूह का अलग-अलग विभिन्नोत्करण का विकास होना है। सामाजिक विभिन्नोत्करण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तियों और समूहों का सामाजिक विभक्त दर्शाया जाता है। यह विभेद उनके जैविक बान्धुत्व और प्राकृतिक लक्षणाओं के आधार पर आयु, लिंग, प्रजाति तथा सामाजिक स्थिति एवं सामाजिक भूमिकाओं आदि में अंतर को सिद्ध करता है।

परिभाषा—समाज की प्रत्येक मनुष्या (जन्म, परिवार, विद्यालय एवं धर्म आदि) में विभिन्नोत्करण के बन्धन में आधार मिलते हैं। केवल मरने सम्पन्नता में विभिन्नोत्करण आदि विस्तृत नहीं होता। आयु, समूह, लिंग, व्यावसायिक विभिन्नताएँ विभिन्नोत्करण रखने वाले समूह सम्पत्ति, बुद्धि, शारीरिक एवं सामाजिक शक्ति के आधार पर होता है।

प्राकृतिक जटिल समाजों में जनसंख्या का विभिन्नोत्करण बन्धन अधिक होता है। ऐसा धर्म विभाजन की वृद्धि और विभिन्नोत्करण की आवश्यकता के कारण होता है। जटिल समाजों में सामाजिक कार्य-व्यवस्था की विभिन्नताएँ होती हैं। व्यक्ति किसी

एक प्रकार का काय नहीं कर पाता। वह विभिन्न प्रकार का आवश्यकताओं का स्वयं पूर्ति नहीं कर सकता। न तो उनके पास इतनी योग्यता और न इतना समय शेष रहता है कि वह अपनी सभी आवश्यकताओं को स्वयं उत्पादन एवं उपभोग करे। अतएव उसे दूसरे के ऊपर अपनी तमाम ज़रूरतों के लिए निर्भर रहना पड़ता है। कारखाना में छोटे छोटे कार्यों को उस क्षेत्र में विशेष योग्यता प्राप्त व्यक्ति करते हैं। इसका परिणाम होता है—यवसाय, हितो, प्रजातीय तथा सांस्कृतिक समूहों, सम्पत्ति और नाम की विशेषताओं व्यक्तिगत ज्ञान, योग्यता प्राप्त में अत्यधिक वृद्धि। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की सामाजिक संस्थाओं की उत्पत्ति और विभिन्न दृष्टिकोणों का आविर्भाव समाज में होता है।

विभिन्नीकरण से ही श्रम विभाजन का जन्म होता है। श्रम विभाजन के कारण व्यक्ति विभिन्न कार्यों को करने के लिए विभिन्न श्रेणियों में विभक्त हो जाते हैं। इस प्रकार व्यक्तियों को उनके कार्यों तथा प्रतिस्थितियों के आधार पर जाति और वर्गों में विभक्त किया जाता है।

सामाजिक विभिन्नोत्पत्ति के मौलिक कारक

सामाजिक विभिन्नीकरण के विभिन्न मौलिक कारक हैं जो मुख्य निम्न हैं

(१) मानव प्राणियों में व्यापक भिन्नताएँ

‘यक्तियों की शारीरिक बनावटें समान नहीं होती हैं। उनके ऊपर सामाजिक पर्यावरण वशानुसमण इत्यादि का प्रभाव पड़ता है। देश वान की सामाजिक दशाएँ भी उनके अन्दर विभिन्नोत्पत्ति उत्पन्न करती हैं। शरीर का रंग उनकी आवृत्ति वशभूषा आदि में अन्तर हाता है। व्यक्तियों की व्यक्तिगत योग्यताओं में भी अन्तर होता है। कुछ व्यक्ति अधिक योग्य हाते हैं कुछ कम योग्य। यद्यपि योग्यता की विभिन्न कसौटियाँ होती हैं फिर भी हम मानना पड़ेगा कि व्यक्तिगत योग्यताओं में विभेद सामाजिक विभिन्नीकरण का उत्पन्न करते हैं।

समाज के अन्दर विभिन्न प्रकार की सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियाँ हाती हैं और व्यक्ति उनके अनुरूप अपनी भूमिका अदा करता है। विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक समूह जैसे बलव विचार गण्टी, मनोरजन समुदाय, यावसायिक समूह विभिन्न प्रकार के प्रयोजन द्वारा व्यक्तियों में अन्तर उत्पन्न कर लेते हैं। इसमें व्यक्ति अपने रुचि के अनुरूप सांस्कृतिक एवं अन्य समुदायों का चुनाव करता है।

(२) विभिन्न कार्यों की आवश्यकता

विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप कार्य करना व्यक्ति का समान में आवश्यक हाता है। व्यक्ति की आवश्यकताएँ इतनी अधिक होती हैं जिससे वह कबल एक या दो कार्य जिम्मे वह दक्ष होता है स्वयं कर पाता है और शेष के लिए दूसरे पर

नेभर रहने के लिए बाध्य होता है। इसका कारण है व्यक्तियों की विभिन्न योग्यताएँ। इनका कुशलता में भी अंतर होता है। यह भी होता है कि एक कार्य करने के लिए विभिन्न व्यक्तियों की विभिन्न क्षमताएँ होती हैं। बाढ़ व्यक्ति इसी काम का पीछा कर सकता है दूसरे व्यक्ति इसी काम को दर में करने की योग्यता रखते हैं। व्यक्ति का कार्य-रूप में उनकी रूचि बहुत महत्व रखती है। जो रूचिपूर्ण कार्य है उसे व्यक्ति अधिक योग्यता एवं तगाव से करता है। जिस कार्य से व्यक्ति को निराशा उत्पन्न होती है उसे वह अप्रसन्नता से करने में करता है।

शारीरिक सामाजिक शिक्षण समान नहीं होता। उनमें अंतर होता है। इसी कारण वह अपन शिक्षा के अनुरूप सामाजिक कार्य करता है। इसी के अनुरूप वह सामाजिक दर्जा प्राप्त करने की कोशिश करता है। जटिल समाज में व्यक्ति सामाजिक दर्जा प्राप्त करने की अत्यधिक कोशिश करता है। जैसे-जैसे वह महत्वपूर्ण सामाजिक दर्जा प्राप्त करता है वैसे ही वैसे उस पद के निमित्त उसकी जिम्मेदारियाँ बढ़ती ही जाती हैं। साथ ही उसके अधिकार में भी वृद्धि होती जाती है।

(३) सामाजिक सन्तुलन और व्यवस्था की आवश्यकता

किसी भी मानव समूह की सुदृढ़ता के लिए विभिन्नोत्तरण एक अनिवार्य प्रक्रिया है। इसमें सामाजिक कार्य सुचारु रूप में चलते रहते हैं। कार्यों में विशेषीकरण के कारण सामाजिक कार्य योग्यता एवं गति के साथ होना रहता है। व्यक्ति की पारस्परिक निर्भरता के कारण व्यक्ति एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। सामाजिक विभिन्नोत्तरण समूह की संरचना में एक सांख्यिकीय स्थिति है। यह समाज और व्यक्ति के स्वार्थों की पूर्ति के लिए कार्यात्मक रूप से एक मूलभूत आवश्यकता है।

विभिन्न व्यक्तियों अथवा समूहों की पारस्परिक अन्तर्निर्भरता भी विभिन्नोत्तरण पर निर्भर है। अगर अलग अलग व्यक्तियों तथा समूहों की क्रियाएँ अव्यवस्थित और अनसमन्वित हों तो किसी प्रकार भी व्यवस्थित सामाजिक जीवन सम्भव नहीं है। समाज के सन्तुलन का बनाय रखने में विभिन्न विभिन्नोत्तरण समूहों का एक दूसरे पर निर्भर रहना ही महत्वपूर्ण होता है।

विभिन्नोत्तरण के मुख्य रूप

विभिन्नोत्तरण के बहुत से रूप (forms) हैं जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं

(१) जैविक सामाजिक रूप (Bio social forms)

समाज में विभिन्न प्रकार के समूह पाये जाते हैं। इन समूहों में व्यक्तियों के सम्बन्ध एक से भेदा होना यौन-सम्बन्ध विषयक नियम विभिन्न समाजों में भिन्न भिन्न होते हैं। यही कारण है कि यौन-सम्बन्ध में परिवर्तन की धारणा भी बदलती रहती है। एक परिवार में पत्नियाँ और पत्नियों की संख्या में अन्तर मिलता है। कुटुम्ब का एक महत्वपूर्ण कार्य यौन-सम्बन्ध स्थापित और संचालित करना है फिर भी हम

दत्त हैं कि इस विषय पर प्रत्येक समाज की अलग अलग धारणाएँ हैं। लैंगिक आधार पर समाज में विभिन्निकरण इसीलिये पाया जाता है। स्त्री और पुरुष इससे मुख्य रूप हैं। यौन सम्बन्ध से सम्बन्धित सस्याया में इतनी अधिक सांस्कृतिक विविधता है कि उनमें समरूपता कदापि नहीं मिल सकती। स्त्री की शरीर क्रिया सम्बन्धी अनमयनाएँ उस पुरुष के आसरे पर छाड़ देती हैं। पुरुष का स्त्री तथा उसके बच्चा की पारिव्य आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का दायित्व उठाना पड़ता है। परिणामतः पुन्य समाज में स्त्री की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। इसका भी एक प्रमुख कारण है और वह है—स्त्री और पुरुष के जैविक भेद।

समूहों में विभेद विभिन्निकरण का जन्म देते हैं। प्राथमिक समूह, द्वैतीयक समूह दो विभिन्न रूप हैं। बच्चे एक साथ खेलते हैं। युवा बच्चों के साथ धुलमिल नहीं पाते। उनका अलग समूह होना है। इस प्रकार समाज में विभिन्न आयु समूह पाये जाते हैं। ये समूह विभिन्न प्रकार के सामाजिक आचरण के प्रतिमान प्रस्तुत करते हैं। परिवार में बालकों के माता पिता के प्रति, छोटे भाई बहनो के बड़े भाई बहना के प्रति तथा इसी प्रकार पति पत्नी, भाई भाई बहन-बहन, छोटे बड़े सभी में व्यवहार का एक अनुशासन होता है जो किसी भी द्वैतीयक समूह में शायद ही दिखाई पड़ता हो।

समाज में प्रजातीय विभेद पाये जाते हैं। समय समय पर भिन्न भिन्न मानव समूह अथवा समाज विभिन्न प्रजातियों के वर्गों में विभाजित माने जाते रहे हैं। आज सरकारी भाषा के प्रश्न को लेकर उत्तरी तथा दक्षिणी भारतीयों में प्रजातिक भेद का उल्लेख किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि भारतीय जनक प्रजातियाँ वंशज हैं। मानव समूहों में वंशानुगत अंतर होता है। मनुष्य में रक्त समूहों की विभिन्नता पायी जाती है। यद्यपि मानव अंतरों का जननिक अध्ययन अभी तक सम्भव नहीं हो सका है फिर भी खाने का रंग आस का रंग, लम्बाई चौड़ाई, सिर की शक्ति शरीर पर बाल बालों का आकार या बनावट ऊपरी भोह में मोड इत्यादि शारीरिक प्रमाणों का उपयोग करके प्रजातीय समूहों में भेद किया जा सकता है।

(२) सामाजिक सांस्कृतिक रूप (Social Cultural forms)

विभिन्न प्रकार के सामाजिक समूह समाज में विद्यमान हैं। समाज में विभिन्न प्रकार की समितियों का निर्माण होता रहता है। ये विचारपूर्वक एक उद्देश्य या उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये मनुष्यों द्वारा निर्माण की जाती हैं। व्यक्तियों में बहुधा असमानताएँ और भेद देखे जाते हैं। उनकी सामाजिकता में भी अंतर पाया जाता है। कुछ का अधिक समूहों से कुछ का कम समूहों से सम्बन्ध होता है। साधारणतया प्रतिभाशाली व्यक्ति अमीर व्यक्तियों की अपेक्षा समूहों में अधिक धुलमिलकर सम्मिलित होते हैं। व्यावसायिक धार्मिक एवं रुचि समूह (Interest group) विभिन्निकरण का प्रमुख

रूप कह जा सकत है। इन समूहों में विभिन्न प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध पा जात हैं।

धनी निधन व बौध की दूरी सामाजिक समूहों की ही देत है। यद्यपि सभ समूह ने नही उत्पन्न करत फिर भी सामाजिक पर्यावरण के कारण उनके अन्तर्गत सामाजिक दूरी पाई जाती है। धनी लोग का अपना अलग समूह होना है गरीब का अपना अलग। मभवत धनी व्यक्तिया द्वारा चलाये जान वाले कतवा में गरीब व्यक्ति जाने से कतरात हैं। उनके अन्तर्गत एक प्रकार की हीनता आ जाती है जो प्राप्त रहन महन के हीन स्तर साधारण वश भूषा, आर्थिक सकट इत्यादि के कारण आ जाती है।

साधारणतया इसी कारण भारतीय समाज में सबसाधारण अपने समान स्तर वाले परिवार में विवाह सम्बन्ध करने का विचार रखते हैं। विभिन्नोत्करण की प्रक्रिया द्वारा क्रेता विद्वेता, उत्पादन-उपभक्ता, धनी निधन व बौध सब अलग अलग भिन्न भिन्न पाय जात हैं।

जिन समूहों में व्यक्ति रचि रखत हैं उनसे उनका विशेष लगाव होता है विभिन्न व्यक्तियों का सामाजिक सम्मिलन (Social participation) कम या अधिक गहरा हो सकता है। इसी भेद के कारण मनुष्यों के सामाजिक गुणों में भी भेद उत्पन्न हो जाते हैं।

(३) सामाजिक आर्थिक वर्ग के आधार पर विभिन्नोत्करण (Differentiation based on Socio-economic Class)

सामाजिक वर्ग प्रत्येक स निश्चित समूह चेतनायुक्त स्तर ह्यत हैं। सामाजिक वर्ग में एक सामान्य वरतन, समान पेशा सम्पत्ता और जिन्या व द्वारा एक समान जीवन ढंग का विकास पाया जाता है। एक सामाजिक वर्ग सामाजिक प्रवृत्तियों के कारण दूसरे भागों में पृथक् निर्वाह पटना है।

इनके विपरीत आर्थिक वर्ग समुदाय के अनेक वर्ग खण्ड हैं जिनका नियंत्रण किसी गुट आर्थिक प्रभारण द्वारा होता है। पूर्वजावदी समय वर्गों में भी सामाजिक स्तरण में वर्गों का प्रघात महत्व है। प्रत्येक समाज में ऊच्च-नीचे वर्गों का पाय जाना कोई अाश्चर्य की बात नही है। उनमें साधारणतया उत्तम मध्यम और निम्न वर्गों के आधार पर सामाजिक स्तरण अधिक स्पष्ट और व्यावहारिक निर्वाह पडत है। साम्यवादी समाज आश माय विहीन समाज को धार अग्रसर है। यद्यपि पट्टे विभिन्न वर्गों के रत्न-सहज का ढंग मनारजन, पाशाक, भाषा और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों (cultural expressions) पृथक्-पृथक् होनी थी परन्तु आज मुक्त व व्यवस्था में विभिन्न वर्गों में आर्थिक साधना की विभिन्नता के बावजूद एक ही प्रकार की वामभूता मनारजन, और सामाजिक मूल्य हो सकते हैं। फिर भी परम्परागत

व्यवस्था में ऊँचे-नीचे और मध्यम वर्ग होते हैं। यद्यपि परिवर्तनशील समाज में इनके अंदर वर्तमान सामाजिक संबंधों के रूप बदलते रहते हैं।

जिस समाज में व्यक्ति और परिवार की सामाजिक स्थिति का निर्णय उसकी धन सम्पत्ति, शिक्षा अथवा राजनीतिक शक्ति और सत्ता से होने लगता है वही शीघ्र गतिशीलता (vertical mobility) सम्भव ही नहीं अपेक्षितमा बहुत सरल है। शिक्षा सम्पत्ति राजनीतिक शक्ति, व्यक्तियों का जीवन स्तर भी विभिन्न प्रकार के वर्गों में विभेद उत्पन्न करते हैं। कारण यह है कि इनके आधार पर इनके दृष्टिकोण में अंतर हो जाता है।

(४) धार्मिक विभिन्निकरण

धार्मिक विभिन्निकरण भी सामाजिक विभिन्निकरण का एक रूप है। प्रत्येक समाज का धार्मिक विश्वास का स्वरूप और अन्तर्गत बहुधा दूसरे समान के धर्म से भिन्न होता है। विभिन्न धर्मों के विभिन्न धार्मिक प्रतीक होते हैं। धर्माचरण के लिए उपयोगी या सहायक सामग्रियों में भी विभिन्न धर्म में थोड़ी या बहुत असमानता होती है यद्यपि सारी वर्तमान संस्थाएँ नीतियों की स्थापना अलौकिक शक्तियों की महानता और हितकारिता के आधार पर करती हैं। फिर भी उनके धर्म गुरुओं में अंतर पाया जाता है। एक धर्म में भी विभिन्निकरण का प्रक्रिया जारी रहता है। उदाहरण स्वरूप हिन्दू धर्म में तमाम प्रकार के सम्प्रदाय दिखाई पड़ते हैं। धार्मिक संस्थाएँ इन इन धार्मिक समितियों का रूप धारण करती हैं। प्रारम्भ में ये समितियाँ धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं से मिली हुई थीं। धीरे-धीरे धर्म अथवा सामाजिक व्यवस्थाओं से अलग हो गया। अब धर्म एक व्यक्तिगत विश्वास की वस्तु हो गई है।

(५) ग्रामीण नगरीय विभिन्निकरण

यद्यपि नगर और ग्राम में स्पष्ट अंतर की रेखा खींचना कठिन है तथापि ग्रामीण एवं नगरवासियों में समुदायों में व्यवसाय रहत-सहन, विचारों, रीतिरिवाजों, वैश्वभूषण सामाजिक मनोविज्ञान मूल्यों एवं रंगों के आधार पर भेद होता है। सामाजिक स्तरण ग्रामों में बश परम्परागत अधिक पाया जाता है। नगरों में सामाजिक स्तरण बशपरम्परागत अधिक नहीं होता। नगरों में अत्यधिक वर्ग पाए जाते हैं। ग्रामों में सामाजिक गतिशीलता नगरों की तुलना में बहुत कम पाई जाती है। ग्रामीण समुदायों में सामाजिक विभिन्निकरण की प्रक्रिया उतनी जटिल नहीं होती जितनी कि नगरों में पायी जाती है। ग्रामों में कार्यों का विशेषीकरण जटिल नहीं होता है। कहा जाता है कि ग्रामीण समुदाय एक घड़े में शांत जल के समान है और नगरीय समुदाय पतली में उबलते हुए पानी के समान है।

(६) विभेदीकरण के अर्थ रूप

विभिन्न रुचियाँ व कारण विभिन्न समुदायों का निर्माण होता है। समाज में विभिन्न प्रकार के विषयों का अध्यापन शिक्षा संस्थाओं में होता है। इन्हीं विशेषीकरणों के कारण विशेषीकरण का बटावा मिलता है। समाज में विभिन्न प्रकार के राजनैतिक दलों का प्रादुर्भाव होता है। ये राजनैतिक दल विभिन्न उद्देश्यों को पूर्ण व लिए बनाये जाते हैं। राज्य के संतुलित दल का जनहित में कार्य करने के उद्देश्य से भी राजनैतिक दलों का निर्माण होता है। ये जनता के राजनैतिक और कुछ हद तक सामाजिक शिक्षण में योग देते हैं।

सामाजिक विभिन्नीकरण के सामाजिक लाभ

वास्तव में प्रत्येक समाज में विभिन्नीकरण कुछ न कुछ हद तक पाया ही जाता है क्योंकि इससे समाज को बल प्राप्त होता है। यदि विभिन्नीकरण न हो तो वह समाज विभिन्नीकृत समाज के लाभों से वंचित रह जावेगा। अतएव सामाजिक विभिन्नीकरण निम्नलिखित लाभ प्रदान करता है—

(१) श्रमविभाजन एवं कार्यों के विशेषीकरण से होने वाले कार्यात्मक लाभ

मनुष्य को अपनी योग्यता के अनुसार समाज में स्थान मिल जाना है। सामाजिक विभिन्नीकरण श्रम विभाजन के रूप में जितना अधिक विकसित और कामशील होगा उतना ही समाज में सन्तुष्ट अर्थों का अधिक अच्छे ढंग में करेगा और जितना ही उच्च स्तर प्राप्त होगा। श्रम विभाजन में ऐसे कठिन और जटिल कार्य भी पूरे जा सकते हैं जो व्यक्तिगत रूप से पूरे नहीं जा सकते। श्रम विभाजन में व्यक्तियों का अन्दर निपुणता एवं योग्यता की वृद्धि होती है। सामाजिक कार्य-कलाप सुचारु रूप से चलते रहते हैं।

(२) सामाजिक व्यवस्था में स्थाननिर्धारण

विभिन्नीकरण से यह बात सम्भव होती है कि असमान योग्यताओं के व्यक्तियों और शक्तियों को समाज में स्थान प्राप्त हो सके जिसके द्वारा सामाजिक कार्य व्यवस्थित रूप से होते रहें। विभिन्नीकरण प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक व्यवस्था में सुरक्षा तथा उसके स्थान की एक आवश्यक प्रक्रिया व दशा है। प्रत्येक मनुष्य समाज का क्या दान है और उमंग क्या प्राप्त करना है इस बात का अनुचित शर्मा प्रक्रिया में होता है। इस प्रकार श्रेष्ठ योग्यता तथा निम्न योग्यता वाले व्यक्ति साधनायक रह कर कार्य कर सकते हैं क्योंकि समाज में विशेषीकृत विभिन्नीकरण विद्यमान है। समाज में योग्यता एवं परिश्रम द्वारा व्यक्ति सामाजिक श्रेणियों का प्राप्त कर सकता है। जटिल समाज में उपयुक्त जाति व्यक्ति को उन्नति में इतनी बाधा नहीं पड़ती जितनी कि ग्रामीण में। वहाँ पर जाति एवं प्रमुख बाधा है।

(३) सामाजिक एकीकरण (integration) तथा सुदृढता (solidarity) का प्राविधान

विभिन्नकरण बहुधा सभावित तथा वास्तविक विरोध तथा अलग-अलग को जन्म देता है क्योंकि यह 'यक्तिया का एक दूसरे से अलग कर देता है और उनको गुणात्मक आधार पर श्रेणियों में बांट देता है। दूसरी ओर विभिन्नकरण सामाजिक व्यवस्था और एकीकरण स्थापित करने में सहायक होता है। विभिन्नकरण विभिन्न व्यक्तियों की श्रेणियों में एकीकरण स्थापित करने के लिए मुख्य कारण है क्योंकि विभिन्नकरण की प्रक्रिया में ही व्यक्ति बिना एक दूसरे के सघन में गाय हुए सामाजिक कार्यों को करते रहते हैं। इससे सामाजिक सुदृढता स्थापित होती है। जटिल समाजों में यद्यपि विशेषीकृत कार्यों एवं श्रम विभाजन के कारण विभिन्नता दिखाई पड़ती है, यक्तियों के आपस के सम्बन्ध विजातीय होते हैं तथापि 'यक्ति एवं समूहों की परस्पर निर्भरता के कारण उनमें सुदृढता देखी जाती है। यही कारण है कि सामाजिक विभिन्नकरण द्वारा सामाजिक सम्बन्ध ठास होते हैं।

सामाजिक समूह

मनुष्य का जीवन कभी अकेले नहीं बीतता है। वह हमेशा मनुष्यों के साथ रहता है जिनके साथ उनके संपर्क (contacts) विकसित हो जाते हैं। इन संपर्कों का उसका जीवन में बहुत महत्व है। ये संपर्क अनेक रूपों में प्रकट होते हैं। विभिन्न प्रकार के समूहों से ही सामाजिक संरचना का चट्टिल प्रतिमान बचता है। आइए हम इन समूहों के विभिन्न प्रकारों का विश्लेषण करें। पहले हम प्राथमिक (Primary) तथा द्वितीयक (Secondary) समूहों की साधारण विशेषताएँ बताएँगे। तत्पश्चात् सामाजिक समूहों के कुछ प्रमुख प्रकारों—जैसे परिवार समुदाय, जाति और वाणिज्यिक एवं श्रम समूह आस्थायी समूह (भीड़ जनता) और तथा—का विश्लेषण करेंगे। अध्याय १६ में विभिन्न समूहों के विकसित होने की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया—सामाजिक विभिन्निकरण का नैदानिक विवरण किया गया था।

समूह में मनुष्य का जीवन

मनुष्य सदैव से एक सामाजिक प्राणी रहा है। उसका जीवन किमी न किमी प्रकार के समूहों में ही प्रारम्भ होता है। समूह समाज की इकाई है। मनुष्य समूहों में ही रहना क्या पसंद करता है इसका कारण उसकी आवश्यकताएँ और आत्माएँ हैं। मनुष्य के समूहों में रहने की प्रवृत्ति या व्यवहारिता का आधार बार्ड सहजामी मूल प्रवृत्ति नहीं है। इसलिए यह कहना कि मनुष्य में दूसरे लोगों के साथ या समूहों में रहने का बार्ड मूल जन्मजात प्रवृत्ति है निरासन्न गलत धारणा है। मनुष्य में बार्ड ऐसा आन्तरिक चार्ज नहीं होता जो उसे दूसरे व्यक्तियों के साथ टूटने के लिए प्रेरित करे। नवजात शिशु को माँ की अपेक्षा नम या दायाँ की भी साथ स्वीकारना पड़ता है। वास्तव में, मनुष्य का बचपन में लेकर बचपन तक दूसरे लोगों के साथ ही मनुष्य इसलिए इतना पठना है कि उसकी साधारण आवश्यकताएँ बाहर उनके समूहों से सहयोग से पूरी नहीं हो सकतीं। हमारे मनुष्य के शिशु का अपना जीवन बनाए रखने

के लिये माता पिता पर निर्भर रहना ही पड़ता है। उसकी दूसरी आवश्यकताओं भी अत्यन्त यत्नपूर्वक महामोग और सहानुभूति से ही सन्तुष्ट होता है। यही प्राथमिक कारण है कि व्यक्ति में जन्म से ही दूसरे मनुष्या पर निर्भर रहने की भावना उत्पन्न हो जाती है। यह भावना ही सामूहिक जीवन के लिये प्राथमिक आधार है। व्यक्ति में मनुष्य के रहने की प्रवृत्ति का विकास साथे साथ व्यवहार और श्रद्धा से होता है। उसमें प्रत्येक मानवोचित गुणों का विकास इस प्रवृत्ति के विकास के साथ होता है। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता है उस बड़े तथ्य की भावना में समझ आता है कि जीवन में अधिक आनन्द समूहों में ही रहने पर सम्भव है। उसको साथी पाने खलने, तथा अपनी अत्यन्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भाइयों सहित मित्रों और साथ के खिलाड़ियों का संसर्ग बड़ा सुखदायक लगता है। उसे श्रमकेलापन प्रथम अपने साथियों से दूर रहना बड़ा कष्टप्रद अनुभव होता है।

व्यक्तिगत भेद

व्यक्तियों में जो असमानताएँ और भेद दीखते हैं उसके दो कारण होते हैं। पहला कारण उनकी पत्रिकता में भेद है। दूसरा कारण उनकी सामाजिकता में भिन्नता है। भिन्न भिन्न व्यक्तियों में सामाजिकता के भिन्न भिन्न अंश ब्याप्त होने हैं? कुछ का सम्बन्ध अधिक समूहों से होता है और कुछ का कम से। उनमें से कुछ सामूहिक जीवन में अधिक भाग लेते हैं। साधारणतया प्रतिभाशाली व्यक्ति औसत व्यक्तियों की अपेक्षा समूहों में अधिक छुलमिल कर सम्मिलित होते हैं। सक्षम में विभिन्न व्यक्तियों का सामाजिक सम्मिलन कम या अधिक गहन हो सकता है। इसी भेद के कारण मनुष्यों के सामाजिक गुणों में भेद उत्पन्न हो जाता है।

सामूहिक जीवन में सम्मिलन

सामूहिक जीवन में सम्मिलन का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध व्यक्तित्व के लक्षणों से होता है। जो व्यक्ति सामूहिक जीवन में बड़ा सक्रिय रहता है उसके व्यक्तित्व में बाह्यपरावतन के लक्षण आ जाते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति अन्तःपरावतन करता है, आलोचना से घबड़ाता है और विफलता से डरता है वह लोग सामाजिक जीवन से दूर रहने की कोशिश करता है। ऐसा व्यक्ति समाज में गहरे सम्मिलन के अयोग्य होता है। उसका व्यक्तित्व में अन्तःपरावतन के लक्षण आ जाते हैं। बने ता मनुष्यों का बाह्य परावतन तथा अन्तःपरावतन की दो पृथक श्रेणियों में विभाजित करना अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन यह स्मरण रखना चाहिये कि समाज में उपरोक्त परावतन के विभिन्न अंश व्यक्तियों की सामाजिकता के अंशों पर आश्रित होते हैं।

मनुष्यों के कार्यों पर सामूहिक प्रभाव

समूह का व्यक्ति के कार्यों पर बड़ा महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिक अध्ययन और परीक्षणों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य में अधिक सफल जीवन

विज्ञान की याग्यता समूह में ही विकसित होती है। अज्ञान रहने पर समाज के भौतिक और सामाजिक परावरण की विपरीतता से वह सफल समायोजन करने में कदापि उतना समर्थ नहीं हो सकता जितना सामूहिक जीवन वितान हुआ करता है। मनुष्य की मजबूत बड़ी विशेषता—सोचने की क्षमता का समुचित विकास समूह में ही हो सकता है। समूह में रहने पर उसे अपने पूर्वजों का संपूर्ण परीक्षण अनुभव विरासत में प्राप्त होता है। उस विरासत (मस्तिष्क) में सम्पन्न मनुष्य मजबूत अधिक चतुर समस्या समाधान करने वाला प्राणी है। यह कहना अनिर्णयित नहीं होगा कि समूह में रहकर के व्यक्ति जितने अधिक सरल और कठिन स्थितियों का मुकाबला करना सीख लेता है वही उसके व्यक्तित्व में बौद्धिक और नैतिक गुणों का विकसित करता है।

ज्या-ज्या मानव जनसंख्या का आकार बढ़ता गया त्यों-त्यों मनुष्य के दूसरे मनुष्यों तथा अपने धर्म-मांस का परिस्थिति से सम्बन्ध जटिलतर होना शुरू हुआ। इस स्थिति में समूहों के कार्यों का महत्व भी बढ़ता गया। नए-नए विशेषीकृत-समूहों की स्थापना हुई और मनुष्यों की विशेष योग्यताएँ विभिन्न पेशाओं और व्यवसायों के विकास में प्रकट होना लगीं। बड़ी हुई जनसंख्या की अनेक आवश्यकताओं में निरंतर वृद्धि होना लगा जिसका परिणाम नये और जटिलतर सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण और अधिक कार्यात्मक भेदकरण अनिवार्य हो गया। अधिक विशेषीकरण की इस वृद्धि में उत्पादन की कुशलता में वृद्धि की जिसमें जनसंख्या की निवारक आवश्यकताओं का अधिक सरलता और प्रचुरता से अनुकूल करना सम्भव हुआ। इससे जनसंख्या के कुछ व्यक्तियों को अधिक-अधिक अवकाश मिलने लगा जिसका उपयोग स्वाभाविकतया मनोरंजन, कला तथा विज्ञान के क्षेत्रों में वृद्धि के लिये हुआ। इस दशा में पुनः समूहों के विघटित होना के आचार पर अतिक्रमण आवश्यक हो गया। विभिन्न प्रकार के समूहों की उत्पत्ति और विनाश का संक्षेप में यही कारण है। आधुनिक युग में मनुष्य का जीवन अनेक प्रकार के छोटे-बड़े, स्थायी अस्थायी और प्राथमिक और माध्यमिक समूहों में बीतता है। मनुष्य के सामाजिक जीवन के आधारभूत सिद्धान्तों की जानकारी के लिये हमें समूहों के प्रमुख प्रकारों उनके वर्गीकरण के आधारों तथा व्यक्ति के जीवन पर उनके प्रभाव का विश्लेषण करना आवश्यक है।

सामाजिक समूहों की प्रकृति

सामाजिक समूहों की परिभाषा

“सामाजिक समूह दो या अधिक व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिनमें एक-दूसरे के साथ संचार होता रहा है और जो एक सामाजिक कार्य या प्रयोजन के

अनुसार काय करते हैं।¹ "एक सामाजिक समूह दो या अधिक व्यक्तियों की एक ऐसी सस्था का कहत ह जिनका ध्यान कुछ सामाय उद्देश्या पर हो और जो एक दूसरे को प्रेरणा दें जिनम भक्ति हो और जो सामाय नियामा मे सम्मिलित हा।' बोगार्डस को उपरोक्त परिभाषा पूरा और स्पष्ट है। मकाइवर और पज ने भी इससे मिलती जुलती परिभाषा दी है समूह ऐसे मनुष्या का एक सग्रह है जिनम एक दूसरे के बीच सामाजिक सम्बन्ध बन गम है।

समूह के लक्षण

आगे सामाजिक सम्बन्ध की व्याख्या करते हुये व लिखत हैं कि सामाजिक सम्बन्ध म सम्बन्धित व्यक्तियों के बीच पारस्परिकता का कुछ अंश और उनम पारस्परिक प्रतीति की कुछ मात्रा जो समूह के सदस्या के दृष्टिकोण म दीवती है होनी चाहिये अर्थात् सामाजिक समूह के दो लक्षण हैं (१) कुछ सस्थागत प्रबन्ध जो एक समूह का दूसरे से पृथक् कर और (२) सामाय दृष्टिकोण और हित²।

गिलिन और गिलिन ने सामाजिक समूह के मन्भूत लक्षणो का विश्लेषण करत हुये लिखा है कि सामाजिक समूह का आधारभूत लक्षण है दो या अधिक 'य' त्तियों में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्पर्क होना। सम्पर्क का समाजशास्त्रीय अर्थ यह है कि या ता व एक दूसरे का उत्तेजित कर सकें अथवा एक दूसरे व उत्तेजना क प्रति साथक रूप स उत्तरशील हो सकें अथवा एक सामाय उत्तेजक का अथपूरण उत्तर देने की स्थिति में हा। सामाजिक सम्पर्क स 'य'क्तियों में सामाजिक अत क्रिया प्रारम्भ होती है जिसक परिणामस्वरूप उनमें किसी न किसी प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने हैं। सम्पर्क में जो साथक अनुक्रियाए होती हैं उनके लिय व्यक्तियों में कुछ समान भूतकालीन अनुभव अथवा शिक्षा का होना आवश्यक है। दूसरे पक्ष में ऐसे व्यक्तियों में सामाय जानकारिया व आधार पर एकता का होना आवश्यक है तभी ता उनमें सामाय हित हा सकत है। इसलिय सामाजिक समूह की उत्पत्ति के लिय एक ऐसी स्थिति का होना आवश्यक है जिसमें सम्बद्ध व्यक्तियों में अथपूरण अत उत्तेजना और अथपूरण प्रत्युत्तर सम्भव हो सकें तथा जिनमें उन सबका सामाय उत्ते

1 The social group may be defined as two or more persons who are in communication over in appreciable period or time and who act in accordance with a common function or purpose. Eldredge & Merrill *Culture and Society* Prentice Hall Inc. New York (1955) p 10

2 A social group may be thought of as a number of persons two or more who have some common objects of attention who are stimulating to each other who have a common loyalty and participate in similar activities. F. S. Bogardus *op cit* p 6

3 MacIver and Page *Society* Macmillan London (1930) pp 213 14

जको अथवा हिना पर ध्यान टिका रह और उनमें समान चालका प्रेरणा, और सबको का विकास हा सके ।¹

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि समूह की रचना मूलभूत रूप से मनो वनानिय स्तर पर हानी है । समूह व्यक्तिया का एक भुड मात्र नहीं है । वह तो मनावनातिक सूत्रा स बंध हुय व्यक्तिया की एक मूत सरचना है । समूह क सदस्या के व्यवहारा क पीछे चेतन अथवा अचेतन एकता रहती है । यह एकता समूह के हिता अथवा उद्देश्या की एकता पर आश्रित हानी है । इन एकता के अभाव में व्यक्तिया में भौतिक समीपता हात हुय भी वे एक समूह नहीं बन सक्ते अधिक से अधिक उनके सग्रह को एक साम्यकीय सग्रह कहा जा सकता है ।

एडवड संपिर ने लिखा है कि किसी समूह का निमाण इस तथ्य पर आधा रित है कि समूह के सदस्या को काई न काई हित या स्वाय परस्पर बाधे हैं ।²

अत सामाजिक समूह के निम्नलिखित आवश्यक तत्व हा सकते हैं—

(अ) दा या दो से अधिक व्यक्ति,

(आ) उनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पर्क,

(इ) उन सबके व्यवहारा और क्रियाया के पीछे सामाय हिता, उद्देश्या और दृष्टिकोणा की समानता ।

समूह क सदस्य कम से कम दो और अधिक स अधिक अनिश्चित संख्या में हा सकते हैं । अथा समूह का आकार निश्चित नहीं है । समूह क सदस्या में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पर्क हाना है । भौतिक समीपता आवश्यक नहीं है । इन व्यक्तिया में पनव्यवहार, टीनीफोन तारअथवा अय किसी प्रकार के पारस्परिक परिधय और विचारा अथवा भावनाया का आदान प्रदान हाना है उन्हें भी एक समूह का कहा जायगा । उनसे व्यवहारा और क्रियाया के पीछे सामाय हित उद्देश्य या दृष्टिकाण रहत हैं जिमस एक समूह दूसर समूह से पृथक् एक इकाई बन जाता है जिममें एकता का मूनाधिक अण हाना है ।

समूहो का वर्गीकरण

समूहा क प्रकारा का वर्गीकरण कई प्रमाणा क आधार पर किया गया है ।

जमन समाजशास्त्री विमल न आधार क आधार पर तथा अय छोट और बड़े-बड़े

1 A social group thus grows out of and requires a situation which permits meaningful interstimulation and meaningful response between the individuals involved common focusing of attention on common stimuli and or interests and the development of certain common drives motivations or emotions Gillin & Gillin *Cultural Sociology* Macmillan Company New York (1949) p 106

2 Edward S pit *Groups in Encyclopaedia of Social Sciences* Vol - Macmillan Company New York (193) p 19

समूहों का वर्गीकरण किया है। वीज और बेकर ने सिमल के वर्गीकरण को और अधिक नियमित रूप दिया। टानीज ने सामाजिक अन्त क्रिया के गुण के आधार पर गेमीन-पापट और गेसेलशापट दो प्रकार के समूह बताए। पारम्परिक, आमने-सामा और घनिष्ठ समूह जस परिवार और गाँव पहले प्रकार के और मुक्त, दानुबधिक तथा अव्यक्त समूह जैसे नगर दूसरे प्रकार के समूह के उदाहरण हैं। मैक्स वबर ने विटशापट और गेसेलशापट दो प्रकार के समूह बताए। साथ ही उसने कई स्थानों पर प्राथमिक समूहों, माध्यमिक समूहों और समितियों का वर्णन भी किया है। उसके अनुसार प्राथमिक समूह एक ऐसा सामाजिक सम्बन्ध है जो एक होने की विषयात्मक भावना, निर्मित या पारम्परिक पर आश्रित है। माध्यमिक समूह एक ऐसा सामाजिक सम्बन्ध है जो हितों के तकयुक्त प्रेरित सतुलन या सशान पर आश्रित है तथा समिति एक ऐसा सम्बन्ध है जिसमें व्यवस्था एक नेता और प्रशासकीय कर्मचारी के बीच क्रियाओं से बनाई रखी जाती है। इस प्रकार सिमल की अपेक्षा वबर सामाजिक सम्बन्धों के आर्थिक, धार्मिक और राजनतिक आदि भूत रूपों पर अधिक बल देता है।

लावी और मलिनावस्की तथा आदिम समाजों में दायु लिंग, जादू तथा अन्य लक्षणों के आधार पर समूहों का वर्गीकरण किया है। मोनियर ने समस्त समूहों को तीन विशाल श्रेणियों में विभाजित किया है जिनका प्रधान लक्षण रधिर-सम्बन्ध, स्थान और क्रिया का माना है। अमरीकी समाजशास्त्रियाँ जस वाड और गिडिंग्स ने दो प्रकार के समूह—स्वच्छिन्न और अनिवाय—बताये हैं। परिवार तथा राज्य अनिवाय समूह बड़े जा सकते हैं जिनका सदस्य प्रत्येक व्यक्ति को बनना ही पड़ता है। इच्छा होने पर भी कोई मनुष्य उनसे अपना सम्बन्ध नहीं तोड़ सकता। अन्य सभी प्रकार के छोटे बड़े समूहों की सन्स्थिता मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है। गिडिंग्स ने प्राथमिक समूहों के कार्य पर काई ध्यान नहीं दिया किन्तु संयोग या घटना से बने समूहों के अध्ययन पर उसने विशेष जोर दिया। ऐडवाड रास ने समूहों को तीन वर्गों में विभाजित किया है—स्थायी समूह, समानता समूह और हित समूह। चार्ल्स ब्रूने ने प्राथमिक समूहों की इतनी स्पष्ट धारणा विकसित की है कि आज सबके समाजशास्त्र में इन समूहों का विशेष महत्त्व पर्याप्त रूप से समझा जाता है। यद्यपि उसने द्वितीयक समूहों अथवा आधुनिक युग के अव्यक्तिक सम्बन्धों तथा विशेष हितों पर बने स्वच्छिन्न गणों का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है फिर भी उसकी रचनाओं से स्पष्ट संकेत मिलता है कि वह इस प्रकार के समूहों के अस्तित्व को जानता था।

इसी प्रकार अन्य समाजशास्त्रियों ने सामाजिक समूहों के वर्गीकरण का आधार आकार, समूह हित का कोई गुण, सगठन का अंश, शारीरिक विशेषताएँ, प्रादेशिक एकाग्रता आदि प्रमाणों का माना है।

यूबैक ने १९३२ ई० तक प्रचलित सभी वर्गीकरणों का सक्षिप्त विवरण दिया है।^१ (१) जातिगत अथवा प्रजातिक विशेषताओं के आधार पर वन समूह, (२) साधारण सामाजिक वर्गीकरण जैसे परिवार, भाषा-समूह स्थानिक और प्रादेशिक समुदाय (३) सांस्कृतिक स्तर पर आधारित कम अथवा अधिक संस्कृत समूह, (४) संरचना पर आधारित वर्गीकरण जैसे शीप समूह और क्षत्रिय समूह (५) कार्य पर आधारित वर्गीकरण जैसे राजनयिक समूह व्यापारिक समूह सेवा समूह दलगत समूह तथा वग समूह, (६) सामाजिक सम्पर्क के आधार पर समनर का वर्गीकरण जैसे हम-समूह अथवा अन्त समूह और वे-समूह अथवा बाह्य-समूह। प्राथमिक और द्वितीयक समूह या अस्थायी और अपेक्षितया स्थायी समूह (७) समूह का वाधन वाले सूत्र की प्रकृति पर आधारित वर्गीकरण, स्वतः चालित और पूर्वनिर्धारित समूह स्वतंत्र और आश्रित समूह तथा गेमोनशापट, गसेलशापट आदि।

स्वयं यूबैक सम्बन्ध की प्रकृति के विचार से समूहों को तीन वर्गों में विभाजित करता है (१) समानता पर आधारित जैसे वग, (२) निकटता पर आधारित समूह जैसे भीड़ आदि, और (३) अन्त क्रिया पर आश्रित परिवार जैसे समूह।

वागाडस ने कई सिद्धान्तों के आधार पर समूहों के प्रकार बताए हैं।^२ मुझे यह वर्गीकरण बड़ा वेदना लगता है

मकाइवर और पेज ने सामाजिक संरचना में पाए जाने वाले समूहों के लिये एक चाट दिया है। उसने सभी समूहों को तीन प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया है (१) मनुक्त प्रादेशिक इकाइयाँ—सामान्य प्रकार—समुदाय जिनके विशिष्ट प्रकार आदिम जाति राष्ट्र, क्षेत्र शहर गाँव और पटोस हैं। (२) हित चेतन संगठन जिनका स्पष्ट नहीं है—(अ) सामान्य प्रकार—सामाजिक वग जिससे विशिष्ट प्रकार जाति, बुद्धिजीवी वग (elite) प्रतिस्पर्धात्मक वग (corporate class) हैं और (ब)—सामान्य प्रकार—जातीय (ethnic) या प्रजातिय समूह जिनके कई विशिष्ट प्रकार हैं। (ग) सामान्य प्रकार—भीड़। जिसके विशिष्ट प्रकार हैं समान हित वाली भीड़ अथवा सामान्य हित वाली भीड़। (३) हित चेतन संगठन जिनका स्पष्ट और निश्चिन्त संगठन है जैसे सभ। समितियाँ क्लब सामान्य प्रकार हैं—प्राथमिक समूह और विशिष्ट सभ। प्राथमिक समूह के विशिष्ट प्रकार परिवार

1 Gubank Th *The Concepts of Sociology* D C Heath Boston (1931) pp 116-117 quoted in *Twentieth Century Sociology* p 104

2 Bogardus *op cit* p 7 He mentions the following classifications—

- (1) Informal formal and bureaucratic groups
- (2) Voluntary and involuntary groups.
- (3) Centric or congregative group
- (4) Primary and secondary groups
- (5) Disjunctive or overlapping groups
- (6) Social pseudo social anti social and pro-social socialized groups

क्रीडा समूह मिन मण्डली, गोष्ठी अथवा गुट हैं। विशद सघा के विशिष्ट प्रकार राज्य, आर्थिक निगम और श्रम सघ, धार्मिक सघ आदि हैं।¹

गिलिन और गिलिन के अनुसार सामाजिक समूह किसी न किसी हित पर आधारित होते हैं। इन समूह हितों के साधारण कारक निम्नलिखित वर्गों में विभाजित हो सकते हैं (१) नातेदारी या रुधिर-सम्बन्ध, (२) जनसंख्या की शारीरिक बनावट और विशेषताएँ (३) स्थान या भूमिखण्ड (सापेक्षिक समीपता) और संस्कृति उद्भूत हित। इस तरह समूह चार वर्गों में विभाजित हो जाते हैं—(अ) नातेदारी या रुधिर-समूह, (आ) शारीरिक विशेषताओं पर आधारित समूह, (इ) स्थानिक निकटता पर आधारित समूह, तथा (ई) सांस्कृतिक हित समूह।

सपिर ने (१) स्थानिक सम्बन्ध, (२) प्रयोजनो, तथा (३) प्रतीकात्मक कृत्यों के अनुसार सामाजिक समूहों का वर्गीकरण करने का सुझाव दिया है।²

इन वर्गीकरणों के अलावा प्रत्येक जटिल समाज में विभिन्न समूहों को प्रस्थिति अथवा प्रबलता एवं हीनता के आधार पर विभाजित करने की प्रणाली है। समाज में मूल्यों की व्यवस्था में अतः भिन्न भिन्न समूहों को ऊँचा और नीचा नाम देकर उनका स्तरीकरण किया जाता है। समूहों के इस श्रेणी विभाजन से उनकी एक पुराहित प्रणाली व्यवस्था (hierarchy) बन जाती है जिसमें एक सबसे श्रेष्ठ समूह होता है और शेष सभी उससे नीचे। भारतीय जाति प्रणाली इसी प्रकार सामाजिक स्तरीकरण का उदाहरण है। इस प्रकार की व्यवस्था में नीचे वाले समूहों में कुछ रहस्यमय तुलनाएँ की जाती हैं जिनके लिए भिन्न भिन्न समाजों में आयु, पान, आचार श्रेष्ठता पौजी शक्ति प्राथिक आहुदा अथवा धार्मिक पृष्ठभूमि में सन्निही निश्चित प्रमाणों के आधार पर समूहों का वर्गीकरण किया जा सकता है। सामाजिक एवं आर्थिक श्रेष्ठता (पद) पर आधारित समूहों में जाति और वर्ग का हम आगे सविस्तार विश्लेषण करेंगे।

संक्षेप में, समूहों के वर्गीकरण के आधार आकार सामूहिक अंतर्निहित वा कोई गुण संगठन का अर्थ, समीपता अथवा क्षेत्रीय एकता सम्बन्ध की प्रवृत्ति, हित या प्रयाजन में सन्निही अथवा उनका कोई एक अथवा उनका कोई मेल हो सकते हैं। मर विचार स मेकाइवर और पज द्वारा अपनाइ गई रीति से समूहों का सबसे स्पष्ट और तांत्रिक वर्गीकरण हो जाता है। विद्यार्थी इसे अपना सकते हैं। यहाँ एक बात स्मरण रखनी की है। जटिल और गत्यात्मक समाज की परिस्थितियाँ इतनी पचीली और इतनी शीघ्रता से बदलती हैं कि इन्हें कोई एक सिद्धांत पूर्णतया नहीं समझा पाता। मनुष्यों के स्वार्थ और उद्देश्य बहुत अधिक परिवर्तनशील हैं। इसीलिए उसका सामा

1 MacIver and Page *Society* p 210 Chart VIII

2 Gillin and Gillin *op cit* p 200

3 Edward Sapir *Group in Encyclopaedia of the Social Sciences* Macmillan Co New York (1932) Vol 7 pp 178 182

जिन सम्बन्ध भी नए-नए रूप धारण कर लेते हैं। समूह इही गत्यात्मक और जटिल सम्बन्धों को मूल व्यवस्थाएँ हैं। फिर भला समूहों का कोई वर्गीकरण स्थायी और नवमात्र वक्त ही सन्तता है? चाहे जिस मिद्वान्त पर बनाया जाए वह स्थायी और सावभौमिक वद्वापि नहीं हो सकता। विभिन्न समूह इतनी जटिलता में सयुक्त हैं कि उनका वर्गीकरण करके यथाथ स्थिति का चित्रण नहीं किया जा सकता है। हा वर्गीकरण से समूहों के अध्ययन की समस्या अपेक्षाकृत सरल अवश्य हो जाती है। इस युक्ति से समूह में मानव व्यवहार तथा उसके जीवन पर समूह के प्रभाव सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्या पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

उपर ह्मन मकेत दिया है कि ह्म इस अध्याय में प्राथमिक एवं द्वितीयक तथा ह्म-समूह और वे-समूह का सविस्तार विश्लेषण करेंगे। इससे आधुनिक सामाजिक संगठन को समझने में बड़ी सहायता मिलेगी।

व्यक्ति और समूह

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इस कथन में दो महत्त्वपूर्ण समाजशास्त्रीय सिद्धान्त सम्मिलित हैं। प्रथम मनुष्य का जन्म समूह में ही हुआ है। समूह का अन्तिम मनुष्य से पूर्व का है और द्वितीय मनुष्य और समूह एक दूसरे के विराधी नहीं हैं। बिना मनुष्य के समूह का अस्तित्व असम्भव है और मनुष्य भी समूह में ही रह कर जीवित रह सकते हैं। पहले का समूह की प्राथमिकता का सिद्धान्त कहते हैं। एक तथ्य की ओर हम कुछ पूर्व मकेत कर चुके हैं। वह यह है कि मनुष्य में समूह बनाने की कोई जन्मजात प्रवृत्ति नहीं हानी है। समाज में अनेक समूहों का निर्माण मनुष्य की आवश्यकताओं, हिता एवं उनके सम्बन्धों को व्यवस्थित करने के ढंग पर आधारित है। साथ ही, 'समूह केवल मानविक धारणा है इसलिए अव्यक्त-विज्ञान नहीं है। व्यक्त-व्यक्तियों और व्यक्ति-व्यक्तियों के बीच यह कहकर नितान्त भ्रम की है कि समाज में हानि वाली सम्मन् घटनाएँ विशिष्ट व्यक्तियों के व्यवहार के अनिश्चित कुछ नहीं हैं। हम इस प्रकार की सभी अनिष्टों से दूर रहना चाहिए। व्यक्ति और समूह में जो अन्त क्रिया होती है उसमें उनके बीच एक निश्चित सम्बन्ध विकसित होता है।

व्यक्ति के दृष्टिकोण से समूह का स्थान

एक आत्मिक समाज में एक आधुनिक समाज की अपेक्षा समूहों की बड़ी समस्या हानी है। ये समूहों के अन्तर्गत प्रायः लिङ्ग और वर्णों के मन्तव्य व्यावसायिक भेदों पर आधारित होते हैं। आदिम मनुष्य इन्हीं का मन्तव्य होता है। अपिचनर इनकी सम्मन्धना अनेकानेक अवस्थाओं में अनिश्चित हानी है। प्रत्येक समूह की सम्मन्धना समाज में व्यक्ति को निश्चित प्रतिष्ठिति या प्रतिष्ठा दिलाती है जो प्रथम अवस्थाओं के अनुसूल होती है। इससे विपरीत आधुनिक समाज में समूहों की बहुत बड़ी समस्या

होता है। इसलिए साधारणतया एक व्यक्ति अनेक समूहों का एक समय पर सदस्य होता है। इन समूहों में से बहुतों का सदस्य होना या न होना उसकी इच्छा पर निर्भर रहता है। जहाँ अपनी प्रजाति, लिङ्ग विभाजन, परिवार तथा राज्य का उसे अनिवार्य सदस्य होना पड़ता है वहाँ अनेक पेशेवर, व्यावसायिक, धार्मिक, सांस्कृतिक समूहों का सदस्य होना उसकी इच्छा पर निर्भर है। वह इच्छानुसार इनमें से कम या अधिक समूहों का स्वच्छिन्न सदस्य बन सकता है। इसी प्रकार, कुछ समूहों में वह पुल मिल कर गहरा काय करता है। अतः समूहों से उसका सम्पर्क बहुत दूरस्थ और सामयिक होता है। छोटे से परिवार से लेकर राष्ट्र तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनितिक और धार्मिक समुदायों का वह एक सदस्य होता है। इनमें से कुछ समूहों का उसके लिए निकटस्थ महत्त्व है और शेष का केवल आकस्मिक और बहुत कम महत्त्व है।¹

इसमें सन्देह नहीं कि व्यक्ति के जीवन में समूह एक कम विषयक यथाथ है। परन्तु समूहों के बारे में व्यक्ति की जो धारणाएँ और दृष्टिकोण होते हैं वे एक विषयक गत यथाथ है। सामूहिक जीवन के बारे में यथोचित ज्ञान के लिए हमें उसके इन दोनों पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है। इस विषय का एक प्रधान उदाहरण देने के लिए हम नीचे अंतःसमूह और बाह्य समूहों के भेद प्रस्तुत करेंगे।

अंतःसमूह और बाह्य समूह

मनुष्यों के आत्मीय दृष्टिकोणों से विचार करने पर अंतःसमूह या हम-समूह और बाह्य समूह अथवा व-समूह या उत्तर-समूहों में भेद किया जाता है। समनर न इस भेद का उतताया था। हम अपने समूहों से बाहर के लोगों को बाह्य समूहों की श्रेणियों में रखते हैं। हम समूहों या अंतःसमूहों के समूहों हैं जिनके सदस्यों में 'हम' का प्रयोग होता है। यहाँ सभी सदस्यों में शान्ति व्यवस्था विधान सरकार और उद्योग के सम्बन्ध होते हैं। सभी चाहेंगे कि वे (अपरिचितों) या बाह्य-समूहों से उनका सम्बन्ध युद्ध और लूट के होते हैं सिवाय उन सम्बन्धों के जिनमें इकरारा द्वारा सशोधन कर लिया गया हो।² समनर ने अंतः और बाह्य समूहों में होने वाले संपर्कों को बहुत बढ़ा चढ़ा कर कहा है। किन्तु उसने उन समूहों की जो आन्तरिक मनोवृत्तियाँ बताई हैं उनसे कोई समाजशास्त्री असहमत नहीं है। अंतःसमूहों में सदस्यों की बटुसग्या दूसरे सदस्यों के प्रति सकारात्मक, सहयोगी और मैत्रीपूर्ण व्यवहार करती है। प्रत्येक सदस्य समूहों के सदस्यों के प्रति सहानुभूति और लगाव की भावना रखता है। इन समूहों में साथ-साथ काम करने की भावना बहुत प्रबल होती है। इनके प्रति बाह्य-समूहों के प्रति विरोध भावना, प्रतिद्वन्द्विता, व्यग्र भय, सदेह

1 MacIver and Page *op cit* pp 216-217

2 Sumner W G *Folkways* Ginn & Co, Boston (1906) p 12 quoted by Gillin & Gillin in *Cultural Sociology* p 203

प्रशा, अरबि या द्वेष तक की भावना होती है। शत्रु, राणा या परिवारा, थम-मना तथा मानिक सधों व्यापार सधा, एक राजनीति दला म परस्पर उपरोक्त भावना पाइ गइ है। गाव और गहर के बीच में भी इसी प्रकार की भावना पाई जाता ह ।¹

गातिकााल में मारे समाज क विभिन्न समूहा में सहिष्णुता की भावना साधारणतया रहती है। किन्तु धमनस्य, सधय, धृणा या अमह्यमण विविध समूहा क बीच म व्यापार-श्रेत्र, खल क मैदान या राजनीति म व्यक्त हाता है। हम बाह्य-समूहा के प्रति ध्याम्य कसा करत हैं। उनका मसम्य, क्रूर जगली कमीन नीच धाति विज्ञपणो का प्रयोग कर सम्भावित करत हैं। किन्तु अगानि या व्यवस्था के समय बाह्य-समूह के खिलाफ हमारे गहर सबदात्मक पूव विचार उभर आत हैं और हम मुलतम-मुल्ला उनका दुश्मन धापित कर दत हैं। राष्ट्रा क बीच युद्ध सम्प्रत्याया या वनों क बीच दग इसक अवाध्य साध्य है।

गिलिन और गिनिन न लिखा है कि य नो प्रकार के समूह समय की स्थितिया का समभन म विशय सामग्यक हात हैं। उनम कई अय समाजशास्त्रीय समस्थाधा पर भी प्रकाश पढता है जैसे व्यक्ति का समाजीकरण सामृत्तिक परिवतन, सामाजिक नियन्त्रण और सामाजिक विहृति (व्याधि) ।²

अन्त समूह और बाह्य-समूह दाना ही धारणाएँ कृत्यात्मक है क्वाकि इन समूहा की विशयताएँ समाज के सरचनात्मक सगठन का भाग नहीं हैं।

विराघ और प्रतिद्वन्द्विता की भावनाएँ जिनकी तीव्र हागा उतनी ही तीव्र 'हम भावना' समूह म दखी जाती है। इस तथ्य स राजनीतिन वग पायदा उठाते है। जब वे अतन दश म आपसी विरोध या असंगठन की भावना उत्पनर हात दखत है ता क देश या राष्ट्र की एकता की भावना का हृड करल क लिए दूमर दगा से विरोध या प्रतिद्वन्द्विता की भावना को उभार कर तीव्र कर दत हैं। पिछन १० वर्षों म पाकिस्तानी राजनीतिन अतन दग की आन्तरिक गण्यगी पर बाबू भारत-विराधा प्रचार तथा विपवमन म पात रह है। किन्तु इनन यदु नहीं समझना चाहिय कि समूह म एकता और सगठन प्रनाय रखन क लिए अय माधन उपनवर नहीं हैं।

धार्मिक समाज में हम भावना' बहुत तीव्र और स्पष्ट हाती है। क्वाकि (१) धार्मिक समाज छोड होते है और उनक मसम्य एक दूमर का अच्छी तरह से जानत है और परस्पर घनिष्ठता से रहते है। (२) य समाज मत्वामी समूह हात हैं।

1 Cf MacIver & Page *op cit* p 21 and Ogburn & Nimkoff *A Handbook of Sociology* Routledge & Kegan Paul London (1936) pp 173-174

2 Gillin & Gillin : *op cit.*, p 204

लोग एक ही स्थान पर रहने हैं और उनका पूरा सामाजिक जीवन एक साथ ही बीतता है। (३) इन समाजों में समूहों की संख्या कम होती है। प्राथमिक समूहों की बहुलता के कारण उनमें आपसी विरोध या प्रतिद्वन्द्विता का अभाव रहता है तथा 'इतर भावना' जागृत नहीं हो पाती। (४) किन्तु एक समाज और दूसरे समाजों के बीच इतर भावना बहुत तीव्र रहती है क्योंकि सम्पर्क के अभाव में वे एक दूसरे से मिल जुलकर सहिष्णु और उदार नहीं बन पाते।

आधुनिक समाजों में भी 'हम' और 'इतर' समूहों की भावना दिखाई देती है परन्तु यह उग्र रूप में नहीं होती। इसके कई कारण हैं। पहले आधुनिक समाज इतने बड़े होते हैं कि इनके सभी व्यक्ति एक दूसरे से परिचित नहीं रहते हैं। दूसरे, इन समाजों का परस्पर सम्पर्क बढ़ गया है। सांस्कृतिक आदान प्रदान के कारण विभिन्न समाजों में बहुत कम भिन्नता रह गई है। इसलिये 'इतर' समाजों की भिन्नता को भी हम सहिष्णुता से देखते हैं। तीसरे आधुनिक समाजों के भीतर इतने समूह होते हैं जिनके बीच अक्सर इतना अधिक विरोध या संघर्ष रहता है कि अपने समाजों के भीतर भी हम भावना उग्र नहीं होने पाती। चौथे, इन अनेक समूहों की संख्या भी बदलती रहती है जिसके कारण जिस सदस्य के प्रति हम एक समूह में हम भावना रखते हैं उसी के प्रति दूसरे में इतर भावना भी। इससे स्पष्ट है कि जहाँ आधुनिक समाजों में हमारी हम भावना बहुत तीव्र नहीं हो पाती वहाँ इतर भावना भी उग्र नहीं हो पाती। किन्तु राजनीतिक और आर्थिक हितों के संघर्ष ने आजकल भी समाजों में हम भावना और इतर भावना को कभी कभी बहुत उग्र करने दिखाया है।

मनुष्य में अपने समूह के अर्थ सदस्यों के नियमों जो सहानुभूति अपनापन अथवा ममत्व की प्रकृति होती है उसे समाजशास्त्री जाति-वेद्रीयता कहते हैं। इसका तात्पर्य समूहों के उस विश्वास से है जिसमें वह अपने सामाजिक अत्यासा या नीतियों को दूसरे समूहों के अत्यासा की अपेक्षा स्पष्ट समझता है।¹ इस अध्याय के अन्त में जाति-वेद्रीयता के विचार की सविस्तार व्याख्या करेंगे।

प्राथमिक समूह

सम्पर्क की निरन्तरता अथवा दूरी और सामाजिक अन्त क्रिया के अर्थ के आधार पर समूहों को प्राथमिक और द्वितीयक समूहों में विभाजित किया जाता है। स्ट्रुट्ट चर्चिन ने सामाजिक समूहों के तीन प्रकार बताये हैं। तीसरा प्रकार माध्यमिक समूह है जो प्राथमिक और द्वितीयक दोनों के मध्य की श्रेणी में जा सकते हैं। प्राथमिक, माध्यमिक और द्वितीयक समूहों में क्रमशः घनिष्ठ, द्विधल और कृत्रिम सम्पर्क पाये

1 Ethnocentrism is the belief of each group in the superiority of its own social practices over those of the other groups

जाते हैं। उनके अनुसार, विद्यालय व किसी कमर में लगी बग्गा शानागण भारत स्वाज्ज्म या गाइड्म अथवा भारत सब्क ममाज्म अथवा विश्व समम्याग्गा व अध्येयन व लिय अन्नर्राष्ट्राय सध की स्थानीय द्वाद्दया मध्यस्थ समूहा के उगाहरण हा सजत हैं।¹ भरे विचार में अपिन का यह बर्गीकरण हमार अध्येयन म बहुत लाभदानक नही है। अतएव हम प्राथमिक एव द्वितीयक दा वर्गों की विशेषताओं का ही विवचन करेंगे।

कूते ने प्राथमिक समूह की परिभाषा इस प्रकार दी है प्राथमिक समूहा मे मरा तात्पय एते समूहा स है जिनकी विशेषताएँ आमने-नामन का पनिष्ठ समग और सहयोग है। बैस तो प्राथमिक कई बाता म हैं किन्तु मुख्यतया इस बात मे कि व व्यक्ति की सामाजिक प्रकृति और आदसों के निमाण में मूलभूत हैं। पनिष्ठ समग का परिणाम यह होना है कि उनम वैयक्तिकताआ का एक सामाय पूगना म एक प्रकार का एकीकरण हा जाना है, यहा सब कि प्रत्येक व्यक्ति स्वय का, अनव प्रयाजना के लिए समूह के सामान्य जीवन और प्रयाजन म विलीन समभक्ता है। सब एक दूसरे को 'हम कहते हैं और उनम परस्पर सहानुभूति और पारस्परिक परिचय बढ गहन हो जात हैं।'² किंग्सले डविम ने किया है कि उपरोक्त उद्धरण म दा बाता न— प्राथमिक समूह कुछ भूत समूह हैं जस परिवार श्रीडा समूह पत्नीसी समूह आदि तथा इन समूहा में आमने सामन का ससग हाता है जिसमें सहानुभूति और पारस्परिक परिचय जस सम्बन्ध व गुणा का विशय महत्व है—कूत का धारणा म वृद्ध अस्पष्टता भर दी है। अतएव, प्राथमिक समूहों की प्रकृति का स्पष्टीकरण करने के लिए उमने चार बाता पर बत न्न का सुभाव दिया है (१) उनमें प्राथमिक प्रकार व सम्बन्ध हैं (२) सम्बन्ध व इस प्रकार की विभापना व कई अन सम्प्रतिन गुण हैं (३) यह सम्बन्ध अपन गिनिष्ठ गुणा के सहित, कुछ भूत समूहा में अस्पष्टतया अधिद प्रचुरता स मितता है (४) तिन विशेष समूहा में यह सम्प्रतिन दृष्टिगत होना है व कुछ भौतिक दशाआ पर आधिन हैं।³ आग न्न डविम का अनुसरण कर प्राथमिक समूह के लिए आरश्यक भौतिक और मानसिक दशाआ का निरूपण करेंगे।

प्राथमिक समूह के हर मन्स्य का जीवन समष्टि म व्याप्त होना है। उनम पनिष्ठता और एवता का भाव इतना अधिक होता है कि व मन् व अपन लिए 'हम' का प्रयोग करते हैं। प्राथमिक समूह की एकता निक प्रेम और मामजस्य की एवता नही है। यह हमगा एक भेदून और साधारणतया प्रतिस्पर्धात्मक एकीकरण है जिनमें आरम प्रदर्शन तथा अन कई उग्र भावों की अभिव्यक्ति की मुञ्जादा रहना

1 Gurwitsch and Moore 20th Century Sociology p 157

2 Cooley op cit p 23

3 Kingsley Davis Human Societs Macmillan Co New York (1906) p 290

है 'हमार चारों धार के ससार म ऐमा ससग स्पष्टतया मानव स्वभाव की पालन-शाला है। इनका सबसे बड़ा काय मनुष्य की पार्श्विक इच्छाया का मानवीकरण करना है। इनके सदस्या म वन सम्बन्ध स्वाभाविक, वारम्बार और अचेतन हात हैं। व्यक्ति-वा के सबगात्मक नियन्त्रण स मनुष्य पर इतना गहरा प्रभाव पडता है जसा सामाजिक संगठन की अय रचनाया और प्रयासा स भी नहीं पड सकता। इन समूहा म जा ननिज दशाएँ पाड जातीं हैं उनका असर समस्त भौतिक दशाया क असर की अपथा अधिक व्यापक, गहन और स्थायी हाता है।

प्राथमिक समूहा क निर्माण क लिए कुय भौतिक और मानसिक दशाओं का उपस्थित हाता आवश्यक है जिह कमग बाह्य और आन्तरिक दशाएँ भी कहा जा सकता है।

भौतिक दशाएँ

(१) भौतिक समीपता—प्राथमिक समूह क सदस्या म शारीरिक समीपता हाता आवश्यक है। उनम तभी घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हा सकता है जब क एक दूसरे क निकट हा, साय-साय रहे, भाएँ पिऐ, उठे-बैठे और एक दूसरे म प्रतियागिता, सहयाग या मषप करें। साय-साय निवाम और आमन-मानन का विचार-विनिमय उनम परस्पर महानुभूति और मदभावना पना करत हैं। इनम स्पष्ट है कि शारीरिक समीपता प्राथमिक समूह के निर्माण का अवसर प्रदान करती है किन्तु अकल ही यह प्राथमिक समूह नहीं बना दती। मले म हाताग आदमी माय-माय हात हैं परन्तु फिर भी उनका हम प्राथमिक समूह नहीं कहत। उनी प्रकार गाडी के एक सी त्रि मे मषप करन वाता से प्राथमिक समूह नहीं बनता। कारण, उन मजम मानसिक मामाप्य नहीं है तथा दूसरी भौतिक दशाएँ लघुता और स्थिरता भी अनुपस्थित हैं।

(२) लघुता—आमन-मानन के सम्बन्ध एव शारीरिक समीपता होने के साथ समूह म लघुता भी होना आवश्यक है। कम व्यक्तिया म ही शीघ्र अभिमान और पारस्परिक प्रनाति उत्पन्न हा सकती है। उनम आत्मोपता और एकमनता भी शीघ्र आते हैं। व्यक्तिगत परिचय समूह के निर्णया का मूल तता भीतर कर दता है। इनसे घनिष्ठता आती है। बड़ो या विज्ञान सम्पना हात पर प्राथमिक समूह क बनन की कम सम्भावना रहती है।

(३) सम्बन्ध की निरन्तरता एव स्थिरता—एक समूह के सदस्या म घनिष्ठता बने और स्थायी रह इनके लिए उनके सम्बन्ध निरन्तर और स्थायी रहन चाहिए। व्यक्तिगत सम्बन्ध म आत्मोपता और विश्वास तभी आता है जब व्यक्तिया म स्यासा और निरन्तर व्यवहार हाता रह और उसका पत्पर प्रभाव भी समय समय पर न टूट बरतू लातातार कायम रह।

मानसिक दशाएँ

भौतिक दशाएँ प्राथमिक समूह के निमाण के लिए अक्सर प्रदान करता है किन्तु इस अक्सर म समूह बन या न बने यह बंवल मानसिक दशाओं पर आश्रित है। इन मानसिक दशाओं का विवरण नीचे किया गया है।

(१) समुद्देश्यता—जब व्यक्तियों की एक ही इच्छाएँ और उद्देश्य होते हैं तो वे सहयोग और मित्रा मतभेद के उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए साथ साथ काय किया करते हैं। इससे उनमें सहानुभूति और घनिष्ठता भी पैदा होती है। दूसरे, समुद्देश्य होने से सबका गंतय एक ही होना है। इस दिशा में बढन में एक दूसरे के सुख दुख को वे सब अपना सुख-दुख मान लेते हैं। सभी का हित इसी में है कि सामूहिक कल्याण की अभिवृद्धि में अधिकतम योग दे। परिवार में सभी सदस्य सामूहिक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए प्रयत्नशील होते हैं। दूसरे के सुख और कल्याण में सबका स्वाभाविक ह्य होता है।

यहाँ यह स्मरण रह कि किसी भी प्राथमिक समूह में उद्देश्यों की साम्यता सम्पूर्ण नहीं पाती। फिर भी इन समूहों में अधिकांश समानता पाई जाती है। उसका ध्यान इन समूहों के सन्ध्या में 'हम' की भावना है। वे अपना व्यक्तित्व समष्टि में विलीन कर देते हैं।

(२) सम्बन्ध स्वयं साध्य होता है—प्राथमिक समूहों के उद्देश्य में साम्य तो होता है किन्तु यह चरम साध्य नहीं होता। इनके सदस्यों में इतनी आत्मीयता और घनिष्ठता विकसित हो जाती है कि वे एक दूसरे के बिना रहना असम्भव समझने लगते हैं। परिवार में पति पत्नी और बच्चा के सम्बन्ध ही उनका सब कुछ है। उसी प्रकार मित्रा के परस्पर सम्बन्ध ही उनका साध्य है। इस कारण, इन सभी समूहों में सम्बन्धों को घनिष्ठ और आत्मीय करना ही हर सदस्य का उद्देश्य होता है। उनकी साम्य इच्छाओं और उद्देश्यों की पूर्ति इसका साधन बन जाती है। अन्तर्द्वेष और स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्राथमिक समूह नहीं बनते। उनका निर्माण तो मानव की उस सहज प्रवृत्ति के कारण होता है जिससे वह दूसरों के साथ रहने में सुखी और उससे अभाव में दुःखी होता है।

(३) प्राथमिक सम्बन्ध व्यक्तिगत होते हैं—प्राथमिक समूहों के सदस्यों में सम्बन्ध व्यक्तिगत होते हैं। इनमें प्रत्यक्ष सम्पर्क और अनुभव प्रधान होता है। एक दूसरे का महत्त्व उनके गुणों और कार्यों पर निर्भर नहीं रहता है। वह उनको पारस्परिक सहानुभूति और सम्बन्धना पर निर्भर रहता है। किन्तु उनके गुण और काय उनके आत्मीय सम्बन्धों के अनुरूप ही रहते हैं। भाई भाई पति-पत्नी और मित्रा में जो व्यक्तिगत सम्बन्ध होता है उस किसी बाहरी व्यक्ति का प्रतिस्थापन करके वायम नहीं रक्खा जा सकता। भरे अमुक मित्र का स्थान दूसरा व्यक्ति कदापि नहीं ले सकता। कारण वह हमारे दोना की अंतर्गत अनुभूति को नहीं पा सकता।

किंग्सने डेविंस न लिखा है, एक तबीन वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है, एक पुराना व्यक्ति सम्बन्ध समाप्त किया जा सकता है सम्भवतया वह चालक शक्ति जिमने सम्बन्ध को प्रारम्भ करवाया था दूसरे को माग दे सकती है परन्तु एक ही सम्बन्ध में एक व्यक्ति के स्थान पर दूसरे का प्रतिस्थापन नहीं किया जा सकता ।

(४) प्राथमिक सम्बन्ध सम्पूर्ण होता है—प्राथमिक सम्बन्ध में व्यक्ति पूर्ण रूप से भाग लेता है । घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे का भली भाँति जानता है । इसमें व्यक्तित्व की सम्पूर्णता पाई जाती है क्योंकि मनुष्य का केवल एक काय से नहीं बरन् सम्पूर्ण कार्यों से सम्बन्ध होता है ।

(५) प्राथमिक सम्बन्ध सहज अथवा स्वेच्छापूर्ण होता है—व्यक्तियों में प्राथमिक सम्बन्ध की स्थापना किसी बाह्य परिस्थिति के उद्गम से नहीं होती । वह तो अन्तर की पुकार पर बनता है । इस सम्बन्ध का नियंत्रण नियम और उपनियमों या जार-दवाव से नहीं हो सकता और न कोई स्वायत्त ही सदैव इसको कायम रख सकता है । इसकी स्थापना स्वच्छता से और समानि भी स्वच्छता से होती है । किन्तु एन सम्बन्ध का स्वेच्छापूर्ण विच्छेद भी अनोख दुःखदायी टाँसा है । उदाहरण के लिए, यदि दो घनिष्ठ मित्र स्वच्छता से एक दूसरे से पृथक् हो जायें तो जीवन भर वे इस वियोग की टीस अनुभव करते रहेंगे ।

(६) प्राथमिक सम्बन्ध में अत्यधिक नियंत्रण शक्ति होती है—प्राथमिक सम्बन्ध व्यक्तियों पर सहज नियंत्रण रखते हैं । उनका व्यवहार से दूसरों की उपेक्षा या निरादर नहीं होना पाना । इस उपेक्षा अथवा निरादर के प्रति हर सदस्य बहुत संवेदनशील होता है । अतएव सदस्य एक दूसरे का भाविक आघात नहीं पहुँचाना चाहते । थोड़े से इशारे में अपना व्यवहार बदल लेते हैं या उम बन्द छान्त हैं । परन्तु यह सब परस्पर आत्मीयता के कारण होता है । इसे स्वच्छता में स्वयंसेवा करते हैं । धीरे धीरे हर सदस्य प्राथमिक समूह में अपने-के इतना विश्वास कर लेता है कि वह उसके नियंत्रण से स्वतंत्र हानि की या उनकी अग्रहणना करने की बात तक नहीं सोचना जब तक उसके मंगल हितों का निराला अग्रहणना न हो ।

समाज विकसित होने होते जटिल होता जाता है । जटिल समाज में प्राथमिक समूहों की अपेक्षा माध्यमिक या अ-प्राथमिक समूहों की बहुत अधिक संख्या मिलती है । इन समाजों में बचपन के जीवन का आध्यात्मिक भाग इन माध्यमिक समूहों में होता है । अतएव प्राथमिक समूह में समाज प्राप्ति और मनाविद्या पर निर्भर रहकर वह माध्यमिक समूहों में जीवन का सफलतापूर्वक नया चरण मानता । उस माध्यमिक समूहों के जीवन में समायाजन करना पड़ता है और अतएव अत्यधिक सम्बन्धों का प्रबन्ध करने में चतुरता सिपानी पनी है । यह अपना पुरानी आदत को चक्ति मुला नहीं देता है । वह माध्यमिक समूहों में जिनमें सम्बन्धों की विधान

सख्या होती है, सम्बन्ध अत्यन्त तथा दूरी के होते हैं और जहाँ सहयोग या सहानुभूति अस्थायी और अनुबन्धो पर निर्भर रहते हैं छोटे छोटे गुट या प्राथमिक समूह बना लेता है। अतएव इन अत्यधिक सगठित औपचारिक, सामाजिक रचनाओं में घनिष्ठता और प्रत्यक्ष सम्बन्धों पर आधारित छोटे छोटे समूह या गुट बन जाते हैं। यह प्रवृत्ति सभी औपचारिक सामाजिक सगठनों में विद्यमान है।

प्राथमिक समूहों की तीन अर्थ विशेषताएँ हैं —

(१) प्राथमिक समूहों के हिता की पूर्ति से सभी सदस्यों का सामाजिक रहना है। इस दायित्व से कोई मुक्त नहीं होना चाहता और उन सामाजिक हिता की प्राप्ति के लिए भरसक प्रयत्न करना हर एक अपना कर्तव्य समझता है।

(२) प्राथमिक समूहों के सदस्यों के मतैक्य ऐच्छिक होता है और किसी प्रकार का मतभेद होने पर सहानुभूतिपूर्वक वातचीत से उस मिटा देते हैं। इन समूहों में प्रयोजन हित-भावना और क्रिया सम्बन्धी फसल हमेशा अनापचारिक होते हैं। इन समूहों में स्वच्छता होती है।

(३) इन समूहों के सदस्यों में सामूहिक सुरक्षा की भावना बड़ी प्रबल रहती है। हर एक सदस्य के हिता और अधिकारों की सुरक्षा समूह की प्राथमिक जिम्मेदारी है। आपत्ति के समय उसे समूह से हर प्रकार की सहायता, सहयोग और सहानुभूति मिलती है। उसके सामूहिक कार्यों में समूह उमका साथ देता है और अनन्तरदायित्व पूरा कामों में उसका साथ छोड़ देता है या निरस्तान्ति करता है। अर्थात् प्राथमिक समूह के सदस्यों को निश्चिन्त और स्पष्ट रूप से मालूम है कि वह अपने समूह से क्या अपेक्षा कर सकता है। इस प्रकार वह अपने व्यक्तित्व में एक सुरक्षा व्यवस्था का समावेश कर लेता है और उसी के आधार पर अपने जीवन के ढंग तथा योजनाओं का निर्धारण करता है।

प्रतीत होने वाले प्राथमिक समूह

बुद्ध समूह ऐसे गण हैं जिनमें प्राथमिक समूहों में अधिराज लक्षण मिलते हैं किन्तु वे वास्तविकता में प्राथमिक नहीं हैं। उनमें कुछ लक्षण द्वितीयक समूहों में भी पाये जाते हैं। इनमें से अनेक समूह प्राथमिक समूहों के कद काय करते हैं। परन्तु इनका विकास स्वतः और अत्यन्त रूप से नहीं होता है। वे सगठित आमन सामन के घनिष्ठ समूह होते हैं। वे कुछ अशांति अपने सगठन और विशेष उद्देश्य (प्रयोजन) से सीमित होते हैं। इन्हीं कारणों से वे द्वितीयक समूहों के कुछ लक्षणों और कार्यों से समानता रखते हैं। कूल में इन समूहों को प्राथमिक-समूह-वत् (Quasi Primary Groups) कहा था—स्वाउटा के द्रूप, काला अथवा विश्वविद्यालय में सगठित भ्रातृदल (fraternities) छोटी छोटी विचार गोष्ठियाँ (Study circles), गिनारी में धारण। स्मरण रहे प्राथमिक समूहों का न ता चेतन सगठन होना है और न उनका कोई विशिष्ट प्रयोजन।

द्वितीयक समूह

विकसित समाजों और जटिल संस्कृतियों में द्वितीयक समूहों की संख्या अधिक होती है। इनके संस्थापक अग्रज और 'सून सार' होता है। उनमें आधारभूत सामाजिक अनुक्रियाएँ कम रहती हैं और कम घनिष्ठ होती हैं। मातृसंस्था उनमें सामान्य हिता का क्षेत्र भी मरुचित होता है। माध्यमिक समूहों के संस्थापक या तो नीसरे व्यक्ति या अथवा यन्त्रात्मक मंचार द्वारा रखा जाता है। भारत की अनेक भारतीय कांग्रेस पार्टी या द ग्लोबल की लबर पार्टी प्रभृति के पटन वाले, रक्षा पर लता मंगेशकर या पवन मलिक का मुनन वाले या भारत के किमी राज्य के निवासी आदि द्वितीयक समूहों का उदाहरण हैं। द्वितीयक समूहों का अर्थ उदाहरण आर्थिक, राजनतिक, अथवा सांस्कृतिक महान्घ राष्ट्र औद्योगिक निगम, समुदाय, जनार्थ भौंडे, आलापण अथवा सामाजिक वा है।

सभी उभे और जटिल संस्कृति वाले समाजों में एक वयस्क व सामाजिक जीवन का बहुत बड़ा भाग अप्राथमिक या द्वितीयक समूहों में बीतता है। प्राथमिक समूहों की अनेक व्यक्ति का वचन बीतता है, अनुक्रियाएँ एक प्रविधिया व्यक्ति का वयस्क जीवन बितान में बहुत अपवाप्त या द जाती हैं। मध्य जीवन के लिए उम द्वितीयक समूहों से समावाजन करना सीखना ही पड़ता है। यह अग्रज सम्पर्कों तथा निम्न 'कूर समार' के अत्यधिक सम्पर्कों से समावाजन करना उनके लिए अनिवार्य हो जाता है। द्वितीयक समूहों में न तो उन कोई जानता ही है और न जानन पर कोई उनकी परवाह ही करता है। सभी परिस्थिति में समतापूर्ण अनुक्रियाएँ, अपवाप्त सहायक अनुक्रिया गमन छाटी-छाटी मलिनियों की उपमा करन की तत्परता बिनवा व्यक्ति प्राथमिक समूहों—परिवार, राजा समूह पटन अथवा छाट समुदाय—में मृजित करता है नहीं बितन और परिणामस्वरूप व्यक्ति का गहरा घक्का लगता है। उन द्वितीयक समूहों का संसार एक टण्डा पथर मा मारा लगता है। सभी वभी इस घक्के में उबरता व्यक्ति के लिए बहुत कठिन हो जाता है। वह ह्वारा व्यक्तियों के साथ आधुनिक समाजों में घटना है। 'सका परिणाम है ह्वारा व्यक्तियों व विघटित व्यक्तित्व। अतिक गरल अविचलित और छाट समाजों में व्यक्ति व सामन एसा गहरा उक्का खान की स्थिति प्रायः नहीं व बराबर आती है। वास्तव में समाजगत व अध्ययन व लिए द्वितीयक समूहों में उवावक समाजों में व्यक्ति का सामाजिक स्थिति से समावाजन बहुत महत्वपूर्ण गमन्य है।

द्वितीयक समूहों की परिभाषा—मातृसंस्था व समूहों का प्राथमिक नहीं है द्वितीयक कहनायेंगे। इनमें सामन-सामाजिक सम्पर्क और घनिष्ठता नहीं होती। इनके संस्थापक में नीतिक निष्कर्ष या सांस्कृतिक समीक्षा का वास्तविक आवश्यकता नहीं है। अग्रज सम्पर्क ही इनकी एक विशेषता है। यन्त्र न हाकर विभाजित होत है और इनके सम्बंध अस्थायी और अनिश्चित होते हैं। इनमें सम्बंध अव्यक्तिक

(Impersonal) हान हैं और व किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के साधनमात्र हैं। उद्देश्य सम्पूर्ण न होकर किसी विशिष्ट भाग से सम्बन्धित होते हैं।

पर द्वितीयक समूहों में प्राथमिक समूहों के कुछ गुण शून्याधिक मात्रा में पाए जा सकते हैं। इन दोनों प्रकार के समूहों में मुख्य अंतर सम्बन्ध की प्रकृति और रूप का है। द्वितीयक समूहों में सम्बन्ध अवैयक्तिक और औपचारिक होते हैं। इनमें व्यक्ति का महत्त्व उसके कार्यों पर निर्भर रहता है। सत्स्य में परस्पर आत्मीयता या ममत्व का हाना हाना नहीं। वे सब किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति में अभिव्यक्ति या निहित अनुभवों से बंधे रहकर कार्य करते रहते हैं। आशय और निमक्काफ न निम्ना है। द्वितीयक समूह उन्हें कहते हैं जिन्हें प्राप्त अनुभवों में घनिष्टता का अभाव होता है। आकस्मिक सम्पर्क ही द्वितीयक समूहों के अनुभव का सार-रत्नत्व है।¹

द्वितीयक समूहों की मुख्य विशेषताएँ

(१) इसमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को अपनी प्रस्थिति में जो समूह द्वारा निश्चिन्त की जाती हैं, विलीन कर देता है। प्रिंसिपल विद्यार्थियों से सदैव, प्रिंसिपल की हैसियत से व्यवहार करता है। दोनों के सम्बन्ध घनिष्टता में परे और औपचारिक होते हैं। इस समूह में व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से नहीं बरन् उसके कार्यों से सम्बन्ध रहता है। अतः उनके सम्बन्ध केवल आशिक होते हैं। सदस्य का एक दूसरे के प्रति सीमित दायित्व होता है।

(२) द्वितीयक समूह में व्यक्ति सन्ध और निष्क्रिय होना ही प्रकार का सदस्य रहता है किन्तु अधिकतर वह निष्क्रिय ही रहता है। श्रमिक संगठन का साधारण सत्स्य या एक राष्ट्र का साधारण नागरिक अधिकशा समय निष्क्रिय रहता है। समूहों का बड़ा आकार निश्चाल सदस्यता, दूरस्थ सत्स्य के बीच अप्रत्यक्ष और आकस्मिक सम्पर्क के कारण ऐसा होता है।

(३) द्वितीयक समूहों के सदस्यों में प्रत्यक्ष सहयोग नष्ट हो पाता। एक सत्स्य दूसरा न लिये कार्य करता है न कि उनके साथ। वे सब एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रस्थितियों में विभिन्न कार्य करते हैं। हाँ उनमें अधिकार और कर्तव्य भी विभिन्न होते हैं जो अनुभव के अनुसार होते हैं। इससे स्पष्ट है कि द्वितीयक समूहों के सत्स्य में स्वच्छापूण सहज सम्बन्ध नहीं होता बरन् जानबूझ कर किसी स्वाथवश रथापित अवैयक्तिक मन्ध होता है। प्रेम और आत्मीयता के अभाव में स्वच्छ पूर्ति हाते ही व्यक्ति इस समूह से पृथक् हान की इच्छा करता है।

(४) द्वितीयक समूहों के सत्स्य के अधिकार और कर्तव्य अनुबन्ध या प्रसक्ति पर आधारित होते हैं। इसलिए उनके सम्पूर्ण व्यवहार औपचारिक होते हैं। वे निर्दिष्ट नियमों, विधानों या शर्तों से नियंत्रित होते हैं। यह नियंत्रण अव्यक्तिक और

बंद होता है। हर सदस्य को निश्चित कार्य करने पर ही निदिष्ट फल प्राप्त होना है।

द्वितीयक समूहों का संगठन विशेषाह्वानों की पूर्ति के लिये होता है जो पर्याप्त दीर्घकालिक हात हैं। अतएव इन समूहों का विधिवत् संगठन बन जाता है जिसकी सफलता के लिये परम्परायें महिनायें विशेष अधिकारी और विनिष्ट सम्बन्ध तथा मन्थनायें विकसित हो जाना हैं। अनेक लेखक इन समूहों को 'सत्यागत समूह' कहते हैं।

द्वितीयक समूहों तथा महासमाज से भरपूर समाज में सामाजिक सम्बन्धों में विजातीयत्व का अत्यधिक बढ जाना स्वभाविक है। लागू के हिसाब मन्थनायें उद्देश्य तथा समूहों सभी में इतना प्रतिक विभिन्नता होती है कि किन्हीं भी दो समूहों के संगठन और क्रियाओं में समझौता नहीं मिलता। सामाजिक सम्बन्धों में भारी अनक-रूपता के कारण प्रथाओं जननीनिया रुढ़िया अथवा मन्थनाओं में भी भारी अस्थिरता आ जाती है क्योंकि किन्हीं भी विनिष्ट प्रथाएँ एव सन्ध्या से मनुष्यों का समाज सभी तक रह पाता है जब तक वे उपयोगी और मयाय लाभ प्रदान कर सकें।

प्राथमिक और द्वितीयक समूहों के भेद

प्राथमिक समूह	द्वितीयक समूह
१ प्राथमिक समूह सामाजिक जीवन का आधार है। मरण तथा द्वाद समाजों में इनकी प्रधानता होती है।	१ द्वितीयक समूहों का उदय और विकास जटिल और बढ समाजों में होता है। इन समाजों में द्वितीयक समूह प्राथमिक समूहों का देवा लेते हैं।
२ प्राथमिक समूह में सदस्यों की संख्या बढू याही होती है। ये सभी प्रायः एक ही स्थान पर नाच-नाच रहते और काम करते हैं।	२ द्वितीयक समूहों की संख्या बढूनी होती है। इनमें रहने और काम करने के स्थानों में निकटता नहीं होती। विन्तून क्षेत्रों में ये समूह पाए जाते हैं।
३ इन समूहों के सदस्यों में प्रत्यक्ष सम्बन्ध और सहकारिता रहती है। इसमें सहभावना, प्रेम और धनियुक्तता होती है।	३ इनमें सदस्यों में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध और पराग सहकारिता रहती है। माया रणतया इनमें धनियुक्तता और प्रेम की अभिन्यक्ति का अवसर हा नहीं मिलता।
४ इनमें व्यक्तियों में व्यक्तिक सम्बन्ध होता है। ये सम्बन्ध व्यक्तिक गुणों में अधिकारिक प्रभावित होते हैं। चूंकि व्यक्तियों का महत्त्व बढूया आमन आमन का होता है इसलिए उनमें धन	४ द्वितीयक समूहों में सन्ध्या में सन्ध्या अव्यक्तिक (Impersonal) होता है। इनमें सन्ध्या के व्यक्तिक गुणों का स्थान नाभ्य होता है। यों ती क्रिया विनिष्ट उद्देश्य-पूर्ति के लिए

प्लता और गहरी सहानुभूति होती है। वैयक्तिक गुणों में थोड़ा व्यक्ति को समूह की श्रद्धा मिलती है।

५ इन समूहों के सदस्यों के संबंध औपचारिक तथा सहज (स्वतः विकसित) होते हैं। इनमें विविध सदस्यों के सहज कर्तव्य और कार्य नियमों तथा विविध तर्कों से निर्धारित नहीं होते। प्रथा तथा सामाजिक समझौतों के ही सम्बन्ध निर्दिष्ट होते रहते हैं।

६ प्राथमिक समूहों के सदस्यों के कार्य तथा व्यवहार का नियंत्रण अनौपचारिक विधियाँ प्रथाओं परम्पराओं मुभाव तथा परामर्श से होता है। यहाँ नियंत्रण कठोर रहता है तथा सन्तुष्टि का मनमानी स्वच्छता का अवसर नहीं मिल पाता। साथ ही, यह नियंत्रण जगत् जीवन के सभी क्षेत्रों में बहुत व्यापक रहता है। नियंत्रण सत्ता परम्परागत होती है।

७ सन्तुष्टि के व्यक्तित्व पर प्राथमिक समूहों का, व्यापक प्रत्यक्ष तथा सवागण्य प्रभाव पड़ना है।

८ प्राथमिक समूहों के जीवन में समायाजन करने में व्यक्ति को विशेष कठिनाइयाँ या सामना नहीं करना पड़ता।

एजेन्सी मात्र होते हैं। इसीलिए जहाँ तक व्यक्ति समिति के हितों की पूर्ति के लिये कार्य कर रहा है उसके व्यक्तित्व गुणों से कोई वास्ता नहीं रखा जाता।

५ द्वितीयक समूहों के सदस्यों में औपचारिक और अनुबन्धीय (contractual) सम्बन्ध होते हैं। बड़े समूहों में व्यक्ति के कर्तव्य और कार्य निश्चिन्त होते हैं। साथ ही इन समूहों के जीवन में स्वयं प्रेरित समायाजन की बहुत कम गुंजाइश होती है। यहाँ तो हर प्रकार का समायाजन विधिवत् और नियमानुसूल होता है।

६ इन समूहों में नियंत्रण औपचारिक होता है। नियंत्रण के साधन विविध नियम कानून आदि होते हैं। कड़ा नियंत्रण रखने पर भी सन्तुष्टि इसके प्रभाव से बचते रहते हैं। यह नियंत्रण उनके निजी जीवन पर लागू नहीं हो पाता इसलिए यहाँ सदस्यों की सामाजिक जीवन से पृथक् और स्वतंत्र रहने का अधिक अवसर मिल जाता है। नियंत्रण करने वाली सत्ता वास्तविक तथा इकारार पर आधारित होती है।

७ व्यक्तित्व पर आकस्मिक, अप्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ना है।

८ द्वितीयक समूहों के जीवन में समायाजन करने के लिये व्यक्ति को विशेष कठिनाइयाँ या सामना करना पड़ता है वह बहुत बार असफल भी होता है।

प्राथमिक और द्वितीयक समूह—दो विपरीत जादश

ऊपर हमने दो समूहों का वर्णन किया है जो एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न और विपरीत हैं। वास्तविक गणतंत्र में इन दोनों स्वरूप समूहों का मिलना कठिन

हाना है। अधिकांश समूह एक हात हैं जा इन का विपरीत आदर्शों के बीच में होने है। इसलिये, प्राथमिक और द्वितीयक समूहों में कठोर परिश्रम नहीं किया जा सकता। बहुत बार 'यूनायिक्' रूप में द्वितीयक समूहों में प्राथमिक समूहों के कुछ गुण मिल जाते हैं।

महासमितियाँ या विशद सघ

आज अब हम आधुनिक समाज में विशेष महत्त्व वाले एक प्रकार के सामाजिक समूहों का अध्ययन करें। आदिम समाजों, भीमावर्ती निवासों या गाँवों में जीवन अप्रत्याशित सरल होता है। यहाँ प्रभावशाली संचार का क्षेत्र छोटा होता है। इसलिये आमन-सामन के समूह ही जीवन में अधिकाधिक प्रयोजना की पूर्ति करते रहते हैं। किन्तु जब समाज बढ़ता है और उसमें जटिलता आ जाती है तो एक दूसरे प्रकार के समूहों का निर्माण होता है। विशाल सगठन अवैयक्तिक और द्वितीयक सम्बन्ध तथा विशेषीकृत कृत्य इनकी विशेषता होती है। हिता में विभेदीकरण होता है और दक्ष लोगों की सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है। हिता के प्रसार और ऐसे क्षेत्र के कारण एक जटिल सगठन का निर्माण होता है। यह सगठन न तो स्थानिक होता है और न म्यातीय समूहों द्वारा नियंत्रित होता है। सदस्यों की संख्या बहुत बड़ी होती है और वे विभिन्न स्थानों में फैले होते हैं। उनके कारण एक ही जा आमन-सामन रख कर नहीं किया जा सकता। चूँकि सदस्यों की संख्या बहुत बड़ी होती है वे एक साथ रहकर कार्य भी नहीं कर सकते हैं और न जटिल प्राविधियों को ही समझते हैं इसलिये उनकी आगे से एक कमचारी वर्ग द्वारा कार्य कराया जाता है। उपरोक्त वर्गों वाली महासमितियाँ आधुनिक राज्य आर्थिक कार्यालयों अन्तर्गत नव घासिक सगठन राष्ट्रिय राजनितिक दल और श्रमसघ आदि हैं।

विशद सघ वृक्षोच्छ्रित सगठन होते हैं। इनमें अनेक विभाग होते हैं। इनमें भी अनुपचारिक प्राथमिक समूह बन जाते हैं। विशिष्ट या अनुपचारिक रचनाओं में दूसरे आमन-सामन के समूहों में संचारिक विभाग समितियाँ घासि बन जाते हैं किन्तु उनके स्वभाव और कार्य में अन्तर होता है। इनके मुख्य सदस्य अनिश्चरता, प्रतिनिधि अधिकारी या अन्य की भूमिकाओं में होते हैं। संख्या का कार्य अधिकाधिक निष्क्रिय हो जाता है। इन विशाल और जटिल सगठनों के मुख्य हानों के कारण वे उसमें कम सम्मिलित हो पाते हैं। इस प्रकार बड़े राज्य कार्यालयों कार्यालयों, घासिक सगठन राजनितिक दल या श्रम-सघ में सदस्यों की भारी संख्या नाम मात्र की रहती है। न ता के प्रियाशील हा हा पाते हैं और न उनके कार्य या विशाल सगठन के उद्देश्यों और नीतियों को अधिक प्रभावित कर पाते हैं।

बड़े सगठनों के विशेष लक्षण और वारिकता और घासिक नियमन हैं। श्रम विभाजन और श्रम का कर्तव्यकरण होता बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। साधारण

सदस्य की भूमिका दोनों सक्रिय और निष्क्रिय होती है। साथ ही, वह कई सगठनों का सदस्य एक साथ ही होता है। समिति के बढ़ने से साधारण सदस्य की भूमिका की निष्क्रियता में वृद्धि होती है और एक स्थिति ऐसी आती है जब वह यह सोचने लगता है कि समिति का योग्य यत्र उससे पूर्णतया पृथक् है जिसके नियंत्रण से वह परे है। इस प्रकार की भावना राज्य के नागरिकों तथा आर्थिक कारपोरेशन के साधारण सदस्यों में पाई जाती है। शेष महासमितियों के संस्था में भी इसी प्रकार की भावना विद्यमान रहती है। कारण उन्हें कभी वार्षिक चंदा दे देने, या चुनाव में अपना मत देने अथवा कभी कभी साधारण सभाओं में सम्मिलित हो लाने के अनिश्चित उन समितियों की नीतियों और कार्यों में कोई भी प्रभावपूर्ण दखल नहीं रहता है।

कुछ समाजशास्त्रियों का कथन है कि जटिल समाज की वृद्धि से प्राथमिक समूहों के स्वभाव और उनकी ऐक्य शक्ति में ह्रास जा गया है। प्राथमिक समूह सामुदायिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति हैं जिनमें सामूहिक सम्मिलन का अर्थ महसूस होता है। जटिल समाजों में इन सम्बन्धों का अधिक धिक्कल और द्वैतीयक सम्बन्धों में देखा जाता है। इस प्रकार के विचार जर्मन समाजशास्त्री टानीज स्पेंगलर और लेविस ममफोर्ड ने प्रस्तुत किये हैं। हाँ यह सत्य है कि अधिक विकसित सम्यताओं के प्रमुख लक्षण कम घनिष्ठ और कम व्यक्तिगत सम्बन्धों में वृद्धि और उनकी कृत्यात्मक प्रबलता है। किन्तु यह निश्चय नहीं है कि प्राथमिक समूहों वाले समाज का सामुदायिक जीवन द्वैतीयक समूहों या महासमितियों वाले समाज की अपेक्षा कम है अथवा पतित हो जाता है। सम्भवतः उसकी अभिव्यक्ति दूसरे तरीके से होती है और विगद एकताओं (unities) जैसे राष्ट्र या विशाल क्षेत्र से सलग्न रहता है।¹ उपरोक्त विवेचना से यह संकेत तो मिलता ही है कि प्राथमिक समूह और महासमितियों में कुछ स्पष्ट भेद है।

विशाल सामाजिक समूहों या महासमितियों के अन्दर भी प्राथमिक समूह बन जाते हैं। हम पहले ही कह चुके हैं कि प्राथमिक समूह सामाजिक जीवन की नींव हैं और इन्हीं समूहों में व्यक्ति स्वतंत्रता से अपनी इच्छाओं, आशाओं और प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त कर सकता है। यहाँ के स्वाभाविक वातावरण में वह अपने सच्चे रूप में प्रकट होता है। इन्हीं में उसके व्यक्तित्व का अबाध विकास होता है। माध्यमिक समूहों या महासमितियों के सगठन में अव्यक्तता और अधिचारिकता से व्यक्ति डूब जाता है। वह दूसरे व्यक्तियों से घुन मिल कर बात करत, रहने या कार्य करने का अवसर ढूँढता है। इसी प्रवृत्ति का परिणाम है कि आधुनिक जटिल संस्थाओं में आर्गित करने वाली गोष्ठियों तथा गुटों की वृद्धि हुई है।

सामूहिक जीवन की साधारण विशेषताएँ

मूलभूत रूप में एक सामाजिक समूह का निर्माण मानसिक दशाघ्रा पर आधारित है। समूह में और उनके द्वारा ला क्रियाएँ होता है उनकी यथायथा व्यक्ति मद्रम्या की उन प्रक्रियाघ्रा प आधारित ह जो दूम मद्रम्या की उपस्थिति में ही उच्यत होती है। समूह क अस्तित्व का नान हम मद्रम्या क परस्पर और वाहरी लाग क माप किए गए व्यवहार को दनकर होता है। जनिको न उचित ही निजा है कि समूह म्दल व्यक्तिया का सहवाम नही है वह तो व्यक्तिया की भूमिकाघ्रा का समन्वय है। समूह का एक प्रयोग निद्र तप्य मूलत वही व्यक्ति अनुभव कर व्यवहार करत है। उनके अनुभव मूयाकक और क्रियाशील होने हैं।¹ मनुष्या सघरा को समूह तब कह्ना जब व्यक्तियों के और आधारभूत सामूहिक अनुक्रियाघ्रा के बीच अन्तमन्वय स्थापित हो जाए। सम्पत्तोजिज्ञ इन मानसिक प्रतिक्रियाघ्रा के synergism का भाग मानना है। बूल इहें हम भावना और गिडिगज सजातीय चेतना कह्त हैं।

(१) साधारण सामाजिक प्रत्युत्तर—समूह में रहन और काय करन पर व्यक्ति को यह अनुभव हान लगता है कि वह किसी बडी चीज का अग है। समूह उन एक एना समूहूए लगता है जो उनकी (व्यक्ति की) इच्छाघ्रा से स्वतत्र रह कर काय करना है। उसे धीर गीरे यह भी प्रतीत हान लगता है कि समूह की क्रियाएँ उन पर दबाव डालने में समन्वय हैं। और कभी-कभी यह दबाव सचमुच पडता भी। समूह उन पूरे स्वच्छन्द नहीं रहन दना। उनकी इच्छाघ्रा क्रियाघ्रा तथा महवा-लाग्याघ्रा सभी पर 'पूनाधिक' प्रनिबन्ध रन्ता है।

जब व्यक्ति के निज्जी जीवन में समूह कई अयरोप डालना है या उनकी इच्छाघ्रा या भावनाघ्रा का बुचल दना है उन समय ता व्यक्ति समूह को 'कूर जगन' या दन्म जमाना कह कर उनकी भनना करता है। यदि 'नका' आधारन समूह दोग अन्तित व्यवहार के विद्रु है ता उन प्रपराधी या पागल कह कर नदू म अगव नहीं हान क्रिया जाता। जहाँ उक्त म्वास्यों की पूति में दूमरा का महयाग तेना प्रनिबाध हाना है वहाँ वह अपने को समूह क अन्तित समन्वयता है। व्यक्तिया की अपने समूह के माप अन्तितना क विविध घ्रा हान है किन्तु सभी समूह में इन अभिप्रना की 'दूनतम' मापा प्रनिबाधन गई जाती है। एक समूह के सदस्या में मानसिक भावना होनी है। क एक हा विचारों मूया और क्रियाघ्रा को सममूरीत करन है। अपने समूह में रहन पर 'निक' पर का मा दातावरन पाता है। वहाँ उन

1 Znaniecki, Florian, Social Groups as Product of Particulating Individuals
Quoted by Gillin and Gillin in Cultural Sociology p 203

प्रोत्साहन मिलता है और उसकी भावनाओं का दूसरे लोग भी ग्रहण करते हैं। एक समूह के चरित्रों को अपने जीवन, विचार, सम्पत्ति और सस्कृति की सीमाएँ मालूम होती हैं। कौन अपना है और कौन पराया तथा किस प्रथा या विचार का अपनाना चाण्डाल्य किमकी नहीं—इस बार में समूह के सदस्यों में स्पष्ट या धुंधली चेतना रहती है। यही चेतना उनके व्यवहार को नियमित करती है। समूह की स्थिति से चरित्रों में परस्पर आदान प्रदान उत्पन्न होता है। वे एक दूसरे से बात करते हैं, मिलते हैं और काय करते हैं। इससे उनमें पारस्परिकता पैदा होता है।

सामाजिक अनुक्रियाओं में विविधता के दो कारण होने हैं —(अ) सम्बन्धित समूह का प्रकार और (आ) सस्कृति रचना।

(२) समूह की सम्पत्ति —नए समूह के सदस्यों के सामाजिक चरित्रों या चरित्रों के एक केन्द्र को समूह की सम्पत्ति कहा जाता है। इस सम्पत्ति का उपयोगितावादी दृष्टि होता है। यह समूह की एकता का प्रतीक भी है। एक सामाजिक भूखण्ड, इमारत, मस्जिद भण्डा आदि विस्तार या ध्वज या नारा समूह की सम्पत्ति हो सकता है। दुर्लभ इनको सामूहिक प्रतिनिधान कहा है।

(३) व्यक्ति और समूह—यद्यपि समूह समाज की रचनात्मक इकाई है किन्तु फिर भी उनका निर्माण व्यक्तियों से होता है। बूढ़ न कहा या कि अकला पृथक् व्यक्ति सिर्फ एक भावात्मक धारणा है। अनुभव से तो हम व्यक्ति और समाज दोनों को साथ-साथ पाते हैं। वास्तविकता तो मानव जीवन है, व्यक्ति और समाज उसमें दो पहलू—व्यक्ति या सामाजिक—हैं। जिसे हम सामूहिक जीवन कहते हैं वह व्यक्तियों के पृथक् जीवनों का प्रतिमान रूप है। दूसरे व्यक्ति किसी समूह में ही रह कर समाज में स्थान पाते हैं और वही उसकी विविध भूमिकाएँ निश्चित होती हैं।

व्यक्ति वह समूहों का एक माध्य ही साध्य होता है। आधुनिक समाजों में कई बार व्यक्ति को समूहों के प्रति अपनी भक्ति में सघन मिलता है क्योंकि एक ही माध्य वह अंत समूहों और बाह्य समूहों का साध्य होता है। परंतु ध्यान रहे, किसी भी व्यक्ति का समाज के सभी समूहों का साध्य बन जाना अनुभव है। वह बुद्ध समूहों का नियोजन बुद्ध का नाम-मात्र को साध्य बनता है और शेष समूहों से अनजानी बना रहता है। वह एक दिन में ही भिन्न भिन्न समूहों पर भिन्न भिन्न समूहों की गतिविधि में सम्मिलित होता है।

प्रत्येक व्यक्ति समूहों में वास्तविक कार्य करता है और जिसका उसमें अपना हाना है इन दोनों में बहुधा भेद होता है। इसलिए हम व्यक्तियों की वास्तविक भूमिका और अपनी भूमिका में अंतर समझना चाहिए।

समूह के समस्या में जो सामाजिक प्रक्रियाएँ होती हैं उनका प्रभाव मध्यम के व्यक्ति पर पड़ता है। प्राथमिक छोटे समूहों में इन प्रक्रियाओं का प्रभाव बहुत गहरा और व्यापक होता है। परन्तु माध्यमिक समूहों में यह प्रभाव विलुप्त हो जाता तथा आंशिक पड़ता है। मनुष्य के लिए उनमें प्राथमिक और माध्यमिक समूहों में सामाजिक प्रक्रिया के निरन्तर और विस्तृत क्षेत्र (fields) बह जा सकते हैं।

(४) जाति-द्वेषिता—जाति-द्वेषिता समूहों की सामाजिक विपत्ति है। इन प्रकार की भावना का आधार व्यक्ति द्वारा अपने समूहों को दूसरों से महत्वपूर्ण और कर्तव्य समझना है। जाति-द्वेषिता में समूहों की एकता और दूसरे समूहों के प्रति उनकी विरोध भावना की अभिव्यक्ति है। हम पहले पढ़ चुके हैं कि इन व्यक्ति अपने समूहों को दूसरों से श्रेष्ठ महत्वपूर्ण अधिक महत्त्वपूर्ण समझते और समझते हैं कि वे जाति-द्वेषिता का त्याग कर दूसरों समूहों को अपना सकते हैं। हम इस विषय पर महत्त्व के परिच्छेद में काफी लिख चुके हैं।

(५) जाति का जन्म और विकास समूह में होता है—जिन समूहों में विचारों के प्राथमिक समूहों व्यक्ति रहता है व अनुभव का एक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं जिसके प्रति व्यक्ति प्रत्युत्तर देता है। समूह स्थिति में प्रकाश के वातावरण उन्मत्त ज्ञान से और उनके प्रति भावनात्मक प्रत्युत्तर में एकाग्रता और मनावृत्तियाँ बन जाती हैं जिनका बर्तन में कठिनाई होती है। हमारी प्रथाएँ भावना की आदतें अज्ञानमय प्रत्युत्तर मनावृत्तियाँ और इन प्रकार की सीखी हुई प्रतिधियाँ समूहों द्वारा प्रस्तुत पृष्ठभूमि में रह जाती हैं। समूहों के मूल्यों और दृष्टिकोणों का उन पर गहरा छाप होता है।

समूहों के समस्या में हम भावना रहती है। इन कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी स्वयं का देता है। वह अपने का अपने से बड़े और ऊँचे शक्ति का मध्यमानता है। उनकी अनुभूति समूहों के दूसरे समस्या तक जाती होती है। समूहों के सम्मिलित जीवन और उद्देश्यों में जीव व अज्ञानमय रहते हैं। वास्तव में इन भावनात्मक मनावृत्तियों की उत्पत्ति है। दूसरे ही समूहों की कुछ निजी विशेषताएँ और जन्म होते हैं। उनकी छाप उनमें समाया पर पड़ता है। परन्तु जन्म नहीं कि यह जन्म नहीं पर एक-दूसरे में पड़ता है। समूहों की व्यक्ति पर छाप का दायरे ही हम कहते हैं कि यह दायरे ही परिचय देता है अर्थात् विश्वविज्ञान का विद्यार्थी है। छात्रों में छात्रों और स्थायी समूहों की छाप उनके सदस्यों पर पड़ती है। हमारे समूहों की कुछ सामाजिक व्यवस्थाएँ और आदतें होती हैं। पाठ और बर्तन तथा सभ्य समूहों के लिए सामाजिक व्यवस्थाएँ अतिव्यक्त मानते हैं। शीघ्र ही समूह

अपने सदस्या से एक विशिष्ट प्रकार के आचरण की अपेक्षा करता है। इस अपेक्षा को पूरा करने के लिए वह अपने सदस्या पर नियंत्रण करता है। नियंत्रण दबाव अथवा प्रलोभन पुरस्कार अथवा दण्ड द्वारा किया जाता है। अन्तिम समूह को सामान्य उद्देश्य तथा "यापक सहानुभूति उसके सदस्यों में सहकारिता की भावना को जन्म देते हैं। वे एक दूसरे पर आश्रित रहकर विशिष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

जातिकेन्द्रीयता

प्रत्येक समूह समुदाय अथवा समाज के सदस्या में यह विश्वास करने की प्रवृत्ति होती है कि उसकी संस्कृति रहने-सहने सोचने विचारने और काम करने के ढंग (या अभ्यास) सबसे अच्छे हैं। "जातिकेन्द्रीयता (ethnocentrism) एक ऐसी भावनात्मक मनोवृत्ति है जिससे लोग अपने समूह प्रजाति अथवा समाज को दूसरी सांस्कृतिक या प्रजातिक इकाइयों (समूहों या समाजों) से श्रेष्ठ समझते हैं और जिससे उनमें बाहरी लोग तथा उनके ढंगों के लिए कुछ घृणा भी होती है।" संक्षेप में लोग अपने अंतर्गत समूह की संस्कृति तथा अन्य सभी विशेषताओं को सर्वश्रेष्ठ मान बैठते हैं। जातिकेन्द्रीयता एक समाज के सदस्या में प्रचलित उस प्रवृत्ति को कह सकते हैं जिससे वे अपने समाज और उनकी संस्कृतियों का निरूपण अपनी संस्कृति में प्रचलित मानकों के अनुसार करते हैं।

भारत में युवक युवतियों को परस्पर स्वतंत्रतापूर्वक मिलने, घूमने मनोरंजनगृह (सिनमा आदि), होटलों में जाने की अनुमति समाज नहीं देता है। हम साधारणतया इस नियम को एक वांछित नियम स्वीकार करते हैं। अतएव जब हम यूरोप या अमरीका के युवक युवतियों को सावजनिक जीवन में अथवा निजी जीवन में स्वतंत्रतापूर्वक मिलते जुलते देखते हैं तो उनकी इस आजादी पर नाक भौंह दिखाते हैं। कभी कभी तो हम उनके निर्वाचन मसगों का दुर्गन्धितता की काली सूची में नामों को दर्ज कर प्रदर्शित करते हैं। इसी प्रकार, पाश्चात्य देशों के लोगों को जन्म यह मालूम पड़ता है कि भारत में जनसंख्या का पाँचवाँ भाग 'अछूत' माना जाता है ताकि आश्चर्य चकित हो जाते हैं और भारत को 'प्रतिगम्य' अथवा असम्य कहने में भी नहीं हिचकते। इसी प्रकार से भिन्न भिन्न समाजों के विभिन्न अभ्यासों का भिन्न भिन्न मूल्यांकन होता है। यहाँ पर यह स्मरणीय है कि यदि हम अपने समाज के विचारों तथा प्रथाओं का पालन करते हैं तो हम में जातिकेन्द्रीयता है यह कहना गलत होगा। समाज के प्रचलित विचारों प्रथाओं आदि से अनुत्पत्ता के उपयोगिता मानों और व्यावहारिक कारण हैं।

अपने समूह की संस्कृति से हमारा इतना घनिष्ठ लगाव और मोह रहता है कि दूसरी संस्कृति के किसी उपकरण की अधिक उपयोगिता या ताकत महत्व भी हमें

अपनी सस्कृति से विमुख नहीं कर पाता । हम चाहते पर भी कई बार अचेतन अथवा अवचेतन रूप से अपनी सस्कृति के हर पदार्थ तथा विचार को सर्वश्रेष्ठ मानने पर आदतन विवश हो जाते हैं । नगर, जातिके-श्रीयता की शिक्षा मनुष्य को जीवन-पथ से दौड़ाती रहती है ।

हर समाज के घरा, विद्यालयों वगैरों आर्थिक, राजनतिक धार्मिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं में व्यक्ति को विधिवत् अथवा अनौपचारिक रूप से यह सिखाया जाता है कि वह अपने देश समाज और सस्कृति के प्रति बंधादार है । अपने समाज और सस्कृति की महानता का पाठ व्यक्ति का निरन्तर अनेक युक्तियाँ में सिखाया जाता है । कई बार दूसरे समूहों के प्रति अजनबीपन व्यंग्य घृणा अथवा निरादर को सुलभ-सुलभ प्रचारित किया जाता है और कई बार यह सब धीरे धीरे अप्रत्यक्ष रूप से सिखाया जाता है । जातिके-श्रीयता की भावना को हट करन में अचेतन शिक्षा का सबसे अधिक महत्व है । दूसरे समूहों के प्रति अपने पूर्व निर्णयों तथा अरुचियों को प्रत्यक्ष मनुष्य जनप्रिय गाथाओं, कहावतों मुहावरों आदि में समाविष्ट कर लेता है जिनको पारस्परिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित किया जाता है । हर समाज के पुराणों तथा लोक-साहित्य में दूसरे समाजों के प्रति पूर्व निर्णयों अथवा अरुचियों का भारी भण्डार भराया होता है ।

जातिके-श्रीयता की शिक्षा देने वालों एजेंसियों में आधुनिक सिनेमा थियटर, रेडियो और टेलिविजन का बड़ा महत्व है । बच्चा फिल्मों नाटकों अथवा प्रसारण में दूसरे समूहों के प्रति अपनी अरुचियों अथवा पूर्व निर्णयों को प्रकट करने की कोई माँग अथवा इरादा नहीं होता किन्तु भी उनका प्रभाव उतना ही व्यापक और स्थायी होता है जितना नियोजन करने पर होता है । जातिके-श्रीयता की विचारयुक्त और नियोजित शिक्षा विशेषीकृत संस्थाओं के जरिये मिद्धांत प्रचार से दी जाती है । भारतीयता के नाम पर हिंदी का प्रचार, मानवमुक्ति की दुर्गा देकर नाम्बवाँ अथवा 'जनन-प्रवाद का प्रचार इस प्रकार की शिक्षा के आधुनिक उदाहरण हैं । यद्यपि सम्यता के विकास में यह कार्य अनेक प्रगती मूढमता और बालाकी में हो जाता है परन्तु इसमें कई बार सङ्कुचितता और आक्रान्तता का प्रबल हाँ जाना अस्मभव नहीं है ।

यह सत्य है कि जातिके-श्रीयता से सामूहिक संगठन की सुदृढता एवं स्थिरता का प्रोत्साहन में बहुत अधिक सहायता मिलती है । आपाद काल (crises) में जातिके-श्रीयता से ही देश या राष्ट्र का मनायन ऊँचा बनाये रखा जाता है । इस प्रवृत्ति का कारण मनुष्य की सस्कृति युगा-युगा तक मुरझिन रहती है¹ परन्तु इस मध्य में भी आगे नहीं फेंकी जा सकती कि विभिन्न समूहों में समाजों अथवा देशों में अनेक सांस्कृ-

तिक, धार्मिक और राजनतिक सघर्षों या विश्वमान द्वेष का कारण भी यही भावना है। जातिकेन्द्रीयता का कारण संस्कृति के स्रोत के विषय में हमारी अज्ञानता है। हम विभिन्न संस्कृतियों के विकास में उनके बीच आगमन प्रदान का भूल बटन है और अपनी संस्कृति पर दूसरे समाजों के आण को 'यूननम मानन' लगत है। इससे हम दूसरे समाजों के गुणों की प्रशंसा तो करते ही नहीं अपन गम्भीर दोषों को भी उगारता पूर्वक सहते रहते हैं। क्या इस प्रकार 'जातिकेन्द्रीयता' एक प्रतिशामी शक्ति नहीं बनी जा सकती? समाज के अध्ययन में जातिकेन्द्रीयता के प्रभाव के कारण समाजशास्त्री को बतानिक कम विषयज्ञता बनाने रखन में कठिनता हाती है।¹

1 For detailed study of ethnocentrism refer to Cuber's *Sociology* (Chapter 11) and Odum's *Understanding of Society*

समुदाय एवं राष्ट्र

समुदाय

प्रत्येक मनुष्य किसी गांव, नगर अथवा राष्ट्र में रहता है। बाल्यकाल में ही वह इनमें से किसी में रहना आया है। व्यक्ति का जन्म परिवार में होता है। इसी परिवार सामाजिक जीवन का प्राथमिक उदाहरण है। परन्तु वृद्धा ज्यों ही चतन फिर लगेता है वह पटोम के अर्थ प्रच्छा तथा वयस्का में परिवर्तित होत लगता है। उन लोग क मघप में उनकी अनेक आवश्यकताओं पूरो होता है। वीर-धो आधु में वृद्धि के साथ उनक मनग का क्षेत्र बढ़ता जाता है। वृद्धा गांव क अनेक गा. क सम्पक में आता है अथवा अपने कम्ब या नगर क भुम्बल के ज्वाला लोग में सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करता है। उस अनुभव हान लगता है कि उनक वामस्थान क समान अर्थ लोग में सम्पक बढ़ाना सहयोग और प्रतिस्पर्धा करना अथवा उन लोग क समान की हितों उद्देश्यों तथा दृष्टिकोणों का विचार करना उनक लिए आवश्यक है। मर्यप में व्यक्ति का सामाज्य प्रत्या (भूमिखण्ड) में बत लागी न साथ मिलकर सामाज्य सामाजिक-मनाविनाम व्यवहार अपनाना पता है। इस प्रक्रिया से व्यक्ति समुदाय में प्रवेश करता है और धार धार रूपन का उनका स्थित सम्पक बना लता है। मान्यरगतयो व्यक्ति का अतिरिक्त जीवन यदि लागू नहा सभी समुदाय में चीता है। अतएव (मनुष्यो क) सामाजिक जीवन क विना भी पत्तू का अधाय पान तब तक नहा प्राप्त है। सक्ता तब तक समुदाय क माटन तथा मनुष्य क उनक सम्बन्ध का दयालन विवेकयण न किया जाय।

मनुष्य क एक एक राष्ट्र का जा एक निश्चित क्षेत्र में रहता है तथा जिनका एक सामाज्य जीवन टा हा समुदाय कहत है। एक समुदाय स्थानाय प्राथमिक समूह है।

अनेकानेक प्राथमिक समूहों में समुदाय तथा समाज एक ही हाने हैं व पृथक-पृथक नहीं हान। जनजातीय समुदाय ही प्राथमिक समाज हाना है। परन्तु अधिकांश

सम्यताओं में, समान वद पृथक् समुदायों में निर्मित होता है जो 'सूनाधिक' रूप से एक सामाजिक सामाजिक जीवन में सम्मिलित होते हैं। इनमें से प्रत्येक समुदाय की भाषा शक्ति, रिवाज, शासन, वेष भूषण, सभ्यता तथा सामाजिक संहिताएँ आदि दूसरे समुदाय की इन बातों से अलग अलग पृथक् होती हैं। किन्तु वह प्रायः स्वतंत्र ही दीखती हैं। भारत के गाँव अथवा छोटे शहर के समुदाय यद्यपि अब भी सामाजिक संगठन का केंद्र बने हुए हैं परन्तु यहाँ के विशाल महानगर और अमरीका इन्डियाना के गाँव अथवा छोटे शहर अलग इस प्रकार के केंद्र नहीं रह गये हैं। आधुनिक विकसित सम्यताओं में सामाजिक संगठन समुदाय के वृत्त से बाहर दूर जाता जा रहा है।

उपरोक्त पक्षों से यह सबूत मिलता है कि समुदाय मनुष्य का सर्वाधिक सर्वाङ्गीण समूह है, जो किसी निश्चित भू-खण्ड में बसता है और जिसमें व्यक्ति के लिये अपना सम्पूर्ण (या अधिकांश) जीवन बिताने की सम्भावना मौजूद है। यह आवश्यक नहीं कि समुदाय आत्मनिर्भर हो। हम पूर्व उक्त कर चुके हैं कि आधुनिक सम्यता की उत्पत्ति से समुदाय की इस विशेषता में घटती आ रही है। सभी समुदायों के दो आधार होते हैं (१) भू-खण्ड जिसमें समुदाय के सदस्य निकट निकट बसे हों, और (२) इन सदस्यों में एक 'सामुदायिक भावना' का होना। सामुदायिक भावना से सभी सदस्यों में एकता की भावना आती है। वे समुदाय को अपना समझते हैं। उनका अर्थ सदस्यों तथा भूमिखण्ड से अनुराग विकसित हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप उनमें एक से हित उद्देश्य और मनोवृत्तियाँ विकसित होती हैं।

समुदाय की परिभाषाएँ

वागाडस ने एक निश्चित क्षेत्र में रहने वाले सामाजिक समूह को जिसमें 'हम भावना' का कुछ अंश हो एक समुदाय कहा है। जब समुदाय के सभी सदस्य साथ-साथ रहते काम करते हैं और उनमें एक होने की भावना आ जाती है तो आत्मा का एकता का विकास हो सकता है।¹ आसवान और 'यूमर' ने लिखा है कि एक समुदाय एक निश्चित क्षेत्र तक ही सीमित रह सकता है अथवा उन सबों को तक एतना विस्तार हो सकता है, जो समान मूल्यों और मनोवृत्तियों के कारण एकता में बंधे हैं। उन्होंने समुदाय की परिभाषा इस प्रकार की है 'एक समीप के भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले लोगों के समूह को जिनके हित और क्रियाओं के सामाजिक केंद्र हैं और जो जीवन की मुख्य बातों में साथ-साथ मिल जुलकर कार्य करते हैं एक समुदाय कहा जाता है।

1 Bogardus *Sociology* p 123

2 Community is a group of people living together in a contiguous geographical area having common centres of interests and activities and functioning together in the chief concerns of life — Osborn and Neumeyer *The Community and Society* (1933) quoted by Bogardus p 123

विंग्ले डैविस ने भी समुदाय को एक विशिष्ट प्रकार का क्षेत्रीय समूह कहा है जिसकी सदस्यता एक निश्चित वास्तव्यमान में सम्मिलित होने पर प्राप्ति है। वह समुदाय के दो लक्षण—भौतिक और सामाजिक—प्रधान मानत हैं। समुदाय में क्षेत्रीय समीपता और सामाजिक पूणता का होना आवश्यक है।¹

पार्क और बर्गस के अनुसार समुदाय 'संस्था का एक पुञ्ज' है। जब युवा शक्ति स्थायी रूप किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में जागा क समूह एकत्र होत हैं तो वहाँ इन संगठित सामाजिक प्रतिमानों (संस्थाओं) का पुनर्जनन का प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है।²

सुई वय न भी समुदाय को एक एका सामाजिक समूह कहा है जिसमें सदस्यों में उस समूह तथा बड़े समाज से एक होने की चेतना (awareness) हो तथा वे एक निश्चित के भौगोलिक प्रदेश में बसा हो।

मकजी न समुदाय की परिस्थितियों की उपज (ecological product) मानत हुए लिखा है कि यह प्रतिस्पर्धा और व्यवस्थापन की प्रक्रियाओं का परिणाम है। इन कारकों में मनुष्यों के सहयोग तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों का समय और स्थान में विभाजन हो जाता है और इनसे ही समुदाय की उत्पत्ति तथा परिवर्तन होते हैं। अर्थात् विभिन्न कालों और क्षेत्रों में सांस्कृतिक समूहों (समुदायों) की स्थापना परिस्थितियों की प्रक्रियाओं (ecological processes) से होती है।³

मकाइवर और पज की परिभाषा इस प्रकार है जब एक छोटे या बड़े समूह के सदस्य इस तरह साथ-साथ रहते हैं कि उनके एक या दो स्वार्थ एक से न होकर वे सामाजिक जीवन की मूलभूत दशाओं में सम्मिलित हों तो ऐसे समूह को समुदाय कहा जाएगा।⁴

उपरोक्त परिभाषाओं से यह संकेत स्पष्ट मिलता है कि समुदाय का अध्ययन में तीन दृष्टिकोणों पर ध्यान दिया गया है (१) बुद्ध विज्ञान समुदाय का निर्माण परिस्थितियों की प्रक्रिया पर प्राथमिक मानत है। इस परिस्थितिशास्त्रीय दृष्टिकोण कहते हैं, (२) बुद्ध विज्ञान समुदाय को सामाजिक संरचना का एक भाग (या पहलू) मानत है तथा (३) बुद्ध विज्ञान में विभिन्न प्रकार के समुदायों तथा उनके निर्माणों पर विशेष ध्यान दिया है। परन्तु कोई भी दृष्टिकोण क्या न रहा हो, एक वास्तविक समुदाय साधारणतया एक-एक समूह का माना जाता है जिसका एक

1 Davis *Human Society* pp 309-313

2 Park and Burgess *Introduction to the Science of Society* 1924 p 493

3 Quoted by Bo,ardus *Sociology* p 124

4 We cover the members of any group small or large live together in such a way that they share not this or that particular interest but the basic conditions of a common life, we call that group a community
Maclver and Page *op cit* p 9

भौगोलिक आधार है तथा जिसमें सामाजिक सम्मिलन की सामाजिक मनावनात्मिक भावना है।

समुदाय के तत्व

यदि हम ऊपर दी गई तथा अर्थ परिभाषा का विश्लेषण करें तो उन सब में समुदाय के चार आवश्यक तत्वों को महत्वपूर्ण माना गया है —

(१) लोगों का एक समूह (२) एक सामाजिक भूखण्ड (३) एक सामाजिक जीवन ढंग और (४) सर्वांगीण अथवा लगभग आत्मनिर्भर जीवन।

सारांश यह है कि एक समुदाय में एक निश्चित भू-भाग में रहने वाली सम्पूर्ण जनसंख्या आती है जो एक सामाजिक नियम पद्धति से नियमित होने वाले जीवन-व्यवहार से एकता में बंधी हो। समुदाय की एक विशिष्ट संरचना होना अनिवार्य है। सामाजिक सामाजिक सम्बंधों को नियमित करने के लिए निश्चित नियम विकसित हो जाते हैं। एक छोटा समुदाय (पड़ोस गांव अथवा शहर) बड़े समुदाय का अंग हो सकता है। समुदाय के भीतर समुदाय हो सकते हैं। भारत का समस्त जनसंख्या एक समुदाय है जिसमें अनन्त छोटे बड़े गांव कस्बे, महानगर और क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक समुदाय हैं। प्रत्येक समुदाय में उसकी सदस्यों की अधिकांश अथवा सम्पूर्ण जीवन-दिनांक की शुरुआत विद्यमान होती है। समुदाय का सामाजिक जीवन ढंग एक निराली संस्कृति के विकास में सहायक होता है। इसकी विशिष्टता और पृथक्ता के कारण समुदाय का एक विशिष्ट नाम प्रचलित हो जाता है। एक शब्द में एक निश्चित क्षेत्र में रहने वाले लोगों के मूल सामाजिक समूह को समुदाय कहते हैं जिसमें एकता की अतिगहन भावना हो। इस समूह का आवश्यक तत्व है उसमें विकसित संस्थाओं का प्रतिमान। इनके अभाव में लोगों के किसी भी समूह से समुदाय नहीं बन सकता। जीवन के विभिन्न क्रमों के प्रति लोगों की प्रतिक्रियाओं का आधारभूत तरीका सामुदायिक संगठन है। अपने सदस्यों की आत्म-आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए इनके संगठन का जुटाया जाता है इसलिए धीरे-धीरे इनमें सच्ची सामुदायिक आत्मा विकसित हो सकती है।

मकाइवर और पंज समुदाय की दो ही विशेषताएँ मानते हैं (१) सामाजिक भूभाग अथवा वास्तविक आधार और (२) ऐक्यभावना अथवा सामुदायिक भावना। वास्तव में समुदाय के यही दो आवश्यक तत्व हैं। वास्तविक आधार को समुदाय का भौगोलिक आधार तथा समुदाय भावना को सामाजिक मनावनात्मिक आधार कहा जाना चाहिए। गिलास और गिलिन जो प्राथमिकतया भौतिक सीमा पर आधारित सभी स्थायी स्थानिक समूहों का समुदाय की संज्ञा देते हैं समुदायों की निम्नलिखित चार विशेषताओं का अभाव किन्हीं नवीन आवश्यक तत्वों का आविष्कार नहीं कर पाते हैं। (१) समुदाय एक भौतिक स्थान में ही सीमित रहना है जिससे क्षेत्र की

सीमाओं अधिकतया निश्चित हाता हैं और जिन्हें उसक मदस्य तथा बाहरी लाग दाना ही स्वीकार करत हैं। (२) समुदाय के सम्म्या की भौतिक समीपता एक प्रमान सक्षय है। यह आवश्यक नहीं है कि इन सबन्या म प्राथमिक मम्पक ही हो किन्तु साधारणतया बाहरी लाग स उनक सम्पकों की अपक्षा स्वयं उनक बीच के भौतिक मम्पक अवश्यनय अधिक सन्निकट हात हैं। (३) सामाजिक अस्तित्व की आधारभूत आवश्यकताया म सभी मन्म्य भागीगार हात हैं और (४) समुदाय म प्रचलित सामाजिक-व्यवहार क प्रतिमाना का निधारण सामाय भौगोलिक पयावरण और व्यक्तिया का भौतिक समीपता स हाता है।¹ इमी प्रकार कुछ अय लयना न समुदाय क जा चार आवश्यक तत्व—एक सामाय स्थायी भू भाग लाग का एक मजह सामाय जीवन और अधिकगत स्वयं पूण जीवन—गिनाय हैं क सब मत्राश्चर द्वारा निश्चित दा तत्वा स बाहर नहीं हैं। समुदायिक भावना क समक्य विनन ही श्रम का प्रया हूमा है जम एक्यभावना सम-परिचय की भावना मजातीय चनना, ह्य भावना सामुदायिक प्रात्मा अथवा राष्ट्रनतिक दायनिक प्राण का प्रसिद्ध शब्द-समूह सामाय ध्यया की सामान्य चेतना आदि। अथ आदय नमुदाय क दा आवश्यक तत्वा—सामाय भौगोलिक क्षत्र (वासन्धान) तथा सामाजिक मनावनानिक आधार (समुदाय भावना) पर कुछ विस्तार स विचार करेग।

वासस्थान

प्रत्येक समुदाय का एक स्वभाविक क्षेत्र होना है। एक ही भूमि-खण्ड या क्षेत्र म निकट रहन के कारण इमक सम्म्य का सामाजिक जीवन या जीवन-ग्य सामाय हाता है। समुदाय के सामाजिक जीवन पर उमक वामन्धान क प्राकृतिक स्वभाव का बडून भारी प्रभाव पडता है। सचमुच सामाजिक जीवन पर हमारा उमक क्षेत्रा की अमित द्याप रहती है। एक प्राकृतिक क्षेत्र म बनस्पति कीट-मनाड अथवा जावन्तु एक विविष्ट प्रकार के हाते हैं। उनका उन क्षेत्र स जविक उप-दायन हाता है। समुदाय के सामाजिक जावन का भी उनक भौगोलिक पर्यावरण का स्थान म उपयान्न होना है। परन्तु यह उपयोजन जविक नहीं साकृतिक हाता है। समुदाय का स्पष्ट रूप स क्षेत्रीय स्वभाव होना है। उनका अय है कि उनकी एक हा भूमि तथा एक समग्रहीत जीवन डग हाता है।²

गाँवा या शहरा की सीमाएँ स्वभाविक हाती हैं। यहा सामाएँ नमुदाय का विविष्ट रूप और आधार श्ती हैं। ये सीमाएँ सतुचित अथवा विन्तृत हा सरता है। छ ट-छाट गाँवा या कल्या की सीमाएँ सतुचित हाती हैं और बडे शहरा की बडून विन्तृत। इन सीमाया क अन्तर जनसम्म्या का फलन्व नमुदाय क सामाजिक जावन का गन्तता या जलितता क निधारण में एक महत्वपूण कारण है। हर नमुदाय

1 C. N. and C. L. Cultural Sociology pp 266-67
2 M. C. L. and Page 07 cu p 283

की संरचना में एक व्याख्या अथवा प्रतिमान होता है। एक गाँव को ही लीजिये। इसमें सिर्फ घर मन्दिर, कुएँ, घमशाला या पचायत घर जहाँ-तहाँ बने ही नहीं होते उनमें परस्पर सम्बन्ध रहता है और उनका स्थानिक स्वभाव से भी सम्बन्ध होता है। इसी प्रकार एक दश के एक परिसीमित भू-खण्ड में जा गाँव कस्बे या शहर बसे हाते हैं उनमें मेट्रोपोलिस राजधानी, कृत्यात्मक विशेषता वाले क्षेत्र तथा शहरो और गाँवों सबसे परस्पर सम्बन्धों का एक जाल सा बना होता है। शहर में मकान काम करने के केंद्र बाजार और दुकान, प्रशासकीय इमारत मनोरंजन के केंद्र, शिक्षा संस्थाएँ सभी तो एक व्यवस्था में बंधे होते हैं। सरल समुदाय में कार्य के केंद्र कम होते हैं। उनके पारस्परिक सम्बन्धों में जटिलता कम होती है। जस जसे समुदाय विस्तृत होता है उनके कार्य विभाजन और कार्य के विशेषीकरण में जटिलता आती जाती है जिसके कारण क्रिया के अनेक केंद्र विकसित हो जाते हैं।

सभी देशों में समुदायों की वर्तमान संरचना स्वाभाविक विकास का परिणाम है, अर्थात् आज समुदाय—गाँव शहर क्षेत्र—का जो प्रतिमान है वह अधिकांशतः अनियोजित रहा है। यह उन शक्तियों की उत्पत्ति है जो, मनुष्य जब कभी और जहाँ कहीं बसते हैं, प्रतिस्पर्धा आकर्षण, प्रबलता के लिए होड़ और आर्थिक व्यवस्था के लिए सहयोग के रूप में मानव समूहों में कार्यरत होती है। समुदाय के स्वाभाविक विकास से जो प्रतिमान बनता है यह उसके बढने के साथ बदल जाता है। सम्यता की शक्तियाँ भी उसमें परिवर्तन लाती हैं। बहुत थोड़े सालों पहले तक समुदायों के विकास में पीछे कोई पूर्वनिश्चित योजना नहीं रही है। शहरों में यह प्रवृत्ति बहुत स्पष्ट दिखाई देती थी। मकानों के खण्डों में विविधता अनियोजित और टेढ़ा मेढ़ी वृद्धि, धनी और गरीबों की वस्तियाँ तथा दूसरी ओर साफ सुथरे तथा ढग से बने हुए मकान तथा अन्य संस्थाओं की इमारतें—यह सब शहरी समुदाय के स्वाभाविक विकास का साक्ष्य है। ऐसी विकास में मकान घुब घुब, एक दूसरे से सटे हुए और अव्यवस्थित हाते हैं जिसमें मनुष्य के रहने और काम करने की आवश्यकताएँ मुचारे रूप से पूरी नहीं हो पाती। वास्तव में, उसकी आवश्यकताओं की निम्न उपस्था होती है।

मनुष्य की आवश्यकताओं की अपूर्ण पूर्ति या उनका उपस्था समुदाय के मुख्य कार्य या उद्देश्य के विपरीत है। अतएव थोड़े सालों से मनुष्य ने सम्यता से लाभ उठाकर समुदाय की प्राकृतिक रचना का नियोजन करना प्रारम्भ कर दिया है। रूस, इंग्लैण्ड स्कॉटलैंड अमेरिका, स्वीडन तथा भारत में भी हाल ही से गाँव, शहर या क्षेत्रों के समुदायों की प्राकृतिक रचना का विकास नियोजित किया है। गाँवों में मकानों तथा मनुष्य की समस्त कार्यवाही के केंद्रों का एक नियोजित व्यवस्था दी गई है। शहरों में भी मंडला, गलियाँ, पार्को रहने के मकानों, बाजारों शिक्षा केंद्र, व्यावसायिक तथा औद्योगिक केंद्रों, मनोरंजन के केंद्रों, सांस्कृतिक केंद्रों, धर्मनाला,

प्रशासकीय इमारतों आदि का स्थान निश्चित योजना पर आधारित रहता है। इस योजना का उद्देश्य सामाजिक जीवन की सभी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की संतुष्टि पूर्ण करना होता है। नियोजित समुदायों में व्यक्ति और समूह का सम्पूर्ण विकास के लिए सभी आवश्यक दशाओं का पालन किया जाता है। यहां सामुदायिक जीवन का सन्तुलित और सामंजस्यपूर्ण विकास होता है। टनसी बैली योजना तथा दामोदर घाटी योजना क्षेत्रीय समुदाय विकास के दो सफल प्रयोग हैं।

समुदाय भावना

समुदाय का स्थान में जितना वह बसा हुआ है अथवा उस भू-खण्ड से जितना पर बसा है कुछ अधिक है। वह केवल मनुष्य द्वारा निर्मित कोई प्राकृतिक ढांचा मात्र नहीं है। स्थान भू-खण्ड अथवा भौतिक ढांचे से समुदाय के केवल एक आधार का पालन होता है। यह समुदाय की वास्तविक रचना को प्रभावित कर सकता है। उसकी आंतरिक रचना का समुदाय का संस्था में एक ही भावना है जिससे हम मनो-सामाजिक ढांचा कह सकते हैं। इसी भावना को हम 'सामुदायिक भावना' में व्यक्त करने पाते हैं।

जब सभी एक ही स्थान में बाहरी समारंभ से प्रेरित एक अथवा तब लोग रहते हैं तो उनमें मिल-जुल कर रहने की तथा एक ही आधार पर काम करने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। उनमें उन सामाजिक कामों से पालन होने वाले सामाजिक मूल्यों का प्रकट होना है। समाज-सेवा शिविरों, फीजी छावनीयों, मित्र विहारों, जेना अथवा मुद्रकाल में स्थापित निर्वासन केंद्रों आदि अस्थायी और स्थायी मानव समूहों में एक ही स्थान पर रहने और सामाजिक हित और क्रियाएँ होने का कारण समुदाय भावना का उत्पन्न होना है। इन समूहों का संस्था में सामाजिक साहसाध्य में सम्मिलित होने का भावना विकसित हो जाती है।

अधिक स्थायी समुदायों में उपरोक्त प्रभाव अधिक गहनता से पाए जाते हैं। उनकी जड़ें ऐतिहासिक दशाओं में हानी हैं जिन्होंने क्षेत्रीय समूहों का सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण किया है। समुदाय के सदस्यों का जितना उनको 'भूमि बंधन' जमीन का एक टुकड़ा नहीं होता। वह तो उनका घर है जिन उद्देश्यों के अंतर्गत वे समूहों और वर्तमान अनुभव से समृद्ध किया है। यह भावना कि उनका समन्वय और परंपराएँ प्रयोग और संस्थाएँ सभी सामाजिक हैं उनका समुदाय साधन-साधन रहने की जरूरत का समर्थन है। समुदाय में उनका जीवन की स्थायी आधार भूमि और विश्वास है तब उनका व्यक्तिगतता का प्रकट हो जाता है। दूसरे अनुशासन (आयति) का विनाश अनुशासन में अधिक मात्रा में घटने का कारण है किन्तु इसका आधार उन लोगों के अधिक विस्तृत होता है।¹

1 Ibid p 22

समुदाय भावना का विकास सामाजिक प्रक्रिया से होता है। शिक्षा जिस प्रथानुसार अधिकार और सत्ता, सामाजिक समादर अथवा निरादर काम करती है व्यक्तिगत की आदत और समरूपताओं को धीरे धीरे भक्तिया और दृढ विश्वासों के आधार में बदल देती है। साधारण गानों के व्यक्तित्व की गहराई में समुदाय की भावना घर कर जाती है। इस प्रकार, प्रारम्भिक प्रशिक्षण बाल बचपन ही व्यक्ति के लिए समुदाय भावना बाहरी दबाव न रह कर उसकी आन्तरिक भाव शक्ति हो जाती है। वह हमेशा के लिए उसकी व्यक्तिकता का भाग बन जाती है। इसलिये समुदाय की कुछ सहिताओं के खिलाफ जब कभी व्यक्ति विद्रोह भी करता है तब भी उसमें समुदाय की भावना खत्म नहीं होती। मनुष्य जहाँ कहीं भी सामाजिक जीवन का निर्माण करता है वह सामाजिकरण के अनुभव से परे नहीं रह सकता।

हम यह नहीं मान लेना चाहिये कि समुदाय भावना में परोपकार (परमाय) या परहित का अर्थ निहित है। समुदाय भावना में विविध तत्त्वों, विविध प्रकार के रूपां जा सूक्ष्मता से परस्पर जुड़े होते हैं का समावेश होता है। इनमें तीन, जो बहुत समीपता से अतः सम्बन्धित हैं साफ साफ पहचान जा सकते हैं (१) हमभावना (२) भूमिका की भावना और (३) परनिभरता की भावना।

समुदाय का सामाजिक व्यवहार भौगोलिक पर्यावरण और सदस्यों की सामाजिक नियन्त्रिता या तूरी के द्वारा संचालित होता है। समुदाय के सदस्यों में हम-भावना रहती है। वे एक दूसरे के सुख दुःख से क्रमशः सुखी और दुःखी होते हैं। वे एक ही परम्पराओं में पलते हैं उनके हित और उद्देश्य सामान्य होते हैं। इसलिये उनका जीवन में साम्य होता है। अपने समुदाय के बाहर मनुष्य या समूह के प्रति उनका समान दृष्ट रहता है। समुदाय के प्रत्येक सदस्य में अपने विशिष्ट स्थान के अनुरूप कार्य करने की भावना होती है जिसे 'भूमिका की भावना' कहते हैं। चूँकि समुदाय के सदस्यों में परिष्कृतता रहती है और उनका सारा जीवन उसी में बीतता है इसलिये वे एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं। अतः निभरता की भावना ही उन्हें परस्पर सहाय्य करने की प्रेरणा देती है। उपरोक्त तीनों भावनाओं का सामूहिक नाम समुदाय-भावना है।

समुदाय के संस्था के लिए वह एक अविभाज्य एकता है जिसमें वे सामूहिक रूप से सम्मिलित होते हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर वे अलग और दूसरे सदस्यों से बाँडे हुए या विभाजन नहीं समझते। उनके लिए हम और हमारा शब्दों का प्रयोग करते हैं। हम भावना हम प्रकार के सामाजिक हित में पाई जाती है किन्तु यह श्रेय समुदाय के हित में यह सत्य अर्थ में स्मृतता से प्रकट होती है। इसमें से हर एक इस भावना के उन्मूलन का अनुभव करता है जब उसका पढ़ास, गाँव या शहर,

प्रश्न या राष्ट्र की आलाचना की जाती है। राष्ट्र की आलाचना हम नहीं सुन सकते। उनका त्याग किन्तु हम अपने निरीहों की बलिदानों हैं अथवा देन को देना ही जानते हैं।

समुदाय के हर मनुष्य में यह भावना होती है कि उनका एक निश्चित स्थान है जो उनका अनुसृत सामाजिक मामला में काम चालू करना है। जीवन के प्रारम्भ में ही व्यक्ति में इस भावना का उदय करने के लिए प्रभावण और आत्मा के निर्माण द्वारा उनका जीवन का अनुशासित किया जाता है। उन समूह या सम्प्रदाय के सामने भूकन उसका अर्थान रहने की शिक्षा दी जाती है। सभी प्रभावण का परिणाम होता है कि व्यक्ति में अर्थान स्थान के अनुशासक काम करने की भावना पैदा होती है। परिवार में माता पिता भाई-बहिण पुत्र या पुत्रिका के पृथक्-पृथक् स्थान होते हैं। इसी प्रकार सम्प्रदाय में भी हर मनुष्य का निश्चित स्थान होता है। जहाँ के अनुशासक काम करने का वादना का भूमिका की भावना बनती है।

समुदाय में मनुष्य अपना निश्चित स्थान समझता है और जहाँ के साथ उसमें यह भावना भी होती है कि वह समुदाय का निर्माता है। यदि जहाँ में उनकी भौतिक आवश्यकताएँ पूरा होती हैं इतनी समुदाय पर उसकी भौतिक निर्भरता हो रहती है। वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि में भी समुदाय पर निर्भर रहता है क्योंकि समुदाय उसका 'बग' घर है जो उसे पोषण देता है और उसके जीवन के लिए कुछ दानों का उगना है। मनुष्य अकेला नहीं रह सकता है। उन अर्थान एकाकीयत तथा नया न मुक्ति समुदाय में ही गृह कर मिलती है।

जब कभी एक ही स्थान में लायक्यवा अथवा अन्ध्यायी समुदाय बना कर रहा उनमें इन ताना भावनाओं का विभिन्न अनुशासक में मन मिलता। बड़े अर्थान पर समुदाय इतने न किन्ती एक या सब भावनाओं का निर्माण विचारधुन प्रयत्न द्वारा करते हैं। युद्ध या राष्ट्रीय आन्दोलन में समुदाय भावना के विभिन्न तन्त्रों का निर्माण आवश्यकता से बनाय गया कार्यक्रम द्वारा किया जाता है। अभी तक राष्ट्रीयता को समाज में मजबूत मजबूत समुदाय भावना माना जाता है।

समुदाय भावना की पहिचान—एक ही भूमि में एक ही प्रकार का जीवन बिताने से समूह के मनुष्यों में कुछ विविध समानताएँ पैदा हो जाती हैं। इनका स्वीकार में समुदाय भावना मुक्त होती है। एक समुदाय की विविध जनसंख्या होता है। उनका व्यवहार का ढंग दूसरे समूहों से भिन्न होता है और यही उनके बान्धन की विशेषता होती है। हर एक समुदाय (जैसे शहर या बड़ा प्रान्त) का अपना विशिष्ट चिह्न होता है जिसमें आरंभ उस बड़ा मरतता से पृथक् कर सकते हैं। उनके स्थानिक रीति रिवाज वेप मूला भावना स्थानिक धर्मिचिह्न स्थान या क्षेत्र विशेष विचारों तथा विध्याविधानों के आधारों पर तैयार होता है। समुदाय भावना का मूल पहिचान उस स्थान की भावना है। हर एक स्थान की भावना में अन्त

विशिष्ट उच्चारण, कुछ मुहावरे और कहावतें आदि सम्मिलित हाते हैं। समुदाय भावना का दूसरा महत्वपूर्ण निर्देश (index) समुदाय के सदस्यों में स्थानीय जीवन से गहरी लिखस्पी की उपस्थिति है। अपने समुदाय के दूसरे सदस्यों के काय उनमें गहरी सवेगात्मक अभिखि पण करते हैं। हमन देखा होगा कि मुहले या पडोस में जहा लो या अधिक आत्मी इकटठे हुए कि उहनि गपशप शुरू कर दी। इस गपशप म अपन समुदाय के सन्स्या के आचरण की प्रशसा या निन्ता (भस्सना) की जाती है। मक्का इस गपशप' में बहुत आनंद आता ह। अपन स्थानिक जीवन में गहरी अभि खि हान के कारण ही लाग दूसरे समुदायों की बावत कम सोचते हैं तथा उनक सन्स्या स अपन को पृथक् भी ममभते है। इसी भावना का प्रतिबिम्ब हमें जाति कर्त्रीयता में दिख सकता है।

समुदाय का विकास

सम्भवत समुदाय का सबसे प्रारम्भिक रूप भ्रमणशील भुण्ड रहा होगा। आदिम जातियां म आज भा एस भुण्ड मिलत है। य कुछ परिवारों क समूह हात है और किसी स्थान पर स्थायी रूप स नही रहते। व एक स्थान स दूसरे स्थान पर घूमते फिरते रहने हैं। जब यही भुण्ड स्थायी रूप स गांव बना कर रहन लगे तो ग्राम्य समुदाय की स्थापना हुई। पहले छोटे-छाट गांव बा फिर उनके कास स बडे गांव स्थापित हुए। आदिम समाजों म कड छाट गावा तब फल हुए समुदाय को जनजाति कहा जाता है। सामुदायिक विकास का तीसरी अवस्था मे कस्बा का निर्माण हुआ। सम्भवत कृषि म अतिरिक्त उत्पादन का प्रारम्भ कस्बा (शहरों) की स्थापना म सबसे महत्वपूर्ण कारक समभना चाहिए। शहरों की जनसंख्या म वृद्धि तथा ग्रामीण लोगों के शहरों को निष्क्रमण स बडे नगरों की स्थापना सम्भव हुई। औद्योगीकरण के विस्तार ने नगरीकरण की प्रक्रिया को बहुत ब्यापक बना लिया। आज ससार के सभी प्रमुख देश म 'महानगरों तथा मेट्रोपालिस' की सख्या बहुत अधिक हो गई है। सामुदायिक विकास की अगली अवस्था म गाँवा तथा नगरों को सम्मिलित कर एक प्राकृतिक क्षेत्र म क्षेत्रीय समुदाय का विकास सबसे महत्वपूर्ण है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, ज्ञान विज्ञान तथा परिवहन और संचार के माधना म उत्पति न एक विशाल भू भाग म बसी हुई जनसंख्या को राजनीतिक आधार पर संगठित कर राष्ट्र अथवा राष्ट्रीय समुदाय का विकास सम्भव कर दिया है। इही नगरों की अघिन उत्पति के परिणाम स आज समस्त जगत क समाजों म सामुदायिक भावना विकसित हो गई है। मह प्रवृत्ति अंतर्राष्ट्रीय समुदाय क विकास को दानक है।

समुदाय क छ प्रधान कारक हो सकते हैं —

- (अ) भ्रमणशील भुण्ड
- (आ) गाँव तथा जनजाति

- (इ) कम्वा, नगर और महानगर
- (ई) क्षेत्रीय समुदाय
- (उ) राष्ट्रीय समुदाय
- (ऊ) विश्व समुदाय

डेविस का मत है कि समुदायों के वर्गीकरण में निम्नलिखित अन्न सम्बन्धित नगरों को आधार बनाया जा सकता है—

(१) जनसंख्या का आकार (२) पृष्ठ प्रदेश का विस्तार सम्पत्त तथा जनसंख्या का घनत्व, (३) सम्पूर्ण समाज में समुदाय के विशेषीकृत कार्य तथा (४) समुदाय के संगठन का प्रकार। इन लक्षणों की सहायता से हम ग्रामिक तथा ग्राम्य और नगरीय समुदायों के भेद को समझ सकते हैं।^१

समुदाय की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

आधुनिक संस्कृति के प्रभाव से समुदाय तथा समुदाय भावना के स्वभाव में परिवर्तन हो रहा है। बड़े समाज बहुत अधिक विकसित और जटिल हो गए हैं। उनमें समूह, समितियाँ तथा सम्घातों का संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। विज्ञान तथा अर्थ-व्यवस्था की उन्नति ने छाट-छाट समुदायों की ग्रामिक निर्भरता खत्म कर दी है। एक व्यक्ति एक साथ ही अनेक छाट और बड़े दोनों प्रकार के समुदायों का सम्बन्ध बनाता है। उसके हितों की पूर्ति दाना में होती है। अब तो यह है कि बड़े समुदायों में उसके व्यक्त जीवन की अधिकाधिक आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। वह विविध समितियों और दूसरे समूहों का सदस्य बनता है जिसमें उनका सामाजिक हित विशेषीकृत हो जाता है। इसलिए पहले स्थानीय समुदाय के प्रति जो उसकी भक्ति और घनिष्ठता थी उनका कुछ भाग वह विशिष्ट हित-समूहों का हस्तान्तरित कर देता है। ग्राम के नगरों में नवागन्तुक सम्पूर्ण शहरी समुदाय में प्रवेश नहीं कर सकता। वह अपने विशेष हितों या स्वार्थ के अनुसार किमा बनब, अम-मेष गाने नित्य दान धार्मिक मेष अथवा संख्या में सम्मिलित हो जाता है। इन हितों का क्षेत्र अपना स्थानीय समुदाय (पराम) बना हुआ जहाँ बच् रहता है। इसलिए नगरवासी या नवागन्तुक के लिए मारा शहर समुदाय ना होता है किन्तु उसका जो बच् पत्न एक अविनाश एतना समझता या मा आज नहीं। वह आधुनिक समय में अनेक विशिष्ट समूहों और संस्थाओं का सदस्य बनता है। इसलिए उनका प्रति ही उच्च प्रगाढ़ आकर्षण और भक्ति होती है।

अब स्पष्ट हो गया होगा कि मनुष्य के सामाजिक जीवन में समुदाय भावना क्या महत्त्व से सम्बन्धित है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए एक न एक विकल्प मांगे जाने ही चाहिए। अर्थात् मनुष्य में यदि छाट समुदाय की भावना कम हो जाती है

तो यह बड़े समुदायों के बारे में तीव्र और सुदृढ़ हो जाती है। परिवहन और मंचार के साधनों में उन्नति होने से हमारा प्रेम अपने गांव, पड़ोस या नगर से बंधा गया है किंतु क्षेत्रीय समुदाय और राष्ट्र के प्रति हमारी घनिष्ठ ममता और भक्ति हो गई है। आज के ज्ञान विज्ञान प्रौद्योगिकी के महान विकास युग में हम अनेक ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जिनका विश्व समुदाय के लिए प्रेम अतिसिद्धि बढ़ता जा रहा है।

आज उन्नत सभ्यताओं में पहले के निवृत्तस्थ घनिष्ठ समुदायों के स्थान पर नए मनोवैज्ञानिक सामाजिक संगठनों की स्थापना हो रही है जिनके सदस्य दूरस्थ क्षेत्रों में फैले होते हैं। इन लोगों में वासस्थान की सामान्यता विकसित नहीं हो पाती है। उनके मूल्य तथा मनोवृत्ति ही एक से होते हैं। ऐसे समूहों को साम्प्रदायिक समूह (Communality) कहना अधिक उपयुक्त होगा।

ग्रीन ने समुदाय की आधुनिक प्रवृत्तियों में गांवों की जनसंख्या का शहरों को निष्कमल नगर के केंद्र के आसपास वस्तिमय, उपनिवेशों का उपागर के रूप में विकास तथा सामुदायिक मामलों में नगरों की प्रबलता शामिल किया है।¹

समुदाय के आंतरिक भेद

हर समुदाय के अंतर्गत भेद होते हैं। ये सामाजिक राजनीतिक आर्थिक धार्मिक सांस्कृतिक आदि होते हैं। इनमें से कुछ भेद तो ऐसे होते हैं जिनका अस्तित्व समुदाय में अनिवार्य होता है और वे समुदाय का विघटन न करके उसके संगठन और दृढ़ता में सहायक होते हैं। ऐम भेद मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं—वृत्वात्मक स्थायी बंधन या जाति तथा स्वतंत्र राजनितिक। वृत्वात्मक भेद धर्म विभाजन से उत्पन्न भेद होते हैं। हर समूह में धर्म विभाजन से ही लोगों का निश्चित स्थान और भूमिकाएं मिलती हैं। आदिम समाजों में भी धर्म विभाजन या और आधुनिक समाजों में भी हजारों विशेषीकृत पेशा और व्यवसायों के रूप में पाया जाता है। हर सदस्य अपना पेशा या व्यवसाय करता है जिससे उसमें भूमिका की भावना आती है जो समुदाय भावना का आवश्यक निर्मायक तत्त्व है। इसी प्रकार में समुदायों में बंधन और जातियाँ दृढ़ा करती हैं। ये भी सदस्य में समुदाय भावना का दृढ़ करती हैं। तीसरे आधुनिक राष्ट्रों में कई राजनितिक दल होते हैं जिनकी विचारधारा काय प्रकृति और उद्देश्य भिन्न भिन्न होते हैं किंतु जहाँ तक राष्ट्र की एकता और समृद्धि में उनका योगदान है वे भेद समुदाय के अस्तित्व के प्रतिबन्धन नहीं जानें।

विच्छेदक या एकतानाशक भेद भी तीन प्रकार के होते हैं (१) आर्थिक विषमताएं और उन पर पापित बंधन (२) प्रजातिक भेद तथा (३) धार्मिक भेद। जिस समुदाय में आर्थिक सम्पत्ति, आय तथा रहन सहन में भारी विषमताएँ

होगी वहाँ का एकता नष्ट होने का भय रहेगा। एक समुदाय में वगैरे संपन्न वृद्ध प्रचलित हो जाता है। अफ्रीका के दशकों में नस्ली भेदों में समुदाय की एकता विनोदी शीघ्रता से नष्ट हो गई है यह ता आधुनिक इतिहास की घटना है। इसी प्रकार भारत में हिन्दू मुसलमानों के धार्मिक भेदों ने भारत का जाति विभाजन कराया तथा पाकिस्तान के निर्माण की बाद की गणनाओं के जन्म दिया उसमें भी हम परिचित हैं।

किन्तु याद रहे कि समुदाय की एकता और हटता में सामूहिक भेद तमों विनाशकारी साबित होते हैं जब वे भेद सामूहिक उत्पत्ति के स्तरों में प्रकट हो।

राष्ट्रीय समुदाय

आधुनिक सम्प्रदाय में राष्ट्र सभ्यता का प्रभावपूर्ण समुदाय है। यही सबसे बड़ा समूह है जिसमें व्यापक सुदृढ़ता की चेतना व्याप्त रहती है। यद्यपि मनुष्य के कृत्रिम हित ऐसे हैं जो राष्ट्रीय सीमाओं का पार कर जाते हैं और इसलिए अनेक प्रकार की अन्तरराष्ट्रीय समितियाँ भी पाई जाती हैं। किन्तु अभी तक समार में किसी समूह का अन्तरराष्ट्रीय समुदाय नहीं कहा जा सकता। अथवा समुदाय की भाँति राष्ट्र के आधार सामूहिक और राष्ट्रीय भावना है। चाहे किसी राष्ट्र का वास्तविक अस्तित्व ही अथवा साया की आशाओं और आकांक्षों में ही उसका अस्तित्व हो उसका अपना भौगोलिक क्षेत्र अवश्य होता है। यदि समार के राजनयिक मानचित्र देखें तो पायेंगे कि विभिन्न राष्ट्रों का सामूहिक क्षेत्र अनेक मुश्किल पड़ जाय किन्तु यह बतार सत्य है कि हर राष्ट्र का अस्तित्व एक भौगोलिक क्षेत्र में जिनकी सीमाएँ निश्चित हो अथवा निश्चित की जा रही हों ही सम्भव है। दूसरे हर राष्ट्र में राष्ट्रीय भावना होती है। इस राष्ट्रियता की भावना कहा जाता है।

राष्ट्रीयता और राष्ट्र

समुदाय भावना या वगैरे चेतना अथवा जाति-समूह चेतना (ethnic group attitudes) का भाँति राष्ट्रीयता में दूसरे समुदाय के अनुसूचितों का समावेश होता है तथा राष्ट्रीयता का अर्थ विपरीत भी होता है। अथवा समुदाय भावनाओं की भाँति राष्ट्र भावना भी प्रजातन्त्रीय होती है अर्थात् यह राष्ट्र के हर मनुष्य में होती है चाहे वह किसी धर्म की वगैरे या गणितीय सम्बन्धित हो। धर्मों निषेध, विद्वान-सूत्र, प्रतिभाशाली तथा मनुष्यी चेतना प्रकार के व्यक्तियों में राष्ट्र भावना होती है। इसी प्रकार अनेकानेक प्रतिनिधित्वपूर्ण उत्तम अथवा साहित्यिक सभा विचारधाराओं के मानने वालों में राष्ट्र भावना रहती है। भारत में ही स्पष्ट नीति है। कर्मिण, प्रजा-समाजवादी, साम्यवादी और हिन्दू महासभा विभिन्न विचारधाराओं का प्रचार करते हैं किन्तु अभी धर्म प्रचार राष्ट्रीयता के नाम पर करते हैं। भारत का साम्यवादी एक निष्ठा प्रेरणा-वादी मार्ग है, धर्म मनुष्य के और अनुसूचितों में राष्ट्रीयता के नाम पर हो

प्रचार करने में समय हो सका है। अतएव, राष्ट्र भावना राष्ट्र के सदस्या के विचित्र हिता अथवा उनके विशेषण गुणा पर आधारित नहीं है। कोई जरूरी नहीं कि एक ही भाषा सभृति, आर्थिक हित अथवा शारीरिक विशेषताओं पर राष्ट्रीयता आधारित रहे। एक राष्ट्र में कई नस्लें सभृतियाँ और भाषाएँ हो सकती हैं। स्विस राष्ट्र में तीन जातियाँ और उनको ही भाषाएँ हैं। इस में इसी प्रकार करीब-करीब १६ जातियाँ और अनेक सभृतियाँ हैं। इनकी भाषाएँ भी भिन्न भिन्न हैं। भारत में ही न तो सार नागरिकों की शारीरिक विशेषताएँ एक ही भाषा ही एक। विभिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न बालियाँ बोली जाती हैं। इसी प्रकार एक धर्म के मानने वालों का भी एक राष्ट्र नहीं बनता। इसी और मुसलमान धर्म के अनुयायी अनेक राष्ट्रों में विभाजित हैं। हो सकता है अतीत में भाषा धर्म आर्थिक हित, प्रजाति या सभृति अथवा ऐतिहासिक परम्पराएँ इनमें से कोई एक या इनका कोई मेल राष्ट्र का निर्माण कर सका हो किन्तु आधुनिक युग में राष्ट्रीयता के निर्माण में, शक्ति की पुकार नहीं, एक विचार की शक्ति ने प्रमुख काम किया है।¹

राष्ट्रीयता की भावना कबीले, गाँव या क्षेत्र की अनुभूत एकता से भिन्न होती है। राष्ट्र भावना का विकास राज्य के विकास से जुड़ा है। आज भी ससार में कुछ ऐसे राष्ट्र हैं जिनके पास राजकीय सत्ता नहीं है किन्तु वे स्वशासित होने का प्रयत्न कर रहे हैं। राष्ट्रीयता तथा अर्थ प्रकार की समुदाय भावना में भेद करने का यह आधारभूत प्रमाण है।

लाड ब्राइस के अनुसार राष्ट्रीयता एक ऐसा जनसमूह है जिसमें सामाजिक सभृति तथा इतिहास की परम्पराओं से अटूट एकता का अनुभव किया जाता है और जो दूसरे जनसमूहों से पृथक् समझी जाती है। अतः राष्ट्रीयता के लिये भौगोलिक एकता की अपेक्षा मनावैज्ञानिक और आध्यात्मिक एकता अधिक आवश्यक तत्व है। राष्ट्रीयता की भावना के आवश्यक तत्व ये हैं—(१) हम भावना, (२) सामाजिक सभृति और ऐतिहासिक परम्परा (३) सामाजिक भाषा और (४) सामाजिक भाष्य का अधिक उन्नत करने के लिये राजनैतिक तथा अर्थ आकांक्षाएँ। जब एक राष्ट्रीयता राजनैतिक इकाई में संगठित होकर स्वतंत्रता प्राप्त कर लेती है अथवा उस प्राप्त करने की इच्छुता होती है तो हम उस राष्ट्र कहते हैं। आधुनिक जगत में राष्ट्रीय राज्य स्थापित हैं जिनमें प्रभुता और स्थिर सरकार को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है।

आधुनिक राष्ट्र किसी एक क्षण में पैदा नहीं हो पाये उन सबका उत्पन्न सबका वर्षों में हुआ है। राष्ट्र की उत्पत्ति और विकास एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। उनके उत्पन्न में जटिल दशाओं ने जिनमें परस्पर विविध अतः सम्बन्ध होते हैं, भाग लिया है। अफ्रीका और एशिया में आज भी वित्तन राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में हैं। हम

इसीलिये कभी-कभी कहते हैं कि अमुक जाति में राष्ट्र बन रहा है। एक समुदाय प्राकृतिक सीमाओं से निर्धारित नहीं होता। वास्तव में हर समुदाय सामाजिक-मानव-जननिक यथायथा होता है। हम पहले ही कह चुके हैं कि समुदाय—वाहे वह गाँव हो या राष्ट्र—का विस्तार में रखा का प्रधान महत्व है। एक राष्ट्र की सीमाएँ कहा तक विस्तृत हाँगी इसके निर्धारण में सामाजिक और मानवज्ञानिक कारकों का ही प्रमुख हाथ रहता है। जो क साथ साथ का-क जस आर्थिक राजनैतिक तथा फौजी भी महत्त्वपूर्ण होते हैं।

एक राष्ट्र का सदस्या में बहुत समानताएँ होती हैं। इन समानताओं की अभिव्यक्ति राष्ट्र का कला साहित्य जन रीतियाँ और ऐतिहासिक घटनाओं में होती है। ये समानताएँ इतनी स्पष्ट होती हैं कि दो राष्ट्रों के सदस्या में भेद किया जा सकता है। कुछ विद्वानों तथा उपयाम लेखकों ने राष्ट्रीय समानताओं का आधार पर राष्ट्रीय चरित्र की सूक्ष्म विवेचना की है। राष्ट्रीय चरित्र या राष्ट्र को कभी-कभी काल्पनिक चित्रा या नामों से प्रकट किया जाता है। अंग्रेजी राष्ट्र के लिये 'जान बुन अमरिका' के लिये 'अकल साम' या एंगियाई राष्ट्रों के लिये 'ध्यान मग्न सन्यासी' अथवा विद्ये से परे ठठरी बाना मनुष्य' बना दिया जाता है।

राष्ट्रीय चरित्र किसे कहते हैं? एक राष्ट्रीय समुदाय के उन गुण लक्षणों का समूह अथवा विशेषताओं को राष्ट्रीय चरित्र कहते हैं जिनमें उसके आवश्यक स्वभाव का पता चलता है। बहुधा किसी एक गुण अथवा विशेषता का राष्ट्रीय चरित्र का प्रतीक समझा जाता है किन्तु इस प्रतीक में राष्ट्र का आवश्यक स्वभाव पूर्णतया जायज ही व्यक्त होता है।

हर देश की राष्ट्रियता का प्रतिनिधि कुछ प्रतीक होते हैं। इनमें तथा अन्य दाना प्रतीक हो सकते हैं। 'मानुभूमि', 'रिवृदा' 'हमलण्ड' आदि एम ही प्रतीक हैं। इसी तरह मूल प्रतीक 'राष्ट्रीय ध्वज' होता है। हर राष्ट्र का एक राष्ट्रीय गान भी होता है। राष्ट्रियता का एक प्रतीक का लगाव सार समूह का आर्थिक राजनैतिक तथा मानवज्ञानिक सफलताओं से होता है। राष्ट्र के अधिकांश सन्ध्या का राष्ट्र की धारणा मजबूत में नहीं माना इसलिए 'मानुभूमि' या 'रिवृदा' आदि प्रतीकों से उच्च भक्ति रहती है। राष्ट्रियता की भावना का जाग्रत और विकसित करने के लिये बच्चों का जन्म से ही समाजीकरण प्रक्रिया में रखा जाता है। उन राष्ट्रीयता के प्रतीकों से प्रेम और अफसोषी जे मनुष्य या देश के प्रति भक्ति मित्राय जात है।

अंतर्राष्ट्रीयता और राष्ट्रियता

राष्ट्रीयता की भावना के प्रमुख दो रूप होते हैं (१) देश भक्ति और (२) राष्ट्र-प्रेम। देश भक्ति का अर्थ है कि राष्ट्र के सन्ध्या अपने निजी हितों तथा अपने परिवार,

गाँव या शहर की भक्ति से देश की हिता और भक्ति को बड़ा समझते हैं। व राष्ट्र के हिता की पूर्ति के लिये अपने हितों का बलिदान करने में तैयार रहते हैं। राष्ट्र के लिये मरना भी उन्हें सम्मान और गौरव का विषय लगता है। शान्ति और युद्ध दोनों चालों में देशभक्ति यत्किन्ही प्रकार की स्वायत्त-सेवा या-बलिदान का भाव जगाती है। राष्ट्रवाद एक आधुनिक विचारधारा है। इसका अर्थ है कि राष्ट्रिय समूह का एक विशेष रस होना है जिससे हर व्यक्ति अपने राष्ट्र को सर्वोपरि भक्ति सहित देता है। यह समूह की हृदय की भावना होती है। यूरोप में १८वीं शताब्दी के बाद इसका विकास हुआ था और आज कल तो सारे समाज में राष्ट्रवाद की विचारधारा फैली हुई है। मौलिकतया, राष्ट्रवाद राष्ट्र के एकाकरण के लिए अपनाया गया था। यह राष्ट्र की एकता, उसकी राजनीतिक स्वाधीनता तथा विश्वी प्रभुत्व के समूल नाश की तीव्र भावना का प्रतिनिधि था। राष्ट्रवाद से आधुनिक जनतन्त्रा का विकास सम्भव हुआ है। इसी में आधुनिक राज्य का सामुदायिक आधार विस्तृत हो गया है।

ऊपर हमने राष्ट्रवाद का लाभप्रद पक्ष देखा है। उग्र राष्ट्रवाद मसाले की शान्ति और सुरक्षा के लिए बड़ा घातक हो जाता है। उग्र राष्ट्रवाद के ही दो रूप युद्धप्रिय देशभक्ति (Chauvinism) और साम्राज्यवाद हैं। जब कोई राष्ट्र अपने हिता के सामने सारे सत्तार के हिता को हेय समझता है और अपनी सत्ता या प्रभुत्व बढ़ाने का प्रयत्न करता है तो साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का जन्म होता है। यह दोनों वाद सत्तार की शान्ति और सुरक्षा के क्रूर दुश्मन हैं। पिछले दो महायुद्धों में हम साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के बाल कारणात्मा को देख चुके हैं। और आज जा तात्पर महायुद्ध के काल बादल मड़रा रहे हैं वह भी उग्र राष्ट्रवाद का प्रभाव है। उग्र राष्ट्रीयता राष्ट्यों में परस्पर सहानुभूतिपूर्ण सम्बन्धों का गंभीर है और परिणामस्वरूप उनकी अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का समाधान अन्तरराष्ट्रीय संयोग के अभाव में मुलभ नहीं हो पाता। सन् १९६२ में भारत पर चीन के बढ़ते आक्रमण और अभी हाल में ४ अगस्त १९६५ का पाकिस्तान के तानाशाही शासन का काश्मीर समस्या को लेकर भारत पर जाहिरना हमला एसी घटनाएँ हुईं जो उग्र राष्ट्रवाद के नमूने नमूने हैं। इसलिए कुछ विद्वान 'राष्ट्रीयता की भावना का अन्त' राष्ट्रिय शान्ति के लिए अभिशाप मानते हैं।

मर विचार में इस भावना के बल हानिकर पक्षों का—उग्र राष्ट्रवाद एक युद्धप्रिय देशभक्ति में ही अन्तरराष्ट्रीय शान्ति का त्वरित उत्पन्न होता है। भारत, मित्र शान्ति के प्रति प्राचीन दशा के निवामी युगा युगा से दशभक्त रहते हैं उनमें प्रगाढ़ राष्ट्रीयता की भावना रही है। फिर भी उन्होंने कभी दूसरे देशों पर आक्रमण करने की नहीं साधा। यूरोप में औद्योगिक शक्ति के सूत्रपात्र से बढ़ते आश्चर्य के जैसे इंग्लैंड, फ्रांस, इटली, पुर्तगाल, स्पेन तथा जर्मनी ने अपने

बगती दृढ़ आर्थिक तथा सामरिक शक्ति का साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के प्रसार में व्यक्त किया था। अन्तराष्ट्रीय शान्ति में इससे विघ्न पड़े और १९१४-१९२० में ता प्रथम विश्व महायुद्ध में सगार में जन घन का अपूर्व विनाश किया। १९३५ ई० के पश्चात् जापान, इटली जर्मनी आदि देशों में जो युद्धप्रिय दानभक्ति तथा उग्र राष्ट्रवाद उभरे उन्होंने सगार की असह्य निरोह जनता का युद्ध की ज्वाला में टकेल दिया। इन तीनों राष्ट्रों में अन्तराष्ट्रीय शान्ति पर घातक प्रहार किया। परिणामस्वरूप द्वितीय विश्व-महायुद्ध से अनेक युद्धरत राष्ट्र तहम नहन हा गए। उनमें मय और अविश्वास की एक पिजा बनी। अणु बमों तथा अय नहारक बमों के निर्माण, परीक्षण और प्रयोग में मानवता का आज एक एस भयानक गन क पास ला सहा किया है जहाँ घाडी सी गलती उसकी सम्पूर्ण गौरवमयी सम्मना और स्वय उत्तका पूण विनाश कर सकती है। रून तथा अमरीका के गुटा में जो शान्त युद्ध छिगा है वह किसी भी समय प्रचण्ड ज्वाला में भमक उठ सकता है। रून तथा अम-राका क गुट ही नहीं सगार के कई अय राष्ट्र भी जम चीन और हिन्दिया आज उग्र राष्ट्रवाद तथा युद्धप्रिय देशभक्ति क पापण में लवलीन हैं। उनकी यही भाव नाएँ विश्व की शान्ति तथा प्रगति क लिए भीपण अन्तिाप हैं।

प्रजातिक एवं जातीय समूह

प्रजातिया

जीवशास्त्र (biology) में समस्त मानवता को एक ही मौलिक जाति (Homosapiens) की सत्ति माना जाता है। ससार के सभी समाजों और समूहों की उत्पत्ति का स्रोत एक है। फिर भी समय-समय पर भिन्न भिन्न मानव समूह अथवा समाज विभिन्न प्रजातियों के वर्गों में विभाजित माने जाते रहे हैं। भारत के प्राचीन निवासी अपन को आर्य और इस देश में उनके आने से पूर्व के द्रविड़ों का अनाय कहते थे। हमारे इतिहास में भी आर्यों के आने के बाद भारत में आने वाली अनेक प्रजातियाँ अथवा प्रजातिक समूहों का वर्णन मिलता है। शक, हूण, कुशान, अरब, भूमध्यसागरीय आदि प्रजातियाँ ने इस देश में प्रवेश किया। आधुनिक भारत में भी जब राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट (प्रतिवेदन) प्रकाशित हुई तो उसमें स्पष्ट उल्लेख था कि किस प्रकार दक्षिण भारत के निवासियों में अपन को द्रविड़ वंशज मानकर उत्तरी भारतीयों के प्रति विद्वेष की भावना प्रबल हो चली थी। आज सरकारों भाषा के प्रश्न को लेकर उत्तरी तथा दक्षिणी भारतीयों में प्रजातिक भेद का उल्लेख किया जाता है। कई बार कुछ लोग भारत की जनसंख्या की अनकता का मूल कारण प्रजातिक अनकता मान बैठते हैं। उनसे पूछिए कि भारतीयों में सस्कृति, भाषा, धर्म, भूपा आदि के भेद क्या हैं? उत्तर—भारतीय अनेक प्रजातियाँ के वंशज हैं।

एमें विचार अत्यन्त भी प्रचलित है। पश्चिमी दुनिया के लोग अपन को श्वेत और एशिया तथा अफ्रीका महाद्वीपों की जनसंख्याओं का 'पीली तथा काली प्रजातियाँ' कहते हैं। पिछली तीन चार शताब्दियों में यूरोप के लोगों ने एशिया तथा अफ्रीका में अपना साम्राज्यवादी आधिपत्य इस धारणा से किया कि श्वेत प्रजातियाँ श्रेष्ठ हैं और उन्हें ईश्वर की ओर से काली, पीली प्रजातियाँ पर शासन

करण का आदेश मिला है। समुक्त राज्य अमरीका के दक्षिणी राज्या में प्रजाति-वाद की बड़ी भयानक समस्या है। नीचो लोगो के साथ किन्ना भेद भाव, दुःप्रवहार और भ्रमचरण किया जाता है। सम्पूर्ण दक्षिणी अमरीका में काल बणु व निवा मिया—अफ्रीकी भारतीय पाकिस्तानी आदि—के प्रति वहाँ के सत्ताधारी यूरोप वासी धर्मानुषिक अत्याचार करते हैं। इस क्षेत्र में विद्यमान प्रजाति-पृथक्ता (racial apartheid) की गम्भीर समस्या तो बड़े बड़ों से समुक्त राष्ट्र सब के विचाराधीन है। इस सन्निप्त वर्गण से मिद्ध होता है कि कुछ देना के लागे में प्रजातिक भेदा की कितनी चतनता है। वे प्रजाति व गारारिक भेदा का सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अथपूण और अहृदयपूण मानते हैं। तथाकथित प्रजातीय श्रेष्ठता आज भी अनेक देना के लागे में सवेगात्मक विचारा व प्रचलित हान का एक मुख्य कारण है। परन्तु जत्रिक अथवा शारीरिक कारणों का आधार पर किसी मानव-समूह को श्रेष्ठता अथवा हीनता सिद्ध करन में विज्ञान अथ तर्क का विफल ही रहा है।

तथाकथित श्रेष्ठ प्रजातियों का सम्मता तथा सन्तुति की उन्नति करन वाल एजण्ट व हन में मानन के लिए व्यापक प्रचार किए जात हैं। साधारण मनुष्य विज्ञान का निराम जाणकर भी न तो तर्क और न विज्ञान से काम लता है। अपनी मनमात्मक सुरक्षा के लिए उसमें अपरिवर्तित परम्परात्मक विचारा (stereotypes)¹ विचारधाराओं द्वारा पुराणानुयाय अथ शक्ति की सीमा व भीतर ही साधन की प्रकृति है। आम धारणा उन सामलों की वास्तव धारणाएँ बना लता है जो उसकी सांस्कृतिक विरासत व भाग है तथा जिनमें उभर समाज की संरचना का प्रतिबिम्ब मिलता है। उन्हें वह बिना साध-समर्थ तथा बगर आलोचना व स्वीकार कर लता है। संसार की बड़े सामाजिक संरचनाओं में प्रजाति तथा प्रजातीय भेदा का वास्तव मूल्य निराम बड़ी गहराई से समझाएँ हैं। वहाँ उन्हें सबल सबगात्मक लगावा में पुष्टि मिलती है। प्रजाति भेदों की विचारा के आधार पर एक नस्ला समूह को दूसरे से पृथक् रखा जाता है। उस सामाजिक, धार्मिक तथा राजनितिक अर्थमाननाओं में रहना पता है तथा तथाकथित श्रेष्ठ प्रजातियों समूह का अत्याचार तथा अपीडन महन पता है। प्रजातियों विभेदों से दो विभिन्न समूहों में सामाजिक दूरा रहती है। अतएव एक समूह में प्रजातीय चतनता का व्यक्तित्व निर्माण में केन्द्रीय महत्त्व है। इतिहास हमें बताता है कि प्रजाति सम्बन्धी विचारा व कारणों की राष्ट्रीय व बीच युद्ध व कई सनर उदयन हुए हैं। अमरीका में नस्ल व नाम पर जो असहाय मानवता पर अत्याचार ना रहे हैं वे मना की शक्ति तथा स्थिरता के लिए भयानक सनरे हैं।

हैं। उनकी क्रूर दरिद्रता के अनिरीक्त लाग उह शिशा, चरित्र और नतिकता म बहुत गिरा समभते हैं। वे इतन आलसी है कि अपना स्थान छोडकर अयन नही जाना चाहत। अतएव उनम सजीवता उत्साह और महत्वाकाक्षा का स्पष्ट अभाव है। जीवन के प्रति भग्नाशाय भी उनमें बहुत अधिक हैं।

यद्यपि आज भी अमरीका की वग यवस्था म शीप गतिशीलता बहुत अधिक हं परन्तु निचन स्तरा म यह प्रक्रिया कुछ धीमी पडती हुई प्रनीत हाती है। जिस जीवन ढग स द्रुत सामाजिक गतिशीलता ज मी थी वह बहुत कुछ बदल गया है।¹ अमरीका म स्तरण की वद्धि वा एक साक्ष्य यह है कि वहा पर कई पीडिया म एर प्रवार के पशे करने वाली जनसंख्या का प्रतिशन कमश बढ रहा है। दूसरे, उच्च मध्य और उच्च वग में तुलनात्मक रूप से ज म दर कम हा रही है जिसका परिणाम जान वाला पाठिया म उनकी जनसंख्या म ह्लाम हुगा। समाजशास्त्रिया वा विचार है कि आर्थिक कारणा स जनित शीप गतिशीलता सापेक्षिक दृष्टि से कम हा रही है वयाकि विभिन्न सामाजिक स्तरा के बीच शक्षणिक अवसरा म अममता बढ रही है। नीची आर्थिक स्थिति और शक्षणिक योग्यता वाल लोगा के लिए ऊचे वर्गों के द्वार बन्द से है। आर्नोल्ड घोन वा पुस्तक स एक उद्धरण दकर हम इस विवेचना वा उपमहार द मक्त हैं गतिशीलता (अमरीका म) के एक ऊंची गति स बनी रहने की सम्भा वना है कि "नु बहुमर्यक के लिये केवल आवत्त सीमाशा म। बहुत कुछ सभाव्य गति जीवना म अवराध उद्योग व्यापार और यवसाया के प्रतिबन्धो से आता है। कल्याण वाली राज्य की कर नीति से भी उच्च और निम्न वर्गों के बीच की सामाजिक दूरी कम नहीं हु" है। एक नियोजित अव्यवस्था और नौकरशाही प्रक्रिया की ओर प्रवृत्ति न वयक्तिक उत्तरदायित्व की भावना और उसम अधिन महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त करने की अभिलाषा को कम कर दिया है।-

भारत म वग सरचना

हम पहन देख चुके है कि भारत की परम्परात्मक जानि प्रणाली विगठित हा रहा है और उसमें वग सरचना म निरन्तर परिवर्तित होने की प्रवृत्ति दृष्टिगावर होनी है। यहाँ भी निम्न मध्य और उच्च वग बन रह है। किन्तु उच्च और मध्य वग म प्रखलना अभी उही जातिया की है जा परम्परात्मक रूप से आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न और सामाजिक प्रतिष्ठा म उच्च रही हैं। दश की अथ यवस्था और राजनीति म दही की प्रमुता है। निम्न वग क जनसमुदाय म उच्च जातियो के प्रति परम्परात्मक आदर भक्ति और अधीनता की आज भी सबल भावना लिखनी है। उनम कमवाद व सिद्धान्त के नकारात्मक पहनु वा समभने की आदत बाकी है।

1 *Ibid* p 288

2 A W Green *Sociology* p 222 (Summary to a chapter Class and Mobility in America)

एक मनानेन मय, कि जीवन कम-अथ है और अध्ये कम का परिणाम अक्षा हाता है, पायण उ-या नही रहा है । प्रयत्न म सामाजिक स्थिति म उत्पत्ति की ता मन्ता है । द्वि-तानिया (ब्राह्मण क्षत्रिय और बग) परम्पराभक्त कारण न और निष्ठा अथ तथा राजनीति म अतिरिक्त विकसित होने के कारण आज भी उच्च और मध्य वर्गों म अति प्रबल स्थिति म हैं । गूढ़ बग की जानिया का अर्थ भी निम्न का म म्यान मिलता है । व निष्ठा अथ और राजनीति म अत्यधिक सिद्धी हुई है ।

भारत का ज्ञानि व्यवस्था का बग मरचना म स्थापना ना ग रहा है किन्तु एक प्रक्रिया म एक बहुत अवांछित प्रवृत्ति हृष्टिगाचर हा रहा है । नाग का अर्थो ज्ञानि स इतना मात्र है कि व सावधानी से जीवन म उग्र ज्ञानि अथवा ज्ञानिवाद न अति प्राप्त व्यक्तता बन ह । प्रा० दुर्गिने इस प्रवृत्ति को भारतीय समाज के लिए ना अथन पुगतन का त्यागकर ना का अथमान म निष्ठाधम मा अनुभव कर रहा है वही विनाशकारी वृत्त है ।¹

हमारे समाज का विद्यमान स्थापना तथा नवीन प्रवृत्तिया म जो बग-वृत्त अथवा गूढ़ है उनमें यह स्पष्ट मरत मिलता है कि भारत म अथ नम तथा पत्र प्रस्थिति की अथवा अतिरिक्त प्रस्थिति का मन्त्र बनता जा रहा है । आर्थिक मन्त्रना नि ना और राजनितिक प्रगतिशील ज्ञानि का अर्थो व्यक्ति और परिणाम का अथवा पत्र स्थिति ह्रासकर न और ऊँची स्थिति प्राप्त करने म मरत मन्त्रवपूण है । अथ अधिन आय वत पाता का करन बाना का समाज म ऊँचा ममान मिलता है यद्यपि ऊँची ज्ञानि की मन्त्रना अथ स्थिति म अथ मा चार जग सगा ली है । भारत म भी उच्च मन्त्र और निम्न ज्ञान बग विकसित हा रह है ।

बग और सामाजिक परिवर्तन

हमारे अथवा-बग व्यवस्था (ज्ञानि-व्यवस्था) और मुक्त वा-मरचना का अर्थो एक वा रिश्तेदारी किया है उममें स्पष्ट हो गया है कि बग (या ज्ञानि) सामाजिक जीवन क प्रबल अथ और अतिरिक्त का प्रभावित करने हैं । जातिकान्तरन क एक जीवनयापन निष्ठा ज्ञान विज्ञान मन्त्रन दान, विचार कता और मन्त्रजन—मन्त्रन म—मन्त्रन मन्त्रन का वा बनना और मन्त्रनियों का दाना है । भारत क मध्यनृगोन अथ और अतिरिक्त ज्ञानि व्यवस्था वा समाज की सामाजिक-मन्त्रनिक व्यवस्था आज क परिवर्तनगत और अतिरिक्त ज्ञानि व्यवस्था बन समाज क अर्थो अतिरिक्त या । य वा अथ समाज क अतिरिक्त विज्ञाना म मय रहा है । पाश्चात्य समाज का वा मरचना म अथ अतिरिक्त उत्तर चढ़ाव हुए है उनमें सामाजिक मन्त्रनिक दाना का और अतिरिक्त बनती है इसमें माथी उनका मन्त्रन दान और मन्त्रन है ।

सामाजिक वर्गों की स्थिरता सामाजिक दशाओं की स्थिरता पर निर्भर रहती है। किन्तु आधुनिक समाज का तेज सामाजिक परिवर्तन वर्ग संगठन का विरोधी है। आगबन और निम्काफ ने सामाजिक वर्गों और वर्ग चेतना की स्थिरता का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि आधुनिक समाज में अत्यधिक प्रादेशिक और सामाजिक गतिशीलता प्रौद्योगिकी में अप्रूप उन्नति और बहु-मांगा उत्पादन व्यवस्था, संचार के आधुनिक साधना द्वारा उच्च वर्ग का उपसहृति का प्रचार और राष्ट्रवाद कुछ ऐसी महत्वपूर्ण शक्तियाँ हैं जो वर्गसंगठन की विरोधी हैं। इससे वर्गों के बीच के भेद कम होते हैं और वर्ग चेतना भी सुस्पष्ट और सजल नहीं हो पाती।¹ सम्भवतः इसलिये कुछ विचारक यह आगा प्रकट करते हैं कि आधुनिक आधुनिक और नगरीकृत सम्यता का चरम विकास वर्ग रहित समाज की स्थापना में सहायक होगा। ध्यान रहे ये विचारक मार्क्स के वर्ग युद्ध के सिद्धांत के आलोचक हैं। उनके विचार से वर्ग युद्ध के उपयुक्त सामाजिक आर्थिक अवस्था पूर्व औद्योगिक रूप में उपलब्ध था किन्तु अब जनतन्त्रीकरण की प्रक्रिया ने वर्गों के बीच के सघप का हिंसा और व्यापक रक्तपात में परिणत होने से निश्चय ही बचाया जा सकता है। इसी प्रगाढ़ विश्वास के दशन गांधी विनोबा के 'सर्वोत्थ आदश' में होते हैं। इस विचार धारा तथा मानवता (साम्यवाद) के चरम लक्ष्य में अत्यधिक साम्य है। परन्तु इन दोनों ने अपने साध्य की सिद्धि के लिए क्रमशः जनतन्त्रीय, क्रांतिपूर्ण अथवा अहिंसात्मक और हिंसात्मक एव तोड़-फोड़ की रीतियों को अपनाते पर बन लिया है। सर्वोत्थ (जिस गांधीवाद भी कहा जाता है) एक जाति वर्ग विहीन शासन और अत्याय रहित सन प्रकार से सम्पन्न और सुखी समाज की स्थापना के लिये हृदय परिवर्तन का नैतिक अन्वय अपना कर चल रहा है। पश्चात्त्य दशों में M R A के प्रयत्नक वक्त्रन इसी विचारधारा से प्रभावित हुए हैं। साम्यवाद अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वर्ग सघप और मत्ता हथियाने के हिंसात्मक राजनैतिक और सैनिक प्रयत्नों की सप्रभाविकता में आस्था रखता है। कुछ भी हो सामाजिक वर्गों की संरचना के रूपांतर को ऐतिहासिक दृष्टि से समाज परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण यत्र स्वीकार दिया गया है।²

वर्ग युद्ध का सिद्धांत

मार्क्स और एंजिल्स ने साम्यवादी घोषणा में इन सिद्धांत की व्याख्या की है। उन्होंने लिखा है समाज और राष्ट्रा के बीच और स्वयं उनके अलग-अलग सघपमय प्रयत्न का सान वर्गों जिनमें एक समाज विभक्त है, के जीवन और स्थिति के भेद है। आज तक स्थिति सम्पूर्ण समाज का इतिहास वर्ग संग्रामों का इतिहास है। एंजिल्स ने यह म आन्तिक साम्यवादी समाज को इससे मुक्त बताया था।

1 Ogburn & Nimkoff *op cit* pp 226-27

2 MacIver and Page *op cit* pp 381-83

प्राधुनिक ब्रजुआ समाज जिमका जन्म सामंतवानी समाज के ध्वसावशेषों से हुआ है बग विरोधों से मुक्त नहीं है। इसमें नए बग मात्र स्थापित हो गये हैं प्रपोहन की नदर दशाओं और सभ्यता के पुराने रूपों के मर्यादा पर नए रूप बन गये हैं। किन्तु हमारे युग ब्रजुआ के युग की यह विशेषता है कि इसमें बग विरोधी भरल हा गये हैं। समाज अधिकाधिक दो विभागों में बँटा हुआ है ब्रजुआ और मजदूरों में विभक्त हुआ जा रहा है। प्राधुनिक युग, जो ब्रजुआ की सम्पूर्ण विजय की प्रतिनिधि

संस्थाओं विस्तृत विचारों (मताधिकार) सम्पूर्ण लोकप्रिय सभ्यता आदि का युग है जो शक्तिशाली और सत्य विचारशील श्रमिक मजदूर और मजदूरों के सभा का युग है न इस मध्य का अधिक प्रकट रूप में व्यक्त कर दिया है कि बग समाज घटनाओं का मुख्य चालक है ब्रजुआ के सभी विरोधी वर्गों में केवल सबहारा

सचमुच शक्तिशाली बग है। दूसरे बग धीरे धीरे हैं और अन्ततः लुप्त हो जाते हैं मध्य का वह सभी दुर्लभ धन श्रमिकत्व की रक्षा में अवश्य ब्रजुआ का विरोध करते हैं किन्तु वे शक्तिशाली नहीं रहितवानी (मजदूरवानी) हैं। इसमें अधिक व प्रतिक्रियावानी हैं और इतिहास के चक्रों को पार कर चलने का प्रयत्न करते हैं। अन्ततः मजदूरों का ब्रजुआ का उखाड़ फेंकना और राज्य पर उसका अधिकार हो

जायगा (क्याकि प्रत्येक बग समाज एक राजतन्त्रिय समाज है) इस प्रकार एक नए समाज (साम्यवानी समाज) की स्थापना होगी जिममें प्रारम्भ में केवल मजदूरों का हाग जा बालात्तर में एक बग विहीन और राज्यविहीन समाज की रचना में समय होगा।¹

एक सिद्धान्त की बड़ी बटु आवाजना शुरू है। प्रथम भाग का यह विश्वास कि अन्ततः पूँजीवादी समाज का सभी वर्गों ब्रजुआ और मजदूरों में विभाजित हो जाएंगे किन्तु शक्तिशाली श्रमिकत्व में अन्ततः हा जाता है। पूँजीवानी और अन्ततः शक्तिशाली समाज में मध्य बग अधिक एक राजतन्त्रिय दृष्टि में बग मजदूर रहा है। इसका आकार अन्ततः बढ़ा है और यह 'गामक' और शक्तिशाली (मजदूरों या शक्तिशाली श्रमिकों) शक्ति में अन्ततः पृथक और अन्ततः बनाये रखा है। अन्ततः मजदूरों और पत्रों ने चिन्ता है कि राजतन्त्रिय दृष्टि में भाग्य का यह सिद्धान्त चाह दिवना महत्त्वपूर्ण रखा है वह सामाजिक तन्त्रों के अन्ततः मजदूरों में प्रकट हो रहा है।² द्वितीय बग समाज की घटनाओं का मुख्य चालक नहीं कहा जा सकता। राष्ट्रवाद के प्रति अन्ततः भक्ति से समाज के विभिन्न वर्गों का समाज निर्मित पत्र जाता है। अन्ततः अन्ततः और द्वितीय महायुद्ध में फँसे राष्ट्रों का इतिहास इसका साक्षात् है। श्रमिक वर्ग चलने का उभाड़न के लिए भाग्य एन्ततः का नारा— समाज के श्रमिकों एक हो जाओ एन्ततः तुम अन्ततः शुरू करना— राष्ट्रवाद की शक्ति के भाग्य

1 V I Lenin Marx-Engels-Marxism Foreign Languages Publishing House Moscow (1941) pp 26-29
2 Machter & Page op cit p 362.

फीका पड जाता है। पालण्ड हगरी और यूगोस्लेविया में हाल के राजनतिक विप्लव इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। स्वयं साम्यवाद ने राष्ट्रवाद की गम्भीर शक्ति को स्वीकार कर एशिया के नव-स्वतंत्र अथवा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सचेष्ट राष्ट्रा की सहायता कर अपना सहयोगी बनाने की नई काय प्रणाली अपनाई है।¹

तीसरी आलोचना भी बड़ी सशक्त है। जवाहरलाल नेहरू और जयप्रकाश नारायण दोनों इस बात पर सहमत हैं कि समाज अथवा मसाले की सभी समस्याओं का समाधान वगैरह समाज का उपरतार कर नहीं किया जा सकता। जनतन्त्रीय समाज में अहिंसात्मक शांतिपूर्ण और मजनात्मक रीतियाँ से समाजवाद की स्थापना निश्चय ही सम्भव है। यह लक्ष्य रक्तपात रहित सामाजिक और आर्थिक शान्ति के चर्मों तक पर सिद्ध हो सकेगा। सम्भवतः, साम्यवाद का अधिक मंगलकारी स्थानापन्न सर्वोत्तम ही है।

1 Dr John Mathai's lecture under Srinivas Sastry Lectureship in the Madras University (2nd Dec 1956)

सामूहिक व्यवहार (भीड़, श्रोता, दशकगण एवं जनता)

भीड़ की प्रवृत्ति

लौ वान (Le Bon) ने भीड़ शब्द का बहुत व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। उन्होंने भीड़ के मनोवैज्ञानिक लक्षण पर विचार्य जाकर दिया है। वे शारीरिक नियंत्रण का भीड़ का आवश्यक लक्षण नहीं मानते। उनके अनुसार भीड़ का आवश्यक गुण वस्तु से लगाव में समान भावनाओं और संज्ञा का एक स्तर में मुक्त होना है। तब तक मन में एक प्रकार का एकमात्र सामूहिक मस्तिष्क बन जाता है। भीड़ में हानि पर जागृता का वैयक्तिक चेतना पर सामूहिक चेतना हावी हो जाता है।

जनमन्या के विभिन्न सप्रहा में क्रुद्ध की विशेषताया अस्थायी अथवा अल्पकालिक प्रवृत्ति होती है। भीड़ें कोलाहली भीड़ें आना मठतियाँ और जनताएँ इसी प्रकार के सामाजिक भ्रष्ट हैं। जब किसी वस्तु अथवा कार्य का अत्यन्त मुनन के लिए अधिक संख्या में लोग अल्पकाल के लिए एकत्र हो जाते हैं तो उनका मध्य का भाग मजली बहने है। प्रत्येक समुदाय राष्ट्र अथवा समाज के अवसाधारण का अथवा विनिष्ठा के अन्तर्गत जनमन्या के संज्ञा का अर्थ जनता और जनता का अर्थ है। आधुनिक राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय समाचार पत्र-पत्रिकाओं में जो पाठ्य-नामका हानो है वह विभिन्न तथियों के जनमनुभाषा की आवश्यकता की पूर्ति के उद्देश्य से रखा जाता है। विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्त अथवा अर्थशास्त्रिक सिद्धांतों में सम्मिलित नामका राजनैतिक आर्थिक और व्यापारिक सिद्धांतों में जनता का अर्थ भीड़ और जनता का अर्थ है। जनता का अर्थ है। आधुनिक नैतिक समाचार पत्र जनमन को दर्शा करने के प्रमुख साधन हैं।

सब प्रकार की भाषा के संख्या में साधारणतया शारीरिक समीपता होती है। श्रोतामंडली में आजकल शारीरिक समीपता होने आवश्यक नहीं है। छात्री

छोटी आतामडलिया के सदस्या में शारीरिक समीपता अथवा एक साथ उपस्थिति सम्भव हो जाती है। किन्तु टेलिविजन या रेडियो की श्रोतामडलियों में केवल मानसिक सम्पर्क हाता है। जनताओं में तो केवल मानसिक सम्पर्क ही मिलता है।

भीड़ों का आवश्यक लक्षण भारी सख्या में लोगों के बीच शारीरिक समीपता नहीं है। इन लोगों में अत उत्तेजना और अनुक्रिया अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक लक्षण है। भीड़ में लोगों की उपस्थिति से जो एक दूसरे के विचारों और सवेगा पर प्रभाव पड़ता है वह सबसे महत्वपूर्ण है। यह प्रभाव नाटकीय हो जाता है जब सवेग भटक उठत हैं और भीड़ में सघन भावना बड़ी सरलता से उभड़ जाती है। इसलिए भीड़ की सबसे अच्छी परिभाषा उसकी सरचना के आधार पर न होकर काय से हो सकती है। भीड़ का विशिष्ट चिह्न आवश्यक है।

भीड़ का अर्थ ऐसे जन समूह से नहीं है जो किसी बड़े नगर की सड़क पर कच्चे से कच्चा रगड़ कर चल रहा है और जिसका हर व्यक्ति अपने अपने काम पर चला जा रहा है अथवा वहाँ किसी को दूसरे से कोई मतलब नहीं है। विशाल जन-समूह बड़ या राजधानी नगरों की विशेषता है। अर्थात् विशाल जनसमूह का एक स्थान पर एकत्रित होना ही भीड़ नहीं कहाता। उनके शारीरिक संपर्क मात्र से भीड़ नहीं बन जाती। भीड़ एक प्रकार का अस्थायी एवं असंगठित समूह है। स्मरण रहे कि समूह का आधार मनावनानिक है। अतएव भीड़ का आधार भी मनावनानिक है। उपरोक्त विशाल जनसमूह भीड़ में बदल जायगा जब उसका व्यक्तियों का ध्यान एक वस्तु पर केंद्रित हो जाए। गणतंत्र दिवस का विशेष समारोह देखने के लिए एकत्रित जन समूह भीड़ है। इस समूह के व्यक्तियों की दिलचस्पी इस समारोह की आकर्षण और रगविरगी चीजों को देखना है। इसी प्रकार बाजार में एकत्रित जन समूह भी भीड़ बन सकता है यदि बाजार की किसी दुकान में आग लग जाए अथवा किसी लारी ठेला से काँइ बच्चा कुचल जाए। इन दोनों अवसरों पर जनसमूह के व्यक्तियों का ध्यान एक ही त्रिंदु पर आकर टिक जाता है। पहले में जलती दुकान पर और दूसरे में आहत बच्चे पर। इसका अतिरिक्त सभी व्यक्तियों में एक ही प्रकार का सवेग जागृत होता है और उनमें से हर व्यक्ति की मानसिक दशा दूसरे उपस्थित व्यक्तियों की मानसिक प्रतियाओं से कुछ अशा में अवश्य प्रभावित होती है। मंगडूगन भी इनमें भीड़ या अर्थ सामूहिक मानसिक जीवन की मूलभूत दशाएँ मानना है।¹

भीड़ के सदस्य में इस भावना का होना आवश्यक है कि दूसरे लोग वहाँ उपस्थित हैं और एक सदस्य के सवेग और विचार दूसरों द्वारा समगृहीत हान हैं।

गिसबग क अनुमार भीड के सदस्यो म सवणा और विचारो की समानता तभी हा मकती है जब उनमे कुछ सामूहिक ममाजातीयत्व हा । एक ही वस्तु स आकर्षित होन क लिए लोगो म बहुत ना बाले सामान्य हाना चाहिए ।¹

रॉस क अनुमार भीड म ध्यान क भुकाव म साम्य अपना और चेतना के क्षय का संकुचन हाना चाहिए जिनम विघ्नकारी प्रभाव पग न हा सकें । भीड क सभी बहणा म उपरांत लक्षण क अतिरिक्त गहरी ज्ञान्ति स्की साम और कटिना ध्यान घाति उपगना पर भी जोर दिया जाता ह ।

भीड मनुष्या के उस समूह का नाम है जिनम कुछ रर क लिए लाग घसग-टिन तरीक स एक दूसरे क सम्पर्क म आन हैं । भीड क लिय मन्या का अधिक जना आवश्यक है । पहले से सूचना पाकर मैकडा हजारा या लाखा की मन्या म एवशित लोगो स वक्ता अभिनता या नतक या गायक की उपस्थिति म भीड बनू थाना मन्ता बनती है । आतागण का एक औपचारिक भीड कहा जा मकता है । इसी तरह जुलूम और भीम म भी भेद है । जुलूम एक अस्थायी मण्डित समूह है और जुलूम को दबन क लिए दशक समूह भीड है । जम राम वारात (रामलीला म) म सम्भलित लाग जुलूम म हात हैं और न वारात का दबन की रचि स इक्ट्टे जनममूह का भीड कहन हैं । इसी प्रकार किसी मन म एकशित जनसमूह भीड है या ममुद्र तट पर या पाक म एवशित छुट्टी म आन मनान जाना क समूह भाट हा सकत है । य अनौप-चारिक भीड क उदाहरण हैं ।

किम्बन घग न वस्तु अधिक मन्या म लाग क एम मजम का जो एक केन्द्र अववा सामान्य रिदु के कारण एवत्र हुआ है भीड कहा है । 'धूल्य क विचार म ' भीड एक अस्थायी और अमण्डित समूह है जो किमा सामान्य रचि क कारण ब्यत हा बन गया है धार जिसकी सीमाएँ पूगना स विस्तारणीय हैं ।²

आवश्यक समर

उपगन वरान स भाड क निम्नलिखित आवश्यक उदाग या गायें प्रवट हाती हैं —

(१) सामान्य केन्द्र पर रचि, ध्यान एव काय का हाता एम प्रतिशिया का सुन्दकारण (polarization) कहन है (२) रचि की वस्तु क वार म एक ही मनन और समान विचार (३) समूह के मन्या पर पारस्परिक प्रभाव (४) समूह की

1 Morris Ginsberg *Psychology of Society* London (1933) p 130

2 A crowd is a gathering of a considerable number of persons around a centre or point of common attention (Kimball) Young *Handbook of Social Psychology* Routledge and Kegan Paul (1953) p 387

3 A crowd is a transitory group unorganised with completely permeable boundaries spontaneously formed as a result of some common interest R. H. Thoules *General and Social Psychology* p 258

छोटी थ्रोतामडलिया क सन्स्या म शारीरिक समीपता अथवा एक साथ उपस्थिति सम्भव हा जाती है। किन्तु टेलिविजन या रेडियो की थ्रोतामडलिया म केवल मानसिक सम्पर्क हाता है। जनताआ म ता केवल गनसिक सम्पर्क ही मिलता है।

भीडा का आवश्यक लक्षण भारी सस्या म लागा के बीच शारीरिक समीपता नहीं ह। इन लागा म अत उत्तेजना और अनुक्रिया अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक लक्षण है। भीड म लागा की उपस्थिति स जो एक दूसरे के विचारा और सबगा पर प्रभाव पडता है वह सत्रस महत्वपूर्ण है। यह प्रभाव नाटकीय हा जाता है जब सबग भडक उठत ह और भीड म सधन भावना बडी सरलता स उभड जाती है। इसलिए भीड की सबस अच्छी परिभाषा उसकी सरचना के आधार पर न होकर काय स हो सकती है। भीड का विशिष्ट चिह्न आवश्यक है।

भीड का अर्थ ऐसे जन समूह से नहीं है जा किसी बडे नगर की सडक पर कचे स कचा रगड कर चल रहा है और जिसका हर व्यक्ति अपने अपने काम पर चला जा रहा है अथवा वहा किसी का दूसरे से कोई मतलब नहीं है। विशाल जन समूह बड या राजधानी नगरा की विशेषता है। अर्थात् विशाल जनसमूह का एक स्थान पर एकत्रित हाता ही भीड नहीं कहाता। उनके शारीरिक सपर्क मात्र से भीड नहीं बन जाती। भीड एक प्रकार का अस्थायी एवं असंगठित समूह है। स्मरण रहे कि समूह का आधार मनावज्ञानिक है। अतएव भीड का आधार भी मनावज्ञानिक है। उपरोक्त विशाल जनसमूह भीड म बदल जायगा जब उसक व्यक्तिया का ध्यान एक वस्तु पर केन्द्रित हा जाए। गणतंत्र दिवस का विशेष समाराह दान के लिए एकत्रित जन समूह भीड है। इस समूह क व्यक्तिया की दिलचस्पी इस समारोह की आकर्षक और रगत्रिगा चीजा को देखना है। इसी प्रकार, बाजार म एकत्रित जन समूह भी भीड बन सकता है यदि बाजार की किसी दुकान म आग लग जाए अथवा किसी लारी ठेता म कोई वच्चा कुचल जाए। इन दोनो अवसारा पर जनसमूह के व्यक्तिया का ध्यान एक ही बिन्दु पर आकर टिक जाता है। पहले म जलती दुकान पर और दूसरे म आहत वच्चे पर। इनके अतिरिक्त सभी व्यक्तिया म एक ही प्रकार का सबग जागृत हाता है और उनम स हर व्यक्ति की मानसिक दशा दूसरे उपस्थित व्यक्तिया की मानसिक प्रक्रियाआ स कुछ अशा मे अवश्य प्रभावित हाती है। मन्गून नी इनरो भीड या गय सामूहिक मानसिक जीवन की मूलभूत दशामें मानता है।¹

भीड क सदस्य म इस भावना का होना आवश्यक है कि दूसरे लाग वहाँ उपस्थित हैं और एक सन्स्य के सबेग और विचार दूसरा द्वारा समगृहीत हात हैं।

गिसबग के अनुसार भीड़ के सदस्या में सवेगा और विचारा की समानता तभी हो सकता है जब उनमें कुछ सामूहिक समाजातीयत्व हा। एक ही वस्तु से आकर्षित हान व लिए लोग म बहुत मो बातें सामाय होना चाहिए।¹

रॉस व अनुसार भीड़ म ध्यान के भुक्ताव म साम्य, अपना और चेतना व क्षेत्र का सकुचन हाना चाहिय जिममे विघ्नकारी प्रभाव पदा न हा सकें। भीड़ के मभी बणाना म उपरांत लक्षणों के अतिरिक्त गहरी शान्ति रकी सास और केन्द्रित ध्यान शान्ति लभणा पर भी जोर दिया जाता है।

भांड मनुष्या के उम समूह का नाम है जिसम कुछ दर के लिए लोग असंगठित तरीक स एक दूसरे व सम्पर्क म आन हैं। भीड़ व लिय सभ्या का अधिक होना आवश्यक है। पहले से सूचना पाकर सैकड़ा हजारों या लाखों की सभ्या म एकत्रित लोग स वक्ता अभिनता या नतक या गायक की उपस्थिति म भीड़ बनना आता मडला बनता है। शोनागण को एक औपचारिक भीड़ कहा जा सकता है। इमा तरह जुलूम और भीड़ म भी भेद है। जुलूम एक अस्थायी संगठित समूह है और जुलूम को दबान व लिए दशक समूह भीड़ है। जैसे, राम वारात (रामलीला म) म सम्मिलित लोग जुलूम म हान हैं और रम वारात का दखने की रचि स इकट्ठे जनसमूह को भीड़ वतन हैं। इमी प्रकार किमी मले मे एकत्रित जनसमूह भीड़ है या समुद्र तट पर या पाक म एकत्रित छुट्टी म आनंद मनान वाला व समूह भीड़ हा सकते हैं। य अनौपचारिक भीड़ के उदाहरण हैं।

किम्बन यग न 'वस्तु अधिक सभ्या म लोग के एमे मजम को जो एक वद्व श्रवण सामाय रिट्ट व कारण एकत्र हुआ है भीड़ कहा है। "धूलन व विचार म ना" एक अस्थायी और असंगठित समूह है जो किमी सामाय रचि के कारण ब्वन हा बन गया है और जिमकी सामाएँ पूणता स विस्तारमान हैं।²

आवश्यक लक्षण

उपरांत बणन म भीड़ के निम्नलिखित आवश्यक लक्षण मा दगार्ये प्रकट होती हैं —

(१) सामाय केन्द्र पर रचि ध्यान एवं काय का हाना इस प्रक्रिया को ध्रुवकारण (polarization) कहत हैं (२) रचि की वस्तु व बारे म एक ही मवग और समान विचार, (३) समूह के सदस्या पर पारस्परिक प्रभाव (४) समूह की

1 Morris Ginsberg *Psychology of Society* London (1933) p 130

2 A crowd is a gathering of a considerable number of persons around a centre or point of common attention Kimball Young *Handbook of Social Psychology* Routledge and Kegan Paul (1953) p 38

3 A crowd is a transitory group unorganised with completely permeable boundaries spontaneously formed as a result of some common interest R. H. Thoules *General and Social Psychology* p 248

छाटी श्रोतामडलिया के सदस्या म शारीरिक समीपता अथवा एक साथ उपस्थिति सम्भव हो जाती है। किन्तु टेलिविजन या रडियो की श्रोतामडलिया म केवल मानसिक सम्पर्क होता है। जनताओं मे ता केवल मानसिक सम्पर्क ही मिलता है।

भीड का आवश्यक लक्षण भारी सग्या म लोग के बीच शारीरिक समीपता नहा है। इन लाग म अत उत्तेजना और अनुक्रिया अतिक महत्वपूर्ण और आवश्यक लक्षण है। भीड म लोग की उपस्थिति स जो एक दूसरे के विचारा और सवगा पर प्रभाव पडता है वह सबसे महत्वपूर्ण है। यह प्रभाव नाटकीय हो जाता है जब सवग भडक उठते हैं और भीड म सधन भावना बडी सरलता स उभड जाता है। इसलिए भीड की सबसे अच्छी परिभाषा उसकी सरचना के आधार पर न होकर काय से हो सकती है। भीड का विशिष्ट चिह्न आवश है।

भीड का अर्थ ऐसे जन समूह से नही है जो किसी बडे नगर की सडक पर कधे से कधा रगड कर चल रहा है और जिसका हर ब्यक्ति अपने अपने काम पर चला जा रहा है अथवा वहा किसी का दूसरे मे कोई मतलब नही है। विशाल जन-समूह बडे या राजधानी नगरा की विशेषता है। अर्थात् विशाल जनसमूह का एक स्थान पर एकत्रित होना ही भीड नही कहाता। उनके शारीरिक सपर्क मात्र से भीड नही बन जाती। भीड एक प्रकार का अस्थायी एवं अमगटित समूह है। स्मरण रहे कि समूह का आघार मानवनातिक है। अतएव भीड का आघार भी मनोवज्ञानिक है। उपरोक्त विशाल जनसमूह भीड म बनल जायगा जब उसक ब्यक्तिया का ध्यान एक वस्तु पर केन्द्रित हो जाए। गणतंत्र दिवस का विशेष समारोह देखन के लिए एकत्रित जन समूह भीड है। इस समूह के ब्यक्तियो की तिलचस्पी इस समारोह का आकर्षक और रगडिरगी चीजा को देखना है। इसी प्रकार बाजार म एकत्रित जन समूह भी भीड बन सकता है यदि बाजार की किसी दुकान म आग लग जाए अथवा किसी लारी ठेला से काई बच्चा कुचन जाए। इन दोनो अवसरो पर जनसमूह के ब्यक्तिया का ध्यान एक ही बिन्दु पर आकर टिक जाता है। पहले म जलती दुकान पर और दूसरे म आहत बच्चे पर। इसक अतिरिक्त सभी ब्यक्तियो म एक ही प्रकार का सवग जागृत होना है और उनम स हर ब्यक्ति की मानसिक दशा दूसरे उपस्थित ब्यक्तिया की मानसिक प्रक्रियाआ से कुछ अशा मे अवश्य प्रभावित हाती है। मगडूगन भी इनको भी या गाय सामूहिक मानसिक जीवन की मूलभूत दशाएँ मानता है।¹

भीड क सन्ध्य म इस भावना का होना आवश्यक है कि दूसरे लोग वहाँ उपस्थित हैं और एक सदस्य के सवेग और विचार दूसरा द्वारा समगृहीत हान है।

1 McDougall *The Group Mind* Cambridge (1927) pp 22-23

गिसवग के अनुसार भीड़ के सदस्या मे सबेगा और विचारा की समानता तभी हो सकती है जब उनम कुछ सामूहिक समाजातीयत्व हो। एक ही वस्तु से आकर्षित हान के लिए लागू म बहुत सी बातें सामान्य होना चाहिए।¹

राम क अनुसार भीड़ म ध्यान के भुभाव म साम्य अपना और चेतना के क्षेत्र का मनुचन हाना चाहिये जिममे विघ्नकारी प्रभाव पदा न हा सकें। भीड़ के मनी वणन म उपराक्त लक्षण क अनिरिक्त गहरी शांति रकी साम और कद्रित ध्यान प्राप्ति लक्षण पर भी जा र दिया जाता है।

भीड़ मनुष्या के उस समूह का नाम है जिमम कुछ दर क लिए लोग असंगठित तरीक स एक दूसरे के सम्पर्क म आत हैं। भीड़ के लिए सस्या का अधिक होना आवश्यक है। पहले से सूचना पाकर सैकडा, हजारों या लाखों की सख्या म एकत्रित लागू स वक्ता, अभिनता या नतक या गायक की उपस्थिति मे भीड़ बनू श्योला मडनी बननी है। श्रोतागण का एक औपचारिक भीड़ कहा जा सकता है। इसी तरह जलूम और भीड़ म भी भेद है। जलूम एक अस्थायी संगठित समूह है और जलूम को दखन क लिए दशक समूह भीड़ है। जस राम वारात (रामलीला म) म सम्मिति लागू जलूम म हान हैं और इन वारात का दखने की रचि स इकटठे जनसमूह का भीड़ कहत हैं। इसी प्रकार किमी मल मे एकत्रित जनसमूह भीड़ है या ममुद्र तट पर या पाक म एकत्रित छुट्टी म आनंद मनान वाला के समूह भीड़ हा सकते हैं। य अनौपचारिक भीड़ क उदाहरण हैं।

किम्बन यग न ' बहुत अधिक सख्या म लागू क ऐसे मजमे को जो एक कद्र अथवा सामान्य विद् के कारण एकत्र हुआ है भीड़ कहा है।² शून्य क विचार म ' भाव एक अस्थायी और असंगठित समूह है जा, किमी सामान्य रचि क कारण स्वत ही बन गया है और जिमकी सीमाएँ पूरणा म विस्तारणीत हैं।³

आवश्यक लक्षण

उपराक्त वणन स भीड़ के निम्नलिखित आवश्यक लक्षण या लक्षणों प्रकट होता है —

(१) सामान्य क्षेत्र पर रचि, ध्यान एवं वाप का हाना इन प्रतिक्रिया को ध्रुववाकरण (polarization) कहत हैं, (२) रचि की वस्तु क वार म एक ही मवा और समान विचार, (३) समूह के मज्म्या पर पारस्परिक प्रभाव (४) समूह की

1 Morris Ginsberg *Psychology of Society* London (1933) p 130

2 A crowd is a gathering of a considerable number of persons around a centre or point of common attention Kimball Young *Handbook of Social Psychology* Routledge and Kegan Paul (1953) p 387

3 A crowd is a transitory group unorganised with completely permeable boundaries spontaneously formed as a result of some common interest R. H. Thoules *General and Social Psychology* p 258

अल्पकालिक प्रवृत्ति, (५) उसका स्थानिक वितरण, (६) जनसमुदाय की शक्ति का कुछ अनुभूति।

भीड़ों का वर्गीकरण

रुचिया के विचार से मकाद्वर और पज न भीड़ों को चार वर्गों में विभक्त किया है।¹

- (१) केन्द्रित और समान रुचि वाली भीड़
(focussed and like interest crowd)
- (२) अकेन्द्रित और समान रुचि वाली भीड़
(unfocussed and like interest crowd)
- (३) केन्द्रित और सामान्य रुचिवाली भीड़ और
(focussed and common interest crowd)
- (४) अकेन्द्रित और सामान्य रुचि वाली भीड़।
(unfocussed and common interest crowd)

केन्द्रित और एकसी रुचि वाली भीड़—जब एक मकान में आग लग जाती है तो चारों तरफ खड़ लाग तमाशा देखते हैं। उनमें सड़क की दिलचस्पी या रुचि यही है कि आग से मकान का क्या नुकसान हुआ? कौन आदमी जल गया? कितने आदमी भाग निकले? इसी का जानने की उत्सुकता सब में है। ऐसी भीड़ केन्द्रित और एकसी रुचि वाली कहलाती है। वही तरह की भीड़ गाड़ी आने के पूर्व प्लेटफार्म पर होती है। गाड़ी आते ही भीड़ के हर सदस्य का ध्यान एक बात पर है कि किमी तरह से गाड़ी पर सवार होगा जाय।

केन्द्रित और सामान्य रुचि वाली भीड़—ऊपर लिये हुए आग के चारों घोर एकत्रित भीड़ के उदाहरण में एक ही रुचि पदा है। सक्ती है। अगर सभी लोग भीड़ दौड़ कर आग बुझाने लगें तो पूरे की भीड़ केन्द्रित और एकसी रुचि वाली भीड़ हो जायगी। ऐसी भीड़ में हर एक आदमी अपने का निशाल समूह का एक अंग समझता है। यह अपनी विशाल शक्ति का अनुभव भी करता है। इसमें हर व्यक्ति का एक ही स्वाध है। राजनविन भीड़ इसी प्रकार की होती हैं। विमानों की विगव प्रणयन भीड़ दुःखान्तारा की हडनाली भीड़, अथवा विद्यार्थियों का अपनी माँगें पूरी करवाने के नियम स्कूल-कालेज में अनुपस्थित हाकर जुलूम निशालना और चौराते या मकान में भाड़ के रूप में बल जाना कुछ इसी प्रकार की भीड़ें होती हैं। हडताली मजदूरों की भीड़ भी केन्द्रित और सामान्य रुचि वाली भीड़ होती है। मुताबिक अमरीका में निर्विग (lynching) भी इसी प्रकार की भीड़ों द्वारा होता है।

समाजशास्त्र में ये भीड़ें बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन भीड़ों का संगठन घटनाओं पर निर्भर रहता है। इन भीड़ों में हर एक सदस्य विनाशकारी शक्ति का अनुभव करता है और धीरे-धीरे इशारे पर ऐसी भीड़ें भयंकर से भयंकर उत्पात अथवा अपराध कर सकती हैं। कानून या देश की प्रथाओं की बलि दे देना इन भीड़ों का नियमनाधारण बात है। ऐसे अवसर पर मनुष्य की कुत्सित या समाज विरोधी भावनाएँ जाग उठती हैं और पशुता का उसमें नगा नाच हा सकता है। इस प्रकार की भीड़ें अच्छा काम भी कर सकती हैं किन्तु उमक लिये अवसर जुटाना का काम बहुत कठिन होता है।

अकेन्द्रित तथा एक सी रुचि वाली भीड़—छुट्टी के दिन किसी बड़े पार्क में या नदी के किनारे एकत्रित भीड़ इसी प्रकार की होती है। इसमें भीड़ का ध्यान किसी एक वस्तु पर केन्द्रित नहीं होता और न सबका एक उद्देश्य पूर्ति करना ही ध्येय रहता है। किन्तु हर किसी की रुचि एकसी है। सर-सपाट के नियम या मना-जन के लिए सभी एकत्र हुए हैं। यही भीड़ केन्द्रित ध्यान की हो सकती है यदि उदाहरण के लिये नदी में कोई आदमी डूबने लगे। सभी का ध्यान इन डूबने हुए व्यक्ति पर केन्द्रित हो जाएगा। यही भीड़ केन्द्रित तथा सामान्य रुचि वाली भीड़ हो सकती है यदि पार्क में एकत्र होने के बाद ही वहाँ का मैच होने लगे या आतिथेयवाजी छुट्टा जाय। इस प्रकार की भीड़ विकृत फुटबाल आदि के मैच के अवसर पर बनती है। किसी विशेष उत्सव के अवसर पर किसी विशेष कार्यक्रम का स्थान के लिये एकत्र जमना इसी प्रकार की भीड़ होती है। उन १५ अग्रगण्य स्वतंत्रता चिन्मय पत्रिका के लाल किरण के समीप प्रधान मंत्री के भाषण का सुनने के लिये एकत्रित भीड़ इसी तरह की होती है।

बायपोल भीड़

फुटबाल के मैच के दौरान के लिये भीड़ कभी कभी जाड़ जाड़ में तार्किकी बन जाती है चिल्लाती है अथवा कभी कभी किसी गिनतानी के गिर जाने में या आत्म हानि में भाग लेने के लिये उठ जाती है। ऐसी भीड़ के सभी लोगों में सबका उत्पन्न है और गहरी मनावृत्तियाँ उभर आती हैं। यह सक्रिय भाव (action crowd) है। किन्तु यहाँ के विचार से सक्रिय भीड़ों का प्रकार की हो सकता है—घातमक शक्ति (attack rage) भीड़ अथवा भयंकर (panic crowd) भीड़। मान लीजिए कि एक मैच आरम्भ हो रहा था। नतीजतन न जाने कौन कौन से कारणों से और भारत का एक भी नहीं हुआ। भीड़ में से एक तरफ से आवाज आई कि हमारे देश के साथ आयात हो रहा है। अगर दूसरे दल की इस प्रकार की बातें और चिल्लाने लगते हैं तो भीड़ या तो रफरी का मार्ग चलाया या किसी एक (गान) पर आक्रमण कर दगी। ऐसी स्थिति में भाव का कुछ भाग यह है कि मान लीजिए कि सड़क पर भीड़ द्वारा आग लगा देना और किसी व्यक्ति या व्यक्ति मरने या परिवार पर एक जमपट डालना अथवा उनकी हत्या घातमक शक्ति का

काय हैं। सिनेमा में आग लग जाने पर दशका की भीड़ भय के मारे भागती है। हरेक को अपनी जान बचाने की पड़ी होती है। परिणामतः बहुत से स्त्री बच्चे और पुरुष दम कर मर जाते हैं। इन अशांत और उग्र भीड़ों को कोलाहली भीड़ें (mobs) कह सकते हैं। तबहीनता और हिंसा अथवा आनामक चेष्टाएँ इनकी प्रकृत विशेषताएँ हैं। ऐसी कोलाहली भीड़ों को सक्रिय अथवा दगाई भीड़ें कहते हैं। इनको पुनः दो वर्गों में विभक्त किया जाता है (१) आनामक-कोपी भीड़ें और (२) भयग्रस्त भीड़ें।

आनामक उल्लास अथवा शाक में उन्मत्त शांतिमय भीड़ों को अभिव्यक्त भीड़ें (expressive crowd) कहते हैं। यही किसी कारण से क्षणभर में उग्र और अशांत अथवा सक्रिय भीड़ हो सकती हैं। सक्रिय भीड़ कुछ कर डालने पर आमादा होती हैं।

क्रियाशील भीड़ पर सबसे मूलभूत सबेगो जस क्रोध भय, घृणा और ईर्ष्या आदि का प्रभाव होता है। उसमें इतना आघात होता है कि शांति या धर्म से साक्षता उमरनी क्षमता से परे हो जाता है। उसमें सभी व्यक्ति किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिये कार्य करने पर उतावले होते हैं और उसे करने के बाद ही दम लेते हैं।

भीड़ की मानसिक विशेषताएँ

(१) 'यून बुद्धि'—भाड़ में 'यून बुद्धि' हानी है। भीड़ का अग हो जाने के कारण व्यक्ति की विचार शक्ति बहुत कम हो जाती है। भीड़ के बाहर तिलनी बुद्धि का प्रदर्शन वह कर सकता था वह उसमें भीतर असम्भव हो जाता है। भीड़ में व्यक्ति स्पष्ट नहीं साध पाता। वह किसी भी विचार को सत्य मान सकता है। इतना ही नहीं दूसरों की राय का भी सिद्ध वाक्य जैसा अपना लेता है। भीड़ में विचार और राय छूट की तरह फैलते हैं। भीड़ क्षणभर में तिल को ताड़ और ताड़ का तिल बना देती है।

भाड़ में 'यून बुद्धि' होने के मनोबनानिको न कई कारण बताय है —

(अ) भीड़ में सब तरह के लोग होते हैं। ऊँची बुद्धि और तन वाले तथा 'यून बुद्धि' और तब शक्ति रहित भी। किन्तु बहुसंख्या दूसरों की रायों के लागे की जानता है। अतः भाड़ की समग्र बुद्धि अल्प और होन स्तर की हो जाती है। भीड़ में तन और विचार भी हीन स्तर में प्रवेश पाते हैं क्योंकि उच्चतम को समझन की क्षमता बहुसंख्या में नहीं हानी। बहुसंख्या के साथ अल्पसंख्या वाले जिनकी बुद्धि ऊँची होनी है सम्भारता से साक्षन की शक्ति अल्प समय के लिये रा धरते हैं।

(आ) भाड़ में सामूहिक विचार विमल नहीं हो पाता क्योंकि एम विचार-विनिमय के लिए विचारों का आदान प्रदान और स्वतंत्र चर्चा होना आवश्यक है।

श्रीर य दाना दाते भीड म हाता असम्भव है । इसलिय भी भीड की विचार शक्ति म ह्यास आ जाता है । भीड मे जो आदमी बोचने खडा हाता है वही बोलता है और दूसरा को चुप कर देता है ।

(इ) व्यक्तिया मे सुभावग्रहणीयता बड जाती है । भीड की भारी शक्ति का प्रभाव हर व्यक्ति पर पडता है । वह अपन का भीड क अधीन समर्भन लगता है और उसकी मानसिक दशा सुभाव ग्रहण करन योग्य नै जानी है । हर गम जा भीड म चनती है वही हूड प्रनिष्ठा के कारण शीघ्र ही स्वीकार कर ली जाती है । चेतना क चन्द्र के बाहर हर विचार सुभावग्रहणीयता द्वारा दुरदुरा गिया जाता है । भीड का नता भी लोगा क सवगा और भावनाआ का जगान और मन्नुष्ट करन की चला करता है । जाग्रत सवग क अनुकून हर विचार वनी जन्गी ग्रहण हा जाता है । नता की राय का लाग भीड की राय मानन है कयाकि वह जनसमुदाय क सुभाव की शक्ति निय हाती है ।

(ई) जब सवगात्मक आवाग भीड म आ जाता है ता सुभावग्रहणीयता बड जान क अलावा विचार शक्ति भी मन्द पड जाती है । थाय हुए सवगा के विरारी विचार एर दो क ही मस्तिष्क म घुगत है किन्तु जिनका उन सवगा स सामजस्य हाता है उह तक के अगैर ही ग्रहण कर लिदा जाता है । भीड मे व्यक्ति सवगा की अभिव्यक्ति क प्रति बहुत उत्तरील हाता है । उत्तेजक के सचयी होन का प्रभाव नी बहन जवरत्स होना है । जितनी अधिक भावना सघन हागी तब उनना ही कुष्ठित होगा । साधारण तीर पर, सवग बौद्धिक प्रत्रिया का गक दना है । यह कहना अतिपाति न हागी कि भावना की पराकाष्ठा जो कि थीर धीरे भीड म पहुँच जाती है भीड का अस्थायी मन दुबलता म ला पटकती है ।¹ इही परिस्थितिया म आन्धी अया हाकर काई भी काम कर सकता है । बहन सम्भव है इन कामा क निय बाट म उम पद्यताना पडे ।

(उ) अनुकरणात्मक व्यवहार भीड की एक प्रधान विशेषता है । अनुकरणा क व्यक्ति म भीड क साथ ही सवग प्राप्त है । तागा का हँसन दमकर वह हँसन लगता है अगर नाग रा रट है ता वह गाता है और यदि नाग गोक म अभिभूत है ता वह शोक म डूब जाता है । बहन का अभिप्राय है कि भाट म हर व्यक्ति क सवग एक म हा हात है । अगर भीड म श्रेय का ज्वाला घषक रही है ता उना ज्वाला की चपटा म व्यक्ति भी जवन लगना है । भीड क बुद्ध नागा के भागन पर बाका लाग भी भागन नगत है । यह अनुकरणात्मक व्यवहार सम्पन्न प्रेरका क प्रति उत्तरागत समान सवगा क कारण हाता है ।

(घ) सवगात्मकता—यह भीड की दूसरी विशेषता है । सवगात्मक आवाग भीडों की कुस्यान प्रवृति है । भावनाएँ कई साधना द्वारा सर्वावना स अभिध्यन

काय हैं। सिनेमा में आग लग जाने पर दशका की भीड़ भय के मारे भागती है। हरेक को अपना जान बचाने की पड़ी होती है। परिणामतः बहुत से स्त्री बच्चे और पुष्प दब कर मर जाते हैं। इन अशांत और उग्र भीड़ों को कोलाहली भीड़ें (mobs) कह सकते हैं। तर्कहीनता और हिंसा अथवा आक्रामक चेष्टाएँ इनकी प्रधान विशेषताएँ हैं। ऐसी कोलाहली भीड़ों का सक्रिय अथवा दगाई भीड़ें कहते हैं। इनका पुनः दो वर्गों में विभक्त किया जाता है (१) आक्रामक क्रोधी भीड़ें और (२) भयप्रभू भीड़ें।

आनन्द उल्लास अथवा शोक में उन्मत्त शांतिमय भीड़ों को अभिव्यक्त भीड़ें (expressive crowd) कहते हैं। यही किसी कारण से क्षणभर में उग्र और अशांत अथवा सक्रिय भीड़ें हो सकती हैं। सक्रिय भीड़ें कुछ कर डालने पर आमादा होती हैं।

क्रियाशील भीड़ पर सबसे मूलभूत सवेगा जस क्रोध, भय, घृणा और ईर्ष्या आदि का प्रभाव होता है। उसमें इतना आवश्यक होना है कि शान्ति या धर्म से साक्षात् उसका क्षमता से परे हो जाता है। उसमें सभी व्यक्ति किसी विशिष्ट उद्देश्य का पूर्ति के लिये काम करने पर उतावले होते हैं और उसे करने में बाधा ही दमस्त है।

भीड़ की मानसिक विशेषताएँ

(१) यून बुद्धि—भीड़ में यून बुद्धि होती है। भीड़ का अग्र हो जाने से व्यक्ति की विचार शक्ति बहुत कम हो जाती है। भीड़ के बाहर जितनी बुद्धि का प्रदर्शन वह कर सकता था वह उसके भीतर असम्भव हो जाता है। भीड़ में व्यक्ति स्पष्ट नहीं सोच पाता। वह किसी भी विचार को सत्य मान सकता है। इतना ही नहीं दूसरा का राय का भी मिथ्य वाक्य जसा अपना लता है। भीड़ में विचार और राय छूट की तरह फैलते हैं। भीड़ क्षणभर में तिल को ताड़ और ताड़ का तिल बनाती है।

भीड़ में यून बुद्धि होने का मनोवैज्ञानिक ने कई कारण बताये हैं —

(अ) भीड़ में सब तरह के लोग होते हैं। ऊँची बुद्धि और तक वाले तथा यून बुद्धि और तक शक्ति रहित भी। किन्तु बहुसंख्या दूसरी श्रेणी के लोगों की होती है। अतः भीड़ का समग्र बुद्धि अल्प और हीन स्तर की हो जाती है। भीड़ में तक और विचार भी हीन स्तर में प्रवेश पाते हैं क्योंकि उच्च तक की समझने की क्षमता बहुसंख्या में नहीं होती। बहुसंख्या के साथ अल्पसंख्या वाले जिनकी बुद्धि ऊँची होती है गम्भीरता से साधन की शक्ति अल्प समय के लिये खो बैठते हैं।

(आ) भीड़ में सामूहिक विचार विमर्श नहीं हो पाता क्योंकि ऐसे विचार-विनिमय के लिए विचारों का आदान-प्रदान और स्वतंत्र चर्चा होना आवश्यक है।

और ये दोनों बातें भीड़ में हाना सम्भव है। इसलिये भी भीड़ की विचार शक्ति में ह्रास आ जाता है। भीड़ में जो आदमी बालन खड़ा होता है वही बालना है और दूसरा को चुप कर देता है।

(८) व्यक्तियों में सुभावप्रवृत्तीयता बढ़ जाती है। भीड़ की भारी शक्ति का प्रभाव हर व्यक्ति पर पड़ता है। वह अपने का भीड़ के प्रधान सम्मेलन लगता है और उसकी मानसिक तथा सुभाव प्रवृत्ति करना योग्य हो जाती है। हर राय जो भीड़ में चलनी है वही हृदय प्रियता के कारण शीघ्र ही स्वीकार कर ली जाती है। चेन्नना के क्षेत्र के बाहर हर विचार सुभावप्रवृत्तीयता द्वारा दुरुद्धुग किया जाता है। भीड़ का नेता भी लागू के सबको और भावनाओं का जगान और मनुष्य करन की चपटा करता है। जाग्रत मवग के अनुकूल हर विचार वही जन्मी प्रवृत्ति हा जाता है। नेता की राय का लोग भीड़ की राय मानन हैं क्योंकि वह जनसमुदाय के सुभाव की शक्ति लिय होती है।

(ई) जब सवेगात्मक आवाग भीड़ में आ जाता है तो सुभावप्रवृत्तीयता बढ़ जान के अलावा विचार शक्ति भी मर पड़ जाती है। आय हुए मवगा के विराग विचार एन दा के ही मन्विष्ट में घुसने हैं किन्तु जिनका उन सवगा से सामजस्य होता है उन्हें तक के बगर हा प्रवृत्ति कर लिया जाता है। भीड़ में व्यक्ति मवगा की अभिव्यक्ति के प्रति बहुत उत्तरशील होता है। उत्तेजक के मवयी हान का प्रभाव भी बहुत जबरदस्त होता है। जितनी अधिक भावना सघन होगी तक उनका ही कुण्ठित होगा। साधारण तौर पर मवग बौद्धिक प्रशिक्षण का गक देता है। यह कहना अनिययोक्ति न होगी कि भावना की पराकाष्ठा जो विचार और भीड़ में पहुँच जाती है भीड़ का प्रत्यायी मन चुबचना में ला पटकती है।¹ इन्ही परिस्थितियों में आत्मा प्रया हाकर कई भी काम कर सकता है। बहुत सम्भव है इन कामों के निमित्त बाट में उसे पछताना पड़े।

(उ) अनुकरणात्मक व्यवहार भीड़ की एक प्रधान विशेषता है। अनुकरण में व्यक्ति में भीड़ के साथ ही सबके ध्यान हैं। लागू का हंसन देखकर वह हँसन लगता है अथवा राग से रह हैं तो वह रागा है और यदि लागू शाक से अभिभूत हैं तो वह शाक में दूब जाता है। कहन का अभिप्राय है कि भीड़ में हर व्यक्ति के सवेग एन में हा हान है। अगर भीड़ में भाव की ज्वाला घषघ रहीं है तो उन्हीं ज्वाला की जगन में व्यक्ति भा जलन लगता है। भीड़ के कुछ लोगों के भागन पर बाका लागू भी भागन लगन है। यह अनुकरणात्मक व्यवहार सम्पन्न प्रेरका के प्रति उत्तरगत समान मवगा के कारण हाता है।

(२) सवेगात्मकता—यह भीड़ की दूसरी विशेषता है। मवगात्मक आवाग भीड़ों की कुख्यात प्रवृत्ति है। भावनाओं के माधना द्वारा मर्जीवता से अभिव्यक्त

हा मक्ती हैं कमनिये भीड़ में विचारों की अपेक्षा भावनाएँ अधिक शीघ्रता से प्रकट होती हैं। सवगामन आवंग स मुभाविता बढ जाती है। भीड़ में सभी एक दूसरे का नहीं पहिचानन। व्यक्ति प्राय वेनाम रहता है। इस परिस्थिति में भीड़ के सदस्य अपनी भावनाओं का स्वतन्त्र और बेलगाम छाड़ देने है। दूसरा से कुछ कहने के लिये धान न करके वे बतहाशा चिल्लाते हैं। अपने को दिखाने के लिये व्यक्ति अजीब-गरीब प्रश्न करत ह। कहते की हसी उमात् में गाली गलोज भयानक जयधोप स भीड़ की खशा शोध अथवा उत्साह अभिव्यक्त हात है। सवेग के ये अनिरजित चिह्न (सकेत) मुभावग्रहणीयता स भरे दशका में अनिरजित मानसिक दशाएँ पत्ता करने है। भीड़ में शान्ति और धन रहना असम्भव है। भीड़ में व्यक्ति न तो सरलता से पहचाना और न पृथक किया जा सकता है। इसलिये व नियंत्रण या सयम नहीं करत वरन् अपनी भावनाओं की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति हाने दते हैं। मनुष्य की दवा हृद भावनाएँ भीड़ में मुक्त हा जाती हैं।

(३) शक्ति की अनुभूति—एक ही रुचि के लागे का अधिक सन्ध्या में एकत्र होना हर सदस्य में भारी शक्ति की धारणा को जन्म देता है। भीड़ अपने का सब शक्तिमान समझती है। चूँकि हर आदमी को यह पान होता है कि उसका विचार और सवग विशाल करया में प्रपनाय गये हैं उसमें एक बहुत आनन्ददायी आवेश का भावना आ जाता है और उसमें म्नायुक्त उत्कृष्टीकरण हा जाता है।¹ भीड़ का सब शक्तिमान समझकर ही तो नेता उनका सामने अधिक आक्रामक हा जाता है और ऐसी बातें कह जाता है जिनको वह दूसरी परिस्थितिया में कभी कहने की हिम्मत नहीं कर सकता और इसी सबशक्तिमानता के कारण भीड़ के सदस्य नेता के सुभावा को शीघ्र ही स्वीकार कर लेते हैं। भीड़ को दुःख और असम्भव कार्यों को करने में भी तिन भर भय नहीं होता।

(४) उत्तरदायित्व में कमी—भीड़ में हरेक जानता है कि भीड़ जो कुछ करती है उसका उत्तरदायित्व किसी एक पर नहीं आयेगा। उत्तरदायित्व विभाजित होता है। साथ ही व्यक्ति यह भी जानत हैं कि वे वेनामपन के कारण अपने कामों के लिये कभी जिम्मेदार नहीं ठहराय जा सकते। मग्दूगत के अनुसार आत्म महत्व की भावना के अभाव में लागे में उत्तरदायित्व की भावना में कमी होती है। साधारणतया, लोग में समग्र भाव की चेतना बहुत धूमिल होती है उसकी प्रवृत्तियाँ और क्षमताओं का नाममात्र ज्ञान होता है और भीड़ के लिये न तो उनमें किसी तरह का प्रेम आदर, सम्मान हाना है और न उनमें प्रतिष्ठा में वृद्धि का ही ध्यान। उत्तरदायित्व सारी भीड़ का हाना है और प्रतिष्ठा में वृद्धि या ह्रास सारी भीड़ को प्रभावित करता है जा कि सभी व्यक्तियों को जो भीड़ में समाहित होते हैं। इसलिये, भीड़ के सन्ध्या सव-

घाना बरतने या आत्म-मयम या निगधा पर पदचन या फमन दन म आवाचनात्मक विचारा को बाइ महत्व नही दन । सांख्यिक रूप न किय जान वाल काय म भा विचिनता शिवान हैं । भीड म अचटा या बुरा हानि लाभ पञ्चवानन का विवक नही हाना । अनुत्तरापिन्व की भावना का अन्निम कारण नीड म मदातिमानता क भ्रम की उपस्थिति है ।¹

(५) अद्धालुता या सरल विश्वास—मुभाविता म बडि ज्ञान स नाट महक विचानी हा जानी है । भीड म व्यक्तिया का अनीन सम्कार नष्ट हा जाना है । व धान म बाहर हान है । बौद्धिक विरोपण धार पराना का उर जान ही नग रणा । शका मन्ट करन की शक्तिया मुप पन्ने रहती है । परिणामन नीड क वाग निरा धार या मिथ्या वाता का मय मान बठन ह । दमीनिय भाग म अचवाह जाती धाग का तरह धार भर म व्यापन हा जानी है । अचवाहा प विश्वास करन म नाग उरान मचान लगन है या काई भी काय कर बठन है ।

(६) अम्बिरता—मवगा और विचारा की अम्बिरता भीड का अय विनय गुण है । भीड म सकत अथवा मवा का माभायें प्राय नग क बगार हाता है । उमका थोडा (या आश नना) दूमर हा धार मौन क धार उमी क हाया उनारा ग मचना है । भीड म धाग भर म हा नाभ-भय म अम्ब नाहम धा जाना है । धाटा चीजे उमक प्रयोजन का बन् दता है । भीड जिय आत्मी को पकड कर कच्चा हा था जाना चाहती हा उमक निय दा एक प्रशसा के शर ही उम अनहाय का नीड का धादग नना या हृदय मझाट बना मकत है ।

(७) आवगात्मकता (Impulsiveness)—नीड क कायों का आचार इच्छा नहा हानी । प्रस्ताव और इच्छा तथा सम्मन है जय समुचित रूप स विचिनित आत्म चतना और आत्म सम्मान की भावना हा । भीड म आत्म चतना और आत्म-समान की भावना बन्तु कय धरा म हाती है । सांख्यिक रूप न मह विविध धावा का परिणाम भीड क काय हान है । उह इच्छात्मक न बहकर ह्म आवगात्मक बह मकत है । भीड सबसे मूलभूत चालका म काय करती है । अधिक मय्या म एकचिन व्यक्तिया का विचारशक्ति 'लम्बा' जाना है । नीड भावना पूरा और बहादुर हा मचना है किन्तु आत्मनिमगण म बहदुन (पग) गुणा—मदना, म्बिरबुद्धि मिन व्यपना धेय दूमर के हिन का धार और वाचन की भनि का प्रभाव हाता है । भाड म अनतिकता हा जान का कारण यह है कि उमक व्यक्तिया का समुक्त काय म एकपना मिलन के अनिरक्त (अनुत्तरापिनी और अनतिक हान क निय) बुद्ध अनिमति भी मिनती है ।² इसका अय मह नही कि भीड हमारा अनतिक हानी है ।

1 *Ibid* p 113

2 He (individual) finds in join not only some conformity but a certain sanction." K. Young *op cit* p 393

भीड़ के काय प्रेरक के अनुपल अच्छे बुर दाना होते हैं। वास्तव में भीड़ पर सामूहिक निर्देश का असर पता है। भीड़ निदयी हो सकती है और उदार भी।¹ वह तो एक कच्चा मसाला है जिसमें अच्छे बुरी दाना प्रकार की संरचना की सम्भावना विद्यमान है। मला और पर्वों और सामाजिक संस्कार पर भीड़ें आनन्द हिलों लेती हैं। उनमें आत्मा हर्षोत्सवता प्रफुल्लता उमग और उत्साह होते हैं। ऐसी भीड़ों में बुद्धि का स्तर भी पर्याप्त होता है। उनमें निकृष्ट अथवा समाज विरोधी भावा और क्रियाओं का कोई अंग नहीं होता। कुम्भ के श्रवण पर प्रयाग, हरिद्वार या नासिक की अपार भीड़ें गडमुक्नेश्वर के मल की भीड़ अथवा गणतंत्र या स्वतंत्रता दिवस की भीड़ें इन्हीं प्रकार की भीड़ें हैं। शोकातुर भीड़ अत्यधिक अनुशासित और गम्भीर निश्चय की भीड़ें हैं। जिन्होंने आचार्य नरेन्द्रदत्त तथा गांधीजी की शब्दावली के साथ अथवा जन समुदायों को देखा होगा वे शोक सतप्त भीड़ की गम्भीरता और अनुशासनप्रियता का भली भाँति समझ सकेंगे। इसमें मृत व्यक्ति के प्रति आदर श्रद्धा और भक्ति लोभा में गथाह सवगात्मक और सवदनशीलता उत्पन्न कर देते हैं। किंतु ये कितने अल्पस्थायी हो सकते हैं इसका अनुमान ऐसी भीड़ों के तितर बितर हाँसे ममय हो सकता है।

(द) सामाजिक सौकर्य (Social facilitation)—दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति या उनके कार्यों से एक व्यक्ति की अनुत्प्रेरण बढ़ जाती है। इसको सामाजिक सौकर्य कहते हैं। भीड़ में व्यक्ति का आवेश बड़ा शीघ्र आता है और वह काम करने के लिए सरलता से तत्पर रहता है। कठिन काम को भी आसानी से करने की तत्परता आ जाती है। भीड़ में लोग एक-दूसरे से कच्चा भिडना है वे गदन लम्बी करत हैं और आँखें फाड़कर तथा बाना पर जार डाल कर हर बात को देखने जानने और सुनने की कोशिश करत हैं। उनकी हरेक इन्द्रिया की काय शक्ति बढ़ जाती है। भीड़ में सामाजिक सौकर्य प्राप्त करने के लिए तारा वाद्ययंत्र, ध्वनि यंत्र, गीत आदि का सहारा लिया जाता है। इससे हर व्यक्ति दूसरे का वग दता है।

(६) नेता का अनुसरण—भीड़ में नेता का बहुत महत्त्व है। उसे श्रेष्ठ भूमिका के प्राप्त हान से प्रतिष्ठा मिलती है। 'प्रतिष्ठा सुभाव काय करने लगता है। साग नेता के साथ अपना तादात्म्य समझते हैं। नेता इसी से अपने विचारों और मूल्या का भीड़ के सम्मूहों का दान रगता है। यहाँ अभिप्रेक्षा और प्रक्षेप में अन्त क्रिया हानी है। नेता निम्नलिखित प्रेरकों को प्रस्तुत करता है—(अ) भीड़ में सरलता से वह सबके ध्यान का केंद्र बन जाता है और उसका कारण भीड़ का सगठन और घुम्बकीकरण हाना है, (आ) वह भीड़ की सम्पष्ट मनावृत्तियाँ और भावनाओं का

1 Crowds are in themselves neither good nor evil but they may be either the one or the other on occasion according to the stimulus. Crowds may be brutal but they may also be generous (and) sympathetic. M. Ginsberg *op cit* p 133

प्रकट करता है (इ) भविष्य तथा कार्यों को भड़काने के लिए वह पुराणा, जन्मपाप्रा और पुनर्जाप्रा आदि का स्तमाल करता है (इ) भीष्म का काय करन व तीर्थ का यह सुभाव दना है । इन सबमें भीष्म म भवगात्मक एकता उपपन्न होती है ।

भीष्म म नता का बहुत रीय होता है । वह नाड का आश्रय उनका मुख्य अभिनेता होता है । चूंकि नता भीष्म म प्रत्येक व्यक्ति म अपना प्रथम दर्शन करता है इसलिए उनकी समष्टि शक्ति का वह प्रताक बन जाता है । नता का रीय प्रक्रिया मन्त्र द्वारा भीष्म का मनचाली विशा म साड होता है । जिन्हु कि भा नता न ता सामन्तयन होता है और न हानिप्रद क्योंकि वह भीष्म म समाज विगयी अथवा समाज हिनकारी शाना प्रकार क काय करा सकता है ।¹

भीष्म व्यवहार

भीष्म उन शाना पर विश्वास करन लगता है जिन पर सामान्यतया आश्रमी भा अविश्वास करता है । भीष्म क मन्त्र्या म मन्त्र की भावना नहीं होती । व मन्त्र विरक्तानी बन पाता है और भाष्म म फल विचारा मा गया का तक या बुद्धि पर नहीं बसता ।

भीष्म क व्यवहार को मुख्य त्रिपदा भवगात्मक आवग है । चूंकि एक दूसरे म भिड कर बैठन हैं या चले हैं । शास्त्रीय नामाव्य म उनकी भावनाप्रा का तीव्र स्वीयन होता है । इसलिए जिनकी बडा व घना नाड हाण होती ही अधिक सबगा रमकता उसम हाण । यही विचारा का अपना भावनाए अधिक शीघ्रता म प्रकट होती हैं । वास्तव म, भावनाप्रा का ही दाजगला होता है । दूसरा का उपस्थिति मात्र म व्यक्ति की भावना म तीव्रता आ जाती है और वह एक काय करन लगता है जिसको दूसरे धरणा करते हैं । भीष्म म बहुमन्त्रक चाण द्वारा उपनि काय या अन्तर का करन अथवा अपनात का मान्य को व्यक्ति बना करता । वन्त्र फिर चाहे जितना बुद्धिमान हो अथवा मौलिकता प्रमी हो । भीष्म म व्यक्ति घाणे बहुत सुग्रा मन्त्र्या म पहुँच जात है जहाँ सुभाव आसानी से काय करना है । उन अरस्था म व्यक्ति अपना चेतना और विवेक सोकर भीष्म की भावनाप्रा म बह जाता है और उनी क अनुसार काम करन लग जाता है । नाच व्यक्ति म अनिरजित मानसिक दगाएँ पना करता है । ज्वा हुई भावनाप्रा के नियंत्रण न निकलन क कारण भीष्म म गान्धि और धर्म का जितना सम्भवतया होता है ।

चूंकि भीष्म म हर व्यक्ति ममभना है कि उनक विचार और भावनाए दूसरा का विचार और भावनाए है दूसरे उन्हें समग्रहण करत है इसलिए भीष्म म एक विशाल शक्ति की भावना आ जाता है । भीष्म का प्रत्येक व्यक्ति यहाँ समभता है कि व ज्ञा बुद्धि मावन और करत है उनम अच्छा बुद्धि नहा हा सकता है । इसलिए भीष्म क

1 Lepere & Fransworth *Social Psychology* M-Graw Hill Co New York (1943) p 468

विचार से असहमति दिखाने वाता गद्गार कहा जाता है। इस भय से कोई भीड़ की दृष्टि को विरुद्ध जाने का साहस नहीं करता। यह समता भीड़ बनने से पहले यक्तियाँ व मस्तिष्क में हो सकती हैं अथवा भीड़ बनने के बाद उनमें पैदा हो सकती हैं। भाँड में इस अनुभव के साथ ही एक आनन्ददायी आवृण काम करने लगता है। भीड़ अपने वा सवशक्तिमान समझ कर कठिन से कठिन और भयावह से भयावह काम कर बैठने में भी नहीं डरती। इसी स्थिति में, समाज का चुनौती द मकाने वाला काइ व्यक्ति नया बन जाता है। यह भीड़ का मुख्य अभिनता होता है। अपने आकषण और दृष्टना में यह व्यक्ति सभी भीड़ का अपने विचारों का अनुगामी बना लेता है। प्रीति चिह्न ध्वनि नार भन्ना आदि भीड़ की उत्तेजना को और भी गम्भीर बनाते हैं। स्पष्ट विचारों का स्थान नार ले लेते हैं और जो किसी भी विरोध को सहन नहीं कर सकते।

भीड़ में प्रतिद्वन्द्व विचार नहीं रह सकते। सब ही विचार या भावना को अपना लेते हैं। इसलिए भीड़ की शक्ति तो विशाल हो जाती है उसमें व्यक्तित्व का स्थान भी गरी रहता। लोग को कभी यह ग्याल ही नहीं आता कि जो काम कर रहे हैं उसमें लिए उनमें से काइ व्यक्तिगत रूप से निम्नतर ठहराया जा सकेगा। जो बुद्ध करती है भीड़ करती है। परिणाम भी जो हागा वह भीड़ को भुगतना पडेगा। अतएव भीड़ के सन्ध्या में अनुत्तरदायित्व आ जाता है। समाज में रहकर साधारण बुद्धि वाला भी जिन कर्मों का करने में डरेगा उह भीड़ में करने में वह शौर्य और उत्साह का अनुभव करता है। क्योंकि भीड़ को मानव सस्य का नीचतम स्वरूप कहा जा सकता है।¹ बर्नार्ड ने राम के एम विचार के समकक्ष ही कहा है कि 'भीड़ नीच प्राणियों के भुण्डा और जत्या के अत्यधिक निकट है।'² किंतु मर विचार से मनुष्यों की भीड़ों उनसे बहुत उन्नत हैं और इसलिए अनोखी।

भीड़ का व्यवहार नतिक और अनतिक दोनों हो सकता है। वह उदार हो सकता है और शूर भी। भीड़ में व्यक्ति हर परिस्थिति का नए दृष्टिकोण से देखा सकता है। सामाजिक नियंत्रण अथवा सामाजिक मूल्या को वह ताक में रख देता है।

भीड़ की विशेषता यह है कि वह अपने सदस्यों के यक्तित्वों की अनेक अचेतन व्यक्तियों की अभिव्यक्ति है। इसका यह क्वापि अर्थ नहीं है कि भीड़ का कोई अपना स्वनम्र सामूहिक मस्तिष्क है। भीड़ का मानसिकता उसके सदस्यों की अभिव्यक्ति मात्र है। भीड़ के सदस्यों के अचेतन मस्तिष्क (psyche मन) में कुछ ऐसी गक्तियाँ रहती हैं जो अल्पकालिक और अत्यधिक सवगात्मक प्रकार के जमघटा के

1 Essentially atavistic and sterile the crowd ranks as the lowest form of human association Ross *Social Psychology* p 56

2 L. L. Bernard *Introduction to Social Psychology* Henry & Holt Co New York (1926) p 458

कारण मुक्त हो जाती हैं। भीड़ की उत्तेजना अनाधारण और इतना शक्तिशाली होती है जो मनुष्य के प्रयागत आचरण को अल्पकाल के लिए बदल देती है। भीड़ का यह उत्तेजक साधारणतया प्रतीकालिक स्वभाव का होता है जिससे बड़ी जटिल प्रति क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं। नागा में सामूहिक साम्य ज्ञान में उभर आते उत्तेजना बनी मात्र और सरल हो जाती है। सामूहिक व्यवहार में लोग परस्परगत्य सामाजिक प्रतिरक्षा की अस्यापी बात के लिए अग्रहणना कर लते हैं और अपनी कुछ अचेतन इच्छाओं का आकांक्षा घमा और घृणाओं को जिना पर काम कर निकलते हैं। इस प्रकार मुक्त शक्तियों का सम्बन्ध व्यक्ति के वास्तविक बल्येषु और आत्मसहानता है। इसलिए प्रारम्भिक रूप से प्रथम घृणा और भय के मरण प्रकट होते हैं।¹

भीड़ का व्यवहार म्यायी और विश्व नहीं होता। वह बहुत अधिक अस्थिर होता है। एक क्षण भीड़ किसी परिवार का जल कर राख करने पर तुरी हो दूसरे ही क्षण उसी परिवार के भुक्ति का देवता-सम पूजन लग सकती है। भीड़ में क्षण भर में ही अत्यन्त महान् भीड़ काय्यता में बदल सकती है। इसका कारण है भीड़ की आकांक्षितता। भाव के व्यवहार आवेगात्मक होते हैं। उनमें आत्म नियंत्रण से उद्भूत सुरा का अभाव होता है। भीड़ सबसे मूलभूत बातों में व्यवहार करती है। उनमें घृणा हिंसा प्रथम उत्पन्नता काप की पगवाप्टा हो सकती है।

दूरता की उपस्थिति से भीड़ के सम्बन्ध की अनुक्रियाएँ बढ़ जाती हैं। उनमें आकांक्षित बड़े भीड़ आना है और वे काम करने के लिए सरलता से तैयार हो जाते हैं। सुभाव और अनुकरण की मानसिक प्रक्रियाएँ बड़ी क्रियाशील होती हैं।

साधुनिक समाज में भीड़ मानसिकता

साधुनिक समाज में भीड़ मानसिकता (crowd mentality) के कई महत्वपूर्ण कारण हैं —

- (अ) विनाम जनसंख्या का शारीरिक साम्राज्य (निकट का महत्त्व)
- (आ) इसमें विजातीयत्व (heterogeneity) और सम्बन्धों में अनामपन (anonymity),
- (इ) भागी जनसंघर्ष में संचार (mass communication) के अन्तर्भाव
- (ई) शक्तिशाली उत्तेजना (strong stimuli) की विशिष्टता।

साधुनिक समाज की महत्वपूर्ण विशेषता विशाल जनसंख्या का एक स्थान पर जमपट है। नगरों में ताना आदिमी रहते हैं। उनमें शारीरिक साम्राज्य बहुत अधिक होता है। इन समाजों की विनाम जनसंख्या और विशिष्ट सांस्कृतिक समूह और

¹ Merrill & Eldredge op cit pp 315-16

स्तर विजातीय और वनाम सामाजिक मपकों और सम्बन्धों को नम दते हैं। एसी अवस्था में न ता लाग एक दूसरे से घुलमिल कर रह सकते हैं और न अपन व्यक्तिव विचारा या भावनाओं का कायम रख पाते हैं। दूसरे लोगों की भावनाओं और विचारा का बड़ा जबरन प्रभाव उन पर होता है। इनके ऊपर विस्तृत संचार के साधनों की वृद्धता न कुछ समान विचारा और भावनाओं का सतह पर टाकर रख दिया है। इन विचारा का स्वीपन नए-नए और विविध शक्तिशाली आनपक प्रेरकों से मिलता है। इन मपकों परिणाम हमारे आधुनिक समाज में भीड़ मानसिकता का उन्मूलन है।

विशाल नगरों में एक कोन में कोई घटना घट उनकी खबर और उसके बारे में अफवाहें शीघ्र ही दूसरे को भी फैल जाती हैं। यही हाल बड़े राष्ट्रों का है। सत्तार में किसी भी स्थान में हान वाली घटना का असर सभी दिशाओं पर पड़ता है। गम्भीरता में विचार न ही सत्तार के कारण भावनाओं को ही प्रमुखता मिलती है। संचार के मरल और तीव्र हान में घर बंठ ही लोग भावनाओं के शिकार हो जाते हैं। दखते ही स्वतंत्रता का धरा में निकल कर सड़कों और गलियों में उत्तेजित भीड़ के रूप में इकट्ठे हो जाते हैं। आधुनिक समाज में साधारण नागरिक के जीवन में इतनी असंतुष्टि है कि वह उस दूर करने का अवसर ढूँढता करता है। गायद भीड़-यावहार इसी मनो-शा की अभिव्यक्ति है।

नगरों और राष्ट्रों का जीवन भी आज कुछ नारों पर चलता है। सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में उद्वेग का नारा की गकल दी जाती है। ये नारे हमारे ध्यान का एक विशिष्ट भावना की ओर आकर्षित किए रहते हैं। हम खुद साधन विचारों का अवसर ही नयी मितता। हर क्षेत्र में नए मूल्यों और सत्ताओं को अपनाव की बसा ही प्रवृत्ति दिखाती है जसी कि नए फलन अपनाव में। समाज में चालाक और प्रभावशाली नेताओं की कमी नहीं। वे नित नये उत्तेजक समाज के सामने प्रस्तुत किया करते हैं। फिर मजदूरों की हताशाओं अध्यापकों का प्रदर्शन विद्यार्थियों के जुगुम चुनाव के मित्रमित्रों की जान बानी समाए सामाजिक आन्दोलनों को चरान के लिए विशाल जमघट भीड़ मानसिकता की अभिव्यक्तियाँ हैं। कुछ विचारकों ने जनतन्त्रिय दशा में भीड़ा विशेषतया कालान्तली भीड़ा (mobs) की तावभीमिकता एवं मजसक्तिमत्ता की श्या का मात्रात्मी (mobocracy) कह डाला है। जनतन्त्र में इन प्रकार की भीड़-कितनी महत्वपूर्ण हैं! ती बान न भा दस श्या को जनसमुदाय का शासन बना है। छारटिगा वाय० गमट (Ortega Y Gasset) ने अपना प्रसिद्ध पुस्तक Revolt of the Masses (जनसमुदाय का विद्रोह) में आधुनिक युग का भीड़ का युग कहा है। ये भीड़ का अर्थन आत्मी कहते हैं। इन विद्रोहों में आधुनिक समाज की भीड़ मानसिकता की गम्भीर विवचना की है।

हम अपने पाठकों का यहाँ यह बना देना चाहते हैं कि विगत जनसंख्या वाले समाज (अथवा समुदाय) में अधिकाधिक भीड़ तथा शारीरिक भाँडा का बनना अनिवार्य है। कम ता प्रत्येक बड़े और छोटे समुदाय में भीड़ें बनती रहती हैं। उनका अन्विष्ट समाज की अनेक आवश्यकताओं को पूरा करता है। यह शारीरिक विपाद के समझन पर भीड़ें बनना समुदाय की एकता की द्योतक है। उनमें मर्यादात्मक एतना पनपना है जो सामाजिक अथवा राष्ट्रीय एकता के लिए अनिवार्य है। दूसरे कठोर शारीरिक भाँडे सामाजिक परिवर्तन और क्रांति की एजेंसी बन जाती हैं। भाग्य के स्वतंत्रता संग्राम में भीड़ का बहुत अधिक योगदान है। अनेक प्रकार का निरंकुशताएँ शारीरिक अथवा शारीरिक तथा शारीरिक भाँडा का क्रिया से समाप्त किए जाते हैं। तीसरे भीड़ व्यवहार में अनेक शारीरिक भावनाएँ छोड़कर रह जाती हैं जिन्हें व्यक्ति और समाज में मानसिक तनाव और मन की व्यथिता का प्रभावनाएँ और नष्ट हो जाता है जो यदि समाज हानि रहें तो बड़ी चिन्तनीय अवस्था उत्पन्न हो जाए। और अनेक शारीरिक व्यवहार में सामाजिक जीवन में अनौपचारिकता और मर्यादा व्यथिता है बना यह जीवन नितान्त औपचारिक और नीरस हो जाए।¹ मनुष्य हाट-मास का व्यवहार नहीं उनमें अनेक इच्छाएँ और भाव हानि हैं। उनमें मन और हृदय की सभी बातें बहने का अवसर छोड़-छोड़ कराने और स्थायी समूहों में नये मिलना। अनेक मन और हृदय में प्रवाहित क्षणभंगुर लहरों का हितार भाग्य का भीड़ों में मिलना चाहिए। अनेक सामाजिक जीवन में भाँडा का बनना और भीड़ व्यवहार नितान्त स्वाभाविक घटनाएँ हैं। हाँ उनका सम्भाव्य समाज विगामी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। जनता में आशामक शारीरिक भाँडा लक्ष्मीता और हिता चिन्ता विगमना है जो बनने और व्यवहार में रहना ही चाहिए।

विचारयुक्त व्यवहार के अवसर

यह स्पष्ट है कि आधुनिक सभ्यता में शारीरिक मानसिकता और शारीरिक व्यवहार बहुत ही कम है किन्तु यह भी स्पष्ट है कि दूसरे शारीरिक सम्यक विचारहीन और अनेक भावनात्मक व्यवहार पर कठोर प्रतिक्रिया उत्पन्न जाते हैं। इस प्रकार सम्यक समाज में शारीरिक विचारों का योगदान दिखती है। वह कि मनुष्य का विचारानुसार और मर्यादात्मक व्यवहार करने की उच्च पुराता और श्रिय प्राप्त पता है अनेक शारीरिक की विचारहीनता उत्पन्न करने वाली शक्तियों का प्रभाव कुछ पता ही रहता है। देना यह जानना है कि मनुष्य में सुभाव-अहंकारिता उत्पन्न होती है। वह अपने से ऊँचे पदों पर अनेक सम्मानित शक्तियों में आए शक्तिशाली मनुष्यों का बड़ा विचार के स्वीकार कर लेता है। अपने दम शक्ति के कर्पणशामा अथवा शक्तियों में बड़ा शक्तिशाली हो गया है। और बहुत बड़े विचारानुसार और मर्यादात्मकता के प्रभाव में शक्तिशाली शक्तिशाली के लिए बड़े पठनाना भा है।

1 J M R. Shardt Social Psychology p 208

उपरोक्त स्थिति के सचेत होकर उसने इस उपाय ढूँढ निकाले हैं जो उस सहज विश्वास के शिकार होने से बचाएँगे। वह सुभाव से तुरत और स्वतः प्रति क्रिया करने में हिचकन लगा है। वादविवाद सावजनिक चर्चा और बानानिक रीति धार्मिक उपायों की सहायता से आधुनिक युग में सुभावा को समझने विरोध करने तिरस्कृत करने सुभाव पेश करने की क्रिया उत्तरातर सशक्त होती जा रही है। विज्ञान और बानानिक रीति ने महज विश्वास अथवा विचारहीनता और भावनात्मकता को सबसे अधिक घटना पहुँचाया है। आज सम्य जगत में किसी सुभाव या विचार को तब तक स्वीकार नहीं करते जब तक बानानिक रीति की कसौटी पर वह सरा न उतर। अतएव विचारशीलता में वृद्धि हमारे युग की एक अनुपम दन है।

आगमन और निमकाफ ने ठीक ही कहा है कि अद्यपि आधुनिक युग में सुभाव ग्राह्य क्षमता पर प्रतिकार लगाने में उपरोक्त सांस्कृतिक व्यक्तियाँ (वादविवाद सावजनिक चर्चा और विज्ञान) बनी लाभदायक हैं फिर भी विचारहीन और सवेगात्मक आचरण पर उनमें पूर्ण नियंत्रण होना असम्भव है। अतएव व्यक्ति सुभाव ग्रहण कर ही सता है। हाँ कुछ व्यक्ति दूसरों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से सुभाव ग्रहण कर लेते हैं। शायद विभिन्न व्यक्तियों में सुभाव ग्रहणता के अंश में उतना अधिक भेद नहीं होता जितना उत्तेजा के प्रकारों में जिनसे के सुभाव ग्रहण करते हैं। परंतु फिर भी शिक्षा और बानानिक प्रशिक्षण व्यक्तियों का कुछ स्थितियों में विचारहीन और अनुत्तरदायी आचरण करने की सम्भावनाओं का अवश्य कम कर देते हैं। शिक्षा भीड़ सभामकता की सम्भावना का कम अवश्य कर देती है किन्तु उसे समूल नष्ट नहीं कर पाती।¹

सुशिक्षित लोग अथवा अधिक विचारशील स्वाध्यायी और मजनामक वाय करने वाले लोग भीड़ सभामकता में बचने के लिए सांस्कृतिक व्यक्तियों का बहुधा उपयोग नहीं करते हैं। वे सबसे सरल उपाय भीड़भाड़ से बचना समझते हैं। अतएव पब्लिक में रहना ही पसन्द करते हैं। किन्तु जब यह अपने सुभावा, जो स्वाध्याय अथवा गन्त शोध के आधार पर विकसित किए जाते हैं जो जन समुदाय के समर्थ प्रस्तुत करना होता है ता वे पुन भीड़भाड़ के सम्पर्क में आते हैं। सामाजिक परिवर्तन और धार्मिकता के लिए किए गए आन्दोलनों के इतिहास में यह बात प्राणव्यापक सिद्ध हो जायगा। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि कोई व्यक्ति मजनामक है तो वह स्वाध्याय के लिए वह कुछ समय के लिए भीड़भाड़ से दूर रह सकता है लेकिन अन्त में जन-समुदाय के प्राच में आकर अपना सुभाव पेश करना पडेगा। आधुनिक युग में भीड़ सभामकता को समर्थ के हित में सबगात्मक एवता जातीय मुदृष्टता सामाजिक परिवर्तन और धार्मिकता के लिए एक सबल माधन बनाने में रात नतिकर और रात तमय हो जुट है।

भीड़ व्यवहार की व्याख्या

मनुष्य भीड़ का एक मध्यम हान पर जा विवक्षित और सबगुण व्यवहार करता है उनका सुविस्तृत विश्लेषण पिछले पत्रों में किया गया है। अब प्रश्न यह है कि व्यक्ति मनुष्य भीड़ में एना अनुत्पायी और अनिश्चित व्यवहार करता ही क्या है ?

'समूह मस्तिष्क' का सिद्धान्त

सामूहिक व्यवहार के कुछ प्रारम्भिक विद्याभियाँ जिनमें मनुष्य और लोकोपनिवेशों के बीच की व्याख्या 'सामूहिक मस्तिष्क' या सामूहिक प्रतिनिधित्व और भाटा की मानसिक एकता के सिद्धान्तों अथवा नियमों का प्रतिपादन कर का है। उन्होंने कहा कि भीड़ में व्यक्तिगतता मिट जाती है और एक प्रकार की सामूहिक चेतना विकसित हो जाती है। इसमें मस्तिष्क का मस्तिष्क के साथ मेल हो जाता है और सभी सम्मिलित लोग एक मानसिक एक संवेगात्मक स्तर पर सहानुभूतिपूर्ण सम्मिलित होते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार भीड़ में चेतना एकलवर्ती हो जाती है जिसमें वह व्यक्ति अत्यधिक मानसिकता (de-individualized mentality) के लिए सुविधाप्रदायक और विचारों में प्रभावित हो कर काम करता है। भाटा में व्यक्तिगत चेतना का अन्तर्भाव करने वाला जिन सामूहिक चेतना का विकास होता है उसका वास्तविक भाटा की मानसिक एकता का नियम बनता है। किन्तु यह सिद्धान्त प्राथमिक समानतात्मक अथवा समाज-मानसिकता के द्विकुल प्रतिकूल है। भीड़, चेतना या जनसमुदाय किन्हीं में एक मनुष्य मस्तिष्क के अस्तित्व को काट नहीं सकता है जो व्यक्तिगत मस्तिष्क में स्वतन्त्र और पृथक् था और जो उन पर नियंत्रण करे। भीड़ अथवा सामूहिक व्यवहार के किन्हीं अर्थों में यह अर्थ मानना व्याख्या है। मर्यादित और पत्र में एक मार्गिक युक्ति मात्र मानते हैं जिसमें भीड़ के अर्थों में जन-अन्त-जनता और सुभाव-समाधान का अन्तर्भाव का अर्थ नहीं किया जा सकता है। तद्विषय का भी यही मत है। मर्यादित और पत्र तथा तद्विषय में फिर भी इस अर्थनात्मक सिद्धान्त की जनप्रियता में इतराई नहीं किया है।

विरुद्ध चेतनों की युक्ति का सिद्धान्त

वास्तव में तबका न भाटा व्यवहार की कुछ नविक्रम व्याख्याएँ भी हैं किन्तु उन्होंने भीड़ का मानसिक रूप में अन्तर्भाव कर कर बनी भूत की है। मार्तिन (E. D. Martin) ने ला वास के मनुष्य मस्तिष्क के सिद्धान्त का अन्तर्भाव किया है। उन्होंने भीड़ का अर्थनात्मक व्यवहार की अर्थनात्मक किया है। भीड़ में उन

1 The postulation of such a phenomenon (group mind) provides an easy explanation for any mode of collective behaviour but one that at best is a literary device with which to describe the re-stimulation and suggestibility that come about under the influence of crowd excitement. Mccliver and Page op cit p 49

अनुसार व्यक्तियाँ के विरुद्ध चालक मुक्त हो जाते हैं, उन्हें व्यवहार के अपने मही इरादा की चेतना नहीं रहती और वे आग्नि स्तर की ओर पतित हो जाते हैं। भीड़ में मुभावशील व्यवहार हो जाता है क्योंकि उनके नतिक मन पर प्रतिबंध डाल पड़ जाने से और आग्नि अर्थात् वे द्वार पूरुणतया उन्मुक्त हो जाते हैं। मार्टिन ने यथा तक लिखा भीड़ एक ऐसी युक्ति है जिससे हम सब साथ साथ सनका हाकर एक प्रकार के अस्थायी पागलपन में व्यवहार करते हैं।¹

मार्टिन का विचार ली वॉन ने अधिक भिन्न नहीं है। ली वॉन भीड़ व्यवहार का निम्न बुद्धियुक्त बहते हैं और मार्टिन उसे मानसिक रोगी किन्तु फिर भी इतना दाना निदाना से भीड़ व्यवहार का समझन में कुछ सहायता अवश्य मिलती है। मकाद्वर और पेज इन सिद्धांत का अस्वीकार करते हैं क्योंकि यह तथ्यों के अनुसंधान से प्रतिपादित नहीं होता है। मूल प्रवृत्तियाँ अथवा मौलिक जह आवेग (basic id' impulses) चाहे जो उनकी प्रकृति हो समूह की घटनाओं की व्याख्या करने में अत्यंत उपयोगी हैं जब तक उस सामाजिक और सांस्कृतिक सदन, जिसमें ये मनावनानिक शक्तियाँ प्रकट होती हैं, पर विचार न किया जाए।² मार्लिन जिमरग ने उपरोक्त दोनों सिद्धांतों के बारे में कहा है कि इस प्रकार के मता का महाराज लेना अनान के आशय में शरणा लेना है।³

रिचर्ड डियूवी (Richard Dewey) और हम्बर लिखते हैं कि हम यह मानने के लिये कि भीड़ का व्यवहार उसमें सम्मिलित व्यक्तियों का मांग भर ही नहीं होता है किन्तु भीड़ के मन अथवा भीड़ की प्रवृत्ति जिन मनोवृत्तियों का आवश्यकता नहीं है। कुछ और भी होता है और वह कुछ सामाजिक उत्तेजना और सहायता है जो समूह में व्यक्तियों के मिलने से प्राप्त होती है। इन विद्वानों ने समस्या का पूरा हल नहीं दिया उन्होंने केवल अनुसंधान का मांग निर्देश किया है। शिवाजी शर्मा का मत है कि भीड़ में जो कुछ होता है यक्ति करता है। ऐसा वह भीड़ में प्रस्तुत आघात का प्रतिप्रिया में करना है। अतएव भीड़ में वर्तमान आघात पर यक्ति के साधारण आघातों में कुछ भिन्न प्रिया करके उस विनिष्ट व्यवहार की प्रेरणा देना है।⁴

आलपोर्ट (F H Allport) का भी यही विचार है कि प्रतिप्रियाएँ भीड़ में करनी चाहिए व्यक्ति करते हैं अतएव उनके व्यवहार की भिन्नता का कारण समझने के लिये आलपोर्ट मध्यकी विशेषताओं पर ध्यान देना चाहिये।⁵

1 A crowd is a device for indulging ourselves in a kind of temporary insanity by all going crazy together. E. D. Martin. The Behaviour of Crowds quoted from S. S. Sargent's *Social Psychology* p. 379

2 Ma Iver & Page *op cit* p. 430

3 M. Ginsberg. *The Psychology of Society* p. 135

4 शिवाजी शर्मा समाज मनोविज्ञान के इस बुक डिपॉ इलाहाबाद (१९५६) पृ. २६२।

5 F. H. Allport. *Social Psychology* Chapter 1

समिति' कहन की प्रथा चल पड़ी है। भीड़ और विद्रोही भीड़ दोनों असंगठित और अस्थायी समूह हैं। इसलिये इनका नतृत्व अल्पस्थायी तथा स्वाभाविकतया भावा की उत्तेजना पर निर्भर होता है। उस विचार तथा आत्म सयम जो उच्च कोटि के नतृत्व के लिये आवश्यक हैं का आधार नहीं मिलता। अतः भीड़ का नतृत्व निम्न कोटि का होता है। किन्तु अभियोजक भीड़ में कई बार उच्च कोटि का नतृत्व भी मिलता है।

(१) उग्र भीड़ में माघारण अभियोजन भीड़ (expression crowd) की अपेक्षा अधिक मधुगशीलता होती है। भीड़ में ज्यादा क्रियाशील होने का सबब उत्पन्न हुआ वह विद्रोही समूह का रूप धारण कर लेती है। नहा तो थोड़ी दूर रूचि लिखता कर लोग अपने अपने भागों पर चल दते हैं।

(२) साधारण भीड़ का कोई नारा नहीं होगा किन्तु विद्रोही भीड़, शेष समाज में गपन काय का अनुमादन कराने के लिये कार्य न कोई ऐसा प्रतीक चुन लेता है जिसका काफी प्रभाव पड़ सके। अर्थात् विद्रोही भीड़ किसी उद्देश्य विज्ञाप की प्राप्ति का और अभिमुख होता है। साधारण भीड़ ही किसी सहसा उत्तेजना के कारण विद्रोही उग्र भीड़ में परिणत हो सकती है। उग्र भीड़ में अस्थिरता और अव्यवस्था अत्यधिक होती है। भयानक भीड़ में भरा पटन समझ पट्टि कुल स्पष्ट हो जाता है।

भीड़ और श्रोता दशक गण

(१) श्रोता-समूह गण (audience) शारीरिक सम्पर्क अथवा केवल मानसिक सम्पर्क के आधार पर किसी बात को सुनने अथवा देखने के लिए निर्मित होता है। जहाँ तक वे सुनते या देखते रहते हैं उनमें व्यवस्था होती है। उनका ध्यान बटुवा उसी आरंभ पूरातया लिखा रहता है। भीड़ में अक्सर प्रचार समझन और ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। भीड़ में लागा का भावात्मक पटल प्रधान रहता है और श्रोतागण में मानात्मक पटल। श्रोतागण मनोरंजन अथवा सूचना के लिये ही एकत्र होते हैं। मुन्त्र गायन अभिनय, नृत्य अथवा वार्ता के समय श्रोतागण में जा मवग उत्पन्न होता है वे उच्चकोटि के होते हैं। भीड़ के पत्र हान के बाद धारण हो सकते हैं।

(२) भीड़ का काम सयोजक नहीं होता। वह स्वयं बन जाती है। श्रोता-समूह-गण का बाद सयोजक होना आवश्यक है। एकत्र होना और आचरण करने के लिए सयोजक के निश्चित नियमों का पालन करने की उम्मीद अपेक्षा होती है। कुछ नियम तो प्रथा अथवा परम्परा से सम्मन होते हैं जिनका पालन साधारण शिष्ट आचार का अंग माना जाता है। उन्म उत्पन्न करने का सामाजिक प्रतिरोध मानने का लक्ष्य होता है। अन्य श्रोतागण किसी सदस्य को बातचीत करने शार मवाने अथवा अन्य प्रकार के अवांछित आचरण के लिये रोकने हैं अथवा उम पर शायित

हाने हैं। किसी के भाषण के समय थियेटर हान या सिनमापर में बातचीत करना अशिष्टता मानी जाती है। एक रुचिकर वस्तु में ध्यान केंद्रित हान के कारण धाना गए आत्मनियंत्रण रखने में नफल हान है। भीड़ में एस आत्मनियंत्रण का अभाव होता है।

(२) श्रोतागण का नेतृत्व भीड़ की अग्रभा में चबकाटि का हाना है। वक्ता अभिनना अथवा नृत्यक गायक श्रोतागण का ध्यान केंद्रित रखने के लिए आकर्षण के मनोवैज्ञानिक नियमों का अनुसरण करता रहता है।

(६) भीड़ किसी भी समय और कहीं भी आकस्मिक घटना के कारण एकत्र हो सकती है। धारागण निश्चित समय और स्थान पर किसी पूर्व निर्धारित यात्रा के अनुसार ही एकत्र हाने हैं। धारागण एक दृष्टि में व्यवस्थित भीड़ है। भाव के सम्बन्ध में अधिक घनिष्ठ सम्पर्क हान पर भी वह अलगनया असंगठित नहीं है।

किम्बल योग के अनुसार श्रोतागण को निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—(१) एक विशिष्ट प्रयोजन, (२) एकत्र हान का पूर्व निर्धारित समय और स्थान और (३) श्रोता-देशक-गण और वक्ता (performer) के बीच में चुम्बकीकरण (polarization) और अन्तर्क्रिया का प्रामाणिक रूप।¹

जनता

अत्यायी समूहों का एक अर्थ प्रमुख प्रकार है जनता (Public)। यह एक मनोवैज्ञानिक समूह है। मनोवैज्ञानिक समूह (Psychologic group) का निर्माण जमा के नाम से स्पष्ट है मानव मस्तिष्क के सामान्य में होता है। अन्तर्क्रिया व्यक्तियों की गारोदिक सन्निकटता अर्पणित नहा है। अन्तर् मानव प्राणा इतने इतने प्रभावा के निवासी हाने हुए भी जनता (Public) के सम्बन्ध में मन्त्र है। अन्तर् शारीरिक दृष्टिकोण में बहुत दूर होने हुए भी किसी एक समय एक विषय के सम्बन्ध में सामान्य विचार या रुचि रख सकते हैं। अन्तर् दृष्टिकोण से अन्तर् एक जनता के सम्बन्ध में हाने हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री गिंसबर्ग का मत इसी प्रकार का है। अन्तर् कहता है—

जनता उन व्यक्तियों का एक असंगठित तथा बिना किसी विशिष्ट आवृत्ति का याग है जो सामान्य मता तथा इच्छाओं में नो बँधे हुए हैं परन्तु मन्त्रों में अन्तर् अन्तर् हाने कि अन्तर् मन्त्रों में व्यक्तियों में सम्बन्ध न रख सकें। इस परिभाषानुसार जनता के निम्न लक्षणों की तरफ सक्त किया जा सकता है

(१) जनता (Public) व्यक्तियों का एक अस्पष्ट योग है।

(२) व्यक्तियों में सामान्य मता एवं इच्छाओं का हाना आवश्यक है।

1 K. Young *Hand book of Social Psychology* p 399

2. The public may be described as an unorganised and amorphous aggregation of individuals who are bound together by common opinions and desires but are too numerous for each to maintain personal relation with the others

(२) व्यक्तियों का सत्या अधिक हान के कारण आमने सामने (face to face) के सम्बन्ध निर्वाह नहीं कर पाते हैं।

(४) यह एक मनोवैज्ञानिक समूह (Psychologic group) है। इन विशेषताओं से स्पष्ट है कि जनता (Public) वास्तव में एक मनोवैज्ञानिक समूह है जिसमें व्यक्तियों के सम्बन्ध अप्रत्यक्ष (Indirect) होते हैं। इसका द्वितीयक समूहों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इन समस्या के लिए आवश्यक है कि ये सदस्य किसी विषय के सम्बन्ध में सामान्य विचार एवं रुचि रखते हैं। हम जनता (Public) को या परिभाषित कर सकते हैं। जनता व्यक्तियों का वह मनोवैज्ञानिक समूह है जिसमें सभी सदस्य किसी एक समस्या के प्रति सामान्य दृष्टिकोण एवं रुचि रखते हैं। जैसे समाचार पत्रों में हम अत्यन्त दुर्घटनाओं के प्रति जो प्रतिक्रियाएँ अभिव्यक्त करते हैं। वे सामान्य दृष्टिकोण से की जाती हैं। उस व्यक्तियों का जनता (Public) का सदस्य कहा जा सकता है। हम भारतीय नागरिक पंचवर्षीय योजना विदेशी नीति काश्मीर समस्या इत्यादि समस्याओं के प्रति सामान्य दृष्टिकोण (Common attitudes) रखते हैं जबकि शारीरिक दृष्टिकोण से हम एक दूसरे के बहुत दूर रहते हैं। दूर दूर रहते हुए भी हम किसी समस्या के प्रति सामान्य उत्तेजना (Common Stimulus) की प्रतिक्रिया रखते हैं। किम्बल यंग के शब्दों में जनता एक ऐसा समूह है जिसके सदस्यों में आमने सामने अथवा कब से कब का सम्बन्ध हाना आवश्यक नहीं है। जनता में कुछ व्यक्ति जो दूर दूर स्थानों पर बिखरे हुए होते हैं पराभ या यांत्रिक साधनों द्वारा प्रदान की गई किसी सामान्य उत्तेजना की प्रतिक्रिया करते हैं।¹

किम्बल या का विचार गिम्बल में भिन्न नहीं है। मुख्य बात दोनों की एकता है। जनता के लिये दोनों में आमने सामने के सम्बन्ध का अस्वीकार किया है। सामान्य मता एवं सामान्य उत्तेजना को दोनों में जनता के लिये महत्वपूर्ण स्वीकारा है।

६० एम० ए० तथा जे० लेयका ने जनता में केवल उन्हीं व्यक्तियों का सम्मिलित किया है जो राजनैतिक विषयों में रुचि रखते हैं। लेकिन ऐसा विचार ग्राह्य गणना में होगा। वास्तव में केवल राजनैतिक समस्याओं के प्रति ही नहीं है। मानव जीवन का यह तो एक पक्ष है। उसमें साहित्य, कला, वाणिज्य, धर्म, अध्यात्म इत्यादि विषयों के प्रति रुचि का पाया जाना स्वाभाविक है। आधुनिक समाज मनोविज्ञान के बल से पण्डितों का विचार है कि जनता शब्द का प्रयोग बहु-वचन के रूप में करना चाहिए। Public के स्थान पर Publics के लिये हिमायन

1 The public is not held together by face to face or shoulder to shoulder contact a member of people scattered is react to common stimulus what is provided by indirect and mechanical means

कते हैं। एक व्यक्ति भिन्न भिन्न समया में भिन्न भिन्न विषया में गति रक्वना है। इन दिग् यह स्वाभाविक है कि वह (व्यक्ति) एक जनता का सदस्य न हाकर अनक जनताया का सदस्य होना है।

गिम्बल एक किम्बल या दांता न Common opinions तथा 'Common Stimulus' की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। यह सम्भव नहीं है कि प्रत्यक व्यक्ति एक समस्या क प्रति समान दृष्टिकाण एव सामान्य प्रतिक्रिया कर। एक ही समस्या क प्रति विभिन्न लागा में विभिन्न प्रकार क दृष्टि काण का अस्तिव स्वाभाविक है। विराधी दृष्टिकाण व्यक्तिया में पाय जान हैं। पंचवर्षीय योजना (Five Year Plans) के प्रति भारतीय नागरिका में विगोप विचारधाराए पाई जाती हैं। कुछ नाग इस भारतीय जनता क आर्थिक विकासार्थ एक वरदान स्वीकार करत हैं। कुछ नाग इन एक अभिशाप क रूप में रक्वत हैं। इना प्रकार जावन की जिनती भी समस्याएँ हैं उनके प्रति हम में विरोप एव सध्यात्मक विचार एव दृष्टाए पाई जाती हैं। समाजास्त्रिया में भी एक ही समस्या क प्रति विभिन्न दृष्टिकाण होत हैं। हम कह सकत हैं कि एक बडी जनता क अन्तर्गत अमन्य छटा जनताए पाई जाती हैं जिहें हम Sectional publics की मता द सकत हैं।

आधुनिक युग में सचारात्मक माधना क जान विट जाने के कारण सम्पूर्ण भूभाग में निवाम करन वाल व्यक्ति एक दूसर क काफी निकट में हो गय हैं। रटिया, टेलीफोन समाचार पत्र आदि सचारात्मक माधना क विकास क कारण हम लाग दूर रहन वाल लागा में आभाती स सम्पर्क कर सकत है। हम एना भी ममिनियाँ (Associations) देवन का मिलती हैं जिनक सदस्य दूर दूर देगा क रहन वाल हावे हैं। बडा बडो औद्यागिक ध्यापारिक सस्थापन सास्त्रिक धार्मिक सम्वाए हैं जिनक सम्म्य एर दूसर स प्रत्यक्ष सम्बध (Direct Contact) नहीं स्थापित कर सकत हैं फिर भी एक सस्था क प्रति सामान्य दृष्टिकाण (Common Attitudes) रक्वत हैं इन समस्याया का हम 'सम्थागत जनताए (Institutionalized public) कह कर सम्वापित करत हैं। उपरात विवचन क आधार हम पर जनता की निम्न विगपनाया का सकन कर सकते हैं।

जनता के प्रमुख लक्षण

(१) जनता एक मनोवज्ञानिक समूह है (Public is a psychological group)—हम कह चुके हैं कि public क लिय गारीरिक नामीप्य आवश्यक नहीं है। Public क सस्य किसी समाचार के प्रति सामान्य दृष्टिकाण रक्वत क कारण मना चानिक दृष्टिकाण स आवद्ध रक्वत है। किम्बल गग क अनुसार भी जनता क लिय धामने-धामन तथा कथ स कथा मिलाकर सम्बध विलुप्त आवश्यक नहीं है। व्यक्तियों में मनावपानिक सामान्य आवश्यक है। उनमें कवल यही चेतना हाती है कि

एक विषय के प्रति उनमें एक सामान्य दृष्टिकोण है। सामान्य दृष्टिकोण (Common attitudes) रखने के कारण ही उनमें एकता एवं निकटता की भावना का जन्म होता है जो जनता को जन्म देता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी भी क्रिया सारणी के प्रतिपादन में एक वचन के कर्ता (Subject) का प्रयोग वाक्य में नहीं करता है। जब यदि हम किसी सस्था एवं ममिति के सदस्य हैं तो हम (अपने) लिये (में) (I) का प्रयोग नहीं करेंगे। सबका हम (we) का प्रयोग करते हैं। सचारात्मक साधन की वृद्धि न मनोवैज्ञानिक स्तर पर सम्बन्ध स्थापित करने में हमारी काफी सहायता की है। रेडियो समाचार पत्र मिनमा आदि साधना के माध्यम से जनता में सामूहिक चेतना (group consciousness) तथा हम की भावना (we feeling) का विकास बड़ा आसान हो गया है।

(२) परोक्ष सम्बन्ध (Indirect Relationship)—जनता के सदस्यों में कोई आमन-आमन (face to face) का सम्बन्ध नहीं पाया जाता है। वे अप्रत्यक्ष सम्बन्ध के सूत्र द्वारा एक दूसरे में आवद्ध रहते हैं। जनता के सदस्य एक दूसरे का बहुत कम प्रभावित कर पाते हैं उनका एक दूसरे पर प्रभाव सामित होता है। जब किसी रणियों प्रोग्राम का मुनन बात असत्य लोग एक दूसरे से नहीं बल्कि उस प्रोग्राम से ही प्रभावित हाने हैं और उमी की प्रतिक्रिया भी करते हैं।

(३) सदस्यों की अधिक सख्या (Large membership)—जनता के सख्या की सख्या असत्य हानी है। किसी बलव फुटबाल टीम जन प्रश्न राजनैतिक अधिवेशन आना समूह दशन समूह में व्यक्तिया की सख्या कुछ हजार तक ही सीमित होनी है। किन्तु एक जनता के सदस्य की सख्या लाख तक सम्भव है। किसी भी जनता के सम्बन्ध में सख्यात्मक दृष्टिकोण असम्भव है। इनमें अप्रत्यक्ष सम्बन्ध (Indirect relationship) पाये जान के कारण सस्था काफी होती है जिसका अनुमान ठीक तौर पर नहीं किया जा सकता है। असत्य सख्या, परोक्ष सम्बन्ध एवं अनिश्चन आकार के कारण जनता का निर्देशन करना असम्भव है। जनता का निर्देशन समाचार पत्रों में टेलिविजन के माध्यम से परोक्ष रूप से ही किया जा सकता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करने पर स्पष्ट है कि जनताओं की उत्पत्ति (Origin of publics) आधुनिकतम सचारात्मक साधनों के विकास के फलस्वरूप ही हुई। जन्म-जन्त हमारे विचारों का आदान प्रदान के साधना में प्रगति हुई वस-वसे जनताओं का विकास हुआ। सचार साधना के आविष्कार न जनताओं में हान वाली धन क्रियाओं में भी परिवर्तन लाया। उदाहरणार्थ समाचारपत्रों द्वारा उत्पन्न जनता, रेडियो द्वारा उत्पन्न जनता में भिन्न होगी। यह भिन्नता उनकी प्रतिक्रियाओं में अभिव्यक्त हानी है।

जनता तथा भीड़

(१) भीड़ में व्यक्तियों के लिये शारीरिक सामीप्य आवश्यक है। जबकि जनता में व्यक्तियों के लिये अप्रत्यक्ष मनावतानिक सामीप्य आवश्यक है। जनता के सम्मेलन में ही में रडिया समाचारपत्र चलचित्र आदि द्वारा किसी विषय में रचित रत्न के कारण एक दूसरे की चेतना प्राप्त करती है। जिस विद्वान ने Consciousness of kind भी कहा है। भीड़ के सम्मेलन में व्यक्ति सम्पर्क होता है परन्तु जनता के सदस्यों में सम्पर्क अभाव रहता है। भीड़ में प्रवेश लागा की एक स्थान पर उपस्थिति, घबरा मुक्का पाग आदि होते हैं। जिनमें जनता के सदस्यों में अभाव रहता है।

(२) एक व्यक्ति एक समय में एक ही भाग (crowd) का सम्मेलन होने का अधिकारी है। परन्तु अनेक विषयों में रचित रत्न के कारण अनेक जनताओं का वह सम्मेलन का अधिकारी है।

(३) भीड़ में सकेत अधिष्ठा प्रकृतियों की होते हैं। उन सकेतों का प्रभाव उस स्थान विशेष तक सीमित होता है जहाँ भीड़ होती है। इसके विपरीत जनता में सकेतों का प्रभाव अपक्षयता बहुत कम होता है किन्तु सकेतों का अप्रतिमित न होकर विस्तृत होता है। जन समाचार पत्रों या रडिया द्वारा दूर-दूर स्थानों पर रहने वाले जनता के सदस्यों का मनन लिये जा सकता है।

(४) जनता के सम्मेलन दूर-दूर स्थानों पर विचार रहते हैं और भी उनमें एक प्रकार का संगठन पाया जाता है। बाद विचारों भाषणों तथा आदि द्वारा जनता को संगठित किया जा सकता है तथा प्रयत्न भी किया जाता है। भीड़ में इस प्रकार के संगठन के लिये कोई गुणात्मक नहीं होता है।

हम कह चुके हैं कि सामाजिकता भीड़ में लागा की सकेत प्रकृति की क्षमता तीव्र होती है किन्तु कभी कभी जनता में सकेत प्रभावता का मिट्टा होता है। भीड़ की प्रकृति जनता में प्रतिष्ठा सकेत (Prestige suggestions) प्रकृतियों होती है।

प्रतिष्ठा का प्रकार दो प्रकारों का है—

(१) गुणात्मक (Qualitative)

(२) संख्यात्मक (Numerical)।

जनता में दो प्रकार के सकेत प्रभावता होती है। जनता में व्यक्ति के सम्पर्क में बात की चेतना कि द्वारा व्यक्ति किसी विषय में इसी के समान भाव रहे हैं उनकी सकेत क्षमता का बड़ा होता है। इसी प्रकार उस विषय में रडिया समाचार पत्रों द्वारा किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के विचारों का प्रमाणित एवं प्रकाशित किया जाता है।

यक्ति अनेक समूहों का सदस्य होता है। बड़े समूहों के अंतर्गत छोटे-छोटे समूह पाए जाते हैं जिनमें अनेक बातें समान तथा सघर्षपूर्ण भी पाई जाती हैं। कुछ समूह एक-दूसरे का सहयोग करते हैं कुछ एक-दूसरे का विरोध करते हैं। उनमें से कुछ की आकांक्षाएँ विचार आदि में समान होने हैं एवं कुछ के भिन्न। प्रत्येक समूह का अपना निजी संगठन होता है तथा उसकी अपनी परम्पराएँ होती हैं। समूहों के अंदर इन तमाम समूहों संगठन तथा संस्थाओं के अंतर्गत परिवर्तन स्वाभाविक हैं। परिवर्तन प्रवृत्ति का नियम है। व्यक्ति परिवर्तन का स्वागत करता है। इन परिवर्तनों के हाथ हुए भी उनमें एक प्रकार की एकता पाई जाती है। उनमें एक प्रकार का स्थायीपन पदा करण में जनता महायज्ञ होती है। बिना जनता के इन समूहों में एकता एवं स्थायीपन का अभाव सा रहगा। गिम्बेग का कथन है जब जनता (Public) किसी संगठन में एकता नहीं उत्पन्न कर पाती है तो वह एक भीड़ उत्पन्न कर देती है।¹ जनता एक व्यक्तियों का समूह है जो दूर-दूर क्षेत्रों में रहते हैं व किसी विषय में एक सामान्य दृष्टिकोण (Common attitude) रखते हैं।

यद्यपि किसी भी समाज के सभी सदस्यों की एक ही समय किसी ऋतु में समान रूचि नहीं होती फिर भी उनके आदर्शों मूल्यों आधारभूत प्रतिमानों में एक एकमतता पायी जाती है। कुछ विषयों के प्रति समान रूचि तथा कुछ के प्रति भिन्न रूचि के कारण ही एक बड़ी जनता में छोटी-छोटी अधिकांश जनताएँ पाई जाती हैं। इनमें से कुछ जनताएँ एक-दूसरे का सहयोग करती हैं कुछ एक-दूसरे का विरोध करती हैं। संक्षेप में हम यह सन्तते हैं कि जनता वास्तव में अनेक छोटी-छोटी जनताओं का एक जटिल संगठन है।

¹ When public cannot create organisation it creates a crowd —Ginsberg

चतुर्थं खण्ड

सामाजिक सस्थाएँ

- २२ सामाजिक सस्थाएँ—साधारण परिव्य
२३ परिवार एव विवाह
२४ आर्थिक और राजनैतिक सस्थाएँ
२५ धार्मिक और साम्प्रदायिक सस्थाएँ
२६ विज्ञान, प्रविधि और समाज

सामाजिक सस्याएँ

मनुष्या का कर्तव्य आवश्यकताओं से सम्बन्धित व्यवहार के प्रतिमानों को मर्यादा कहते हैं। हर समाज में मनुष्या का कुछ कर्तव्य आवश्यकताएँ तथा पारस्परिक दायित्व हूत हैं। इन्हें पूरा करने के लिए निश्चित व्यवहार के बन्धन से तब समाज के व्यस्तित्व जीवन के लिए जरूरी हात है। मानव व्यवहार के मर्यादित प्रतिमान ही मर्यादा होती हैं। कामवाचना की कृति माननात्मनि तथा उसका साधन पावन, नोजन-बल्ल तथा घर का प्रबंध सामाजिक विरासत में मिलने वाले के लिए प्रतिभागा समूह तथा मनुष्या के व्यक्ति की प्रस्थिति तथा भूमिका का निश्चिन करना तथा उसका समाजाकरण परा तथा दबी गतियों का प्रमत्त कर व्यक्ति तथा उनका समूह का कल्याण तथा आनि मनुष्य की कर्तव्य जरूरी है। इन्हें पूरा करने के लिए एक लक्ष्यो धर्म में मनुष्य के व्यवहार के कुछ प्रतिमान साठित हा जात हैं। मानव व्यवहार के ये मर्यादित प्रतिमान दो आदाग पर बढे हात हैं — (१) उनमें एक विगिष्ट आवश्यकता की पूर्ति मरम अधिक कुविना और पूरणता में हुई है तथा (२) आवश्यकता की पूर्ति के म म सामाजिक व्यवस्था हड हुई है। परिवार और विवाह पर तथा सम्पत्त मरिदर विद्यालय वातार मविद्यान सस, बचहरी आनि सामाजिक मस्याएँ हैं। विवाह का ही लीजिए। काम वाचना की कृति का मयस आदा और मयन टम विवाह पाया गया। विवाह एक मर्यादित व्यवहार प्रतिमान है। इमनिय सामाजिक मर्यादा के सामाजिक प्रतिमान गत हैं जो आधारभूत सामाजिक कृतियों के बन्धन में मनुष्या के मर्यादित व्यवहारों का स्थापित करते हैं। इन कृतियों में बच्चा का गनात में स्वीरित जम उनका समाजाकरण या प्रतिभागा राजा बमाना दबी गतियों का प्रमत्त करना और समूह के मर्यादा के सामाजिक निदधन का समावेग गता है। मिन मिन गमाजा में दूत गत्याग

वृत्त्या का उदय हो सक्ता है किन्तु उपरोक्त क्रियाएँ सभी सगठित समूहों में प्रधान हैं।

हर व्यक्ति कुछ मस्थानिक प्रतिमानों में अपनी भूमिकाएँ करता है। इन्हीं के द्वारा समाज की विभिन्न संस्थाओं में एक जटिल सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। एक संस्कृति का बहुत बड़ा भाग (सब कभी भी नहीं) संस्थाओं के मिले हुए रूप में बनता है। इसलिये एक समाज या समुदाय के अध्ययन का एक तरीका उसकी संस्थाओं का अध्ययन होता है।

अर्थ और प्रकृति

बलाड (Lloyd V Ballard) ने सामाज्य इच्छा द्वारा किसी प्रयोजन के स्थापित सगठित मानव सम्बन्धों के प्रतिमानों को सामाजिक संस्थाएँ कहा है। सामाजिक प्रक्रियाओं के साध्य उत्पादन हैं। उनका मुख्य कार्य कमरेत समूहों के आचरण का नियमित करना होता है।¹

बहुधा लोग समाज द्वारा स्थापित किसी भी वस्तु को संस्था कहकर गलत करते हैं। वास्तव में भी संस्था का अर्थ ऐसी सामाजिक संरचना और यंत्रणें लगाने हैं जिसके द्वारा मनुष्य समाज मानवीय आवश्यकताओं की मनुष्य के लिये अपेक्षित अनेक क्रियाओं का सगठन निर्देशन और सम्पानन करता है।² संस्था का यह अर्थ मानने में संस्था और समिति (या सभ) में कोई भेद नहीं रहना। किन्तु समाजशास्त्र इन दोनों में भेद करते हैं। मजाइवर और पेज ने सामूहिक क्रिया की कार्यविधि के प्रतिष्ठित रूपों अथवा दशाओं को संस्था कहा है।³ परिवार एक समिति है प्री विवाह एक संस्था। राज्य अथमसभ तथा व्यापारिक निगम समितियाँ हैं। किन्तु संस्थाएँ, मायपालिका सविधान व्यवस्था मताधिकार सामूहिक सौजन्य और प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति व्यवस्था संस्थाएँ हैं। कालेज जेल, अस्पताल और ससद को समिति तथा संस्थाएँ दोना कह सकते हैं। सगठित समूहों के रूप में ये समितियाँ हैं और कार्यविधि के रूप में संस्थाएँ हैं। समितियों में बने सगठित समूह हैं। हम उनके सत्य हो सकते हैं किन्तु संस्थाओं के नहीं।⁴

मनुष्य के वृद्ध आधारभूत मनोवैज्ञानिक और शरीर क्रिया सम्बन्धी आग्रह होते हैं। ये भोजन आश्रय यौन तथा सुरक्षा प्रत्युत्तर और नष्ट अनुभवों की आवश्यकताओं से सम्बद्ध होती हैं। माट तीर पर इन्हें आर्थिक यौन आस्था और सामूहिक

1 Ballard *Social Institutions* New York (1936)

2 An institution means the social structure and machinery through which human society organises directs and executes the multifarious activities required to satisfy human needs *Social Institutions* New York (1942)

3 By institutions we shall always mean the established forms and conditions of procedure characteristic of group activity *Society* p 15

4 *Ibid* p 15

कल्याण सम्बन्धी चार केन्द्रीय भावभावनाओं में विभक्त किया जा सकता है। सामाजिक मस्यारों के आधार कृतियों के चार पुंज हैं।¹ इन समूह की क्रियाओं के आधार में मिडग्लान्ड की व्यवस्थाओं का हम मस्यारों कह सकते हैं।²

सामाजिक मस्यारों सामाजिक षट्ठन के ही रूप हैं क्योंकि जिन सम्बन्धों का उनमें समावेश होता है वे निश्चित ही व्यवस्थित तथा अनुमानित होते हैं। किन्तु उनमें तथा सामाजिक षट्ठन के दूसरे स्तरों में भेद यह है कि मस्यारों समूहों के किसी एक कार्य का करती हैं जो उनके लिए इतना महत्वपूर्ण है कि उनका सामाजिक सम्मान तथा नियंत्रण मिलना आवश्यक है। मस्यारों किसी सामाजिक इच्छा द्वारा स्थापित नहीं हैं तथा उनका एक सामाजिक व्यक्तित्व होता है। मस्यारों में सामूहिक क्रिया का कारण बनने के लिए सामूहिक प्रयत्न की अभिव्यक्ति होती है। ये सिर्फ सामाजिक धारणाएँ ही नहीं होती। बाहर व्यक्तियों के इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। मस्यारों मनुष्य ही बनाते हैं और सामाजिक रूप देकर उन्हें स्थायी रचनाओं में बनाने देते हैं। ये स्थापित उन प्रथाओं परम्पराओं तथा परिपाटियों के कारण हैं जो मस्यारों के ग्राम-ग्राम बन जाती हैं। मस्यारों के शक्ति में ये नहीं होती। ये तो कुछ समय बाद बनने लगती हैं और मस्यारों का प्रीति हान पर प्रतिष्ठा (Prestige) तथा स्थापित प्रदान करता है।³

प्रथाएँ परिपाटियों तथा परम्पराओं मस्यारों के मस्यारों के आधारों के नियम मानक निश्चित करती हैं। इन मानकों के प्रतिनेति मस्यारों मस्यारों तथा मस्यारों होते हैं जो मस्यारों के अनुभव के माध्यमों के रूप में विकसित हुए हैं और जो मस्यारों के वर्तमान काम-काज के नियम मानकों मिडग्लान्ड शक्ति हैं। परन्तु इन प्रथाओं मस्यारों का ही मस्यारों नहीं कह सकते हैं। इनका सम्बन्ध मस्यारों में मस्यारों का शक्ति मस्यारों का मस्यारों या मस्यारों तथा मस्यारों का मस्यारों मस्यारों मस्यारों (Sumner) मस्यारों के परिभाषा एवं मस्यारों मस्यारों मस्यारों कह सकते हैं।⁴

1 Ogburn & Nimkoff *op cit* Chap XVIII

2 Institutions may be described as systems of principles underlying the activities of a group. Martindale & Monahan *Elements of Sociology* p. 394

3 An institution can be defined as a set of interwoven folkways mores and laws built around one or more functions. K. Davis *Human Society* p. 71 or An institution is the organization of several folkways and mores (and more often but not necessarily laws) into a unit which serves a number of social functions. A. W. Green *Sociology* p. 78

4 W. G. Sumner *Folkways* p. 53 and Gillin and Gillin *op cit* p. 313

संस्थाओं के आवश्यक लक्षण

संस्थाएँ सामाजिक वस्तुएँ हैं पर अथ सामाजिक रूपा स भिन्न हैं। इन भिन्नता का जानने के लिय संस्थाओं के आवश्यक गुणों को समझना जरूरी है।¹

(१) धारणा या विचार (Ideation)—एक संस्था की उत्पत्ति किसी धारणा, विचार या विश्वास से होती है और उसी पर वह केन्द्रित रहती है। यह धारणा या विचार किसी ऐसे सामाजिक चित्र के बारे में होना है जो समाज की नित्यता अथवा किसी उपलक्ष्य के लिय अनिवार्य माना जाता है। सामाजिक संस्थाओं का केन्द्रीय पहलू उनके कार्यों में प्रकट होता है।

(२) संरचना (Structure)—विचार या धारणा को साक्षात् करने के लिय एक संरचना जरूरी होती है जो विचार का यथासंभव ब्यक्त करने के लिय साधन या सामग्री जुटा देती है। सामाजिक सामग्री इमारतें तथा सजा संरचना में शामिल होते हैं। विद्यालय, सरकारी राजनैतिक दल, गिरजे या मंदिर, विद्यालय भवन भी संरचना के अंग हैं। साधारणतया हम इन्हें ही संस्थाएँ मानते हैं। किंतु ये स्वयं संस्थाएँ न होकर उनका ढांचा मात्र हैं।

विचार और संरचना त्रिआशील सम्पूर्ण के अंग हैं और उनका एक दूसरे में प्रलय नहीं किया जा सकता। आधारभूत संस्थाओं की धारणाओं में स्वयं सामाजिक जीवन के प्रयोजन और ध्येय समाविष्ट होते हैं। एतद् ही संस्था की संरचना विभिन्न समाजों में भिन्न भिन्न रूपा में प्रकट होती है। उदाहरण के लिए, परिवार की धारणा में समाज द्वारा स्वीकृति के साथ गम उम तथा बच्चा का लालन पालन शामिल होता है। किंतु परिवार की संस्था का संरचना विभिन्न समाजों में अलग अलग है। यही बात आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संस्थाओं की संरचना के बारे में भी सही है।

(३) प्रयोजन—जिस विचार या धारणा से संस्था का जन्म होता है उसी से उसका प्रयोजन भी विकसित होता है। सामाजिक संस्थाओं द्वारा संस्था का प्रयोजन ठोस रूप से जाना जाता है और यही यह निश्चित करती है कि संस्था किस विचार का प्राप्ति का प्रयत्न करेगी तथा किन उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करेगी। संस्थाओं का औचित्य या अनौचित्य निर्धारण के लिय यह मान्यता बनना है कि वे अपना प्रयोजन पूरा कर रही हैं अथवा नहीं।

1 Compare with Gillin & Gillin's characterisation of institutions

(1) an organisation of conceptual and behaviour pattern (2) a relative degree of performance (3) fairly well defined objective or objectives (4) cultural objects of utilitarian value (5) symbols (6) fairly definite oral or written tradition *Cultural Sociology* pp 315-317 and also Cf Chapin *Cultural Change* New York (1928) p 49 Chart (Institutional Elements)

संस्थाएँ किसी न किसी हित या आवश्यकता का मनुष्य के नियम तो बनती हैं किन्तु कोई आवश्यकता संस्था की मूल्य नहीं करती। संस्थाओं का किसी क्षेत्र में आवश्यकता से महत्त्व प्राप्त स्थापित नहीं किया जा सकता। हाँ संस्था और आवश्यकता में बड़ा शक्तिशाली सम्बन्ध अवश्य है किन्तु यह अप्रत्यक्ष मात्र है। संस्था आवश्यकता पर धारी हुई नियमों की एक व्यवस्था है यह उनका भाग निर्देशन करता है और उनकी पूर्ति को दशाशा का निवारित करती है।¹ फिर भी प्रत्यक्ष आधारभूत संस्था का प्राथमिक काम एक आग्रह में निश्चय होना है।

(४) अपेक्षाकृत स्थायित्व—संस्थाएँ मनुष्य को कुछ प्रधान आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए बनती हैं इसलिए व्यवस्थित तथा स्थायी रूप में बनायीं जाती हैं। चूँकि ये प्रधान आवश्यकताएँ समाज में हमेशा के लिए या बहुत लंबेकाल तक रहती हैं इसलिए उनकी पूर्ति की कार्यविधियाँ भी स्थायी हो जाती हैं। संस्थाओं का रूप समाज की उन्नति और अन्य दशाशा के साथ बदला करता है।

(५) अधिकार सत्ता (Authority)—संस्था एक विनिश्चित सम्बन्ध का प्रकट करती है जिस समाज या ताक की स्वीकृति में स्थापित किया गया है। सभी स्वीकृति में मिलने से संस्था का अधिकार-सत्ता प्राप्त होती है जिससे वह अपने सम्बन्ध तथा समाज के अन्य लोगों पर चलती है। हर संस्था द्वारा प्रयोज्य तथा प्रतीक में परिवर्तित होती है इसलिए उनका पृथक् तथा स्वतन्त्र अस्तित्व हो जाना है।

(६) सामाजिक नियंत्रण—चूँकि संस्थाएँ समाज की इच्छा में बनती हैं अतः वे उसी नियंत्रण में रहती हैं। कोई व्यक्ति चाहे जिसना प्रभावकारी हो उसके विचारों का अन्तः संस्थाओं पर सभी पक्षों जब उन्हें समाज में अपना दिया हो। जब तक समाज किसी विचार या कार्य का अपना नियंत्रण लागू नहीं करता तब तक समाज किसी विचार या कार्य का अपना नियंत्रण नहीं करता। संस्थाएँ बहुत ही घोर मनुष्यों के अनुभवों के आधार पर बनती हैं इसलिए इनमें परिवर्तन भी बहुत घोर होता है। किन्तु मनुष्य या समाज अपनी संस्थाओं का निश्चित लक्ष्य की पूर्ति के लिए हमेशा अपने नियंत्रण में रहता है। इस नियंत्रण में संस्थाओं का स्थायित्व और प्रभाव होना बड़ा होता है। हम जानते हैं कि संस्थाओं पर एक लक्ष्यपूर्ण प्रभाव विधान संस्था, प्रायोगिक विधानों के द्वारा तथा अनुभवों का पाना है।

(७) सन्ध (Personnel)—एक संस्था में कुछ लोग सम्मिलित रहते हैं। इनके अतिरिक्त कार्य और प्रस्थितियाँ होती हैं। ये संस्था के प्रयासों का कार्यान्वयन करते हैं। किसी भी संस्था का अस्तित्व उसके सन्धों का छोटा बड़ा भाग ही हो सकता है। अन्य सामाजिक संस्थाओं में भी मनुष्यों का होना अविभाज्य भाग है किन्तु

1 The institution is a system of rules imposed on need guiding its course and prescribing the conditions for its functioning. Martindale & Monahan, *Elements of Sociology* p. 394

कुछ सामाजिक रूपा (प्रथाएँ परिपाटियाँ या परम्पराएँ) में मनुष्य नहीं होते। अर्थात् ये मनुष्या से स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं जब कि हर सस्या के साथ कुछ लोग सम्बन्धित रहते हैं।

सस्याएँ ऐच्छिक तथा अनच्छिक होती हैं। अनच्छिक सस्याओं का सदस्य होना व्यक्ति के लिए अनिवाय होता है। परिवार तथा धर्म इसी प्रकार की सस्याएँ हैं। बच्चा परिवार में जन्म लेता है तथा वयस्क होने तक अपने लालन पालन आदि के लिए उसमें शिरकत करता है। उस इस सस्या का सदस्य होना अनिवाय है। इसी तरह, प्रायः सभी समाजों में व्यक्ति को धार्मिक सस्याओं का अनिवायत सदस्य होना पड़ता है। हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाइ या पारसी सभी समाजों में धार्मिक सस्याओं का सदस्य होना व्यक्ति के लिए अनिवाय रहता है। धर्म सारे समाज में व्याप्त रहना है। यह अवश्य सम्भव है कि कोई व्यक्ति धार्मिक सस्याओं में क्रियाशील शिरकत न करे। आधुनिक समाजों के सदस्यों का बहुत बड़ा प्रतिशत धर्म में आस्था रखत हुए भी क्रियाशील अस्तित्व नहीं होना। आर्थिक राजनतिक या सांस्कृतिक सस्याएँ ऐच्छिक होती हैं। इनका सदस्य होना न होना मनुष्य की इच्छाओं पर निर्भर है। किन्तु राज्य और राष्ट्र की सदस्यता हर मनुष्य के लिए अनिवाय है। परिवार, धर्म, राष्ट्र आदि समाज की आधारभूत सस्याएँ हैं। इसी प्रकार कुछ सांस्कृतिक सस्याएँ भी हैं जिनका सदस्य होना बहुत कुछ मनुष्य की इच्छा के बाहर रहता है। अतएव, समाज की आधारभूत सस्याओं में व्यक्ति की शिरकत या सदस्यता प्रायः ऐच्छिक नहीं होकर अनच्छिक होती है। मूलभूत सस्याओं से सम्बन्ध का अधिनाश भाग मनुष्य के जन्म से निर्धारित होता है।

व्यक्तिक एवं सामाजिक पक्ष

सामाजिक सस्याओं के व्यक्तिक तथा सामूहिक दो पहलू होते हैं। सस्याओं के सामूहिक पहलू से हमारा अभिप्राय विश्वास और व्यवहार के उन समूहित प्रतिमानों से है जो एक संस्कृति के सभी व्यक्तियों की अनुक्रियाओं का निर्धारण करते हैं। परिवार के सामूहिक पहलुओं में उन जन रीतियाँ, रूढ़ियाँ, कानूना तथा अनौपचारिक अपथाओं का समावेश होता है जो किसी समाज के मनुष्यों के परिवारों के सदस्यों को नाने उनके व्यवहार पर प्रभाव डालते हैं। ये प्रतिमान संस्कृति में ही मौजूद रहते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते रहते हैं। ये किसी एक विशिष्ट परिवार पर आश्रित नहीं होते। व्यक्तिक परिवारों के सदस्यों के व्यवहार में वे पाए जाते हैं। जब कभी व्यक्ति परिवार के पर्यावरण में रहता है तब इन्हीं प्रतिमानों के अनुरूप व्यवहार करेगा। परिवार के सामूहिक पहलू बन रहे हैं भले ही किसी एक परिवार का नाश हो जाए। व्यक्तिगत परिवार बनते हैं और नष्ट हो जाते हैं किन्तु परिवार की मर्यादा तब तक चली रहती जब तक समस्त परिवार एकदम नष्ट न

हा जाएँ। इसी तरह आर्थिक, राजनतिक, धार्मिक आदि सस्यायों के सामूहिक पहलू कायम रहते हैं यद्यपि व्यक्तिगत माभेत्तारियों सम्पनियों सरकारें गिरज या मंदिर बनन और नष्ट हाते रहते हैं।

सस्यायों की अयो-पाधितता

एक समाज की सभी सस्यायें अत निभर तथा आपस म धनिष्टता स सम्भ्र धिन हाती ह। समाज का जीवन और श्रम किमी एक सस्या मे उही चतना। इमर लिए सभी सस्यायें बराबर महत्व रखती हैं। समाज चलनके लिए अमुक सस्या का महत्व ज्यादा और अमुक का कम इस प्रकार का विचार गलत है। किमी भी आचारभूत सस्या—आर्थिक या धार्मिक—की सामाजिक जीवन का निर्धारण करन वाला मानना अनुचित है। समाज की व्यवस्था बनाए रखन तथा उसक लियाशील हान व लिए आधारभूत सस्यानिक प्रतिमाना का पूनतम कायमता स काम करत रहना जरूरी है। यदि एक सस्या म गडबडी आती है ता दूसरी सस्याया पर उमना प्रभाव पडना अवश्यम्भावी है। किन्तु सस्याया म अत निभरता म यह समझना चाहिए कि उनक धया तथा प्रयाजना म सामजस्य अवश्य ही हाता है। आधुनिक गत्यात्मक समाज म इन सामजस्य का हाता बतून मुश्किल हाता है। फिर भी समाज के चलत रहन के लिए कर्त्रीय सस्याया म कृत्यात्मक काय क्षमता हाता अत्यावश्यक हाता है।

मवत्र सस्यायें एक दूसर व माय एकभूत होती हैं। किन्तु आग्नि ससृतिया की अरना आधुनिक सस्याया म य कम पूण एकभूत हाती हैं। सस्याय व आकार और जटिलता क कारण आस्या, जान और अभ्यासा म बतून अधिक विक्षपा-करण हा जाता है।

सस्यायों के प्रकार¹

(१) सस्याया की स्थापना समुदाय तथा समितिया दाना व द्वारा हाता हैं। समनर न सस्याया क दश प्रकार बनाए (अ) म्वन विकसित और (आ) निमित्त (enacted)। विवाह सम्पत्ति और धम पत्त प्रकार की सस्यायें हैं जिनका विकास रचिया स अचनन अथवा अनियाजित हा गया है। मात्र व्यापार और नि ता सस्यायो सस्याया का निश्चित प्रयाजना क लिए चनन भगटन हुआ है। व वाजस्य आविष्कार एव इराता का परिणाम हैं। व कानून द्वारा परिभाषित हाती हैं तथा राज्याक्ति का उह म्वीकृति प्राप्त हाती हैं। पहन प्रकार की सस्यायें अदि और परम्परा स अनुमानित और प्रशस्त हाता हैं। कुछ अय विद्वाना न सस्याया का परम्परात्मक और विचारत्मक न वगों म विभाजित किया है। यह वर्गीकरण ऊपर जमा हा है।

(२) सस्थापना के सामाजिक महत्त्व के आधार पर उन्हें (अ) आधारभूत सस्थापना तथा (आ) गौण सस्थापना में विभाजित किया जाता है। आधुनिक समाज में परिवार सम्पत्ति धर्म राज्य और शिक्षा को आधारभूत सस्थापना कहते हैं। उन्हें सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण के लिए आवश्यक माना जाता है। मनोरंजन सम्बंधी सस्थापना को श्रवण गौण कहते हैं। किंतु अमुक्त सस्था गौण है या प्रमुख? यह बात तभी निश्चित हो सकती है जब हम समग्र संस्कृति में उनके स्थान का परिचय दें।

() सस्थापना का एक अर्थ वर्गीकरण किया जाता है। समाज में स्थापित सस्थाएँ प्रथा रूढ़ि और कानून सभी के द्वारा स्वीकृत होती हैं। इनके अतिरिक्त कुछ सस्थाएँ ऐसी होती हैं जिन्हें समाज सर्व स्वीकृत मानता है। य वहुधा समाज विरोधी कृत्य करती हैं। सट्टा चारवाजार, सासाइटी बीमेन' रक्त आदि अस्वीकृत सस्थाएँ नहीं जाती हैं। वास्तव में अस्वीकृत सस्थापना का अर्थात् अस्वीकृत माना जाता है। सस्थापना का एक आवश्यक लक्षण उनका सामाजिक कृत्य है।

(४) सस्थाएँ सावभौमिक और विशेष भाषा हो सकती हैं। हिंदू धर्म एक सावभौमिक सस्था (भारत में) है जबकि आर्य समाज सनातन धर्म जैन या बौद्ध धर्म विनाश सस्थाएँ हैं। इसी प्रकार भारत की केंद्रीय सरकार प्रणाली एक साधारण सस्था है और राज्या की शासन प्रणालियाँ उसका विशेष रूप हैं। हमारा विचार से साधारण और विशेष में भेद करने का सबसे अच्छा आधार उनका कार्य और क्षेत्र है। साधारण सस्था का क्षेत्र बड़ा विस्तृत और कार्य साधारण होता है। विशेष सस्था का कार्य विशिष्ट और क्षेत्र सीमित होता है।

(५) सस्थाएँ नियामक (op-rative) और नियामक (regulative) भी हो सकती हैं। पहला सस्थापना का प्रधान कार्य एक प्रतिमान निर्माण करना है जिनका अस्वीकार उन्मुख की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। प्रोत्साहकता की सस्था ऐसी ही है। बंधनिय सस्थाएँ नियामक कही जाती हैं क्योंकि वे हमारे व्यवहार का नियंत्रण करने वाले यंत्र हैं।

हम समस्त सामाजिक सस्थापना का निम्न ६ वर्गों में विभक्त करने का प्रयत्न करें —

- (क) कौटुम्बिक सस्थाएँ,
- (ख) आर्थिक सस्थाएँ
- (ग) राजनितिक (और बंधनिय) सस्थाएँ
- (घ) शैक्षणिक सस्थाएँ (ज्ञान विज्ञान और प्रोत्साहक सस्थाएँ),
- (ङ) धार्मिक (और नैतिक) सस्थाएँ
- (च) नागरिक अथवा मनोरंजनात्मक सस्थाएँ।

संस्थाओं के काय

उनाइ न मस्यारों के चार काय बनाए ह (१) समाज तथा संस्कृति की व्यवस्था या संरक्षण, (२) नतिर शिक्षा, (३) आचरण का टालना, तथा (४) सामाजिक यंत्र का मृजन ।

गितिन तथा गितिन न संस्थाओं के चार काय बनाए ह —

- (१) व्यक्ति के लिए समूह के काय का संरक्षण बनाना
- (२) सामाजिक नियंत्रण के मापन
- (३) व्यक्ति का एक भूमिका तथा प्रस्थिति देना
- (४) नए प्रतिमानों के मृजन में प्रोत्साहन
- (५) सम्पूर्ण सांस्कृतिक समुच्चय में सामंजस्य पैदा करना
- (६) मनुष्य के व्यक्तित्व का बनी-बना खुलने का मती है
- (७) समाज का प्रगति में बनी-बना प्रतिरोध डालनी है ।

हम संस्थाओं के कार्यों का विवरण चार पीढ़ियों के अंतर्गत करेंगे —

- (१) संस्थाओं तथा मनुष्य का अन्तर्गत
- (२) संस्थाओं तथा सामाजिक विरगमन
- (३) मस्यारों तथा सामाजिक नियंत्रण
- (४) संस्थाओं तथा सामाजिक परिवर्तन ।

संस्थाओं और व्यक्तित्व

व्यक्तित्व के निर्माण में सामाजिक संस्थाओं का सबसे अधिक योगदान है । व्यक्तित्व का सामाजिक प्रवृत्ति उन भूमिकाओं तथा प्रस्थितियों में प्रकट होती है जो व्यक्तित्व का अपना संस्कृति में मिलती है या वह उसे प्राप्त करता है । इनमें में परिवारिक एवं या बड़े सामाजिक संस्थाओं में सम्मिलित होती हैं चाहे वह परिवार, धर्म या विज्ञान ही अथवा अन्य । ही प्रस्थिति तथा भूमिका के कुछ पदार्थों का संस्थाओं में उत्पन्न होने का सम्बन्ध होता है । व्यक्तित्व के उन तत्वों का जिन्हें वास्तविक जीवन-मार्ग में प्राप्त करना है अथवा जिन्हें वास्तविक जीवन में पाना है संस्थाओं में उत्पन्न होने का सम्बन्ध होता है । किन्तु व्यक्तित्व में प्रतिमानित अंतर्भावों के अनुमानों का अन्तर्गत या आचरण सामाजिक है उन पर संस्थाओं का उत्तम महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है ।

मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण परिवार में ही प्रारम्भ हो जाता है । प्रारम्भ में परिवार धरती संस्था होती है । बच्चे का नाम में प्रतिभागत नतिर मूल्यवर्षों में पाना और सामाजिक विरगमन में निरवतन करना—य सभी परिवार की संस्था में

आरम्भ होता है। जस-जसे यह बड़ा होता जाता है उनका सम्पक अत्य नई सस्थाओं से आता जाता है और पूरे वयस्क हान तक उसके व्यक्तित्व का प्रायः प्रौढ विकास सस्थाओं के सम्पक में ही जाता है।

बढ़ते हुए बच्चे की इन विभिन्न सस्थाओं में जो प्रस्थिति होती है उसी से उसकी भूमिकाय निश्चित होती है। इन भूमिकाओं के साथ वे अपेक्षायें जुड़ी रहती हैं जिनसे भिन्न परिस्थिति में व्यक्ति का किस प्रकार का आचरण करना पड़ेगा यह निर्दिष्ट होता रहता है। इहाँ से बार-बार आने वाली स्थितियाँ के प्रति व्यक्ति के रूप का निर्धारण होता है। अधिकार और कर्तव्य, भार तथा दस्तूर का हमेशा दुनरफा काम होता है। सस्था के लिये कुछ बलिदान करने की व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है। जिसके बाल में वह कुछ स्पश्य अथवा अस्पश्य (tangible or intangible) लाभ पाने का अपेक्षा करता है। अपने जीवन में व्यक्ति को पुत्र, भाई पिता, पति मित्र पड़ोसी अधिकारी सबके नागरिक आदि अनन्त भूमिकाएँ भूषण करनी पड़ती हैं। वह सस्थाओं में रहकर सम्बन्धित भूमिका के निर्दिष्ट प्रतिमान के अनुसार ही आचरण करता है। हर भूमिका में कुछ ऐसी तत्त्व होते हैं जो वनने वाले व्यक्तित्व पर अपना स्थायी असर छोड़ जाते हैं। चाहे कोई व्यक्ति एक सस्था में आसामा या अधिकारी हो अथवा पूजक या पुजारी, नागरिक या निर्वाचित प्रतिनिधि शिष्य अथवा शिक्षक की भूमिका में ही उनका व्यक्तित्व में उसकी भूमिका की प्रमुख विशेषताओं के लक्षित हान की प्रवृत्ति रहती है।¹ भिन्न भिन्न सम्स्थितियों में व्यक्ति के भिन्न प्रकार पाये जाते हैं। कहीं आर्थिक सम्स्थानों में व्यक्ति पर सबसे अधिक प्रभाव डालती हैं या उनकी सबसे अधिक प्रचलना जीवन के बहुत से पहलुओं में रहती हैं। किन्हीं समाजों में धार्मिक सस्थाओं की प्रचलता और कहीं अन्य सस्थाओं की। भौतिकवादी सम्प्रदाय में व्यक्ति प्रारम्भ से ही सीखता है कि उसकी मुख्य भूमिका राजी बर्मान वाले व्यक्ति का हाग और उनका जीवन की सफलता या विफलता की माँग उनका आर्थिक उपलब्धियाँ पर निर्भर रहनी। अन्त्यात्मवादी दशा में व्यक्ति आर्थिक हितों का सर्वोपरि महत्त्व नहीं देता। वह परोपकार, सेवा या आत्मसाधन को सर्वोपरि महत्त्व देता है। इनलिये शुरू से ही जीवन के प्रति उसका रूप अध्यात्मवादी हो जाता है। यह ठाँव रहा एक समाज या सम्प्रदाय में व्यक्तित्व का माधारण प्रकार। इसी समाज में विभिन्न सम्प्रदाय वर्गों या जातियों के व्यक्तियों का व्यक्तित्व अलग अलग प्रकार का होता है। जिस सम्प्रदाय या वर्ग में जिस स्थिति का प्रचल माना जायगा उसी की पूर्ति के लिये व्यक्तियों की भूमिकाएँ विकसित हानगी। भारत में राजपूत एक योद्धा जाति रनी है। इसमें हरेक मनुष्य का देश रक्षा में प्राणा का आर्पण देना बचपन में ही सिखाया जाता था। आराम या चैन से जीवन बिताना भोलेना या अकर्मण्यता की निशानी समझा जाता था। धन-सम्पत्ति का मन्त्र्य बड़ी तक उचित समझा जाता

1 Ralph Linton *The Cultural Background of Personality* Chapter III

या जहाँ तक एक राजपूत को अपनी भूमिका भ्रष्टा करने में वह महायक हो। वन्द का तात्पर्य यह है कि एक संस्कृति में तिन मन्थना की प्रवृत्तता होगी वही मनुष्या के व्यक्ति पर सर्वोपरि प्रभाव डालेगा।

जन्म के समय व्यक्ति इनका लक्षणा होता है कि उनमें अपने जटिल व्यवहार प्रतिमानों की प्रवृत्तता की जा सकती है। किन्तु प्रकार का भी व्यवहार प्रतिमान उनमें सम्भव हो सकता है क्योंकि एक विविध समाज में संस्थाओं की प्रवृत्तता इन सम्भव पहलुओं में सम्बन्धित या एक पहलू को प्रधान बना देती है। समाज या समूह की संस्कृति का व्यक्ति अपना मन्थना के जरिए जानता है। संस्थाएँ व्यक्ति के लिए संस्कृति का अवनिर्णय करती हैं। व्यक्ति के निर्माण में मूलभूत जन्मजात गुणों का साथ वन्द महत्त्वपूर्ण होता है फिर भी प्रधान मन्थना के प्रतिमान उन माध्यमों नामाओं का निश्चय करते हैं जिनमें व्यक्ति विकसित होता है।¹

व्यक्ति के गुण, जो मन्थना की सर्वम अविक्रि प्रिय हान हैं स्वयं संस्थाओं के परम्परागत ज्ञान में पाए जाते हैं। जो व्यक्ति इन गुणों का जल्दी तथा सफलता में सीख सकता है वह संस्था में वन्द अमरुतार या प्रतिष्ठित हो जाता है। संस्थाओं के प्रतिमान उनके सदस्यों के व्यक्तियों में वन्दित होते रहते हैं। अपनी अनुपम वसागत विशेषताओं के कारण हर व्यक्ति अनुपम या अनाला जाता है किन्तु इसकी अपूर्वता हम कारण में होती है कि वह संस्थाओं के दबाव का भी अपूर्व रानि से सहता है। एक ही परिवार के भिन्न सदस्यों के तिन उनका वातावरण भिन्न भिन्न होता है। विद्यालय मन्दिर या मसजिद राज्य और बाकी संस्थाओं का हर व्यक्ति पर समान दबाव या सपान नहीं पड़ता कुछ पर ज्यादा और कुछ पर कम। हाँ माध्यम प्रतिमान अवश्य समान होते हैं। इसी अर्थ में हम राष्ट्रीय चरित्र या राष्ट्रीय व्यक्तियों के कह सकते हैं किन्तु किसी एक राज्य में हर व्यक्ति अपने सामाजिक पर्यावरण में संस्थाओं के नियंत्रण के माध्यमों प्रतिमानों का सहता है। सभी भारतवर्षी कुछ संस्थाओं तथा संस्कृति के प्रभावों में रहते हैं और इसी तिन सभी एकसं मूल्या में वन्द न मानते हैं और महत्त्वपूर्ण मामलों (विषयों) पर उनका अपना माध्यमों दृष्टि कोण होता है।

अर्थ स्पष्ट हो गया होगा कि व्यक्ति एक समाज के मन्थनित प्रतिमानों के वन्द आधिक उत्सति है। सभी संस्थाओं का मित्राकार प्रभाव व्यक्ति के निर्माण में सर्वम महत्त्वपूर्ण कारक होता है किन्तु व्यक्ति पर कुछ एक अतीव्यविक्रि तन्त्र अ-मन्थनित प्रभाव भी पड़ते हैं जिनमें मन्थन का सम्बन्ध नहीं किया जा सकता। बड़े हाथ हुए वन्द पर विद्यालय या किन्तु टापी में तन्त्रा आयु मन्थन के नियंत्रण तथा सीमा का अर्थ पड़ता है। किन्तु का काम-सम्बन्धी ज्ञान परिकार या मन्थन

1 Merrill & Eldredge Culture and Society p 380

न मिलकर अपना आयु समूह में ही मिलना है। किशोर अपराधियों के रूप तथा आदतों जैसे प्रभाषा की उपज हान है जो आधारभूत रूप से अमस्थानिक होते हैं।

संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य समाज के समस्या के यत्नित्व का विकसित और उत्तम करना है। पर जिन संस्था में अवांछित स्थिरता आ जाती है जिन वह समय के पीछे चलती है तो यत्नित्व के स्वस्थ और प्रौढ़ विकास में बाधा डालता है।

संस्थाएँ तथा सामाजिक विरासत

संस्थाएँ सामाजिक विरासत का संरक्षित रखती हैं और उसका संचरण करती हैं। उन्हीं के द्वारा सामाजिक विरासत में निरन्तरता बनी रहता है। परम्पराएँ कानून, कला और ज्ञान विज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी चला करती हैं। हर पीढ़ी की उप-निधियाँ या कर्तव्यों का संस्थाएँ कायम रखती हैं। एक समाज के सभी व्यक्ति साधक भी नहीं मरते। जाँचि रहने वाले व्यक्ति संस्थाओं के विचार और रचनाओं का अपना यत्नित्व द्वारा बनाए रखते हैं। हमारे समाज के सामूहिक पारिवारिक प्रतिमान का अमरता भी प्राप्त है किन्तु व्यक्तिगत परिवार अभी तक कायम रहता है जब तक उसका सदस्य जाँचि है। आधारभूत संस्थाओं में परिवर्तन की प्रक्रिया समय तथा संस्था के अनुसार धीमी या तेज हो सकती है। लेकिन कोई आधारभूत संस्थानिक प्रतिमान तब तक नाट नहीं हाता जब तक कि सारा समाज ही न मर जाय।

समाज का प्राथमिक तथा अनक काय करने वाली संस्था परिवार है। सबसे पहले यहाँ अपने सदस्यों के यत्नित्व द्वारा सामाजिक विरासत के तत्वों को अपनाती है और उन्हें दूसरे व्यक्तियों को हस्तांतरित करती है। दूसरी संस्थाएँ सामाजिक विरासत के संरक्षण में अधिक विशेषांकृत भूमिका अदा करती हैं। विद्यालय का यह विशेष काय है। शिक्षक पहले तो अपने यत्नित्व में सामाजिक विरासत का एक विशिष्ट भाग समाहित कर लेता है और फिर उसी का शिष्या या विद्यार्थियों के यत्नित्व में समाविष्ट करता है। यद्यपि प्रारम्भिक पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालय तक सामाजिक विरासत का संचरण करने के लिये अनक तरीकों का अपनाया जा चुका है किन्तु फिर भी सामाजिक विरासत के हस्तांतरण में शिक्षक का सबसे महत्वपूर्ण योग रहता है। परिवार के बाद स्कूल का महत्व है जो संस्कृति की चतुराई, ज्ञान तथा प्रविधि का रक्षा और हस्तांतरण में सलग्न है।

यद्यपि आधुनिक युग में धार्मिक संस्थाओं के पास से विश्वास के काम निकल गया है क्योंकि विश्वास को धर्म निरूपण बना लिया गया है फिर भी धार्मिक विश्वास भी इसी संस्थाओं द्वारा दी जाता है। धार्मिक विरासत को भौतिक वर्णन अध्यायन अथवा उपरान्त द्वारा ये संस्थाएँ आज भी हस्तांतरित तथा रक्षित कर रही हैं। समाज की भाषा साहित्य, कला, ज्ञान विज्ञान तथा अन्य तत्वों का संचरण

समस्याओं द्वारा जाना है। य मनाज की व्यवस्था तथा स्यायिच प्रदान कर मन्वृति तथा मन्वृता की उत्पत्ति और सामाजिक प्रगति सम्भव बनानी है।

समस्याएँ सामाजिक विरामत का सरलण अवश्य बानी हैं किन्तु इसमें यह न मान लेना चाहिये कि इसमें किसी प्रकार का मन्वाजन ही नहीं जाना। हर एक पानी सामाजिक विरामत का उसके मूल रूप में—बिना किसी मन्वाजन या परिवर्तन के—संचरित कर देनी है। एनी धारणा उचित है। समस्याएँ व्यक्तित्वों व जटिल सामाजिक विरामत का हस्तान्तरण करनी हैं और य व्यक्तित्व हमारा अनुपम हात हैं। काइ न प्रारम्भो हमारा एक स गरी हात। उनक विचारों तथा मान तथा धारणाओं में भिन्नता होनी है। सामाजिक विरामत के किसी भी तन्त्र का उच्च कोई व्यक्ति अपनाया ता उसमें अपने व्यक्तित्व की कृद्ध प्रसिद्धि प्राप्त लगा देगा। इसी तरह हर मन्वा व सन्व्य अपनी भूमिकाओं का अपने टग स अदा करत हैं। इसका अनि-वाय परिणाम यह जाना है कि संचरण की प्रक्रिया में हमारा सामाजिक विरामत मन्वायित होनी रहनी है। भाषा का लीजिये। जिम तरह मैं आप इस समय में हैं तथा प्रयाग करत हैं उनी तरह मैं दूसरा व्यक्ति न ता इस वाक्या और न प्रयाग करगा। उनका व्यक्तित्व का प्रभाव इस पर बिना पठे रह ही नहीं सकता।

समस्याएँ तथा सामाजिक नियंत्रण

सामाजिक नियंत्रण की सबसे महत्वपूर्ण एजन्सी मन्वाएँ हैं। सामाजिक नियंत्रण का प्रक्रिया में समस्याओं का केन्द्रीय कार्य जाना है। नैतिक शिक्षा का सबसे बड़ा मन्वा मन्वाओं के व्यवहार-प्रतिमानों में जाना है। युवा ज्ञान तक व्यक्ति पर उनका असर बहन जल्दी और स्यायी पटना है। परिवार विद्यालय घर राज्य और आधिक मन्वाओं स्थितियों की मन्वा-सृष्टि परिभाषाओं द्वारा व्यक्ति का अच्छ-बु-उचित अनुचित या उपयोगी अनुपयोगी आचरण में प्रेरित किया करती हैं। जननीयता स्थितियों कायून तथा सामाजिक नियंत्रण के दूसरे प्रतिमानों का सामू-हिक सन्वाओं द्वारा प्रेरित किया जाता है। य मन्वय स्वभाव में अमन्वयनिक होते हैं। किन्तु ज्ञान के मौनिक विषयों में सम्बन्धित सबसे अधिक नियंत्रणों का संचरण सामाजिक समस्याओं व द्वारा जाना है।

सामाजिक समस्याओं का आवश्यक स्वभाव आन्वयन (normative) है। इनमें बहन में मूल सामाजिक आन्वयन या मानक (norms) शामिल रहते हैं जिनके आधार पर व्यक्ति के आचरण का निर्णय किया जाता है। उन ज्ञान या प्रज्ञा का पात्र टूटता जाना है। व्यक्ति का ज्ञान या प्रज्ञा का पात्र उन्नतनी तथा टूटता जाना। किसी मन्वा के मन्वय ज्ञान के नाश जा उसमें अज्ञान की जानी है उनी में नैतिक आन्वयन व तब मौजूद रहते हैं और व्यक्ति बिना विरामत व इन विषयों का संचरण करगा है। मन्वा व केन्द्रीय कार्य के आन्वयन व अन्-

क्षाएँ आकर जमा हो जाती हैं और इसलिए सस्था से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखन वाली क्रियाया में बढ़ना से स्वन सबल मूल्य निगया का लगाव रहता है। परिवार के सम्प्या की भूमिकाया में ठीक और गलत के सशक्त मानक और सवेग निहिन रहते हैं। मां बाप पति पत्नी और नाइ बहिन आदि के त्रिए निर्निष्ट व्यवहार हैं। वे इन भूमिकाया में काम करने वाला को नियन्त्रण में रखते हैं। उनके आचरण पर समाज सकारात्मक या नकारात्मक सम्मान देता है। इसी साधारण रीति से हर सस्था सामाजिक प्रनिमाना के बहुत बडे और चलि भुण का केन्द्र होनी है।

रखा तथा व्यवहार की परिभाषा और सशाधन पर निभर रहते हुए मामाजिक नियन्त्रणा के दो साधारण रूप बनाए जाते हैं। इन्ह अनौपचारिक, औपचारिक प्राथमिकता तथा द्वितीयक अथवा आतरिक और बाह्य कहा गया है। औपचारिक नियन्त्रण परिवार या दूसरी प्राथमिक सस्थाया के सम्बन्धों में पाय जाते हैं। मन्दिर या अन्य धार्मिक सस्थाया द्वारा इसा प्रकार का नियन्त्रण किया जाता है। ननिक अनतिक पाप-पुण्य अरुजा-बुरा पवित्र अपवित्र आदि क विचार धम में शामिल रहते हैं और इनको व्यक्ति शुरू से ही अपन विवेक के रूप में विकसित कर लेना है। औपचारिक या विधिवत नियन्त्रणा का उदाहरण राज्य द्वारा प्रचलित कानून होते हैं। इन कानूना का आचार परम्पराए प्रथाए जनरीतिया या रुढियाँ ही हाने ह जा विधिवत् रूप में समाज की व्यवस्था या उन्नति के लिए अत्यावश्यक समझे जाते हैं। आर्थिक कारपोरेशन कम्पनियाँ तथा राजनतिक दल और सासृतिक तथा कानूना सस्थाए अधिकतर विधिवत् नियन्त्रण पर अधिक भरोसा करती हैं।

शिक्षा सस्थाया के कायने कानून विधिवत् नियन्त्रण का एक प्रमुख नमूना है। इसी तरह व्यावसायिक समूहा जैसे डाक्टरा, इजानियरो प्रोफ़ेसरा बकीला में व्यावसायिक आचरण के नियन्त्रण के लिए कायने कानून बने होन हैं किन्तु इन सस्थाया में विधिवत नियन्त्रणा के अतिरिक्त अनौपचारिक परम्पराया का भी अधिक महत्व हाता है।

सस्थाएँ और सामाजिक परिवर्तन

किसी सस्थाएँ व्यवहार क प्रतिमानित रूप होने हैं इसलिए व्यवहार की अपथा सामाजिक परिवर्तन में अधिक र्कावट डालता हैं। सस्थाया का व्यवहार समाज की मजूरी प्राप्त किए हाता है और तदनुस्य उमनी सस्थाएँ भी होनी हैं इसलिए साधारण व्यवहार की अपथा ऐसा व्यवहार परिवर्तन क भाग में जल्दी आ खना हाता है। शिक्षा की पाशाका में अन त विनियता हाती है और बडी जल्दी जल्दी बन्ना करनी है किन्तु विवाह क पूव लडका तथा लडकीया क योन व्यवहार परिवार तथा धम द्वारा बहुत कठारता से नियन्त्रित हाते हैं। आर्थिक धन में भी जा त्रियाए सस्थाया में बन्ना जानी हैं जम अधिकोपला उनमें परिवर्तन बन्ना धीरे धार हाता है और जा त्रियाए सस्था का रूप नहा से पाती जने बस्त्र का उत्पान तथा

म जनपान के सामान और मनोरंजन के साधन। इनमें आए दिन तजी से परिवर्तन होत रहत हैं। इसी तरह, उद्योग में भी जा क्रियाएँ सम्पन्नित हो चुकी हैं उनका प्रति समाज का कुछ विचित्र लवाक हो जाता है। फलतः उनमें परिवर्तन बन घोर गीर होता है। हमारा देश में वर्तमान शिक्षा प्रणाली सम्पन्नित हो चुकी है इसीलिए उमर परिवर्तन या समाज में बहुत धीमी गति में होत है। यही बात, राजनितिक धार्मिक आदि सम्स्याओं के बारे में सत्य है। समाज की प्रधान सम्स्याएँ सम्पन्नित न हो रहीं हैं। उनका गठित करने वाला जनगीनिया एक सम्पन्नित म अन्तर् मीतिक परिवर्तन होत है किन्तु उनमें आशय या मीतिक तत्त्व शिबुन नहीं बनत। सामाजिक सम्स्याओं की प्रवृत्ति या स्थितिगतता या सरभगामक होती है। अनीन के प्रतिमानित प्रवहार को वे प्रयत्नपूर्वक अपनाए रहता है और उमर मीतिक समाज का प्रतिराय करती हैं।¹ ये इतिहास की मन्दा सम्पन्नितता में पति हैं।²

सामाजिक सम्स्याओं की जन्म समाज में होता है। पर वह नहीं बता जा सकता कि भविष्य के समाज में भी इनका जड़ें गयी रहगा या नहीं। हम समाज का परिवार, हम सरकार तथा धार्मिक व्यवहार का सम्पन्नित की आशयकता रहती है किन्तु यह जल्दी नहीं कि इनका बाद रूप अपने उपादेयता के हीने पर ही कायम रहे। जब इन सम्स्याओं में स किमा के एक रूप से सामाजिक प्रगति नहीं होती तो उमरों अचानक ही समाप्त कर लिया जाता है। फ्रांसीसी प्राति ने पाप के राजनितिक अधिकारों का हमारा के लिए खम कर दिया। इसी तरह हमारे विप्लव में विशिष्ट प्रकार की राजनितिक सम्स्याएँ—जो आरम्भ में बनपी थी—समाज के लिए मृत्यु का ग्राम बन गई। अन्त में यह निष्कर्ष निकलता है कि जो सम्स्याएँ या उनमें विशिष्ट रूप अपने उद्देश्य का पूरा करने में अक्षम होती हैं जल्दी या देर में कायम गान में जानी जा पड़ेगा। यूरोप में सामन्तवाद बन पहल खम ही चुका था। भारत में अभी हाल में इस सम्स्या का समीक्षा के साथ सामना किया गया है।

समाज में विप्लव या प्रातिगत परिवर्तन के प्रति सम्स्याओं की प्रतिक्रिया बड़ा अतिरिक्त होती है। सम्स्या का जीवन तथा उनमें सम्पन्नित और अधिकारिया के हिन तो सम्स्या की यथास्थिति बनाए रखत में ही सुरक्षित रहते हैं। इसीलिए अधिकारों तथा सम्पन्नित दाता ही एक किन्हीं सामान्य का खून कर विराय करते हैं जो उनकी सम्स्या के लिए धारक हो। यह विराय तब पर आनित रहता है। गतन या मही ये सम्स्या के अन्तिम का यथास्थिति बनाए रखत के लिए हजारा

1 Ibid p 189

2 Institutions have been called 'fossil' for their conservatism for a history of J O H Stizler *Social Institutions and Change* (1945) pp 47-48 Social changes usually produce only minor modifications or disturbances among man's persistent institutions.

तक दते हैं तथा गुप्त और प्रकट दानों के रूप में आन्दोलन की जड़ काटने का प्रयत्न करते रहते हैं। इस तरह, सामाजिक संस्थाएँ समाज में परिवर्तन की प्रतिरोधी शक्त हैं।

तक पर आधारीत विरोध से भी अधिक महत्वपूर्ण संस्थाओं की अविचारयुक्त वृद्धिवादिता होती है। सामाजिक परिवर्तन के प्रति यह प्रतिनिध्या संस्थाओं की प्रवृत्ति प्रकट करती है। समाज की मूल संस्थाओं में जब कभी परिवर्तन करने का प्रस्ताव रखा जाता है तो इन संस्थाओं के संस्थापक इस प्रस्ताव का डटकर विरोध करते हैं। उन्हें भय होता है कि परिवर्तन उनको अस्तित्व को खत्म कर देगा। जिस संस्था में व्यक्ति रहता है उसका डरना कि वह उचित या ठीक समझा जाता है। क्योंकि संस्थाएँ अपने संस्थाओं को विश्वास और व्यवहार का प्रतिस्थापित प्रतिमान प्रदान करती हैं। इन्हीं कारणों से संस्थाएँ एक शक्ति का वाहक होती हैं।

सभी संस्थाएँ समाज में परिवर्तन का समान विरोध नहीं करती। उनमें स्थिति-परिवर्तन की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। धर्म-साधक (non secular) संस्थाओं जैसे परिवार, विद्यालय, मठ या गिरजा में सनातनी प्रवृत्ति की मात्रा बहुत अधिक होती है इसलिए सामाजिक परिवर्तन का कड़ा विरोध भी पहले यहीं करती हैं। धर्म-निर्गम संस्थाओं में जैसे सामाजिक कल्याण, व्यापार तथा मनोरंजन परम्परागत पवित्रता बहुत कम होती है इसलिए यहाँ तो अधिक वृद्धिवादी शक्तें हैं और न समाज में परिवर्तन की विरोधी होती हैं। आधुनिक विचारों से समाज में धर्म-निर्गम संस्थाओं की प्रवृत्ति होती है इसलिए इन समाजों में परिवर्तन की गति बहुत तीव्र होती है।

संस्थाएँ और समितिधियाँ

सामाजिक व्यवस्था के विशिष्ट हिस्सों की संतुष्टि के लिए स्थापित मनुष्य के समूहों को समितियाँ या मध्य (associations) कहते हैं। परिवार सबसे प्रारम्भिक और महत्वपूर्ण समिति है। इसी प्रकार राज्य एक राजनतिक समिति है। बीमा कम्पनी धर्म-व्यवस्था संयुक्त मध्य-कम्पनी श्रमिक या सेवा-योजक संघ आर्थिक समितिधियाँ के उदाहरण हैं। डकन एज्युकेशन सोसाइटी, ग्राम-समाज अखिल भारतीय विधान परिषद, न्याय-संरक्षण, धार्मिक एवं पान-विनाश सम्बन्धी समितियाँ हैं। माराण यह है कि समितियाँ 'आज समाज' संघ' या परिषद किसी भी नाम से हो कुछ विशिष्ट हिस्सों की संतुष्टि के लिए निर्मित मानव-संगठन हैं। ये संगठन अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए काम-प्रणाली का जो रूप या ढंग अपनाते हैं वह कालांतर में सर्वोत्तम ढंग पर प्रतिष्ठित हो जाता है। वाय-प्रणाली के स्थापित रूपों या ढंगों का संस्थाएँ कहते हैं। व्यक्तियों तथा समूहों के बीच के सम्बन्धों को परिभाषित करना इनका मुख्य कार्य है। इसीलिए एलवुड (Ellwood) ने संस्थाओं को वाय-वायु रहने के एक आन्तक ढंग कहा है जो स्वीकृत हो व्यवस्थित हो तथा उन्हें

समुदाय की सहायता स्थापित किया है।¹ यद्यपि काम-काज करने के लिये समाजिक संगठन या व्यवस्थापक का सम्बन्ध कहना चाहिए।

इस प्रकार समाज और समिति में स्पष्ट भेद है। प्रत्येक समिति किसी उद्देश्य अथवा उद्देश्य का पूर्ति के लिए स्थापित होती है। समाजों इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये हैं। समितियाँ और समुदायों में भिन्न-भिन्न सामाजिक जीवन बनता है। उनका समर्थन समाज कहेंगे या समाज कहेंगे कि जीवन और प्रिया-नीति में भिन्न है। समाज में समिति का मूल लक्ष्य है और काम करने के लिये हमारा समर्थन और प्रिया-नीति का द्वारा जाना है। यद्यपि समाजों और समितियों का मुख्य मूल्य भिन्न-भिन्न है किन्तु समाज सामाजिक जीवन के मूल्य के लिये समिति का परस्पर सम्बन्ध है। समाज स्वाभाविक प्रथा अथवा सामाजिक परम्परा का वह रूप है जो समितियों के सम्बन्ध के व्यवहार में व्यक्त होता है। समाज समितियों में सहायता हाँ उठती है। जिसमें न भया है, समितियों में भी सम्बन्ध है और सामाजिक अथवा विभिन्न संगठन का पूर्ण के निमित्त साथ साथ काम करने वाले व्यक्तियों का संगठन है। समाजों का उन व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध के प्रकार तथा सम्बन्ध व्यक्तियों में प्रचलित परम्परिक प्रिया-प्रतिक्रिया के समर्थन द्वारा स्वीकृत रूप मानना अथवा उचित जाना।² समितियों का भौतिक सम्बन्ध भी किसी उद्देश्य का पूर्ण के लिये होता है। इन समाजों इच्छाओं के लिये स्थान, साकार उद्देश्य तथा व्यक्तियों के स्वनिर्धारित उद्देश्यों के बाह्य रूप बनती जाती हैं।³ व्यक्तियों का हाथ के कारण समाज एक आन्तरिक सामाजिक संगठन का निर्माण करती हैं। समाज सम्बन्ध में घातक बात व्यक्तियों पर प्रतिक्रिया होती है। वे समुदायों के उद्देश्यों की पूर्ण मात्रा करती, वे इन उद्देश्यों के निर्धारण के साधन भी हैं। इसलिए समाज सामाजिक जीवन का प्रतिबिम्बित तथा व्यक्त करती हैं और उन प्रयास रूप में मूल करती हैं।⁴

समाज मूलतः एक विचार है जो सामाजिक व्यवहार के लिये पक्ष में साकार रूप में व्यक्त होता है। यह कोई बाह्य बस्तु नहीं है। यह बस्तुओं से सम्बन्धित होती है किन्तु उनका साथ एकत्र नहीं हो जाती। मूलतः, पाश्चिमी प्रतीक आदि समाज के बचन इन प्रकार हैं।

इस विवेचन का कारण यह है कि एक समाज धारणा और व्यवहार के प्रतिमानों का एक संगठन है और उनका व्यक्तित्व सामाजिक प्रिया-और-उत्पत्ती पाश्चिमी उदात्तियों से होता है। सामाजिकों की व्यवस्थाओं एवं प्रिया के द्वारा समाज में बचन समाज अथवा प्रचलित और स्वीकृत रहने पर प्रतिबिम्बित हो जाना है। सामा

1 Quoted by Barnes Social Institutions p. 30

2 M. Ginsberg Psychology of Society p. 122

3 Ibid p. 123

4 M. G. Mead Community pp. 158-59

जिक चलना के इस अपेक्षाकृत स्याया पुन को सस्था कहते हैं। हर सस्था अपनी सांस्कृतिक मज्जा होती है जिसमें उपयोगी सामूहिक पदार्थ जैसे इमारतें, उपकरण यंत्र आदि शामिल होते हैं। इनका उपयोग सस्था के प्रयाजन की सफलता के लिए होता है। इस प्रकार सस्था व कुछ पार्थिव एवं अपार्थिव प्रतीक होते हैं जैसे भारतीय नरकार का प्रतीक अश्वत्थ सिंह। इनके अनिश्चित, प्रिस्ल, इमारतें, वस्तु या जीव व चित्र या नार सस्था व प्रतीक हो सकते हैं। य सस्था व परिचय चिह्न हैं।

आधुनिक समय समाजा में विनाप हित मण्डना या समितियाँ भी भरमार है। चार आधारभूत आवश्यकताओं के समाधान के लिए परिवार अथवा व्यवस्था धर्म और राज्य का जो चार प्रधान सामाजिक संस्थाएँ हैं उनमें प्रत्येक के साथ इनके समितियाँ का साथ है। फिर प्रत्येक सामाजिक वर्ग की अपनी विशेष समितियाँ होती हैं। लिंग आयु व्यवसाय आदि के स्तर पर भी अनेकानेक समितियाँ होती हैं। इस प्रकार एक समय देग में समितियाँ व प्रकारों और उप प्रकारों को गणना करना बड़ा कठिन कार्य है। अनेक प्रिस्ल बम्बई अथवा कलकत्ता नगर में हजारों की तादात्त में समितियाँ हागी।

संस्थाओं की अपेक्षा समितियाँ कम संख्यापी और अधिक विशेषीकृत होती हैं। कुछ आधुनिक पठनाला से विदित हुआ है धनी वर्गों में समय और धन की प्रचुरता के कारण साधारणतया अधिक समितियाँ होती हैं और यह भी विदित हुआ कि साधारणतया अधिक विशेषीकृत समितियाँ की संख्या नगरों में अधिक केन्द्रित होती है।¹

समितियाँ का प्रधान संस्थाओं से बढुधा घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। परन्तु यह महत्सम्बन्ध सब एक प्रकार का नहीं रहता। कुछ मामलों में ज्यादा प्रमाण संस्था जटिलतर होती जाती है तथा-तथा उसका कृत्यों का विभिन्न समितियाँ अपनाती जाती हैं। इन समितियाँ जो प्रधान संस्थाओं का परिपापक सेवा एजेंसियाँ बहा जा सकता है। समितियाँ और संस्थाओं का पारस्परिक सम्बन्ध बढा घनिष्ठ और विविध प्रकार का होता है। इस खण्ड के शेष अध्यायों में हम प्रधान संस्थाओं तथा समितियों के महत्सम्बन्ध के विभिन्न तरीकों की मददस्तर विवेचना करेंगे।

संस्थाएँ एसी रीतियाँ हैं जिन्हें मनुष्यों के समूह इन्तैमाल करते हैं। जीवन में संस्थाओं और उन्हें प्रयोग करने वाली समितियों को पृथक् नहीं किया जा सकता। अतः सामाजिक वास्तविकता की जांच पड़ताल करने पर मानव संस्थाओं तथा मानव समूहों दोनों का विचाराधीन रखना पड़ता है।²

1 Ogburn & Nimkoff *op cit* pp 37-73

2 This investigation of social reality always includes reference to both human institutions and human groups. Maclver & Page *Societies* p 17. Also consult Hamilton's article 'Institutions in the *Encyclopaedia of Social Sciences*'

सस्यायों का अध्ययन के तीन तराक (approaches) हो सकत हैं—(१) ऐतिहासिक (२) तुलनात्मक (३) कृत्यात्मक अतः सम्बन्ध (functional inter-relationships) । सस्यायों की उत्पत्ति अर विकाम का अध्ययन ऐतिहासिक है । जब किशा एक सस्या विवाह या सम्पत्ति आदि का अध्ययन एत ही समान क विभिन्न स्तरों अथवा विभिन्न समाना या एक ही समान क विभिन्न कालों में किया जाए ता एत प्रणाली का तुलनात्मक कहत हैं । किन्तु जब सस्यायों का अध्ययन करने क लिए उनका समान य अतः सम्बन्ध मानुम कर्त ह ता यह प्रणाली कृत्यात्मक अतः सम्बन्ध का हती ह । इन तीसरी प्रणाली में प्रायः उपरोक्त दोनों प्रणालियों का प्रयोग ना होता है । अतः तीन अध्यायों में हम कृत्यात्मक अतः सम्बन्ध की प्रणाली का ही अन्वेषणें ।

परिवार की प्रवृत्ति

सभी आधुनिक और आदिम समाजों में पारिवारिक संगठन मिलता है। मनुष्य के जिस प्राचीनतम समाज का कुछ भागान हम हैं उस परिवार की संस्था विद्यमान होने का स्पष्ट साक्ष्य मिलता है। अतः परिवार सदस्य से और सबन रहा है। इस सभी मन्थाओं में सावभौमिक और सबसे अधिक भूलभूत कहा जा सकता है। परिवार मनुष्य के लिए सबसे अधिक प्राथमिक समूह है। परिवार में जन्म लेकर उससे मृत्युपर्यन्त मनुष्य किसी न किसी रूप में सम्बन्धित रहता है। उसकी आचारभूत आवश्यकताओं—भाजन यौन आश्रय, और सुरक्षा—की पूर्ति अधिकांशतः परिवार में ही होती है। हमारे व्यक्तित्व का विकास परिवार में प्रारम्भ होकर यही अधिकांश भाग में होता है। हम समाज के सदस्य बनकर सफल जीवन निर्वाह का गुरु परिवार में ही मिलता है। मनुष्य और समाज के अस्तित्व एवं विकास के लिए परिवार का यही अनिवाय समूह न भी माना जाए तो इस अध अनिवाय समूह तो मानना ही चाहिए। क्योंकि लगभग २० वर्ष तक परिवार यति के लिए एक अनिवाय समूह है। वयस्क हान पर ही वह इस त्याग कर दूसरे परिवार का सदस्य हो सकता है या परिवार के बिना पूर्ण स्वतंत्र रह सकता है।

सभी प्रधान मन्थाओं में अनेके पारिवारिक संस्था का अनुप्रयोजन अधवा बहुवायकारी वह सकता है। प्राचीन समाज में परिवारिक अनन्य कार्य के विस्तृत ध्यान से कई कार्य दूसरे विविष्ट मन्थाओं में धरना लिए हैं। फिर भी आधुनिक परिवार के तीन चार प्रमुख कार्य हैं और कुछ समकालीन वृत्तिप्रधान दश में परिवार धार भी प्रधान सामाजिक संस्था है। यह सामाजिक नियंत्रण शिक्षा, धर्म का और अनेक प्रधान मन्थानों का कार्य कर रहा है। कवन अध्यापक औद्योगिक नगरीय समाजों में परिवार के धनक परम्परागत कार्य सावजनिक और निजा एवं राजनीय तथा व्यापारिक समाज के लिए संस्थाओं में धरना लिए हैं।

परिभाषा

परिवार पर्याप्त निश्चित एवं स्थिर यौन सम्बन्ध द्वारा नियत एवं समूह है जिसका मुख्य उद्देश्य सन्तान की उत्पत्ति और तालन-पालन है। इस समूह में सम्पाक्षिक (collateral) श्रवण गण सम्बन्धी भी शामिल हो सकते हैं। शिशु यह विशेष मान्य पति-पत्नी और उनके बच्चा से निर्मित होता है।¹

जनगणना में परिवार का अर्थ दो या अधिक व्यक्तियों के एक समूह से है जो साथ-साथ रहते हैं तथा जिनका परस्पर सम्बन्ध दृढ विवाह अथवा गान्धर्व संस्कार के द्वारा स्थापित है।²

परिवार के कार्यों का देयत हुए इसकी परिभाषा या की जा सकती है परिवार माता-पिता और सन्तान की एक ऐसी स्थायी समिति है जिसके प्राथमिक कार्य शिशु का समाजीकरण और सन्तान की अभिमान एवं अनुश्रिता की इच्छाओं की सन्तुष्टि है।³ यह परिभाषा उन कार्यों पर बल देती है जो अब भी परिवार स्पष्टतया कर रहा है और हर सम्भावना में कभी भी उसमें अलग नहीं हो सकेंगे। हमारे विचार से परिवार की उपरान्त परिभाषा में उसके दाना पन्ना—संस्थागत (institutional) एवं महात्मक (associational)—पर बल दिया गया है।

साधारणतया एक परिवार के सदस्य पति-पत्नी, इनमें से किसी एक या दोनों के बच्चे निकट सम्बन्धी (माता-पिता भाई-बहन आदि) तथा इस दम्पति से उत्पन्न सन्तान होते हैं। परिवार का उच्चतम स्तर पति-पत्नी तथा उनकी सन्तान होता है। सन्तानहीन दम्पति का भी परिवार कहा जाता है। प्रत्येक परिवार के मौखिक सन्ध्या (पति-पत्नी) का सम्बन्ध विग्रह संस्कार में स्थापित होता है। इनका सन्तान बन्धन हीन पर विवाह करती है और फिर नए परिवार बनाती है।

परिवार की साधारण विशेषताएँ

हमारे समाज के मानव समाजों में परिवार का सर्वोच्च नियत है। उनकी वृद्ध सामाजिक विभाषनाएँ हैं जिनमें वे अघातिरित पाँच मन्त्रवृत्त हैं —

(१) न्यो पुत्र्य का मन्त्रव्यय या स्थायी यौन-सम्बन्ध

(२) विवाह का एक रूप अथवा वास्तविक सम्बन्ध प्रबन्ध नियत यौन सम्बन्ध स्थापित या तथा वाधम रह सक।

1 M. L. Her and Pa. e Societ. p. 231

2 The family may be defined as a group of two or more persons living together and related by blood, marriage or adoption

3 Family is a social organization of parents (or parents) and offspring whose primary functions are the socialization of the child and the satisfaction of the members' needs for recognition and response
Trotter & M. Hill's Family in American Culture Prentice Hall Inc. New York (1947) p. 15

(३) वच्चा की उत्पत्ति और लालन पालन से सम्बन्धित आर्थिक आवश्यकताओं का पूर्ति के लिए कोई आर्थिक व्यवस्था

(४) नामकरण की व्यवस्था जिसमें बग़ावली और वंश के नामकरण शामिल हैं, और

(५) एक सामान्य वासस्थान अथवा घर ।

यद्यपि ये पात्र दशाएँ हर समाज के परिवार में पाई जाती हैं फिर भी विभिन्न संस्कृतियों के कारण विशिष्ट पारिवारिक संगठनात्मक अत्यधिक विविधता दृष्टिगोचर होती है। भिन्न भिन्न समाजों और एक ही समाज में विभिन्न समयों पर परिवार में अनन्यरूपताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। परिवार की प्रणालियों में कुछ प्रमुख सांस्कृतिक अनन्यरूपताएँ इस प्रकार हैं —

(अ) दाम्पत्य सम्बन्ध के विभिन्न रूप—दाम्पत्य सम्बन्ध जीवनपर्यन्त अथवा अल्पकालिक हो सकता है। भारत में हिन्दू विवाह से आवद्ध दम्पति आजीवन जीवन साथी रहते हैं। सबसे अधिक प्रचलित विवाह का रूप एकविवाह (monogamy) है जिसमें एक पति के एक पत्नी होती है। यह कठोर या गौण यौन-सम्बन्धों में मनाशयित हो सकता है। परन्तु समाजों में बहुविवाह (polygamy) भी प्रचलित है। इसमें बहुपति (polyandry) में एक स्त्री के दो या अधिक पति हो सकते हैं। इसके विपरीत बहुपत्नीविवाह (polygyny) में एक पुरुष के दो या अधिक स्त्रियाँ हो सकती हैं। बहुधा एक समाज के अन्तर्गत ही विवाह के विभिन्न रूप विद्यमान होते हैं। भारत के आर्य और शत्रुघ्निक समुदायों में ये स्त्री प्रकार प्रचलित हैं। निम्न वर्गों में बहुपति विवाह सम्पन्न घरानों में एक विवाह तथा धनी वर्गों में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित है। मध्यप्रदेश के गाँवों के पट्टन के बट्टन के इ स्थियाँ (विवाहित) होती हैं। हिन्दुओं तथा मुसलमानों में भी बहुपत्नी परिवारों का कुछ सम्बन्ध है। भारत के आर्य गेच (नीलगिरी पहाड़ियाँ) कबीलों में मय भाइयों की एक पत्नी होती थी। इसीमें वृशमैन और आर्य लियों के कवायली लोग भी बहुपत्नी संस्था पुरुष के बहुपत्न और वधु की निशानी है। नादजीरिया के आर्य (Ibo) कबीलों में बहुपति संस्था स्त्री के महत्त्व और सम्मान की सूचक है। यदि कोई स्त्री अकेले पति की पत्नी है तो उस हौन समझा जाता है। नारायण यह है कि एक परिवार में पत्नियाँ तथा पतियों की संख्या में अन्तर मिलता है। हाँ उगमग सवत्र एकविवाह परिवार सबसे अधिक प्रचलित है। आधुनिक समाजों में तो इस आर्य स्वीकार कर लिया गया है।

(आ) जीवनसाथी का चुनाव—पश्चात् देशों में अन्त युवक या युवती को अपना जीवनसाथी चुनने में स्वतंत्र छान्द दिया जाता है। वे काटिंग (courtship) से अपना जीवनसाथी चुनते हैं। भारत, चीन और अन्त देशों में उरक या उरकी का जीवनसाथी उनका माता पिता अथवा अन्य बन्धु सम्बन्धों से चुनते

है। मित्रिम राज्य के लप्चा (Lepcha) कबोले में यह विश्वास प्रचलित है कि यदि किसी युवक युवती को शादी माना पिता तब करत हैं तो नव दम्पति जवानी में मर जात है। बच्चा पर चाचा या दादा की सहायता से गाँव या मुनिषा विवाह तब करना है। कदा विवाह अपहरण करके जाना है कही बधू भूय चुवानर द्वार कदा स्त्री के पिता के घर में काम करके। या तो व्यक्ति का धरत ममूह में ही गानी करत के अनुमति रहती है अथवा ममूह में बाहर करत की। पहर प्रकार का नियम अंत विवाह (endogamy) तथा दूमरे प्रकार का बहिर्विवाह कहलाता है। इस तरह दादा प्रकार के प्रतिभा वात विवाह के रूप पाए जात है। सिन्धु तिन तिन सम्बन्धिया के माय विवाह सम्बन्ध ही मरता है—या नया करत वात में समाजा में बचन अनकरूपता पाई जाता है। भारत में मान्य प्रकार तथा सतिह विवाह वर्जित है।

(६) नामकरण और उत्तराधिकार—कदा पुत्र्य परत से बच्चा का नाम और उत्तराधिकार मानत का चलन है और कदा स्त्री पक्ष में। पहर का पितृवगी उत्तराधिकार (patrilineal) और दूमरे का मातृवगी उत्तराधिकार पद्धति कदा जाना है। दादा पद्धतियाँ सपरत हूँ हैं और आज भी कुछ समाजा में दूतरा चलत है।

(६) परिवार-वृत्त (family circle) का रूप—कुछ दगा में पति पत्नी के सम्बन्धिया के साथ जाकर रहता है। इस प्रकार के निवास का मातृस्थानिक (matrilocal) कहत हैं और कुछ में पत्नी पति के माता पिता के घर आकर रहती है। इस निवास का पितृस्थानिक (patrilocal) कहत हैं। कुछ समाजों में उत्तराधिकार मिलत हैं जिनमें विवाह के पहर मातृ भरत पति पत्नी के सम्बन्धिया के साथ जाकर रहता है फिर दूमरे मातृ पत्नी पति के सम्बन्धिया के साथ जाकर रहती है। निवास स्थान में ही नहीं परिवार वृत्त की रचना में भी नया पया जाता है। रक्त-सम्बन्धिया (consanguineous) परिवार में परिवार-सम्बन्धी तब कटत में और सम्पति विचार पर रहत है। विवाह-सम्बन्धिया (conjugal) परिवार में सम्पति और उत्तराधिकार कटत में तथा अन्य सम्बन्धी विचार पर रहत हैं।¹

(७) दौत सम्बन्ध विषयक नियम—एक बार में भी अनक धारणाएँ हैं। हिन्दू समाज में पवित्रत धर्म स्त्रियाँ का धारण माना जाता है। दूमरे पुत्र्य की धारण धर्म नष्टाता भा पाप समझा जाता है। अमरीका और इंग्लैण्ड में पहर विवाह का धारण विवाह माना जाता है। सिन्धु सिन्धुवा और अमरीका तथा अंग्लैण्ड में विवाहिया स्त्रियाँ के साथ रहता के अनक उत्तराधिकार मिलत हैं। दौत-सम्बन्ध में पवित्रता की धारणा भा भिन्न भिन्न होती है। कुछ धार्मिक समाजा में (एश्वीमा धार्मिक) मातृ धरतिधिया मरत में अथवा स्त्री को धरतिधिया के साथ नया दत है। धरतियाँ में जब सदाका जवान जाना है तो बाद में धार्मिक उत्तराधिकार पति के साथ उत्तराधिकार करत

1 Ralph Linton *The Study of Man* New York (1936) p 146

जाता है। यदि पिता उस उपहार को स्वीकार कर ले तो वह पुत्र उस लड़की के साथ सभाग कर सकता है। यह सभाग सिर्फ घर पर नहीं होना चाहिए। पुत्र अपने साथियों को भी इस सभाग में शामिल कर सकता है। एक मास बाद इनका सम्बन्ध टूट जाता है। उमक बाद उस लड़की का विवाह किसी अन्य पुत्र से हो जाता है। भारत या अन्य आधुनिक देशों में विवाह के पूर्व कोई लड़की सभाग करने के लिए स्वतंत्र नहीं है। प्राचीन भारतवर्ष में भी यदि किसी स्त्री के सन्तान नहीं होती थी तो वह अपने पति की आज्ञा से अन्य किसी के साथ यौन सम्बन्ध कर सकती थी। महाभारत में एक घटना का वर्णन है। विचित्रवीर्य की अकाल मृत्यु के बाद शातनु का कुटुम्ब चलाने के लिए विचित्रवीर्य की विधवा नयास से पुनर्जन्माएँ थीं।

कई जातियाँ में सिर्फ विवाह से पूर्व लड़की को यौन-सम्बन्ध की स्वतंत्रता रहती है और कई में विवाह के बाद भी। इससे स्पष्ट हो गया होगा कि यद्यपि कुटुम्ब में एक महत्त्वपूर्ण कार्य यौन सम्बन्ध स्थापित और संचालित करना है फिर भी इस विषय पर प्रत्येक समाज की अलग-अलग धारणाएँ हैं।

(क) पितृत्व—पिता का सम्बन्ध सभी समाजों में जबकि ही माना जाता है साक्षात् नहीं है। टोडा (Toda) जाति में एक स्त्री के कई पति होते हैं। वहाँ बच्चे के पिता का निश्चय रीति-रिवाज या सस्कृति द्वारा होता है सहवास द्वारा नहीं। स्त्री के गभावान के आठवें मास में जो पुत्र उसको नीर और धनुष देता है वही हान् बाल बच्चे का पिता माना जाता है। इसी प्रकार यद्यपि बच्चे के लालन-पालन के लिए हर परिवार में एक आर्थिक व्यवस्था आवश्यक है परन्तु वहाँ बच्चा के पालन-पोषण का भार पिता पर, वहाँ माता और कहीं मामा पर। इसके अलावा, विभिन्न प्रकार के सामाजिक प्रवृत्तियों का विभिन्न मूलों में एक साथ पाया जाता है। परिवार में अतृप्त विविधता है और इसके कार्यों की सम्या तथा उनसे करने की विधि में भी अत्यधिक अनिश्चयता पाई जाती है।

परिवार की अन्तर्गत विशेषताएँ

समाज में छाने-बूढ़े धनक समूह या गमनियों हानी हैं। परिवार एक प्राथमिक समूह है। सम्पूर्ण सामाजिक जीवन पर इसका अनेक तरीकों में प्रभाव पड़ता है। परिवार में अमीर परिवर्तनशीलता है परन्तु फिर भी इसमें निरक्षर निरक्षरता एवं स्यायिक दृष्टिगात्र होते हैं। समाज में और पत्र के अनुसार परिवार अन्य गमनियों में कई चीजों में अन्तर्गत है।

(१) सावभौमिकता—सभी सामाजिक रूपों में यह सबसे अधिक मात्रा में भौमिक है। यह हर समाज और सामाजिक विकास की हर अवस्था में मनुष्य के साथ के जानवरों के समाजों में भी पाया जाता है। हर मनुष्य किसी न किसी परिवार का मन्स्य रहा है या है।

(२) सवेगात्मक आधार—परिवार का आधार हमारे सत्रमे गट्टरे स्याभा-
वक आवगा का एक जटिल है । इन आवगा म सहवास या योन-मन्व य सनानोत्पत्ति
गठु स्तह तथा पितृ मरक्षण शामिल हाने हैं । इन प्राथमिक मवगा क माय द्वितीयक
रग जम समाग प्रेम नस्ली गव, दम्पति म प्रेम घर का आर्थिक सुरक्षा की
गमना, व्यक्तिक सगति का र्थ्या तथा गारवतता की उत्कट इच्छा भी सबद ।

(३) निर्मायक प्रभाव—मनुष्य क जीवन पर कितन भी सामाजिक पया
ररणा का प्रभाव पडना है उनम परिवार का प्रभाव सबसे अधिक और सत्रन प्रथम
गडता है । विशेषकर परिवार यति की शारीरिक और मानसिक आदता का बनाता
है । परिवार का प्रभाव इतना दोगकालीन होना है कि व्यक्ति का व्यक्तिक जमा
पहो बन जाता है बना ही मारे जीवन भर रहता है ।

(४) सामित आकार—बू कि परिवार जबिक दशाद्या पर आधिन है अनिण
इसका आधार अय सामाजिक सघटना की अपमा हमशा सीमित हाता है । अग
उमका आधार सीमित न हा ता इसका अमित्व ही नष्ट हा जाए ।

(५) समाज सरचना मे फ़ोडोम (nuclear) स्थिति—दुसर सामाजिक
सघटना का यह कड है । सरत तथा पितृमत्तात्मक (patriarchal) ममाता म मारा
ममाज रचना पारिवारिक दशाद्या स बनी हानी है । सिफ उच्च जटिल मयताद्या
म परिवार इग कृय का वा गना है किन्तु म्याविक ममुताया तथा सामाजिक वर्गों
क भागा म परिवार का कडोय म्विति रहती है । स्थाविक ममुताय जल गाँव,
मुहल्ला या नगर छाज भा परिवार की इगदया म मितक बनत है ।

(६) सदश्यों का दायित्व—परिवार क सत्य जम भर इसक मय्य रूप
है । य उमी क निण काम करत और बमान ह । परिवार म ही नूनग क लिए
व्यक्ति कटित न कटित और सनगनाय काम करता है । यशवि आवद वात म
व्यक्ति ममाज और दग क निण दय्या और मरना है किन भी ममाज म अय कडि
मगठन अपन सदश्या पर सन गम्भीर दायित्व नहा जालता जिनन परिवार । सत्रन
मार्के की वात ता य है कि परिवार क मय्य गम्भार न गम्भार दायित्व ना मच्छा
ग निभात है ।

(७) सामाजिक नियमन—परिवार क विवाह मय्यय का ममाज निरया
(taboos) और वातूनी नियमा न बडा गावघानी म गुरगिण करता है । परिवार
का निमाग और नग हाता जाना ही प्रक्रियाए कठोर सामाजिक नियमा न गति
रगी है । ममाज म विदमान अय सत्री अनुनया का अय ग कवायिक अनुनय
मय्य पवित्र और कठोर माना जाता है । भाग्य और सुद अय प्रावान ममाता म
आन भी विवाह एक धार्मिक गयार (sacrament) कहा जाता है ।

(८) परिवार का स्थायी एव अस्थायी प्रकृति—एक मय्या का हैमिनन म
परिवार मय्य धर्मिक स्थाना एष सवध्याया मय्या है किन्तु एक समिति के रूप म यद

बहुन समस्याया है। एक ही समाज में समय के परिवर्तन से इसके आकार और संरचना में लगातार परिवर्तन होने रहते हैं।¹

परिवार एक सामाजिक संस्था

परिवार समस्त सामाजिक संस्थाओं में सबसे आधारभूत और प्राथमिक है। यद्यपि इस सामाजिक संस्था में पुरुषों के परिवर्तन से अत्यन्त विविधता होती है फिर भी इसमें कुछ सर्व-यापी विशेषताएँ हैं। यह बात दो तथ्यों के कारण है। प्रथम मनुष्य के अतिजावन की समस्या व्यक्तित्व विषय में होकर एक सामूहिक विषय है। वचन की दृष्टि से और मत्तानात्वन्ति के लिए यौन क्रिया पर सख्त और सख्त सावधानिक नियंत्रण रखा जाता है। द्वितीय मनुष्य की एक ही जाति है और उसकी शक्ति विलक्षणता के कारण उसके व्यवहार में विविधता कुछ अधिक सीमित रहता है।

सावधानिक नियंत्रण—सभी समाजों में कुछ यौन क्रियाओं का अनुमति दिया जाता है और कुछ का निषिद्ध। परन्तु विभिन्न समाजों में इस विषय में भारी विविधता पाई जाती है। प्रत्येक समाज में व्यक्त स्त्री-पुरुषों का सन्तानोत्पत्ति के लिए उत्तम माना जाता है। सारांश यह है कि प्रत्येक समाज में विवाह और परिवार की सम्बन्ध मिलता है।

विवाह एक अथवा अधिक पुरुषों का एक अथवा अधिक स्त्रियों के साथ मिलित और चिरस्थायी यौन संघ है जिनमें दाना निगा के व्यक्तियों के कुछ निश्चित अधिकार और कर्तव्य होते हैं।² पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध सावधानिक नियंत्रण से शांति रहता है यद्यपि नातदागी समूहों में कभी-कभी अथवा राज्य विभाग से पूर्व उनका कर्तव्य और अधिकारों का नियंत्रण करत है। परिवार किसी एक या अधिक व्यक्तियों की मृत्यु में विच्छिन्न नहीं होता। परन्तु विवाह का उद्देश्य कभी-कभी शीघ्रता से हो जाता है क्योंकि पति या पत्नी में से कोई एक मर जाता है विवाह मध्य भंग हो जाता है। विवाह तलाक अथवा परित्याग में भी भंग हो जाता है। सम्पत्ति के जीवन काल में ही स्त्री या पुरुष का तलाक करन की कुछ न कुछ व्यवस्था प्रत्येक समाज में रहती है। विवाह सभी दशाओं और कालों में एक सावधानिक सम्बन्ध—विवाह-सम्बन्ध—में सम्पन्न होता है। वरुण यह सम्बन्ध नती धूमधाम से सम्पन्न होता है। किन्तु कुछ समाजों में यह अत्यधिक सरल सम्बन्ध होता है। भारत में विवाह-सम्बन्ध सब मित कर एक सप्ताह से लेकर दो सप्ताह तक होता रहता है। हमारे यहाँ के मुख्य वैधानिक सम्बन्ध (पालिग्रहण) के आगे और पाँच घण्टे गैर-वैधानिक प्रमाण सम्पन्न होते हैं। परन्तु विवाह सम्बन्ध पत्नी के हार-हार अग्रणी, घाँस

1. MacIver & Page op cit pp 240-41

2. Marriage is a formal and durable sexual union of one or more men with one or more women within a set of designated rights and duties

का निरन्तर धार्मिक चर वधु म बन्धन कर भी सम्पन्न हो जाता है। इस सम्बन्ध के उपरान्त म नाचें गये धार्मिक शक्ति आदि इस्तेमाल किए जाते हैं कि मन्त्र (या मन्त्र) की स्वाध्यायि इस नए सभ्य (पति पत्नी का विवाह) का प्राप्त हो जाए। सम्भव विवाह जितना नावर्तनिक सम्बन्ध मनुष्य के जीवन म का होना नहीं होता। व्यक्ति के जीवन की वह पुनः घटी अतः उन्माद रूप धार धारण म मान प्राप्त होती है।

विवाह का मन्त्र चाहें सरल हो अथवा बड़े जितनी कम वाण्ट म मनाया जाय, उमका एक मात्र उद्देश्य नावर्तनिक सम्बन्ध की परिपुष्टि प्राप्त करना है। शास्त्राय एक अथ जति उन्माद दान मनाया म विवाह सम्बन्ध पर गये अथवा राज्य और धर्म का नियन्त्रण होना लगा है। धार्मिक मनाया म राज भी गये मन्त्रा कर्तव्य के अनुमान म विवाह सम्बन्ध या मौखिक परिवार के बाव निजी अनुभव है। मान म विवाह का प्रदानात्मिक एक सामाजिक एक धार्मिक अनुभव स्वीकार किया जाता है। शास्त्रानुसार विवाह पुण्य और म्हा का एक अति धार्मिक सभ्य म बाधने वाला धार्मिक सम्बन्ध है जिनके तीन उद्देश्य हैं धर्म प्रजा (सन्तति) और रति (आनन्द)।

परिवार एक सामाजिक सामाजिक सभ्य है जिसका मुख्य कर्तव्य उन्माद का पुनर्स्थापन करना है। विवाह म अधिकांश या और कर्मा-कर्मो अन्तर्गत व्यक्ति सम्पन्न होत हैं। परिवार म नदब दान अधिकांश व्यक्ति होत हैं जिनके सम्बन्ध का एक अन्त होना है या स्थायी होना है। किसी भी व्यक्ति के मर जान पर परिवार भंग नहीं हो जाता। इस्तेमाल आधारभूत बर्दाश्त इन्त (पति पत्नी और मन्त्रा) का परिवार का पयायवाचा कहना मन्त्रा है। हाँ धार्मिक मनाया म होना का उदाहरणवाचा हो जान का प्रवृत्ति अथवा दृष्टिगावर होना है। परिवार एक व्यक्ति (पति पत्नी के) के एक मन्त्र का कहने से जा विवाह, म्हा और गार उत के सम्बन्ध से सम्बन्ध एक गृहस्था स्थापित करत है जिनके विभिन्न मन्त्र अन्त क्रिया और अन्त मन्त्रा उ अन्त अन्त नियम कर्तव्य करत हैं तथा एक सामाजिक मन्त्रा की सृष्टि करत हैं।¹

परिवार का मनावर्तनिक-सामाजिक पन्त उमके उन्माद का उदाहरण है जिसका उन्माद माना जाता और बच्चा द्वारा समन्वयाया म पारम्परिक प्रेम और धार्मिक भाग लेने म होता है।

1 Family is a group of persons united by the ties of marriage blood or adoption constituting a single household in exercising of in common living with each other in the respective social roles of husband and wife mother and father son and daughter brother and sister and creating a common culture. —Bargess and Locke

जविक आधार—परिवार की मस्था के जविक आधार भी सवत्र एक स है । वंस ता विवाह और परिवार का मस्थाका को शासित करन वात्र नियमा म इतनी अधिक सांस्कृतिक विविधता है कि उनम समरूपता कदापि नही मिल सकती । किन्तु परिवार और विवाह क सावभौमिक और प्राथमिक मस्था ज्ञान के लिये मनुष्य की जविक सज्जा म निहित कुछ सव-यापी तथ्य जिम्मदार ह । पशु पशिया के विपरीत मानव प्राणिया म सम्भाग क लिय काइ श्रुतु या सीमित अवधि नही होती । सभवत स्त्री-पुरुषा म हर समय सम्भोग करन की क्षमता है । उनम 'यूनाधिक यौनससग की क्षमता है । मानव प्राणिया की यह विशेषता एक नाभौमिक लक्षण है । दूसरे, वयस्क स्त्री की शरीर निया विशेषकर गभारमस्था और प्रसव काल क कुछ दिना बाद तन (उच्च की जशनायस्था तव) गती है कि उस अपन एक बच्चे क अनिजीवन तथा पालन क लिय अभावकृत अत्यधिक पराथित रहना पडता है । दूसर मानवतर प्राणिया का वनपन इतना दीघकालिक और पराथित नही हागा । मनुष्य का बच्चा लगभग १८-२० वष तन परावलम्बी रहता है । उस स्वावलम्बी हान क लिय लम्बी अवधि तन प्रशिक्षण लेना अनिवार्य है । तीसरे मानव परिवार का अर्थ जविक आधार पुंस्य की प्रजलता है । स्त्री की शरीर निया सम्बन्धी असमर्थताए (मानृय तथा सामयिक निराश्रयता) उस पुरुष क आसने पर छाड गता हैं । पुरुष को स्त्री तथा उसके बच्चा की पारिविक आवश्यकताया की सन्तुष्टि का दायित्व उठाना पडता है । परिणा मत यह मनाज स स्त्री को अपथा अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है । व्यावहारिक रूप म प्रत्येक समाज म परिवार पुरुषा स शासित हाता है । तथाकथित मानृ प्रधान व्यवस्थाया म स्था का शासन सामायन उसका भाउ अथवा काइ अर्थ पुंस्य सम्पत्ती चलाता है । सभी समाजा मे पारिवारिक और सावजनिक मामला म स्त्रिया की अपक्षा पुरुषा की उच्चतर महत्ता म काइ म तेह नहा है ।¹ स्त्री और पुरुष क वाच क जविक भेदा क कारण परिवार की अर्थ-यवस्था पुरुष के नियन्त्रण म रहती है । इस परिवार म पुंस्य की प्रधानता अवश्यभावी हा जाती है ।²

चपिन (F S Chapin) का विचार है कि परिवार की मस्था के अधो लिखित चार पहलू कह जा सकते हैं —³

(अ) मनावृत्तिया और व्यवहार प्रतिमान (आ) प्रतीकात्मक सांस्कृतिक उपकरण (इ) उपयोगी सांस्कृतिक उपकरण, (ई) मौखिक अथवा लिखित निश्चित नियम ।

1. Ralph Linton *The Study of Man* Appleton Century Crofts New York (1936) p 138

2. A W Green *Sociology* p 348

3. The institutional aspects of the family—which are typical type parts of the family structure—are as follows —
(a) attitudes and behaviour patterns (b) symbolic culture traits
(c) utilitarian culture traits (d) oral or written specifications F S Chapin: *Cultural Change* Appleton Century Crofts New York (1928) pp 48-49

मिनि और एन्-गिजन पारिवारिक मन्था की जा विनयण विपयार्ण बनाई है व निम्नलिखित हैं —

(अ) नावभामिकता (आ) मवतात्मकता (इ) प्राथमिकता (ए) तर-
नायिक और (उ) छाग आकार ।¹ हम उनम महमन है ।

अथ प्रथम सामाजिक मन्थाया म उपरोक्त पाच विपयार्ण मन्थे मिनी । परिवार का मन्था (या मन्थाओं व एक जटिन पुञ्ज) का अनुम विपयार्ण मव-
कायों पर आघाति है । परिवार क प्राथमिक अथवा चिरम्याया काय नीन है
(१) त्रिक (मानानार्थि और उनमन्था का पुनम्यान) (२) मनातारण
(उच्चा का लादन पानन और सामाजिक गी त) और () भावनामक (परिवार क
विभिन्न मन्था म घनिष्ठ एव आमीय प्रतृशियाया की व्यवन्था) । म्यान अन्नाय
मन्थ म म परिवार क परम्पामन और आधुनिक कायों की विवचना वरन उमय
एव तान कायों का विवृत विरनपण करेगे ।

परिवार चक्र

परिवार एक ममिति है और मन्था नी । इतक प्रतिनिधि परिवार का एक
सामाजिक प्रथिया भा कहा जा सकता है । प्रत्येक व्यक्ति परिवार क जीवन का
तीन मा चार मुम्प अथम्याया म विमन किया जा सकता है । सामाजिकताया
प्रत्येक परिवार का जीवन इन अथम्याया म हाकर धात्ता है । यह हम व्यक्ति
परिवार क जीवन इतिहास की अथम्याया क मकन है । हर परिवार अथक उनक
मौनिक माथिया क जीवन की कहानी है । जिनका अन्त उनक जीवन क अन्त क माय
या जाता है । एक पुगनन्थापित परिवार म हमारा तापय परिवारा की एक एमी
अमानुषता (succession) स है जा नामाय नाम म मायाय लागा क मन्थ का
शावन बनाए रूप है । परिवार अपन मन्था म निमित्त हाता है और व् अपन जीवन
इतिहास म मवन बडे मयन कटिन और मयन अटन परिवरना म हाकर गुजरता है ।
हमम पारिवारिक ममिति क हिता और सवगामक आघाग म निम्नर परिवरन आता
रता है । उमके पुगनन्था मन्था क पारम्यिक मन्थाया म लगानार मन्थरण
हाता रता है ।

परिवार क जीवन इतिहास मे विवाह म पुव का अथम्या विवाह मानानार्थि
और प्रीया म चार प्रमुन अथम्याया हाता है । एक प्रतिनिधि परिवार क विवाह म
हम एन चार निवित अथम्यायाओं को मय मकत है । परन्तु प्रत्येक परिवार आथय-
कीय म एन चार अथम्याया म हाकर विकसित नगी हाता है । कुछ परिवार
मनानार्थि हात है । कुछ म पन्था दा अथम्याया क उरान्त दम्पति म म एक की
मृचु हा जाती है या परिवार का उच्छेदन तनाक या पन्था म हा जाता है ।

1 Merrill & Eldredge op cit p. 432

अमरीका में तनाव का प्रभाव लगभग एक तिहाई विवाहा पर पड़ता है। परिवार का प्राथमिक सामाजिक कार्य सन्तानोत्पत्ति द्वारा जाति का संरक्षण है। इसलिये जो परिवार अपना प्रमुख प्रयोजन पूरा करता है वह इस दूसरी अवस्था में अवश्य पटुचता है।

परिवार के जीवन इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि भिन्न भिन्न समाजा में विभिन्न होती है। सामाजिक दशाओं का प्रभाव इस पर पड़ना अनिवार्य है। इन अवस्थाओं का परिवार के संस्था में न्या और व्यवहार पर बड़ा गहन प्रभाव पड़ता है।

कुछ समाजशास्त्रों परिवार चक्र की केवल तीन अवस्थाएँ प्रदान हैं।¹ पहली अवधि विवाह और पहल बच्चे के जन्म के बीच का है। इस अवधि में पति पत्नी में मौलिक समायोजन होता है। उनमें से प्रत्येक दूसरे का बहुत प्रेम करता है और प्रायः व दाना मिलकर ही सभी काम करते हैं। यह घर स्नेह प्रगाढ़ प्रेम और विस्तृत सहयोग की अवधि होती जा सकती है। परन्तु कुछ परिवारों में घृणा और विच्छिन्नता के बीज भी इसी अवधि में बोधित जाते हैं। दूसरी अवधि में बच्चे उत्पन्न होते हैं। बच्चा के लालन पालन तथा अन्य गृह-कार्यों में पत्नी व्यस्त रहती है और पति परिवार की आर्थिक सुदृढता सम्भाल करन में लगा रहता है। दम्पति अपने अपने उन्नतियों को विमाने में प्राप्तता और गति का अनुभव करते हैं। उनका पारस्परिक प्रेम और सन्तान के लिये माता पिता के प्रेम में परिणत हो जाता है। यद्यपि दम्पति के कुछ प्रारम्भिक स्नेह बने रहते हैं फिर भी उनका पारस्परिक प्रेम तटस्थता का उल्काही और छत्रछाया का प्रेम नहीं रहता। तीसरी अवस्था बच्चा के बचस्क हा जाने पर आरम्भ होती है। ये बचस्क सन्तान विवाहित होकर नया घर बनाते हैं और पुराने घर को छोड़ देते हैं। अब पति-पत्नी का एक दूसरे के लिये अल्प समय मिलता है। उसका स्नेह प्रीति और परिपक्व हो जाता है। परन्तु अब भी उन्हें अपनी सन्तति के भविष्य को सुख और समृद्धि में पूजा बनाने की चिन्ता बनी रहती है।

परिवार के कार्य

[परिवार एक जैविक और सांस्कृतिक समूह है। जैविक समूह होने के नाते परिवार के तीन आवश्यक कार्य हैं—मानव जाति की शाश्वतता बनाए रखना, काम इच्छा को न्यायी और समाजानुमादित व्यवस्था, और घर का प्रबंध।]

नए सदस्यों की सृष्टि

प्राणति की शाश्वतता का कार्य आधुनिक परिवार के लिए भी उतना ही आवश्यक है जितना पूर्वगामी परिवार व्यवस्थाओं के लिए था। प्राचीन समय की अनेकानेक जातियों के युग में हर दश में अवश्य बच्चा की उत्पत्ति में कमी हो गई है। दूसरे

परिवार एवं विवाह

प्राथमिक परिवार प्रजाति की शाश्वतता व काय को धन्यतया अधिक प्रचंडी तरह पूरा करता है क्योंकि अब गम न हो बच्चा की दम रख और सावधानी शुरू हो जाती है। अन्य कारण शिशुमा की मृत्यु और बामारिया म कमी हा गइ है। इसके लिए परिवार की मजबूतता विशेषीकृत सस्याएँ करती हैं किन्तु इस महायत्ना को प्राप्त करना परिवार की जे जिम्मेदारी है। शिशु आरोग्यशास्त्र और शिशु प्रशिक्षण के बढते हुए पान की महायत्ना स प्राज माता पिता पर बच्चा को पालन की भारी जिम्मेदारी भा गइ है। उनका जिम्मेदारी सिफ बच्चा का पालन ही नही बरन् आधुनिक मज्जा की जटिल दशाभा म उहू जीवन रहन और मज्ज उपयोजन करन साय बनात है।

नय सदस्या की सृष्टि स परिवार का चार काय करन पन्त है पुन उत्पादन मरभरण प्रशिक्षण निधारण और समाजीकरण।¹

बड़े समाजा म प्राचानकाल म सतति निरोध का चलन रहा है। प्राथमिक समाजा म य चन बढन विस्तृत हो गया है। कुछ लाग कहन है कि इसम सम्पन्ना एक बड़े खतर म पड जायगी। व कहन है कि यन् सतति निग्रह द्वारा विवाहित व्यक्ति बच्चा का पैदा करन तथा उनका लालन-पालन की जिम्मेदारी म बचने रह ता एक तिन मानव-जाति ही समाप्त हा जायगी। किन्तु हम याद रह उनकी यह भयावह भविष्यवाणा मन्वी नही हो सकनी। क्यारि सतति निग्रह प्राथमिक समाज म एक मूल्य है। जनमन्त्रा म अनियंत्रित बढि म सामाजिक प्रगति र्व जायगी। यह मानव नियन्त्रण का एक बल्याणकारी तरीका है जिसम मित्रया की चिन्ति म गुधार तथा सन्तति का प्रच्छा पालन पापण हा सकना है। मानव जाति सन्तति निग्रह द्वारा 'आम-हत्या' नही कर रही है। वास्तव म यह नियन्त्रण उनम धपन निरन्तर चन्निव वा अगुण एव अधिक सुखी और समृद्ध करन व लिए धपनाया है।

काम-सृष्टि का स्यायी प्रबंध

काम सृष्टि का तृप्ति का स्यायी प्रबंध परिवार की सस्या म ही हा सकना है। काम सृष्टि का तृप्ति व साय नविक विचार भा मनन है। प्राथमिक परिवार म विनृ-नतात्मक धपवा सयुक्त परिवार की यन्मिबन काम-सृष्टि म पनि-यनी म पनिष्ठ वपत्तिक सम्बन्धा के कारण अधिक सफनता मिनती है। जीवनसाथी चुनन की स्वाभ्रता म बढि होने व स्त्री और पुण्य दाना साथी चुनन म वपत्तिक गुणा और आकर्षणा का अधिक ध्यान रखत है। विवाह का यह वैयक्तिक आधार यद्यपि परिवार की धर्मियता का एक बन् वारक है। फिर भी सन व्यवस्था में काम-सृष्टि की सन्तुष्टि अधिक पूरा और स्यायी हानी है। तृप्ति प्राथमिक परिवार के सन्तति म धार्मिक सम्बन्ध बन्न कमजोर हात है इननिय पारिवारिक मुग और ववाहित मफ-

1 The creation of new members is a four fold task—reproduction maintenance status ascription and socialization A W Green Sociol 87 p 348

लता के लिए दाना का अधिक समभदारी तथा प्रौढ सबगा से काम लेने की जरूरत पड़ती है ।

आधुनिक परिवार में सत्तानात्पत्ति और काम सन्तुष्टि के काय सन्तति निग्रह न पृथक् पृथक् कर दिये हैं । पितृसत्तारमक परिवार में ये दोनों काय हमेशा एक साथ रहते थे इमीलिय परिवार से बाहर स्वतन्त्र काम-सन्तुष्टि के लिये रखेले स्त्रिया तथा वश्यागमन का प्रचलन था । आधुनिक परिवार में पत्नी का ही प्रेम प्रिया ममम्हने में अधिक आपत्ति नहीं हाती । पुरुष अपनी पत्नी को अपनी इच्छानुसार श्रृ गार करा सकता है और मनचाह तरीका में दाना जीवन यापन कर सकते हैं । सधुस्त परिवार का कठोर नियन्त्रण या परम्परा उनके माग में नहीं आते हैं । किन्तु साथ ही काम सन्तुष्टि की हलिया या नैतिक विचारा में सन्तति निग्रह से प्रातिकारी पण्डितन हो रहा है । सन्तति निग्रह से अविवाहित व्यक्ति भी सम्भोग करने में बाध सत्तान पालन के दायित्व से बच सकते हैं । असाध्य युवक-युवतिया में विवाह के पूर्व सम्भोग करने का भय नहीं के बराबर रहा है ।

घर का प्रबंध

प्राय समाजा में सन्तस्य वयस्क होने पर एक स्थायी सम्बन्ध निर्माण करना चाहते हैं । ऐसा सम्बन्ध जिससे हमारा कुछ अपने लोग साथ साथ रह एक दूसरे से धुल मिल सकें काम-वासना की तृप्ति तथा अन्य मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित अनुबन्धन स्थान मिल सके । इसी बलवती इच्छा का परिणाम घर का प्रबंध है । हर विवाहित युग्म एक घर का प्रबंध करता है और उसका निर्माण वह स्वयं करना चाहता है । उसकी रचना और वातावरण को वह अपनी पसन्द के अनुसार बनाना है । इससे स्पष्ट है कि परिवार का हीसरा आवश्यक काय एक घर का प्रबंध करना है । यद्यपि आधुनिक जटिल मन्व्यताओं में घर से सम्बन्धित सन्तुष्टियां को देने में परिवार से अन्य सस्थाएँ जैसे बन्ध, होटल आदि प्रतियोगिता करती हैं । किन्तु परिवार इस प्रतियोगिता में विजयी हाता है । कारण स्पष्ट है स्त्री-युग्म या पति पत्नी और सत्तान के लिए घर में अपक्षतया अधिन धनिष्ठ और अनौपचारिक सन्तुष्टियां प्राप्त हो सकती हैं । मनुष्य सदैव स्वतन्त्रता और अबाधित इच्छा पूर्ति चाहता है । बलव और हाटला अथवा अन्य सस्थाओं में जो घर के प्रतियागी हैं न तो अभीष्ट स्वतन्त्रता और न अबाधित इच्छापूर्ति हो सकती है । यद्यपि आज घर के काम का बन्ध नही रह गया फिर भी बच्चा के सालन पालन और पति पत्नी के प्रेम और गहयोग में क्रमशः सुलभता और बद्धि आज के घर में मिल सकते हैं । सधुस्त परिवार में मुमिया के नियन्त्रण में कभी-कभी घर का जीवन बहुत शुष्क और ध्यक्तिगत इच्छा के विरुद्ध हुमा करता था । आधुनिक युग में परिवार के अधिकतर सन्तस्य रोजी कमान और धवनाश के समय की शिचस्पिया का पूरा करने के लिये शिन के अधिक

भाग में घर के बाहर रहने हैं। किन्तु परिवार में कुछ आवश्यक और केन्द्रीय कार्यों का पूरा चरन के लिए वह घर में ही रहना पड़ता है।

संस्कृति का संचार

मानविक समूह होने के नाते परिवार का प्रमुख काम परंपरा का वाहन है। पाउल श्रेकर (Paul Schreker) ने लिखा है कि बच्चा का संस्कृतिवाहक परिवार का मुख्य नायक है। विवाह के समान परिवार की संस्था भी संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों द्वारा बनती है। इस कारण हाइमेलर धार्मिक, शैक्षणिक, राजनैतिक, कलात्मक और भाषा सांस्कृतिक पहलू माने हैं। चूंकि संस्कृति के विकास में इन विभिन्न पहलुओं का भिन्न भिन्न महत्त्व रहता है इसलिए संस्कृति के इस विकास के अनुसंधान में कुछ ही धार्मिक, राजनैतिक और शैक्षणिक संस्थाओं में परिवर्तित होना पड़ता है। जब कोई नया क्षेत्र किसी क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाता है तो वह पारिवारिक व्यवस्था का भी अनुसंधान करता है और देता है जिससे कि मानव जाती पीढ़ियों का सामन-सालन और मनो-वर्तन उस क्षेत्र के अनुसंधान में रहें।¹

अपने समाज या समुदाय का संस्कृति में बच्चा का परिचित करना परिवार का बहुत आवश्यक काम है। समाज या समुदाय के रीति-रिवाज व्यवहार आदि और मूल्य—इन सभी का मानव जाती पीढ़ियों तक पहुँचाने का काम परिवार करता है। समाज में परिवार परंपरा का वाहन करता है। पाउल श्रेकर ने परिवार के जबकि काम का महत्त्वपूर्ण ही नहीं मानता। वह कहता है कि संस्कृति की रक्षा के साथ बच्चा के लालन-पालन का काम भी समाज का ही काम बनता जा रहा है। टर्मिन्स के भी होने लगे हैं। इसलिए कुछ ही परिवार का जबकि काम महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया है। उसके अनुसार परिवार एक ही माना जाता है जो समाज की व्यक्ति की वह संस्था है जो सामूहिक उपकरणों द्वारा समाज और जीवन की शारीरिक, मानसिक और नैतिक व्यवस्था का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चला जाता है। समाज परिवार का जबकि मूल्य उस समय तक ही महत्त्वपूर्ण है जब तक उसका द्वारा समाज की स्वीकृत संस्कृति में बच्चे रखा जा रहा है। परंपरा का वाहन होने हुए भी परिवार का प्रचार का प्लेटफॉर्म नहीं माना जा सकता।

समाजशास्त्र

✓ हमने परिवार का सामाजिक जीवन का प्राथमिक माना है। हर समाज की संस्कृति के अनुसंधान ही परिवार की व्यवस्था माना है। बच्चों का सामन-सालन कारी मूल्य समाज तक परिवार के परावरण में जाता है। इसलिए उनका मानविक विकास समाज द्वारा प्रतिष्ठित मूल्यों के अनुसंधान होता है। परिवार में ही बच्चे समाज की संस्कृति और मानवता मानते हैं। समाज का ही परिवार के परावरण का प्रचार

1 Paul Schreker *Family Its Functions and Destiny* p 241

बच्चे के मस्तिष्क पर स्थायी रूप से पड़ता है। बच्चा जो कुछ सीखता है वह उसकी स्थायी निधि हो जाती है जिसे हम उसकी 'दूसरी प्रकृति' (second nature) कहते हैं। आदता व निर्माण में परिवार का प्रमुख हाथ है।

सामाजिक संगठन की दृष्टि और स्थायित्व के लिये मनुष्य का जिन व्यवहारों या आचरणों को करना चाहिए उन सबकी शिक्षा उस परिवार से मिलती है। सामाजिक अन्त क्रिया की सभी प्रक्रियाएँ सबप्रथम परिवार में ही प्रारम्भ होती हैं। यही पर व्यक्ति काय विभाजन कर सहकारिता प्रतिस्पर्धा अनुकूलन संघर्ष और सात्माकरण तथा अन्य उप प्रक्रियाओं द्वारा अपने व्यक्तित्व का विकास और समूह का संगठन सुलभ कर पाता है।

आवेगों की अभिव्यक्ति का नियम

बुद्ध विद्वान परिवार को मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति का सर्वोत्तम साधन मानते हैं। परिवार में स्त्रीपुरुष का सम्बन्ध केवल शारीरिक नहीं रहता। उनमें घनिष्ठ सम्बन्ध आत्मा का सन्तोष देने वाला होता है एक दूसरे का सहारा होता है एक दूसरे से जीवन सग्राम में भाग बटने की प्रेरणा लेता है। बुढ़ापे में जीवनसाथी की मृत्यु बहुत दुःखदायी होती है क्योंकि इसी समय आत्मा का सबसे अधिक शांति की आवश्यकता होती है जो जीवनसाथी के अभाव में नहीं मिल सकती। अतएव परिवार का मुख्य काम व्यक्ति को स्नेह सुरक्षा एवं आत्म-मन्त्रोपदाना है।¹

बच्चा का स्नेह और प्रेम कुटुम्ब में ही मिल सकता है। राल्फ लिटन लिखते हैं कि शिशु व समुचित विवाम के लिये शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि काफी नहीं है। बच्चा का व्यक्तिगत ध्यान प्रेम और अनुक्रिया के सन्तोष की अति आवश्यकता है। शिशु कल्याण केन्द्रों के द्वारा बच्चा का पूरा सन्तोष नहीं मिल सकता। बुद्ध आगा का कहना है कि शिशु-केन्द्रों के खुल जाने से बच्चा के लालन-पालन के लिए परिवार आवश्यक नहीं रहेगा। केन्द्रों की इस शक्ति उत्पन्न की परिस्थिति में जिन बच्चों का लालन-पालन होता है उनमें सामान्य व्यक्तित्व का विकास नहीं दिखाई देता जिसमें उन्हें अपनी युवावस्था में बाहरी समाज से उपयोग करने में काफी कठिनाई होती है। मन्त्रोपदाने हमारे समाज की नित्यता के लिये पारिवारिक संस्था का नितांत आवश्यकता मालूम होती है।²

गिडिंग्स (Giddings) के विचारों में परिवार में सब संस्था का अपना-अपना स्थान होता है प्रत्येक के अपने अधिकार और उत्तरदायित्व होते हैं। इसलिए परिवार का पदावरण में ही स्व की चरना आगे बढ़कर जाति की चेतना में बदलती

1 Linton *The Natural History of the Family* p 34

2. *ibid*

है। परिवार में छोटे-बड़े भाइ-बहिन होते हैं। इसलिये वहाँ मनुष्य की धार्मिक प्रवृत्तियों और विनयना की ली विगयी मूल प्रवृत्तियाँ का सामंजस्य परिवार में होता है और उनका ऐसा समुचित विकास होता है कि समाज के मागडन में इन प्रवृत्तियाँ न बाँटें यात्रा न पट।

एलवुड (G A Elwood) ने निगा है कि समाज में परमाय (परापकार) का पदा करने का काम मुख्यतया परिवार करता है। यहाँ बच्चा प्रेम करना, दूसरा की सेवा करना दूसरों के लिये बलिदान करना और दूसरा के अधिकारों की रक्षा करना सीखता है। पारिवारिक आदेशवादिता और परोपकारिता के विद्वान धर्म और सम्पत्ता का हमेशा आचार रहे हैं और धर्म भी है।

सारसः¹

परिवार के बापों का जो विशेषण ऊपर किया गया है उसका कारण इस प्रकार है। परिवार सबसे महत्वपूर्ण और मूलभूत सामाजिक संस्था है। बच्चा का अपने माता पिता से शारीरिक वशानुक्रमण प्राप्त होता है। जस भी बाप जान है वही ही उनकी प्रवृत्ति या बुरी पनूकता की मनात जानी है। परिवार प्रत्येक व्यक्ति का समाज में एक निश्चित प्रभियति प्रदान करता है। इसी समूह में बच्चे सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रथम सीखते हैं। वे जीवन की हार-जीत की गिलाहों की भाँति हँसी खुशी स्वाकार करना तथा सफल जीवन के लिए दूसरा से महयाग करना परिवार में ही सीखते हैं। सबसे महत्वपूर्ण प्रायः सब समूह के जान परिवार अपने सम्पत्ता में (बच्चा में) आधारभूत मनावृत्तियाँ प्रतिमान, विचार और शक्तियाँ अथवा जीवन की स्वरणा विकसित करता है। प्राचीन परिवार एक बहुकाम संस्था थी। इसके आधिपति और सामाजिक बापों में भगवानात्पति, कामतुष्टि, समाजीकरण और संस्कृति का वाहन के अनिवाय बापों के अनावा उत्पादन, उपमाग शिक्षण, मनोरंजन धार्मिक और रक्षा सम्बन्धी कार्य सम्मिलित होते थे। आधुनिक परिवार में अनिवाय कार्य ही बचें हैं। पर वृषक एक दानवार परिवारों का प्रथम धर्म भी उत्पादन प्रकार के रूप में दान है। अधधिक औद्योगीकरण और नगरीकरण समाज में अधिकांश परिवार केवल उपमाता परिवार रह गए हैं। परिवार के अधःपरम्परात्मक बापों का शिक्षण, मनोरंजन, धर्म तथा राज्य की संस्थाधान हीन विद्या है। परन्तु परिवार संस्था एक अनौपचारिक समूह रखा है और रखा है। इसलिए यह शिक्षण, मनोरंजन एवं धर्म के बापों का अनौपचारिक और जूननम मात्रा में मदद करना रहता है।

परिवार का महत्त्व घर तर सीमित नहीं है। यह सम्पूर्ण सामाजिक जीवन का बेड है। समाज के सभी धार्मिक, राजनयिक धार्मिक सामूहिक, पर परिवार

1 Cf Gillin & Gillin *Cultural Sociology* p 369 Davis *Human Society* p 374 Merrill & Elsdredge *Culture and Society* pp 432-38 Green *Sociology* p 341 & Ma Ives & Page *Society* p 264

के जीवन का गहरा प्रभाव पड़ता है। अनेक भयानक सामाजिक समस्याओं का स्रोत पारिवारिक विगठन है। अपराध वालापराध तलाक वमत्तिक विगठन आदि का एक प्रमुख कारण परिवार का सुदृढता का ह्रास हो सकता है। हमारे समस्त सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव परिवार पर पड़ता ही है। अतः पारिवारिक जीवन और सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव परिवार पर पड़ता ही है। अतः पारिवारिक जीवन और सामाजिक जीवन में मौनिक इकाई एक सम्पूर्ण का सम्बन्ध है।

परिवार और एकांतता (privacy) का साथ है। परिवार में व्यक्ति स्वच्छन्द और अदृष्टि व्यवहार कर सकता है। मसाल की भीड़ भाड़ और औपचारिकता से दूर और पृथक् रह कर परिवार में वह अपने मन और हृदय की बात कह डालता है। यहाँ उसका असली रूप स्वतः प्रकट हो जाता है।

परिवार की उत्पत्ति एवं विकास

१९वीं शताब्दी में जबकि रूपा की उत्पत्ति और विकास का सादृश्य लेकर परिवार तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं की उत्पत्ति और विकास का विश्लेषण किया गया। इस विश्लेषण में कई सिद्धांत प्रतिपादित किये गए। किंतु यदि यह ध्यान रखा जाय कि परिवार एक सामाजिक रूप है जैसा नहीं तो इसकी उत्पत्ति की समस्या पर सही दृष्टिकोण से विचार किया जा सकेगा। यह निश्चय है कि एक विगिष्ट परिवार कहीं किसी प्रकार प्रारम्भ हुआ और फिर विगिष्ट ढंग से विकसित हुआ। सभी परिवारों की उत्पत्ति का अद्वैत स्रोत मानना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। न सभी परिवारों के विकास में सामान्य क्रम रहा है। एसी कोई निश्चित अवस्थाएँ नहीं बनाई जा सकती जिनसे परिवार अवश्यमय गुजर कर विकसित हुआ है। जहाँ तक हम प्राचीन मानव समाज के अस्तित्व का परिचय मिला है वहाँ तक सभी समुदायों में परिवार और विवाह का कोई न कोई रूप प्रचलित था। आइए परिवार की उत्पत्ति और विकास सम्बन्धी कुछ प्रमुख सिद्धान्तों की समीक्षा कर लें।

पितृसत्तात्मक सिद्धांत

हन्री मन (Maine) ने प्राचीन बयानिक दस्तावेजों व तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह मन प्रतिपादित किया कि सबसे प्राचीन (आन्तिकालीन) परिवार एक सहित और गाढ़ होने के मस्कार से सम्बन्धित संस्था का विस्तृत समूह या जिनम पिता सर्वाधिकार मान था और उसकी बात का विरोध करने वाला कोई न था जो परिवार की सम्पत्ति पर नियंत्रण रखता था और परिवार के सदस्यों के जीवन पर भी। यह पितृसत्तात्मक गृहस्थी कालांतर में विभक्त होने लगी जस-जस पुत्रों को अपनी कमाई पर अधिकधिक नियंत्रण मिलता गया तथा दानों और स्त्रियों का भुक्ति मिली। आन्तिम गृहस्थी में सभी शक्तियाँ निरंतर निरंतर हो गईं और आज हमारे समय में व्यक्ति अपने-अपने राज्य के प्राचीन स्वतंत्र खड़ा है। अतः व्यक्ति विवाह

अनुबंध करने में स्वयं ममय है। पुरानी प्रणाली में नातेगारी ममूह व एक सदस्य की हैमियन में ही समाज प्रस्थिति थी घाज बहू धकेला और स्वतंत्र अनुबंधीय प्रबंधा में सम्मिलित होता है। मन न इन प्रकार परिवार और माय ही समाज व विकास का प्रस्थिति से अनुबंध में विकास कहा था।¹ विवृत्ततामय परिवार की मावभीमिकता मिद्ध करना मानवत कम कठिन होगा। आधुनिक समाजशास्त्री यह स्वीकार करने हैं कि जबकि बांग्ला न परिवार में पुरुष की पूर्णाधिक प्रदानता सदव रहा है।

मानवतामय मिद्धात

रुडोल्फ (J J Bachofen) न समाज का मुलनामय अध्ययन किया और एन एगहर्ग डूडे निरान तिनम समाज में स्त्री की सामाजिक और आर्थिक प्रस्थिति का केन्द्र मानकर परिवार का मगटन हुआ था। इन विचारक व लया में दा मायनार्ण स्पष्ट है प्रथम हमारे अबावीन समाज में जो विवृत्ततामय परिवार मिनता है वह आत्मि समाज में विद्यमान मानवतामय परिवार व बहू न बाद का विकास है। द्वितीय वृ कि हमारे व मानवतामय परिवार की मरचना यणी जगित है इमतिर उनन पूर्व काइ मय मरचना का परिवार अवश्य रहा होगा। इन आधार पर बहारन न परिवार एक विश्व व्यापी विकास की एक यात्रता प्रम्युत का है। आरम्भ में मनुष्य जति मरचना रहित साम्यवादा म्भूता में रहती थीऔर मरचना का नामकरण उनकी मतादा व आधार पर होता था क्योंकि उन परिस्थितिया में बच्चा व पिता का पता जानना मय नही था। बहारन न इन प्रथम अवधि का इतिम कटा है त्रिमता निरान एक दूसरी अवधि त्रिनता (gynocracy) में स्त्रिया द्वारा विगिष्ट परिवार का म्पारना द्वारा हुआ। इन परिवार में सम्मति की मानिक क्रिया थी और सामाजिक शक्ति न नी न प्रयत्न थी। पन्नु मनुष्य न मरनी पाविक शक्ति (brute force) का उपयोग कर नी प्रयत्न मृत्स्विया पर अना प्रयत्नता याप की और मायारण सामाजिक मामला में स्त्रिया में नतृव छीन दिया। इन प्रकार विवृत्ततामय परिवार बन।²

रॉबर्ट ब्रिफॉल्ड (Robert Briffault) के मानवतामय मिद्धान्त व गारमून तत्र एगहर्ग मिद्धान्त के समान ही है। मनेप में ब्रिफॉल्ड का मिद्धान्त इस प्रकार है आरम्भ में मनुष्य जति नहि मतावनीने म्भूता में रहती था और व म्भूष्ट मानवतामय परिवार में मगठित था। पन्नु कानान्तर में पुरुष न लानव और अहमाव के कारण इन परिवार का विवृत्ततामय परिवार में मयन टाता। एम विचारक न विज्ञानवादी मिद्धान्त की धानावना की और वेस्टमार्क व एक विवाह

1 H. S. Maine *Ancient Law* Henry Holt Co. New York (1885) quoted in Martindale and Moncheu *Elements of Sociology* p. 406.

2 J. J. Bachofen quoted by Martindale and Moncheu *op. cit.* p. 406

सिद्धान्त को साक्ष्यहीन बतलाया। त्रिफाल्ट ने अपनी पुस्तक 'दि मदम' में आदिम समाजा में विद्यमान मातृवशीय और मातृस्थानिक संस्थाओं तथा पुरुष से कभी-कभी स्त्रियाँ की उच्चतर सामाजिक स्थिति से यह निष्कर्ष निकाला कि मौलिक परिवार मातृ-सत्तात्मक था। उसने आदिम समाजा में बच्चों के पितृत्व के प्रति अन्यायता का भी जिक्र किया। ऐसे ही अनेक साक्ष्यों के आधार पर त्रिफाल्ट ने यह निष्कर्ष दिया कि परिवार का प्रारम्भ माता की स्वयं तथा बच्चों की आर्थिक और सामाजिक रक्षा की स्थायी आवश्यकता से हुआ उसकी आधारभूत मूल प्रवृत्तियाँ व अनुसूच्य उस समाज में उच्च स्थान मिला क्योंकि पुरुष की अभिरुचि अधिकतया सामयिक और केवल काम-सम्बन्धी थी। इस तरह परिवार का आदि रूप मातृसत्तात्मक था और केवल उच्चतर कृषि और पुरुष की आर्थिक प्रबलता के विकास से पितृसत्तात्मक परिवार का उदय हुआ है।¹

मकाइवर और पेज ने त्रिफाल्ट का यह तर्क कि परिवार के विकास में मातृत्व की आवश्यकताओं का महत्व रहा है स्वीकार किया है किन्तु उसे ही परिवार के विकास का एकमात्र महत्वपूर्ण कारक नहीं माना। परिवार ऐसे गहरी जड़ वाला सामाजिक प्रबन्ध की किसी 'मूलप्रवृत्ति' या विशिष्ट मानव गुण की अभिव्यक्ति कहना साक्ष्यहीन तर्क है। त्रिफाल्ट का यह तर्क अशुभ है कि मानव जाति का विकास 'मातृ अधिकार' से पितृ अधिकार की ओर हुआ है। कुछ सरलतम आदिम समुदायों में जटिल पितृवशीय संस्थाएँ मिली हैं। फिर मातृवशीय संस्थाओं तथा स्त्रियों की ऊँची सामाजिक प्रस्थिति में कोई स्पष्ट सहसम्बन्ध नहीं है। अतः त्रिफाल्ट ने परिवार उत्पत्ति में जिन कारकों को महत्वपूर्ण माना है वे अपर्याप्त हैं।²

यहाँ आरम्भिक यौन साम्यवाद के सिद्धान्त की भी समीक्षा कर लेना उपयुक्त रहेगा। महाभारत में एक स्थान पर आरम्भिक काम स्वच्छन्दता का उल्लेख है। लिखा है कि एक स्त्री-पुरुष विवाह का नियम श्वेतवन्तु नामक ऋषि ने बनाया। मन त्रिफाल्ट और मागन ने लेखा में आन्विकालीन काम स्वच्छन्दता के सिद्धान्त का प्रतिपादन मिलता है।³ इनके मतानुसार मानव जाति की मौलिक अवस्था काम स्वच्छन्दता की थी। इन लेखकों को आदिम जातियों में प्रचलित पर्वों पर काम स्वच्छन्दता पत्नियों का विनियम और अतिथि सत्कार में पत्नियों का अनादि प्रथाएँ मौलिक यौन साम्यवाद के अवशेष प्रतीत हुए। समान आयु के सभी पुरुषों का पितृ प्रथम पत्नियों का माता और इसी प्रकार से भाई बहिन, पुत्र पुत्रों कहने के रिवाज को वे आदिम लोगों की जविय पितृत्व में अन्वभिज्ञता का मान्य मानते थे।

1 R Briffault *The Mothers* New York (19 7) Chapters III IV & V of Book I

2 MacIver & Page *op cit* p 245

3 Cf Maine's book cited above Briffault's *The Mothers* and L H Morgan's *Ancient Society* Refer to *Society* pp 243-44 for a discussion of this theory

इमार गाँवा में आज भी लागू का 'बाबा', 'दादी', पोता, 'पानी', चाचा, 'बाबू', बहने का गिवाज प्रचलित है। स्वयं तबक अपने गाँव में चमार में लकर ब्राह्मण जानि क लागू का प्रयानुसार बाबा चाचा दादा और दादी आदि कहता है। किन्तु उन रूम का जिवन पितृत्व में अनभिपता तो नहीं कहा जा सकता। मानव साम्प्रदाय आज न भौतिक काम-स्वच्छन्दता क इस सिद्धान्त का अवतानिक और बोरी बन्ना मात्र सिद्ध कर लिया है। मानव जाति को भौतिक अवस्था में भी काम मनुष्टि का बोझ समानानुमादिन दण रहा होगा। यौन-मन्वत्ता पर दिना न किमी प्रकार का नावजनिक नियन्त्रण सदैव प्रचलित रहा है।

राल्फ लिटन और मैलिनावस्की न आर्य समाज में तयाकविन काम-स्वच्छन्दता क विराधी अनेक साक्ष्य एकत्र किए हैं। मागन न जिम बर्गोइन व्यवस्था में माता का आयु की सभी निर्या का माता' आदि कहने क रूम को यौन साम्यवाद का एक साक्ष्य कहा है वह एक मुख्य सामाजिक प्रयोजन—वहिविवाह का प्रासाहन—के निमित्त बना था। जविक पितृत्व की अपना सामाजिक पितृत्व का आर्य समाज में बढ़या अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। तीसरे, पर्वों पर अथवा विवाह स्थिति में काम स्वच्छन्दता क अस्ति क का यौन-साम्यवाद का अवाद्य साक्ष्य नहीं कहा जा सकता। पलायन द्वीप में रहने वान आदिम लागू में विवाह क पूर्व लडाकिया को यौन स्वच्छन्दता है किन्तु विवाहित हात ही निर्या का (और पुण्या का भी) यौन व्यवहार बटोर सामाजिक नियन्त्रण में आ जाता है। मनावतानिक दृष्टि से भी काम स्वच्छन्दता सिद्धान्त एक सार्थी कल्पना मात्र है।

विवाहसंबन्धी सिद्धान्त

उपरोक्त सभी सिद्धान्त यह प्रतिपादित करते हैं कि परिवार का आधुनिक प्रकार जिमा आर्य प्रचार में विकसित हुआ। जसिम मान का विश्वास है कि तथा परिवार का विकास कुछ सुनिश्चित अवस्थाओं क द्वारा हुआ है। आधुनिक परिवार क विकास में उत्तम पाँच विविष्ट अवस्थाओं का वर्णन किया (१) एक तन्त्रा परिवार जिम मादया और बनिता का अवाधिन परम्पर विवाह हाता था (२) बन् बहिया और बन् मादया का मनुन अन्विवाही परिवार (punaluan family) (३) अन् बुग्मा का विवाह जिमम पति पत्नी बहरी जन्मिया न नी तथा क मजन य (syndasmian family) (४) स्त्रुगतान्तर परिवार (patriarchal family) जिमम एक पुण्य क क पत्निया हाती थी और (५) आधुनिक समय का एक विवाह परिवार।¹

मौल के सिद्धान्त का आधार अथानिगिन मायतार् है (१) मन कारीन पाश्चाय समाज का परिवार अन्म पारिवारिक प्रकार है (२) सभी मन्वत्ता

¹ Ancient Society Charles Kerr Chicago (1877)

म ऐतिहासिक अवस्थाएँ समान रही हैं और अर्वाचीन समाजों के प्रचलित परिवार-प्रकार को ऐतिहासिक प्रवृत्तियाँ वा सूचक कहा जा सकता है, (२) विनास की प्रवृत्ति सरलता से जटिलता की ओर रही है।¹

एकविवाही परिवार का सदस्य

एडवड वेस्टरमाक ने शाश्वत एकविवाह का सिद्धांत प्रतिपादित किया। परिवार का सबसे मूलभूत रूप एक पुरुष और स्त्री का संघ रहा है। इस तक के लिए उतने अनेक साक्ष्य एकत्र किए और आग्रह किया कि (१) मनुष्य से निकटतम सम्प्रदाय रखने वाले स्तनधारी जीवा (mammals) में भी एकविवाह सर्वाधिक प्रतिष्ठित विशेषता है (२) काम-स्वच्छता शरीर क्रिया के विचार से अत्यधिक उत्तम है (३) पुरुष की स्वाभाविक गति और ईर्ष्या भावना के कारण एक-विवाही प्रणाली ही चिरस्थायी हो सकती है और अधिकांश में सर्वाधिक समाज हितकर विवाह एक विवाह है।

वेस्टरमाक के उपरोक्त सभी तर्कों को अद्वैतवादी और अव्यावहारिक सिद्ध कर लिया गया है। स्तनधारी जीवा में एकविवाह सर्वाधिक प्रचलित नहीं है। काम-स्वच्छता शरीर क्रिया के लिए अनिवार्य नहीं है। यह कहना भी गलत है कि एकविवाही परिवार में ही मनुष्य के स्वाभाविक मते का सबसे अच्छी अभिव्यक्ति हो सकती है। अतः में कौनसी परिवार प्रणाली मत्तः ठीक है यह तो समान व्यवस्था का आवश्यकताओं के अनुसार निर्दिष्ट होता है।²

मकाद्वर और पत्र ने वेस्टरमाक द्वारा उल्लिखित कारणों का सामंजस्य मानते हुए भी उन्हें अपमान्य ठहराया है।³ ऐतिहासिक साक्ष्यों में भी एकविवाही परिवार की शाश्वतता अतिरिक्त होती है।

प्रायड का सिद्धांत

परिवार की उत्पत्ति की व्याख्या करने वाले सिद्धांतों में प्रायड का मनो-विश्लेषणात्मक सिद्धांत नवीनतम है। प्रायड परिवार की उत्पत्ति काम-निपट से मानता है। मौलिक पितृमत्तात्मक भ्रूण में समस्त स्त्रियाँ पुरुष पिता का सर्वोपरि अधि-कार वा। पुत्रों का इस स्थिति से बड़ा अग्र-ताप था। उन्होंने ईर्ष्या से क्रुद्ध होकर एक-दूसरे पिता की हत्या कर डाली जिससे उन्हें उमकी स्त्रियाँ का उपभोग करने का अवसर मिल सका। किन्तु शीघ्र ही उन्हें अपने दुष्कृत्य पर ग्लानि और भय हुआ। अतः उन्होंने अपने समूह के बाहर की स्त्रियाँ से विवाह करने का बंधन नियम बना लिया।

1 Martindale and Monachesi *op cit* p 407

2 *Ibid* p 421

3 *Society* p 244

निकट रक्त-सम्बन्धियां न विवाह करना बर्जित है। इसे निकट रक्त सम्बन्धी विवाह निषेध (Incest taboo) कहते हैं। पिता की हत्या की घृणिन घटना फ्रायड की कागी कल्पना मात्र ही सकती है। दूसरे पितृमत्तात्मक भुण्डा में परिवार और विवाह का ता कोर्ड रूप में घटना से पूर्व से विद्यमान था। फ्रायड का सिद्धान्त बहिर्विवाह की एक व्याख्या मात्र ही सकती है न कि परिवार की उत्पत्ति का सिद्धान्त। तीसरे मनाविश्लेषक द्वारा प्रत्येक सामाजिक प्रथा या संस्था का उद्गम काम इच्छा को बनाना एकांगी और मनावैज्ञानिक आग्रह है।

सारंग

परिवार की उत्पत्ति या भौतिक रूप को याचना एवं व्यय प्रयत्न है। मानव समाज में एसी किसी अवस्था की कल्पना नो नया की जा सकती जब किसी प्रकार का विवाह और परिवार प्रचलित नहीं था। दूसरे विभिन्न समाजों का ऐतिहासिक विकास एक क्रमिक एवं समरगिक निष्ठा न नहीं हुआ है। वह तो दश शाल के अनुभूत विभिन्न निष्ठा मुभी रहा है। तीसरे परिवार की उत्पत्ति किमा श्रवैरी मानवीय भूत प्रकृति में उही लोजी जा सकती। समलियन ता यह है कि मानव की कामनाया और जनन आवश्यकताया के एक जटिल रूप की विभिन्न पयाररणा में भिन्न भिन्न रूप से श्रमिव्यक्ति रूप है। प्रथम समाज में परिवार के किसी न किसी रूप में प्रचलित हान की कल्पना करना व्यावहारिक है। समकालीन समाजों के सुनुनामय अध्ययन में यह प्रकट होता है कि एक ही समाज में विभिन्न प्रकार की परिवार प्रणालियाँ मिलती हैं। परिवार की उत्पत्ति और विकास की व्याख्या विकासवादी सिद्धान्त भी नही कर सकती। परिवार का रूप में विभिन्नता का कारण सामूहिक निरन्तरता है। कुटुम्ब की प्रणालियाँ और सम्पत्ति के अर्थ उपररणा में वृद्धात्मक सम्बन्ध है।¹

पारिवारिक संस्थाया के एक वैज्ञानिक सिद्धान्त में आलोच्य सिद्धान्तों के प्रमुख कारणों के अनिश्चित निम्ननिम्नित घाना पर विचार करना आवश्यक है (१) परिवारों का जविक विकास की प्रणया सामाजिक कारणों के उचित मरचनाएँ मानना वैज्ञानिक है (२) परिवार की उत्पत्ति जविक आवश्यकताया की पूर्ति के लिए अवश्य होता है किन्तु वह मदव विशिष्ट सामाजिक प्रणाली की उपज है (३) सार समाज में कोई एक साधारण परिवार नहीं है वरन् विशिष्ट समाजों में विशिष्ट परिवार हैं। साधारण परिवार एक धारणा मात्र है और (४) परिवारों में भिन्नता का कारण उनके मारभूत तत्त्व हैं।²

विवाह और परिवार के रूप

परिवार का साधारण विवाह है। स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्ध की प्रतिष्ठित रीति का विवाह कहते हैं। विवाह के दो प्रधान प्रकार हैं एक विवाह और धनु विवाह। एक

1 Ibid p 246

2 Martindale and Monachesi op cit p 409

विवाह (monogamy) एक पुरुष की स्त्री के साथ विवाह है और इसके विपरीत बहु विवाह (polygamy) एक पुरुष का एक से अधिक स्त्रियाँ से विवाह अथवा एक स्त्री का एक से अधिक पुरुषों से विवाह होता है। पहली व्यवस्था का बहुपत्नी विवाह और दूसरी का बहुपति कहते हैं। द्विविवाह बहुविवाह का वह रूप है जिसमें एक पुरुष क दो स्त्रियाँ अथवा एक स्त्री के दो पति हों।

कुछ पुराने मानवशास्त्रियों ने आदिम समाजों में विवाह के एक अर्थ प्रकार—समूह विवाह का प्रचलन बतलाया था। इसमें पुरुषों का एक समूह कई स्त्रियों से संयुक्त रूप से व्याह कर लेता है। अनुसंधान में यह प्रकार व्यावहारिकता में नहीं मिला। संभवतः बहुविवाह का ही ये लोग समूह विवाह मानकर गलती कर बैठे थे।

कुछ आवश्यक प्रश्न

विवाह के विभिन्न प्रकारों का विश्लेषण करते समय विवाह की संस्था से सम्बंधित कुछ प्रमुख प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है। प्रश्न इस प्रकार हैं—
(१) लोग विवाह क्यों करते हैं? विभिन्न व्यक्तियों और समाज के लिए विवाह की संस्था क्यों महत्वपूर्ण है? विवाह के विभिन्न रूपों के उदय होने का क्या कारण है? तथा इन सभ में से कौन सा रूप समाजशास्त्रीय दृष्टि से सर्वोत्तम या आदर्श है?

लोग विवाह क्यों करते हैं? हम सब परिवार में जन्म से ही रहते हैं और बचपन से ही यह भावना नहीं त्याग पाते कि परिवार में रहना ही उपयुक्त व्यवहार है। मंच तो यह है कि परिवार में रहना हमें एक मात्र संभव ढंग लगता है। विवाह करके ही हम सामाजिक जीवन में पूर्ण सफलता की अभिलाषा कर सकते हैं। हम इस वाक्य का अविवाहित मनुष्य अपूर्ण है स्वयं सिद्ध मान लेते हैं कि वह नहीं सचिकन। प्रत्येक धर्म गृहस्थ का ही पूर्ण पुरुष या नारी मानता है। अतएव, विवाह करके पारिवारिक जीवन वितान की परम्परा का पालन हम इसलिए करते हैं कि वह धर्म-सम्मत है और व्यावहारिक दृष्टि से भी सर्वांग मत्त है।¹

प्रत्येक व्यक्ति समाज में एक प्रस्थिति प्राप्त करने का इच्छुक होता है। विवाह समाज का एक सामाजिक प्रस्थिति प्राप्त करता है। विवाह का पूर्ण महत्त्व तभी प्रकट होता है जब इसमें एक प्रस्थिति उपलब्ध युक्ति के रूप में समाहित है।
(१) विवाह से व्यक्ति का अर्थ माना पिता के परिवार में उच्चतर प्रस्थिति प्राप्त होती है। (२) इसमें व्यक्ति को अर्थ पत्नी या व्यवसाय में प्रस्थिति ऊँची हो जाती है। (३) समुदाय में भी उमका सामाजिक स्थान अधिक समाहित होता है। (४) विवाहित व्यक्ति जीवन की समस्याओं के समाधान में भी उन्नत प्रस्थिति से शायद कर

1 Cf. Koenig & others *Sociology A Book of Readings* Prentice Hall New York Chap 7

मकता है। (१) विवाहित जीवन व्यक्ति का अपनी प्रस्थिति व अनुभूत मानसिक व्यवहार बन कर बाध्य करता है। इसमें मनामुख को मर्पिट हानी है।

समान की नित्यता और स्वास्थ्य के लिए विवाह अनिवार्य है। यह सम्पन्न बनकर एक-दूसरे को हिता वा सगम है। समा दम्पति व यौन जीवन पर प्रतिक्रिया रहता है। व आर्थिक उपाजन में सयुक्त उत्तरदायित्व न बाध करत है। यह अनक सामाजिक जिम्मा वा आधार स्थल है। समा स्त्री और पुरुष के उपस्थित अनुदान का स्थिर अथवा अधिक मनुजित किया जाता है। विवाहित जीवन की आवश्यकताएँ ध्यात व अधिक उत्तरदायी और सश्रिय बनानी हैं। यह समा का सामाजिक भ्रम बनकर समाज व कल्याण और प्रगति में बाधक हो सकता है। समा का व्यापक और स्वास्थ्य अधिकारण विवाहित समा के कल्याण पर निर्भर है। समाज के लिए बहुविवाह प्रादुर्भाव है अथवा एकविवाह व वन ता समा उत्तर स्पष्ट है। व्यावहारिक और वैज्ञानिक रूप में एक विवाह ही समा है। किन्तु हमारे विचार से समा उत्तर स्वन मिल जाणगा जब पाटन विवाह के प्रचलित समा का सामाजिक मन्त्र समझेंगे।

बहुपति प्रणाली (Polyandry)

सम प्रणाली में एक स्त्री का विवाह एक से अधिक पुरुषों के साथ होता है या समा भाग्य व एक अथवा अधिक सामाजिक पत्नियाँ होता है। यह बहु भाग्य व एक या अधिक सामाजिक पत्नियाँ होता है या समा व्यवस्था का प्राकृत बहुपति प्रणाली (fraternal polyandry) कहत है। समा समा में बहुपति प्रणाली वहीं भी नहीं पाए जाता है। साम्प्रतिक समा में भी यह प्रणाली अति सामित प्रचलन में है। प्राचीन समा का कुछ जन-जातियाँ में कुछ अथ कबीला और भाग्य व समा नाम पर द्रावण टाडा और कोटा कबीला तथा कुछ नीची जातियाँ में यह प्रणाली आज भी कुछ-कुछ प्रचलित है। महाभाग्य में द्रावणी व पाँच पाँच पत्नियाँ का विकर मिलता है। किन्तु विद्वान् इस प्रणाली का सदिग्ध बनता है। प्राचीन तथा प्राकृतिक समा में यह प्रणाली कभी भी प्रचलित नहीं रही है। हिन्दु समा में इसे सामाजिक तथा प्राकृतिक बना जाता है।¹

विजय हिमालय की तराई तथा गुजरात और मजबूर व साम्प्रतिक समा में इस प्रणाली का प्रचलन अति कम प्राकृतिक एक सामाजिक परिस्थितियों में ही विद्यमान है। समागत विन व जीवनार बाध की समा, विद्वान् डाक बाग्री तथा बाल्ट जातियाँ में प्राकृत बहुपति प्रणाली प्रचलित है। समा या ना सभी भाग्य व बनन एक बना होता है अथवा एक में अधिक। हिंदी के स्वाद और जौनपुर परगना में भी इसी प्रणाली का प्रचलन है। जब सबसे बड़े भाई की पत्नी होती है या पत्नी पत्नी

1 J. M. Kupdia *Marriage and Family in India* Oxford University Press Bombay (1958) Chapter 14

उसके सभी छोटे (निशोर) भाइया की पत्नी होती है। यदि कोई छाटा भाई पृथक् विवाह करता है तो उसकी पत्नी भी सभी भाइया की पत्नी बन जाती है। एक भाई की सत्तान सब भाइयो की सत्तान मानी जाती है। बच्चो का अपने बड़ पिता स्वीकार करन में गब हाता है। लडकिया क मा बाप भी उनका विवाह एसे परिवार म करत है जहा कई सग भाइ हा।

पाव क पहाड़ी क्षेत्रा कांगडा जिल क स्पेली लाहौर परगना चम्बा, कुलू तथा मडो के ऊच प्रदेशा में कानता और नीची जानिया में यह प्रणाली प्रचलित है।

गोत्र क्रीले में समूह या गाव का कोई भी पुग्ग युवती के विवाह क अवसर पर या उसक पूज उससे समागम कर सक्ता है। यह रीति इस धारणा की प्रतीक है कि नववधू पूरे समूह या गाव की पत्नी है। पुग्ग महोदय न इस रीति का समूह म दृढता लान की एक युक्ति कहा है।¹ खासा लागा म इस प्रणाली का प्रचलन क्रूर प्राकृतिक परिस्थितिया निधनता और बुद्ध परम्परागत सामाजिक रस्मा क कारण घताया गया है। घर म बड़े भाई का मालिकाना अधिकार होता है। उसकी उपस्थिति म छोटे भाई सामाय पत्नी से बात भी नहीं करत। घरेलू जीवन म उसम सभोग आदि की उहे जो भी सुविधाए प्राप्त हैं क बवल घर से बाहर खुल आकाश के नीचे। इस स्त्री के साथ पति सा व्यवहार करन की चारी हन भाई की केवल एक निश्चिन तिन आती है। यदि स्त्री सभी भाइया के पत्नीत्व से मुक्त हाकर बवल एक की पत्नी रहना चाहती है तो वह सामाजिक प्रथा क अनुसार कर सक्ती है। खासा म तनाक का साधारण चलन है। सिरमौर जिले के जुद्धत और गुरपाट धत्रा के खासा लोगा म बहुभृतता केवल दो भाइया तक सीमित है। तीसर भाई को पृथक् विवाह करना पडता है।² नायर लोगा म केवल आतृक बहुभृतता प्रचलित है। खासा और नायर किमी समय मातृवशी बवाल थ। मलाबार के इरावन नीलगिरी पहाडिया क टाडा तथा काटा बवोल म जा पितृवशी है बहुभृतता प्रणाली प्रचलित है। हमार हिन्दू समाज की कुछ नीची (शूद्र) जानिया म बड़े भाई की विधवा का अविवाहित दवर म विवाह हा जाता है। बही-बही छोटे भाई की विधवा से अविवाहिता बड़े भाइ (विधवा क जेठ) का विवाह हो जाता है। पहली प्रथा को Levirate कहते हैं।

मैकलनन (McLenan) न समाज क विराम म बहुभृतता को एक अनिवाय प्रणाली कहकर तप्या की नितात अवलना की है। समाज की बाई अवस्था पूव बहुभृतता प्रणाली वाली नहीं पाई गई। जिन समाजा म यह प्रणाली 'यूनापिक' प्रचलित है वहाँ भी साय-माय एकविवाही परिवारा का सन्धा सम्भवत अधिक

1. *India's Legacy and the World Heritage* Book I Part I p 207

2. Kulapati's Letter No 94 Bhartiya Vidya Bhawan Bombay

परिवार एवं विवाह

रही है। सम्पूर्ण समाज में बहुभृतता तभी सम्भव हो सकती है जब जनसंख्या में स्त्रियाँ का अनुपात पुरुषों से बहुत कम हो। बहुधा स्त्रियाँ और पुरुषों की जनसंख्या लगभग समान अनुपात में होती है।

बहुभृतता के प्रचलन के क्या कारण हैं? कुछ स्थितियाँ व कारण बहुभृतता विवाह की एक अविवक्षित व्यवस्था मात्र बनी जा सकती है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की अधिक बड़ी संख्या इसका एक प्रमुख कारण है। लोवी (Lowie) ने इस प्रकार की स्थिति में प्रचलित बहुभृतता प्रणाली का एक ठोस विवाह प्रणाली कहा है जिसमें पत्नी दूसरे से अधिक रूप से सम्भोग कर सकती है। अतएव बहुभृतता (विशेषकर प्राचुर्य) का एक विवाह प्रणाली का सर्वाधिक उपयुक्त निवाह की अवस्था बटिन परिस्थितियों तथा ऊँचा वधू मूल्य। भारत में उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में तथा एम्पीमा नामक गृहस्थी समाज में पत्नी और वधू का पालन-पोषण बड़ा बटिन कार्य है। दरिद्र साधना में एक पुरुष यह सब करने पर पाता है। अतएव अपने भाइयों अथवा अन्य पुरुषों के सहयोग में गृहस्थ प्रवृत्तता है।

बहुपत्नी प्रणाली (Polygyny)

जब एक पुरुष के एक से अधिक पत्नियाँ होती हैं तो इस व्यवस्था का बहुपत्नी प्रणाली अथवा बहुभृतता कहते हैं। बहुभृतता की प्रकृति व स्वरूप का अधिक प्रचलन है। यह प्रणाली अनेक प्राचुर्यिक सम्यक् समाजों में पाई जाती है। हिन्दू और मुसलमान समाजों में इसका प्रचलन समान में सबसे अधिक है। हिन्दू राजाशाही में यह प्रणाली बड़े-बड़े शासकों तथा दोनो समाजों के भूपतियों एवं अन्य पत्नियों में यह प्रणाली बड़ी मात्रा में चली रही है। भारत में हिन्दुओं तथा मुसलमानों में बहुपत्नी प्रणाली (परिवार) व अनुष्ठान है। हैदराबाद में वर्तमान निजाम की १०० के लगभग विधवायों और अन्य स्त्रियों बनाई जाती हैं। दंग व अधिकांश हिन्दू राजाशाही के भी पत्नियों हैं। माधवारण नागरिकाँ में भी पत्नी मानी पुरुषों की बहुधा कई पत्नियों होती हैं। मध्यप्रदेश व गुजरात के पटना की बहुधा अनेक पत्नियों होती हैं। दक्षिण भारत की नम्बूतारि जाति में बहुभृतता प्रचलित है। हमारे देश में बन्धु काल में भी बहुभृतता के प्रचलन का वर्णन मिलता है। बहुभृतता प्रणाली का मूल प्रामाणिक और धार्मिक संस्था स्वीकार की गई है। स्वयं प्रतिष्ठित शास्त्रकार मनु (मनुस्मृति के रचयिता)

की दस पत्निया बतलाई गई हैं। राजाभा की अनेक रानिया में पटरानी स लेकर 'सूनु-तम प्रस्थिति वाली म्त्रिया थी।¹

समाजशास्त्रीय एवं ऐतिहासिक अनुमधाना से विदित हुआ है कि बहुभायता का दाम प्रणाली कुलीन विवाह प्रणाली सम्पन्नता एवं सत्तानात्पत्ति की कामना से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। विजयी समूहों में विजित समूह की स्त्रिया का अपहरण कर उन्हें पत्नियाँ अथवा रखेलियाँ बनाया है। रखनी को पत्नी के बाद दूसरे दर्जे का स्थान प्राप्त होता है। दाम प्रणाली के अतगत भी स्वामिया के अनेक पत्नियाँ हाती थीं जो बहुधा दासा द्वारा उन्हें समर्पित कर दी जाती थीं। कुलीन घराना में क्या के विवाह करने की प्रथा में भी कुलीन घराना के पुरुषों में एक से अधिक पत्नियाँ हा जाती थीं। भारत में बंगाल बिहार तथा राजस्थान में आज भी यह प्रणाली बहुत प्रचलित है।² इतिहास में इन तथ्यों का कई माध्यम है कि समृद्धिवाली पुरुषों में अनेक विवाह किए अथवा स्त्रिया का खरीद कर अनेक पत्निया रखी। सम्पन्नता का साथ यदि कभी कामुकता में उत्पन्न उमत्तना रही तो फिर क्या कहना। धनी और कामी लोग के घर में दो चार पत्नियाँ रहना साधारण बात थी। इसके अनिश्चित, सुन्दर प्रणाली अथवा वीर पुरुष भी एक से अधिक विवाह करते पाए गए हैं। इस प्रकार के कुछ कारणों से अधिक स्त्रिया का रखना पुरुष और परिवार का सम्मान का चिह्न माना गया। पुतगाली पूर्वोत्तरी अफ्रीका में चागा बबीले के लोग अपना धन स्त्रिया खरीदने में व्यय करते हैं। जिन समाजों में स्त्री आर्थिक दृष्टि में बहुत लाभदायक होती है, गरम लोग भी कई विवाह कर लेते हैं। पहली पत्नी का बाँक (sterile) निकल जान पर लोग दूसरा तीसरा और चौथा या अधिक विवाह करते पाए गए हैं। कई बार तो स्वयं बाँक स्त्रियाँ अपने पति को खानदान का नाम चलाने के लिए दूसरा विवाह करने के लिए प्रेरित करती हैं। बहुभायता का अंतिम कारण पुरुषों तथा स्त्रियों का अनुपात में असमता का होना है। जब पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक हाती है तो बहुभायता सामाजिक अनिवायता हो जाती है। किन्तु शायद ही समार में किसी समाज में स्त्रिया और पुरुषों का अनुपात में इतनी विपत्तता हो। अधिकांश बहुभायता ऐसे समाजों में प्रचलित है जहाँ पुरुषों तथा स्त्रियों की जनसंख्या लगभग समान है। अतएव बहुभायता के आर्थिक और सामाजिक कारण ही प्रमुख कह जा सकते हैं।

मातृम्यानिक् परिवारों में कई बार पुरुषों का अपनी सातिया से विवाह करना पत्ता है। इस वाली-बहुभायता (sororal polygyny) कहते हैं। अमेरिका का का और हिंदूमा बबीला में यह विवाह प्रणाली बहुत प्रचलित है। बहु-

1 K. M. Kapadia *op cit* pp 97-98

2. *Ibid* Chap V

भायना तथा 'Levirate' और 'Sororate' में अन्तर है। जब एक पुरुष अपने मृत भाई की मन्तानहीन विधवा से विवाह करता है तो इस भाभी विवाह (levirate) कहते हैं। इसके विपरीत, यदि सन्तानहीन विधुर अपनी मानी से विवाह कर लेता है तो इस साली विवाह (sororate) कहते हैं। रमेल स्त्रियाँ की प्रणाली (concubinage) भी मानी बहुभायना में भिन्न है। एक पुरुष के विवाहिता पत्नी के अनिश्चित अनेक रमेल स्त्रियाँ रह सकती हैं जिनके साथ समाज वह मरती जान से करता है। अनेक घनी मानी राजपूता पठाना और ब्राह्मण आदि के कई रमेल रहती थीं। घर में स्त्रियाँ का रखना इसी प्रणाली के अन्तर्गत कहा जा सकता है। रखन स्त्रियाँ का द्वितीयक पत्नियाँ कहना उपयुक्त होगा। प्रायः मिक पत्नियाँ के विपरीत इनका विवाह नहीं होता। किन्तु रमेल स्त्रियाँ की प्रणाली भी समाजस्वीकृत सम्प्रादाय है।

बहुभायना के अनेक दुष्परिणाम होते हैं। प्रथम और मुख्य महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि इस प्रणाली में स्त्रियाँ की सामाजिक और धार्मिक प्रस्थिति बहुत गिर जाती है। दूसरे शुद्ध दाम्पत्य के अनेक काम-वासना को प्राप्त करने में विफलता है जिससे बहुधा वैवाहिक अन्तर्गत अनेक पत्नी जानें हैं। पारिवारिक कलह अनेक पत्नी के अस्तित्व के पालन पोषण में भारी लापरवाही विवाह विच्छेद माना जाता तथा मन्तान में अनेक विरोध आदि अनेक कुख्यात दुष्परिणाम हैं। इसमें हम यह न समझें कि समाज में बहुभायना से पारिवारिक कलह जन्मता है। जहाँ बहुभायना धार्मिक और सामाजिक प्रयत्नमूर्ति है वहाँ यह स्वयं पारिवारिक जीवन को सुन्दर बनाने में सक्षम है।¹

समाज के सभी सम्यक् लोग न हीर हीर हीर प्रणाली को अक्षय्य धोषित कर दिया है। बहुभायना का सबसे घोर अर्थ ही स्वतन्त्र आन्दोलन तथा स्त्रियाँ के धार्मिक स्वावलम्बन न दिया है। अतएव, आजकल सभी सम्यक् समाजों में बहुभायना अक्षय्य नाम मात्र का शेष रह गई है। भारतीय समाज ने सन् १९५५ ई० में हिन्दू विवाह अधिनियम पारित कर हिन्दू समाज में इस प्रणाली का अन्त-बान्धनी पारित कर दिया है। मुसलमानों में अक्षय्य भी अक्षय्य पत्नियाँ तक रखना बान्धनी जायज है।

सम्यक् समाजों में अक्षय्य एकविवाह जिसमें कोई भी स्त्री या पुरुष अपने जीवन मर्यादा के जीवन रहते हुए दूसरे विवाह नहीं कर सकता अक्षय्य समाज प्रचलन हो गया है। यह अक्षय्य और अक्षय्य आत्म विवाह माना जाता रहा है।

एकविवाह प्रणाली (Monogamy)

समाज के समस्त समाजों में एकविवाह प्रणाली मुख्य अक्षय्य प्रचलित रूप है। जहाँ बहुभायना और बहुमृत्युता स्वीकृत है वहाँ भी लागू एकविवाह प्रणाली का

यावहारिक दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। प्रथा, निधनता एवं जीवन साथियों के एक से अधिक सरया म न मिलने के कारण लगभग सभी समाजा न इस प्रणाली को आश्रय एवं व्यावहारिक माना है। यूरोपवासी अपने एकविवाही परिवार का विकास प्राचीन रोम-यूनान के उस एकविवाही परिवार से बताते हैं जिसमें पुरुष की शक्तिशाली प्रबलता थी। स्वयं चीन भारत जापान हिंदेशिया, बर्मा के एक विवाह पितृप्रधान परिवार में पुरुष की प्रबलता रही है। इस प्रणाली में सम्पत्ति का स्वामित्व और धार्मिक सत्ता पिता या पति में केंद्रित होती थी। इसलिए पितृ निष्ठा एवं भक्ति इस अवस्था के अनिवार्य लक्षण थे। उन्हें सर्वोच्च महत्वपूर्ण गुण अथवा सत्ता माना जाता था। इस व्यवस्था में बहुत अधिक स्थिरता पितृत्व की निश्चितता और सम्पत्ति के अधिकार की सबल भावना स्वाभाविक थे। यहाँ पुरुष को धार्मिक सत्ता और अबाध आधिक्य अधिकार प्राप्त थे किंतु स्त्रियों की सामाजिक स्थिति निश्चित ही नीची थी। पुरुष की छत्रछाया में रहना उनके लिए अनिवार्य समझा जाता था। स्त्री को पुत्री, स्त्री और माता तीनों भूमिकाओं में पुरुष (पिता पति पुत्र) की रक्षा अनिवार्य थी। उन्हें जीवन में किसी काम के करने की स्वतंत्रता नहीं थी। पिता को अपनी इच्छानुसार पुत्रियाँ का विवाह करने का अधिकार था। पत्नी के लिए पति ही आराध्य देव था। पातिव्रत ही उसका आभूषण था। स्त्री द्वारा पर पुरुष सभोग अधार्मिक, अनतिक और सबसे घृणित आचरण था। पत्नी का यह आचरण पति की समस्त मर्यादा और प्रतिष्ठा को नष्ट कर देता था। अतएव पत्नी का इस अभियोग में क्रूरतम दण्ड दिया जा सकता था। बहुधा पर-पुरुष सम्भाग (यभिचार) एक कानूनी अपराध माना जाता था। किंतु मजे की बात यह है कि इस एकविवाही पुरुष प्रधान व्यवस्था में पुरुष को पत्नीव्रत भंग करने (परस्त्री गमन) के लिए यभिचारी नहीं ठहराया जाता था। परिवार और सत्तान का नामकरण पुरुष (पितामह) के आधार पर होता था। सम्पत्ति का उत्तराधिकारी भी पुरुष ही सक्ता था।

आधुनिक समाजा के एकविवाह पितृप्रधान परिवारों को उपरोक्त प्रणाली का वंशज कहा जा सकता है किंतु अब उस प्रणाली में अनेक मशाघन हो गए हैं। अब तो परिवार में स्त्री और पुरुषों को समता के अधिकार प्राप्त हो रहे हैं। स्त्रियों की सामाजिक प्रस्थिति पर्याप्त उन्नत हो गई है। उन्हें परिवार में भी पुरुषों के बराबर या निक्ट-बराबर की प्रस्थिति प्राप्त होने लगी है। पितृ सत्तात्मक परिवार के विकास के कारण में हम इस तथ्य की विस्तृत विवचना करेंगे।

विवाह सम्बंधी नियम एवं प्रतिबंध

जीवन साथी का चुनाव

आत्मिक एवं पितृप्रधान अथवा आर्थिक दृष्टि से पिछले देशों में विवाह बंधन में बंधा वाला घर और बंधु को अपने जीवन साथी के चुनाव में प्रायः नहीं के बराबर

स्वतंत्रता है। अपने पुत्र-पुत्रिया के जीवन साथी की तलाश करना माना पिता का कर्तव्य और दायित्व है। किन्तु मुरासिम और अमरीका के अति औद्योगिक और नव्य समाजों में माध्यात्मिकता लक्षणा का जीवन साथी व चुनाव में व्यक्तिगत लक्षित और स्वतंत्रता के अन्तर्गत उपलब्ध हैं। किन्तु बीत सितता जीवन साथी हा मरता है या नहीं इस विषय पर सभी समाजों में अनेक अलग नियम (स्वीकारात्मक और निषेधात्मक) विकसित हो गए हैं। सभी लोग निकट व दूरि सम्बन्धियों में विवाह करने पर निषेध लगाते हैं। इस प्रकार अपने करीब प्रजाति जति एवं सामाजिक वर्ग व भीतर विवाह करना (जीवन साथी प्राप्त करना) सर्वसाधारण प्रथा है। निकटस्थ दूरि सम्बन्धियों में विवाह न करने पर बन हुए नियमों का बहिर्विवाह और स्वजाति स्ववर्ग आदि के भीतर विवाह करने के नियमों का अन्तर्विवाह करने हैं।

बहिर्विवाह—माना पिता की पुत्र-पुत्रियों में तथा भाई बहिना का परस्पर विवाह सद्व्यवस्था में मन्त्र निषिद्ध रहा है। किन्तु प्राचीन मिस्र के राजघरानों (Tolemies royal households), इन्डो-चीन साम्राज्य तथा पेरू के इन्का साम्राज्य (Incas) में भाई-बहिना के परस्पर विवाह होने के सामान्य नियम हैं। मिस्र के राजघरानों में इस प्रकार के विवाह सम्बन्धों का उद्देश्य सम्भवतः शाही परिवार की पुष्टता शाही परिवार की शक्ति एवं राज्य की सुदृढ़ता रह गयी। माना पिता का पुत्र-पुत्रिया और भाई बहिना का परस्पर विवाह अथवा मनाया मन्त्र अन्तर्गत और असाधारण माना जाता रहा है। इस नियम का अग्रमध्य-गमन नियम कर्तव्य है। यह नियम बहुधा चाचा भतीजिया तथा प्रथम श्रेणी के भाई-बहिना (चचेर भाई बहिना) (first cousins) पर भी लागू होता है। हमारे पुष्पे और मौन्य भाई-बहिना में भी परस्पर विवाह सम्बन्ध अधिकतर बचाया जाता है। इन सम्बन्धियों का परस्पर विवाह मन्त्र निषिद्ध नहीं है किन्तु चचेर भाई बहिना का ता-मावभौमिक नियम है। भाग्य के हिन्दुओं में मणिष्ठ विवाह (marriage of cognates) निषिद्ध है जिसमें पिता के पुत्र के साथ तथा माता के पुत्र के साथ पौत्रियों का भविष्यी माना जाता है। हिन्दुओं में सगात्र विवाह भी निषिद्ध है। इस जति में एक प्रकार का पाठ करने वाले युवक मुबनिया में भी परस्पर विवाह निषिद्ध है। इस प्रकार हिन्दुओं में सगात्र, मणिष्ठ एवं मन्त्र विवाह बहिर्विवाह का अन्तर्गत माना जाता है। किन्तु इस प्रकार के विवाह कानूनन जायज स्वीकार करने योग्य नहीं। सुसंस्कृत समाजों में सगात्र भाई-बहिना का परस्पर विवाह परम्परागत तथा कानूनन जायज है। अथवा आधुनिक समाजों में समाजान्तर भाई-बहिनों (parallel cousins) का परस्पर विवाह निषिद्ध है किन्तु (cross cousins) का विवाह प्राणार्थक किया जाता है।

बहिर्विवाह की उत्पत्ति पर विचारको ने कई सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं। वेस्टरमाक व अनुमार निकट रविर सम्बन्धिया म परस्पर सभोग करने के विरुद्ध सशक्त अरुचि अथवा अनिच्छा की घनात्मक भावना (strong aversion or positive feeling of aversion) होती है। अतः व परस्पर विवाह नहीं करना चाहते। मनुष्य की यही भावना सञ्चितियों म एक निपथ बन गई है।¹ वतमान समाज म अविवाश स्त्री-पुरुष इस भावना से परिपूर्ण होत हैं परंतु यह उनके समाजीकरण (मस्कारो) का परिणाम हो सकती है। अतएव वेस्टरमाक का सिद्धांत बहिर्विवाह की उत्पत्ति की सतोपजनक व्याख्या नहीं कर पाता। सिगमण्ड फ्रायड के अनुसार माता पिता की पुत्र-पुत्री स संयोग करने की इच्छा सब-यापी है। प्रारम्भ म पुत्रा न अर्पन पिता की स्त्रिया से सभोग करने की इर्ष्या स प्रेरित होकर उस मार डाला किन्तु तत्पश्चात् उह यह कृत्य नितांत घृणित लगा। न-हे ग्लानि हुई और वे प्रायश्चित्त करने क लिए अपनी माताआ से भविष्य म सभोग न करने की कसम खा बठे। इस समय स निकटस्थ रविर सम्बन्धिया म परस्पर विवाह विषिद्ध माना जान लगा।² मनाविश्लेषक फ्रायड का यह सिद्धांत भी भवनानिक एव असत्य है।

हमारे विचार से बहिर्विवाह सम्बन्धी समस्त नियम शन शन विकसित हुए ह। घरान के लोगो म यौन प्रतियोगिता सामाजिक दृष्टि स अस्वरथ है। अतः प्रारम्भ स ही मनुष्य न निकट रविर सम्बन्धियो म परस्पर सभोग अवाञ्छित घोषित कर दिया होगा। कालांतर म अर्पन अग्रम्यगमन निपथो को अस्वाभाविक एव अनतिक स्वीकार कर लिया गया। सभी समाज इस निपथ की अवहलना मानव प्रकृति के प्रतिबूल मानन लग। अतएव, बहिर्विवाह की उत्पत्ति और विवास मनुष्य क सामाजिक आचरण सम्बन्धी अनुशासन या सत्-आचार क प्रारम्भिक नियमो से हुए हैं। हिन्दू समाज म गोत्र, पिण्ड और प्रवर बहिर्विवाह का प्रचनन सामाजिक सदाचार का बडा सुव्यवस्थित आश्रय रहा है, हमार देश म बहुधा एक गाँव के लडन लडकिया म परस्पर विवाह प्रथा प्रतिबूल माने जाते हैं। शायद प्रादेशिक बहिर्विवाह का यह चरम उदाहरण है।

अन्तर्विवाह—समार के सभी लोगो मे अर्पन वग जाति, प्रजाति अथवा धम वाले लोगो स विवाह सम्बन्ध करना प्रचनित है। मातृकृतिक धन्यता और भोगो लिव एवात्तता अन्तर्विवाह क दो प्रमुख कारण हैं। हम पहल कह चुने हैं कि प्रत्येक जाति या समूह म जातिकेन्द्रीयत्व (ethnocentrism) की भावना होती है इगलिये लाग अपनी समूह से बाहर विवाह करना अनुचित समझते हैं। अतः प्रजा

1 Edward We termarck *A Short History of Human Marriage* Macmillan New York (1927)

2 Piddington *Social Anthropology* (1950) pp 107 216 and S Freud *Potem and Taboo*

तीय विवाहा का मन्त्र निम्नाह्नित किया जाता है। मन्त्र में हिन्दू मुसलमान या इमाइ धर्मावलम्बियों से विवाह करत ही अहिन्दू हो जाता है। हिन्दू पुरुष समाज एक धर्म से अहिन्दू बन जाने से बच जाता है यदि वह नवविवाहिता के साथ राजन-धान नष्ट करना। किन्तु आधुनिक भारत में धर्मरक्षामिक धर्मवा धर्मर-सामुदायिक विवाहा की मन्था में उत्तरातर वृद्धि हो रही है। पुराना धार्मिक कट्टरता धीरे धीरे गायित पत्नी जा रहा है। समस्त हिन्दू जातियाँ धर्म विवाही समूह हैं। धर्मजातीय विवाहा का शास्त्राय परम्परा के प्रतिकूल माना जाता है। किन्तु धर्म धर्म प्रकार के विवाहा की मन्था भी दखन नहीं है।

प्राचीन भारत में सम्पूर्ण समाज ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य धीरे धीरे वर्णों में विभक्त था। वर्णिक काल में प्रथम तीन वर्णों में परम्पर विवाह समाजानुमानित था। ब्राह्मण पुरुष क्षत्रिय तथा वैश्य की लडकियाँ तथा क्षत्रिय पुरुष वश्य मुक्तों से विवाह कर सकता था। धर्म अनुनाम विवाह कहा था किन्तु वैश्य पुरुष का क्षत्रिय धर्मवा ब्राह्मण स्त्री में विवाह करना अमान्य था। इन प्रतिनाम विवाह कहते थे। एन विवाह से उत्पन्न संतान 'मातृजाती' मानी जाती थी और वह साधारणतया धर्मनी माना या पिता के वर्ण का धर्म नहीं मानी जाता थी। भीष्म धीरे धीरे धर्म जाति अत्यन्त के निन्दाना का पक्षी धारा है।

समस्त विश्व में वर्ण धर्म विवाह प्रचलित है किन्तु आधुनिक मन्थना की उन्नति में यह नियम भी उत्तरोत्तर गायित पत्नी जा रहा है। रूम धीरे धर्मरीका में विवाह मन्थना में धार्मिक एवं सामाजिक प्रगियति के विचार का महत्व नहीं के बराबर हो गया है। किन्तु बहुतों का धर्मनी कथाधा का विवाह उच्च कुल या धरान (धार्मिक या सामाजिक प्रगियति के विचार से) के दुबका में करना मन्थनीय समझते हैं। भारत का अमान विवाह (hypergamy) इसी में सम्बन्धित एक रूढ़ नियम है।

विवाह का रीतिधर्म

मन्थ समाजा में विवाह का एक ही रीति मवाधिक प्रचलित है। विवाह एक सममन्थन (धर्मवा धर्मनिरपण) सामाजिक मन्थार के रूप में सम्पन्न होता है। विवाह निश्चित हो जाने पर मुख्य मन्थार (पानिप्रणय) धर्मवा धर्म-वधु का मन्थ-मन्थारियों धीरे धर्मियों के मन्थन एक दूसरे का वर्ण करत वही धर्म नाम से मन्थया जाता है जिसमें विवाह का साधनान्त अनुमानित मन्थ जाय। हिन्दू विधायक में पत्नी प्राप्त करने के घाट साधन बनाय से क्रियते ग घाट धाम्य (धमानुगार) धीरे रूप घाट धाम्य (धर्म के प्रतिष्ठित) मन्थ रूप से। धर्माहित मन्थना में रागन (गात्र) धीरे पत्नी निरूपण से धर्माहित पत्नी में स्त्री का धर्मरगा धीरे दूसरे में उत्तरा धर्म उत्तराध्या में प्रभावित का मन्थन किया जाता था। निश्चित धर्मरगा में किन्तु एक

अथ किसी प्रकार से उमत्त स्त्री के साथ सम्भोग करना पशाचिक कृत्य कहा जाता था। ऐसे बलात्कार को समाज मायता इसलिए देता था कि स्त्री का कौमार्य प्रतिष्ठित रखा जाये। इन ही रीतियों का विवाह का उचित ढंग कभी नहीं कहा जा सकता। गांधव विवाह में युवक और युवती को स्वतंत्र वरण का अवसर था। इस प्रेम विवाह भी कह सकते हैं। इसमें बहुधा मुरय विवाह संस्कार के विधिवत् सम्पन्न होने के पहले ही प्रेमिया का यौन सम्बन्ध हो जाता था। बाद में इसे उचित विवाह संस्कार द्वारा धर्मसम्पन्न कर दिया जाता था। काम सूत्र में इन रीतियों का आशय कहा गया है। स्वयम्बर से युवक और युवतियों (कवल राजाओं की सत्तान) का स्वतंत्र वरण का अवसर मिलता था। किन्तु कई बार स्वयम्बर के अवसर पर एकात्र द्वय राजकुमारों में युद्ध छिड़ जाता था और युद्ध करते-करते उनमें से कोई एक राजकन्या का अपहरण करने में सफल हो जाता था। सयागिता स्वयम्बर में पृथ्वीराज न जयचंद की इच्छा के विरुद्ध सयोगिता का अपहरण कर लिया था। साता और द्रौपदी का पुरपोत्तम रामचंद्र और भृशुन से विवाह स्वयम्बर द्वारा ही हुआ था। स्वयम्बर में राजकन्या उन्नी राजकुमारों को वर सन्ती थीं जो किसी निर्धारित काल को सफलता से सम्पन्न करती। इससे यह प्रकट होता है कि स्वयम्बर से सदैव राजकन्या का स्वतंत्र वरण का अवसर नहीं मिलता था। अवाचित विवाहों में से तीसरा आसुर था जिसमें बधु के माता पिता को वर या उनके माता पिता बधु मूल्य चुका कर विवाह करते थे। यह एक प्रकार का आर्थिक अनुबंध या विनिमय-सा था।

विवाह के धार्मिक या वादित्त ढंगों में ब्राह्मण देव आप और प्रजापत्य शामिल किये जाते थे। इन सबमें माता पिता अपना कन्या वर का दान (भेंट) स्वरूप दत्त थे। कन्या का बलात्कार आदि से सुसज्जित करके धन धान्य के साथ विद्वान् शीलवान् वर का आमन्त्रित करके कन्यादान करना ब्राह्मण विवाह है। ब्राह्मण विवाह ब्राह्मण वर्ण के लिए अनुमोदित था। शत्रियों के लिए प्रजापत्य विवाह का उल्लेख मिलना है। इस विवाह की पद्धति या ढंग ठीक ब्राह्मण के समान थे। शायद इसलिये ही बणिष्ठ और आपस्तम्ब का प्रारम्भिक हिन्दू शास्त्रकार प्रजापत्य का कोई उल्लेख नहीं करते। मनु ने वादित्त विवाहों की श्रेणी में ब्राह्मण देव आप के अतिरिक्त प्रजापत्य का भी उल्लेख किया है। देव विवाह में किसी ऐसे कुमार यज्ञकर्त्ता को कन्यादान दिया जाता था जो मनशाला में पुराहिण का काल उचित ढंग से पूरा करे। यह विवाह बौद्धिक मन्त्री आर्थिक स्वतंत्रता एवं गौरवपूर्ण सामाजिक प्रस्थिति का सूचक था। आप विवाह में गृहस्थाश्रम में प्रवेश के इच्छुक किसी योग्य ऋषि को कन्यादान दिया जाता था। ऋषि इस सम्बन्ध में बधु की तत्परता दिखाने के निमित्त कन्या के माता पिता को एक गाय और बने अथवा दो जाड़े बल देना था।

मनु ने ब्राह्मणों के लिये चारों धार्मिक रीतियाँ तथा शत्रियों के लिए गांधव और आसुर और वश्या तथा शृंगाल के लिये आसुर उचित बनाया था। किन्तु समस्त

परिवार एवं विवाह

प्राचीन साहित्य में उल्लेख है कि धाम्य विवाह रीतियाँ का प्रचलन सभी वर्गों में साधारण बान थी। धाम्य विवाह रीतियाँ ध्वजाछिन थीं और इसलिए ध्वजाधारण घटनाएँ मात्र। प्राजकल हिंदुओं में ब्राह्म (या प्रजापत्य) तथा आनुवंशिक विवाह प्रचलित हैं।^१ धर्म सम्म गमाना की विवाह रीतियाँ में ब्राह्म और प्रजापत्य बिल्कुल मिलत-जुलत हैं। विनु सभी सम्म तथा आदिम समाजा में प्रचलण प्रलोभन में विवाह हान की घटनाएँ भी विदुष्ट रूप में हानी रहती हैं। प्रेम विवाह धर्मवा स्वायं वरण ढग का प्रसार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। पश्चिमी देशों में इसे ही रामाय विवाह कहते हैं।

विवाह की आयु

एशिया और अफ्रीका व अन्य भागों में बच्चा का विवाह किसी भी आयु में हो सकता है। विवाह की आयु पर किसी प्रकार का बधानिक प्रतिबंध नहीं है। कुछ देशों में लड़कियाँ १२ वर्ष और लड़के १४ वर्ष की आयु के बाद बालन विवाह कर सकते हैं। बयस्क होने व पूर्व विवाह को बाल विवाह कहते हैं। भारत में बाल विवाह बहुत अधिक प्रचलित है और कई वर्षों में जाति इससे दूर होने का सब नहीं कर सकती। मुसलमानों में भी बाल विवाह की मर्यादा कम नहीं है। हमारे देश में कुछ बाल विवाह तो गिनुआ के बांच में होते हैं। ६ मास से लेकर एक वर्ष की आयु के गिनुआ का विवाह कमा कर मजान है। मध्ययुगीन भारत में (१००० में १७०० ई०) बाल विवाह बहुत अधिक प्रचलित हुआ। बच्चा का रजदशन प्रारम्भ हान व पुनार आनना में बाल विवाह का रोकन का प्रचार हुआ। अन्त में १६०६ ई० में केन्द्रीय नियानसमा न बाल विवाह प्रतिरोध बालन पागल किया। इसमें १५ वर्ष से नीची आयु की बच्चा तथा १८ वर्ष से कम व लड़के व विवाह को निश्चिन एवं मर्याद करना एवं उमर महायना देना एवं दण्डनाय बन्ध (offence) घोषित है। विनु गन विवाह व मर्याद हो जान पर उमर धवध घोषित नहीं किया जाता। भारत की कुछ व्यापारी तथा तंत्र मात्र में विश्वास करने वाली छाँटी जातियाँ में बच्चा के जन्म व पूर्व ही विवाह निश्चिन हो जाता है। भारत का क्या कहना। यह धारणियों का बनावट है। गन् १९५१ की जनगणना के अनुसार ५ में १४ वर्ष की आयु व लड़का में ६३% और लड़कियाँ में १४ ६% विवाहित थे।

भारत में पर निगे और गुमन्हन वर्गों व लड़के-लड़की का विवाह बयस्क हो जान पर हो करत हैं। भारतीय दण्डमहिना के अनुसार स्त्रीहति की आयु (age of consent) १८ वर्ष की मानी गई है। घन मर्यादी का विवाह १८ वर्ष तथा लड़के का २१ वर्ष के बाद करना ही धाम्य समझा जाता है। कुछ मारुतिक एवं धार्मिक

1 Govt of India Social Legislation—Its Role in Social Welfare Publications Division New Delhi (1956) p 40

आवश्यकताओं के कारण इन वर्गों में विवाह की आयु १८ वर्ष के ऊपर ही होने की ओर प्रवृत्त है। सन् १९५५ के हिन्दू विवाह अधिनियम के अनुसार विवाह के लिए एक आवश्यक शर्त वर और वधु की आयु क्रमशः १८ और १५ वर्ष स्वीकार की गई है। किन्तु अब भी इस 'न्यूनतम आयु' से नीचे के विवाहों को अवध नहीं ठहराया जायगा। वे केवल कानूनन दण्डनीय होंगे।

अनेक यूरोपीय देशों में विवाह की निम्नतम आयु (लड़कों तथा लड़कियाँ दोनों के लिये) कानून द्वारा निर्धारित है। बालविया आयरलैण्ड में लड़की का १२ वर्ष के पूर्व विवाह अवध है। चेकास्लावेकिया, डेनमार्क और इथियोपिया में १८ वर्ष के पूर्व बच्चा का विवाह अवध है। लड़के की निम्नतम विवाह आयु भी भिन्न भिन्न है। चिली स्पेन एवं ब्रह्म में यह १४ वर्ष तथा पश्चिमी जर्मनी में २१ वर्ष है। रूस इंग्लैण्ड फ्रांस और अमरीका में विवाह की 'न्यूनतम आयु' वयस्कता की आयु है। अन्य देशों में जहाँ विवाह की निम्नतम आयु कानूनन निश्चित नहीं है, लागू किशोरावस्था के पश्चात् ही साधारणतया विवाह करते हैं। मयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रतिबन्धन में जास्त्रिया की प्रस्थिति के आयाग के दारुह्य सम्मेलन का प्रस्तुत किया जायगा, विवाह की आयु के बारे में उपरोक्त विभिन्नताओं का उल्लेख है। इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि स्त्रियाँ की प्रस्थिति को उच्च करने के लिए यह आवश्यक है कि बाल विवाहों का रोक जाये और विवाह के बंध ठहराने के लिए सम्मति की आयु (age of consent by a woman to enter into sex relationship) को एक पूर्व दशा घोषित कर लिया जाय।¹

बाल विवाह अप्राकृतिक और समाज विरोधी है इसलिये इस पातक को अवध घोषित कर देना नैतिक और समाज हितकारी है। बाल्यावस्था में सम्पन्न विवाह अपरिपक्व कहे जा सकते हैं। इस कारण वर वधु की ज्विन सामाजिक और मनो वैज्ञानिक बिन्हा भी आवश्यकताओं का पूरा नहीं कर पाते। उलट उनसे दम्पति का स्वास्थ्य त्रिगडता है और सन्तान कमजोर होती है। अनमेल बाल विवाह उडे खतर नाक हात हैं। छोटी उम्र के विवाह में लड़का और लड़की पर अवाटनीय मानसिक और नैतिक प्रभाव पडते हैं। उनमें 'यभिचार' को प्रोत्साहन मिलता है। बाल विवाह के अभिशाप का अनेक दम्पति जीवनपयन्त भागते हैं और उनकी निराल सन्तान अपने भाग्य का बोसा करती है। बाल विधवाओं की अधिक संख्या समाज की इस मूल्यता का विडम्बनास्पद साक्ष्य है।

1 The U N Report entitled 'Consent to Marriage and Age of Marriage' to be presented to Twelfth Session of the Commission on the Status of Women to be held in Geneva in March—April 1958 (Hindustan Times Sunday Magazine Feb 23 1958)

परिवार एवं विवाह

धर्म में एक बात स्मरण रखने की यह है कि मनुष्य समाज में विवाह की उच्चतम आयु बान्धन कभी निर्धारित नहीं की जाती। स्त्री और पुरुष बृद्ध होने पर भी प्रथम या तदनन्तर विवाह करने में नहीं सन्तुचित।

विवाह विच्छेद और पुनर्विवाह

यद्यपि सिद्धान्त वाद भी समाज विवाह विच्छेद (divorce) का मान्यता नहीं देता फिर भी सभी में विवाह विच्छेद (तलाक) बान्धन स्वीकृत है और वास्तविक जीवन में होते हैं। मन्त्र श्राद्ध विवाह का उद्देश्य पुरुष और स्त्री का आजीवन एक मूल में बाँधना है। हिन्दू विवाह एक पवित्र सन्धार है धर्म एक इमक भग हान का वाद प्रश्न ही नहीं उठता। पति पत्नी आजीवन एक दूसरे में सम्बद्ध हैं और पति की मृत्यु के बाद भी पत्नी मृत्यु प्रिय नहीं मानी जाती। वह उसकी धर्मपत्नी है। इस नियम आधारणाया हिन्दू विधवा पुनर्विवाह करने में वर्जित थी। किन्तु हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम १८५६ ई० में विधवा विवाह वध घोषित कर दिया है। इस नून व पूर्व भी शूद्रा में विधवा पुनर्विवाह प्रचलित था। वह केवल द्विज वर्गों में सामाजिक और इमानिय वज्य था।

धार्मिक लागा में विवाह विच्छेद बट्टा मरल है। यदि पत्नी विच्छेद चाहती है तो वह पति में यह इच्छा प्रकट कर देती है अथवा कबीले के बड़े-बूढ़ों का धर्म इरादा की सूचना देकर अपनी मन्तान व साथ माना पिता के घर चली जाती है। किन्तु शीलका व वरा (Veddahs) आस्ट्रेलिया व आन्वामिया तथा अण्डमन बामिया में विवाह मन्वय भग नहीं किया जा सकता।

उन्नत मन्वयाना में (हिन्दू का मिनानर) बट्टा विवाह विच्छेद धार्मिक कठिन है और सम्भव नहीं है यहाँ अथवा मन्तान धार्मिक गम्भीर समझा है। जहाँ विवाह एक पवित्र सन्धार है अथवा एक सामाजिक अनुबन्ध है वहाँ इमका विच्छेद नहीं मान्य होता है जब वह धर्म उद्देश्य की पूर्ति में अग्रपन्न है। रामन बान्धन में विवाह परिवारा व बीच एक निजी अनुबन्ध मात्र था। धर्मित प्रारम्भिक ईसाई मन्ताना में भी विवाह एक नार्मिक अनुबन्ध था। धर्म (गिरजा) उगम हन्त में पार व धार ईसाई धर्म में विवाह एक नार्मिक अनुबन्ध था और इस कारण वह धर्मय था। धर्म पवित्र मन्तानगीय स्वभाव का अनुबन्ध नहीं होता है। धर्म में विवाह ही एक एना नार्मिक अनुबन्ध है जो नकाराणी देना की धार्मिक मन्तान में समान नया किया जा सकता। प्रया और धर्मन तथा बान्धन व अनुबन्ध में वही धर्मिक अनुबन्ध का नार्मिक मान्यता प्राप्त है जो धर्म प्रसार व अनुबन्ध में वही धर्म प्रसार में बटार है। टाक यही धर्मित नार्मिक धर्म व तथा धर्म उन्नत

एशियाई और यूरोपीय समाजा में विवाह विच्छेद के बारे में है। विवाह को नतिक अनुबन्ध बनाया जा रहा है जो क्वल पति-पत्नी की पारस्परिक सम्मति से समाप्त नहीं हो सकता। विवाह विच्छेद ब्रह्म है किन्तु कुछ विशिष्ट आधारों पर ही करने की अनुमति है।

दम्पति में से पति या पत्नी कोई भी एक पक्ष मर जाए तो भी विवाह भंग हो जाता है। कई बार पति या पत्नी अपने दूसरे जीवन साथी का परित्याग (desertion) कर देते हैं। इन सभी स्थितियों में पुनर्विवाह व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है। इसक लिए उसे कोई कानून विवश नहीं करता। विधुर पुनर्विवाह सामाजिक है। विधवा-पुनर्विवाह पर अनेक नतिक और सामाजिक प्रतिबन्ध लगे रहते हैं। किन्तु विधवा-पुनर्विवाह सबत्र कानूनन जायज है। प्रायः देखा जाता है कि युवा तथा सत्तानहीन विधवाएँ पुनर्विवाह की इच्छुक होती हैं। बाल अथवा युवा विधवाओं का पुनर्विवाह अब सामाजिक और नतिक दृष्टि से आवश्यक माना जाना लगा है। परन्तु फिर भी इन विधवाओं पर पुनर्विवाह के लिए कोई बधानिक विवशता कही प्रचलित नहीं है।

सती प्रथा — भारत में विधवा पुनर्विवाह को शास्त्रा में अर्धार्थिक कहा गया। इहलोक और परलोक दाना में पति पत्नी को विवाह आत्मिक एकता में बाँधता है। स्त्री के जीवन का चरम उद्देश्य अपने पतिदेव की आराधना और सेवा है। अतः विधवा का जीवन निम्सार एक दुःखमय है। इस तक के आधार पर सती प्रथा का धार्मिक मायना प्रदान की गई थी। सम्भ्रात घराने की विधवाएँ पति के शव के साथ ही स्वच्छा में जल जाती थीं। ऐसा करने पर उनका पवित्रत धर्म सफल समझा जाता था। कानांतर में सती होने की अनिच्छा प्रकट करने पर भी विधवाओं का पति की चिन्ता में जबरन स्त्री डबेल दिया जाने लगा। भयाङ्कान्त, रोनी चिन्ताती विधवा की अमहायना में उस पर निन्द्य अत्याचार कुछ विचारणीय महदय नर-नारियाँ को बजर और अमानुषिक क्रूर्य प्रनीन हुआ। अतत सन १९२६ में राजा राममोहन राय के सद्प्रयत्न से सती का उगाल सरकार ने अप्राकृतिक मृत्यु की श्रेणी में रख कर एक अपराध घोषित कर दिया। आज समस्त भारत में सती अबध है और सती हान वाली स्त्री तथा महायना दन वान सभी व्यक्तियों का अपराधी टहराया जाना है। अतः सती होने की शक्ता दुबना घटनाएँ ही गुनन में आती हैं।

परिवार के प्रकार

उपरोक्त विवेचन में हमने यह स्पष्ट कर दिया है कि विवाह के विभिन्न पहलुओं में विभिन्न मासूतिक अनकरूपता है। विवाह के आधार पर परिवार को दो भागों में बाँटा जा सकता है एक विवाही परिवार और दूसरा विवाही (अनुभार्या या बहूपति)

परिवार एवं विवाह
 परिवार। आकार के आधार पर भी दो प्रकार के परिवार मिलते हैं। विवाहावद्ध^१
 (conjugal) परिवार और स्वरि-सम्बन्धी (consanguinous) परिवार। पहले का
 प्रकार बड़ा छोटा होता है। सम्पत्ति और उसकी मलान इतना केन्द्र है। दूसरे
 प्रकार के परिवार का केन्द्र निकटस्थ नातेदार हैं। इसे मयुक्त परिवार कहा जाता
 है। आधुनिक मय्यताका म मयुक्त परिवार टट गए हैं और विवाहावद्ध या वयत्तिक
 परिवार बन गए हैं।

परिवार के सदस्यों में मत्ता के मामले में स्त्री (माता) या पुरुष (पिता) की
 प्रधानता हो सकती है। जहाँ परिवार में माता (या मामा) की मत्ता सबसे प्रबल है
 उसे मातृप्रधान परिवार और इतके विपरीत जहाँ पिता (या घर के सबके वूठे पुरुष)
 का मारी मत्ता प्राप्त है उसे पितृमत्तात्मक परिवार कहते हैं। यद्यपि प्रवाचीन
 और आधुनिक समाजों में एकात्मक समान परिवारों का उदय तीव्र गति में हो रहा है
 फिर भी कृषिप्रधान और प्राचीन समाजों में मातृप्रधान या पितृमत्तात्मक परिवार ही
 मायागततया विद्यमान रहे हैं।

मातृप्रधान परिवार

महात्वर और पत्र के अनुसार मातृमत्तात्मक और मातृप्रधान परिवार एवं
 दूसरे के पर्यायवाची नहीं हैं। किन्ती भी आधुनिक समाज में मातृमत्तात्मक परिवार
 बनी भा प्रचलित नहीं था। वे अमरीकी इरोक्वीन (Iroquois) एस्कीमो वुड
 अफ्रीकी तथा एण्डियाई जनजातियाँ (भारत की गारा खामी नगर टांग प्रादि)
 में स्त्रियाँ का परिवार में उच्च मत्ताधिकार प्राप्त रहे हैं किन्तु ध्यावन्तविक जीवन में
 मत्ता का पुरुष ही भागते रहे हैं। अतएव एम परिवारों का मातृप्रधान (मातृमत्तात्मक
 नहीं) बहना अधिक् युक्तिमय होता। पितृप्रधान परिवारों में भी स्त्रियाँ को काफी
 ऊँच अधिकार और मत्ता प्राप्त रहे मकर हैं।

मातृप्रधान परिवार में स्त्रियों की प्रगति सर्वोच्च होती है और सलान का
 नाम तथा उत्तराधिकार मातृपुत्र में ही मकरित होते हैं। इस प्रकार के परिवार के
 अधोनिहित मुख्य लक्षण हैं —

१. बच्चे का नाम मातृपुत्र में चलता है। इस मातृपुत्रीय व्यवस्था करने के।
२. बच्चा बच्चा का पालन पोषण माता के सम्भालना के पर में होता है।
 पति को भी इस पर में रचना पत्नी है। उसही स्थिति में ही एक सम्भालित स्त्रियाँ
 में अधिक ऊँची नहीं होती। पर के मामलों में उन बचन गौण स्थान प्राप्त होता
 है। अतएव प्रतिबन्धन पालन बन्धन के परिवार में इस स्थिति की प्रबल स्थिति होती है।
 अतएव व्यवस्था का मातृस्थानिक (matrilocal) बहने है।

१. अतः निकटस्थ परिवार (immediate family) भी कह सकते हैं।

३ परिवार में नारी सत्ता पति को नहीं बरन् उसके सारे (पत्नी व भाई) को प्राप्त हाती है। पत्नी के भाई की अनुपस्थिति में किसी दूसरे पुरुष सम्बन्धी को यह स्थान प्राप्त होना है। मलयद्वीप व ओहामा इंडियस में पत्नी का भाई और लावरोडर इंडियस में उसका पिता सत्ताधारी होता है।

४ मातृप्रधान परिवार से नातेदारी समूह या रक्त सम्बन्धी परिवार सुट्टा हाता है किन्तु विवाहबद्ध परिवार कम संयुक्त हो जाता है।

यह व्यवस्था साधारणतया उर्हीं जातियां में मिलती है जहाँ ब्राह्म विवाह व सिद्धान्त पर कबीला या जाति पृथक् पृथक् अतः विवाहो समूहों में विभक्त हैं। मातृ प्रधान कुटुम्ब दुनिया के बहुत से भागों में विद्यमान है। टोबरीयड (Tobriand) और मलयद्वीपों के वासियों दक्षिण भारत व मलाबार की आदि जातियां आसाम की गारो एवं खासी कबीला के कुटुम्ब मातृप्रधान हैं। संसार के सम्य समाजों में मातृप्रधान कुटुम्बों का संख्या अभाव है।

पितृसत्तात्मक परिवार

अनेक प्राचीन सम्यताओं में पितृसत्तात्मक परिवार ही प्रधानतया प्रचलित था। राम यूनान सिंधु घाटी फिलिस्तीन मिस्र एवं चीन की सम्यताओं में यही व्यवस्था प्रचलित थी। हमारी वैदिक सम्यता में भी पितृप्रधान परिवार का प्रचलन था। इसी सम्यता (पश्चात्त्य भौतिकवादी सम्यता) में भी पितृसत्तात्मक परिवार प्रबल रहा है। पितृसत्तात्मक परिवार की सुदृढ़ता और स्थाय प्रचलन के प्रमुख कारण सम्पत्ति का विकास कृषि की उन्नति सत्ता का केन्द्रीयकरण और बायों का विशेषीकरण हैं। आधुनिक औद्योगिक सम्य देशों में ये सभी बातें उपस्थित हैं। इनका पितृसत्तात्मक सिद्धान्त से सामंजस्य है। इस सिद्धान्त की कार्यपरिणति से परिवार समाज की एक ठोस और घनिष्ठता में संगठित इकाई बन गया है। मातृप्रधान व्यवस्था के अतगत समाज साधारणतया बाह्य विवाहो समूहों में विभक्त होता है किन्तु पितृप्रधान व्यवस्था में पारिवारिक इकाइयों का ठोस संगठन बहू नातेदारी समूह में बन जाता है।

पितृप्रधान परिवार से सिद्धांततः सम्पूर्ण सत्ता पितृ पक्ष में सन्निहित हाती है। कभी-कभी इस व्यवस्था का रूप संयुक्त परिवारों का होता है जसा हमारे देश में। संयुक्त परिवार में पिता के भाइयों व परिवार भागों का कोई रिश्तेदार और पुत्रों के परिवार भी सम्मिलित रहते हैं। कई बार एक परिवार में पितृ-पक्ष का चार पाँच पीढ़ियों तक एक घर में निवास करती है। इस परिवार में विवाहिता पत्नी (या पत्नियाँ) के अनिश्चित सम्पत्ती और उसकी सन्तान भी सम्मिलित हाती है। यदि संयुक्त परिवार बन्त बड़ा होता है तो उमरे वयस्कि परिवार एवं बड़े दालान व धारा तर्फ रहते हैं। किन्तु उनकी एक ही रमाई, बुझाँ मन्त्रि होने हैं और उनकी

परिवार एवं विवाह

सम्पन्न सम्पत्ति सम्पुत्र हानी है। इन मन्त्रों का स्वामी घर का सबसे बृद्ध पुत्र या पितामह होता है। स्ट्रममन व एक समाचार के अनुसार वगान व एक ग्रामाण सम्पुत्र परिवार व सम्पत्ता की मर्यादा नामा १२०० है जिसमें ६०० तो मदा एक घर में माय माय रहने है।

गिदान्त नाम प्रकार की मता और अधिकार पितामह का प्राप्त होने है। धार्मिक-सम्बन्धों द्वारा पूजा-पाठ और सामाजिक व्यवस्था पर घर के मुखिया पुत्र या प्रधान भूमिका करने पड़ता है। कुछ वर्षों पूर्व घर का मुखिया स्थानीय अधिकारण और राज्य का प्रतिनिधि माना जाता था। उस मुखिया का घर के अर्थ मना मदर्या पर बुरा धर्मिया बन मना रहती है। उनका सम्मान और श्रद्धा करना प्रत्येक मद्र्या का कर्तव्य है। मना का उनकी आज्ञा पालन करना पड़ती है। कुछ प्राचीन समय ताप्रा में पुत्र-पुत्रा का प्रचलन इन बात का माध्य है कि मरने व बाद इन मुखिया का इच्छित स्वाकार किया जाता था। रामन समाज में प्रधान पुत्र का पुत्र और पुत्री का मृत्यु होने पर भी अधिकार भी प्राप्त था। प्राचीन क्लिस्लीन में पिता मरने पुत्री का दामा रूप में अब मरता था।

इन परिवार में पुत्र का मरना विवाह की सम्पत्ति मद्रव नीची हानी है। स्त्री का क्या पला और माना नीचा भूमिकाप्राप्त में पुत्र व नियंत्रण और सम्पत्त्व में रहता पड़ता है। स्त्री का पुत्रा व अर्थों रहना धर्मिया व। उसे न तो सम्पत्ति में कोई अधिकार था और न सम्पत्तियों व सामना में किसी प्रकार का अधिकार। यौन-सम्बन्धों में स्त्री की मरना पुत्र का अधिकार स्वतन्त्रता थी। पति और पत्नी का नियंत्रणता का शक्ति मान था। पति स्वयं स्त्री व माय मनाय कर मरना था और वगानन भी। किन्तु पत्नी का परपुत्र्य माह्वय (adultery) व नियंत्रणता या अर्थ निम्न दण्ड दिया जाता था। विदाल भी पुत्र और स्त्री व अधिकारों के बारे में विवेक करता था।

मात्र व गौबा में विद्वानात्मक परिवार का जो रूप मात्र प्रचलित है उनमें भी स्त्रियाँ की स्थिति बिना नीची है। स्त्रियों का धर्म विधि का बना जाता है। घर व भीतरी भाग में व पुत्रा के वगान नियंत्रण में रहती है। उन्हें घर के बाहर जान की अनुमति अनुमति मिलती है। गवर्तनिक जीवन में उन्हें विवेक धर्मना पर पुत्रा व सम्पत्ति में ही भाग पान दिया जाता है। स्त्रियाँ का गृहस्था की तथा में वगान प्रशिक्षण मिलती है। अधिक स्थिति धर्मिया उस पर धर्म काटण प्रतिपत्ता का जाता है। स्त्री की नाकी स्थिति धर्मिया उस पर धर्म काटण प्रतिपत्ता का सम्पत्ति व। उक्त सामान का पूरा नाम नहीं दिया। विद्वानात्मक परिवार में मना और अधिकार के मद्र में सम्पत्ति पुत्र व पुत्र तथा कि स्त्री और पुत्रा वगान

रय के दो चक्र है। एक को भी निबल अथवा कम कुशल रखना जीवन की प्रगति में निश्चय बाधक होगा।

अर्वाचीन विश्व के अधिकांश आदिम समाजा और लगभग सभी अग्रय समाजा में पितृसत्तात्मक परिवार प्रणाली विद्यमान है। किन्तु वह मध्ययुगीन (सामन्तीय) तथा १८वीं और १९वीं शताब्दी के पितृसत्तात्मक परिवार का सशोधित रूप है।

आधुनिक परिवार में परिवर्तन

१८ वीं शताब्दी के अंतिम चरण में यूरोप में दो महत्त्वपूर्ण सामाजिक घटनाएँ घटीं। वे थी औद्योगिक क्रांति और जनतन्त्रीकरण का प्रसार। इनके कारण समाज में अनेक तीव्र परिवर्तना का मूलपात हुआ अथवा उन्हें बल मिला। सामाजिक परिवर्तना का परिवार पर प्रभाव अवश्यम्भावी था। उस समय का परिवार पितृसत्तात्मक था जिसकी प्रधान विशेषताएँ निम्नलिखित थीं

(१) परिवार वृत्त का बड़ा आकार और अधिक सतान (२) एक उत्पात्क इकाई, (३) पिता की सत्ता और शक्ति की भूमिका, (४) स्त्रियों का बाध क्षेत्र केवल गृहस्थी तक सीमित, (५) विवाह सम्बन्धों का विच्छेद केवल मृत्यु होने पर ही संभव था, (६) परिवार एक बहुकायकारी संस्था (७) परिवार पर रूढ़ि और धर्म का नियंत्रण।

उपरोक्त पितृसत्तात्मक परिवार (परम्परात्मक) में पिछले १५० वर्षों में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं।

जनतन्त्रीकरण व्यक्तिवादी विचारधारा एवं बौद्धिकवाद का परिवार की सत्ता पर जो प्रभाव पड़ा उससे मुखिया-पुरुष की सत्ता और अधिकार धीरे धीरे कम होने लगे। स्त्रियाँ पुरुषों की अधीनता से निकलने का प्रयत्न करने लगीं। परिवार के अग्रय सदस्य भी मुखिया की निरकुश सत्ता का विरोध करने लगे। बौद्धिकवाद तथा अग्रय सांस्कृतिक दशाओं के विकास से पितृसत्तात्मक व्यवस्था में प्रचलित मना वृत्तियों और विशेषाधिकारों का नई परिस्थितियाँ से असामंजस्य बढ़ने लगा। धर्म और राजनीति की सत्तावादी रूढ़ियाँ कमजोर पड़ रही थीं। इस बात में कि परिवार एक ईश्वर निर्मित संस्था है लोगों को अब विश्वास नहीं रहा था। प्रेम, भक्ति और पवित्रता शब्दों के अग्रय में परिवर्तन आ गया। स्त्रियाँ तथा घर के अग्रय वयस्का का मत देने का अधिकार मिलने लगा। रोमान्ट प्रेम को बहुत उच्च आशय समझा जाने लगा। धीरे धीरे युवक युवतियों को अपना जीवन साथी चुनने में राय देने का अधिकार मिला। वे परिवार के मुखिया के शासन से त्रमण अधिक स्वतन्त्र होते गये। यन्त्र-कला के कुटुम्ब की परम्परा का उन्मूलन भी कर देने में। समता-वाय और स्वातन्त्रता की शक्तियाँ ने स्त्रियाँ तथा परिवार के अग्रय संस्था को नई प्रस्थिति और भूमिका दी।

इन मास्त्रुतिर परिवर्तना को आर्थिक और श्रौचांगिक परिस्थितिया स बहुत बल मिला । व उत्तरातर तीव्रतर हा गए । नय आधिप्यारा स आर्थिक उत्पादन म जो शक्ति हुई उमसे परिवार क आर्थिक कार्यो म कमी आ गई । उसकी आत्म भरता काम हान गयी । परिवार एक उत्पादक इनाई क स्थान पर उत्तरोत्तर उप भाग इनाइ मात्र बनता गया । पुम्प और स्त्रिया दोना ही घर स बाहर काम करन जान लगे । जावन-मर उच्च करन की अभिवापा न उह सबसे सबल प्रेरणा दी । स्त्रिया का स्थान कवल घर म ही नही था । व आर्थिक स्वावतम्यन का प्रप्त कर पुम्पा की पराश्रयिता स मुक्त हान का प्रयत्न करन लगीं । विवाहित स्त्रिया घर क बाहर उद्योगो मे तो काम करती ही थी घर क भीतर भी घरतू कामा म आधिप्यारा का उपयोग कर ने काफी समय और शक्ति बचा लनी थी । एम अवकाश के समय को व साम्बुतिक काय जलापा म उपयोग करने लगी । कला और मनोरजन म उनकी रुचि और अवसर बने । इन सभका प्रभाव उनकी मनानोत्पादकता पर पडा । काशतर म परिवार म श्रौमतेन बच्चा की मर्या गिर गई ।

एम प्रकार परम्परात्मक परिवार को मरचना म तीन प्रकार क विशेष परि वतन हुए (१) विवाह तय करन म लडक-नडनिया पर माता पिता का नियंत्रण ढीना पड गया (२) स्त्रिया की आर्थिक प्रस्थिति ऊँची हुई और उनके अधिकार बडे, (३) परिवार पर धार्मिक नियंत्रण कम हा गया ।

उपरोक्त तीन प्रकार क परिवर्तना के कारण परिवार का स्थिरता मे बडा हान हुआ । व्यतिवादी विचारवाला रामाम प्रेम, काम राजगार की तनाग म गाँव से शहर और एक शहर न दूसरे शहर का निष्क्रमण घर म बाहर बोनन वाले समय म धर्मिक बद्धि कम बच्च तथा बच्चा क सालन-मानन म अधिकाधिक मुविधा परिवार क प्रभावशयक कार्यो को दूमरी विशेष संस्थाया द्वारा करना स्त्रिया की स्वतन्त्रता और अधिन अधिकार स्त्रिया की पवित्रता की धारणा म पवित्रन म परम्परागत परिवार का समूचा स्त्रमाय हो बदन गया । फिर पिछन ५० ६० वर्षो क अन्तर उपरोक्त कारका के व्यापक परिवर्तन राय के काय-श्रेत्रक विस्तार श्रौचांगिकी की प्राप्ति और नगराकरण क विस्तार मे समवाचीन परिवार बडा अस्थिर हा गया है । स्त्रि और घर म नियंत्रित इन मूलभूत मर्यादा का बतमान रूप एक नोचमुक्त वर्पातिक मर्याप व्यवस्था मे कुछ अधिन नहीं है । पति-मनी इन माय-माय रहन का एक प्रयय समभने ह । वह एक नय प्रकार की मास्त्रुती है । विवाह उत बोन एक मरन प्रतिभा मात्र है जो तनिय बनका म तनाय द्वारा तादी जा सकनी है । श्रौचांगीहन समात्रा (विश्वभर पश्चिमी यूरोपाय इ गनेड और धमराना) क मरन निधन और मरुपत्र वगी म उन सामाजिक मृचा का (स्थान का जीवन समतित पवित्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व का निभाना) जिन पर परिवार अधिन है हान हान हा रहा है । यह तनाय की श्रे सबसे अधिक है ।

अतः परिवार में चिन्ताजनक अस्थिरता आ गई है।¹ इस मूलभूत सस्या में व्यक्ति को जा शिथिलता और विघटन अनुभव होता है उससे वह सन्तुष्ट और आत्म परीक्षण को प्रवृत्त होता है। उस पारिवारिक अनिश्चितता से अनेक अनुरक्षाओं का भय भा घेरता है।²

परिवार में हाल में होने वाले परिवर्तनों का बड़ा सूक्ष्म अध्ययन किया गया है, इस विषय पर आधुनिक समाज शास्त्रियों के विचारों का सारांश दे देना पर्याप्त होगा।³

(१) परिवार के स्थानिक (spatial) और पार्थिव प्रतिमानों में परिवर्तन। परिवार अधिकतम एक उपभाग इकाई हो गया है। परिवार की अपनी सम्पत्ति दैनिक जरूरतों की वस्तुएँ ही हैं।

(२) परिवार में पति और पिता की सत्ता और अधिकारों में कमी जिससे सत्ता की समता और स्वतंत्रता में वृद्धि हुई।

(३) परिवार का छोटा आकार। माता पिता और सन्तान के अनिश्चित सम्बन्धों की सस्या में बहुत कमी।

(४) स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों और सामाजिक भूमिकाओं में कमी। एक विवाह का आदर्श सुदृष्टता में प्रतिष्ठित हो गया है। स्त्रियों की प्रस्थिति ऊँची हुई है जिससे परिवार एक नये प्रकार की साभेगारी बन रहा है। स्त्री गृहस्थी व बाहर उद्योग, व्यापार राजनीति कला एवं सस्कृति के क्षेत्रों में भी कार्य करने लगी है।

(५) सतानोत्पत्ति की धारणा और नियंत्रण में परिवर्तन। कम और नियोजित मतान स्त्रियों की सतानोत्पादकता (fertility) में कमी—सन्तति निग्रह का बढना हुआ प्रचार।

(६) परिवार केवल अनिवाय जविक और सामाजिक कृत्य वाली सस्या रह गया है। उसके रक्षात्मक कार्यों को उत्तरोत्तर राज्य हस्तगत जाता है। स्वयं परिवार की सुरक्षा और कल्याण के प्रति राज्य का ध्यान बढ रहा है। साथ ही बच्चों के पालन-पोषण की प्रगतिशील सुविधाएँ (बालगृह, क्लब, नर्सिंग, डॉक्टर) प्रमत्त बढती जा रही हैं।

(७) प्रेम-सन्तुष्टि और निराशा में बढत हुए अन्तर। रामान प्रेम तथा परिवार में बाहर यौन-सन्तुष्टि में अन्तरों में भी वृद्धि हो रही है।

(८) परिवार और विवाह सम्बन्धी व्यवहार में धार्मिकता की कमी।

(९) परिवार के सदस्यों में वैयक्तिकता एवं स्वतंत्रता की द्रमत्त वृद्धि।

1 Bogardus *Sociology* pp 57-84

2 Merrill & Eldredge *op cit* p 447

3 Cf. Maclver & Page *Society* pp 157-268 Ogburn & Nimkoff *Technology and Changing Family* (Houghton Mifflin Co Boston (1955) and J. K. Folson *The Family and Democratic Society*

१०) परिवार की बढती हुई अन्विरता और अधिक विगठन। तलाका की मक बढे। परिवार की शैक समस्याया के समाधान के लिए पुस्तका कायकर्ताया विशेष समस्याया तथा राज्य का याग आवश्यक हो गया है।

उपरोक्त विशेषण म यह स्पष्ट हो गया है कि आधुनिक या समकालीन केवल तीन आवश्यक काय हैं (१) काम इच्छा की स्थिर मनुष्टि, ज्ञान की उत्पत्ति और पालन-आपण (२) मदस्या का पाथिव सामुहिक मन्तरमक (affectional) मनुष्टिया के लिए घर (गृन्धी) की व्यवस्था। इन तीना कायों का परम्परात्मक पितृमत्तात्मक परिवार भी करता था फिर भी इनका गुण बहुत कुछ बदन गया है। बने ता आधुनिक परिवार कभी यह दावा नहीं करता कि उपरोक्त काय सिफ बड़ी कर सकता है किन्तु इनका मत्व है कि वह एसा तरीका और अवसर अवश्य प्रदान करता है जिमम पनियटना से परस्पर सम्बन्धित कुछ कायों का मन और सामजस्य हो जाता है।¹

भारत में आधुनिक परिवार

श्रीयोगिक शानि के आरम्भ म पूव यूराप म पितृमत्तात्मक परिवार का जो रूप रहा था उसी के सहज परिवार-व्यवस्था भारत म २०वीं शताब्दी के आरम्भ तक बनी रहा। लगभग १००० ईसा मे सभी तक हमारा यहाँ सामन्तवाणी प्रय व्यवस्था रहा है। उठे-बढे पितृमत्तात्मक समुत्परिवार भारत की अपनी विशेषता रही है। आज भी गहरों तथा विशेषकर गाँवा म पितृमत्तात्मक समुत् परिवार की मस्या बहुत अधिक है। किन्तु आधुनिक श्रौचांगीकरण नगरीकरण जनन-प्रवाद तथा नई ब्यक्तिक विचारधारा के प्रभाव म समुत् परिवार का विगठन बडा तेजी से प्रारम्भ हो गया है। बनकता चम्बई जिन्ना शानि महानगर म सम्मन्थक परिवार छोट छोट और ब्यक्तिक हैं जिनम दम्पति उनकी मन्तान और बूढ माता पिता प्रथवा एक-एक अविवाहित भाई-बहिन रहते हैं। विवाहाबद्ध परिवार की मस्या और उपायेयता निरन्तर बढती जा रही है। सम्भवन परिवार का यह मगठन उनके अनिवाय कायों की अधिक मप्रभाविकता और कुशलता म करने म ममथ मिद्ध हो रहा है। पाश्चाय श्रौचांगिक समाजा म प्रचलित आधुनिक परिवार की अस्थिरता एक विगठन के समान ही भारत के आधुनिक परिवार म यह प्रवृत्ति उत्पन्न शानी जा रही है। परिवार से घम का बहुत निर्दिष्ट पडना जा रहा है और विवाह एक पवित्र सम्बन्ध के स्थान पर एक गिण नागरिक अनुबन्ध माना जान गया है।²

आधुनिक परिवार का विगठन

आधुनिक परिवार का अस्थिरता इन बात की ध्यान है कि नाम गठन का

1 Maelver and Page, *op cit* p. 63

2 A. M. Kapadia, *Marriage and Family in India* Chapter XII

*गिण हरिश्चन्द्र हिन्दू परिवार सामाया मरम्बना मन्त्र मन्त्र (१९६०)।

यूनाधिक अभाव है। परिवार की पूणतया सगठित अवस्था तो शायद कभी भी नहीं रही किन्तु अपेक्षाकृत सगठन की स्थिति वही कही जा सकती है जब परिवार स्थिर हो और अपने कार्यों को अत्यधिक कुशलता से करे। अतएव सगठित परिवार (सयुक्त पितृसत्तात्मक) में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती थी (१) आवश्यक कार्यों की सर्वोत्तम व्यवस्था (२) सदस्यों में एकता अर्थात् उनमें परस्पर प्रेम स्नेह वक्तव्य और भक्ति से परिपूर्ण सम्बन्ध और परिवार के हितों के प्रति सबका सामंजस्यपूर्ण वक्तव्य (३) तात्कालिक-समाज-व्यवस्था में परिवार का सर्वोत्तम प्रभावपूर्ण इकाई की भाँति क्रियाशील होना।

पारिवारिक विगठन से उपरोक्त व्यवस्था में ऐसी अस्त-व्यस्तता का बोध होता है जब परिवार अपने नियत कार्यों को मप्रभाविकता से करने में अत्यधिक असमर्थ हो और एक समिति के रूप में बहुत अस्थिरता हो जाए। जैसे कोई परिवार पूणतया सगठित नहीं हो पाता उसी प्रकार कोई भी परिवार पूणतया विघटित होकर नहीं बना रह सकता। परिवार से विगठन की स्थिति सब प्रकट होती है जब उसके सदस्यों के हित उद्देश्य और आकांक्षाएँ परस्पर विरोधी हों अथवा उनमें इतनी व्यक्तिकता और स्वायत्तता हो कि समूचे परिवार का कल्याण खटाई में पड़ जाए। सदस्यों में स्वायत्तता और व्यक्तिनिष्ठा आते ही परिवार का स्नेह प्रेम और सामंजस्य से श्रोत प्रोत्त वातावरण कटुता विद्वेष घृणा और सधप से विपाक्त हो जाता है। परित्याग, पृथक्करण और तलाक इस स्थिति के प्रकट चिह्न हैं। विगठित परिवार के सदस्यों की अपनी भूमिका और प्रस्थिति का सही ज्ञान नहीं रहता। उनके कार्य और आचरण अनिश्चित एवं परिवार विरोधी हो सकते हैं। इसके अनिश्चित समाज-व्यवस्था की कार्य कुशलता पर भी पारिवारिक विघटन का अवाञ्छित प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति को प्रत्येक क्षण पर साधारण सामाजिक व्यवहार में अनिश्चितता और विचलितता के दर्शन होते हैं। वह प्रायः समूह-कल्याण के विपरीत आचरण करता है और जब इसका पान भी होता है तो भी उसे आत्म-ग्लानि अथवा पश्चात्ताप नहीं होता।

ध्यान रहे परित्याग पृथक्करण और तलाक पारिवारिक विघटन के बाह्य और अन्तिम लक्षण हैं। बहुत से ऐसे परिवार होते हैं जिनमें इन लक्षणों के प्रकट होने का अवसर नहीं आता किन्तु फिर भी उनके सदस्यों में कटुता, घृणा और तनाव की स्थिति बराबर बनी रहती है। अन्तिम लक्षण अथवा सत्तम परिवार में अधिक सामाजिक अथवा मनोवैज्ञानिक विघटन के कारण बने रहते हैं। ऐसे परिवारों में विगठन की प्रक्रिया कार्यरत रहती है किन्तु पूण सम्पन्न नहीं हो पाती। अतएव पारिवारिक विगठन से हमारा अभिप्राय उस दशा में है जिसमें परिवार का सगठन यूनाधिक भंग हो जाता है और परिवार अपने आवश्यक कार्यों को सप्रभाविकता से नहीं कर सकता। अस्त-व्यस्तता और अस्थिरता उत्पन्न होना विगठन है।

प्राधुनिक औद्योगीकृत समाजों में पारिवारिक विघटन की समस्या बहुत गम्भीर हो गई है।¹ परिवाराण पृथक्करण तथा तलाक़ की निरन्तर बढ़ती हुई संख्या इन चिन्ताजनक अवस्था की परिचायक है। किन्तु पारिवारिक व्यवस्था की मजदूरी पर प्रकट ज्ञान वाले इन लगणा से मही स्थिति का अनुमान लगाना बहुत कठिन है। पारिवारिक कटुता और कलह बहुत व्यापक घटनाएँ हैं। अधिकांश परिवारों में तलाक़ और तनाव समामजस्य और विघटन को बढ़ावा देते हैं। यदि सभी परिवारों में पारम्परिक स्तह और निष्ठा पूर्ण प्रान्त सम्बन्ध दान का मही भिन्न। पारिवारिक विघटन को प्रवृत्ति के मुख्य निर्णायक यह है परिवार के सुविधा की मत्ता और प्रभाव में कभी निमित्त वगैरे का विवाह को एक पवित्र सम्बन्ध मानने में इन्कार जीवनसाथी के चुनाव में युवक-युवनिषी की व्यक्तित्वता और बढ़ती हुई स्वतन्त्रता आर्थिक राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकारों की प्राप्ति में स्त्रिया की पुरुषों में होठ नया विवाहिता का घर में बाहर आय पुरुषों और स्त्रिया के साथ अधिक समय बिताना।

पश्चिमी देशों में पारिवारिक विघटन का वैज्ञानिक अध्ययन बहुत धारा बढ़ चुका है। इनके सामाजशास्त्रियों ने गम्भीर ध्वंशपूर्ण में परिवार में विघटनकारी शक्तियाँ विघटन की मात्रा और प्रवृत्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। उनका मार यहाँ दे देना पर्याप्त होगा।

पश्चिमी समाजों में तलाक़ की प्रवृत्ति जगत् में पारिवारिक विघटन अधिक स्पष्ट और तीव्र शक्ति में हो रहा है। परिवार विघटनकारक शक्तियों में मुख्य शक्तियों के रूप में सुधारवादी प्रान्तान्त है जिनमें साथ ध्वंशवाद और बुद्धिवाद धारा है। परिवार के विघटन में जो सामाजिक शक्तियाँ जिम्मेदार रही हैं उनमें में प्रमुख दो प्रकार हैं —

(१) व्यक्तित्व और विवाह सम्बन्धों प्रयोग — परिवार के सम्बन्धों में व्यक्तिक स्वायत्त मुख और प्रत्यक्ष प्रान्त के लिए प्रतिपादित होती है। वैवाहिक सम्बन्धों का वैयक्तिक हिता का पूर्ण के लिए चनाया जाता है। परिवार में हर स्त्री-पुरुष अधिकतम स्वाधीनता और स्वायत्तता चाहता है। सभी सम्बन्ध सामान्य हिता और आकांक्षाओं की प्राप्ति के लिए सामान्य प्रयत्न उही कर पाते हैं। व्यक्तित्व स्वार्थों की प्राप्ति में प्रतिपादितों के कारण पारिवारिक समामजस्य बहुत बढ़ गया है। सुगन्धी वैयक्तिक सम्बन्धों में प्रान्त की प्रवृत्ति प्राप्ति का व्यर्थ प्रयत्न होता है। विवाहित जीवन की मजदूरी का प्रमुख धाराय यौन का नृमिका का मानकर यौन के सम्बन्धों को अनिर्जित किया जाता है। जहाँ यौन-मनुष्य में बाधा

1. दलित विमर्शन पत्रिका एण्ड मिडिना-एन्त, जून (१९४३) तथा दूरान और मरिज वेमिनी इन समकिकन कन्वर (१९४३)।

पडती है वहाँ विवाहित दम्पति अपने कर्तव्यो की उपेक्षा करते पाए जाते हैं।¹ विवाह को पवित्र सत्कार मानन का विरोध किया जा रहा है और इसलिये उसे केवल एक नागरिक अनुबंध मानन पर बल दिया जाता है। विवाह के पूर्व रोमांस प्रेम का आदर्श मूल्य माना जाता है और विवाहित जीवन में भी सवेगात्मक जीवन का अधिक स्पृहनीय माना जाता है। विवाह को पूणतया धर्म निरपेक्ष सम्झना बनाने का आन्दोलन चल रहा है। परिवार में धार्मिक उद्देश्यों के स्थान पर आर्थिक तथा अर्थ धर्म निरपेक्ष हितों का प्राधान्य है।

(२) परिवार में परम्परात्मक पट्टक सत्ता का ह्रास—पिता या घर के बड़े बूढ़े के प्रभाव और अधिकारों का अर्थ सत्त्वों द्वारा उल्लंघन बढ़ता जाता है। दूसरी ओर परिवार पर सामूहिक प्रतिरोधों के नियंत्रण में भी शिथिलता आ गई है। अब परिवार के व्यवहार पर धर्म और समुदाय का कठोर नियंत्रण केवल नाममात्र को रह गया है।

(३) उद्योगों का विशेषीकरण—नगरों में बसे समस्त परिवारों में गृहस्थों के सभी आर्थिक कार्यों को विशेष आर्थिक सम्झनाओं में छोड़ लिया है। नगरों में परिवार केवल उपभोग इकाई रह गया है।

(४) नगरीकरण का प्रसार—परिवार की निष्क्रमणशीलता से नगर के अधिकांश परिवार को किराये के मकानों में रहना पड़ता है। उनके पास न तो अपना निजी घर होता है और न अर्थ धरतू दम्पति की ही अधिक मात्रा। इसका परिणाम यह हुआ है कि परिवार का आर्थिक आचार कमजोर पड़ गया है और उसकी आर्थिक असुरक्षा भी बढ़ गई है।

नगरीय जीवन में व्यक्ति के दैनिक जीवन का बहुत बड़ा भाग परिवार के बाहर बीतता है। उस अपने समुदाय से अत्यधिक घनिष्ठ सम्पर्क बनाए रखना पड़ता है। वह अनन्त समितियों और संघटनाओं का सत्त्व्य होता है। अनेक संस्थाओं का कायदा में उस व्यवहार करना पड़ता है। परिवार से बाहर के इस जटिल मसाले के नियम और रीति-नीतियों परम्परागत पारिवारिक आदर्श प्रथा और मूल्यों से मेल नहीं खातीं। इस परिस्थिति में कई बार व्यक्ति को विवश होकर परिवार की परम्परा की उपेक्षा और अवहेलना करनी पड़ती है। इससे पारिवारिक असात्मजस्य और अस्थिरता को पोषण मिलना है।

(५) स्त्रियों की भूमिका—घाणुनिक परिवार में स्त्रियों की भूमिका और प्रस्थिति में भारी परिवर्तन हुआ है। राजनैतिक क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी और स्वतंत्रता प्राप्त कर स्त्रियों ने घर में भी समान अधिकार और स्वतंत्रता पाई। इस

¹ With failure of sexual harmony the marriage structure rests on shifting sands Havelock Ellis in *Little Essays on Love and Marriage*

सभ्य की प्राप्ति के नियम उमर पुष्प प्रधान व्यवस्था को चुनौती देती और उमरके खिलाफ खूबकर विद्रोह किया। धार्मिक विकास न सिद्धांत का घर में बाहर उदात्त आदि में काय कर स्वावलम्बी बनने का प्रस्तावित किया। प्रगाथकीय विभागा शिक्षा और चिकित्सा सम्पादा और कला मनोरंजन के क्षेत्रों में सिद्धांत का राजगार के प्रचुर प्रवर्धन मिलने लगे। गृह-काय के अनिश्चित मनके अभिरुचियां न उन्हें धारण किया। नौकरा प्रथम व्यवस्था करने वाली औरता का बंधु गृहकाय के उत्तरदायित्व बड़े गुण और प्रसन्नकर लगने लगे। वे गृह-व्यवस्था का हय समझने लगीं।

क्रिया सिद्धांत में घर की चहारदीवारी में बंद थी। इस बंदी जीवन की धुन में बंद तग था गई थी। प्रवर्धन मिलने ही वे उनमें बाहर था गई और समाज के उन्मुक्त वानाकरण—डाटा का कथा गांधिया और जनमान-गृह—में वे स्वच्छन्द विचरने लगीं। घर की चहारदीवारी में बाहर की बचनी तरंगिया में सवाधिक हानी है। घरनएव कितनी ही जवान औरता न गृहस्था के ज्ञान में दूर रखकर स्वतंत्र और स्वावलम्बी जीवन विज्ञाना ही बहनेर समझा। वे उन्मुक्त वानाकरण में मनचाह पुष्पा में परिचय और मिश्रता करती और नए एव मनचाह अनुभवों का पान के नियम प्रत्येकानि धारण भी कर जातीं। विवाहित स्त्री-पुष्पा के घर में बाहर के धारण न केवल वैदुम्बिक जीवन का दुःखमय बना दिया है।

घर में बाहर निवृत्तन का बचनी का रामान भाव (romantic complex) में परिणत सम्बन्ध है। धार्मिक समाज में सिद्धांत का जीवन के प्रति रामानपूर्ण दृष्टि-बोला है। उन्हें धारण नवीनता और अनुभव का अनुभव करने का प्रतीक शक्ति लग गया है।

धार्मिक स्त्री का गम्भीरता का काम-काज कर लेने के बाद भी बंधु प्रवर्धन (Insecure) मिलता है। इस घाती समय में वह उन्माद कहानी धारण शुरू पढ़ती है और जीवन का धारण बनाने के स्वप्न देना करती है। परिणामतः उमर समय का प्रतिकारण हम धारण का या ता स्वतंत्र प्रथम प्रवर्धन रूप में प्राप्त करने के प्रयत्न में चीनता है। क्योंकि वह धारण घर में बाहर काम करती है मना रजने के नियम करके और गिनता जाता है या समा-अभिविद्या में और स्ट्र पर काम करना है इसनियम उमर दून-पुष्पा का धारण बनाने का मार्ग धारण गता है। धीरे धीरे वह धारण धारण के गुण स्वभाव में प्रमत्तुष्ट हो जाती है और मनचाह नए मनर्णों का धारण कर परिवार के बाहर मन्त्रा दूँ देता है।

(६) ध्यापारिक मनोरंजन—ध्यापारिक मनोरंजन के साधना और प्रवर्धन में धारण प्रवर्धन कृति हुई है। धारण नए धारण धारण धारण जीवन के धारण को धारण धारण धारण गता है। जहाँ एक धारण व्यक्ति नए मनरंजन नया धारण धारण धारण का निमान में धारण करने लगता है। धारण में धारण धारण, नए

पीना, नाचना, घुड़दौड़ में बाजी लगाना, वैश्यागमन, 'सोसाइटी गल्स' से मित्रता आदि पारिवारिक जीवन के आधार को ढहा देते हैं।

(७) राजनतिक दशायें—राजनतिक विचारधारा अथवा अय विचारो में प्रतिकूलता भी पति-पत्नी तथा परिवार के अय सदस्यो में असामजस्य उत्पन्न करती है। कुछ परिवारों का स्थायी विगठन केवल इसलिए हो गया कि उसके मुख्य समस्या में विरोधी धारा के प्रति भक्ति थी। कई बार जीवन के प्रति बमेल दृष्टिकोण से भी पारिवारिक कलह पनपता है।

(८) भौतिक जनति—आधुनिक भौतिकवादी सम्यता में लोचों का ऊँचा जीवन-स्तर और रहने सहने का ऊँचा खर्च हो जाना स्वाभाविक है। आइसक्रीम और दिखावा से प्रेरित स्त्री पुरुष घर के साज मवार, पोशाक भाजन रडिया, टेलिविजन बच्चा की शिक्षा बलब जीवन तथा मोटर आदि पर हैसियत में अधिक या असंतुलित व्यय कर बैठते हैं। भौतिकवादी आनन्द लाभ के लिए सरल नैतिक और आध्यात्मिक जीवन का तिरस्कार कर लिया जाता है। अतः जीवन-यापन अनावश्यक रूप से पार्थिवता का पुजारी हो जाता है। उत्तरात्तर बढ़ती हुई पार्थिव जस्तो का सदैव पूरा होना असम्भव है। इससे परिवार में असंतोष और निराशाभाव बढ़त जाते हैं।

(९) निस्सतानता—उच्च भौतिकवादी जीवन स्तर वाले वर्गों की स्त्रियो तथा पुरुषो में बाभपन (sterility) और नपुसकता (impotency) का अनुपात भी बढ़ गया है। कई बार इसी से असंतुष्ट होकर कौटुम्बिक जीवन में कटुता और कलह पैदा हो जाते हैं।

(१०) अय कारण—पारिवारिक विगठन के कुछ अय कारण भी हैं जमे निधनता प्रकारी राग और मृत्यु व्यक्तिव दोष और विपरीत सांस्कृतिक पार्श्व भूमियाँ।

यहाँ स्मरण रखने की यह बात है कि आधुनिक परिवार के विगठन में स्त्री और पुरुष दोनों का लगभग समान उत्तरदायित्व है। यह सत्य है कि स्वतंत्रताप्रिय स्वावलम्बी और मनचली स्त्रियो ने परिवार की सुदृढ़ता का भारी धक्का दिया है। परन्तु शराबी जुमारी वैश्यागामी तथा अष्ट या अपराधी पति भी परिवार को मुश्किल और समष्टि कभी नहीं रख सकते। समाजशास्त्रीय खोजो से पता चला है कि साल के अधिक भाग में यात्रा करने वाले पौजी तथा धन-मम्पन्न पति वैश्यागमा, मोमान्टी गल्ल में मित्रता और अय अबाधित यौन-सम्बन्ध करते हैं। हमारे अधि पाँश पुरुष आज भी स्त्रियो को कम अकल कन्कर उनकी हर इच्छा और अधिवार को मुचलना अपना जन्मिद अधिवार समझते हैं। पुराने जमाने की भाँति स्त्री को घरी और दामो मानना मूग्गा है। स्त्री और पुरुष परिवार रूपो रख के दो चक्र

(पहिए) है। एक व निरल हाठ ही परिवार की मुदता और समन्वय बिाड जाएंगे ।

धमरीका म पारिवारिक बिगठन का सबसे प्रबल कारण तलाक की दरें हैं । १८५६ ई० म एक सामाजिक सर्वेक्षण की रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी जिसम यह उल्लेख था कि धमरीका क प्रति ६ पुरुषा म स १ विवाह बिच्छे म प्रभावित था । लगनग १ कराड ब्यक्ति और डड लाख बच्च तलाक म प्रभावित थ । उच्च बग की धपना निम्न बग म तलाक मर ऊंची थी । विवाह बिच्छे क महत्वपूर्ण कारण धार्मिक (२१%) ब्यभिचार (१३%) क्रूरता (१%) शराबखारा (१२%) परित्याग और जुघा खनना (१०%) ब्यक्तिव मप (११%) गृह्यो म रुचि का धभाव (६%) थे ।

भाग्य क बढ-बढे नारा म तलाक क मुकद्दमा का मख्या निना-दिन बढ रही है । परित्याग और पृथक्करण क मामला का मख्या की वृद्धि म भी यहा प्रवृत्ति बाप कर रही है । यहा पर तलाक क प्रमुख कारणो म निधनता बकारी, भंग्य पापण का उपया (non maintenance) शराबखारी, शारीरिक या मानसिक क्रूरता, जुघा धरगध धमाधय या मकामक राग, ब्यभिचार परित्याग बध्यापन या नपु-मकता है । बिभेय विवाह अधिनियम १६५४ ई० तथा हिन्दू विवाह अधिनियम, १६५५ ई० न भारत म विवाह बिच्छे क कानूनी धाधारा का निश्चित कर दिया है । पाश्चाय जगत म धनक परिवार नि मन्तान है । बिगपकर उच्च और समृद्ध धराना म नपुमन पुण्या और बान्धु ब्रिया की मख्या अधिक है । इनके बिपरीत भारत म अधिका मन्तान की ममस्या बडी गम्भीर है । यहाँ प्रति वष लगनो ५० लाख धावानी बढ जाती है । तला म बढती हूद धावानी की राकयाम क बिग यहाँ परिवार नियोजन का धागानन बनाया गया है । इन कामधम का मुख्य लक्ष्य मन्तानि निग्रह को मरन बनाकर परिवार क धावार का धाग करना है ।

पारिवारिक बिाडन और बानापगय का बहा अधिल मन्वच है । ममाज-नाम्यर अनुमधानों म निड श गया है कि बिगठित परिवारो क उच्चों म धरराध का प्रवृत्ति बृन् अधिन हानी है ।

दरिद्रता का भा एक प्रमुख कारण पारिवारिक बिगठन है । मन्नेर कनह और मपय १ परिल्याप्त परिवार कभी धार्मिक मुय नहीं भा सकता ।

८

परिवार का पुनर्गठन

धार्मिक परिवार की अधिधरता और ममस्याधा का लगर कुण्ड भाग बडे मयमल हा जात है । उँ परिवार का प्राचीन धाम ही मरधेष्ट नगता है । धार्मिक परिवार का पुनर्निर्माण कर के उनी धाम की पुन प्रतिष्ठा करन की लयगतता निगत है । दरन्तु एभा मन्वर ध धारी भूल करत है । प्रदक मया लयगतिक

सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था की उत्पत्ति होती है। किसी सभ्यता की बदलने के लिए उस सम्पूर्ण व्यवस्था को बदलना अनिवार्य है। अतएव इन पुरातनवादियों का स्वप्न कदापि वास्तविकता नहीं बन सकता। पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार कृषि प्रधान, अनुद्योगिक और प्राथमिक समाज के अनुरूप था। आज के द्वितीयक जटिल, औद्योगिक समाज में वह परिवार कभी आदर्श व्यवस्था नहीं हो सकता। इस नए युग की अनक नवीन संस्थाओं मूल्या और मायताओं में हमारी आस्था है। उहाँ के अनुरूप हम परिवार का पुनर्गठन करना पड़ेगा। विद्यमान परिवार प्रणाली में आवश्यक संशोधन और सुधार करके उसे समयानुकूल बनाया जा सकता है। परिवार के पुनर्गठन के लिए जा भी कार्यक्रम और लक्ष्य अपनाया जाए उसमें विशेष बल इस बात पर दिया जाए कि परिवार अपने अनिवार्य कार्यों को अत्युत्तम कुशलता से कर सके।

पारिवारिक पुनर्गठन के लिए यापक परिवार नियोजन (समग्र नियोजन) अपनाया पड़ेगा। आधुनिक परिवार की गम्भीर समस्याएँ सभी देशों में समान नहीं हैं। अतएव पारिवारिक पुनर्गठन के किसी व्यावहारिक कार्यक्रम में देश, काल और परिस्थिति का ध्यान रखना पड़ेगा। फिर भी यहाँ पर परिवार के पुनर्गठन के कुछ साधारण सिद्धांतों का उल्लेख कर देना लाभदायक होगा।

(१) परिवार में पति पत्नी का सम्बन्ध पारस्परिक सम्मान प्रेम थड़ा और सहयोग पर आधारित हो। परिवार के समस्त सदस्यों में सहयोग और पारस्परिक दायित्व पर आधारित सम्बन्ध बनाए रखे जाएँ। प्रत्येक स्थिति में वे एक दूसरे की इच्छाओं भावनाओं और कठिनाइयों का सहानुभूतिपूर्वक समर्थन और आवश्यक कार्य करें।

(२) परिवार का वातावरण इतना उन्मुक्त उदार और सामंजस्यपूर्ण हो कि प्रत्येक के व्यक्तित्व का उत्तम विकास हो सके।

(३) विवाह की प्रणाली और रीतियों में आवश्यकतानुसार सुधार किए जाएँ जिससे दम्पति को सुखी वैवाहिक जीवन के लिए आवश्यक समायोजन करने में अवसर मिल सके।

(४) विवाह और पारिवारिक सम्बन्धों पर लागू का मांग प्रश्न देने के लिए समाजसुखी संस्थाएँ, शिक्षण और सम्पत्ति केंद्रों की स्थापना करें।

(५) लागू की समग्र परिवार नियोजन के लिए वैज्ञानिक मांग-प्रश्न और निर्देशन मिल सके। राज्य समाज सुखी संस्थाओं और परिवार तथा विवाह अनुसंधान केंद्रों का इस कार्य में विशेष महत्त्व रहेगा। परिवार की सुदृढ़ता और सुव्यवस्था के लिए आवश्यक कार्यवाही आधुनिक राज्य का एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है।

उपर्युक्त सिद्धांतों के आधार पर जिन देशों में परिवार का पुनर्गठन हो रहा है शयन भविष्य में होगा वहाँ पारिवारिक विग्रहों को निश्चय ही रोका जा सकेगा।

किन्तु परिवार में परिवर्तन लगातार होते रहेंगे। ये परिवर्तन प्रयानतया परिवारों की मर्यादा आकार और स्थिरता का प्रभावित करते हैं। क्योंकि परिवार मध्य आध्यात्मिक सामाजिक परिवर्तन का प्रतिबिम्बित करता है। यदि हम चाहते हैं कि परिवार में हानि बचाने के लिए एक विन्यायनक मर्यादा बन जाए तो हम अपने व्यवहार के अर्थ तथा के समक्ष ही अपनी सामाजिक मायनाओं का बचतना होगा। स्वयं चर्चित परिवर्तन में सामाजिक मायनाएँ व्यवहार के अर्थ तथा में मदद पड़ने वाली हैं।

परिवार का भविष्य अंधकारमय नहीं है। शायद अब तक के समाज के अनुभव न इस मर्यादा का हमारे अस्तित्व के लिए अनिवाद्य सिद्ध कर दिया है। साम्यवादी दृष्टि में परिवार का समाप्त कर उसके बायों का विनाश मर्यादा में बौद्धिक का एक प्रयत्न होगा। समाज की जानी थी कि यह प्रयास सफल होगा और परिवार और परिवार की मर्यादाएँ समाप्त हो गईं। किन्तु यह प्रयास विनाशकारी और साम्यवादी दृष्टि में समाज के स्वस्थ और समृद्ध जीवन के लिए परिवार का अनिवाद्य प्राथमिक मर्यादा मानने योग्य है।¹

समाज के अंदर और मर्यादा में परिवार की जा व्यवस्था विकसित हुई है उसमें स्पष्ट है कि समाज और परिवार के अंतर्गत बचतना के अनुभव बचतना की समझ परिवार में है। उसका आवश्यकतानुसार पुनर्मूल्यांकन (revaluation) अथवा पुनर्निर्देश (reorientation) हो सकता है। शायद इसीलिए आधुनिक परिवार के परिवर्तन का पालन या अस्तित्व (demoralisation) नहीं रहता। वह हम परिवार का पुनर्मूल्यांकन प्रवृत्ति कहता है।²

राल्फ लिटन परिवार के भविष्य पर बहुत आशापूर्ण प्रभावित हैं। उन्होंने लिखा है कि राजनीति या विनाश हमारे लिए जो प्रलय बना रहे हैं उसमें भी अन्तिम मनुष्य अपने जीवन के अन्तिम क्षणों का अपना अपनी और मर्यादा की आज्ञा में रहना होगा।³ मर्यादा की उपस्थिति जिसे समाज में है हर समाज के अर्थिकात्मक मर्यादा अर्थिक मानसिक और सामाजिक आवश्यकताओं की सर्वोत्तम और मर्यादा पूर्ण विवाह और परिवार की व्यवस्था में ही स्थित रहेगी। अर्थिक और जनसंख्या परिवार बचतना के पालन एवं प्रशिक्षण के लिए सर्वोत्तम मर्यादा सिद्ध हुई है। समाज में अन्तिम बचतना की अनुभव विवाह और परिवार में निष्पादित होता है जो मर्यादा मर्यादा और परिवार की वास्तविक और स्थिरता के विकास के लिए प्राथमिक उत्तेजक हैं। मर्यादा की भावात्मकता में परमाणविक जाति की अन्तर्जातिक विन्यायना और मानव मर्यादा का उत्तम केन्द्र बना होगा।⁴

1 W. W. Rostov *The Dynamics of Society* Secker and Warburg London (1953) p. 100

2 Yellom *Family and Democratic Society* New York (1953)

3 Ralph Linton *The Natural History of Family* p. 38

4 Bogardus *Society* p. 116

परिवार की सुदृढता और संरक्षण समाज के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। इस तथ्य का स्वीकार कर आधुनिक राज्य वित्तीय सहायता, कर नीति और सामाजिक कानूनों के माध्यम से परिवार के विकास और स्वस्थ सम्पन्न जीवन के संरक्षण के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। बहुविवाह, दहेज, स्वतंत्र प्रेम, आदि संस्याओं को अवध घोषित करना इसी दिशा में प्रयत्न है। ऐसे कानून बन गए हैं जिनसे तलाक देना सरल बात नहीं रही। स्त्रियों की अवस्था में सुधार के लिए भी अनेक उदार कानून बने हैं। इसके अतिरिक्त वध्यावृत्ति को अवध करार देना भी परिवार की स्थिति को दृढ करने का उद्देश्य से किया जाता है। प्रत्येक दश में बेकारी तथा निधनता को समाप्त किया जा रहा है और आवास-योजनाएँ (housing schemes) चला कर परिवारों के रहने की समुचित व्यवस्था की जा रही है। स्वास्थ्य सुधार और सुप्रजनन योजनाएँ भी चल रही हैं। इन समस्त प्रयत्नों का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव परिवार की सुदृढता और स्थिरता पर अच्छा ही पड़ता है। परिवार का कल्याण आधुनिक राज्य का एक आवश्यक काम हो गया है।¹

1 Cf Alva Myrdal *Nation and Family* Folsom *The Family and Democratic Society* Kapadia *Marriage and Family in India and Plans of India China Russia and also Family Welfare Programmes in U S A Canada U K Sweden and Germany*

धार्मिक और राजनीतिक सस्थाएँ

अर्थ व्यवस्था

प्रत्येक समाज में लागू का मुश्की और समृद्ध जीवन बितान की उच्च इच्छा होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें अनेक प्रकार का धनन आवश्यकताएँ मनुष्य करना पड़ना है। मूल-ध्यान वस्त्र और भोजन का प्रबंध करने में मनुष्य की प्रारम्भिक क्रिया आवश्यकताओं का पूर्ति होती है। इनके उपरान्त न जाने पर उसका जीना सम्भव है। किन्तु मनुष्य जीवन भर में मनुष्य नहीं रहता। वह सुख और सुविधाओं से सम्पन्न जीवन बितान का आकांक्षी करता है। इसलिए भावन वस्त्र और भोजन के अतिरिक्त उसकी आवश्यकताओं में धनक प्रकार की सुविधाजनक और वित्तानितापूर्ण वस्तुओं का समावेश होता है। इन सबका धार्मिक आवश्यकताएँ कहते हैं। इनकी पूर्ति के लिए हम सब धार्मिक क्रियाकलाप करते हैं जिनसे धनक प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन कर हम अपना पारिवारिक कल्याण बढ़ाने की चেষा करते हैं। जीवन को पारिवारिक सुख-समृद्धि बढ़ाने के लिए धार्मिक क्रियाओं में हम जिन गांधी का उत्पादन करते हैं उन्हें सम्पत्ति कहा जा सकता है। इसी सम्पत्ति के उत्पादन विनियम और उपभोग के लिए प्रत्येक समाज में कई धार्मिक सम्थाएँ और समूह तथा समितियाँ स्थापित होती हैं। जिनके अन्तर्गत्त में सब जटिल सामाजिक व्यवस्था कहते हैं। धर्म-व्यवस्था अन्तर्गत विनियम सम्थाओं का वह जटिल समूह है जिनके माध्यम में मनुष्य की धार्मिक क्रियाओं की अनुसंधान होता है।¹ धर्मशास्त्र जल्द ही एक समाज के सम्थाओं के बीच सब धार्मिक सम्थाओं के प्रतिमान का धर्म-व्यवस्था बन सकते हैं।

धार्मिक समाजों का धर्म-व्यवस्था में केवल विविध सामाजिक सम्थाओं में विनियम-कारण और सम्थाओं का समावेश ही नहीं होता बल्कि धनक क्रियाओं का भी

1 An economic system is the complex of related institutions through which the economic activity of man is expressed

जिह उन्नतिशील बना दिया गया है। समाजशास्त्र के विद्यार्थी का समाज अथ व्यवस्था के अध्ययन में मुख्य उद्देश्य अथ व्यवस्था के आन्तरिक कार्यों को समझना नहीं है। वस्तुमा का उत्पादन, उनकी मांग और पूर्ति विनिमय के माध्यम, द्रव्य और साधन की व्यवस्थाएँ प्रबंध, वितरण और उपभाग आदि समस्याओं का अध्ययन अथशास्त्री का विशेष अध्ययन क्षेत्र है। समाजशास्त्री की विशेष दिलचस्पी यह दखन में है कि आर्थिक क्रियाओं तथा हमारे सामान्य जीवन के दूसरे पहलुओं में क्या सम्बन्ध है। हम अथ-व्यवस्था का सामाजिक संगठन के एक अंग के रूप में अध्ययन करते हैं। इसलिए प्रस्तुत अथ-याय में हम निम्नांकित प्रश्ना का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे। (१) सम्पूर्ण सामाजिक संगठन को अथ-व्यवस्था किस प्रभावित करती है? विशेषकर समाज की अथ-सस्यामा पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है? हमारे रहन सहन और साधन के साधारण ढगा पर अथ-व्यवस्था का किस सीमा तक प्रभाव पड़ता है?

आर्थिक सस्या

हमारे समाज में कसी अथ व्यवस्था है यह समझन में अधिक कठिनता नहीं होती। हम अथन समाज की आर्थिक सस्यामा को अपक्षावृत्त सरलता से समझ सकते हैं। किन्तु अतनी जानकारी मात्र से हमारा काम नहीं चलता। हम मानव समाज की अथ-व्यवस्थाओं को समझना जरूरी है तभी हम आर्थिक सस्यामा और अथ-सस्यामा के अन्त सम्बन्ध का भली भाँति समझ सकते हैं।

प्रत्येक समाज में हम प्रविधिया का एक व्यवस्था देख सकते हैं जिसका प्रया जन पर्यावरण का शापण कर मनुष्य की जीवन निर्वाह की आवश्यकताओं का पूरा करना होता है। इन समस्त प्रविधिया के याग को अथ-व्यवस्था का प्राविधिक पक्ष कहते हैं जो आर्थिक सस्या का अतुन महत्वपूर्ण भाग है। सामाजिक संगठन के अथन पहलुओं पर इस व्यवस्था का व्यापक प्रभाव पड़ता है। किन्तु प्रविधि आर्थिक सस्या का एक भाग मात्र है। प्रविधिया के आग पास विकसित होने वाली प्रथाओं विचारा, आस्थाओं एवं मिथ्या विश्वासा का महत्त्व हमारे लिए अधिक अथपूर्ण है। इन सबका सम्बन्ध करवाना न हाना है जस प्रविधिया का उपयुक्त उपयोग, उपकरणों का स्वामित्व प्रविधि के उत्पादना (उपजा) का वितरण उत्तराधिरार और प्रविधि के सम्बन्धित अथक सम्पाण। समकालीन समाजों में आर्थिक प्रथाओं और आस्थाओं पर प्रविधि के व्यापक प्रभाव के कारण कई बार गम्भीर समझाए पदा हा जाती हैं। अथन एक आर्थिक सस्या का प्रविधिया का योग मात्र मानना भूत हागी। आर्थिक सस्या में प्रविधिया के याग के अनिरिक्त प्रथाओं और आस्थाओं की जल्पिता का भी समावेश जाना है। आर्थिक सस्या की परिभाषा करत समय इन चीजों का ध्यान रखना चाहिए।

‘जीवन निवाह की आवश्यकताओं की मनुष्टि के लिए पर्यावरण के मापन (उपयोग) में सम्बन्धित प्रविष्टियाँ विचारा और प्रयास के जटिल का धार्मिक मस्या कहते हैं।¹

अथ-व्यवस्थाओं के प्रकार

प्रत्येक मानव समूह किसी न किसी भौगोलिक क्षेत्र में रहता है। उस क्षेत्र में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का उपयोग कर ही वह अपना जीवनयापन करता है। इन साधनों का उपयोग क्या और कितना होगा यह बात उस समूह की मनुष्टि पर निर्भर होती है। साधारणतया सर्वोत्तम मनुष्टि वाले समान की अथ-व्यवस्था सबसे अधिक विकसित होती है। अथ-व्यवस्था का संगठन और विकास किमा मानव-समूह और उनके प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के बीच अन्तःक्रिया पर निर्भर होता है। विभिन्न समाजों का प्राकृतिक पर्यावरण और उनकी मनुष्टि एक दूसरे से अलग माने जाती है। अतः समाज में अथ-व्यवस्था का उपस्थिति स्वाभाविक है। अध्ययन की सुविधा के लिए हम समाज की समान अथ-व्यवस्थाओं का चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं

- (१) सङ्ग्रही अथ-व्यवस्थाएँ (collecting economies)
- (२) सरल रूपांतरकारी अथ-व्यवस्थाएँ (simple transformative economies)
- (३) जटिल रूपांतरकारी अथ-व्यवस्थाएँ (complex transformative economies)
- (४) मिश्रित अथ-व्यवस्थाएँ (mixed economies)।

सङ्ग्रही अथ-व्यवस्थाएँ—समाज के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकांश मनुष्य धर्म धार्मिक भागों का अथ-व्यवस्थाएँ द्वारा श्रेणी में आते हैं। ये भाग शिकार या मछली मार कर प्रकृति में से पौष्टिक, वस्तु-सूत्र प्राप्त धार्मिक का एकत्र या संग्रह कर अपना जीवन निवाह करते हैं। इन भागों को न तो कृषि करना पड़ता है और न पशुपालन भी। वस्त्र और मकान की आवश्यकताओं का भी ये प्रकृति प्रदान वस्तुओं में पूरा करते हैं। इसमें अथ-व्यवस्थाएँ धर्म समाज के जीवन का दुर्लभ हैं। हमें यह स्पष्ट है कि सङ्ग्रही अथ-व्यवस्थाओं में प्राकृतिक पर्यावरण में उपलब्ध वस्तुओं का संग्रह कर उनका उपयोग करना आधारभूत धार्मिक क्रियाएँ हैं।

सरल रूपांतरकारी अथ-व्यवस्थाएँ—सरल प्राकृतिक उद्देशों का मान्य दलों में स्थापित कर दिया जाता है। कृषि और पशुपालन की अथ-व्यवस्थाएँ एकीकृत हैं। यद्यपि इन वस्तुओं में मनुष्य की आधारभूत धार्मिक विचारों बड़ा संग्रह होता है और

¹ The common institution is the complex of techniques ideas and customs relating to the exploitation of the environment for the satisfaction of substance needs. Jones *Basic Sociological Theory* p. 244

उनकी अधिकांश सफलता अनुकूल प्राकृतिक दशांश पर निर्भर रहती है फिर भी इनमें मनुष्य के जीवन निर्वाह की समस्या अपेक्षाकृत अधिक सरल हो जाती है। वह अपने जीवन-यापन के लिए प्रकृति पर पूणतया आश्रित नहीं रहता। अपने सरल शौजारों एवं अभ्यासों से वह पशु पालकर उनकी मृत्यु में वृद्धि कर, और बेती कर अपनी खाद्य समस्या बहुत कुछ सरल कर लेता है। ज्यों-ज्यों वह अच्छे शौजार और अभ्यास जानता जाता है प्रकृति पर उसका नियंत्रण बढ़ता जाता है। वह प्रकृति की दासता से धीरे-धीरे मुक्त होने की चेष्टा करता है। वह प्रकृति की प्रक्रियाओं को अधिक अच्छी तरह समझता जाता है और इसीलिए अपनी वर्तमान और भावी आवश्यकताओं के अनुसार अधिक साधना की पूर्ति की योजना करता है। सरल रूपान्तरकारी अथ-व्यवस्था में लोग नए और अधिक कुशल शौजारों की सहायता से प्राकृतिक पदार्थों को निरंतर संशोधित कर नए-नए उत्पादन करते हैं। इस स्थिति में वे अपने पर्यावरण साधनों का अधिक कुशल उपयोग करने में मग्न होते हैं। अनेक प्रकार की कारीगरियाँ अथवा सरल शौजारों से निर्मित उपजें मनुष्य को अनेक समृद्ध साधन उपलब्ध कराती हैं। कला और दस्तकारी इस अवस्था की प्रमुख आर्थिक क्रियाएँ होती हैं। धीरे-धीरे दस्तकारी में इतनी उन्नति हो जाती है कि कालांतर में आर्थिक तथा अर्थ-समस्याओं में जटिल अन्त-सम्बन्ध विकसित हो जाता है। इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्थाएँ आज दुनिया के अनेक पिछड़े समाजों में विद्यमान हैं।

जटिल रूपान्तरकारी अर्थ-व्यवस्थाएँ—इन व्यवस्थाओं में लोग अधिकांशतः ऐसी वस्तुओं को वरतते हैं जो प्राकृतिक पदार्थों से निरंतर भिन्न हैं। यहाँ प्रकृति की उपजा को अच्छी सामग्री मानकर उन्हें अनेक जटिल प्रक्रियाओं से उत्कृष्ट पदार्थों में निर्मित किया जाता है। हमारे जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक गान-पान वस्त्र, मकान आदि सभी से सम्बन्धित पदार्थों को क्षतिचालित बड़े-बड़े कारखानों में विशाल मात्रा में उत्पादित किया जाता है। जीवन के लिए सभी प्रकार की आवश्यकताओं—अनिवार्यताओं, सुविधाओं और विलासिताओं—की पूर्ति के लिए अर्गणित वस्तुओं का उत्पादन होता है। हमारी रचियाँ मानक और जल्द से सभी ता अत्यधिक विचित्र होते हैं और वे सरल प्रक्रियाओं से निर्मित पदार्थों से सतुष्ट नहीं होते।

जटिल रूपान्तरकारी अर्थ-व्यवस्थाओं में औद्योगिकीकरण का अत्यधिक विकास होता है। आधुनिक समय देशों जैसे अमरीका इंग्लैण्ड जर्मनी, फ्रांस, पूर्वी यूरोपीय देशों और रूस की अर्थ-व्यवस्थाएँ इसी प्रकार की हैं।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्थाएँ—जिन देशों के जनवासी विभिन्न प्रकार की आर्थिक क्रियाओं को एक ही समय में करते हैं उनकी अर्थ-व्यवस्था मिश्रित कही जा सकती है। हमें तो समझना चाहिए कि कोई एक देश नहीं होगा जिसमें कुछ प्रकार की प्राथमिक आर्थिक क्रियाएँ विस्तृत अनुपस्थित हों। परन्तु फिर भी कुछ देश इतने अधिक विक

सित हो गए हैं कि उनम उग्रन कृषि, बुटीर उद्योग और विकसित उद्योग ही प्रधान प्राथमिक क्रियाएँ हैं। इन देशों की अर्थ-व्यवस्थाएँ मूलतः औद्योगिक बही जा सकती हैं। इनने अतिरिक्त समार के अर्थिकाण देशों की अर्थव्यवस्थाओं म न तो कृषि और दग्तकारी ही अधिक विकसित हैं और न व्यापार तथा उद्योग। ऐसी अर्थव्यवस्था को मिश्रित कहने ह। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्र म मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का अर्थ ऐसी व्यवस्था है जिममे पूँजीवाणी और समाजवाणी अर्थ-व्यवस्थाओं का आबलम बनावण मिश्रण हो। भारत जापान इगलैंड की अर्थव्यवस्थाएँ इसी श्रेणी म रखी जाना हैं।

आज ससार म रूस तथा अमरीका सबसे अधिक औद्योगिक देश हैं। किन्तु अमरीका पूँजीवाद के चरमोत्कप का उदाहरण है और रूस समाजवाद के अपूर्ण विकास का। पश्चिमी यूरोप क देशों बनावडा तथा जापान म जो औद्योगिक अर्थ व्यवस्था है वह अमरीका और इगलैंड क बड़ा अनुरूप है। पूर्वी यूरोप क देशों मे साम्यवाणी रूस क अनुरूप अर्थव्यवस्था है। इन दोनों प्रकार की औद्योगिक अर्थ व्यवस्थाओं ने अतिरिक्त भारत चीन आस्ट्रेलिया 'पूँजीलैंड' ग्रहा कोरिया, इंडो चीन मिस्र तथा दक्षिणी अमरीका क रूशा म अथ भी कृषिप्रधान अर्थव्यवस्थाएँ हैं परन्तु इन सभी देश म औद्योगिकरण की प्रगति बड़ी तीव्रगति म हो रही है। सबसे आगे की दान तो यह है कि जनतंत्र और समाजवाद के कारण इन देशों म औद्योगिकरण की प्रगति म समाजवाणी प्रवृत्ति भन्नबनी है।

कृषि प्रधान अर्थ व्यवस्था और सामाजिक जीवन

कृषि प्रधान अर्थ-व्यवस्था का सामाजिक जीवन पर सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव म पहना है कि सम्पूर्ण जनमत्या भूपतिया और कृषकों के दो प्रधान वर्गों म विभक्त हो जाती है। समाज म भूपतियों का सर्वश्रेष्ठ सम्मान और प्रतिष्ठा जानी है। मनुष्य की सामाजिक प्रतिष्ठा इस दान मे नापी जानी है कि उमके परिवार के पाम भूमि की कितनी मात्रा है। तू कि भूपतियों का भूमि पर पट्टन स्वामित्व होता है इपनिच उनको सम्मान को केवल एक ही दान मीमती पहनी है कि उन पट्टक भूमि का स्वामित्व उनके पास बस बना रह। तूस्वामित्व के मरदाण के त्रिग भूपतियों (जागीर दारा भवायों या जमींदारों) म परम्पर प्रतिद्विन्दित और मपय जाना है। बन्धु इस प्रकार का मपयमय जीवन भूपति दग क लागे मे बीरता और शीघ के गुण विकसित कर नेता है। भारत क राजपूतों म परम्परागत बीरता और मपयमय जीवन का शायद एक प्रमुख कारण यही है। किन्तु दूसरी ओर पट्टक भूस्वामित्व इस दग क सोगा को घमनी और विनाशिताप्रिय भी बना नेता है। जीवन के माधना की निश्चित और नियमित प्राप्ति हो जान के कारण उन्हें बहिन जीवन मपय ननी करना पड़ता। कृषकों की माहा बमार्द का ब-पायण वर्गे सारा और मव म बरत रहत है और यदि मपय के माग म कोई व्यक्ति अथवा दग बाधक बनता है ता उम पर नृ-म

अत्याचार करने में जरा भी नहीं हिचकते। भूपति वग की भूमि पर स्वामित्व बनाए रखने की इतनी प्रबल इच्छा होती है कि वे इसकी सत्तुष्टि के लिए प्रत्येक त्याग कर सकते हैं। वे ऐसे किसी विचार या सस्था को नहीं पनपने देते जो उनके अधिकारी को चुनौती दे सके। परिणामतः बृषका और मजदूरों (भूमिहीन) का शोषण निरन्तर बढ़ता जाता है और वे उत्तरोत्तर निधन और असन्तुष्ट होते जाते हैं।

भूपति वग के ऐश इशरत की जिदगी बिताने के कारण कुछ अबाधित प्रयाग्रा और सस्थाग्रा का जन्म होता है। दासी प्रथा, वेश्यावृत्ति, जुआ और मर्त्रिपान इसके उदाहरण हैं। विलासी राजा और नवाबों के दरबारों में अनेक नचये गवये, वेश्याएँ और लौडियाँ पलती थीं। कुछ मदाचारी भूपतियों ने कलाकारों, विद्वानों आदि को भी आश्रय दिया था। राजपूत और मुगल काल में संगीत, नाटक, कविता, मूर्तिकला, चित्रकला और भवन निर्माण कला (वास्तुकला) का बहुत भव्य विकास हुआ। कुछ राजाग्रा और नवाबों ने बड़े सुन्दर राजधानी नगरों का निर्माण करवाया।

वृषि प्रधान अर्थ-व्यवस्था वाले समाज में धार्मिकता बड़ी प्रबल होती है। लोग दबो शक्तियों की पूजा करते हैं और अनेक प्राकृतिक शक्तियों को अधिष्ठाताओं की पूज्य देव मानते हैं। इसका कारण यह है कि वृषि में सफलता बहुत कुछ प्रकृति की अनुकूलता और उदारता पर निर्भर है। दूसरे मनुष्य के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन पर प्रकृति की गहरी छाप लग जाती है। वह सदैव प्रकृति के प्राणों में रहना बसता और काय करता है। इसलिए उसके आर्थिक अभ्यासों, भाजन, वस्त्र, मकान, विचारों, दर्शन, साहित्य और कला पर प्रकृति का व्यापक प्रभाव होता है। वह प्रकृति की अपार शक्ति में भयभीत भी होता है परन्तु उसकी उदारता का कायल भी। प्रकृति को वह अपनी सहचरी मित्र और कल्याणकारिणी समझता है।

वृषि प्रधान व्यवस्था में मनुष्य का प्रवृत्ति इतनी उन्नत नहीं होती कि वह प्रकृति के विनाशकारी कार्यों पर नियंत्रण पा सके। इसलिए उस बहूधा विनाश, निराशा और विफलता सहनी पड़ती है। इसका फल यह होता है कि वह भाग्यवादी और दाशनिक् प्रवृत्ति का हो जाता है। भारतीय लोगों का भाग्यवादी और अध्यात्मवादी होने का एक प्रमुख कारण यह है कि इनका अर्थ-व्यवस्था लीघकाल तक वृषि प्रधान रही है। किसी अनपढ़ या गँवार भारतीय बूढ़े के पास जानकर बात करिए। उसकी बातों का भाव अध्यात्मवादी दाशनिक्ता और भाग्यवादिता में सराबोर पाइयगा। शायद, सरल जीवन और उच्च विचार का उद्देश्य उसका भौतिकीय परिशोधन करता है। वृषि प्रधान व्यवस्था में अधिकांश जनसमुदाय को केवल अनिवाय आवश्यकताएँ ही मनुष्ट करने के साधन उपलब्ध हैं। व्यापक त्रिद्विना अथवा निम्न जीवन स्तर इसकी विशेषता है।

वृषि प्रधान समाज में प्रथाग्रा और परम्पराओं का धोलमाला होता है। सामाजिक विचार और सम्प्राण भी रुढ़िवादी या मनातनता हो जाते हैं। इसलिए समाज में

पवित्र बन घीडा और और घोर होना है। वरिष्ठ हिन वाले का समाज की वरमान व्यवस्था म काइ मूलमन परिवर्तन करन के विचार होन है।

एन समाज म गति और मत्ता मत्तनयक साग) क हाप म हाती है जो मा ना भूपति हा भयवा भूपतियो क प्रानतिक और मनित्र प्रवधा स सम्बद्ध हा। जनतयाप शासन और काभूता समता की स्थापना हाता भसभव होना है। समाज क मलापारी कषों का धनक काभूती विरोधाधिकार प्राप्त होने है।

वृषि प्रधान समाज म भवहाया दीन दुस्तिबा की सहायता करता धनीमागी साग) की वृषातुना गानगीतना और न्या पर निभर रहता है। मरिदर पमाला धनाधानय और दरिद्र शरणालय सभी तो दानगीत और दयालु धनिको क सम्पाण म हाउ है। इनी प्रकार दबी प्रसाया महाभारिया भयवा धन्य विपत्तिया म पीडित लोग) की महायता यही बग करता है। परन्तु ध्या रह निरागिन दीन-दुगी और पीडिता को दया-महायता पान का कोर् अधिवार नही हाता। इस प्रकार मामा जिज मुरसा का प्रथम समाज या राज्य की कोर् विरोध मत्या या समिति नही बनती।

इन समाज म मरुति का प्रसार-वेद भूपति बग मान जात है। उनकी बग भूषा शक्तिरिवाज) विचारा तथा विद्यामी का धनुकरण क्षेप जनममुत्पाय करता है। समाज म धम राजनीति आदि क्षेत्र) म मनुत्व करना भी इही लोग) की कषी ती मागी जाती है।

वृषिप्रधान व्यवस्था म मामाय जीवन का प्रम ऋतुमा के प्रम क साथ रहना बदलता रहता है। विवाहादि मन्वारा का सबसे उपयुक्त धवसर तय हाता है जब लाग वृषि-काय म गवने बय ध्यमन हो। हमारे देश म गर्मी की प्रतु म सबसे अधिर व्याह शादी हात है। इनी प्रकार धानद और उन्नाम म भरे पय और त्योहार भी एते समय होत है जब प्रवृत्ति म मोर और उन्नाम ध्या हो। हमारे यहाँ का दाहरा दिवाली और होती इसके मुदर उगाहरण है।

पूजोवाद के सामाजिक प्रभाव)

काशी मन्व काय मे पूजोवाद न मत्तार को सवा की है और मत्तार काय भाग) म यह धार्मिक प्रणाली धमी तात माभशयक काय पर रही का के बह धानोरर भी इमम वाभा को म्बीकार बनत है। हिन्दु गिक मुग) म पूजोवा) का धरने मून रूप म बनाण रगना समाज) क मिड हा रहा है। वरमान समाज पर पूजोवा) क साभरर का गतिपि विवरण नीच निया जा रग है —

(१) जीवन स्तर की उन्नति—पूँजीवाद न औद्योगीकरण को खूब विकसित किया जिसके साथ प्रौद्योगिकी का विकास भी होता गया। औद्योगीकरण और प्रौद्योगिकी के विकास से पूँजीवादी देशों के आर्थिक माधन का बहुत व्यवस्थित और कुशल उपयोग हुआ। गुणों में उत्तरोत्तर अच्छी तथा प्रचुर वस्तुओं का निर्माण हुआ। वर्तमान युग में वस्तुओं और सेवाओं की विविधता और प्रचुरता का प्रमुख श्रेय पूँजीवादी प्रणाली को है। इससे समाज का जीवन स्तर और सतोप स्तर निरन्तर ऊपर उठा है। जनसाधारण के जीवन में सम्पन्नता बढ़ी है। पार्थिव जीव की सम्पन्नता के समान ही शिक्षा स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है जिससे साधारण आदमी को भी सरलता से सस्ती वस्तुएँ और सेवाएँ उपलब्ध हो सकी हैं। पूँजीवाद ने ज्ञान विज्ञान के विकास को जो प्रोत्साहन दिया उससे मनुष्य सम्यक् ही नहीं हुआ किन्तु अनेक शोषण तथा अवैधताओं में जीवन की सुशुभता, सुरक्षा और सुदीर्घता के बढ़ने का अवसर मिला है। भयङ्कर से भयङ्कर रोगों का उपचार खोज लिया गया है जिससे मानव का जीवन कम कष्टमय और दीर्घजीवी हो गया है। इससे जनसंख्या में भारी वृद्धि हुई है।

(२) जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण—पूँजीवाद के पूर्व जीवन के साधन बड़े परिमित थे। साधारण आदमी बहुधा अविचलता, अभाव और निराशा का जीवन बिताता था। अतएव वह अत्यधिक भाग्यवादी होता था। जीवन में आशा और सम्मान लेकर टिके रहने के साधन बहुत कम थे। किन्तु साधनों की प्रचुरता और सरल उपलब्धि के कारण मनुष्य अभावों के कष्ट से बचा। उसके जीवन में अनिश्चितता और निराशा भाग। आर्थिक स्वतंत्रता के कारण उस जीवन में जीभर महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी करने का अवसर मिला। वह स्वाभिमानी हुआ और गुनी, सतोपी तथा आशावादी जीवन जितान लगा। उस अपने बल-बूझ और पराक्रम पर भरोसा करने का मंत्र मिला। इससे भगवान् के भरोसे रहने की प्रवृत्ति क्षीण हो गई।

(३) सस्कृति और सभ्यता का विकास तथा प्रसार—परिवहन और संचार की उन्नति तथा व्यापार के विस्तार में गतिशीलता की विभिन्न सस्कृतियों का सम्पर्क हुआ। उनमें परस्पर आदान-प्रदान हुआ। उन्नत सस्कृतियों के सम्पर्क में आकर अविश्वसित और आदिम सस्कृतियाँ भी विकसित हुईं। पश्चिमी विकसित सभ्यता की पार्थिव सुखसुविधाएँ आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देशों का मिल सकीं। उन्हें भी सभ्यता को अपनाने का लोभ हुआ जिससे उन्होंने अपना राजनैतिक आर्थिक और साम्प्रदायिक विकास करने का प्राणपण से प्रयत्न किया। पूँजीवाद की उन्नति ने जहाँ साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का फनाया वहाँ उनको विरोधी शक्तियाँ—राष्ट्रवाद और श्रेयशक्ति—को भी प्रोत्साहित किया। पूँजीवाद के प्रसार से समस्त मसतत आज एक छोटा गमुनाय बन गया है। मनुष्य में विज्ञान मानवता और विश्व-धुव की भावनाएँ बढ़ती जा रही हैं। समय और स्थान की समझाएँ अब एक समाज को दूसरे

समाज में पृथक् नहीं रख सकती। आज समाज के निम्नो भाग की कोई धरना मन्त्र प्रपना प्रभाव डालनी है।

(४) वग-सघष—पूँजीवादी समाज का दा प्रतिकरोधी वर्गों में बाँटना है। एक वग में पूँजीपति होते हैं जो सब प्रकार से साधन-सम्पन्न होते हैं। दूसरे वग में श्रम जाँची जो साधनहीन होते हैं और उन अपने श्रम को बेचकर जीवन-निवाह करते हैं उनके बीच की खाई निरंतर बढ़ती है क्योंकि साधनहीनता का गोपण और उनका प्रबोधन उमम अधिकाधिक सम्मान्य भरता है। फलतः उन दाना वर्गों में वग मुद्ध की प्रवृत्ति उत्पन्न होना जाती है। यह सामाजिक धार्मिक जीवन का दूषित और विषाक्त मय बताती है।

(५) बेकारा और सामाजिक विघटन—पूँजीवाद में धार्मिक स्वतंत्रता केवल शक्तिशाली और साधन-सम्पन्न की होती है। श्रेय लोभा को बचकर शक्ति हारकर नियम और व्यवहार हीन की स्वतंत्रता होती है। घोर नियमना धाय और धन के वितरण में विषमता बकारी और वस्तुहीन श्रम-आधार इन लोगों के व्यक्तित्व और परिवार का विघटन कर देता है। पाण्डित्य अपराध, बान्धवपाद, भ्रष्टाचार और पाप पूँजीवादी समाज की अनिवाय विपणनाएँ हैं।

(६) व्यापारिक मनोरंजन के दोष—पूँजीवाद में नारा का मार्ग मनोरंजन मुनाशान्तर व्यापारियों के हाथ में चला जाता है जो मुनाफा के लोभ में देश की शिक्षित और कृषिगत मताभावनाओं का प्रमत्त करने के लिए पाप श्रम-आधार व्यभिचार तथा धन करत वाली श्रम शाना को रडिया टेलिविजन और फिल्म द्वारा प्रसारित या प्रदर्शित करते हैं। उष्ण शराब और नग्न वामुत्त नया का सम्मानहीन डानन वान बनना नाचधरा तथा सिगरेटों में श्रमिगत मुक्क-मुक्किया का व्यभिचार और कृषिगत जीवन में मगबोर किमा जाता है।

(७) विरोधों में भरा सामाजिक जीवन—पूँजीवाद में सामाजिक जीवन विराधा में भरा जाता है। उमम सम्पन्नता और शक्तिशाली विनाशिता और मुक्करी श्रम और श्रम शाना श्रमण और दामना दुबला और बकारी श्रम-आधार श्रमण का मितन है। इस कारण समाज में भारी विषाक्त और श्रम-आधार फलता है। यह श्रमि धनक प्रसार में श्रमिगत श्रम-आधार का उरमाता है। मता और धन के मत् में घनी, निरन्तर और दमिा पर नमम श्रम-आधार करते हैं जिम प्रतिशोध का श्रम-आधार भावना भक्तकी है। सम्पति शता और शौच्य का श्रम-आधार जनमाधारण में इनकी शार प्रनाभन और शानमा क्यते है शिम उमम कुप्रवृत्तियाँ उत्पन्नी है।¹

(८) धार्मिक हिता की प्रबलता—पूँजीवादी में मनुष्य का जीवन में धार्मिक श्रम मयम प्रबल शान है। यह धनक प्रतिशक्ति के मुक्कवत में श्रम-आधार तभी मित

1 J. F. Coker, *Social & Apple on Century-Crosses Inc New York (1951) p 419*

सन्ती है जब यह आर्थिक साधनों की बढ़ती हुई मात्रा का स्वामी होता जाए। धन मनुष्य के जीवन का एक मात्र उद्देश्य धन कमाना होता है। निधनता सामाजिक अनादर बुलाती है और इसलिए पाप है। सम्पन्नता सामाजिक प्रतिष्ठा और ऊँची प्रस्थिति लाती है। जीवन की प्रत्येक क्रिया का सफलता या विफलता का मूल्यांकन आर्थिक आधार पर होता है। कला साहित्य आदि की सफलता इस बात से आँकी जाती है कि उनकी उपजों की कितनी विक्री होती है अथवा उनसे कितना लाभ होता है। दूसरे प्रत्येक बात का मूल्यांकन आधार और सत्या के आधार पर होता है। 'सत्य बही है जिसे अधिकांश लोग सत्य कहते हैं। भौतिक समृद्धि ही जीवन का चरम लक्ष्य रह जाता है। फलतः नतिकता ईमानदारी सदाचार और आध्यात्मिकता की उपस्था कर भी आर्थिक समृद्धि के लिए प्रयत्न किया जाता है। जीवन के प्रत्येक काय का प्रत्येक आर्थिक प्रतिफल ही माना जाता है। समाज की सभी गर आर्थिक संस्थाएँ और दृष्टिकोण अव्यक्तिक जटिल अथ-व्यवस्था की प्रबलता से प्रभावित हो जाते हैं।¹

समाजवाद

समाजवाद का जन्म पूँजीवाद के अंतर्विरोधा अर्थात् पूँजीवाद समाज के वर्गभेद वर्गघर्ष और शोषण स्थिति के प्रति भावात्मक विद्रोह व प्रतिक्रिया के कारण हुआ। औद्योगिक क्रांति के प्रभाव में यूरोप और विशेषकर इंग्लैण्ड का समाज कुछ ऐसी विपन्नताओं से ग्रसित हो उठा, जिनमें १९वीं शताब्दी के व्यक्तिवाद की आदर्शवादिता का खोखलापन व्यावहारिक स्तर पर स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो गया। तत्कालीन समाज दो वर्गों में बँट चुका था। उद्योगी तथा माली पर पूँजीपतियों का स्वामित्व नियंत्रण और अविचार था। वे सुखी और सम्पन्न थे। दूसरी तरफ सवया अकिंचन और दरिद्र श्रमिक वर्ग था। पूँजीपति वर्ग जो सिर्फ मुट्ठी भर था इस विशाल मजदूर वर्ग का घोर शोषण करता था। सामाजिक अत्याय और विपन्नता की इस दुःखदायी स्थिति ने सवेदनीय लोकनायकों को समान में भाग्य परिवर्तन करने की प्रेरणा दी। फलतः उस विचारधारा का उद्गम हुआ, जिसके मध्ययुगीन पोपक श्रेष्ठ साइमन राउट ओवेन सिसमण्नी और प्राधा आदि थे तथा जिनके सदा न्तिक विचारों को काल भाव्य और एजल्स के विचारों ने पूरणा दी।

समाजवाद के विचार ही रूप हैं। मार्क्सवादी समाजवादी मार्क्स से पूर्व के समाजवादीयों को आदर्श अथवा कल्पनापूर्ण (utopian) समाजवादी कहते हैं और मार्क्स को वैज्ञानिक समाजवादी। श्रेष्ठ साइमन ओवेन फरिअर आदि समाजवादी मार्क्सवादीयों के अनुसार ओवेन आदर्शवादी समाजवाद ही जानते थे। उन्होंने समाजवादी की स्थापना कर उमर आदर्शों को मूल रूप प्रस्तुत करते कोई वैज्ञानिक योजना

नहीं प्रस्तुत की। इसके विपरीत काल मार्क्स ने समाजवादी सिद्धांतों की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की और यह भी बताया कि समाज की स्थापना और विनाश कम विधा जाए।

मार्क्स समाजवाद का समाज की एक स्थिति विशेष का भी अपरिहाय परिणाम मानने थे। समाज में जब यह स्थिति छा जायगी समाजवाद के प्रादुर्भाव को कोई नहीं रोक सकता। इस तरह मार्क्स का समाजवाद उमक पूर्ववर्ती आदर्शवादी, समाजवादीयों की तरह एक ऐसा आदर्शात्मक स्थिति मात्र नहीं थी जिसकी स्थापना मनुष्य और मानव समाज के समस्त व्यक्तिगत और सामूहिक विवेक और मर्दच्छा पर आश्रित है। मार्क्स का दृष्ट विश्वास था कि समाज प्रगतिशील है और जिन विकासशील नियमों के आधार पर समाज की अवस्थाएँ आज तक बदलती रही हैं उन्हीं नियमों की क्रिया से पूँजीवाद समाज भी बदलगा और समाजवादी समाज की स्थापना होगी चाहे मनुष्य इन पमान कर या न कर।

समाजवाद की शाखाएँ

समाजवाद का जन्म पूँजीवादी समाज के दृष्टिगत श्रमत्याचारा के प्रति भावनात्मक विद्रोह और प्रतिक्रिया के कारण हुआ इन्सान विभिन्न समाजवादी विचारों का नूतन जावाद के विकल्प अथवा स्थानापन्न के रूप में जिस व्यवस्था की कल्पना का उमक आदर्शों में स्वाभाविकताएँ एतता थी। परन्तु समाजवाद की प्राप्ति के इला या साधना में बहुत भेद था। मजदूर सघवाद (syndicalism) शिल्प सघवाद (guild socialism) समष्टिवाद (collectivism) और साम्यवाद (communism) तथा धराजकतावाद (anarchism) सभी समाजवाद के नाम से पुरार जाते हैं और इनके अर्थों में तात्त्विक एकता भी है। वर्तमान युग में समाज के पुनर्निर्माण की का योजना समाजवादी कर्ते जा सकती है। इसलिए जोह (Joad) ने कहा है कि 'मानवशास्त्र एक ऐसा टोपा है जिसकी गवन सभी लोगों के पहिनने में विगड नहीं है।'¹

और तोर पर समाजवाद की विभिन्न शाखाएँ का हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं (१) विरासवादी समाजवाद (Evolutionary socialism) (२) क्रान्तिकारी समाजवाद (Revolutionary socialism)। यद्यपि इन दोनों प्रकार के समाजवाद में अदृश्य समान है फिर उन प्राण करने की रीतियों में बड़ा अंतर है। विरासवादी समाजवाद यह विश्वास करता है कि समाज का पुनर्निर्माण क्रान्तिपूर्ण सावधानिक रूप में समाज के अतिरिक्त श्रमजगत और स्वतंत्र विचारों के सम्मेलन

- 1 H W Laidler *Social Economic Movements* T Y Crowel Co New York (1945) for an historical and comparative survey of socialism communism etc systems of reform and reconstruction
- 2 Socialism in short is a hat which has lost its shape because every body wears it C. E. M. Joad *Modern Political Theory* (1943) p 40

है। इसके लिए देश के सविधान की मर्यादा का सम्मान करते हुए समाजवादी दल प्रजातन्त्रीय ढंग से राज्य सत्ता हथिया लें और कल्याणकारी राज्य की स्थापना कर समाजवाद की स्थापना करें। समष्टिवादी और ब्रिटेन के फबियन समाजवादी (Fabian socialists) इसी प्रकार के समाजवाद में विश्वास करते हैं। सत्तार के अन्तर्गत युरोपीय, अफ्रीकी और एशियाई देशों में समष्टिवादी समाजवाद को प्रजातान्त्रिक समाजवाद के नाम से पुकारा जाता है। इस तरह के समाजवादी राज्य को बनाए रखने के पक्ष में है और इसलिए राज्य का अधिक शक्तिशाली बनाया जाता है। सामाजिक हितों का संरक्षक तथा समाजवाद की स्थापना का प्रमुख माधन राज्य ही होता है। धीरे धीरे उद्योग और व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण किया जाता है और राज्य के सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रमों को बढ़ाया जाता है। संक्षेप में, राज्य का स्वशक्तिशाली बनाकर उस समाजवाद की स्थापना के लिए रक्तपातहीन क्रांति का साधन बनाया जाता है।

इसके विपरीत क्रांतिकारी समाजवाद में समाजवाद की स्थापना क्रांति द्वारा की जाती है। इसमें उथल-पुथल, हिंसा और रक्तपात के उपायों का बुरा नहीं माना जाता क्योंकि वे एक महान् उद्देश्य की पूर्ति के माधन माने जाते हैं। इसमें यह विश्वास पाया जाता है कि धन की प्राप्ति के लिए हर प्रकार के साधन उचित हैं।¹ पूँजीवाद का विनाश क्रांति में करना आवश्यक माना जाता है। दूसरे क्रांतिकारी समाजवाद राज्य को भी शोषण और अत्याचार का ही एक साधन मानता है। अतएव वह अन्ततः उसमें विनाश के पक्ष में होता है। धीरे धीरे ऐसी समाजव्यवस्था निर्मित की जाएगी जब राज्य अनावश्यक होगा और मुरझा कर सूख जाएगा।² इस तथा पूर्वी यूरॉप के दशकों में क्रांतिकारी समाजवाद का ही बोलचाल है। पिछले विश्व महायुद्ध (१९१६-४५ ई०) के बाद उत्तरी अमेरिका, चीन, उत्तरी इंडोचीन में भी यही व्यवस्था स्थापित है।

आदर्श समाजवाद और वैज्ञानिक समाजवाद के इन विभिन्न रूपों के कारण समाजवाद के सही अर्थ का एक जटिल समन्वय उत्पन्न हो जाता है। दूसरे, समाजवाद के अर्थ में राजनैतिक और आर्थिक दोनों पक्षों का परिच्छिन्न मत है। इन दोनों पक्षों की पृथक्-पृथक् विवेचना न तो सम्भव है और न अपेक्षित। समाजवादियों में राजनैतिक और प्रशासकीय संगठन के बारे में यही विभिन्नता है फिर भी उनमें आर्थिक उद्देश्यों (संवैधानिक पक्ष) में पूर्ण एकता है। सर्वत्र अनुसार समाजवाद वह सामाजिक व्यवस्था है जिसका आधार समता का सिद्धांत है। इसमें सम्पत्ति का समान वितरण होता है तथा सामाजिक न्याय के आधार पर व्यक्ति और समष्टि का जीवन चलता है। इसकी प्राप्ति के लिए चार प्रमुख सिद्धांतों का स्वीकार किया जाता है

1. Ends justify the means
2. The State will wither away

चरम कल्याण देखता है। धर्म और अध्यात्म उसके लिए अनावश्यक हैं। आज उस स्वाभिमान है और अपने जीवन पर गव।

(२) समता, 'याय और स्वतंत्रता—समाजवादी समाज के प्रत्येक सदस्य को दूसरा के साथ पूरा आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक समता है। प्रजाति, रंग, धर्म, लिंग अथवा दश के आधार पर व्यक्ति-यक्ति में ऊँच नीच का भेद नहीं रहता। सारा समाज बग विहान है। समाज में दलितता का कोई चिह्न नहीं। आर्थिक अथवा सारा की समता है। आय और सम्पदा का वितरण में केवल अनिवाय असमानता ही है। इसी प्रकार पेशे राजगार धर्म राजनीतिक ससंग आदि की स्वतंत्रता है। व्यक्ति को पूरा रोजगार और काम पाने का अधिकार है और व्यक्ति तथा परिवार दाना को सामाजिक सुरक्षा पाने का अधिकार। इस प्रकार, समाज में आर्थिक और सामाजिक शोषण और विषमता बगभेद, दरिद्रता, वेश्यावृत्ति और बकारी का निराकरण हो गया है और सामाजिक आर्थिक याय तथा समता स्थापित हुए हैं। इसने मानववाद (humanism) का अपूर्व प्रोत्साहन मिला है।

(३) ऊँचा जीवन स्तर—समाजवाद भौतिकवादी व्यवस्था है। इसमें सम्पदा के अधिकतम उत्पादन का अवसर उत्पन्न किए जाते हैं। प्रौद्योगिकी की उत्तरोत्तर प्रगति से उत्पादन में तीव्र वृद्धि नभव हो गई है। इस सम्पदा का यायपूर्ण वितरण होता है। आय और सम्पत्ति में लोग में 'गुननम विषमताएँ रहती हैं। शिक्षा स्वास्थ्य आवास परिवहन और संचार तथा कला और मनोरंजन का स्वस्थ समाजोपयोगी विकास जीवन स्तर को वास्तविक रूप से उन्नत करता है। समाज सेवा और सुरक्षा की सेवाएँ इनकी प्रयुक्त होती हैं कि व्यक्ति और परिवार का वास्तविक कल्याण बहुत अधिक होता है।

(४) सस्था को समाज उपयोगिता—प्रत्येक सामाजिक सस्था का प्रधान प्रयोजन समाज हित होता है। जिस सस्था में इस गुण का अभाव है अथवा जो समाज विरोधी हितों को पूरा करती है उसका अस्तित्व अगम्य है। कला साहित्य, मनोरंजन सभी को समाज हित में सिद्धि करनी पड़ती है। उच्च राज्य नियंत्रण तथा शिक्षण में समाजोपयोगी बनाया जाता है। पूँजीवादी समयक इन्ने सारणीकरण बहूकर समाजवाद की आराधना करने हैं। उनकी आलोचना गलत है। सच बात तो यह है कि सस्य जम समाजवादी पेशा में शिक्षा पान विज्ञान कला, मनोरंजन आदि का सर्वोत्तम विकास हुआ है।

(५) सुखमय पारिवारिक जीवन—परिवार की पार्थिव आवश्यकताओं को अच्छी पूर्ति होने का कारण उन आर्थिक दशावा की चोट नहीं मझनी पड़नी है। यच्चों का पालन पोषण शिक्षा और सम्पत्ति के स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था होने के कारण पारिवारिक जीवन बस सुखमय है। व्यभिचार का अग्रमरा को बहुत कम तथा

व्यवस्था का मसौदा उपमूलन कर लिया गया है। इसमें दम्पति का जीवन प्रेम और सहयोगपूर्ण हो गया है।

(६) ग्राम और नगर के जीवन में 'पूतनम भेद'—पूर्वजीवानी धार्मिक समाजों में ग्राम तथा नगर के समाजों में भारी भेद होता है। दाता समाज के अन्तर्गत ग्रामों में एक दूसरे के विस्तृत विपरीत होते हैं। समाजवादी देशों में ग्रामीण जीवन के विकास को महत्त्व नहीं दिया जाता। ग्रामों पर नगरों की पूर्ण प्रबलता नहीं होती। राष्ट्रीय जीवन में लोगों का समान अवसर प्राप्त होना है। गाँवों की धार्मिक प्रतिष्ठा तथा स्वास्थ्य परिवर्द्धन और मजदूर सन्तुष्टि समीक्षा का यथासम्भव विकास किया जाता है। अतएव गाँवों में भी नये जीवन की सभी सुविधाएँ उपलब्ध होनी हैं।

(७) सामाजिक आयोजन—समाजवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य धार्मिक समस्या धार्मिक आयोजन है। देश के धार्मिक विकास के लिए इसका मसौदा बनाने के लिए समस्त उपाय किए जाते हैं। अतः समस्त आयोजन आवश्यक हो जाता है। सामाजिक आयोजन समाज प्रभुत्व प्राप्त होता है। सामाजिक सभ्यता के भी इसी रीति-रिवाज समाजों पर तथा सामाजिक स्थिरता और सुरक्षा के लिए क्या किया जाय, यह सभी धार्मिक समाजों का धर्म होता है। आयोजित समाज के विभिन्न धर्मों तथा व्यक्ति और समाज के हितों में सुखद समायाजन समाज का विशेषता है।

(८) उन्नत और आन्तरिक सामुदायिक जीवन—राष्ट्र के समस्त पक्षों और उत्पन्न बहो धर्म धर्म में मनाय जाते हैं। राज्य उनका आयोजन में महायत्न देता है। पक्षों और समाजों में जनसाधारण का उन्माह और भावपूर्ण सम्मिलन इसमें ही सम्भव हो जाता है कि साधारण दैनिक जीवन में घृणा विषाद और सपथ के बहून कम अवसर मिलते हैं। गाँव और नगरों तथा कानूनिकों में सामुदायिक सामाजिक मसौदा के प्रतिष्ठ, सहानुभूतिपूर्ण और स्वभाविक होना है। विराट समाज (mass society) होने पर भी समाजवादी नगरिकों में मधुर सामुदायिक सम्बन्ध बन सकते हैं। उच्च मर्यादा धार्मिक विद्यमता और सामाजिक सभ्यता का उच्च धर्मत्व ही समाज के विकास का एक महत्त्वपूर्ण कारण है।

धार्मिक समस्याओं का समाज पर प्रभाव

विदित है कि हमारे समाजवादी पूर्वजीवानी और समाजवादी अर्थव्यवस्था का उन प्रभावों का विस्तृत विचार जो मनुष्य के व्यवहार और धार्मिक समस्याओं पर पड़ता है। विदित है कि १४० वर्षों में जो धार्मिक परिवर्तन हुए उनका समाज पर पड़ना क्या और व्यापक प्रभाव पड़ा इसका भी यथासम्भव संकेत किया गया है। समाज में इन धार्मिक परिवर्तनों में कुछ समाजों के परिवारों का पक्ष और समाजों में समाजवादी वादावली हुआ है कि उनका प्रभाव और पुनर्जात रूप में किसी प्रकार समाजों का उद्वेग हो सकता है। धार्मिक समाजों में समाजों में

आर्थिक समस्याएँ इतनी महत्वपूर्ण हो गई हैं कि समस्त जीवन के समस्त पहलुओं पर आर्थिक रंग चढ़ गया है। हमारा सारा व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन भौतिकता में सराबोर हो गया है। हम कई बार सोचने लगते हैं कि सम्पूर्ण सामाजिक संगठन और परिवर्तन का एक मात्र कारण आर्थिक कारण है। किन्तु इस प्रकार की धारणा गलत है। हम पहले ही माकम के आर्थिक निधारणवाद की आलोचना कर चुके हैं। यद्यपि आर्थिक समस्याएँ आधुनिक समाज में बहुत महत्वपूर्ण हैं किन्तु मानव व्यवहार और समाज की गर आर्थिक समस्याओं (परिवार, राज्य, धर्म, शिक्षा, साहित्य, कला और मनोरंजन आदि) के निधारण का एक मात्र कारण उन्हें नहीं माना जा सकता। मानव सम्बन्धों की सम्पूर्ण जटिलता में विविध समस्याओं का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। समस्त समस्याओं का एक दूसरे से अलग निभरना का सम्भव है। हा एक बात अवश्य है : देश-काल परिस्थिति के अनुसार इनमें से किसी विशिष्ट समस्या का दूसरा की अपेक्षा अधिक प्रबल हो जाना सम्भव है। अमरीका इंग्लैंड आदि पूँजीवादी देशों में आर्थिक समस्याएँ प्रबल स्थिति में हैं। समाजवादी और साम्यवादी देशों में राजनीतिक समस्याएँ प्रबल हैं। यह स्थिति केवल अस्थायी-कालीन है। पूर्ण समाजवाद कायम होने ही विभिन्न समस्याओं में अनावश्यक अमनुष्यता समाप्त हो जाएगी।

किन्ती भी समाज की प्रगति के लिये उसकी आर्थिक उन्नति अनिवार्य है। दरिद्रता मनुष्य की सभ्यता का बुरा बुरा बुरा है। यह मनुष्य और समाज दोनों के सुखी जीवन की शत्रु है। दरिद्र मनुष्य अनिश्चय और अशान्ति का कारण बन कर मरता-मरता ही मर जाता है। दरिद्रता की सहचरी बंकारा है। इन दोनों के साथ आर्थिक शोषण और विषमता रहते हैं। इन सबका संयुक्त प्रभाव समाज पर इतना गंभीर पड़ता है कि समाज में यापन अक्षयता फैल जाता है। राजनितिक भ्रष्टाचार और अस्थिरता बढ़ते हैं। वगैरे-वगैरे वेश्यावृत्ति बाल्यापराध और अपराध व्यक्तियों और पारिवारिक विघटन सभी का बड़ा भयानक रूप हो जाता है।

हम देख चुके हैं कि पूँजीवादी समाजों में अत्यधिक आर्थिक विषमता उत्पन्न भिन्नताएँ और बंकारा उत्पन्न हुआ है। उनकी सामाजिक सुस्था भी बुरा गई थी किन्तु प्रौद्योगिकी के अपूर्व विकास ने एक नए प्रकार की बंकारा को जन्म दिया है। व्यापारिक संकट आतं रहते हैं। कृषि और उद्योग में अति उत्पादन उत्पन्न आर्थिक साम्राज्यवाद स्थापित करने की प्रार्थनाएँ शिवा है। इन अत्यधिक-विकसित या निष्पन्नता की पूँजीवादी समाजों में आर्थिक और प्राविधिक गहनता बढ़ती है उन पर अपना प्रभाव जमाना चाहते हैं तथा उनका धर्म-धर्म मानना में बार-बार हस्तक्षेप करते हैं। दूसरे अत्यधिक आर्थिक उन्नति तथा सम्यता के अपूर्व विकास ने पूँजीवादी समाजों में व्यक्तिगत वंशानुत्पत्ति बाल्यापराध और राजनितिक भ्रष्टाचार का सबसे अधिक विकास किया है। वंशानुत्पत्ति पारिवारिक जीवन भी तथाकथित तथा अत्यधिकता का शत्रु है।

पर पन्ता है और यदि प्रौद्योगिकी को समाज हित में न स्तमाल किया जाए तो इससे बहुत बड़ी सामाजिक हाता हो सकती है।

श्रीद्योगीकरण के सामाजिक उपलक्षण¹

वर्तमान युग में विकसित ममाजों की सबसे प्रमुख विशेषता है उनका अत्यधिक श्रीद्योगीकरण। श्रीद्योगीकरण से राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि बढ़ती है उसकी सामरिक शक्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रस्थिति भी सुदृढ होती है। यही कारण है कि आज सम्य और उन्नत देशों की सामर्थ्य का प्रतीक उद्योग हैं। श्रीद्योगिकवाद (Industrialism) मभ्यता का मूल दशन हो गया है। यदि हम आधुनिक उन्नत समाजों में जीवन का विश्लेषण करें तो हम नात होगा कि उसके प्रत्येक पहलू पर श्रीद्योगीकरण का गहरा सघात हुआ है। और श्रीद्योगिक दृष्टि से विलकुल अछूत अथवा कम विकसित देशों में सामाजिक जीवन पर भी श्रीद्योगीकरण का प्रभाव कम नहीं है। श्रीद्योगीकरण के कारण सामाजिक मरचना आर्थिक और राजनतिक सस्थाओं मृत्या और रसा घम में संस्कृति आदि में जो परिवर्तन परिवर्द्धन हुए हैं उन्हें श्रीद्योगीकरण के सामाजिक उपलक्षण (social implications) कहते हैं। आइए, अत्र उन्ही की विवचना करें।

श्रीद्योगीकरण का मुख्य उद्देश्य आर्थिक है। बड़े बड़े उद्योगों की स्थापना का मूल उद्देश्य वस्तुओं का विशद मात्रा में उत्पादन है। यदि ये उद्योग गैर मरकारी नीती व्यक्तिया अथवा मभूता के स्वामित्व में हात हैं तो उनसे बहुत बड़ी मात्रा में सस्त माल या उत्पादन कर अविदितम लाभ कमाया जाता है। लाभ कमाने की लालसा ज्या ज्या बढ़ती जाती है उद्योगों पर स्वामित्व और नियन्त्रण समाज हित की दृष्टि से न हाजर नीती नाभ में लिये हाता है जिसका उग्र रूप हम पाश्चात्य दशा के पूजीवात् में देखने को मिलता है। किन्तु जहाँ उत्पात्ति के सभी बड़े साधनों पर समाज या राज्य का अधिनार होता है वहाँ बड़े बड़े उद्योगों की स्थापना का मूल उद्देश्य राष्ट्रीय मम्पत्ता में वृद्धि कर जनमाधारण के जीवन-मन्तर को उन्नत कर हाता है। श्रीद्योगीकरण के विकास से आर्थिक विकास में बग को बढ़ाया जा मरना है। यह स्पष्ट है कि आधुनिक युग में वही देश अपनी स्वतन्त्रता और मम्पत्ता की रक्षा कर सकता है जो आर्थिक दृष्टि से समृद्ध है। सनिक सामर्थ्य का आधार भी आर्थिक मम्पत्ता है।

श्रीद्योगीकरण में आर्थिक प्रभाव बड़े मन्त्वपूर्ण हात हैं। विशद मात्रा, सस्त और अचछ माल में उत्पादन से जनमाधारण की पार्थिव आवश्यक्ताओं की उत्तरोत्तर अचछी मन्तुष्टि होती है। उनका जीवनमन्तर ऊँचा होता है। उच्च जीवनमन्तर में लोग नी आनश्यक्ताएँ भी फिर खूब बढ़ता हैं। उनकी पूर्ति के निय नए-नए

1 Social implications of industrialization

काम धन पा और व्यवसाय कायम हान हैं। जीवन की मुख मुविधा के लिय गिना स्वाम्भ्य, मनोरञ्जन भवननिर्माण पक्वहल और सञ्चार सभी क्षेत्रों की उन्नति होती है। उन सब में विविध विशेष पना या व्यवसायों का विकास होता है। हम यह धमरोकर जो औद्योगिक दृष्टि से मत्थयिक उन्नत दश हैं धम विभाजन और विभागीकरण की जटिल व्यवस्था इन तथ्य की सा गी है। उद्योगों के केन्द्रीयकरण ने जगत् की मन्था में धमिज तथा धम मन्थयिक कमचारी व्यापारी दूकानदार व्यवसायी धादि के जमघट से बड़े-बड़े नगर बनल हैं। यद्यपि औद्योगीकरण ने पहल भी नगर ध किन्तु औद्योगिक शक्ति व पश्चात् मन्थर में नगरों की विभाजना और मन्था में धमूव वृद्धि हुद है। औद्योगीकरण और नगरीकरण के विकास के साथ प्रविधि की उत्त गतर प्रगति धवश्यम्भावी है। प्राविधिक उन्नति न उद्योगों में धमिनकीकरण (rationalization) का विस्तार हाना है। हमने नई-नई और धमिक कुशल ममानें जगावर उत्पादन प्रविधाओं को श्रेष्ठ कर उत्पादन बढाया जा सकता है। ममानों की कायधमता में बद्धि से धमिका की मन्था में कमी करना धावश्य हो जाता है। मजदूरों की धमता में बकारी बढता है। धमर छोट उद्योगों तथा वृष्टि पर औद्योगीकरण का बटा हानिकर प्रभाव पढता है। पूँजीवादी धमन्धवम्या में वृष्टि तथा छोट उद्योग बढुषा ममान्धराय हा जात है। छोट-छाग के विनाग में भी बकारी बढती है और यति वृष्टि का मन्थीकरण भा बिया जाय ता भी वृष्टि मजदूरों में बकारी बढती है। बकारी की यह ममस्या औद्योगीकरण तथा प्राविधिक उन्नति के साथ मयनवरर हानी जाती है जब तब नि धमिधरित धमगति का धमय उचित रोज गार न सिध का फिर उनक नचिन निर्वाह के लिय सरर्य या मन्थाज की धार में ममुचिन प्रबध न बिया जाय। औद्योगीकरण के विकास में राष्ट्रीय माधनों का बडा कुन्त उपयोग ता निचिन हो जाता है और राष्ट्रीय उम्पना में धमूव वृद्धि हानी है किन्तु यति औद्योगीकरण का ममान हिन में निधन्धन का मचानन न हा ता धार्मिक विधमता गायरा और वग मधय की उठी मयानक म्थिति उन्धप्र हा जाता है। पूँजीवादी दनों के धमकर मृन्धुद्ध धमयध धमन्धराष्ट्रीय कुद्ध वीगवी धमाली का गवना कन्धुषिन पढनाएँ हैं और यह धमाला धमूव औद्योगिक प्रगति का मुख कर सकती है। औद्योगीकरण के विकास में धमिज तथा पूँजीपतिया या उदायायक का धमना मीन वादी की शक्ति मजजल करन के लिय प्रविधनी मधय में मगतिन हाना पढता है। हट तानें तानाबानी और मय मधय हात है। धमालि और मुरणा तथा धम के धार्मिक हिन की रगा के लिय सरकार का धमगतिधय और मजदूरों के मधवध के मुधारन के प्रधन करन पढत है। हमी प्रकार वृष्टका और छोट उद्योग जीविधा के हिन का रगा के लिय सरर्य का बढ उद्योगों की मधबली धमन्धन-नीति तथा धमन्धन-नीति पर निधन्धन बढता पढता है। पूँजीवादी दशों में शान्य के बढन हुद निधन्धन उधा राजसाय उन्नता का त्रिकर हम पढत का धुद है। मन्था में तथ्य का मयन है कि

अनियंत्रित और निजी लाभ से प्रेरित औद्योगीकरण के कई गम्भीर आर्थिक कुप्रभाव होते हैं किन्तु नियंत्रित और समाज के कल्याण की दृष्टि में औद्योगिक विकास में अधिकांश आर्थिक दुष्प्रभाव बिल्कुल नहीं होते और बकारी आर्थिक विषमता तथा गाँवाँ द्वारा नगरों की अधीनता जैसे दुष्प्रभावों का न्यूनतम कर लिया जाता है। इस तथा अन्य समाजवादी देशों में कृषि का विकास कतई उपक्षित नहीं है और न वृषि और छाट उद्योगों को औद्योगीकरण से कुचल ही दिया गया है। राष्ट्रीय ग्रथ व्यवस्था के प्रत्येक खण्ड का उचित महत्त्व दिया जाता है।

पूँजीवादी दशों में औद्योगीकरण के सामाजिक उपलक्षणों में कुछ बड़ी घृणित बातें हुई हैं, जस बेरथावृत्ति, भ्रष्टाचार, अपराध और अविचार की वृद्धि, बग विषमता और मधुपों की उग्रता, शहरों में गंदी बस्तियों की उपस्थिति, भौतिकवादिता की प्रचल लहर के साथ सुन्दरी मुरा और शक्ति की अतृप्ति, व्यापारिक मनोरंजन में अनतिक्रमता और दुराचार की प्रबलता तथा काम और अपराध का नग्न प्रदर्शन। ये सभी उपलक्षण व्यक्तिगत और सामाजिक विगठन को बढ़ाते हैं तथा सामाजिक स्वास्थ्य और सुदृढता की जड़ पर कुठाराघात करते हैं। सामाजिक जीवन में कृत्रिमता और पाथिवता, आडम्बर और छिछलापन आ जाता है। ये स्वाभाविक और स्निग्ध सामाजिक सम्बन्धों का नहीं पनपने देता। सम्यता की चरम उत्पत्ति में भी मानव पशु या दानव का जीवन वित्तीय इससे अधिक लज्जा की बात सम्य मनुष्य के लिए क्या हो सकती है ?

औद्योगीकरण के ऐसे सामाजिक उपलक्षणों का निरक्षण करना अधिक महत्त्वपूर्ण है जो सभी दशों में अनिवार्यतः प्रकट होते हैं। इन्हें किसी विशिष्ट सामाजिक अथवा राजनतिक प्रणाली का सहायता से सशान्ति नहीं किया जा सकता है। नागरीकरण का प्रसार, विराट समाज और उनकी अपूर्व विशेषताएँ, संस्कृति का रूपान्तर और मनुष्य के सोचन और कार्य करने के तरीकों और आदतों में परिवर्तन कुछ ऐसे ही उपलक्षण हैं।

नगरीकरण का विस्तार और विराट समाज—औद्योगीकरण के गीघ्र विकास से लावा की जनसंख्या वाले अनेक महानगरों की वृद्धि हुई है। आज से १५० वर्ष पूर्व मानव कल्पना के यह पद था कि टोकियो सन् 'यूयाक', मास्को, बराकत्ता जग विशाल महानगरों में ५० लाख से ऊपर जनसंख्याएँ एक स्थान पर बस सकेंगी। औद्योगीकृत दशों की ग्रामीण जनसंख्या भी बढ़ी है। गाँवों और नगरों का जनसंख्या में अति भारी वृद्धि से विराट समाज (mass societies) बन गये हैं। इन समाजों में प्राथमिक और छाट छाट समूहों के ऊपर विशाल द्वितीय गमिनियों का जमपट लगा है। बड़े समुदायों का सर्वोच्च महत्त्व है। इनमें प्रजातीय भाषा, सांस्कृतिक और व्यावसायिक विजातीयत्व (heterogeneity) का अति जटिल रूप दरान का मिलना

है। इस कारण इन समुदायों में अवैयक्तिक और अनुसंधान संबंधों (contractual relations) की भरमार है।

विशाल महानगरों में समाज का दैनिक आवश्यकताएँ बढ़ा जटिल होती हैं। स्थानीय निकायों के नियंत्रण वस्तुओं की पूर्ति जल विद्युत सफाई स्वास्थ्य शिक्षा परिवहन और संचार विज्ञान-संयंत्र, मनोरंजन-केंद्र आदि की व्यवस्था करना निहायत मुश्किल निम्नशरीर है। साथ ही अवैयक्तिक संबंधों और बनामपन का स्थिति में कानून और व्यवस्था का समझना भी अत्यन्त टंगा शरीर है।

जीवन में वेग और घातिरक्ता—प्रत्येक नागरिक को अपने अपने काम करने की धुन होती है। कार्यविवेक के कारण निर्धारण का काम स्थान नहीं है। हरेक का तरीका होता है। वह घड़ी को मुँहों के साथ अपने समय का विनियमन करता है। कारखाना के द्रुतगामी यंत्रों और नगर के भागन रूप जीवन के साथ मनुष्य का दैनिक जीवन प्रेम भावनाओं का भागना है। घर के बाहर जीवन इतना घघिरे घीना है कि अगर काम दौरे के काम ही नहीं चलता।

सामाजिक संध्याओं का स्थापना—औद्योगिक समाज का समझना सामाजिक संध्याओं की संरचना कायों और गतिविधि में परिवर्तन हो जाता है। संयुक्त परिवार टूट कर छोटा व्यक्तिपरक परिवार विकसित होता है। विवाह और पारिवारिक जीवन पर धर्म का नियंत्रण बहुत घट जाता है। यौन-जीवियों भी निर्दिष्ट पड़ जाती हैं। विवाह विच्छेद कानून का कानूनी स्वीकृति हो जाती है। स्त्री और पुरुष शरीर का समाज रूप में पारिवारिक उत्तराधिकार स्थान पड़ता है। शिक्षा घर के बाहर कारखाना, शहर और कला में काम करना है। वे समाज के विभिन्न क्षेत्रों में शामिल होती हैं। रोजगार तथा अर्थ व्यवस्था का तन्त्र में परिवर्तन मूल शक्ति तथा शक्ति का क्षेत्र अर्थ बन जाता है। सम परिवार की निष्प्रमत्तता बढ़ती है। अधिकांश परिवारों को विरायत के महाना में रहना पड़ता है और दैनिक जमानों की वस्तुएँ ही अधिकांश उत्पत्ति होती हैं। परिवार के कायों में यौन-अनुचित व्यवस्था का जन्म और पालन भी प्रमुख होते हैं। परिवार के सभी अंतःसंबंधों का एक दूसरी विचार-संध्याओं के पाम चल जाते हैं।

नयी प्रकार के व्यवस्थाओं की संस्थाओं में नो परिवर्तन आता है। इसी विचारों में हम पाने का धुन है। विगत औद्योगिक समाजों में राज्य का कार्य-क्षेत्र और शक्ति बढ़ जाते हैं। व्यवस्थाओं का शक्ति-क्षेत्र (totalitarism) राज्य के अधिकार होता है। राजनीति एक पाम हो जाता है। विज्ञान राजनीतिक शक्ति का स्रोत और संचालन राज्य शक्ति पर अधिकांश करने का प्रयत्न हो जाता है। राज्य का समाज की समस्त आवश्यकताओं के समझने का एक संध्यन हो जाता है।

शिक्षा का स्वरूप भी औद्योगिक समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप बदल जाता है। उसका विस्तार एवं विश्वपीकरण होता है। प्राविधिक और प्रौद्योगिक शिक्षा को सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता है। ज्ञान विज्ञान के प्रसार तथा शोध के लिये अनन्त सङ्गठन बनते हैं। राज्य नियंत्रण और वित्तीय अनुयायन से उसने सङ्गठन और उद्देश्य का नियमित करता है। सामान्य और सामाजिक शिक्षा का महत्त्व बढ़ जाता है क्योंकि नागरिकता के लिये उह अनिवार्य माना जाता है। साहित्य का प्रकाशन बहुत बड़ी मात्रा में होता है और यह चेष्टा की जाती है कि सामाजिक जीवन के नियमन, सुधार या परिष्कार के लिए साहित्य एक सशक्त साधन बने। समाचार पत्रों, रेडियो टेलीविजन सिनेमा आदि विराट संचार साधनों से लोगों का सूचना पाने की अतृप्त प्यास को बुझाने की चेष्टा की जाती है।

पेशेवर खेला, सिनेमा, रेडियो, टेलिविजन आदि का जनसाधारण के मनोरंजन के लिये अभूतपूर्व विकास होना है। जनसाधारण की इन तरु पहुँच होनी है। उनकी रुचियों के विचार से ही चलचित्र तथा अन्य कार्यक्रमों का आयोजन जाना है। कला और मनोरंजन की जनसाधारण के लिये उपयोगी होने की प्रवृत्ति का जनतन्त्रीकरण का एक महत्त्वपूर्ण प्रवाह कहा जाता है। तलित कलाओं को जीवनापयोगी होना पड़ता है। कला कला के लिए नहीं जीवन के लिए होती है।

स्त्रियाँ तथा श्रमिकों की उच्च प्रस्थिति—उद्योगों की उत्पत्ति से स्त्रियों का लगभग पुरुष के समान ही प्रस्थिति मिल गई है। उसका कार्य-क्षेत्र केवल घर तक सीमित नहीं रहा है। वह सप्ताह के विशाल प्रांगण में क्रियाशील है। सामाजिक जीवन का कोई भी घाचल स्त्रियों के बिना सप्रभावी एवं सुन्दर नहीं हो पाता। श्रमिकों को अब केवल श्रम बचकर अतिथिन जीवन प्रिताना नहीं पड़ता। सभी प्रकार के उत्पादन में श्रम का वास्तविक स्थान स्वीकार किया जाने लगा है। बुद्धिजीवी भी श्रम को श्रमिक कहने में अब समझता है। वास्तव में श्रमिक ही उत्पादन करता है। सामाजिक सम्पदा में उसको उचित भाग मिलना चाहिए और उस कम प्रतिष्ठित या सम्मानित सम्भना मूल्यता होगा। श्रमिकों के संगठन राष्ट्रव्यापी और अन्तर्राष्ट्रीय हैं और उनकी शक्ति के सामने राज्य तथा समाज के अन्य वर्गों को झुकना पड़ता है।

सामाजिक भेदा में कमो—प्रौद्योगिकीकरण ने विभिन्न वर्गों को जानिया, धर्मों और शिक्षा तथा मस्तिष्क के स्तर के भेदों का गाय माय काम करने और रहने को विवश कर दिया है। ऊँच-नीच की भावना अत्यधिक कम हो गई है। सामाजिक मास्टरनिर्घातों पर किसी मनुष्य या वर्ग को हीन नडा समझा जाता है। जनसाधारण तथा नवागामी बौद्धिक तथा elites के बीच में भी कम से कम अन्तर रह गया है। नेतृत्व भी किसी विशेष वर्ग की धनी नहीं रह जाता है। उद्योगों के गगानन के दिने

प्रवर्धक वग अथवा समाजवादी देगा की नीकताही म सम्मिलित हाना सबके लिये सम्भव है यदि उनम अल्पमित याग्यता है ।

समृद्ध जीवन की समस्याएँ—लोगों का जीवन-स्तर बराबर ऊँचा होता जाता है । सामाजिक सङ्घर्षों की अभिवृद्धि म जीवन म सामाजिक गुण-मुक्ति का बढ जानी है । इसका प्रमुख समस्याएँ उत्पन्न हानो हैं अति शोषजनक और अति अभावका । प्राथमिक चिन्ताओं म मुक्त सुरक्षित और सुरक्षित जीवन म मनुष्य गुण स्वस्थ रहता है । जीवन जीवन-काल बढ जाता है । जनता लता की आयु १०० साल म आता बढ जाता है । इन लता व भरण पोषण और मनोरजन की समस्या पदा हानो है । दूरी समस्या योगा व निरन्तर बढन का अभाव व उपवास का है । समृद्धि बढन पर काम व घटे कम हो जाने हैं और दम की प्राथमिक आवश्यकताओं का नग्न पूर्ति व लिय धाही श्रम गति म काम चल जाता है । सामाजिक व उपवास व नय लय बढन पतन है । इनकी विफलता म समाज म एक निरन्तर वग का प्राथमिक हाना है । इसका अन्तिम समाज का धार विनाशिता और पुनरावृत्तिना म उठने सतता है । प्राचीन काल म अनेक मय सम्पत्तियों का पतन धार विनाशिता और निरन्तर व कारण हुआ है ।

सामाजिक विघटन व अधिक अवसर—विज्ञान शोधागिर समाज म परि वतन बही लगी म होना है । मस्याएँ स्वभावतः मरणात्मक हाना हैं । व तीव्र परिवर्तन म समाज के लक्ष्य म बहुत पीछे छूट जाती हैं । इसी तरह अनुभव और विघटन पैदा करने वालो अनेक शक्तियाँ उभर करती हैं । परिणामतः इन शक्ति म सामाजिक विघटन व अधिक अवसर हाना है । शोधागिर शक्तियों और सतर नी सामाजिक विघटन उत्पन्न करत हैं । तामरे सामाजिक मामला पर विचार भोडा के जुनून और प्रयत्न तथा बभी-बभी उत्सव व अभाव पर भोडा भोडा मानसिकता अथवाभी तथा समाज विरोधी प्रवृत्ति का उभारना है । साम्यवादी दम म भी इन, उपद्रव और गृह-युद्ध भटक उठने हैं ।

सामाजिक आघात—उपरोक्त कारणों म सामाजिक नियंत्रण की समस्या बही बढित हो जाता है । सामाजिक सुरक्षा शक्ति और व्यवस्था शक्ति व शक्ति अभाव हो जाती है । धार शोधागिर समाज म सामाजिक आघात का महत्व बढन बढ जाता है । सामाजिक जीवन का संचालन पूरा निर्धारित लक्ष्य (goals) व अनुसार अभाव आवश्यकता बन जाता है ।

राजनतिक मस्याएँ

प्रत्येक मानव समूह में व्यवस्था बनाय रखन व लिय राज्य का प्राथमिक रूप होता है । हम प्रारम्भ म बना चुके हैं कि सामाजिक नियंत्रण की अनेक लक्ष्य गिनी होती हैं । जन परिवार समुदाय पद राज्य और धार मस्याएँ । मनता

समाजो में भी नागरिकों के जीवन, सम्पत्ति और सम्मान की रक्षा के लिए काइ-न-काइ व्यवस्था हानी है। आधुनिक जटिल समाजों में भी उस आवश्यकता की पूर्ति का काइ स्थाई प्रबंध हाता है। राज्य के पुलिस और सैनिक कार्य सबविदित हैं। समाज की आतङ्गिक सुरक्षा तथा उसकी बाहरी शत्रुओं से प्रतिरक्षा राज्य के बड़े महत्वपूर्ण कार्य हैं किंतु वर्तमान राज्य को इन कार्यों के अतिरिक्त नागरिकों के कल्याण और प्रगति के लिये अनेक कार्य करने पड़ते हैं। हममें से प्रत्येक जन्म से लेकर मृत्यु तक राज्य के अप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष सम्पर्क में आया करता है। हम प्रतिदिन अपने निजी और सावजनिक जीवन पर राज्य का 'यूनाधिक' प्रभाव अनुभव होता है।

मेकाइवर ने राज्य की परिभाषा इस प्रकार की है 'राज्य एक ऐसी समिति है जो कानून द्वारा शासनतंत्र से नियंत्रित हाती है और जिसे एक निश्चित भू-प्रदेश में सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के सर्वोच्च अधिकार होते हैं।'¹ गानर ने लिखा है कि 'राज्य व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो यूनाधिक एक निश्चित भू-भाग में रहता है तथा बाह्य नियंत्रण से लगभग पूर्णतः मुक्त होता है और जिसका अपना एक शासनतंत्र है। इस शासनतंत्र के प्रति सभी निवासियों में स्वभावतः आनापालन की भावना होती है। - इसी लेखक ने राज्य के चार तत्त्व बताये हैं (१) जनसंख्या, (२) भूखण्ड (३) शासनतंत्र और (४) संप्रभुता। गानर के इस मत का राज्य के तत्त्वों की संरक्ष विनाश और स्पष्ट व्याख्या मानी जाती है। गानर द्वारा राज्य की परिभाषा में इन सभी तत्त्वों का समावेश है। राज्य के तत्त्व उसकी एकता के परिचायक हैं।²

राज्य की विशेषताएँ—राज्य की कई विशेषताएँ हैं जो उसके गुण या प्रकृति को प्रकट करती हैं।

(१) राज्य में निवास करने वाले व्यक्तियों का समाज अपने आपको एक हृदय राजनैतिक अंग में परिवर्तित करना चाहता है।

(२) राज्य की एकता अविभाज्य और सनातन है। उसे कोई विवरित नहीं कर सकता और उसमें कोई परिवर्तन होना भी सम्भव नहीं है।

(३) यह विशद और व्यापक रहते हुए भी अग्न्य आपस ही सीमित रहता है। राज्य की संप्रभुता (sovereignty) का अधिकार राज्य के समस्त व्यक्तियों वस्तुओं एवं भूमि पर लागू होता है। कब तक वही इसका प्रयोग नहीं होता जहाँ संप्रभुता स्वयं अपने अधिकारों को त्यागती है। एक राज्य के अन्तर्गत शासनतंत्र

1 MacIver *The Modern State* (1926) p 26

2 Garner *Political Science and Government* (Indian Edition 1952) p 52

3 सम्भावित पक्ष और मदनमोपाल राजनीति शास्त्र के आधार, भाग १, साहाय्य (१९५६) पृष्ठ ५६

का मप्रभुता प्राप्त हानी है। यह श्रम्य किसी सत्त्वा को राजाणा का अधिकार नहीं देता है। दूसरे राज्य में उन का अधिकार नहीं होता है।

(४) राज्य स्थायी होता है। इसका अर्थ यह है कि जब समाज में एक बार किसी राज-व्यवस्था की स्थापना हो जाती है तो फिर वह निरंतर चली रहती है। नव्यण्ड में बद्धि अथवा प्रारंभिक हामि त राज्य के अस्तित्व में कोई बाधा नहीं पड़ती। एक राज्य पर एक दूसरे राज्य का अधिकार हो सकता है। किन्तु फिर भी उस समाज का एक राज्य के अन्तर्गत रहना ही है। संसार का शासनतंत्र बदल सकता है किन्तु राज्य स्थायी होता है। १९८७ व पूर भारत पर अंग्रेजी शासन का और उनका शासन हम स्वतंत्र हैं परन्तु भारतीय राज्य के अस्तित्व में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

(५) सभी राज्या में मज्जान्तिव समता होती है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून व समान छोट-बड़े नियम-संयम सभी राज्य समान हैं। परन्तु तथ्य यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय परिपदा में सभी राज्या की आवाज एक सा ही बजवान नहीं होती। सभी को समान प्रतिष्ठा भी नहीं प्राप्त होती है। यही कारण है कि छोटे छोटे राज्य किसी शक्तिशाली राज्य-गुट के सम्मुख या विद्यमान बन जाते हैं।

(६) वन राज्य की अस्तित्व स्थापना है। राज्य का अपनी दृष्टियों के प्रकट करने के उद्योग व अधिकार है कि उनका पूर्ण व नियम वह आदर्शमानुमार बल का प्रयोग करे। वन प्रयोग के अन्तर्गत अधिकार के कारण यह सामिना स आस्था का पालन करता है। राज्य सर्वोच्च सत्ताधारा है अतएव वन प्रयोग के साधना के स्वरूप का निर्णय भी करे करता है।

राज्य तथा श्रम्य समितियाँ

धार्मिक समाजा को सभी महामितियाँ (great associations) प्राथमिकत उपयोगितावादी हैं। इनके विपरीत सामूहिक महामितियाँ (जिनमें धार्मिक महामितियाँ भी सम्मिलित हैं) प्राथमिकतया सामूहिक हैं। यद्यपि राज्य का सामूहिक भाव बहुत महत्वपूर्ण है किन्तु भी इस सम्मता को सज्जा का ही एक अंग बन सकता है।¹ उपयोगितावादी महामितियाँ का आधार द्वितीयक स्ति है, जिनमें मनुष्य के सभी शक्ति का सम्बन्ध है और जिनकी उन्हीं के द्वारा पूर्ति होती है। राज्य और अर्थव्यवस्था का उपयुक्त संचार साधना का उपस्थिति में अनीमित विस्तार हो सकता है। उह सामूहिकता किञ्चाम या धर्म की सामान्य नहीं बाध पाता। इन शक्तियों का धार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विस्तार शक्य तथ्य का गानी है।

राज्य तथा श्रम्य समितियाँ (परिवार धार्मिक सामाजिक धार्मिक तथा सामूहिक समितियाँ) में कुछ महत्वपूर्ण भेद हैं। केवल राज्य और परिवार का

सम्पत्तयों को मनुष्य के लिए अनिवार्य होनी है। हम किसी एक परिवार और राज्य में जन्म से लेकर मृत्यु तक रहते हैं। एक विचार से हम जितनी समितियाँ के सम्पत्तयों को हाते हैं व सभी राज्य की समिति के भाग अथवा शाखाएँ हैं। अब सभी समितियों का सम्पत्तय होना न होना व्यक्ति की स्वच्छता पर निर्भर है। फिर एक व्यक्ति एक साथ कई समितियों का सम्पत्तय हो सकता है पर कई राज्यों का नहीं। राज्य की सम्पत्तयता से व्यक्ति को रक्षा अधिकार और विशेषाधिकार मिलते हैं जो उसके सुखी जीवन के लिए नितांत आवश्यक हैं।

राज्य के पास एक निश्चित भू-भाग होता है। उसके बाहर उसका कार्यक्षेत्र नहीं होता। किन्तु अल्प महासमितियाँ कई राज्यों तक फैली होती हैं। हाँ, राज्यों का एक साथ अवश्य है—मयुक्त राष्ट्र संघ।

राज्य का अस्तित्व शाश्वत है। सम्य जीवन को विनाश की अनन्त आवश्यकता राज्य ही से पूरी होता है। अल्प समितियाँ तभी तक काम नहीं करती हैं जब तक उनके उद्देश्य पूरे नहीं होते। इन समितियों के उद्देश्यों अथवा काम प्रणाली से सन्तुष्ट सम्पत्तय उन्हें छोड़ देते हैं। समितियाँ अपने उद्देश्य की निष्पत्ति जान या उसके पूर्व ही अपने को भंग कर सकती हैं। राज्य कभी भंग नहीं होता। असन्तुष्ट नागरिक उसे छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकते हैं।

राज्य का आधार बल (force) है। अल्प सभी समितियों की अपेक्षा अल्पके उन्हीं ही बल प्रयोग का वैधानिक अधिकार है। जब राज्य आग्रह भी करता है तो उसके पीछे भी बल प्रयोग की धमकी या उसकी सम्भावना छिपी रहती है। राज्य सम्प्रभुतापूर्ण है। वह अपने आदेशों एवं इच्छाओं का पूर्ण मृत्यु-दण्ड तक देकर कर सकता है। स्वयं अल्प सभी समितियाँ राज्य के नियंत्रण में होती हैं और उसके कानून का उल्लंघन नहीं कर सकती। किन्तु स्वच्छिक समितियाँ लोगों की स्वतंत्र इच्छा से अनुनय कर अधिक सफलता प्राप्त कर सकती हैं। राज्य का प्रचार-यंत्र भी बड़ा शक्तिशाली है परन्तु उस लोग बहुधा सदह की दृष्टि से देखते हैं।

कुछ काम विशेषतया राज्य बड़ी प्रभाविकता में कर सकता है और कुछ को नहीं। सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर राज्य का प्रभाव होने हुए भी कुछ कार्यों को स्वच्छिक समितियाँ ही सर्वोत्तम रूप से कर सकती हैं। धार्मिक और मासुचितिक समितियाँ अपने कार्यों को बड़े प्रभावी ढंग में करती हैं।

राष्ट्र, समुदाय तथा राज्य में अन्तर

राष्ट्र और राज्य—राज्य एवं राजनतिक संगठन है और राष्ट्र बल जातीय। जब एक राष्ट्र अपना राज्य स्थापित कर लेता है तो उस राष्ट्रिय राज्य कहते हैं। पर्यायतः राष्ट्र का अपना राज्य नहीं होता। यद्यपि आजकल अन्तरराष्ट्रीय विधान तथा साधारण बोधचाल में राष्ट्र और राज्य में अन्तर नहीं किया जाता है फिर भी

राष्ट्र और राज्य एक नहीं है। एक राज्य के अंतर्गत कई राष्ट्र हो सकते हैं जस प्रथम महायुद्ध के पूर्व आस्ट्रिया हंगरी। नाइझरिया न राष्ट्र का एक एसी राष्ट्रीयता बनाया है जिसने अपने आपका एक एसी राजनैतिक इकाई में परिवर्तित कर लिया जो जो या ता स्वतंत्र हो भयभीत स्वतंत्र होने की इच्छा रखती है। टा० एच० प्रीन ने लिखा है कि राष्ट्र में राज्य विहित है। राज्य का राष्ट्र का आयमूर्त प्रतीक कहा जा सकता है। राष्ट्र का आधार सामूहिक और आध्यात्मिक एकता है परन्तु राज्य का आधार राजनैतिक एक और समुदाय।

राज्य और समुदाय—विश्वी विविष्ट दश के अन्तर्गत रहने वाले समाज का समुदाय कहने में अर्थ है एक विविष्ट समाज ही समुदाय है। भारत के विचारधारा के सामाजिक गठन का एकता का हम चाहें भारतवासी समाज कहें अथवा भारतीय समुदाय। सांसारिक जीवनचक्र में भारत के समाज तथा राष्ट्र सभी का 'भारत ही कहकर पुकारते हैं। हमें राज्य तथा देश, राष्ट्र या समाज के अन्तर्गत का समझने में यही सत्य ही मानना है। किन्तु राज्य एक और राष्ट्र में अलग है और इसी प्रकार समाज या समुदाय में भी। समाज या समुदाय के राजनैतिक संगठन का राज्य कहा है। समाज का एक मानना गतनी है। समाज की एक विविष्ट मन्था राज्य है। यह समाज के अन्तर्गत 'दृष्टांत में अनेक राजनैतिक उद्देश्यों का पूर्ति के लिए साधन या एजेंटा का काम करता है। यह सत्य है कि समाज राज्य हमारी सामाजिक विचार सम्प्रदाय के एक उत्तम रूप भाग का नियमन करता है किन्तु दूसरे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि राज्य और समुदाय एक ही है। उनके अन्तर्गत का सामाजिक मानना सामान्य गतनी है।

समाज की अनेक गतिविधियाँ हैं जो राज्य की सन्निवेश में पूर्ण हैं और शिवाय अनेक गतिविधियाँ जो राज्य से अलग रहती हैं। हमारे जीवन का अधिकांश भाग समाज की सन्निवेश में ही नियमित होता है। हम अनेक गतिविधियाँ न समझते हैं जो अनेक राज्य के भाग या अंगका नहीं हैं। हम सामाजिक प्राणी की हैसियत में अनेक सम्प्रदाय बनाते हैं और अनेक विचार करते हैं जिन्हें हम सामूहिक या राज्य के सम्प्रदाय नहीं मानते। समाज की विधा का अर्थ अनेक विचार है। राज्य के भावों में गतिविधियाँ या प्रथा न अनेक विचारों से ही होती हैं। राज्य समाज में सन्निवेशित है। इस तथ्य को समझ कर ही राज्य तथा समाज के सही सम्बन्ध का परिचय मिल सकता है।

राज्य सामाजिक संरचना का एक आवश्यक भाग है जो पूरा समाज के भी नहीं कहा जा सकता। अर्थात् न अनेक राज्य समाज की एक एसी एजेंसी है जिसके अन्तर्गत और सम्बन्धित कार्य है। राज्य ही एक ही विधि एजेंसी है। समाज की अनेक एजेंसियाँ का स्थान न एक एक राज्य में ही पाया है और न ही पाया। उनके अर्थ अर्थ है कि वे अनेक ही न हो सकती हैं। सामूहिकी राज्य ने अनेक-अनेक का

अपने भ्रम समाप्त किया है पर शासनतंत्र ने परिवार को अप्रतिबन्धित छोड़ दिया है। नागरिका के सभी हितों का समुच्चय और नियंत्रण करने के उद्देश्य से सर्वेसर्वा राज्य (नाजी अथवा फासिस्ट राज्य) ने उन हितों और समूहों का सबल दमन किया जो समुच्चय के लिए तयार नहीं थे फिर भी राज्य और समाज विरुद्ध एक नहीं हो पाए।

इसमें सन्देह नहीं है कि राज्य जीवन के बाह्य पहलुओं का अधीक्षण बड़ी प्रभावितता से कर सकता है। परन्तु इसके अतिरिक्त, किसी भी दशा में इस उच्च सांस्कृतिक संघटना की जगह नहीं रखा जा सकता है जो एक आधुनिक समाज के विभिन्न समूहों के विविध विश्वासों, मतों, हितों और आदर्शों की अभिव्यक्ति करती है।¹

राज्य और सरकार—राज्य एक समिति है जिसकी कार्यकारी संस्था सरकार (Government) है। सरकार राज्य के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वाय विधि का एक स्थापित रूप है। हम सरकार का देश का शासनतंत्र भी कहते हैं। शासनतंत्र राज्य का आवश्यक तत्व है। वह राज्य की कार्यकारिणी है जो राज्य के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये निश्चित कार्यों की एक संगठित व्यवस्था है। राज्य के नागरिकों का एक बहुत छोटा अंश सरकार चलाता है। जहाँ राज्य के कार्य-क्षेत्र (scope of activity) का निर्णय संविधान (constitution) से होता है वहाँ की सरकार विधानिक अधिकारों के अतिरिक्त किसी अधिकार का नहीं माँग सकती। इससे विपरीत जहाँ सरकार किसी स्वच्छाचारी राजा या शासक के इशारे पर चलती है वहाँ उसके कार्य क्षेत्र और अधिकार निरंकुश होते हैं। सरकारें बनती रहती हैं किन्तु राज्य स्थायी रहना है। भारत राज्य में आज कांग्रेस सरकार है अगले चुनाव में गाम्भीर्यवादी अथवा समाजवादी दल की सरकारें शासनाह्वय हो सकती हैं। फिर सरकारों में उलट-फेर प्रान्ति या बल प्रयोग से हो सकता है। परन्तु शासनतंत्र के अन्त में या तबनीली से राज्य का अन्त या परिवर्तन नहीं होना है। राज्य के कानून बनाने उन्हें परिपालन करने और याचक का प्रबंध करने का सारा काम शासनतंत्र करता है। सरकार के तीन अंग होते हैं विधायक कार्यकारी याचक। सत्ता के संचालन से लेकर पुलिस याचक और जेन के प्रबंध तथा विभिन्न समितियों पर नियंत्रण और उनकी सहायता करना सरकार के कार्य हैं।

मारशा यह है कि एक निश्चित प्रदेश में निश्चित अवधि में शासनतंत्र राज्य का एकमात्र प्रतिनिधि होता है। इसका कारण यह है कि शासनतंत्र राज्य की आर

¹ The state can effectively supervise only the external aspects of life. Beyond all else it cannot under any conditions be a substitute for those cultural organizations which express the variant beliefs, opinions, interests and ideals diversified group of a modern society. MacIver and Page op cit p 456

स काम-वाज करता है और वही राज्य की विधिमग्न शक्ति का प्रमाणाधिकार है। शासनतंत्र का स्वप्न ही राज्य के राजनैतिक स्वप्न का स्मिर करता है। जब हम कहते हैं कि भारत में मावद्यानिक जनतंत्र है तब हमारा राज्य और शासन दोनों ही आधुनिक हैं। राज्य का आधार मजबूत समान है किन्तु विभिन्न राज्यों में शासनतंत्र का आधार भिन्न भिन्न है। अहमदाबाद व त्रिपुरा और अन्य साम्यवादी राज्यों में सरकार व उद्देश्य और कार्य समाजवादी सभ्यता व धनुमार है जबकि अमरीका में वे पूजावादी जनतंत्र व लक्ष्य व समकर्म।

राज्य और आधुनिक सामाजिक संगठन

आधुनिक जटिल समाजों में राज्य व बाह्य में अत्यधिक विस्तार हुआ है। मजबूत हमारे सामाजिक व्यवस्था व्यक्तिगत जीवन का ऐसा बाह्य प्रयोजन है जिस पर राज्य का प्रत्यक्ष प्रभाव पराधीन प्रभाव न पड़ता हो। यद्यपि जनतंत्रीय और साम्यवादी दोनों ही शासनतंत्र इस प्रकार का प्रयोजन करते हैं कि वे उत्तरांतर मजबूत (totalitarian) होने जाते हैं। फिर भी उनकी यह प्रवृत्ति बढ़ती उभर आती है। जनतंत्रीय राज्य में बहुमध्यम स्तर मनमानी कर बढ़ता है या वह बार-बार अल्पमध्यम स्तर राजतन्त्र का पाकर उनकी शक्ति का दुष्प्रयोग करता है। साम्यवादी राज्य में शासन मजबूत एकात्मिक होता है इसलिए उसे मनमानी करने व अधिन अधिन प्राप्त है। साम्यवादी राज्य समाज व समस्त संगठनात्मकता जीवन की सुविधाओं के साथ आवश्यकताओं पर पूर्ण नियंत्रण रखता है। अपने विज्ञान मायना में यह नागरिक जीवन व समस्त सम्बन्धों और कार्य-कारणों का नियमित और निर्दिष्ट करता है। जावनवापन व मायना घर-गिरी स्वास्थ्य मनोरंजन सभी पर ना राज्य का व्यापक प्रभाव होता है। राज्य ही यह तय करता है कि अर्थ-जीवन क्या है और उसके लिए आवश्यक दवाएँ क्या और कस उपकरण का जाए। वह सामाजिक परिवर्तन का निर्णय और शक्ति का निश्चय करता है।

तयारहित जनतंत्राय राज्य का कार्यक्षेत्र भी व्यापक नहीं है। वास्तव में जन्म तक का मूलना राज्य का स्तर होता है। पुनिस तथा पालनका का मायना में राज्य अर्थ-व्यवस्था में हस्त-जाल माल की रक्षा करता है। दलित जीवन में लक्ष्य व मजबूत में पाकर क्या करे अथवा न करे अथवा नियंत्रण राज्य व वास्तव में होता है। जीविका-प्राप्त, सामुदायिक सम्पत्ति निर्माण मनोरंजन आदि सभी विधाओं में हमारे शक्ति की रक्षा राज्य-व्यवस्था ही करते हैं। जहाँ प्रयाणें वे काम-वाजी के पक्षों में ही स्थिति-राज्य-वास्तव में स्थिति है। आधुनिक जटिल समाजों व अधिकांश सामाजिक सम्बन्ध धनुमार पर अधिन होते हैं। इन धनुमारों का समाज-राज्य की नागरिक शक्ति (civil code) व अधिन होता है। हम समस्त समाज और मानव सम्बन्धों व विद्यार्थियों का व्यावहारिक परिधानन राज्य व वास्तव अथवा नियमा का अधिकांश में ही करते हैं। हमारी व्यवस्था तथा शक्ति की रक्षा सरकार

ही करती है। और अतः निराश्रयो, पतिता तथा दलितो के कल्याण की जिम्मेदारी भी तो सरकार पर हानी है। सामाजिक सुरक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था तभी राज्य करता है जो समाज स्वयं उस करने में अशक्य होता है।

सामाजिक व्यवस्था का निर्माण और रक्षा के लिये राज्य ही नीति बनाता है और फिर उस नीति का पालन स्वयं करता है और समस्त नागरिकों से करवाता है। कानून बनाना और उसका पालन कराना दोनों में राज्य सर्वोपरि सत्ताधारी है। हमारे विचार विश्वास दृष्टिकोण सभी पर उसकी नीतियों के प्रचार का प्रभाव पड़ता है। सामाजिक कल्याण की अभिवृद्धि के लिये आवश्यक सामाजिक परिवर्तन की शिक्षा और वेग का निर्धारण भी राज्य कर सकता है। आज तो राज्य न मनोरंजन साहित्य शिक्षा और कला में पटापण कर हमारे जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। वह नागरिकों की रक्षा और सुख सुविधा का प्रवच विदेशों में भी करता है और अन्तराष्ट्रीय मगठनों में सम्मिलित होकर देश की सुरक्षा और शान्ति का अतिम अभिभावक बन गया है। वह अपने देश के समाज में सांख्यिक व्यवस्था बनाये रखने में एकमात्र संरक्षक है।

वर्तमान राज्य के कार्यक्षेत्र के अति व्यापक हो जाने से दो खतर उत्पन्न हो सकते हैं। पहला खतरा उसके सर्वोपरि बन जाने का है जिसमें वह समाज की एक एजेंसी न रह कर स्वयं समाज हानि का दावा कर सकता है। इससे शासित समाज और मार्गी मानवता का बहुत भयानक हानि हो सकती है। दूसरा खतरा यह है कि यदि व्यक्ति को पहल करने तथा स्वतंत्र क्रिया का कोई अवसर ही न मिले तो उसकी व्यक्तित्वता (individuality) नष्ट हो सकती है। अनुभव यह बनाता है कि समाज और मनुष्य के जीवन की सम्पन्नता और रगीनी का प्रमुख आधार व्यक्तियों की व्यक्तित्वता और स्वतंत्रता है न कि भ्रूण अनुरूपता और स्वातंत्र्यहीनता। अतएव आधुनिक युग की महान महत्वपूर्ण समस्या यह है कि राज्य को कौन-कौन कार्य करने दिये जाए और कौन कार्य व्यक्तियों तथा घर सरकारी सस्याओं पर छोड़ दिये जाए। अभी तक समाजशास्त्रियों की यह दृष्टि धारणा बनी है कि राज्य सभी कार्यों का करने के लिए सक्षम नहीं है। समाज का सुखी और समृद्ध बनाने के लिए एक बड़ा कार्य है कि वह राज्य के कार्यक्षेत्र में दखलना मानव की सबसे भयंकर भूल होगी।

धार्मिक और सांस्कृतिक सत्याएँ

प्रस्तुत अध्याय में हम धर्म के सामान्य स्वरूप और उसके सामाजिक महत्व की व्याख्या करेंगे। तदनन्तर प्राथमिक समाजों की सभ्यता की वर्तमान प्रवृत्तियों और समन्वयों का विवरण करेंगे।

धर्म

धर्म का सामान्य स्वरूप

मनुष्य के समस्त धार्मिक और अन्य समाजों में धर्म सभ्यता का एक अनिष्ट अंग है। धर्म मनुष्य समाज को नैतिक विधि है। किन्तु प्रत्येक समाज के धार्मिक विचारों का स्वरूप और प्रवृत्तियाँ बहुत-बहुत अलग-अलग हैं। धर्म नैतिक है। धर्म समाज में कृष्ण धर्म अर्थ है जिसे धर्मशास्त्रों की सहायता से समझा जा सकता है और जो कि सभ्यता के अंग है।

धर्म	धर्मावलम्बी	भूमि
१ इसाई	३५ करोड़	यूरोप धर्मशास्त्र और अमेरिका
२ मुस्लिम	३२	एशिया और अफ्रीका
३ बौद्ध धर्म सिख	६०	एशिया
४ कन्फुसियस	३०	एशिया
५ टाइम	५	एशिया
६ सिद्धा	२५	एशिया (जापान)
७ यजु	११५	यूरोप धर्मशास्त्र और मध्यपूर्व

1 See H. H. Miller, *J. O. Religious Institutions*, Annals of the American Academy of Political and Social Science, Vol. 256 (1945, p. 113). Also Nottingham E. K. *Religion and Society*, New York (1944).

धर्म सस्कृति में प्रतिष्ठित ऐसा व्यवहार है जिसमें लोग किसी अलौकिक (Supernatural) शक्ति या जीव में विश्वास करते हैं और सामुदायिक या धर्मिक आचरण कर उस सर्वोपरि सत्ता को प्रसन्न कर अपने श्रेयस की कामना करते हैं। धर्मिचरण में मानसिक और शारीरिक क्रियाएँ दोनों ही का समावेश होता है। मानसिक क्रियाएँ वे गहरे उद्वेग और भावनाएँ हैं जो अलौकिक सत्ता में विश्वास के साथ रहते हैं। शारीरिक क्रियाएँ वे काम या व्यवहार होते हैं जिनसे उस अलौकिक शक्ति को प्रसन्न किया जाता है।

अतएव धर्म के स्वरूप में तीन तत्त्व शामिल हैं (१) अलौकिक अथवा पवित्र (प्राकृतिक नहीं) शक्ति या जीव की सर्वशक्तिमत्ता में विश्वास (२) इस विश्वास के साथ जुड़ी हुई उद्वेगपूर्ण भावनाएँ, (३) विश्वासों और भावनाओं के परिपालन के लिए प्रकट व्यवहार। धर्म के इन तीनों पहलुओं में घनिष्ठ अन्त सम्बन्ध होता है।¹

(१) अलौकिक शक्ति या जीव में विश्वास—सभ्य समाजों में इस अलौकिक सत्ता के विश्वास में बड़ी विभिन्नता है। कहीं लोग इस सत्ता को सर्वशक्तिमान मान कर एश्वरवादी और कहीं लोग अनक इश्वरा या देवी देवताओं की कल्पना कर अनकेश्वरवादी कहलाते हैं। सर्वशक्तिमान परमात्मा को भी सबके निराकार या निगुण नहीं कहा जाता। कहीं कहीं उसे सगुण और साकार परमात्मा माना जाता है। फिर कहीं इश्वर या देवा का कृपालु और हितकारी माना जाता है तो अन्यत्र उन्हें प्रतिशापक, कठोर और दण्डाता भी मानते हैं।

(२) उद्वेगपूर्ण भावनाएँ—मनुष्य अलौकिक सत्ता से एकात्म भाव प्रकट करता है। उसमें प्रीति कर उसके सान्निध्य, दर्शन स्पष्ट की प्रगाढ़ भावना से अभिभूत रहता है। सान्निध्य मिलने में बाधा पड़ने पर विह्वल होना है और विरह-व्यथा से तड़पता है। उसकी कृपालुता में प्रगाढ़ विश्वास प्रकट कर नम्र व विनोद भाव से उसकी शरणागत हो जाता है। किसी अनुचित आचरण के हाँ जान पर परमात्मा के भयकर शाप की कल्पना से भयातुर हो जाता है। कठिन से कठिन प्रार्थना करने का उतावला हो जाता है। अपने आराध्यदेव या इष्टदेव की कल्पित रूपाय में विषाद आत्म-लागि और पश्चात्ताप से गटा जाता है। कहने का आशय यह है कि पारलौकिक सत्ता में विश्वास के साथ मनुष्य के बहुधा उन सभी प्रगाढ़ उद्वेगों (intense emotions) का सयाग है जिन्हें वह व्यक्त कर सकता है।

(३) आराध्यदेव को प्रसन्न करने के उपक्रम—मनुष्य के उन ममत्त प्रकट आचरणों का प्रमत्तकारी उपक्रम (propitiation) कहते हैं जिनमें वह अपने आराध्यदेव को मुष्ट करने का प्रयत्न करता है। इसमें मनुष्य के लगभग सभी प्राचरणा और युक्तियों का समावेश होता है। मंदिर, गिरा या ममजि को दबम्यान

¹ Cf. Cuber, *Sociology* p. 533 & Green, *Sociology* pp. 413-17

मानवर या वगैर इनके ही वह शक्तता अथवा सामुदायिक रूप में अथवा इष्टत्व का विनयी (प्राधना) करता है, उसका अजन में रत रहता है। उसकी वात्सल्य कर उसकी कृपानुता दया रक्षाशक्ति करणा महात्मना व समस्त अपनी तुच्छता निराश्रयता पाप का निर्भीक बहण करता है और पूर्ण शरणागत हा जाता है। इष्टत्व व प्रति स्नात्र और अचना करता है। उस नृत्य से रिभाता है। तीक्ष्णता की यात्रा करता है और अपनी वामनामा का मार कर धाम-मयम करता है। पर इष्टत्व की तुष्टि व लिए स्वच्छन्द यौन प्रमग मल (sex orgies) वस्यागमन भी वही वही हात है। आश्रीवन अविवाहित रहना विरग ल लता समाधि एव तपमापना स शरीर का कष्ट देना और मन पर कठोर नियंत्रण करना पशु या नर-नारी (वारक चालिका) की वलि चडाना अपना अंग नग कर लना, या जासुड कमवाण करना आदि आचरण इष्टत्व को प्रमग वग्न व नियंत्रित जात है। इसी उद्देश्य से लागू का अनेक कामों क करन तथा वस्तुधा के उपमाग का नियम है।

(घ) उपासक धमाचरण की सफलता व लिय प्रत्येक धम में बृहद् सामग्री और प्रतीका का प्रयोग हाता है। इष्टत्व का प्रतिमा या चित्र उसका प्रतीक माना जाता है। आर्गन-श्रीपशिंगा या मामबता का धार्मिक प्रवान का प्रतीक कहा जाता है। धूम-वर्ती या ध्वज सुगन्धित नवद्य धार्म्यात्मिक सुगन्ध का प्रतीक हाता है। धार्मिकता व प्रतीका में विशिष्ट पान्नाक तिलक आवास आसन तथा धमप्रथा का भा समावण हाता है। वं कुरान वाग्जिन ईश्वरीय नाम व प्रतीक है। धमाचरण व लिय उपमाया या महादेव नामधो म मन्त्रि ममजिन पूजा वा हवन की वनी कवच धूम-श्रीप-नवद्य पुष्प राता गगातव हवन सामग्री आदि का सम्मिन्त्रित किया जाता है।

(घा) धमाचरण क. साध. साक्षात् चारु म. श्री. नाराचार. नितिकता तुय परावनाय. सवा प्रीट. प्रहिमा का पावन किया जाता है। उक्त धम व इन नितिर और मानात्रिक मूल्या की जड म वराय नरत धाम प्रमाय अथवा एष्टव कम विनयक मिदालन रहन है। मारी वामान धम-न-पाठ नातिया की स्थापना अतीवित पतिया का महात्मना और हिनवागिया व साधारण पर करता है।

(ग) धमाचरण म मपनाता वा निश्चिन्ता व लिए म.ग मुन्ना-श्रीवरा, पशिन पुत्रागी वा धम धार्मिक व्यक्ति का अन्ता गुरु बना लन है। गुरु धम पान तथा मोग माग की निश्चय हा प्राप्त करणगा दन विनयक दन व्यापक है। गुरु स्वामी तथा विनय सम्प्रदायो म गुरु का धारार मन्त्रिया स्वःधार करन के कारण हा इन सम्प्रदायो का गुरु प्रधान बना जाता है। पण्डित और धनधारता का अन्तर व मन्त्रा का वाग्जिन बना जाता है। पण्डित अथवा गुरुधा की स्थापक जड त्रिपदा व कारण व वार नत् धार्मिक सम्प्रदाय स्थापित हा ज.त है।

विभिन्न धर्मों के विश्वास और आचरण में इन अनेकताओं के बावजूद सभी आधुनिक धर्मों का चरम लक्ष्य मनुष्य का इस जीवन तथा परलोक में सुरक्षा प्रदान करना है। परलोक में सुरक्षा का अर्थ माक्ष होता है। प्रत्येक धर्म अपने अनुयायियों को भगोसा देता है कि वह सहायता, प्रेरणा और मदद के लिये परमात्मा की शरण में आ जाए। इश्वर के प्रयाजन व्यक्ति के लक्ष्य और भाग्य से अधिक प्रथम है। अतः व्यक्ति को इश्वर की इच्छा वगैरे आनाकानी के स्वीकार करना चाहिए, तभी उसे जीवन के भय और अनिश्चितताओं से मुक्ति मिल सकेगी। धर्म यह भी जोर देने हैं कि इश्वर समस्त प्राणीमात्र को समान प्रेम करता है। अतः जो ईश्वर के वादा का प्रेम करता है उसे इश्वर प्रेम करता है। सभी धर्मों में माधारणतया यह विश्वास भी है कि विश्व एक नैतिक राज्य है और धर्म उस राज्य का कानून।

धर्म के कुछ अन्य प्रतिमान¹

अधिकांश धर्मों में कुछ ऐसे प्रतिमान होते हैं जो सामाजिक संगठन के लिये बड़े महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि न केवल वे व्यक्तियों के आचरण को बल्कि धर्म और धर्म सम्प्रदायों के बीच के सम्बन्ध का भी प्रभावित करते हैं। इन प्रतिमानों का नीचे दिया जा रहा है —

१ आचार—नैतिक आचरण में तेज आचरण का समावेश होता है जो सत्कार और दुष्कार अथवा सही और गलत कार्यों में चुनाव पर आश्रित होता है। किसी कार्य का सही या गलत ठहराने का प्रमाण आचार मन्त्रिणा होती है जो धर्म के प्रसंग में विहित होती है। विभिन्न धर्मों में आचार मन्त्रिणा के द्योरे एक ही नहीं होत। उनमें बड़ी भिन्नता होती है। सिद्ध और मुसलमान धर्म में बहुभायना स्वीकृत है किन्तु इसमें धर्म में हमारा नियम है। नैतिक आचरण के नियम हमारे समस्त कार्यों का भी नियंत्रित करते हैं। सिद्ध समाज में मनु १८२६ के पहले सत्ता प्रथा का एक नैतिक आचरण माना जाता था। आज सती प्रथा अथवा ही नती अनैतिक मानी जाता है। एक समाज के भीतर विभिन्न समूहों के आचार नियमों में कई बार विरोध होता है। माधारणतया आचार मन्त्रिणा का विकास धर्म प्रथो में वर्गगत सही और गलत कार्यों के आचार पर होता है। नातिया का खोल बहधा ईश्वर का इच्छा या उनके वाय का प्रकट करने वान धर्म-ग्रथ होते है।

स्वीकृत आचार-मन्त्रिणा के अनुकूल व्यवहार करने का परिणाम यह होता है कि सामाजिक संगठन में एक व्यवस्था आ जाती है। जो इन आचारों का विरोध या उपेक्षा करता है उस अनेक प्रकार के दण्ड या उसकी धमकी दी जाती है। आचार-मन्त्रिणा के तोड़ने वालों का इश्वर के श्राप का भी भय होता है और यदि उस उसका गमूह शब्द न भी देता था तो उस आत्ममन्त्रिणा होती है अथवा उस यह भय

3 Cf Jones *Basic Sociological Principles* pp 281-85

रहता है कि उसका बोर्ड-न-बोर्ड अहित अवश्य हो जाएगा। इतने पर भी सभी व्यक्ति समान रूप से समूह के आचारा के अनुकूल मदद व्यक्त नहीं कर रहे हैं। इसलिए व्यक्ति का आचरण समाज द्वारा इसका पूर्वकथन बड़ा योग्य होता है। लेकिन सामूहिक दृष्टि से देखा जाय तो आचारा का सत्ता सामाजिक आचरण के नियमन में बहुत कुछ भयानक होती है।

वर्तमान समाज में आचार महिमा का उन्नत और विराट का प्राण प्रदान होनी रहती है। एका मुख्य कारण यह है कि पुराना समाज-संस्था समाजवादी समाज का आवश्यकताओं से अत्यंत पिछड़ा गड़ है। नए समाज और परिस्थितियों में हमारे व्यक्तित्व और सामाजिक आचरण के लिए एक नए और स्वाकृत आचार महिमा की आवश्यकता है। समाज विनाश अभी नहीं हो सकता है। परन्तु नविक आचरण के क्षेत्र में घाटा-बहुत गडबडी का अनुभव होना अनिवार्य है।

२ अज्ञानपूर्ण विश्वास—अधिकांश धर्म अपने अनुयायियों में यह भयानक करने हैं कि वे कुछ बातों में विश्वास रखेंगे। इन विश्वासों का तार्किक प्रदर्शन करना आवश्यक नहीं है क्योंकि वह स्वयं भागी है। उन्हें अगर तक और प्रमाण के स्वीकार करने की चाहिए। धार्मिक विश्वासों को एहिक जीवन में सराबार लागू चुनौती नहीं दे सकते। वे पारलौकिक हैं और इसलिए उनमें निष्ठा रहना ही चाहिए। विज्ञान और तर्क में उमड़ी सत्यता को चुनौती देना धार्मिक और अनैतिक है। किन्तु वैज्ञानिक और तर्कशास्त्री धर्म के इस दाव का स्वीकार नहीं करते कि धर्म के प्रत्यक्ष विश्वास में अज्ञान हो कि वह चाहें निहायत गायना और अंधविश्वास पर आधारित हो।

३ स्वधर्माभिमान—स्वधर्माभिमान उस कृत है जिसमें एक समूह अपने धर्म के किसी विविष्ट स्वरूप या अभिव्यक्ति को ही सच्चा विश्वास मानता है और समाज मानवता पर उस धर्म का प्रयत्न करता है। स्वधर्माभिमान एक प्रकार का सामाजिक जाति-वैदिकता है जो अपने धर्म के छाट-से छाट पट्टियों का भी सर्वोत्कृष्ट मानती और दूसरों के धर्म का अनादर या भ्रूण मारने देती है।

बहुधा सभी धर्मों में स्वधर्माभिमान की प्रवृत्ति का प्राण-बहुत धर्म होता है। धर्मों के अन्तर्गत कुछ और सधर्मों का कारण बड़ा धर्मरहित रहती है। धर्म के नाम पर अज्ञान नर-नारा और अज्ञान का न जान जितना शून्य बहाया गया है। मध्ययुग के धर्मप्रधान राज्यों में दूसरे राज्यों को धर्म नागरिकों पर धर्म के प्रविष्टा और समाज के नाम पर एक धर्मशास्त्र विषय जिनका मियात नहीं मिल सकता। कई राष्ट्रीयता का विपत्त और गवनाग इत्यादि हो गया कि उमर नागरिकों में विभिन्न धार्मिक समूहों में उच्च धर्मरहित बड़ी भयानक हो गई थी। भारत

हिंदू और मुसलमाना के दमे और १९४७ मे देश का बटवारा घमरुद्धिता का ही परिणाम था । घमरुद्धिता लागू को अघ विश्वासी बना देती है और घम से उसकी सजीवनी शक्ति छीन लेती है । घमरुद्धिता से लबालब घम एक विकृत घम है । वह समाज का हित नहीं कर सकता । मनुष्य को सुरक्षा नहीं दे सकता । प्रत्युत समाज का रागी और कमजोर बनाता है ।

४ सम्प्रदायवाद—जब एक घम छाट विमता के आधार पर ही विभिन्न सम्प्रदाया म बट जाता है जिनके बीच म कटुना और सघष बढ़ते हैं तो घम की इम प्रवृत्ति को सम्प्रदायवाद (denominationalism) कहते हैं । हिंदू घम म अनन्य छाट-बट सम्प्रदाय हैं । वह मतमतांतरा का जमघट है । इसी प्रकार ईसाई घम म सैकड़ा सम्प्रदाय है । सम्प्रदाया की अत्यधिकता घम को कमजोर कर देती है और बटुवा मूलघम नष्ट हो जाते हैं । सीमित सम्प्रदायवाद धार्मिक सम्प्रदाया को सशक्त करता है क्योंकि इसस धार्मिक अभियक्तिया के लिये आवश्यक स्वतंत्रता मिलती है । परन्तु कठिनाई यह है कि यदि घम का संचालन अनुत्तर और स्वार्थी लोगा के हाथा म चला गया है तो नए सम्प्रदाया के उत्पन्न को के रोक नहीं सकते ।

श्रेणीबद्ध सगठन—प्रविकाश घमों म यह भी प्रवृत्ति होती है कि उनके सगठन म एक ऐसा आन्तरिक पद मोपानात्मक स्तरण (hierarchical stratification) हा जाए जिसम विभिन्न स्तरा के विशेषाधिकार, नियोग्यताए निश्चित हा । पुजारी या पुरोहित विशेषाधिकारा के आधार पर सबसे ऊँचे स्तर पर आ जात हैं और शेष घमावलम्बी धार्मिक आचरण म सफलता पाने के लिये इनके मुखापक्षी हा जाने है क्योंकि पुरोहिता और पुजारिया के अनिरिक्त पवित्र सस्कारा को करने का किसी को अधिकार नहीं हाता है । इम स्थिति म घम के मूल सिद्धांतो का पालन उतना आवश्यक नहीं माना जाता जितना कि विविध सस्कारा और धार्मिक विधि विधाना का करने की सही रीति ।

घम का सामाजिक महत्त्व¹

घम और सामाजिक सगठन के बीच कई सम्बन्ध हैं । एक बहुत महत्त्व पूरा सम्बन्ध यह है कि घम समाज के परम्परागत जीवन ढङ्ग को उचिन ठहराता है । हम जानते हैं कि घम एक सरक्षणारमक शक्ति है । यह परम्परा का बनाए रखती है और उसको साधक और उचिन ठहराती है । सस्कृति और पर्यावरण का घपशतया कुद्द स्थिर समायोजन हाता है । घम इस मजबूत कर देता है । जो परम्परा स होना चला आया है वही सही तरीका है, उस ही ईश्वर की अनुमति पटना चाहिए और चूँकि वह घम प्रथा म लिखा है इसलिए वही स्वीकृत आचार-

¹ Jones *Basic Sociological Principles* p 285 & MacIver and Page *Society* pp 488-491

संज्ञा है। धर्म इस बात पर बड़ा भार देता है। समाज की सबसे अच्छी व्यवस्था बना मानी जाती है जो धर्म-सम्बन्ध परम्पराओं और भूमिका व अनुष्ठान आचरण करें। धर्म का यह स्वरूप प्रभाव समाज व विद्यालय की हगमगन में रोचना है जब उस पर मरत पन्न हैं। धार्मिक भाग उसे ईश्वर की आज्ञा मानकर उन अनुष्ठान सन्त है एसा नियमिता म भी समाज व धार्मिक ताग धर्म-सम्बन्ध आचरण का उत्तरदायक बनत है। धार्मिक भाग यही विद्यालय बताए रखत हैं कि इन उत्तरदायकता का विद्यालय का बन्तता हागा।

धर्म सामाजिक नियमन का एक मूलन साधन है। भाग कानून का तात्त म उतता धर्म नहीं मान जितना दुष्टुय करन म श्रद्धर का भय खात हैं। मरु प्रेमदु का धारणा भाग म समाचार की धारणा डावनी है। व प्रत्येक समाज विद्यापीठ का बन्त म बहूधा इतिहास हिवक्त हैं कि बहू धर्म विद्यापीठ भी हागा। जिन धर्मों म बम और आवागमन व विद्यालय का प्रतिष्ठा है वही भाग नरन-माननासा में बचन व नियम आचरण परानकार और दूसरा की सेवा बन्त हैं।

शांति और सहारा म सामाजिक रूप म मान-सूचन व धर्मन व्यवहार धारत है। व सामाजिक व्यापार के विस्तार म महादक है। इसलिए उन्हें सामाजिक एवता का पापन बना गया है। सत्यनारायण की सेवा कीमत समाचार पठ धर्मन धर्म धार्मिक व्यवस्था व एकत्र हुए भागा म धनिष्ठता और सामाजिक नियम की भावना बहनी है।

धर्म एा किमा नियम या व्यवस्था का धाराधक है जो भाग भाग म धृता उन्नत कर वा किमी मानन मरुह का नीच कर्कर भाग व नियम आचरण या धारणा का निर्धारण बनात। दलितता या शक्तिता की सेवा धर्मन बहू बार की है। धार्मिक धारणा व नियम, विद्युत शक्ति म विद्या और चिन्तना की व्यवस्था धार्मिक नियमनिका न का है। समाज म धर्म भी धर्म जाति भेद और मूढ का विरोधी है।

धार्मिक संगठन समाज व धार्मिक संगठन का मूलबूत बन्त है। धार्मिक एवता जाति या राष्ट्र की एवता म एक महत्वपूर्ण कारक है। दासता का मुद्द धर्म में भा धर्म का बन्त महत्व नहीं है।

धर्म एक मरणात्मक शक्ति होत हुए भा मदक परिवर्तन का विरोधी नहीं हाता है। बहू जब तर मरुवनी शक्ति में मरुवत रहता है धर्मन के नियम परिवर्तन का धारक हाता है किन्तु जब किमी धर्म म शक्ति और विद्युत इनती धर्मन धार जाती है कि उसकी मरुवनीयता और मरुवनीयता हो नियम जाती है तब धर्मन व समाज का भागी शक्ति बरता है। बीन नहीं जानता कि मरुवनीयता की मरुवनीयता शक्ति बहू इसा और मरुवनीयता धर्म धर्म प्रवर्तकों न की।

समाज के लिए धर्म धर्मनकारी तर हा जाता है जब समाज मरुवनीयता धर्मन धार भाग के हाम म धार जात जो धर्मन नियमन और धर्मन शक्ति की रक्षा

के लिए धर्म का सामाजिक शोषण अस्मानता एवं अन्धधर्म के लिए उपयोग करें या प्रगतिवादी शक्तियों और धाराओं का खुलकर विरोध करें। धार्मिक अस्तिष्णुता और युद्ध मन्चे धर्म के दाप नहीं हैं वह तो धर्म की विकृति के ही परिचायक हैं।

एक स्थिर समाज में धर्म एक प्रामाणिक आचार संहिता का विकास करके सामाजिक नियन्त्रण की समस्या को बड़ा मरम्भ कर देता है और विकासवादी परिचयना में समाज और व्यक्ति को समायोजन करने के उचित अवसर देता है।

आधुनिक जटिल समाजों में धर्म—आधुनिक जटिल समाजों में धर्म की सत्ता और प्रतिष्ठा में अमनो-ह्रास हो रहा है। इस प्रवृत्ति के दो कारण हैं (१) जटिल समाज की जनसंख्या में अनेक विजातीय समूह हान हैं जिनकी पार्श्वभूमियाँ, हित और व्यवहार प्रतिमान एक दूसरे से बहुत विभिन्न हान हैं। यह विभिन्नता वर्तमान समय और सभ्यता और पर्यावरण की अनेकता के कारण बहुत अधिक बढ़ गई है। भारत को लीजिए। यहाँ ईसाई मुसलमान पारसी धर्मावलम्बियों की एक भारी संख्या है। व इस दशा के मूल हिन्दू धर्म के प्रतियोगी बन गए हैं। पिछले वर्षों में न जाने कितने भारतवासी मुसलमान और ईसाई हो गए। ये दोनों धर्म अपने साथ विद्वानों सभ्यता को भी लाए हैं जिनका भारतीय सभ्यता से सामंजस्य नहीं हो पाया। अतः भारतीय सभ्यता में अनेक विघटक शक्तियाँ काम करने लगी हैं। ईसाई सभ्यता का सम्मोहन अनेक भारतीयों का ईसाई धर्म के निकट जाता है और अपने धर्म से दूर। दूसरे हिन्दू धर्म की कुछ दुबलताएँ और अतः विरोध उसकी सत्ता और प्रतिष्ठा को चुनौती देते हैं। अस्पृश्यता, बालविवाह विधवा विवाह पर रोक, नारी का शोषण और हिन्दू धर्म में आदिम धर्मों के नीचे तत्वों के समावेश के कारण अनेक शिक्षित, विचारशील और प्रगतिवादी हिन्दू अपने धर्म की निन्दा करने की विवश हैं।

सभ्य समाजों में धार्मिक प्रतिष्ठा के गिर जान का दूसरा कारण यह होता है कि इन समाजों में धार्मिक प्रतिमानों के स्थान पर नये प्रतिमान विकसित हो गए हैं जो जीवन के लक्ष्यों और मूल्यों को निर्धारित करते हैं। धार्मिक और अधार्मिक व्यवस्था कुछ समूहों और व्यक्तियों के लिए वहाँ काम करने लगी हैं जो धर्म करता था। वर्तमान में धार्मिक सफलता को ही जीवन का परम ध्येय मानने लग गई है। इसी प्रकार से सभ्यता और विज्ञान की उन्नति में मनुष्य का अनेक ऐसे अवसर और प्रयोग हो रहे हैं जिनमें वह ऐहिक जीवन के कल्याण को ही जीवन का परम लक्ष्य मान बैठता है। अनेक राजनीतिज्ञ, शिक्षाविदों वगैरहों और समाजसेवियों का मिशन अपने अपने क्षेत्र में कम-त-परता ही है। विज्ञान, धर्म, कला और मनोरंजन में व्यक्ति के जीवन का सुगम होना ही अवसर लिए हैं। फिर भला मनुष्य परलोक के सुख और मोक्ष की चिन्ता में ही क्या डूबा रहे? जीवन में प्रचुरता और

पथाग्रा सस्याग्रा और मूल्या का प्रतिक्रियावादी समझता है जो धर्म सम्मत होने के जाने प्रगति का माग नो राखते हैं। भारत में जानिवाद अस्पृश्यता कमवाद और भारी का समाज में निम्न स्थान सभी के ऊपर धर्म की कृपा दृष्टि रही है। परन्तु यह समस्याएँ हमारी प्रगति का माग राख खड़ी हैं। इन्हें बदले या ताड़े बगैर प्रगति करना असम्भव-सा है।

हमारे जैसे देश में समाज बड़े धर्म में परिवर्तित हो रहा है। उसकी मूलभूत संरचना ही बदल रही है। समुक्त परिवार धर्म-सम्मत पवित्र विवाह दली बण जानि रचना अस्पृश्यता सरल और भाग्यवादी जीवन सब पर आधुनिक प्रगतिशील शक्तियाँ प्रहार कर रही हैं। मनुष्य का विवेक होकर परम्परा के विरुद्ध व्यवहार करना पड़ता है। समय उसमें नए-नए विश्वास मूल्य और विचार चाहता है किन्तु समाज ही पर भरोसा और रूढ़ियाँ उससे ऐसा करने से रोकती हैं। धर्म का नाम पर उसकी प्रगति पीलता का निरन्तर टहराया जाता है। इन स्थिति में मनुष्य का समाज से समायोग में पड़ी कठिनाई होती है। जीवन का किसी भी क्षेत्र का ले लीजिए। आपके योग यही कहते मिलेंगे भद्र क्या करे समय की माँग के अनुकूल आचरण करने में बड़ा कष्ट होता है किन्तु यदि समय के साथ चला तो समाज का कोप निन्दा और तिरस्कार का भाजा बनना पड़ता है। हम तो बड़े धर्ममजस में हैं। मर्मक में नहीं जाना क्या करे और क्या न करे। अतर्जनीय विवाह शूद्रा का साथ प्रेम विवाह सामाजिक मस्कारा तथा उसका पर मिथ्या विधि विधानों का न करना जाति पति का भेदभाव का परित्याग, स्त्री शिक्षा सभी मनुष्यों की समानता में विश्वास ये सभी ऐसी व्यवहार हैं जिन्हें खबर करने या उनका सम्मान करने को हर भारतीय परिस्थितिबश उचित या आवश्यक समझने का विवेक हाता है किन्तु ऐसा करने पर धर्म की रूढ़िवादिता का विरोध सहना पड़ता है। अस्तु इस स्थिति में समाज से समायोग जन का अनर समस्याएँ व्यक्ति और समूह के सामने आती हैं। सफल समायोजन पठित ही नहीं बल्कि बार असम्भव हो जाता है। फलतः व्यक्ति और सामाजिक विषय बनता है।

विज्ञान और सत्यता की प्रभा में धर्म की कट्टरता, रूढ़िवादिता, पापे विश्वास, उत्पत्ताग और मिथ्या पौराणिक कल्पनाओं से मनुष्य टगा नहा जा सकता है। उस अपने जाते और समाज तथा अनरत अज्ञान के कारण में जा जान चाहिए वह धर्म नया न सवा। जान विज्ञान ही साधना न उन सत्य का पथ को प्रवाणित किया है। उस समाज और अंतराष्ट्रीय (मानव समाज) जगत् की ऐसी व्यवस्था चाहिए जिसमें अत्याय पीपण और विषमता न हो जिसमें सत्य अपने माग धर्म तथा समाज का कल्याण में अभिवृद्धि करे क समुचित भवगर् मिलें। यह विवरणपूर्ण गणना करना चाहता है जो उसकी और समाज की स्वाभाविक दृष्टाओं का अनुकूल है। उस समय महात्मा और अनरनी धर्म का दर्शन सभी भाषा से सम, गहमाय

भ्रातृव धार समता के व्यवहार में मिलता है। यह मानववादी है जो ममान समार के मनुष्या की निष्ठा का धारण हाता कशाकि एतम नमी धर्मों के मार तर मप्रिविष्ट हैं। धारत ही मानवीमिक धम हमारा माध्य है।

समाज के प्रसिद्ध सामाजिक बरतू १८४८ रमन १८५१ राघाटुप्लान और भारत के युवाव्यवहार महांमा गांधी एम ही सामाजिक धम की प्रसिष्टा के हिमायत है। बार एम धम के सम्मत्ता निराधार ही जाती। नमी धम न नमानी इतनीविक निसाना मनुष्यामि है। महा धम हम म्हाधुनिक मन्मता के म्पुव मता—विमान धार प्रसिधि—के उचित “पयोग” म मात देना के मकता नता नता न मानव बन्धुता के मासक न हाव मानवता के निराधार ही जाएंगे।¹

धम और सामाजिक विघटन

स्त्रिया एवं सार्वजनिक के मद्रन मजूग (Sanction) के लिए हा धम का प्रयाग जाता रता है धार इन प्रकार धम न उभरण एत मभी व्यवहारा के उच्छेद किया जिह धम न कभी भी मायता नमी नी थी। कुछ पुगमन एवं मकार मी स्त्रिया के धम न उधीन जीवन स्थिया। प्राय एयो स्त्रिया व्यक्तिता के जीवन का निर्मा प्रन त के रता थी। एम प्रकार के परिवहन न समाज म कतिपय भ्रान्तिया का ना त्रम स्थिया और कुछ न्याया म समाज म वेदस्ति एय सामाजिक विघटन का पता रता। जम किरी न्याय समाज म को धार विनी म्पुन धारकर रहने लगता है तब उस पुगमन समाज के धार्पिन लीव म द्देश्य परिवहन प्रारम्भ हान सान है और स्त्री के कारण कतिपय नमीन स्थिया या भी जन हाता है। एनो स्त्रिया का धम प्राय मायता दे देता है। व्यक्ति इन स्थितिया म प्रसिन्ति प्राय एम काम विपा करता है जिह धम मायता नता प्रमन करता। एत कार्यों की धम निग्न करता है। कतल निग्न करन के धनवा धम एत कार्यों का मगठिन कायजमा का ममा म द्देश्यर निपत्रिड नमी करण। प्राय एमा जाता है कि धार्मिक एवं म्हाधुनिक धार्मिकागों के मूवाहन की धम व्यवस्था नमी के रता धन म्बव व् सन बात ममान म धम का नियंत्रण कम हा जाता है और धम धन सामाजिक म्भयाओं का तुनता म एव सामाजिक प्रानि त काया रूप रह जाता है।

धम एवं वास्तविकता से अज्ञान (Religion and Reality-eyss on)

धम प्राय धरन मानवीमिकता की धार म वुर कार्यों के करन का प्रामाणिक जाता है जे म्हाधुनिक मता एवं फरीक के धम म वान त धरत्ताय लव म्मानक म वान करन रता है। म्मात्र के धारण म्भया का एनम प्राय म्बव हा मम त

विरोधी काय करन की प्रेरणा मिलती है और सामाजिक नियमों की अवहेलना कराने में ये सिद्धहस्त होते हैं। प्रत्येक समाज इसका भागी है कि उसके बहुत से हृष्ट पुष्ट सम्पन्न समाज की आर्थिक एवं नैतिक अथवा प्रगति में सहायक न होकर समाज पर भार बनकर साधु सन्त, पण्डा पुजारी एवं मठाधीशों के चल एवं संवर बनकर घुमा करते हैं। इतिहास धार्मिक युद्धों का बखाना से भरा पड़ा है। मंदिरों मठों एवं चर्च इत्यादि को लम्बी रकम देकर पूँजीपति मजदूरों को समुचित कमाई देने का पाप से या जिन्दा में यत्न गत है। जनक धर्म जन कथानिष्ठ, अपने सदस्या द्वारा सिद्ध गये पापों एवं अपराधों का स्वीकार करके प्रायश्चित्त या क्षमा कराने का विधान प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार मानव का सन्तुष्टि बढ़ा कराने की अपराध करने की प्रवृत्ति का केवल प्रायश्चित्त एवं क्षमादान से सुधारने की प्रवृत्ति से उसे अपने स्वभाव का बदलने की जिम्मेदारी से छुटकारा मिल जाता है। ब्रह्मचर्य (asceticism) मनुष्य को कठोर जीवन हठ याग गन्धी एवं अथ सामाजिक मूल्यों का भ्रंश एवं धर्म मानना करा कर उस सामाजिक उत्तरदायित्व एवं कर्तव्यों से परे हटाता है।

धर्म एवं मानसिक व्याधि (Religion and mental ill health)

धर्म के कारण ही पाप दोष भावना (Sin guilt complex) पश्चात्ताप (Remorse) एवं हीनता की भावना सहज एवं असुरक्षा की भावना एवं भय प्रभृत भावनाओं को मानव मस्तिष्क में जड़ देना है। कतिपय विचारकों के अनुसार मानसिक व्याधियों के उत्पन्न करने में उपरान्त भावनाओं का बहुत बड़ा हाथ होता है। जिन धार्मिक प्रवचन करने वालों का प्रवचन से व्यक्ति के मन में डर पश्चात्ताप, लज्जा एवं भय उद्गात्मक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं वास्तव में वे ही प्रवचन करने वाले व्यक्ति के विघटन का उत्तरदायी होते हैं।

धर्म एवं सांस्कृतिक संघर्ष (Religion and Cultural Conflict)

संसार में एक ही धर्म है जो संघर्ष, असहनशीलता और स्वसमूह प्रेम (ethnocentrism) की प्रक्रियाओं का संरक्षण कर रहे हैं। इनकी भाँड में विभिन्न विधानों (Extra legal) संगठन एवं अथ धार्मिक समूहों के व्यवहारों का नियंत्रण करने वाली संस्थाएँ पञ्चवित्त-मुष्पित एवं फलित होती रहती हैं। हिंदू और मुस्लिम कथानिष्ठ एवं प्राटेन्संट तथा यहूदों एवं जेण्टलमैन धर्म समूहों के बीच में जो संघर्ष हुए या जिनके नीचे की सम्भावना है उनका प्रेरक नत्व मानवता के विघटन पर पात घुणा अग्रहणीयता और भय पैदा करते रहे हैं। विभिन्न कालों में घुन से समाज में धार्मिक युद्ध हुए हैं और वर्तमान में धार्मिक संगठनों का संघर्ष चल रहा है। इन धार्मिक दलों के अन्तर्गत में धर्मों का अनुयायियों का साथ बनाकर एवं हथियारों भाँट रहे हैं। एक ही सम्प्रदाय या चर्च का परिधि का अन्तर भी संघर्ष होता है नए बात

योगदान पाश्चात्य भौतिक सभ्यता को है जिसमें विज्ञान और प्रविधि की उन्नति का प्रमुख स्थान है। जस आधुनिक जगत की एक विश्वव्यापी सभ्यता के निर्माण की भविष्यवाणी बीसवां शताब्दी के प्रारम्भ में कई इतिहासकारों और विचारकों ने की थी उसी प्रकार आज कुछ विद्वान यह भविष्यवाणी कर रहे हैं कि निकट भविष्य में समस्त विश्व में एक समान संस्कृति का प्रसार हो जायेगा। निम्नलिखित पंक्तियों में हम आधुनिक सभ्य समाजों की संस्कृतियों की कुछ प्रमुख वर्तमान प्रवृत्तियों का वर्णन करने का प्रयास करेंगे।

सामाजिक प्रथाएँ, परम्पराएँ और रूढ़ियाँ

आधुनिक सभ्य समाजों में प्राचीन और मध्ययुगीन की बहुत सी प्रथाओं परम्पराओं और रूढ़ियों की विविधता और याचहारिकता के आधार पर परस्पर उनमें से इस-कमोटी पर-खोटी उतरने-वालों का परित्याग किया जा रहा है। यौन, जाति, वर्ग, धर्म, रंग अथवा संस्कृति के आधार पर भेदभावों का मानव समाज के लिए सर्वथा व्याज्य समझा जाता है। स्त्रियों का समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समान स्तर पर ही कार्य करने का अवसर मिल रहा है। प्रजातीय भेदभाव, छुआ-छूत और ऊँच-नीच की भावनाओं को प्रतिश्रियावादी माना जाता है। समाज का विभिन्न समुदायों में विशेषकर परिवार और धर्म में 'यापक' परिवर्तन हो रहा है। परिवार में जनतन्त्रीय भावनाओं के आधार पर प्रत्येक सदस्य को सर्वोत्तम विकास करने का अवसर प्रदान किया जाता है। धर्म के क्षेत्र में प्रत्येक समूह को अपने धर्म में ग्राम्थी रहने उसकी उपासना और प्रचार करने की समान छूट है। उस ही धर्म निरपेक्षता कहते हैं। सामाजिक परम्पराएँ तथा रूढ़ियाँ जो अभी तक सर्वाधिक रूप से धर्म सम्मत थीं, उत्तरवादी और तर्कवादी विचारधारा में रगती जा रही हैं। समाज के आचार-नियम सरलता, सामाजिक उपयोगिता और सामाजिक-यापक पर-कम-श्रम-आश्रित होना जानते हैं। कोई भी सभ्य समाज अपने सदस्यों में स्थानीयता अथवा अर्थ-प्रकार के मनुष्यिक दृष्टिकोण उत्पन्न करना अधिकार मानता है। सहनशीलता-उदारता-पारस्परिक-आदान-प्रदान-प्रेम और मदद-छाया आधुनिक मानव के व्यवहार के मान्य बहू-जा-सकते हैं। राष्ट्रों में परस्पर-भेद ही वैमनस्य और संघर्ष हो-विभिन्न-जनों की जनता में एक-दूसरे के दृष्टिकोण और हितों को समझने में काफी उदारता और सहानुभूति बढती जाती है। समाज में अत्याचार-प्रपीडन और शोषण के विरुद्ध जनसाधारण में तीव्र प्रतिश्रिया होना स्वाभाविक सा हो गया है।

वैश्वभूषण और भाषा

आधुनिक सभ्य समाजों में व्यापक स्तर पर बोलो-के-पन्नाव, मान-चाल और भाषा में बहुत-साम्य बढता जा रहा है। मसतार-के-किसी-आधुनिक-नगर-में-जाने-पाश्चात्य-रंग-का-पहिनाना-एक-साधारण-भी-घटना-लगती-है। मसार-की-कुछ-सर्वाधिक-प्रचलित-भाषाओं-जसे-अंग्रेजी-से-बढूत-में-पर-लिख-साम-परिचिन-मिन-जाएँगे। यूरोप-अमरीका, रूस, एशिया, अफ्रीका और लटिन-अमरीका-के-प्रमुख

यह वास्तविक और गायत्री के मामले में एक दूसरे के बिल्कुल विरुद्ध हैं। कुछ प्रमुख भाषाशास्त्रियों ने अन्तर्जातीय भाषा का रूप धीरे-धीरे ग्रहण कर दिया है। अतिवादों और कुटिल धर्म प्रवृत्तियों के द्वारा यह बात साम्य बड़ रहा है। प्रत्येक धार्मिक दल में उन्नत दल की भाषाशास्त्रीय विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता है। भाषाशास्त्रीय पारम्परिक सम्बन्ध और आदान-प्रदान में आज उन्नत विज्ञान की गति और विज्ञान में बहने वाली समानताएं उद्भूत हो गई हैं। रशिया, मिनमा, टर्किस्तान, समाचार पत्र परिवर्धन के माध्यम से भाषाशास्त्रीय समानता और समानता में बहने वाली समानता मिली है। टाइपराइटर और टाइपराइटर के आविष्कार ने भाषाशास्त्रीय विज्ञान में वैज्ञानिक समाधान और सरलीकरण की प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहन मिला है।

साहित्य

उन्नत विज्ञान के साहित्य में पचास जीवन का चित्रित करने की प्रवृत्ति प्रमाण बढ़ती जा रहा है। आज साहित्य में प्रयोगवादी व्याख्याओं और प्रतीकवाद का बोलबाला है। साहित्य का समाज की समृद्धि का समृद्ध करने और उनका प्रतिनिधित्व बनाने में बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। साहित्य समाज की अनुवृत्ति बना जाता है। साहित्यकारों का ऐसा विश्वास है कि धार्मिक जगत् में साहित्य सामाजिक परिवर्धन और क्रांति का एक सत्य माध्यम है। आज साहित्य केवल धार्मिक या शैक्षिक नहीं रहा। यह अन्तर्जातीय स्तर पर मानवता के मान-विज्ञान और मनोरंजन का समृद्धि कर रहा है। एक समुदाय के साहित्य में जो भी नए प्रयोग या उपरिचय आते हैं वे द्वार दल में भी हो जाते हैं। साहित्य में आदान-प्रदान के लिए और उन्नत मानव बचपान में योग्य बचपान के लिए प्रोत्साहन देने के लिए वर्तमान विश्व में यह अन्तर्जातीय सरथाए है। साहित्य पर नागरिकता और आजादीकरण की समस्याओं की स्पष्ट छाप दिखती है।

बला और मनोरंजन

बला के क्षेत्र में भी उन्नत प्रवृत्तियां न मिलती जुती अनेक प्रवृत्तियां दृष्टिगत आती हैं। आज बला बला के लिए के लिए जो बर्तन आसपास नहीं हो गया है। बला जीवन और समाज के लिए उपयोगी हो यह धारणा धीरे-धीरे दृढ़ हो रही जाती है। बला के बलाकारों और व्यावहारिक पक्ष में नागरिकता के प्रयोग सरलान में आता जाता है। बला-वृत्तियों में भी धार्मिकता आसपास शैक्षिकता के स्तर पर राष्ट्रीयता या मानवता के प्रति प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। अब बला केवल कुछ समुदायों तक, अथवा अतिरिक्त वर्गों की उपरि नहीं रह गया। बलाकारों का बला क्षेत्र जनसाधारण के समक्ष तक सुविस्तृत हो गया है। बला के उपरि बला बला का जन्मजन्म कर दिया है। पुराने पत्र-पत्रिकाओं, विज्ञान टिप्पणिकाओं, समाचार पत्रों के माध्यम से उन्नत में उन्नत बला जनसाधारण तक फैल जाती है। बला में उन्नत-विकास के अतिरिक्त व्यावहारिकता भी आ गई है। अब बलाकारों का बला

जनिक प्रशंसा और सम्मान पान के अधिक अवसर है। कला को राज्य का सरक्षण और प्रोत्साहन न भी मिले तो वह जनसाधारण के सरभण और सहायता से जीवित रहती है। कविता, नृत्य, चित्रकारी, संगीत, मृत्पत्र, वास्तु कला, स्थापना आदि विभिन्न कलाओं में युग की अपेक्षाओं का भावनाएँ समस्याओं का बहुत मुरचि में चित्रण होता है। आज कलाओं का सामाजिक नियंत्रण और परिवर्तन दोनों के लिए प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है।

कलाओं तथा मनोरंजन के अर्थ साधना में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रगति हो रही है। मनोरंजन के व्यवसायीकरण से कुछ विषय समस्याएँ भी उत्पन्न हो गई हैं। सिनेमा और टेलिविजन तथा सस्ते अश्लील साहित्य को कुछ सीमा तक जनरक्षित करने के लिए दापी ठहराया जाता है।

ज्ञान विज्ञान

ज्ञान विज्ञान के विकास में भी आज कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं जो यह स्पष्ट संकेत करती हैं कि उस क्षेत्र में विज्ञान से पूर्व की मायताएँ समाप्त हो रही हैं अथवा शिथिल पड़ गई हैं। ज्ञान विज्ञान की समस्त शाखाओं में वैज्ञानिक प्रवृत्ति का बोलबारा है। वही ज्ञान शाखा सम्मानित माना जाती है जो अपनी विषय वस्तु का अध्ययन मात्र वैज्ञानिक नियमों के अनुसार करती है। सभी ज्ञान शाखाओं में उन्नति करने की दिशा में एक अभूतपूर्व हाड़ है। प्राकृतिक विज्ञान सामाजिक विज्ञान और मानवीय ज्ञान सभी में उपयोगितावादी ध्येयों का मदभ में विकास हो रहा है। सभी ज्ञानों का धर्म तथ्य मानव कल्याण की वृद्धि करना स्वीकार किया जाता है। ज्ञान विज्ञान के विकास और परिवर्तन पर अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों का निरसदह प्रभाव पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय आन्तक प्रज्ञान और प्रयागों के माध्यम से ज्ञान विज्ञान का एक सार्वभौम विश्वस्वरूप विकसित हो रहा है। राष्ट्रीय सीमाओं भाषा के प्रविचय अथवा विचारधाराओं के संघर्ष ज्ञान विज्ञान के प्रचार प्रसार में कतई बाधक नहीं। ऐसा प्रमाण करने के लिए समुक्त राष्ट्र संघ की कतिपय समस्याएँ तथा अन्तर्राष्ट्रीय मगठन घुन सङ्घर्ष हैं। उस क्षेत्र में भी जनतन्त्रीकरण की प्रवृत्तियाँ प्रबल हैं।

विज्ञान, प्रविधि और समाज

प्राधुनिक जगत में विज्ञान और प्रविधि का अभूतपूर्व विकास हुआ है। इन दोनों का विकास ने मानव समाज की शक्ति में इतनी वृद्धि कर दी है कि जिन प्रकृति पर नियंत्रण सा कर दिया है और अनन्त आविष्कार और उत्पन्न कर एवं अत्यन्त गौरवान्ना भव्यता का निर्माण कर दिया है। आज विश्व में त्रिधर दृष्टि डालिए विज्ञान का नाम नए चमत्कार सिखाए पाने में। जगत्पति का देहे-देहे बल-शरणागत रत्न हवा जगत मधुनी जहाज तार रनिया टलीपून टनिविन्दन बमरा गिनमा, टगा की मीनें घरा म काम जाने वाली विजयी की अनन्त सुविधाएँ और यम, बर नाग की जल-पूर्ति व्यवस्था गणकुट्टा प्रयाग प्राणि प्राधुनिक सभ्यता की न-ना और आचमचकित कर दन वाली वस्तुप्रा म कौन परिचित नग है। प्राधुनिक युद्ध में विज्ञान और प्रविधि के उत्पानना का ही बावधाना हाता है क्याकि युद्ध में वही का जानता है जिसका सना अद्यतन सगरक अन्न म्हा म सज्जन हाती है। विज्ञान विज्ञानमहायुद्ध में नियगच्छ ही निगावक विजय का एकमात्र कारण था उनही जगत्प्रा क प्राय अष्टु अन्ना का जना। किसी का प्राधुनिक राष्ट्र की गहनविश्व आधिक एवं सामाजिक शक्ति का आधार ज्यवा वानितर एवं प्राविधिक उपनि का ही माना जाता है। मगध में विज्ञान और प्रविधि की उपनि राष्ट्र का विग गादि और मुद्रागत में समान रूप से शक्तिशाली एवं समृद्ध बनाती है। मगध का य है कि प्राधुनिक समाज समाज का समा काद एहू नो है जिस पर विज्ञान और प्रविधि का एका और विस्तृत प्रभाव न पना हा। मानव का अन्त जेन म तेकर मृनु पयन तर विज्ञान और प्रविधि म प्राप्त सुविधाप्रा न मृग-मृष्टि उदरन म आशयवन्तक म्हाप्रा विनी है। एका यह कहना अति-दार्ढ्य न लागे कि विज्ञान और प्रविधि का उपनि क समाज में वतमान सभ्यता का विराम समन्त हाता। किन्तु जही एक और विज्ञान और प्रविधि की महात् उपनि न मानव समुदाय की अन्त कठिन मन्मथा का समापन प्रयुक्त कर दिया है और जग एव आशयवन्तक एवं अद्भुत-

पूव गौरवशाली सम्मता का सृजन कर्न का श्रेय दिया है वहाँ दूसरी आरब्धी सम्मता की उन्नति न मानव समाज म कुछ एसी भयकर समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं कि यदि उनका कारगर समाधान न किया गया तो हमारा सत्तार शीत्र ही एक भय कर विनाश क कगार पर अपन को पायेगा ।

इस परिस्थिति म वनानिका तथा अय विचारका का दा विपया पर गभीरता से विचार करन के लिए बाध्य हाना पना है (१) समाज म विनान का स्थान, और (२) समाज पर विनान और प्रविधि का सघात (impact) । विनान की विभिन्न शाखाआ क विद्वाना न इन विपया पर मूल्यवान विचार यक्त किए हैं किंतु विनान के सामाजिक पहलुओ (social aspects of science) पर अधिक मूल्यवान विचार समाज वनानिका स ही अपेक्षित हा सकते है । पिछले कइ दशका म समाज वनानिका ने सामाजिक सरचनाआ की सूक्ष्मताआ का बढा गहन विश्लेषण किया है । उहाने मानव समाज के विस्तृत और जटिल क्षेत्र पर वनानिक आविष्कारा तथा गाजा के अद्भुत प्रभावा का विश्लेषण भी किया है ।¹ हाल म दा प्रमुख समाजशास्त्री रायट मटन और बर्नाड बावर न समाज म विनान के स्थान पर उल्लेखनीय काय किया ।² समाज पर विनान और प्रविधि के प्रभावा के विश्लेषण म आगवन निमवाफ, वारनर, हाट और एलन आनि समाजशास्त्रिया का काय अग्रगण्य है ।³ इटन मेया 1 आधुनिक श्रौचागिक सम्मता से उत्पन्न सामाजिक समस्याआ का अछ्या विवचन-किया है ।⁴ यह विषय दतना महत्त्वपूर्ण हा गया है कि आधुनिक समाज विान म उन पर अनुसधान करना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है । यूनस्वा जसी अंतरराष्ट्रीय सस्थाआ न भी विनान और प्रविधि क सामाजिक उपरतक्षणो (social implications) पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनुसधान-योजनाएँ प्रारभ कर दी हैं ।

विज्ञान और उसके सामाजिक पर्यावरण का सम्बन्ध

रायट मटन की उक्त पुस्तक के अतिम पाँच अध्याया म उपरान्त विषय की विवचना की गई । इन लेखा म सबप्रथम विनान और सामाजिक सरचना की अन्त निर्भरता के विभिन्न ढगा की यान्या की गई है । विान स्वय एव सामाजिक सन्या है जो समाज का समकालीन अय सन्याआ स विभिन्न प्रकार स सन्वित रहता है । दूसर मटन न विान और समाज की अन्तनिर्भरता का कायात्मक विश्लेषण (functional analysis) कर्न का प्रयास किया है निममे निगप घ्याा इस बात पर

1 See Kingsley Davis *Human Society*, Chapter on *Science Technology and Society* and Lurdberg etc *Sociology*

2 R. K. Merton *Social Theory and Social Structure*

3 See Allen & Others *Technology and Social Change* Appleton Century Crofts New York 1957

4 Elton Mayo *Social Problems of an Industrial Civilization*

दिया गया है कि समाज और विज्ञान का एकीकरण (integration) वहाँ तक सम्भव हो सका है और वहाँ उच्च विपन्नता मिली है।

सामाजिक व्यवस्था और विज्ञान के विकास में घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिन समाजों में सततनिरन्तर सदा अधिष्ठान का स्वीकृत होता है वहाँ विज्ञान का विकास सततनिरन्तर अधिनायकवाद का भाविका मुहूर्त बनने के लिए किया जाता है। विज्ञान जनता का प्रयोग और मुक्ति का साधन बन जाता है। नाना उमरी में विज्ञान के विकास का यह उद्देश्य रहा। समरसा और इन्टरनेशनल स्तरों में विज्ञान का विकास भी सतत मुक्ति साम्राज्यवाद और अनिश्चयवाद के विस्तार के लिए हुआ। इन स्तरों में पूँजीवादी अधिष्ठान व्यवस्था इनकी उत्पत्ति हो गई है कि वह अधिष्ठान गरीबी के मुहूर्त के लिए बनाया विज्ञान प्रविधि की एकीकरण उत्पत्ति बनाता है कि वैज्ञानिकों तथा अन्य अन्य सामाजिक अधिष्ठान दुर्गम उत्पन्न हो जाते हैं। पूँजीवादी का अधिष्ठान साम्यवाद में इनका स्तरों हा गया है कि वह साम्यवाद की प्रगति करने के लिए मुक्ति के अन्तर्गत अधिष्ठानों का निर्माण करता है जिसमें समाज और मनुष्य की मुक्ति के लिए सम्पूर्ण स्तर उत्पन्न हो जाते हैं। इस विधि में विज्ञान के समाजों की अधिष्ठान बनाए जाने सामाजिक है।

जनतन्त्रीय समाज व्यवस्था में विज्ञान का स्थान बहुत निम्न होता है। जनतन्त्रीय समाज में अधिष्ठान सामाजिक सम्बन्धों का भाविका विज्ञान का अधिष्ठान का अधिष्ठान प्रामाणिकता और उपयोगिता में है। सभी विज्ञान का महत्त्व यह मान पर निर्भर है कि उसमें सामाजिक अन्तर्गत के लिए कार्य करने का कितनी क्षमता है और उसकी उपयोगिता क्या-क्या है। विज्ञान का जितना उपयोगिता है व समाज के विकास के नागरिक में समाज के उपयोग पर निर्भर है। जनतन्त्रीय समाज में यह विचारों में किया जाता है विज्ञान के ज्ञान का जनताधारण से मुक्ति के लिए प्राप्त है। जो भी ज्ञान का प्राप्त करने। उपयोग करने की क्षमता रखे उसे ज्ञान के सामान्य-समस्या का अवसर दिया जाय। किन्तु समाजों की अधिष्ठान तथा अधिष्ठान दृष्टिकोणों में कुछ अन्तर्गत सामाजिक अन्तर्गत अधिष्ठानों का मुक्ति किया जाता है जिसमें जनता और समाज की अधिष्ठान उत्पन्न हो सकती है। समाजिक का अधिष्ठान है कि समाज समाज का अधिष्ठान प्रगति वैज्ञानिक अनुसंधान का स्तरों में हा सकती है। समाजिक उत्पन्न अधिष्ठान प्रगति के लिए बनाए है।

विज्ञान के अधिष्ठान उत्पन्न या प्रविधि और समाज के विकास का सामाजिक वर्ग (social status) पर प्रभाव पड़ता है। समाज के अधिष्ठान का अधिष्ठान सामाजिक जीवन का अधिष्ठान बनाने में प्रयुक्त हो सकता है कि विज्ञान के सामाजिक मुक्ति बहुत ऊँचा हो जाता है और जनता तथा अधिष्ठान सामाजिक अधिष्ठान विज्ञान के अधिष्ठान विकास का समाजों का अधिष्ठान है। समाजिक जनता विज्ञान के अधिष्ठान का समाज सामाजिक अधिष्ठान और अधिष्ठान उत्पन्नों में अधिष्ठान है। अधि-

पूर्व गौरवशाली सम्पत्ता का सृजन बर्गन का श्रेय दिया है वहा दूसरी आग इसी सम्पत्ता की उत्पत्ति ने मानव समाज में कुछ ऐसी भयंकर समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं कि यदि उनका कारण समाधान न किया गया तो हमारा सारा पीत्र ही एक भयंकर विनाश के बगार पर अपने का पाया।

इस परिस्थिति में बर्नानिका तथा अन्य विचारका को दो विषया पर गभीरता से विचार करने के लिए बाध्य होना पडा है (१) समाज में विज्ञान का स्थान, और (२) समाज पर विज्ञान और प्रविधि का सघात (impact)। विज्ञान का विभिन्न शाखाओं के विद्वानों ने इन विषयों पर मूल्यवान विचार व्यक्त किए हैं किंतु विज्ञान के सामाजिक पहलुओं (social aspects of science) पर अधिक मूल्यवान विचार समाज-बर्नानिका से ही अपेक्षित हो सकते हैं। पिछले कई दशकों में समाज-बर्नानिका ने सामाजिक संरचनाओं की मूल्यवान का बड़ा गहन विश्लेषण किया है। उन्होंने मानव समाज के विस्तृत और जटिल क्षेत्र पर बर्नानिक आविष्कारों तथा छात्रों के अद्भुत प्रभावों का विश्लेषण भी किया है।¹ हाल में डा प्रमुख समाजशास्त्री राबर्ट मटन और बर्नार्ड बाबर ने समाज में विज्ञान के स्थान पर उल्लेखनीय काय किया।² समाज पर विज्ञान और प्रविधि के प्रभावों का विश्लेषण में आगवन निमवाफ, बार्नेट, हाट और एलेन आदि समाजशास्त्रियों का काय अप्रगण्य है।³ इल्टन मयो ने आधुनिक औद्योगिक सम्पत्ता से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं का अद्भुत विवचन किया है।⁴ यह विषय इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि आधुनिक समाज विज्ञान में उस पर अनुसंधान करना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यून्स्का जैसी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में भी विज्ञान और प्रविधि के सामाजिक उपलक्षणों (social implications) पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनुसंधान योजनाएँ प्रारंभ कर दी हैं।

विज्ञान और उसके सामाजिक पर्यावरण का सम्बन्ध

राबर्ट मटन की उक्त पुस्तक के अन्तिम पाँच अध्यायों में उपरोक्त विषयों की विवचना की गई। इन लया में सबसे प्रथम विज्ञान और सामाजिक संरचना की अन्तर्निभरता का विभिन्न ढंगों का 'यान्या' की गई है। विज्ञान स्वयं एक सामाजिक सम्पत्ता है जो समाज की समकालीन अन्य समस्याओं से विभिन्न प्रकार से सम्बन्धित रहती है। दूसरे मटन ने विज्ञान और समाज की अन्तर्निभरता का कार्यात्मक विश्लेषण (functional analysis) करने का प्रयास किया है जिसमें विशेष ध्यान इस बात पर

1 See Kingsley Davis *Human Society Chapter on Science Technology and Society* and Lurdberg etc *Sociology*

2 R. K. Merton *Social Theory and Social Structure*

3 See Allen & Others *Technology and Social Change* Appleton Century Crofts New York 1957

4 Elton Mayo *Social Problems of an Industrial Civilization*

किया गया है कि समाज और विज्ञान का एकीकरण (integration) बड़ी तब मभव
 हो सका है और वही उसमें विफलता भित्री है।

सामाजिक व्यवस्था और विज्ञान के विकास में घनिष्ठ सम्बन्ध है। किन्तु
 समाज में सार्वजनिक सत्ता अधिकाधिक केन्द्रित होती है वही विज्ञान का विकास
 सार्वजनिक अन्विष्टापरवाह की शक्ति का मुहूर्त करने के लिए किया जाता है। विज्ञान
 जनता का प्रदीप्त और मुहूर्त का अन्तर्गत जाता है। नया जन्म में विज्ञान के
 विकास का वही उद्देश्य रहा। अमरीका और इंग्लैंड जन्म लेता है विज्ञान का विराम
 भी बहुत कुछ साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विस्तार के लिए हुआ। नया जन्म
 में पूजावादी अधिकाधिक व्यवस्था इतनी उन्नत हो गई है कि वह अपनी सत्ता की मुहूर्तना
 के लिए बहुत विज्ञान प्रविधि की एनी व्यापक उन्नति करती है कि वर्गगतता तथा
 अन्य अन्तर्गत सामाजिक अधिकाधिक दुर्गुण उपलब्ध हो जाते हैं। पूजावादी का अधुनिक
 साम्यवाद में इनका अन्तरा ही गया है कि वह साम्यवाद का प्रगति माना है कि
 मुहूर्त के अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत का निर्माण करना है कि समाज और मनुष्य का मुहूर्त
 के लिए सम्भव अन्तर्गत उपलब्ध हो जाते हैं। इस विधि में विज्ञान के दुष्प्रभावों की
 अधिकाधिक चला हाना स्वाभाविक है।

जनतन्त्रीय समाज व्यवस्था में विज्ञान का स्वयं बहुत भिन्न जाता है। जनतन्त्रीय
 समाज में अधिकाधिक सामाजिक महत्वात्मा की भाँति विज्ञान का महत्वात्मा का अन्तर्गत
 प्रामाणिकता और उपयुक्तता में है। यही विज्ञान का महत्वात्मा का अन्तर्गत निम्न
 है कि उसमें सामाजिक अन्तर्गत के लिए कार्य करने की क्षमता क्षमताओं हैं और
 उसका अन्तर्गत कया-कया है। विज्ञान का अन्तर्गत अन्तर्गत है व समाज के
 अन्तर्गत नागरिक में समाज रूप में उपलब्ध कर सकें। जनतन्त्रीय समाज में यह विज्ञान
 किया जाता है विज्ञान के ज्ञान को जनताधारण से मुक्त न करा जाय। नो नो नो
 ज्ञान का प्राप्त करने। उपलब्ध करने की क्षमता रखे उन ज्ञान सीखने-समझने का
 अन्तर्गत किया जाय। किन्तु कभी-कभी अधिकाधिक तथा अन्तर्गत दृष्टिकोणों में अन्तर्गत
 अन्तर्गत अन्तर्गत अधिकाधिक अधिकाधिक का मुहूर्त रखा जाता है किन्तु नन्तव और अन्तर्गत
 अन्तर्गत अन्तर्गत हो सकता है। अन्तर्गत का अन्तर्गत है कि अन्तर्गत समाज का अन्तर्गत
 अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत का अन्तर्गत न हो सकता है। अन्तर्गत मुहूर्तना अन्तर्गत
 अन्तर्गत के लिए कार्य है।

विज्ञान के अधिकाधिक अन्तर्गत का अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत
 सामाजिक स्थिति (social status) पर प्रभाव डालता है। यदि विज्ञान के अन्तर्गत का
 अन्तर्गत अन्तर्गत जीवन का अन्तर्गत अन्तर्गत में प्रयुक्त हो सकता है ना विज्ञान का
 सामाजिक अन्तर्गत अन्तर्गत हो जाता है और अन्तर्गत तथा अन्तर्गत सामाजिक अन्तर्गत
 विज्ञान के अन्तर्गत अन्तर्गत का अन्तर्गत अन्तर्गत है। अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत
 के अन्तर्गत का अन्तर्गत सामाजिक अन्तर्गत और अन्तर्गत अन्तर्गत में अधिकाधिक है। यदि

विज्ञान और प्रविष्टि के विस्तार पर किसी एक वग विशेष या निहित स्थायी वाले वग का नियंत्रण हा जाता है तो विज्ञान की समाज-कल्याण की बहुत सी सम्भावनाएँ कमतर अथवा विलुप्त हो जाती हैं।

अन्त में यह बात स्पष्ट कर देना चाहकर होगा कि विज्ञान एक सामाजिक मन्था है। उसका विज्ञान और स्थापित्व समाज के प्रचलित मूल्यों पर निर्भर है। यह कोई आश्चर्य का बात नहीं है कि विज्ञान एक अत्यधिक तर्कपूर्ण (rational) क्रिया होकर भा अतन्त एक अतर्कपूर्ण (unrational) वस्तु सामाजिक मूल्यों—पर निर्भर रहती है। प्रत्येक समाज और युग का इतिहास इस प्रकार के साक्ष्यों से भरा पला है कि विज्ञान के विकास के लिये अनन्य बाह्य कारक, जैसे आर्थिक, राजनतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विभिन्न समयों में विभिन्न अशा में महत्वपूर्ण कार्य करते रहे हैं।

समाज को विज्ञान की महत्वपूर्ण देन

मानव समाज का विज्ञान का अनन्य महत्वपूर्ण देने हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण और आधारभूत देन है वैज्ञानिक विधि (scientific method)। विज्ञान की उत्पत्ति के पूर्व मनुष्य के साधन का तरीका धार्मिक, दार्शनिक अथवा आधि-भौतिक (metaphysical) था। यद्यपि विचार करने के इन तरीकों से मनुष्य ने कुछ प्रगति अवश्य की थी किन्तु फिर भी वह अनन्य अन्-विश्वामा रुढ़िया और मिथ्याविश्वासा से जन्मा था जिससे उसकी वास्तविक प्रगति बहुत कुछ अघकार से दबी थी। विज्ञान की उत्पत्ति ने मनुष्य का अनुभव के आधार पर ज्ञान संचित करने का एक नया माग दिया। धीरे धीरे अनुभव सिद्ध ज्ञान (empirical knowledge) का क्षेत्र इतना विस्तृत जाना गया कि प्राचीन समाज की बहुत सी मान्यताएँ और विश्वास भूट जाकर होन लग। एक स्थान पर नई मान्यताएँ नये विश्वास और नई आस्थाएँ विकसित हुई जो तब पर तब उत्तरी। इन प्रक्रिया में मनुष्य का अपने आत्मपाम के गस्तार के द्वार में नया-नया ज्ञान प्राप्त हुआ। उसको प्रकृति के अनन्य रहस्यों का उद्घाटन करने की सफलता मिली। प्राकृतिक पदार्थों और शक्तियों का वैज्ञानिक उपयोग करके मनुष्य ने अपनी मनुष्यता का समर्थन कराना प्रारम्भ कर दिया। वास्तव में मनुष्य के समार में वैज्ञानिक विधि के उपयोग से एक नवान वैचारिक क्रांति हुई जिसने मनुष्य के दृष्टिकोण में आश्चर्यजनक परिवर्तन किया। वह अब प्रत्येक सुगन्धुय को केवल भगवान की दृष्टि से अथवा प्रकृति नर्मी का रहस्य कहकर अज्ञान का तयार नहीं था। अपने तब और बुद्धि के समार वह प्रत्येक प्राकृतिक तथा मानवीय घटना का विश्लेषण करने लगा। मानव विचारन और जीवन निर्वाह की इन प्रवृत्तियों में प्रधानतः मनुष्य की वैज्ञानिक मनोवृत्ति (scientific attitude) का बोधवाला था। यही वैज्ञानिक मनोवृत्ति प्राकृतिक गौरवमयी सम्मना की प्रत्येक शक्ति और निर्धारण करने वाला कारक है। आगे चलकर यह धारणा उपाय योजन रण जानि अथवा सम्प्रदाय के आधार पर भ्रम मान्य या

धुआ-दान की भावना का पाग परिवार नियन्त्रण जनन-प्र और समाजवाद की धारणा का सबमान्य महत्व वैज्ञानिक मनाशुक्ति के विज्ञान की आधारशिला पेटिका है।

विज्ञान न समाज का मुण्ड और मुण्डगति ज्ञान के विषय नय नवमूलक आधार प्राप्त विषय है। इस जगत् में किसी विशेष दश का जन्मनाधारण पर मानने करने अथवा उनका नापण करने का अधिकार नहीं है। समाज में नूतन-समृद्धि के नाशना में बड़ि और उनका समान वितरण वैज्ञानिक विचारणा पर ही घटित है। विज्ञान और प्रतिष्ठा की अति में मनुष्य का दान अथवा अर्थात् विज्ञान प्रथाया अज्ञान सम्पादा का मुताब्धि करने अथवा स्वयं करने का प्रयोग मिला है। क्या मनुष्या में वादित सम्पत्ति और सम्यता का उद्भव विज्ञान समर्थ का मरक है। 1919 में प्राचीन समाज में जो मनुष्य धर्म का प्राप्त थी जना मरना आज के विज्ञान का है। विज्ञान मनुष्य का एक महान सुरक्षक और सबक बनकर आ गया है। आधुनिक मानव की भाँति सम्पत्ता अथवा अनुसूत अमनाया और समावनाया के साथ एक एकी अज्ञान का मरक न रही है जो अनीत की धारणात्मिक सम्पत्ता के विषय वाचित समर्थ न था। यहाँ हमारे कहने का यह अर्थ कि दासि नहीं लगाना चाँहि कि आधुनिक समाज के सामने कुछ विरट समस्याएँ नरु हैं। एकी अथवा विषय समस्याएँ हैं किन्तु आज मनुष्य का अर्थात् वैज्ञानिक सफलताया से इतनी हड अम्पा हो गई है कि वह अम्पा दया में कभी निराग नहीं हाता। धर्मनीकठिनायाया और निराशाया अथवा हाक वह धारणा धर्म और भगवान की धारणा गतिवा में नहीं भागना चाँहि। आधुनिक मनुष्य का यह व्यावहारिक और नातिक दृष्टिकरण उत्तरी गरिमा और सम्मान का मूल है। प्राविधिक उद्वृति का समाज पर प्रभाव

रुत मोरर और जहाज के आविष्कार न पाया का अर्थविक मुन्त बन गिया है। मनुष्य का अथ अर्थविक दूर बन स्वान भी बूत निरट जगत् है। याता यात के साधनों में उन्नति में निरु निरु प्रथमा और मनुष्यविक के ताता का परस्पर मरर समर हा गया है। इस प्रकार तोता में जो एक दूरर में बूत तिन तक धाररचित और धर्मभाक्तिक प्रथाया आचार्य और विचार का आदान प्राप्त मरर हा गया है। दूरमय प्रथा के निवागिया का अर्थविक और मनुष्याया का प्रभाव हुआ समाज पर गता है। विज्ञान और विभिन्न प्रथा के समाजा में मनुष्य तमार एक एकाया परिवार हा गया है। इसी प्रकार रत्तिता पर समाचार्य और निरुमा एक टनीकठिन जना मरुत वाहन के आविष्कार में समाज में समाचार्य विचार प्रथारण को अर्थविक शोधणाया और मरुत कर दिया है। आज के जनिदा के अर्थ समाजा के अर्थ न बूत धनिट जातारण नरु है। अर्थविकता दया पर हुने समाजा की आनयाया प्रथाया में धारों अथवा शिवाया मुरु धरत का अर्थ नरु है। याताय में यातायात और सबर के उद्योगों का अर्थ न समाज तमार में एक

व्यापन क्रांति कर दी है। भाप और बिजली की शक्ति के आविष्कार न विशाल कल कारखाना का विकास सम्भव कर दिया है। इनसे औद्योगीकरण हुआ है और विभिन्न प्रकार की अद्भुत गुण की सस्ती तर पर बहुमात्रा वस्तुओं का उत्पादन सम्भव हो गया है। उद्योग की उत्पत्ति न मसाले की साधना का उत्तम उपयोग सम्भव कर लिया है और विशाल जनसमूहों का रोजी प्रदान की है। अधिक मात्रा में उत्पादित वस्तुएँ सस्ते मूल्य पर गरीबों का भी उपहार बनें हैं जिससे उनके जीवनस्तर में अप्रत्याशित उत्पत्ति हुई है। उद्योग में यन्त्रीकरण का प्रभाव अभी पर भी पला है। सेतो में यन्त्रों का प्रयोग से व्यापारीकरण और औद्योगीकरण की संभावनाएँ उत्पन्न हो गई हैं।

मनुष्य का शारीरिक भयंकर सक्रामक रोगों से मुक्ति मिलान और नीरोग बचाने में विज्ञान और प्रविधि का महत्वपूर्ण योगदान है। मलेरिया, चेचक, हैजा, प्लेग, मलेरिया, ज्वर, क्षय आदि जन्म प्राणघातक रोगों का प्रभावकारी उपचार तलाश कर लिया गया है। मनुष्य के जीवन-काल में वृद्धि हुई है। इसी प्रकार विज्ञान ने मनुष्य के दैनिक जीवन में घर में दफ्तर में मकान और जंगल-पहाड़ में अनेक अमूल्य वस्तुओं का प्रदान करने के अनिश्चित अप्रत्याशित खतरों से सुरक्षित रहने का उपाय भी प्रदान किया है। विज्ञान और प्रविधि की निरंतर उत्पत्ति से मानव समाज पर अनेक प्रकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ते हैं।

आविष्कारों का निर्माण और उपयोग से जो सामाजिक परिवर्तन होते हैं उन्हें प्रविधि का प्रत्यक्ष प्रभाव (direct effect) कहते हैं। उदाहरण के तौर पर, रेडियो, माटर, साइकिल, घड़ी, टेलिग्राफ के उपयोग से उपभोक्ताओं की आशाओं और प्रत्याशाओं में परिवर्तन आता है। वृषि में यन्त्रों के उपयोग से वृषियों और मजदूरों के सम्बन्धों में तथा स्वयं वृषियों के जीवन-स्तर में भी परिवर्तन आते हैं। इस प्रकार के परिवर्तनों का निवृत्त प्रभाव (immediate effect) भी कहा जाता है। प्रविधि के प्रत्यक्ष प्रभाव उपभोक्ताओं की संख्या, समय और परिणाम पर निर्भर करते हैं। इनसे साधारणतया बहुत सी जानकारियाँ हासिल होती हैं। किन्तु प्राविधिक-उत्पादों का उनसे प्रत्यक्ष प्रभाव (indirect or derivative effects) भी उत्पन्न करता है। जिनसे आविष्कार से उपभोक्ताओं की आशाओं और रसमें बदलाव है, वे पुनः अन्य प्रभाव उत्पन्न करते हैं। उदाहरणार्थ, बहुतों में औद्योगिक उत्पादन नैतिकता, बाजारों का गमनापन कर क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बाजारों का विकास किया जाता है, अर्थशास्त्र प्रभाव यह हुआ कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार में सम्बन्धित अनेक संस्थाएँ तथा प्रयोग उत्पन्न हुए। व्यापारिक बैंकों, बीमा कंपनियों तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापार अनुसंधान एन.डी.ए.ए. प्रभाव हैं। एक अर्थशास्त्र प्रभाव यह अन्य अर्थशास्त्र प्रभावों का जन्म होता है। इन प्रकार एक आविष्कार से उत्पन्न सामाजिक प्रभावों का क्षेत्र उत्पन्न होता है।

प्राविधिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन का कस उत्पन्न करने में इनकी समन्वयी कार्रवाई की प्रकृति (nature of causation) पर निर्भर है। इन प्रक्रिया में आधारभूत बात यह है कि प्राविधिक प्रभाव प्रत्यक्ष परिवर्तन तक ही नहीं रुक जाता। इस परिवर्तन से द्वैतीयक परिवर्तन होते हैं जिनकी एक शृंखला (chain) पकड़ना जा सकती है। जहाँ ऐसा होता है कि एक विभिन्न सामाजिक परिवर्तन में प्राविधिक प्रभाव के अनिश्चित अर्थ कारणों का प्रभाव भी कारगर रहा है। इतिहास सामाजिक परिवर्तन में प्राविधिक आविष्कारों तथा खोजों का महत्वपूर्ण प्रभाव सर्वत्र बड़ा सावधानी से धारित किया जा रहा है।

एक और बात स्मरण रखनी चाहिए। प्राविधिक आविष्कारों का प्रभाव चारों ओर प्रसारित (dispersed) होता है। उत्पत्ति के लिए हजारों जहाँ के प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं। हजारों जहाँ के आविष्कारों से बुद्धि, मानवता, प्रगति, व्यापार, कृषि, पदचाली, पुस्तक और नया विज्ञान पर विभिन्न प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। आविष्कारों के सामाजिक प्रभावों के प्रसार (dispersion) की यह घटना सामाजिक प्रभावों के अभिसरण (convergence) का घटना के विपरीत विपरीत है। यद्यपि संचार, औपनिवेशिक उद्योग, आदि में अनेक आविष्कारों के सामाजिक प्रभावों का केंद्र कृषि भी रही है। सामाजिक प्रभावों के अभिसरण की यह प्रक्रिया भी प्रभावों की समन्वयी में सहायक है।

आधुनिक समाज में प्राविधिक उत्पत्ति ने जहाँ एक ओर समाज की पुनर्निर्माण में सहायक की है वहीं अपने प्रथम अग्रणी प्रभावों से जिन सामाजिक परिवर्तनों में और आधुनिकताओं का उत्पन्न कर दिया है उनमें जहाँ और नूतन विचारों का आविष्कार हुआ है।

पञ्चम खण्ड

सामाजिक नियंत्रण, परिवर्तन और पुनर्गठन

- २७ व्यक्ति और समाज
२८ सामाजिकीकरण
२९ सामाजिक भ्रम क्रिया
३० सामाजिक नियंत्रण
३१ सामाजिक परिवर्तन
३२ सामाजिक विकास एक प्रगति
३३ सामाजिक विघटन और पुनर्गठन

व्यक्ति और समाज

हम पहले बता चुके हैं कि मनुष्य स्वभाव और आवश्यकताओं में एक सामाजिक प्राणी है। अस्तु के इस कथन में व्यक्ति और समाज की अन्तर्निभता के मूलभूत और गत्यात्मक रूप सम्बन्धी एक बात स्पष्ट दिना है। इस कथन का कथन इतना ही अर्थ नहीं है कि मनुष्य एक मिलनसार या समाजप्रिय (sociable) प्राणी है। समाज के सभी सदस्यों की मिलनमात्रिता (sociability) एक समान नहीं हो सकती। वह भिन्नभिन्न मात्रा में होती है। उपरोक्त कथन से यह भी अभिप्राय नहीं है कि मनुष्य में परोपकार भावना (altruistic feeling) समाज की धार होता है और न यही अर्थ है कि मनुष्य का सामाजिकता उसकी मानवीय प्रकृति की किसी मौलिक रचना का एक गुण है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है स्पष्ट अभिप्राय है कि सामाजिक विरासत (social heritage) की एक विनिष्ट मात्रा की सहायता के बिना मनुष्य के व्यक्तित्व का उदय और विकास नहीं हो सकता। सामाजिक विरासत में सम्मिलन (participation) और उसका अपने व्यक्तित्व में एकीकृत कर देने पर ही मनुष्य में सामाजिक स्वभाव और गुणों का विकास होता है।

सभी जावधारी समाज में ही पैदा होते हैं और समाज में ही रहकर अपने जीवन का बिना मत है। समाज बहुत विनाल है। वह हमारे चारों तरफ के पर्यावरण में भी फैला है। यह हमारा स्वभाव है। यह हमारे अन्दर और बाहर दोनों तरफ है। प्राणियों में सबसे अधिक मनुष्य है। मनुष्य जन्म के समय अत्यन्त जीवधारियों की अन्तर्गत अन्तर्गत होता है। अन्तर्गत जन्म ही अपनी रक्षा के लिए दूसरे मनुष्यों (अपने माता पिता या सरसराए) पर आश्रित हो जाना पड़ता है। यद्यपि मानव जन्म अत्यन्त जीवधारियों के जन्मों में अत्यन्त भिन्न होता है किन्तु वह एक ही है। इसीलिए उसे अत्यन्त कहा जाता है। प्रारम्भ में मानव जन्म में मनुष्य के बारे में सामाजिक गुण नहीं होते। मनुष्य में व्यवहार आदि की जो अत्यन्त ही विनाल मात्रा होती है अतः इस अवस्था में अत्यन्त ही अभाव होता है। वह अत्यन्त ही नहीं कर

भवता, बपटे नहीं पहन सकता उसे ममाज में चलन फिरन और व्यवहार में नियम दंग नहीं नात हात और न उमके पास काइ मिद्धात और मूल्य हाते हैं जो उसके दूसरा के प्रति व्यवहार को दिग्दर्शन कर सकें। पर जन्म के ठीक पश्चात् बच्चे में इन सभी गुणा का समावेश हान लगता है। बच्चे दूसरे लोग का अनुकरण करते हैं। धीरे धीरे उसके दूसरा से सम्बन्ध विकसित जान जाते हैं। वह दूसरा में प्रभाव में आता है और अपने गुणा का प्रभाव उन पर डालता है। यही वह प्रक्रिया है जो अनुकरण और सीखन की प्रक्रिया के माध्यम से मनुष्य का सामाजिकरण करने में आधारभूत भूमिका अदा करती है। सामाजिकरण की प्रक्रिया का सविस्तार विश्लेषण अगले अध्याय में किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में हम उन दशांश और परिस्थितियों का निरीक्षण करने का प्रयास करेंगे जो मनुष्य के सामाजिक प्राणा हान के नियम उत्तरदायी और सहायक हैं।

किस अर्थ में मनुष्य सामाजिक प्राणी है ?

मकाइवर न व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार करना से पहले एक बड़ा चिन्तन प्रश्न विवाद के लिये रखा है।¹ यह प्रश्न है— मनुष्य किस अर्थ में सामाजिक प्राणी है ? किस अर्थ में वह समाज का सदस्य है ? किस अर्थ में समाज उसका है ? यही तीन प्रश्न समाजशास्त्र के मूलभूत प्रश्न हैं। इनके मूल में सबसे बड़ी बात यह छिपती है कि व्यक्ति का जो समाज की इकाई है तथा समाज और सामाजिक व्यवस्था का क्या संबंध है ? व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध का पर्याप्त विश्लेषण करना समाजशास्त्र के नियम-बन्धीय महत्त्व का प्रश्न है।

व्यक्ति और समाज का संबंध—कुछ अर्थोपरि व्याख्याएँ

प्रारम्भ से ही प्रत्येक समाज के विद्वानों ने व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संबंध की व्याख्या करने का प्रयास किया है। पश्चात्य और प्राच्य विद्वानों में इस विषय पर कई परस्पर विरोधी और आमक मिद्धानों प्रचलित रहे हैं। पश्चात्य जगत के दो परस्पर विरोधी सिद्धांत— सामाजिक अनुबंध सिद्धांत (social contract theory) और सामाजिक गणव्यवस्था सिद्धांत (social organismic theory) की काफी समय तक बहस चली रही है। इन सिद्धांतों की संपूर्ण आलोचना में हमारे बाद भ्रम और झूठी मान्यताएँ दूर हो जाएगी। मनुष्य से यह सिद्धांत मनुष्य तथा समाज के सम्बन्ध की ठीक-ठीक व्याख्या करने रहे हैं। ये दोनों सिद्धांत समाज गणव्यवस्था और राजशाहियों की देन हैं। आजकल तो ये दोनों बग-नी इन सिद्धांतों का मनुष्य और समाज के सम्बन्धों की व्याख्या के लिये नितान्त दायरूप और अर्थोपरि मानते हैं।

सामाजिक सावयवी सिद्धांत

सावयवी सिद्धांत (organismic theory) एक सम्बंध की एकान्ती और ध्रुवक व्याख्या करता है। समाज और व्यक्ति (सावयवी संरचना) में यह सम्बंधपूर्ण समानताएँ हैं किन्तु उनके बीच व भेद अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। मनुष्य व मस्तिष्क होता है परन्तु समाज में कोई ऐसा मस्तिष्क नहीं होता है। अब हमें स्पष्ट की यह धारणा कि समाज में एक व-दीयमान संस्था (common sensoniam) होता है किन्तु यह गलत है। समाज व्यक्तियों व सम्बंधों में है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी भावनाएँ और विचार होते हैं उनमें दूसरों का कोई प्रत्यक्ष सम्मिलन नहीं है। दूसरे लोग वचन हमारी भावनाओं और विचारों का जानकर उनका प्रतिक्रिया करते हैं और हमें अनुभूति प्रयत्न विपरीतभाव प्रदान करते हैं या समूह व मस्तिष्क उनमें सम्बंध व पृथक मस्तिष्कों में पर कोई वास्तविक वस्तु नहीं है। मनुष्यत्व की समूह मस्तिष्क की धारणा नितान्त काल्पनिक है। हम वचन इतना मान सकते हैं कि समाज व मनुष्य के विचार तथा भावना व तरीके समान हैं उनका प्रतिक्रिया (responses) समान होता है और व समान प्रयत्न सामान्य होता है प्रेरित होता है।

व्यक्तियों का समाज में वह सम्बंध नहीं है जो बाह्य का शरीर में। व्यक्ति ही प्रिया भावना का प्रयोजन का वाहक होता है। समाज एक एकी व्यवस्था मात्र है या सभी व्यक्तियों का बाल और स्थान का सामाजिक व बांधनी है। समाज व्यक्तियों व बीच उन सम्बंधों का बनता है जिनमें निम्नलिखित और उत्तराधिकारी व्यक्ति हैं। समाज का अनुभव वास्तव में व्यक्तियों का ही अनुभव है। समाज का अर्थ और वास्तविक सम्बंधों का प्रयत्न होता उनकी भावनाओं का सामाजिक और भयों में ही सम्मिलित है। व्यक्ति और समाज का सम्बंध एक-दूसरे पर निर्भरता है। वह अन्तर्निर्भरता (interdependence) है।

सामाजिक अनुबंध सिद्धांत

व्यक्तिवादी (individualists) में समाज और व्यक्ति की अन्तर्निर्भरता का सम्बन्ध में अभाव का है। हालाँकि और फिर अपना पारस्परिक विचारों समाज का प्रकृति व ही व्यक्तियों का अन्तर्निर्भरता और उत्पत्ति का अर्थ मानते हैं। धारणा भी अन्तर्निर्भरता समाज का विचार-समाधान में एक विचार किन्तु वह जो सामाजिक सुरक्षा का सुरक्षा करने व उद्देश्य में प्रयुक्त किया जाता है व्यक्तियों की सुरक्षा विचार करने हैं। व अर्थ पर समाज का अन्तर्निर्भरता और अन्तर्निर्भरता का अन्तर्निर्भरता धारणा होता है। व्यक्तिवादी व्यक्ति व अन्तर्निर्भरता और अन्तर्निर्भरता का अर्थ के लिए सामाजिक (समाज व्यक्तियों व सामाजिक विचार) का अर्थ व अर्थ है। अन्तर्निर्भरता व अन्तर्निर्भरता का अर्थ अन्तर्निर्भरता नामक सिद्धांत में व्यक्तियों का एक सामाजिक विचार धारणा बना होता है। अन्तर्निर्भरता (Social Contract Theory)

का जो प्रभाव व्यक्तिवाद पर पड़ा था वह भी कम महत्वपूर्ण न था। किन्तु धार्मिक अविनवादी और सामाजिक अनुबंध सिद्धांत दाना ही अब-तानिक प्रौर मिथ्या सिद्ध हो गये हैं।

समाज की सर्वोपरिता का सिद्धांत

समाज और व्यक्ति के सम्बन्ध पर एक दूसरी गलतफहमी भी प्रचलित है। हीगेल (Hegel) के विचारानुयायियों ने समाज के कल्याण को व्यक्ति के कल्याण से पृथक् स्वीकार किया। उनका विश्वास था कि "व्यक्तियों के कल्याण के बाहर अथवा उस बुचलकर भी समाज कल्याण हो सकता है। अतएव समाज-कल्याण के लिए व्यक्ति के कल्याण की बलि देना उचित और आवश्यक है। नाजीज्म और फासिज्म का परिपाक इसी विचारधारा के आधार पर हुआ था। सामाजिक जीवन का साध्य मानना गलती है। समाज मनुष्य के कल्याण और प्रगति का साधन मात्र है। परन्तु यह ध्यान रह कि किसी विशेष वर्ग के मनुष्यों के कल्याण की प्रगति का साधन समाज नहीं बनाया जा सकता वह सभी के कल्याण का साधन है और समाज सभी मनुष्यों से पृथक् कोई वस्तु नहीं। अस्तु समाज कल्याण में निश्चय ही व्यक्तियों का कल्याण होगा।

समाजशास्त्रीय व्याख्या

समाज और मनुष्य के अमली सम्बन्ध का परिचय हम उस सम्बन्ध की जानकारी से मिल सकता है जो मनुष्य और मनुष्य तथा मनुष्य और मनुष्य के बीच सामाजिक जीवन के निरन्तर परिवर्तनशील प्रतिमान की क्रियाशील प्रक्रियाओं में विद्यमान है। मनुष्य का जन्म समाज में होता है और वह सर्व अपनी पूंजना के लिए भौतिक और मानसिक आवश्यकताओं के अनुसार उसकी सम्पूर्ण व्यवस्था का निरन्तर समाज योजित करता रहता है। सामाजिक व्यवस्था का गारा महत्त्व इस बात में है कि उससे मनुष्यों के साध्या की प्राप्ति में सहायता और याग मिलता है। इन साध्या के बाहर सामाजिक एकता (social unity) की बात करना गलत है। इसी सिद्धांत के आधार पर समाज और व्यक्तित्व (individuality) का नाम-रजस्य ग भन हो सकता है।

व्यक्ति और समाज सम्बन्धी कुछ अनुसंधान

व्यक्ति समाज का एक अपरिहाय अंग है और प्राण भी रहता है। इस सम्बन्ध को समझने के लिए सामाजिक बहानिक न बर्दे राज और अनुगमन किए हैं। इसमें मुख्यतः तीन एंग हैं जो व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध का स्पष्ट रूप में प्रकट करते हैं।

(१) कुछ अमभ्य अवस्था के प्रमाण (Some firal Cases)—मानव का प्रकृति एवं व्यवहार उसका समाज के ऊपर निर्भर है। कुछ अद्व प्रमाण

द्वारा हमका प्रमाण भी मिल गया है। यद्यपि यह प्रमाण करना कठिन है कि हम एक नवजात गिगु का सभी प्रकार का सामाजिक सम्बन्ध न प्रपक्व रखें और फिर उमक व्यवहार का अध्ययन करें। पर सामाजिक वैज्ञानिकों का कुछ एक अवसर प्राप्त हुआ है जिनमें उन्होंने नवजात गिगुओं का स्वभाव और समाज में पर उनका विकास का अध्ययन किया है। यहाँ हम एक चार प्रमाणों का उल्लेख करेंगे।

(क) कासपर हासर (Kaspar Hauser)—कानपर हासर का कहानी बड़ी रोचक है। राजनीतिक दौड़ पक के फेर में इस युवक का एक बंद स्थान में डाल दिया गया जहाँ उस किमी मनुष्य का सम्पर्क प्राप्त नहीं था। उमक प्रायः पीछे भेज, डट और पत्थर थे। मनुष्य की बाणी और मनुष्य की परछाईं उसमें बचन दूर था। जब सत्रह वर्ष की अवस्था में सन १८२५ में हासर नूरम्बर्ग शहर की सड़क से निकला तो वहाँ अज्ञान और दान था। वह बड़ी कठिनाई में चल पाता था। नवजात गिगु की तरह उमका अविकसित मस्तिष्क था वह बड़ी कठिनाई में अध्ययन का कार्य करने का पुस्तुता पाता था। मरना बड़ा बात यह था कि वह जानकार और बतान वस्तुओं में भेद नहीं कर सकता था। अभी तब वह बाजार का जो और बतान वस्तुओं का भी जानकार समझता था। पाँच वर्ष बाद जब उस मान के पाठ उतार दिया गया तो उसके शरीर की चौर-पाइ हुई। इस चौर-पाइ के पश्चात् माइम हुआ कि उसका मस्तिष्क अर्ध विकसित था। हासर का समाज का सम्पर्क नहीं मिला इसीलिए उसका प्राकृतिक विकास भी रूढ़ गया। हासर की इस यात्र पर स्थिति निम्न रूप में मकावर न किया है— कानपर हासर को समाज में दूर रखने का अर्थ उक्त मनुष्य समाज में भा वंचित कर देना था।¹

(ख) लैडिये बच्चे—लैडिये-बच्चे (wolf-children) का उदाहरण क्लिम्ब यंग (Klimball Young) ने अपना पुस्तक 'लैडिये बच्चे' में दिया है। यह घटना सन १८२० की है। दो हिंदू बच्चों जिनमें बच्चे लैडिये नामक पाठ के का पा और छाटा नाम के छाटा लैडिये का मुकाबला था था मर। प्राप्त होने के बाद लैडिये के पश्चात् ही छाटा बच्चा मर गया पर बच्चे लैडिये का नाम चतुरर बमता नाम रखा गया था सन १९२६ तक जीवित रहा। इस लैडिये बमता के जीवन का नाम घटनाएँ बराबर ध्यानपूर्वक लिखा गई है।

बमता का लैडिये नाम हुआ कि मनुष्य में पाए जाने वाले बाद भी लैडिये उमक नहीं था न वह मनुष्य का तरह व्यवहार ही करता था। वह ध्यान ही हाया और हा हाया का महारतना न चल सकता था। वह बात भी नहीं सकती थी। वह बच्चे लैडिये की तरह गुनाह माइ जानती थी और मनुष्य का परछाईं म हाती

2. The denial of Society to Kaspar Hauser was a denial to him also of human nature itself. Ibid p. 45

भयभीत या दमिन्दा हो जाती थी जितना कि कोई अन्य जंगली जानवर। बहुत परिश्रम और सहानुभूति के साथ उसे मानव व्यवहार सिखाये गये। मरन के पढ़ने वह गाधारण भाषा में ही बोलना सीख गई थी। मनुष्य की तरह कपड़े पहिनना और भाजन करना भी जान गई थी। इस तरह इस बालिका में प्रारम्भ में 'मनुष्य का 'स्व' की भावना (Sense of human selfhood) नहीं थी पर समाज व सम्पर्क से श्रमण उसमें यह भावना पैदा हुई। उसमें यह 'स्व' या व्यक्तित्व की भावना समाज का सन्त्य हाने के बाद ही जाग्रत हुई।

(ग) अमरीकी बालक अना—किंग्सले डेविस ने अमरीका के इस अंध बालक अना का अध्ययन किया है। जन्म के ठीक छ महीने से ही इस बालक को एक कमरे में बंद कर दिया गया और पांच वर्ष तक (सन् १९३० तक) यह बालक बराबर बिना किसी सामाजिक सम्पर्क के उन्नी कमरे में पड़ा रहा। अपने इस कारागृह के जीवन में अना को केवल दूध को छोड़कर खान के लिए और कुछ नहीं दिया गया बच्चा को साधारण व्यवहार की जो शिक्षा दी जाती है वह भी इसे नहीं दी गई और कमरे के बाहर की दुनिया से इसका कोई सम्पर्क नहीं रखा गया। यह चरम और क्रूर सामाजिक पृथक्ता बच्चानिका की प्रयोगशाला के लिए एक और दृष्टांत देती है। इसने उन पांच वर्ष के सामान्य बच्चों के - २१ में असमर्थ थी। वह अन्ना को निकाला गया तो वह चलन और बातचीत थी। १ उपरोक्तलिखित कमरा की तुलना में अन्ना छोटी अवस्था की होने के कारण, मनुष्य के व्यवहार को जानने सीख पाती थी। सन १९४२ में मरन के पहल अन्ना न मनुष्या के बहुत से व्यवहार सीख लिये थे। अन्ना के दृष्टांत से हम बात की और अधिक पुष्टि होती है कि मनुष्य में मानवीय स्वभाव तभी उत्पन्न होता है जब वह सामाजिक मनुष्य बनकर श्रमण बन मनुष्या में एक हाकर सम्मिलित जीवन में भाग लेता है। २

इस तरह मनुष्य और समाज के सम्पर्क का महत्व का समाजशास्त्रियों ने समझन का प्रयास किया है। अन्ना को अमरीकन समाजशास्त्रियों और मनोबचनानिकों ने इस बात का अध्ययन किया है कि मानव मनुष्य में स्व की भावना कब और कैसे पैदा होती है। मार्गरेट मीड (Margaret Mead) ने बताया है कि बच्चा अपने दैनिक

1 This extreme and cruel social isolation which provides the scientist one more laboratory case left the child with few of the attributes of the normal five year old when Ann was discovered she could not walk or speak. She was completely apathetic and indifferent to people around her. Ibid p 44
 2 Annas Case illustrates once again that human nature develops in man only when he is social animal. Ibid p 45

जीवन में मुठिया और दूसरे बच्चा के साथ खेल-कूद करना है और इसी में वह माता-पिता और चाकर अध्यापन, नर्स आदि का पाठ ग्रहण करता है। स्व के जाग्रत करने की प्रक्रिया में बालक निरन्तर अपने साथिया व व्यवहार के साथ अनुकूलन करता चला है। सामाजिक मनोवैज्ञानिक फरिस (Faris), मर्फी (Murphy) और नूकम्ब (New Comb) आदि न अपने अनुसंधान के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य में उसका स्व (self) या व्यक्तित्व समाज में पल कर और पारस्परिक आदान प्रदान में ही उत्पन्न हो सकता है। सब मिलाकर मनुष्य के लिए समाज एक अनिवार्य आवश्यकता है।

(२) मनुष्य विशिष्ट प्रकार से अपनी सामाजिक धरोहर पर निर्भर है। (Man's peculiar dependence upon the social heritage) — मनुष्य अपने समूह की उपज है। अपने समूह के सामाजिक सम्बन्धों परम्पराओं और रीतियों की वृत्त में है। यह कहना अशुक्ति नहीं होगा कि मनुष्य धनिवाय रूप में सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल है। ऐसा व्यक्ति न तो प्रारंभ है और न अन्त पर जीवन की निरन्तरता में एक कड़ी है।¹

मनुष्य के लिए समाज उसका पर्यावरण (Environment) में भी बदल रहा है। भौगोलिक सुविधाओं घटती पहाड़ नीचे पानी आदि में भी बड़ा परिवर्तन पूरा समाज की उसका पर्यावरण है। व्यक्ति का सम्पूर्ण उसकी सामाजिक परम्परा (Social traditions) से उसी प्रकार है जो बीज का मिट्टी में। हम निम्न समाज में जन्म लेते हैं वह समाज ही हमारे सम्पूर्ण जीवन के सामाजिक और मानसिक धरा की रक्षा का धारक है। हम उसी रक्षा का लाभ की पता मानकर उन पर जीवन भर निर्भर के जीवन का जीवन रहते हैं। हम में जो लोग हिन्दू समाज में पैदा हुए हैं उनके लिए विवाह त्यौहार दैनिक व्यवहार खान पान सभी पूरे निरिखित हैं। यह सामाजिक धरोहर और मूर्ति मनुष्य के अनुभव से पारने बराबर बनना सती है। समाज जहाँ व्यक्ति का जन्म का नियमित करना है वहाँ उन्हें व्यक्त हान का भी पूरा धरकर देता है। समय-समय पर अपने सम्बन्धों का प्रामाणिक धरकर और रक्षा देता है। हमें पता कि मनुष्य और समाज अन्त निर्भर है। हम समय के परिवर्तन के पश्चात् हम धरकर के ही बचने — मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है — का उचित सुझाव कर सकते हैं। यह कारणों में हम यह नहीं कहते कि मनुष्य जन्म में एक सामाजिक प्राणी है। हमारे जन्म का कारण यह है कि मनुष्य शरीर की दृष्टि से ही प्राणी है कि वह सामाजिक

1 "The individual is neither a beginning nor an end but a link in the succession of life" 1912 p 46

वन जाता है। समाज के बिना, समाज को सामाजिक धराहर के बिना व्यक्ति का व्यक्तित्व कभी भी अस्तित्व में नहीं आ सकता।¹

(३) स्व का विकास (The growth of self)—मनुष्य में 'स्व' की जागृति समाज के सम्पर्क द्वारा होती है। स्व' में हमारा तात्पर्य मनुष्य के व्यक्तित्व या अहम् से है। जब मनुष्य पैदा होता है उस अवस्था में वह चेतन और जड़ में बाँट भेद नहीं करता। माँ का दूध पीना या दातल की निपिल से दूध पीना दाना उमके लिए बराबर है। वह तो केवल एक जविय आवश्यकता की पूर्ति मात्र चाहता है। पर धीरे धीरे उसमें सामाजिकता का उदय होने लगता है और उसका 'स्व' जाग्रत होना प्रारम्भ हो जाता है। समाज के अर्थ-यक्तियों के सम्पर्क में आकर वह व्यवहार के प्रतिमान अपनाता है। यह वह केवल तोने की तरह समय के ब्यस्तन के व्यवहार की नकल मात्र नहीं करता यद्यपि उसमें नकल करने का गुण है। इस नकल करने की प्रक्रिया में वह धीरे धीरे अपने सामाजिक स्वभाव का यक्त भी करता है। छोटी अवस्था में बच्चा स्वयं अपने से ही बात करता है। पर धीरे धीरे वह दूसरों में भी बात करना सीख जाता है। इसी तरह प्रारम्भ में वह बच्चा के साथ जो वृद्ध भी मिलता है उसकी नकल मात्र करता है पर धीरे धीरे उसमें अपना स्व जाग्रत होने लगता है और वह खेन में भी नियम उपनियम उत्तरदायित्व के साथ निभान का प्रयत्न करता है।

सामाजिक दार्शनिक दुर्कहिम (Durkheim) मीड (Mead) और कुले (Cooley) आदि मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। इन विद्वानों ने बताया है कि नवजात शिशु प्रारम्भ में केवल एक विचित्र अवयव मात्र होता है पर धीरे धीरे वह सामाजिक-यक्ति होने लगता है। इस गरी प्रक्रिया को इन लोगों ने सामाजिकरण का प्रक्रिया का नाम दिया है।

इस तरह व्यक्ति समाज में आकर सामाजिक व्यक्तित्व का विकास करता है। समाज और व्यक्ति का परस्परिक सम्बन्ध है। पिछले दिनों में हाब्स (Hobbes) जान स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill) जिन विद्वानों ने भी तथ्यों का समर्थन में भूत की है। अभी अना बजामिन किड (Benjamin Kidd) ने भी एमी ही मन्त्रपूण बात रणी है। उसका मत है कि व्यक्ति समाज से छोटा है और इसीलिए समाज का व्यक्ति पर दबाव रखना चाहिए।

य सब अस्पष्ट और अज्ञान पूर्ण हैं। व्यक्ति और समाज के अन्तर्गत संबंध का हमारी धारणा अज्ञान साध और मूर्खानिक हानी चाहिए। व्यक्ति और समाज के अस्तित्व और विकास का आधार सामाजिक सम्बन्ध है। य सम्बन्ध व्यक्ति और समाज दोनों के बीच अज्ञान प्रिया में जान है। समाज अपनी गरी परम्पराएँ रानि

1 But we do mean that without society the support of the social heritage the individual personality does not and cannot come into being p 47

रिवाज, सम्भारों आदि व्यक्ति को दना है। ये सब व्यक्ति की मानसिक और भावनात्मक आवश्यकताएँ हैं। व्यक्ति समाज द्वारा जिन गण इस पर्यावरण में स्वयं का चिह्नित करना है। इस तरह व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति के बिना समाज का अस्तित्व ही नहीं है और समाज के बिना व्यक्ति अस्मत् और निर्गन्त है। समाज में रहकर और उसके वायव्यलापन में सक्रिय भाग लेकर व्यक्ति एक सामाजिक प्राणा बनता है। तभी उसमें मानवचित्त श्रेष्ठ ढंगों तथा व्यवहार का विकास होता है। मनुष्य की प्रकृति के उत्थ और विकास का मान है सामाजिक जीवन और उसकी समस्त विशेषताएँ।

व्यक्तिकता का अर्थ

व्यक्तिकता (individuality) शब्द का अर्थ हम साधारणतया मनुष्य की विविधता अथवा उसकी व्यक्तित्व (personality) के निरूपण (uniqueness, or peculiarity) मानते हैं। अर्थात् हम यहाँ पर व्यक्तिकता के भौतिक-वैज्ञानिक (physical biological) तथा समाजशास्त्रीय (sociological) अर्थों का विवेचन करेंगे। समाजशास्त्री प्रायः व्यक्तिकता शब्द का प्रयोग दूसरे—समाजशास्त्रीय—अर्थ में करते हैं।¹

(१) व्यक्तिकता का भौतिक अर्थिक अर्थ—जब हम व्यक्तिकता शब्द का प्रयोग भौतिक अर्थ में करते हैं तो हमें प्रत्येक इकाई भौतिक रूप में एक दूसरे से अलग अलग जाननी है और जब इनका प्रयोग हम उन चीजों के लिए करते हैं जो अलग अलग जगहों पर जन्म देती हैं तो हमें प्रत्येक प्रयोग के अर्थ में एक जानना है। अतः हमें प्रत्येक प्रयोग के अर्थ में ही व्यक्तिकता शब्द का प्रयोग करना है। अतः व्यक्तिकता शब्द का प्रयोग हमें प्रत्येक प्रयोग के अर्थ में ही करना है। अतः व्यक्तिकता शब्द का प्रयोग हमें प्रत्येक प्रयोग के अर्थ में ही करना है। अतः व्यक्तिकता शब्द का प्रयोग हमें प्रत्येक प्रयोग के अर्थ में ही करना है। अतः व्यक्तिकता शब्द का प्रयोग हमें प्रत्येक प्रयोग के अर्थ में ही करना है।

अर्थिक अर्थ में प्रत्येक प्रयोग के अर्थ में ही व्यक्तिकता शब्द का प्रयोग हमें प्रत्येक प्रयोग के अर्थ में ही करना है। अतः व्यक्तिकता शब्द का प्रयोग हमें प्रत्येक प्रयोग के अर्थ में ही करना है। अतः व्यक्तिकता शब्द का प्रयोग हमें प्रत्येक प्रयोग के अर्थ में ही करना है। अतः व्यक्तिकता शब्द का प्रयोग हमें प्रत्येक प्रयोग के अर्थ में ही करना है। अतः व्यक्तिकता शब्द का प्रयोग हमें प्रत्येक प्रयोग के अर्थ में ही करना है।

1. दण्डि महाश्वर और एक सामाजिक, में व्यक्ति और समाज अध्याय।

पूनि कर सकता है। व सावयव उम मावयव का अपक्षा कम वैयक्तीकृत होत है जो तरगा म चलन की अपक्षा स्वय चलने का उपाय सोचता है। वह सावयव जा कुद्ध मरन प्रतिक्रियायें बरन का क्षमता रखता है व मनुष्य जैसे सावयव मे कम वैयक्तीकृत हाना है निसका रचना अधिक संवदना के लिए की गई है।

व्यक्तिकता का समाजशास्त्रीय अर्थ

समाजशास्त्रीय व्यक्तिकता का प्रयोग आवश्यक हुआ जाता है जबकि इसका विस्तार मनुष्य के लिए करना हा। समाजशास्त्रीय अर्थ म व्यक्तिकता वह गुण है जा किगा समूह के सदस्य का सदस्य स अधिक अभिव्यक्त करता है। क्योंकि यह एक काय व्यापार का केन्द्र है और अपन ही ढंग स प्रदर्शित होने वाली एक प्रकृति की अनुक्रिया है। वास्तव म अपने दंग या बाल की सजीवता अथवा गुण की अधिक पूर्णता को शक्तिशाली व्यक्तिकता अभिव्यक्त कर सकता है। परन्तु वह शीघ्रतापूर्ण अनुकरणात्मक है इसलिए ऐसा कही करती। जस किसी समूह क सदस्य अधिक व्यक्तीकृत हान ह तो वे अधिक से अधिक भेदा को प्रस्तुत करते हैं और स्वय को भी कई प्रकार म अभिव्यक्ति कर लेते हैं। परन्तु व्यक्तिकता की यह कसीटी नहीं है कि कोई व्यक्ति अथ व्यक्तिया की अपेक्षा कितन भिन्न भिन्न माणों का अपनाता ह बन्नि यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अथ व्यक्तिया के प्रति अपन सम्बन्ध म कहां तक अपना चनना और व्याख्या स स्वय पर और क अधिकारा को मान कर व्यवहार करता है। जस कोई व्यक्तिकता का स्वामी किसी दूसरे व्यक्तिकता के स्वामी के जग राय करता है ता कवन इसलिए करता है कि स्वय वह एक काय का अनुमान करता ह न कि इसलिए एमा करता है कि अथ लाभ भी एमा करते हैं। जस किसी अधिकारी का अनुमान करता है ता कवन इसलिए नहीं कि वह अधिकारी है बल्कि इसलिए कि उम पर पूरा विश्वास है। और क अभिप्राय को व्यक्ति उपर स ही स्वीकार नहीं करता बल्कि वह अपने चरित्र बल स ही करता है। जितन अगा म व्यक्ति वन गुणा का प्रदर्शन करता है उमम उतनी ही मात्रा म व्यक्तिकता पाइ जाता है।

यह स्मरणीय रहै कि हम यह दावा नना करते कि व्यक्तिकता का स्वामी अपना इच्छा स प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक सहयोगिता की अपेक्षा अधिक कर सकता है। यहाँ हमारा मत सम्भव नहीं है कि मनुष्य को इस प्रकार का स्वतंत्रता प्राप्त है या नह। कुद्ध पाठन ध्यति क चुनाव की स्वतंत्रता क प्रयोग की क्षमता पर विश्वास कर चुा है। परन्तु हम विश्वास है कि व्यक्तिकता क प्रति हमारे एक अथ प्रष्टर पर अवश्य महत्त्व हाय अथान व्यक्तिक क उम पहलू पर जो सामाजिक प्राणी को पान तथा और क उद्देश्य क प्रति गठनमान करता है।

व्यक्तिकता और सामाजिकता का सम्बन्ध

समाज के सदस्यों में व्यक्तिकता होना सदैव अवांछित नहीं है। मनुष्य समाज का सदस्य है और सामाजिककरण की प्रक्रिया में उसमें बहुत से बहोला प्रकट होते हैं जो दूसरे में। किंतु मूलम अवलोकन से यह प्रकट होता है कि प्रत्येक व्यक्ति का आचरण केवल दूसरे का अनुकरण मात्र ही नहीं है। उसका व्यवहार मुझसे का परिणाम ही नहीं है। मनुष्य का व्यवहार समाज की प्रथाओं और चीजों का पूरा गुणम नहीं होता और न सामाजिक पर्यावरण के प्रति उसका अनुक्रिया ही किंतु स्वयं चालित और अतीततायुक्त होती है। उसमें जावन का समस्त प्रयास ही उसकी अपनी समझदारी और व्यक्तिकता का कारण है। व्यक्तिकता समूह के सम्यक् का वह गुण है जो उसमें समूह के सदस्य के अतिरिक्त एक-एक भा प्रकट करता है। इसी स्वयं को उसकी प्रकृति की व्यक्तिकता के लिए प्रिया और अनुक्रिया का बंधन कहते हैं। हममें से प्रत्येक किसी गाँव, नगर या राष्ट्र का एक सदस्य है और समाज के प्रकार, माहूल, कर्मों आदि भी। हम जब किसी व्यक्ति से कहते हैं 'तुम्हारा नाम क्या है?' अथवा 'तुम्हारा पेशा क्या है?' तो हम व्यक्ति की व्यक्तिकता की धार से कहते हैं। प्रत्येक स्त्री पुत्र एक अलग सामाजिक प्राणी है। व्यक्तिकता किसी व्यक्ति का मौलिकता (originality) अथवा आन्ध्र विचलता (eccentricity) का पर्याय नहीं है। व्यक्तिकता का यह प्रमाण नहीं कि हर किसी के व्यवहार में विचलन व्यवहार किया जाय। व्यक्तिकता से व्यक्ति के उस गुण का अभिप्राय है जिसमें वह दूसरे से व्यवहार करते समय अपनी निर्णय-आधीनता पहल विचलन के आधार पर एका व्यवहार करता है जिसमें उसकी स्वशासन क्षमता (autonomy) नष्ट होती है। व्यक्तिकता के स्वामी में अधिक इच्छा स्वतंत्रता का होना अनिवार्य होती है। व्यक्तिकता व्यक्तित्व का वह पहलू है जो मनुष्य का सामाजिक प्रयोजन और दूसरे के प्रति मूलमशी (sensitive) बनाता है।¹ आधुनिक जटिल समाज में व्यक्तिकता की अभिव्यक्ति के लिए मनुष्य का अनेक अवसर मिलते हैं जो भाषा, पत्र या व्यवसाय और विचारों में। यहाँ प्रथा, रूढ़ियों और नियम मूल समाज की भाँति बंधन कठोर नहीं होते हैं। शिक्षा, राजनीति, मनोरंजन और कला सभी क्षेत्रों में समरूपक अभिव्यक्ति के साथ स्वतंत्र तथा व्यक्तिकता प्रवृत्तियों का प्राप्ताह मिलता है। समाज समृद्धि और सम्यक्ता की प्रगति का इतिहास इस बात का मापक है कि समाज में समानता (similarity) और भेद (difference) दोनों का समान महत्त्व है। मनुष्य की भावनाओं विचारों तथा कार्यों में विचलन समरूपता (uniformity) का होना विनाशकारी और अन्तःनिर्भरता को कभी पनपन नहीं देता। समाज का

* Deviation from the norm or centre singularity of conduct
 नर-रूप बंधन अष्टना, भव या मूल ।
 1 Mclver and Page Society p 51

उन्नति और विकास भी सम्भव न होते और समाज अधिक से अधिक कृत्रिम, जड़िलता और शुष्क होना।¹ शायन् आल्डस हक्सल की प्रसिद्ध रचना 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' में कल्पित दशाघ्रा के समान ही समाज में समरूपता और मानवीकरण होत।

मत्र तो यह है कि मनुष्य के वास्तविक ससार में समाज और व्यक्तिगत दोनों साथ-साथ रहते हैं। यद्यपि उन दोनों में आन्तरिक विरोध (inherent antagonism) है फिर भी दोनों में आवश्यकतावश अन्तःप्रायितता है। समाज में विकास का सबसे अधिक गुण वह अंश है जिसमें विभिन्न व्यक्तिकताएँ समाज में पारस्परिक एवं सामायिक सेवा में रत पाई जाएँ। व्यक्तिगतता की अघाघुघ बुचलना सबका समाज हित में नहीं होता है। समाज और व्यक्तिगतता में सामंजस्य स्थापित करना ही बुद्धिमानी है। समाज का आग्रह उसके सभी सदस्यों में भावनाओं, विचारों, हिता और कार्यों की पूर्ण एकरूपता में नहीं दिख सकता। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सामाजिक एकीकरण (social integration) की अपूर्णता को सनातन सत्य स्वीकार कर उस प्राप्त करने का प्रयत्न ही छोड़ दिया जाए। हमें मदद सामाजिक एकीकरण की प्राप्ति के लिए उपयुक्त भौतिक और सामाजिक दशाओं प्रोत्साहित करना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब समाज से कट्टर रुढ़िवादिता संश्लेषण कटारता एवं अमहानशीलता की मात्रा क्रमशः कम हो साथ ही आधुनिक जटिल समाजों में सर्वसाधारण के विचारों, भावनाओं, आदर्शों और कार्यों को एक साथ में ढालने का मानवीकरण प्रशियाओं को, जो स्वतंत्रता तथा भिन्नता का गला दबा रही है समाज में वास्तविक लक्ष्य से समायोजित किया जाए। ध्यान रहे हम व्यक्तिगतता का अर्थ व्यक्तिवादिता अथवा अहम-यता (egoism) नहीं लगाते हैं। व्यक्तिवादिता और अहम-यता का प्रोत्साहन जनसाधारण के हितों पर बुढाराधान है और अन्त में समाज के विघटन की तैयारी है।²

मेकाद्वर और पत्र व्यक्तिगतता के बारे में दो तथ्यों का संकेत करते हैं (१) समाज व्यक्तिगतता की उन्नति के लिए मूलभूत दशा है। समाज उन दशाओं को उत्पन्न करता है जिनमें हमारी हर इच्छा अथवा आकांक्षा की पूर्ति होती है। (२) जिनकी ही अधिक व्यक्तिगतता किसी व्यक्ति में होगी उतना ही अधिक वह समाज पर निर्भर रहेगा और उतना ही अधिक समाज को उसमें प्राप्त हो सकेगा।³ इस

1 प्रतिभांगली लोग प्रायः विद्रोही होते हैं और अपने व्यवहार में वे जिन जिन चीजों में विद्रोह करते हैं उन उन चीजों में वे अपने समाजों को प्रथम मानवीकरण मनुष्य के दृष्टिकोण की ओर ल जाते हैं।'

- प्रा० देवराज मधुनि का दार्शनिक विवेचन, लखनऊ (१९५७ पृष्ठ २०३)

2 See A. D. Lindley's article on Individualism in *Encyclopaedia of Social Sciences* Vol 7 (1932)

3 MacIver & Page *op cit* p 54

दूसरे तन्त्र की सत्यता महात्मा गांधी, बुद्ध, शिवाजी, राणा प्रताप, सुभाष बान, जवाहरलाल, नानक, शंकराचार्य और माकम जस महान् व्यक्तित्वा व जीवन-सत्या म प्रकट ढा सकती है । प्रो० यू० बी० मुन्वर्जी कहा करत थ कि समाज की प्रगति म उन साशा का यागदान अधिक है जिनम सक्रिय बैयक्तित्वा अधिक होनी है । वास्तविकता भी यही है । समाज की परम्पराशा अथवा रुढ़िया का लकीर का फनीर रहकर ज्ञान और निष्क्रिय व्यक्तिया स समाज की सस्कृति म न काइ आविष्कार ढा सकता है और न शानि । मृजन और प्रगति म अपरम्परावाग् एव उग्र व्यक्तित्वा का महान याग हाता है ।

मानव प्रकृति

मानवता मनुष्य को जन्म से प्राप्त होकर बाद में प्राप्त होती है। मानवता का अभिप्राय व्यवहार के उन लक्षणों से होता है जो मनुष्य और पशु में अंतर करती हैं। वास्तव में मनुष्य और पशु के शारीरिक स्थान का अंतर उतना नहीं है जितना वास्तव में उनके व्यवहार में है। मनुष्य समाज के वंश लक्षण जो उसे पशु से भिन्नता प्रदान करते हैं अपने सामाजिक पर्यावरण से प्राप्त करना है। पशु और अन्य-व्यक्तियों के मध्य होने वाली प्रक्रियाओं के द्वारा उनके अन्दर आत्मचेतना व्याप्त होती है। वह अपने समाज की भाषा का अज्ञान करके ही अन्य व्यक्तियों के साथ विचारों, भावनाओं आदि का आदान प्रदान करने के योग्य बनता है। अन्य व्यक्तियों के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष सम्पर्क के अभाव में वह व्यवस्था के उन लक्षणों को कभी भी नहीं प्राप्त कर सकता है जो एक मनुष्य कहलान के लिए आवश्यक होती हैं। उदाहरण स्वरूप अमला तथा कमला भेड़िया द्वारा पाली गई लड़कियाँ जो बचपन से ही मानव सम्पर्क में बर्चिन रतीं वे हम कथन का पूरा रूप से स्पष्ट करती हैं कि मानव कहलान के लिए व्यवहार के जिन लक्षणों की आवश्यकता होती है वे केवल मानव समाज के सम्पर्क में ही उत्पन्न हो सकते हैं। यदि व्यक्ति जीवन के किसी स्तर पर मानव समाज के सम्पर्क से दूर हो जाता है तो उसके अन्दर मानविक अस्तित्व तथा व्यक्तित्व का विघटन शून्य लगता है। कई आत्म-कथनों का एकान्तवास में रणे जाते हैं तथा व्यक्ति भी जो स्वयं अपना इच्छा से पृथक् होकर एकान्तवास करते हैं अपिवाशतः पागल तथा बिचबिड़े हो जाते हैं। यह भी सम्भव है कि शारीरिक रूप से कई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हुए भी मानविक रूप में उनसे पृथक् हो सकते हैं। इस प्रकार व्यक्ति के ऊपर मानविक एकान्तवास का कहीं प्रभाव पड़ता है जो कि समाज में अलग रहने का फल है। मानविक रूप से व्यक्तियों के उन लक्षणों

का एकात्मता सीधे तौर पर नहीं माना जाता जिनकी एक मानव में धारणा की जाती है। यह भी सम्भव है कि पिछली सीधी हुई वाता का सा बैठ।

प्रत्येक संस्कृति में कुछ ऐसी-तरीके प्रचलित रहते हैं जो अपनी परिस्थितियों में अनुकूलन स्थापित कर लेते हैं। ये प्रचलित तरीके पाश्चिमी देशों की प्रथाओं से अलग-अलग परम्पराओं, रीतियों आदि के रूप में अस्तित्व में रहते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक संस्कृति में जबकि आवश्यकताओं की अनुकूल, सामाजिक व्यवहारों, विचारों तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा आत्म-प्रदान के अपने-अपने तरीके होते हैं। यह जरूरी होता है कि प्रत्येक व्यक्ति जो उस समाज में जन्म लेता है वह उन तरीकों का सीखे क्योंकि इससे अभाव में न ता वह उस समाज के जीवन में सक्रिय भाग ग्रहण कर सकता है और न मर्यादा ही बन सकता है। वह तब तक अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है और न अन्य व्यक्तियों का सहयोग पा सकता है जब तक कि प्रचलित प्रथाओं का न सीखे। समाज में प्रचलित व्यवहारों के तरीकों को सीखने तथा ग्रहण करने का ही हमें उम्र व्यक्ति का सामाजिकीकरण कहते हैं।

सामाजीकरण की परिभाषा

विन्डन बर्ग के अनुसार 'सामाजीकरण का अर्थ उस प्रक्रिया में है जिसमें व्यक्ति सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में प्रवेश करता है जिनमें वह समाज का और उसके विभिन्न समूहों का सम्बन्ध बन जाता है और जो उस उम्र समाज की मूल्यताओं और मानकों के स्वीकार करने को प्रेरित करता है।'¹

इस परिभाषा की व्याख्या करते हुए यह कहा जा सकता है कि सामाजीकरण का अर्थ है कि व्यक्ति अपनी संस्कृति का जन्मीनिय रीतियों विचारों और दूसरी विशेषताओं का सीखता है। वह उमरी शिक्षणों और अन्य आवश्यकताओं का सीखता है। उसे वह अपने समाज का एक नियोजित मूल्य बनने में समर्थ हो जाता है। सामाजीकरण की प्रक्रिया में वह अपने परिवार पड़ोस वगैरह समुदाय के उद्देश्यों और मूल्यताओं का अपना लेता है। समाज में सामाजीकरण की समूह प्रक्रिया अन्तर्निहित अथवा सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में अन्तर्गत होती है।

सामाजीकरण एक प्रकार का सीखना (learning) है। यहाँ सीखने का अर्थ है कि व्यक्ति अपने समाज में सीखा गया है। जन्म के विचारों में सामाजीकरण सीखने का एक महत्वपूर्ण भाग है। सामाजीकरण का सीखना है जो समाज के नियमों के अनुसार होता है। अर्थात् समाज के अन्दर जीवन बिताते-बिताने के लिए सीखने का

1. Kumbhar Young - A Handbook of Social Psychology, p. 89

2. Johnson Sociology: A Systematic Introduction, (1911) p. 110

समाज द्वारा अनुमोदित समस्त आचरण को सीखना ही सामाजीकरण है। इस क्रिया से व्यक्ति का सामाजिक जीवन के ढाँचे में ढाला जाता है।

सामाजीकरण और सीखना

सामाजीकरण एक प्रकार का सीखना है। सीखना (learning) विस्तृत अर्थों में प्रयुक्त होता है। सामाजीकरण सीखने का एक महत्वपूर्ण भाग है। जानसन ने कहा है कि सम्पूर्ण सीखना सामाजीकरण नहीं है। यह माना जाता है कि कुछ सीखना सामाजिक व्यवस्थाओं में भाग लेने और सप्रेरणा (motivation) के लिये आवश्यक है। सामाजीकरण एक निश्चित दिशा में सीखना होता है। यह दिशा समाज द्वारा निर्धारित होती है। पुन जानसन ने लिखा है कि सामाजीकरण वह सीखना है जो सामाजिक कार्यों में करने की किसी भी योग्यता में सहायक होता है या वह सीखना किसी विशेष दिशा और गुण में होता है। किसी विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था के दृष्टिकोण से यह सीखना वाछनीय है और इसे सीखने की इच्छा की जाती है।¹

अतः यह स्पष्ट है कि सीखने का 'यापक' अर्थ है। मनुष्य बहुत कुछ सीख सकता है जो उसके सामाजीकरण का भाग नहीं है। केवल वही सामाजीकरण सीखना कहा जा सकता है जो समाज के नियमों के अनुसार माय है। अर्थात् वह सीखना जो समाज के नियमों के प्रतिबन्ध अथवा उनके द्वारा स्वीकृत नहीं है। सामाजीकरण नहीं कहा जायगा।

सामाजीकरण के अभिकरण

समाज के अंतर्गत सामाजीकरण के विभिन्न अभिकरण (agencies) में परिवार सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें कोई संदेह नहीं कि परिवार के अंतर्गत माता और पिता की भूमिकाएँ ही साधारणतया सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। परिवार के अतिरिक्त मनुष्य के सामाजीकरण में अन्य अभिकरणों अथवा माध्यमों का भी महत्व है। सामाजीकरण के अन्य माध्यमों में पत्नीय सम्बन्धी जन प्रारम्भिक समूहों के सदस्यों और विभिन्न प्रकार के द्वितीयक समूहों की मत्स्यता का उत्तमनीय स्थान है। किन्तु समाज में सामाजीकरण के अभिकरणों का निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकरण किया है—

(क) परिवार (ख) आयु-समूह (ग) पढ़ाई (घ) नाट्यीय समूह (Kinship group) (ङ) विद्यालय (च) अन्य प्रारम्भिक समूह जहाँ मिन मन्त्री बनने अथवा मनोरंजन गार्डों। ये सभी अभिकरण प्रारम्भिक समूह हैं।

द्वितीयक समूहों में भी व्यक्ति का सामाजीकरण होता है। वेग जाति, राष्ट्रीयता, समूह राष्ट्र, राजनीतिक दल, धार्मिक समूह भाषा समूह, सांस्कृतिक समूह तथा सवसायिक समूह आदि सामाजीकरण की द्वितीयक एजेंसियाँ बनी जाती हैं।

परिवार द्वारा सामाजिकरण

बच्चा वा सामाजिकरण परिवार से ही प्रारम्भ होता है। बच्चा क प्रति माता पिता का स्नेहपूर्ण व्यवहार उन्हें बहुत कुछ मिला देता है। बच्चा वा बहूषा सभी आवश्यक कार्यों को निम्ना माता पिता क व्यवहार क अनुकरण से मिल जाती है। परिवार में माता और पिता की धार से जो अनुशासन बनाय रमा जाता है उससे सभी बच्चा का सामाजिकरण होता है। सामाजिक जीवन की बहुत सी बातें वा बच्चे परस्पर खेलकर और एक दूसरे का अनुकरण कर माय लेते हैं। पति पत्नी क पारस्परिक मधुर और प्रेमपूर्ण सम्बन्ध वा बच्चे क व्यक्तित्व विकास पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। दम्पति क परस्पर सहयोग सहानुभूति समझौता और सख्त या बड़नाइ से साहजिक और धैर्य से काम करने का स्पष्ट प्रभाव बच्चा के व्यक्तित्व क विकास पर पड़ता है। धर्मधर्म या भगवान् प्रथवा किसी भी प्रकार से प्रसामाजिक व्यवहार करने वाले माता पिता का बुरा प्रभाव बच्चा पर पड़ेगा। पति-पत्नी की एक दूसरे क प्रति अनुशासन, धुला प्रथवा धर्मधर्म का प्रभाव बच्चा क लिए बड़ा प्रभावशाली होता है। कुछ माता-पिता अपने बच्चा का अपने बेटे बहन की शिक्षा प्रथवा निम्नतर शिक्षा से मर्यादित और साधारण रखते हैं। इससे बच्चा क मन में सामाजिक सामाजिकता माता पिता और समाज के प्रति विरोध और विद्रोह का प्रवृत्ति विकसित हो जाती है। इसी प्रकार जो बच्चा का अधिक सह-कार्य मिलता है तो उनमें स्वावलम्बन की भावना नहीं पनपती। ये धर्म कार्यों और व्यवहार की सही आलाचना गुनन का तयार नहीं पाते। इस कारण बहूषा सामाजिक और स्वार्थी हो सकते हैं। कुछ माता पिता प्रभावशाली या तो समझी से अपने बच्चा में न-नाम बतलते हैं इससे उनमें प्रमुख शक्ति का विकास हो जाता है। माता पिता का सामाजिक स्थिति और जीवन में सफलता निष्पन्नता का बहुत बड़ा प्रभाव समाज पर पड़ता है। सभी प्रकार माता पिता प्रथवा धर्म शक्ति का सामाजिक राजनितिक और धार्मिक विचारों का प्रभाव निश्चय ही बच्चे क व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। परिवार की धार्मिक सम्पत्ति या विरासत का प्रभाव बच्चा पर पड़ जाता नहीं रहे सकता। धार्मिक दृष्टि से सुशिक्षित परिवार क सम्पत्तियों क व्यक्तित्व में होना प्रमुख प्रथवा अनिश्चितता की प्रवृत्तियों पर नहीं कर पाती। दृष्टि बचारा धर्म प्रथवा धर्म प्रकार की धार्मिक प्रमुखता से अपने परिवार क धार्मिकता में एक धार्मिक धृष्ट और बच्चा बरी रहती है। बच्चे भी सम्पत्त उमर दूषित प्रभाव से नहीं बच सकते। कारण यह है कि परिवार का परिवेश सम्पत्त क व्यक्तित्व क विकास में बहुत महत्वपूर्ण है। जीवन पया व्यक्ति क विचारों दृष्टिकोण धार्मिक और धर्मधर्म पर परिवार क परिवेश की धर्म समिष्ट रहती है। धर्मधर्म धर्म के सामाजिकरण में परिवार एक महत्वपूर्ण शक्ति बनी जा सकती है।

आधुनिक परिवार की सामाजीकरण में भूमिका कुछ सशोधित है। आधुनिक परिवार में प्रतिस्पर्धा, प्रयास और उपलब्धियाँ पर कुछ बहुत जोर दिया जाता है। इस बातोंवरण में परम्परा अथवा प्रथा के प्रति अनुदारता अथवा विरोध भङ्गता है। सुडबग और उसके सहयोगियों ने आधुनिक औद्योगिकीकृत समाज के परिवारों के अन्तर्गत सामाजीकरण की प्रक्रिया का बड़ा सूक्ष्म अध्ययन किया है। उनका निष्कर्ष यह है कि परिवार के भीतर पति पत्नी के चुनाव और दैनिक जीवन में प्रतिस्पर्धा पर बड़ा बल दिया जाता है। इस कारण परिवार के इस प्रतिमान में जो व्यक्तित्व विकसित होता है वह परम्परागत पितृसत्तात्मक मरुत्त परिवार में विकसित व्यक्तित्व प्रतिमान से बहुत अलग है।

सामाजीकरण की प्रक्रिया में परिवार के अतिरिक्त अन्य प्राथमिक समूहों जैसे पड़ोस सम्बन्धी समूह, क्रीडा समूह, विद्यालय आदि की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में इन समूहों का प्रभाव उस पर पड़ता है। व्यक्ति के जीवन में उपरोक्त अभिवृत्तियों का जितना ही सक्रिय स्थान है उतना ही वह व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। बच्चे के व्यवहार, विचार और आदर्श के निर्माण में उसके क्रीडा समूह, पड़ोस और विद्यालय का जितना महत्वपूर्ण स्थान है। यह कोई भी अपने सामाजिक अनुभवों की पार्श्वभूमि और स्रोतों की व्याख्या करके जान सकता है।

इसी प्रकार व्यक्ति के सामाजीकरण में द्वितीय समूहों की भूमिका भी महत्वपूर्ण नहीं है। प्रत्येक मनुष्य का जाति भाषा धर्म अथवा व्यवसाय समूह उसके लिए व्यवहार अपने प्राथमिक समूहों में सीखता है उनमें पर्याप्त मनोबल, सबकर्म और परिष्कार द्वितीय समूहों के आजीवन की सक्रिय सदस्यता की अवधि में हो जाता है। आधुनिक जटिल समाजों में व्यक्ति का अधिकांश जीवन व्यापार व्यावसायिक समूहों, राजनितिक दल, सांस्कृतिक गण्टियों, बन्धु अथवा मनोरंजन केंद्रों में सक्रिय सम्मेलन में बीतता है। अतः आधुनिक व्यक्ति के व्यक्तित्व पर स्पष्ट छाप उमर द्वितीय समूहों की पड़ती है। कई बार उसका द्वितीय समूह की आवश्यकताएँ एम आरण की अपेक्षा करती हैं जिनमें प्रारम्भिक जीवन की बहुत सी स्थापनाएँ और मर्यादाएँ गभीर रूप में मर्यादित हो जाती हैं। आधुनिक मनुष्य के मानवतात्मकता का अर्थ कुछ यही विविधतापूर्ण परिवर्तन है।

सामाजीकरण के कारण

विभिन्न युगों में अनुभूत सामाजीकरण के अलग-अलग कारणों में स्वीकृति अस्वीकृति और लक्ष्य एवं स्थापना सम्मिलित हैं। सामाजीकरण के कुछ प्रमुख कारण हैं (१) गुणात्मक (२) अनुकरण (३) गणानुमति (४) पुनराकार और दण्ड, (५) गृहमति और पण्यमति तथा (६) मर्यादा उल्लंघन (ridicule)।

(१) मुभाव—बच्चे मुभाव वगुन गौत्र मान लेते हैं। यही कारण है कि माता पिता तथा परिवार के अर्थ बड़े लाग बच्चा के सामने अपने विचार उठाते व्यवहार करते हैं। जो भी व्यक्ति अनुभव तथा पान में कम हात है वह अपने से अधिक अनुभवों और पानवान के मुभाव का मोहना में मान लेते हैं। यह स्थिति बच्चा के माय है। मुभाव में हम दूसरा के व्यवहार का अनुकरण करते हैं और उनके अनुभवों का लाभ उठाते हैं।

(२) अनुकरण—बच्चे अपने माता पिता और अन्य स्वजनों के व्यवहार से बहुत कुछ अनुकरण द्वारा सीखते हैं। वे अपने को भिन्न भिन्न स्थितियों में रखकर तन्तुपूर्ण प्रदर्शन करते हैं। बच्चे का प्रारम्भ में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मरते भाषा (gesture language) का अनुकरण में ही सीखना पड़ता है। जब वह कुछ बोलना ही जानता है तो अपने तथा से वह भाषा और अपनी सीखता है। रत्न-महन के डग वगैरे और गृहकार का रीतियाँ तथा बान बान और तब तब की मारी वगैरे बच्चे और विचार अनुकरण द्वारा ही सीखते हैं।

(३) सहानुभूति—महानुभूति बच्चा का उद्वेग भावनाओं तथा प्रेरणाओं का सीखने में महत्वपूर्ण होती है। बच्चा और विचारों का भावना-जीवन (emotional life) महानुभूति की प्रक्रिया में विकसित होता है। मुवा और प्रौढ जीवन में भी हम न जान किन्ती बातों में अपना लगाव और भावनाओं तथा उद्वेगों का विनाश दूसरों के प्रति महानुभूति की प्रक्रिया से करते हैं।

(४) पुरस्कार एवं दण्ड—बच्चा के सामाजीकरण में पुरस्कार और दण्ड का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। माता पिता अपने बच्चों को प्रशंसा के अनुभवों काय करने में अपने बच्चा को पुरस्कार दिया जाता है और जो बच्चे अपने अपने हात में उचित रूप में मिलता है। बच्चा का अच्छे बुरे काय की पहचान भी पुरस्कार और दण्ड की प्रक्रिया से करायी जाती है। बच्चा को उचित प्रशंसा, प्रयासों और विचारों अपने भावनाओं का सीखने दिया जाता है जो सामाजीकरण में अनुभव हावी है। अपने सीखने की प्रदान प्रयत्न भागों हावन में बच्चा को अपने वार पुरस्कार का रूप मिलता है। यही या वाचित व्यवहार के लिए पुरस्कार किन्ती भी रूप में हावना है। एक मरते मुखान में हावना व्यक्तित्व प्रयत्न तथा सूत्र बन्धुता में पारिभाषिक भाषा पुरस्कार के अनुकरण हैं। इसी प्रकार किन्ती सामाजीकरण भावनाओं और अन्य प्रकार के दण्डों में बच्चा में गत प्रयत्न प्रयत्न प्रयत्न व्यवहार करने की मनाही की जाती है। प्रशंसा दण्ड की प्रयत्न पुरस्कार को अधिक प्रभावशाली माना जाता है। यथार्थ परिणामों में निश्चय किया है कि दण्ड तब में बच्चा के व्यक्तित्व के विकास पर बरा हावना प्रभाव पड़ता है। दण्ड में बच्चे के घाम विनाश का प्रयत्न पड़ता है और हमें सामाजीकरण के अभिकरण के प्रति प्रतिरोध एवं डेव की भावना विकसित होता है। अन्त में हमें सामाजीकरण का प्रक्रिया का प्रतिपत्ती है। जीवन में न दण्ड देने के ही और महत्व दिया है। दण्ड सामाजीकरण के

एजेण्ट के प्रति धृष्टता तथा विद्रोह की भावना बढ़ती है और दूसरे सामाजीकरण की प्रक्रिया अस्वाभाविक हो जायगी क्योंकि दण्ड पाने पर बच्चे में सामान्य और वाछित व्यवहार प्रतिमान का सीखने की इच्छा दब जाती है। अकोलकर ने अयोध बच्चा को दण्ड देने के भयकर परिणाम का संकेत करते हुये लिखा है कि दण्ड से उत्पन्न घबड़ उसकी स्मृति पटल से कभी नहीं धुलत। ये 'नरसिस्ट घाव' (narcissitic wounds) स्थायी चिह्न छाड़ जात है।¹

(५) सहमति तथा असहमति—जब बच्चा ठीक व्यवहार करता है तो उससे सहमति (approval) प्रकट की जाती है और इच्छा या प्रथा के विपरीत आचरण करने पर उससे असहमति (disapproval) प्रकट की जाती है। इससे बच्चे में उचित अनुचित अथवा कत्त व्याकत्त व्य के पहचानने की आदत का विकास होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने समूह की सहमति का भूखा रहता है। वह ऐसा कोई आचरण नहीं करना चाहता जिससे उनकी भत्सना अथवा निंदा हो अथवा उसकी स्थिति की अवमानना हो जाए। व्यक्ति में इस इच्छा का निर्माण करना ही सामाजीकरण का सफल शिक्षण है।

(६) मजाक उड़ाना—मजाक उड़ाना एक प्रकार का दण्ड है। यह असहमति का अधिक कठोर रूप है। जिस व्यक्ति अथवा बच्चे की मजाक उड़ाई जाती है वह लज्जित हाता है और अपने व्यवहार में आवश्यक सुधार करता है। मजाक उड़ान में भी सावधानी बरती जानी चाहिए। अनजाने में की गई गलती की बहुत मजाक उड़ान से अथवा प्रथम गलती पर ही बच्चे की अघाधुध मजाक उड़ान से उसमें हीनता तथा विरोध की भावना का विकास हो सकता है। मजाक उड़ाने के लिए टग और अक्सर का चुनाव बड़ी सावधानी से करने पर ही मजाक से सामाजीकरण की प्रक्रिया में सहयोग मिलता है। नहीं तो इस साधन का उपयोग अहितकर परिणाम दे सकता है।

सामाजीकरण और व्यक्ति

समाज मनुष्या के पारस्परिक सम्बन्धों से बनी एक व्यवस्था है। पिछले दो सतासठ सालों में इस व्यवस्था के सगठन विकास और परिवर्तन का विश्लेषण किया। समाज के प्रत्येक स्थान पर होने वाले नाटक का अभिनेता (actor) मनुष्य ही है। अतएव, इस अभिनेता के व्यवहार को समझना नितान्त आवश्यक है क्योंकि इसी व्यवहार को उसके समस्त सामाजिक सम्बन्धों का आधार कहा जा सकता है। मनुष्य के व्यवहार को समझने का सर्वोत्तम साधन उसके व्यक्तित्व के निर्माण और विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी बने बनता है और अपना जीवनकाल में विभिन्न मनुष्यों के साथ विभिन्न अवसरों पर जा व्यवहार करता है

1. बी० बी० ब्रानरर समाज मनोविज्ञान, पृष्ठ १३४

वह क्या करता है ? इसका उत्तर व्यक्ति का सामाजिक नियारण या सामाजीकरण की प्रक्रिया है। जन्म ही बच्चा केवल एक मानव जीव होता है। उमम मनुष्य की विनयताएँ धरवा मानवाचित गुण नहीं गिनत। न वह बोलता है न कपडे पहनता है, न शिष्टाचार जानता है और न उमके कडे नश्य धरवा सादश हाते हैं। अधिक स अधिक उमक पाम पतृक मज्जा (मायबन) नीनी है जिसम बुद्ध जविक और मान सिक सगरा हात हैं। किन्तु जमानसात बच्चे की धामु ज्या-या बडती है उमम धनक परिवतन दिखन सगत है। वह सचना धरवा भाषा का प्रयाग करन सगत है। मा-बाप के सह की इच्छा करता है। उनक मुस्करान उमन पर स्वय भी मुस्कराना-हैमता है। उठन-बठन, गान दूसरा मं व्यवहार बग्न क ढग सीगता है और वस्तुधा, परिवार क सदस्या तथा बाहरी लागा क प्रति निश्चिन मनावृत्ति रचना सीग जाता है। उस धपन पगमे का पान हान सगता है। इसी प्रकार बनन्याजनस्य का भी उम परिवच हा जाता है। माराग यह है कि उमम सामाजिक जीवन म सम्मिलित हान की दामता और इच्छा विकसित हाता है। बाल्यकाल म यह प्रक्रिया परिवार म प्राग्मम होती है फिर धानु-मसूह (हमजोनिया के माध) विद्यालय तथा पढास म कावरन रहनी है। विशार और तदगु हात-हान इस प्रक्रिया द्वारा उडे सामाजिक जावन म प्रभावी सम्मिलन क निय बहून बुद्ध तैयार कर गिया जाता है। किन्तु सामाजिक जीवन में प्रवस कर लन क बाग यह प्रक्रिया धम नहा जानी है। व्यक्ति इसक प्रभाव स आजीवन दूर नही भाग पाता क्वाकि प्रत्येक कर्म पर उम यह जानना जरूरी मात्रम पढना है कि समाज (या दूगर लाग) उमम धम व्यवहार की धपना करता है। समाज का सदस्य हाकर मधन जीवन निर्वाह क निय उम धपन धात्म' (self) का विनास कर सामाजिक व्यक्ति बनना पढता है। इसी सम्पूर्ण प्रक्रिया का सामाजीकरण (socialization) कन्ने है।

सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसम मनुष्य दूगर मनुष्या और समूहा म धनत क्रिया कर सामाजिक परिपाटिया और मसृति क धनुकूल व्यवहार करना हृषा एक मशिय सामाजिक मनुष्य बन जाता है। सामाजीकरण म व्यक्ति म धात्मकचना, धात्मनिगण हम भावना सामाजिक धात्म नियंत्रण और सामाजिक उत्तरायित्व क गुण धा जात हैं आ उमके व्यक्ति-व का सम्पूर्ण बनान हैं। मनुष्य क सामाजीकरण म उमका मसृ और मसृति ही मशिय यथ गन्ता है। यदि कोई मनुष्य समूह और मसृति क प्रभावा क प्रति मज्ज और मुविषागपूर्वक प्रतिक्रिया कग्गा तो उमका अधिक धना म सामाजीकरण म मनी मनुष्या क ध्यनित्व का समान प्रकार का विनास नहा हा पाता है। एक समूह क धागत मस्य्या म कडे प्रकार क व्यक्ति-व सिनने है। नीगरे सामाजीकरण म प्रत्येक व्यक्ति धवरय ही कवमान समाज की धाधाधमा के धनुगार ही व्यवहार करगा, धा भी जरूरी नही है। हरक समाज म एक धनत ध्यति हान है जो समाज की प्रचलित पग्मसधा, रीतिया, धादनी और

राज्य के कानूनो की उपेक्षा अथवा खुला विरोध करते हैं। इस समाज विरोधी प्रवृत्ति का निर्माण के लिये अपर्याप्त या दोषपूर्ण सामाजिकरण जिम्मेदार है। मनुष्य में उपयुक्त मानवोचित गुणा का—मानव प्रवृत्ति का—विकास तभी सम्भव है जब व्यक्ति जन्मपयन्त सामाजिक जीवन में प्रभावपूर्ण भाग लेने का अवसर पाता रहे। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।

यह कथन एक स्वयं सिद्ध सत्य है। मनुष्य का जन्म समाज में होता है और उसी में मृत्यु। व्यक्तित्व के विकास जीवन की सुख सुविधाएँ और सफलताएँ सभी के लिये उस उपयुक्त अवसर समाज के भीतर मिलती हैं। वह अपनी रक्षा, पालन पोषण शिक्षा, मनोरंजन और जीवन की समस्त उपलब्धियाँ के लिये समाज पर निर्भर है। अपने विचारों स्वप्नों और आकांक्षाओं की उत्पत्ति और परिपालन के लिए भी वह समाज पर निर्भर है। वह समाज के बाहर भले ही कुछ समय तक जीवित रहे किन्तु अन्त में मनुष्य बन कर जीवित नहीं रह सकता है। यदि जन्म ही बच्चे का समाज से बाहर जंगल आदि में रहने को विवश होना पड़े तो उसमें मानव प्रवृत्ति (human nature) विकसित नहीं हो सकती और यदि किसी युवक अथवा प्रौढ़ को समाज के बाहर रहने का विवश किया जाए तो उस कितना कष्ट हाँ इसका अनुभव 'राबिंस क्रूसो' जैसे अभाग मानव का ही हो सकता है। समाज से निरंतर पृथक्ता से उसकी मानव प्रवृत्ति का विकास बुध्दित हो जाता है और अन्त में वह समाज में रहने वाले मनुष्यों से इतना भिन्न हो जाता है कि उस किसी भी प्रकार मानव नहीं कहा जा सकता है। आज के दश भोगन वाले बच्चे कभी-कभी पागल हो जाते हैं। इसी प्रकार स्वच्छता से लम्बी अवधि तक वन वासी या एकान्तवासी सन्ध्यासी आदि असाधारण व्यवहार करते हैं उन्हें सनक भी आ जाती है। समाज से पृथक् रहकर मनुष्य का आज अपनी गौरवमयी सम्पत्ति और ससृष्टि पर गव करन का अवसर नहीं मिलता। वह भी पशुमात्र होता है। अतः यह सत्य है कि मनुष्य को जीवित रहने और प्रगति करने के लिए समाज में रहना अनिवार्य है। समाजोद्भूत व्यक्ति (socialized person) में ही मानव प्रवृत्ति विकसित हो सकती है। असमाजोद्भूत (unsocialized) व्यक्ति का व्यवहार जगली जानवरों से भी निम्न कोटि का होता है। इस कथन की सत्यता का साक्षी अममाजी श्रुत बच्चा के उदाहरण हैं।

(१) १८२८ ई० में नूरेम्बर्ग में क़ास्पर हासर (Kasper Hauser) नामक १७ वर्ष का एक बालक को पकड़ा गया। वह किन्हीं राजनितिक कारणों से बंदूक छोटे पर समाज से बाहर रखा गया था। जब नूरेम्बर्ग में वह पकड़ा गया तो १ मीथे गढ़े होकर वह चल सकता था और न बात कर सकता था। उसका मस्तिष्क अशुद्ध अविकसित था और उगम एक छोटे बच्चे जमी ही बुद्धि थी। वह केवल कुछ निरर्थक शब्द बोल सकता था। वेजान पशुओं को जानकार समझता था और

उमके साथ जानकार जना व्यवहार करता था । पाँच वर्ष बाद इसकी हत्या कर शव परीक्षा (postmortem examination) की गई जिससे यह मात्रम हुआ कि उमकी मानसिक उन्नति सामान्य से हीन (subnormal) थी । उस अभाग लड़के को समाज से छीन कर उससे उमकी मानव प्रकृति भी छीन ली गई थी । ध्यान रहे बाल्यकाल की अमस्मृति अवस्था का कारण उसकी जन्मजात मानसिकता नहीं थी ।

(२) इसी तरह का एक दूसरा प्रसिद्ध उदाहरण दो हिन्दू बालिका का है । १९०० ई० में उन दोनों का एक भेड़िये की माँ में पकड़ा गया । उनमें से एक तो कुछ महीना के बाद मर गया । बड़ा बच्चा जिसका नाम कमला था सन् १९२६ तक जीवित रहा । इस ६ वर्ष की अवधि में उमके जीवन इतिहास का मुख्य अक्ष लोकन किया गया । १९२० में जब उस भेड़िये की माँ से लाया गया था तो उममें कोई मानवाचित गुण नहीं थे । वह चारों हाथ-पैर से चकती थी । उमका भापा मिफ निया के गुराने जसी थी । वह मनुष्या से शरमाती थी और उनमें दूर भागने का प्रयत्न करती थी । बड़ी महानुभूति और सावधानी से उसे प्रारम्भिक सामाजिक धारणा की सिखाया गया । मृत्यु के पहले उम धीरे धीरे मामूली भाषा में कुछ बोलना मनुष्य की तरह खाना खाना बपड़े पहनना धारण धारणें धारणें थीं । प्रारम्भ में इन बच्चों में मानवीय आत्मत्व (human selfhood) की कोई भावना नहीं थी किन्तु ६ वर्ष के मानव संज्ञान में उम इसका धाँसा-धाँसा भाग हान लगी था । उममें धीरे धीरे व्यक्तित्व (individuality) का विकास हान लगी था परन्तु तब जब वह समाज का एक मध्य्य बनी ।¹

(३) १९३० ई० में अमरीका के एक बच्चे के नाम अन्ना (Anna) नामक एक बच्चा निकाला गया । कहते हैं कि जन्म के छ मास बाद उमकी माँ ने अवैध बच्चा (illegitimate child) होने के कारण उसे अमर में डाल दिया था । बड़ी जाबन में बच्चे का दूध के प्रतिरित कुछ नहीं किया गया था । इन मामूली धारणों में नहीं सिखाई गई और न किसी दूसरे प्राणी में उमका सम्पर्क हान दिया था । इन प्रति (extreme) और निर्या एवान्त्रवाम (isolation) ने उम बच्चे में ५ वर्ष का होने पर भी सामान्य मानवाचित गुणा का विकास नहीं होने दिया । उम चलना फिरना और बोलना कुछ न जानता था । वह पाल में गड़े पर बैठे धारणों के प्रति पूणतया अचत रहती । उसमें इस स्थिति से कोई प्रतिनिया नहीं होगी । धीरे धीरे जब बड़ा महानुभूति से कुछ प्रसिगा दी गई तो वह धारणों के बच लगी व्यवहार करने लगी । कम आयु हान के कारण एवान्त्रवाम उसे पूरा समान्य नहीं बना पाया था । इसलिए अन्ना न शीघ्र ही साधारण बच्चों की तरह खाना-

1. *Kenneth Young: Introduction to Social Psychology* New York (1947). Several instances of wolf children (feral cases) have been quoted by the author in this book.

पीना बात बरना, कपडे पहनना और चलना सीख लिया था, किन्तु इतने पर भी उसका मानसिक विभाग बड़े निम्न स्तर पर था। वह अमांगी लड़की भी १९८२ ई० म मर गई।

यह उदाहरण भी इस बात का साक्षी है कि मनुष्य म मानव प्रकृति तभी विकसित हाती है जब वह समाज के सामान्य जीवन मे भाग लेता रहे।¹

(४) असमाजीकृत व्यक्तिया के कई बतमान उदाहरण भी मिले हैं। १९५४ ई० म रामू नामक एक बच्चे को लखनऊ के बलरामपुर अस्पताल म भरती किया गया। वह अमांगी बालक अपन मा-बाप से शैशवावस्था मे ही पृथक हो गया था और किसी जगली पशु न उसे पाला था। ऐसा ही एक दूसरा बच्चा, परशुराम १९८६ ई० म आगरा क अस्पताल म भरती किया गया। कुछ शिवारी उसे एक भैंस से छीन लाय थे। इन दोना बच्चा म अपन समवयस्क साधारण बच्चे की भाँति काइ मानवाचिन गुण नहीं थ। उनकी चेष्टाएँ, खान-पीने की आदतें, उठना बठना सभी जानबरा जसा था। उनका मस्तिष्क छाटे बच्चा से भी कम विकसित था। य बच्चे आज भी जीवित हैं किन्तु प्रारम्भ म समाज से पृथक हो जान के कारण उनके व्यक्तित्व का विकास कुण्ठित हो गया है। अत्यधिक सहानुभूति सावधानी और प्रशिक्षण क बावजूद भी व अभी तक सामान्य बच्चे नहीं हा पाए और सम्भवत कभी स्वस्थ मानव न हा पायेंगे।

मनुष्य सामाजिक प्राणी तभी हो सकता है जब वह अन्य मनुष्या के साथ अपने समूह क जीवन और सस्कृति म शरीक होता रहे। जब तक वह दूसरा से शारीरिक या प्रतीकात्मक सम्पर्क न बनाए रखेगा उमकी अय लोगो स अन्त क्रिया नहीं हा सक्ती। हम याद रखना चाहिए कि मनुष्य के सामाजिक प्राणी होन और उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए सामाजिक अन्त क्रिया नितात आवश्यक है जो केवल समूह म रहकर निरन्तर मचार क अवसर पाने से सम्भव है। असमाजीकृत मनुष्य का व्यक्तित्व अविकसित और विकृत रहता है।

सामाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्तित्व का निर्माण और विकास

समाजीकरण की साधारण और उसम सप्रतिबिष्ट अनक विणिष्ट प्रक्रियाया की विरचया व्यक्तित्व निर्माण और विकास के प्रसंग म करना उपयोगी होगा। सामाजीकरण की सामायाग विवेचना समझन का यह अपधाकृत सरल उपाय है।

बच्चा साधारण लाग एक मनुष्य क व्यक्तित्व का अनुमान उसकी स्याति (reputation) अथवा उम प्रभाव (impression) स जो उसक किसी सापरण

1 Quoted by Maelver and Page from *American Journal of Sociology* XLV (1940) pp. 554-565 and JII (1947) pp. 482-87
2 A. W. Green *Sociology* Chap 7 (Socialization)

मे उन तारा पर पड़ता है लगते हैं। व्यक्तित्व को इन ग्रह में समझना पन्द्रह गन्ती है क्योंकि एक विशिष्ट व्यक्ति की ख्याति या उसका भावकरण का प्रभाव सभी तारा के लिए समान न होकर भिन्न भिन्न होता है किन्तु मनुष्य का व्यक्तित्व एक ही है अन्व नहीं। व्यक्तित्व मनुष्य का आन्तरिक गुण है। उसका व्यक्तित्व वह है जो वह है, न कि वह दूसरा को क्या प्रतीत होता है। व्यक्तित्व मनुष्य की उन स्थिर विशेषताओं का तात्कालिक संगठन का बहूत है जिनकी प्रतिव्यक्ति उसके विचार का ढगा, मनुष्या और स्थितियाँ से समायाजन करन और सत्रगागत व्यवहार में होती है। मनुष्या और वस्तुओं के प्रति उनकी उपराक्त प्रक्रियाएँ अपना इन स्थिर और आदतन होता है।¹

समाजशास्त्र में व्यक्तित्व का परिभाषा या की जाता है 'व्यक्तित्व एक मनुष्य का मूल्या (जिन पदार्थों की प्राप्ति के लिए वह प्रयत्नशील है जस आदतन प्रतिष्ठा शक्ति और धन) का भाग है जिनका साथ अभोजित गुण (क्रिया और प्रतिक्रिया का उसका आदतन तरीका) भी शामिल है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से व्यक्ति का मूल्या और गुणा का योगदान नहीं कहा जा सकता है। व्यक्तित्व उनके भावात्मक संगठन में बनी एकता है।

व्यक्तित्व की दरज साधारणतया निम्नाविध परिमाणों (dimensions) का आधार पर की जाती है —

- (१) योग्यताएँ (बुद्धि और अन्य विशेष योग्यताएँ)
- (२) गतियोग्यता (motility)
- (३) स्वभाव (temperament)
- (४) लक्षण (traits)
- (५) दूसरा का प्रति मनावृत्तियाँ
- (६) स्वयं का प्रति मनावृत्तियाँ।

पतृष्टता और व्यक्तित्व

व्यक्तित्व का निर्माण में जविक कारण बहूत महत्वपूर्ण हैं। पतृष्टता प्रत्यक्ष ही मानव प्रवृत्ति या विकास नहीं कर सकती किन्तु वह एसी सामग्री प्रदान करती है अनुभव जिनसे व्यक्तित्व बना जाता है। सम्पूर्ण जविक संज्ञा में म बचन कुछ ही एक कारण हैं जिनका प्रभाव व्यक्तित्व पर गहुरा पड़ता है। म्नायु म्गमान (nervous system) प्रणाली विज्ञान ग्रन्थियाँ (ductless glands) इन्द्रिय तारक (organic drives), भवण (emotions) और सामाजिक तथा विशिष्ट

1 Personality may be defined as the characteristic organisation of the habitual ways of thinking of adjusting to persons and situations and the habitual emotional behaviour. A. A. Allolker Social Psychology Asia Publishing House Bombay (1957) p. 165

मानसिक योग्यताएँ ऐसे जविक कारक हैं जिनका व्यक्तित्व निर्माण से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन लक्षणा की भिन्नता से व्यक्तित्व के भेद उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, बुद्धि में बहुत अधिक भेद व्यक्तित्व में प्रतिबिम्बित होते हैं। जडबुद्धि (idiot) और मूढ़ (imbecile) व्यक्ति का व्यक्तित्व कुछ अजीब प्रकार का होता है। परन्तु प्रतिपत्तृक भेद बहुत कम हाते हैं। अधिकांश लोगो में सामान्य बुद्धि होती है। जब पत्तृक भेद अति या निर्णायक नहीं हाते हैं तो व्यक्तित्व को प्रभावित करने का अवसर पर्यावरण की अधिक मात्रा में मिलता है।

पत्तृकता के परीत्य प्रभाव भी बड़े महत्वपूर्ण होते हैं। जिन लोगो के शारीरिक रूप, आकार अथवा रचना का एक संस्कृति में सुन्दर कहा जाता है उन्हें आत्मगत और आत्माश्वासन (self assurance) होता है। ऐसे लोगो को जिनका शरीर दूसरो की प्रशंसा या आवरण का विषय नहीं हो सकता, कुछ हीनता अथवा अभाव का अनुभव हाता है।

व्यक्तित्व पर पत्तृक कारका का प्रत्यक्ष प्रभाव बड़ा सीमित होता है। उनसे व्यक्तित्व के बस साधारण पहलू निश्चित हाते हैं जैसे सवेगात्मक चालक और मानसिक स्फूर्ति का अंग। भ्रूस लगना जविक है किन्तु भ्रूस से सम्बन्धित आदतें और मनोवृत्तियाँ अनुभव के कारण बनती हैं। इसी प्रकार सवेग हमारा जन्मजात गुण है किन्तु उसका किस प्रकार उपयोग किया जाए। हम कब और किसे प्रेम करें, किस पर और क्या शोध कर अथवा किसके प्रति दया दिखाए आदि हमारे प्रशिक्षण पर निर्भर रहता है। हम अपने सवेगा की अभिव्यक्ति के उपयुक्त परिस्थितियाँ और तरीके समाज से सीखने पढते हैं। हममें से लगभग सभी को स्फूर्ति युक्त काम करने का जन्मजात गुण मिलता है किन्तु हम उसे भिन्न प्रकार के कार्यों में लगाते हैं। इस लिए सामाजिक अनुभव एक ऐसा कारक है जो व्यक्ति की गत्यात्मक जविक विरागत को विशिष्ट मनोवृत्तियाँ और आत्मा से युक्त व्यक्तित्व में ढाल देता है। यद्यपि व्यक्ति के सामाजिक अनुभव में अनेक कारका का समावेश हाता है किन्तु उन सब में समूह और मसृति के दो कारक व्यक्तित्व के लिए सबसे महत्वपूर्ण हैं।

समूह और व्यक्तित्व

बच्चे के जन्मजात गुण महा क्रियाएँ (reflexes) चालक भावनाएँ और क्षमाएँ—साधारण जीवन की बच्ची सामग्री हैं। नियंत्रित अनुक्रियाएँ (conditioned responses) उन्हें व्यक्तित्व की उत्पत्तियाँ जस आत्मा मनोवृत्तियाँ याग्यनामा और विचारा में बदल देती हैं। विभिन्न जीवन स्थितियाँ (life situation) में व्यक्ति को जो नियंत्रित अनुक्रियाएँ होती हैं या जो उसका सामाजिक अनुभव है उद्योग करने की हम उद्योग व्यवहार का जान सकते हैं। व्यक्ति को प्रकृति से दुरार और सुगतर शीत प्रकार का अनुभव होता है। यह प्राकृतिक पर्यावरण की किमी विचार वस्तु या स्थान को दगकर बर्द बार बड़ा विभ्र अथवा भयभीत हा जाता है

क्याकि उमका भतीत का अनुभव उसे याद आता है। लम्बे का अपन गाँव क एक आत्मी के बारे म एक घटना याद है। वह मर साथ रात को ११ बजे स्टेशन को ओर जा रहा था। रास्ते में एक घन पड के नाच वह गहमा चाख कर गिर पडा। मैं आश्चर्य चकित था। जब उम उठा कर पैड की छाया म बाहर ल गया तो उम कुछ डालम बोधा। उसक चीखन का कारण पूछन पर गात हुआ कि एक बार पहन वही पर उम भूत ने धरा था। अब उस भूत न कभी धरा था या नहीं, उस उम भतीत अनुभव की याद अवश्य है। एम ही मजीब गरीब अनुभव मनक व्यक्तिया के साथ हाते हैं जा उनक व्यक्तित्व पर घमिड छाप छाड देते है। उनका प्रभाव हमारी मनावक्तिया, भावता और विचारा पर पडे चगर नहीं रह मवता।

सामाजिक पर्यावरण म सम्बन्धित हमारे अनुभव व्यक्तित्व पर गवम व्यापक और गहरा प्रभाव डालते हैं। बच्चे का प्रारम्भ स ही अपन माता पिता भा-बहिन या दादा का स्नेह मिमता है उनकी लाठ प्यार भरी आवाजे सुनन का मिलना है। इमलिए वह मनुष्य का सहवास और उसकी आवाज गवम अधिक पसन्द करन लगता है। बच्चे का प्रारम्भ म अन्ध मनुष्या के कारण जीवत रक्षा स लकर अनन जबिक और सामाजिक आवश्यकताएँ पूरी करन का अवसर मिलता है। बढे हान पर उमका गारा जीवन ही दूसरा स धिरा रहता है जिसस वह सामाजिक सम्बन्ध की लालमा करता है। दूसरे मनुष्या क सम्बन्ध के हम छात्पन म ही आता हा जाते है एम लिए यदि ब्यक्त हान पर एकान्त कारावाम की सजा मित्र जाए तो उम अनि दुष् मानन है। सामाजिकीत व्यक्तिया तथा समाज स पृथक रहन वान लागी की गान्धीय दगा पर हम प्रयोग डाले हुए हैं।

हमारा सामाजिक पर्यावरण सामूहिक धन द्रिया और मस्तिम म मिररर बनता है। अधिकांश सामूहिक धन द्रिया सींग हूए व्यवहार हाते है और इमलिए व मस्तिम का एक भाग है। प्रत्येक मस्तिम म मनुस्त्र, अनुसुग्ग गि लण अनुस्त्रण दूसरा का डगना, सन्ता समाज-वर्तिष्कार प्रणामा निम्न धार्मि आचरण क माधा रण प्रतिमान रहते हैं किन्तु इनम म किम सम्मानित और किम निषिद्ध या निन्दि माना जाए यह विविष्ट मस्तिम क अनुस्त्र निन्दिन हाता है। माताएँ सभी जगत् धरन बच्चा का गिगाला है किन्तु एम का मानाएँ जा धरन बच्चा का गिगाली है वही भारत की मानाएँ जनी बरनी। इम परम्पर विचार और भावनाधा क आन्तक प्रभाव के लिए प्रत्येक मस्तिम म समान भाषा नहा चलता। भारत क बीरर हो १६ प्राण गित भाषाएँ बानी जाती ह। बच्चे का आन्ध है कि मापारण सामूहिक प्रविद्याधा का निर्देशन मस्तिम बरनी है इमलिए एक विविष्ट मस्तिम म निरा र व्यक्तित्व का विकास हाता स्वाभाविक हाता है।

सामाजिक अन्त क्रिया की सामाय प्रक्रियाओं में प्रशंसा, आरोप, सहयोग, तथ्य, प्रभुता और अधीनता व्यक्तित्व पर अधिक प्रभाव डालती हैं। व्यक्ति को दूसरा से जैसी अन्त क्रिया होनी है उसी के अनुसार वह नेता, भगडालू, कायर अथवा अनुकरणकर्ता होता है। इसमें सन्देह नहीं है कि सामूहिक अन्त क्रिया ही हमारे व्यक्तित्व को भिन्न भिन्न साँचा में ढालती है।

शिशु का एकमात्र समूह उसका परिवार-समूह है इसलिए उसका अनुभव अपन माँ-बाप, भाई-बहिन से अन्त क्रिया ही पर निर्भर रहता है। बच्चा अनुकरण, संकेत, सहानुभूति तादात्म्य की प्रतिक्रियाओं द्वारा अपन समूह की अपेक्षाओं के मुताबिक व्यवहार करता है। शुरू में तो वह आत्म वेद्रित होता है, अपनी जरूरतों और रचियाँ के लिए अन्य सभी लोगों को साधन बनाना चाहता है किन्तु जब उसके इच्छाविराधा से निराशा और पराजय भाव मिलता है तो पहले विद्रोह करने पर भी बाद में दूसरा की इच्छाओं, पसंदों और हिता का ध्यान करने लगता है। इस स्थिति में उस आत्मचेतना होती है और वह दूसरा के आत्म (self) की उपस्थिति को स्वीकार करता है। बच्चे में आत्म (अह) की धारणा का विकास व्यक्तित्व विकास में केंद्रीय महत्व का है। इस अह के आविर्भाव का आधार हमारी वह प्रतीति है जो हमारे और दूसरों के बीच की समताओं और भेदों को स्पष्ट करती है। हम आत्म का ज्ञान दूसरा की उन मनोवृत्तियों को अपनाएँ स हाता है जो वह हमारे प्रति बनाते हैं। बच्चे के बारे में दूसरे लोग क्या रायें बनाते हैं उसकी प्रशंसा करते हैं अथवा उसकी निन्दा उसे होनहार समझते हैं या निवृत्ता। दूसरा की इन रायों का उसने व्यक्तित्व पर अमिट निशान बन जाता है। बच्चे की काल्पनिक भूमिकाएँ करने में बड़ा आनन्द आता है। लड़कियाँ गुडियाँ खेलते समय, माँ सासू का आँसू पानी है। लड़के खेल खेल में राजा जज दरोगा डाकू चार और यादों आदि की कल्पित भूमिकाएँ करते हैं। इन विभिन्न कल्पित भूमिकाओं में अपन का स्वयंसेवक बच्चा अह और दूसरे के प्रति अपन व्यवहार का प्रकट करता है। आत्म का विचार धीरे धीरे दूसरा की भूमिका अभिनीत करने से विकसित होता है। दूसरा के आचरण का कल्पना कर हम अपन आचरण का जो समायोजन करते हैं वह व्यक्तित्व में केंद्रीय तथ्य है। इससे हमारा आत्म दूसरे के आचरण के लिए दृष्टि का काम करता है।¹

हरेन व्यक्ति के अन्त सामाजिक सम्बन्ध हाते हैं, उस कई समूहों में अन्त क्रिया करती पानी है। इन कारण उस कई भूमिकाएँ अभिनीत करती पडा है। इन भूमिकाओं की सख्या समूह ससगों के आधार पर बहुत अधिक हो सकती है। इन विभिन्न भूमिकाओं में उसका व्यवहार एक-सा नहीं रहता है। जितनी भूमिका में

¹ C. H. Cooley *Human Nature and Social Order* New York (1922) pp 183-85

एक मनुष्य बड़ा उदार, मृदुभाषी स्नेही और त्यागी हो सकता है जबकि अधिकारी की भूमिका में प्रति बटोर, अनुशासनप्रिय, प्रबल और अनुत्तर हो सकता है। इसलिए एक व्यक्ति के व्यवहार की पूरी जानकारी उन सभी स्थितियों (situations) का दायर ही की जा सकती है जिनमें वह व्यवहार करता है। परिवरण हमारे व्यवहार को बहुत अधिक प्रभावित करता है और प्रत्येक स्थिति में हम एक नए और भिन्न परावरण में आ जाते हैं। भूमिकाएँ स्थितियों का गत्यात्मक पट्ट हैं।¹

'आत्म' विकास में इस बात का बड़ा महत्व है कि हम अपने रिस आचरण का प्रशिक्षण करना है और किसको शिक्षाना है। गिण्टता और अगिण्टता अथवा नतिरना और अनतिरना के मध्य से हम कुछ व्यापार प्रत्यक्ष करते हैं और कुछ का शिक्षण हूँ। ईमानदारी सत्यता, भाषा पालन आदि गुणों की प्राप्ति मिनन के कारण हम उनका विपरीत आचरण को सप्रयत्न शिक्षा लेते हैं। हमारी सभी इच्छाएँ पूरी नहीं हो पातीं। कारण कुछ का समाज विरोधी अथवा अगिण्ट हान के कारण हम दबाया जाता है। इच्छाओं के घोर दमन से मानसिक अस्वास्थ्य उत्पन्न होता है फिर भी हम अनेक प्रयत्न इच्छाओं को स्थायी रूप से दबाए रखना पड़ता है। कई बार हम विगिण्ट इच्छाओं का स्थानापन्न ढूँढ़ लेते हैं। यह तब जब हमारी इच्छाएँ स्तनी प्रबल होती हैं कि उनका दमन सम्भव नहीं हो पाता। नियंत्रण का पता जहाँ होता हुआ कि हमारा दबी इच्छा ने नया रूप धारण कर लिया। प्रायः तथा उग्र अनुयायी मनाविश्लेषक यह मानते हैं कि हमारे अवांछित या अभाष्य सामाजिक भीड़ व्यवहार की व्याख्या भी इसी सिद्धान्त के आधार पर की जाती है।

हमारे आत्म का विकास एक दूसरी प्रक्रिया में भी होता है जिसे प्रयत्न (pro-jection) कहते हैं। अर्थात् हम अपनी कमजोरियाँ या गतियाँ को दूसरे पर धारण करते हैं। जैसे यदि हम किसी विवाह या कुर्मी से टकरा गए तो अपनी तापरवाही नहीं स्वीकार करते बल्कि विवाह या कुर्मी पर आपत्ति उत्पन्न कर देते हैं। अपने सम्पत्तियों मित्र तथा अर्थी कमजोरियों पर दया प्रकार से क्रिमलना आत्म है। कोई काम विफल जाए उनमें हमारा हाथ नहीं है और है भाँता गतय कम।

युक्तिकरण (rationalization) में हमारा आत्म-सम्मान बचा रहता है। हम अपनी इच्छाओं और कार्यों का एक प्रकार में उचित उत्तरण का तब प्रयत्न करते हैं जब दूसरे उन्हें निन्दा या अनादर से दमते हैं। यदि का- (विद्यार्थी) अपने साथी का बहार मार बट्टा है तो उसे धारण में बचन के लिए बाग्य लेता है। वह यह भी कह सकता है कि वह महदा अध्यापक की निन्दा या उम्मी गत्यादिना महदा प्राप्त करता था।

कुछ स्थितियों में स्थायी रूप में हीनता का भाव (inferiority complex) या अष्टता भाव (superiority complex) पैदा होता है। हीनता भाव का

कारण व्यक्ति की शारीरिक विकृति, अंग अंग अथवा मानसिक अभाव हो सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति सस्कृत लोगों के बीच शिष्ट व्यवहार न कर पाए तो भी उसमें हीन भाव आ जाता है। स्त्रियो में दौर्भाग्य, विधवापन या परित्यक्तता हीनता भाव भर सकते हैं। इसी प्रकार यदि किसी सुन्दर लड़के को लड़कियाँ ताकती नहीं अथवा किसी सुन्दरी की प्रशंसा कई तरफ नहीं करते तो उसमें हीनता भाव आ सकता है। कहने का आशय यह है कि व्यक्ति में हीन भाव भी दूसरों की उसके प्रति मनोवक्तियों से जन्मता है। इसी प्रकार, श्रेष्ठता भाव की उत्पत्ति सामाजिक अनुभव से होती है।

अतिस, व्यक्ति में बड़ा की आशा-पालन की प्रवृत्ति साधारणतया आती ही है किन्तु कई बार व्यक्ति अति नियन्त्रण या सत्ता के विरुद्ध विद्रोह भी कर बैठता है। इसका कारण व्यक्ति के विकासशील 'अह' और माँ-बाप, मालिन या अध्यापक की ओर में बढार नियन्त्रण या सत्ता प्रयाग के बीच संघर्ष है।

इस तरह सामूहिक अनुभव का फल आत्म मनोवक्तियाँ होती हैं। व्यक्ति में श्रेष्ठता अथवा हीनता का भाव, आशातता अथवा अधीनता स्वाथवशता अथवा परोपकारिता उसके उस अनुभव का फल होते हैं जो दूसरों लोगों के साथ होता है। विभिन्न समूहों में व्यक्ति जो भूमिकाएँ भूदा करता है उसका व्यक्तित्व उन्ही की अभिव्यक्ति है। किन्तु यहाँ पर सामूहिक अनुभव और व्यक्तित्व के लक्षणों के सम्बन्ध पर एक चेतनावनी देने की जरूरत है। यह सोचना ठीक नहीं है कि अनुभव सामाजिक व्यवहार व्यक्ति में अनुभव व्यक्तित्व-लक्षण अवश्य पत्ता कर दगा। सामूहिक व्यवहार के प्रतिफल का सस्कृति सशोधित कर लेती है।

सस्कृति और व्यक्तित्व

मनुष्य समाज में रहता है जिनके विभिन्न समूहों में सस्कृति के वाहन (bearers) हात हैं। समूह की मनोवक्तियाँ ही सामूहिक मनोवक्तियाँ हैं। बाह्य सगाण का हमारे लिए क्या अर्थ है सस्कृति ही निश्चित करती है। इसी अर्थ का समावेश हमारे व्यक्तित्व में हो जाता है। व्यक्ति के सामाजिक और सास्कृतिक पन्तू एक दूसरे में पृथक् नहीं हैं, वे तो एक दूसरे के पूरक (supplementary) हैं। व्यक्तित्व में सस्कृति का जितना भी संयोग (absorption) होता है वह समूह में सामाजिक सम्बन्धों के निर्वाह से ही होता है। किन्तु व्यक्तित्व को सस्कृति का चेतना सम्बन्धी पहलू (subjective aspect) मात्र समझना भ्रमोत्पादक है। परम में ऐसा मानकर व्यक्तित्व और सस्कृति के सही सम्बन्ध का समझने में भूल की है।

मानव शिशु जन्म के समय जविक और मनोवैज्ञानिक मात्रा में मुक्त एक बच्ची सामग्री होता है जिसे कभी भी शिक्षा या प्रयोजन के अनुसार माडा जा सकता है। मानव शिशु की अत्यधिक नमनीयता (elasticity) सस्कृति के लिए सस्त्र सौत्र छोड़ लेती है। सस्कृति उसे किसी शिक्षा में मोड सकती है, उसकी उत्पत्ति इसी

पर निर्भर है। शिशु व सामाजिककरण का प्रारम्भ उसके परिवार में प्रारम्भ होता है। उसका व्यवहार का निर्देशन करने के लिए कुछ मासूतिक प्रतिमान होते हैं जिन्हें धारणा (norms) माना जाता है। मनुष्य के व्यवहारों में भारी विभिन्नता का कारण मासूतिक विभिन्नता है। हर मसूति केवल कुछ प्रतिमानों और उपकरणों का चुनकर उन पर बल देती है और उन्हें ही धरना के लिए प्रेरणा और निरुत्साह के द्वारा व्यक्तियों को उकसाया जाता है। उन्हें स्वीकार करने वाले व्यक्तियों का प्रतिष्ठा (prestige) और अनुमोदन (approbation) मिलता है किन्तु मनुष्य इन प्रतिमानों का चुनाव सचेत और विचारपूर्वक होकर नहीं कर पाता है। वह धीरे धीरे सहज रूप से उन्हें धरना जाता है और अपनी दूसरी पीढ़ियों का हस्तान्तरित करता है।

यद्यपि हर समाज के अधिकतर मनुष्य मासूतिक प्रतिमानों या धारणाओं का अनुगमन करते हैं फिर भी कुछ लोग उनका प्रतिबल धारण भी करते हैं। अनुगमन वर्तमानों (conformists) को धरना सामाजिक लाभ प्राप्त होता है। धारणाओं के विपरीत धारण करने वालों (non-conformists) को धरना दण्ड और सख्तों का सामना करना पड़ता है। समाज की प्रथाओं जनरीनियस परम्पराओं धारण महिनाओं तथा बच्चों का उत्पन्न या धरना व्यक्तियों को सामाजिक निरुत्साह एवं दण्ड का पात्र बनाता है। धारणा विपरीत धारण का व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस प्रश्न का उत्तर हम धारण देंगे।

इसमें से इरेक धरना बढ़ाना और कष्ट पठाना चाहता है। हम प्रभावधरना में हाँ दूसरे लोगों (मानते पिता भाई धारणा) की धरनाओं के अनुकूल धरना (response) करने लगते हैं क्योंकि इसमें हमारा धरना बढ़ता है। उच्च का धरना धरना धरना मसूति का ज्ञान होने लगता है। उमर धरना (impact) में उनका व्यक्तित्व को नया रूप मिलता है। किन्तु व्यक्तित्व मासूतिक प्रभाव का धरना निष्क्रिय (passive) होकर प्राप्त नहीं करता है। न एक प्रकार के मासूतिक प्रभाव का सभी मनुष्यों के व्यक्तित्व पर समान प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक व्यक्तित्व का स्वभाव (temperament) बुद्धि और शारीरिक विशेषताओं दूसरे में भिन्न होता है। इनके धरना व्यक्तियों की धरना जन्मजात धरना (genetic characteristics) में भी धरना होता है। इन धरना के कारण एक मनुष्य के धरना में मासूतिक प्रतिमानों का जमा एकिकरण होता है ठीक वगैरह दूसरे मनुष्य के व्यक्तित्व में नहीं हो पाता है।

मसूति के व्यक्तित्व पर विभिन्न प्रभाव पड़ने का दूसरा कारण भी है। मनुष्य के लिए मसूति का धरना विचार करने वाले समूहिक धरना (group

1. Ruth Ben J.: *Patterns of Culture* Boston (1934) p. 237. This book includes an interesting discussion on the relation of cultural variability and personality.

pressures) म भी अममानता होनी है। परिवार का ही लीजिए। जीवन की दैनिक क्रियाओं से लेकर ईश्वर म आस्था तक सभी बातों से सम्बन्धित सांस्कृतिक प्रतिमानों का अयनिएण हर परिवार म निराले ढग स होना है। तीसरा कारण दक्षिण। विभिन्न उपसंस्कृतियों के अतगत प्रतिमानों मे बड़ा अंतर होता है और एक विशिष्ट उपसंस्कृति का यत्तित्व पर प्रभाव दूसरी उपसंस्कृतियों के प्रभाव की अपेक्षा विचित्र होता है।

एक प्रकार जविक और सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों के मेल से हम म स प्रत्येक का एक निराला व्यक्तित्व विकसित होता है। विही दो यत्तियों के व्यक्तित्व एक रा नही हो सकते। संस्कृति और व्यक्तित्व का व्यापक और जटिल सम्बन्ध के समझे बगर संसार के व्यक्तियों की अनन्त विविधता का अनुमान करना असम्भव है।

संस्कृति और आधारभूत व्यक्तित्व प्रकार—प्रत्येक समाज के सदस्यों के व्यक्तित्व म कई एसी समरूपताएँ (समान तत्व) होनी हैं जिनसे उह दूसरे समाज के सदस्यों से पृथक् पहचाना जा सकता है। यत्तित्व के इन तत्वों को सामुदायिक निर्धारक कहा गया है। इन तत्वों के महत्व और उदितता की दृष्टि से शिक्षा, शिष्टाचार (etiquette) आदि से लेकर समाज और विश्व के प्रति मनोवृत्तियों का समावेश होता है। व्यक्तित्व के व्यक्तित्व म जिन तत्वों का समावेश होता है वे उनके खालन पालन शिक्षा दीक्षा और तत्पतर मन्त्रिय जीवन की अग्रणीत परिस्थि निया पर निर्भर रहते हैं। एक विशिष्ट समाज के साधारण सदस्यों के व्यक्तित्व म इन तत्वों का एक निराले संगठन (configuration) को राल्फ लिटन (Linton) ने उस समाज का आधारभूत व्यक्तित्व प्रकार (basic personality type) कहा है।¹ यह प्रकार एक कठोर आदेश नहीं है बरन् आस्था और व्यवहार का वह साधारण प्रतिमान है जिससे प्रति एक विशिष्ट समाज का सभी सदस्यों म आदृष्ट हान की प्रवृत्ति होती है। यह बात भारत और अमरीका अथवा किसी अन्य देश का साधारण व्यक्तियों की तुलना करने से मरतता में जात हो सकता है। एक समाज का अतगत जानिया-वर्गों पना-व्यवसायों, और भूमिवासा आदि की भिन्नता का वाकजूत भी उनके सभी सदस्यों पर प्रारम्भिक जीवन म कुछ विशेष प्रकार के (typical) निर्माणकारी प्रभाव (formative influences) पड़ते हैं जिनका अनुभव और दृष्टण समस्त सदस्यों का व्यक्तित्व का कर् (core) म समानता पैदा कर देता है। संस्कृति जिन मूल्यों और आदर्शों को महत्त्वपूर्ण मानता है उन्हें ही बच्चा का ध्यान करती है। एक समाज के बच्चा का व्यक्तित्व जहाँ बड़ा का आंतर और आनायाजन करना अनियायन सिखाया जाना है दूसरे समाज का बच्चा का व्यक्तित्व से बहुत भिन्न होगा जहाँ बच्चों को स्वच्छदानुसार वाप करने और

1. Ralph Linton (1945) pp 129 ff

स्वतंत्र विकास का प्रथम मिलता है। माद तीर पर एक देग या मनुष्यि क लोका व व्यक्तिय की बुद्ध भूतभूत समरूपनाते लगी होना है जिनक आधार पर हम मदम्या व आधारभूत व्यक्तिय प्रकार' का अनुमान कर सकत है। किन्तु इन आधारभूत व्यक्तिय प्रकार म व्यक्तिया की धनन विविजना पर कोई प्रभाव नही पडता।

सामाजिक मूया व प्रति मनुष्य का जा मनावृत्ति हाती है वह सामाजिक जावन म भाग लन स ही विवमिन होना है। प्रचर सामाजिक मूय्य का व्यक्तियन भाष्य ही व्यक्तिय म समा पाता है किन्तु कि ना मनुष्य आधारण सामाजिक मूय्या की उपगा नही कर पाता है क्याकि उनका धार्य करना यह बचरन म साम्या रहा है।

व्यक्तिय म सामाजिक मूय्य तथा समाविष्ट ना पात है जब वन उनक प्रति जागरण है अर्थात् वह उनक पथ या रिपण म है और जब उनक सवग और जाग रुचना दापकान तक स्थायी रहते है। व्यक्तिय म जिन सामाजिक मूय्या का समासलन हाता है व तीन स्तर से सम्बद्ध हाते है अमून भावनाते (abstract sentiments) नैतिक धार्य (moral norms) और साम रिचार (self conception)। यद्यपि धार्य विचार पर अमून भावनाधा का प्रपणा नैतिक धार्य अधिक प्रपणत स्वाव हालन है फिर भा नैतिक धार्य और अमून भावनाए तभी प्रति (motivate) होना है जब व साम रिचार क आधार स्तर (substratum) म परिणत हो पात है। साम रिचार प्रग्णा (motivation) का केंद्र किन्तु या साव है।

व्यक्तिय धार्य विचार क आधार पर वही एक मयात्मक एवता है। मूय्य और लक्षण वना उपर धात है और कभी पीछ पात जाते है क्याकि विविध निय विधा म साम रिचार को कम वा अधिक कर्न की जरूरत पसी है। अतएव व्यक्तिय जा एक मयात्मक एवता है वा उदाला और मूय्या का भाग नही बन जा सकता है। मयात्मक एवता ज्ञान क कारण मयमे एव मत्रतात्मक सम्भावित धरि (creative potential) है जिसको व्याख्या अमी तक काई मनावृत्ति निर निडान ली कर पाया है।¹

धरन व्यक्तिय का बाह्य और धार्यि सिधरता बनाए रखन क विन मनुष्य निरंतर प्रयत्नकर रहता है। किन्तु मय पूरा सिधरता कभा नही धा पाता

1 व्यक्तिय का व्याख्या क विन मनावृत्तिन म ना विचारधारा प्ररहित है। व्यक्तिय का धार्य की धरिधरि मानन वाली मया धार्य मनावृत्ति (drive psychology) कहत है और व्यक्तिय का सिधरता का परिणाम कहन वाली मया का उपकर अमृत्तिया मनावृत्तिन (stimulus response psychology) कहत है।

है। जिस व्यक्तित्व में अप्रत्याशित अधिक स्थिरता होती है वह पराजयगत अनुभवों (frustrating experiences) का प्रतिरोध कर सकता है। इस प्रकार के व्यक्तित्व से आत्म विचार सन्तुष्ट रहता है। उसके लक्ष्य एवं भूमिकाओं का प्रत्यक्ष लक्ष्य एवं भूमिकाओं से विरोध नहीं आता है। परिवर्तन में भी स्थिर व्यक्तित्व का आत्म विचार लक्ष्य और भूमिकाएँ सरल और निरन्तर परिवर्तित होता है। किसी भी समय पर इसकी अपेक्षाओं और उपलब्धियों में बहुत अधिक अंतर नहीं प्रकट होता है।

व्यक्तित्व की स्थिरता अथवा सघन संस्कृति पर निर्भर हाते है। यदि संस्कृति में अधिक विराय और अस्थिरता है तो व्यक्तित्व की स्थिरता भी कम हो जायगी। व्यक्तित्व में जो भी अपसमायोजन दिखेगा वह संस्कृति का प्रतिबिम्ब होगा। अप्रत्याशित सगठित संस्कृति में व्यक्तित्व का विगठन बहुत कम होता है।

व्यक्तित्व में परिवर्तनों का कारण सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन है परन्तु संस्कृति और समाज में परिवर्तन व्यक्तित्व के परिवर्तन से होते हैं। व्यक्ति सदैव सक्रिय रहता है। वह समाज और संस्कृति के परिष्कार और संवर्द्धन के लिए प्रयत्नशील रहता है। इस स्पष्ट है कि व्यक्ति और संस्कृति में अंतर निर्भरता है।

असाधारण और विगठित व्यक्तित्व

यदि किसी व्यक्ति का व्यवहार का लगातार समाज के स्वीकृत मानदण्डों में समन्वय रहता है तो उसके व्यक्तित्व को साधारण (normal) कहा जाता है। इनके विपरीत जब किसी व्यक्ति का व्यवहार इन मानदण्डों से तीव्र और निरन्तर रूप में विचलित (deviate) रहना है तो उसके व्यक्तित्व को असाधारण (abnormal) कहा जाता है। प्रत्येक समाज में साधारण व्यक्तित्व के कुछ विशिष्ट लक्षण होते हैं और यह आवश्यक नहीं है कि इन्हीं सब लक्षणों को दूसरे समाज में साधारण व्यक्तित्व का धातक माना जाए। एक समाज में जिन व्यवहारों का साधारण कहा जाता है उन्हीं को दूसरे में असाधारण माना जा सकता है। इसी तरह, साधारण व्यवहार की परिभाषा समाज में भिन्न नहीं है। आज जिस व्यवहार का सामान्य कहा जाए उस ही कुछ वर्षों के बाद असाधारण माना जा सकता है। मानव समुदाय अपने सदस्यों के व्यवहार के लिए मानदण्डों का निर्दिष्ट करता है जो कुछ स्वीकृत मूल्यों के अनुसार बनते हैं। साधारण व्यक्तित्व इन मूल्यों का प्रतिबिम्ब होता है। अतएव साधारण अथवा असाधारण व्यक्तित्व की परिभाषा संस्कृति के प्रसंग में ही की जा सकती है। प्रस्थिति और भूमिका की धारणाएँ इस दृष्टिकोण का समझने में सार्वभौमिक सहायक (suggestive interpretation) प्रदान कर सकती हैं। एक साधारण व्यक्तित्व वह है जो अपनी संस्कृति से स्वीकृत या अनुमानित भूमिकाओं का सफलता में अभिनीत करता है और जो अपनी प्रस्थिति

स अलग रहना है। जिनका अर्थ यह है कि वह प्रकृत अथवा उपलब्ध स्थितियों के उपयुक्त व्यवहार करता करता है।

भारत में हम एक व्यक्ति का समाधारण व्यक्तित्व का बहोवर्ण जो यहाँ की संस्कृति में स्वीकृत मूल्यों के प्रतिबुद्ध लगातार आचरण करता है। यदि कोई तरल विद्यार्थी कालेज में भी निर्दिष्ट रह कर स बाहर निकल अपने सहपाठियों तक अलग आगे स मिलन या बातचाल करने में लजाए योजन की जिम्मेदारियाँ स भोगता उसका व्यक्तित्व का समाधारण बहा जाएगा। अथवा कोई नवयुवक सभी प्रयोगों की अवस्था कर वान-बात में दूसरों में लड़ भगद पड़े पढ़ाई का काम छाडकर घर पर बाल्यनिक लोक की हवा साँप और यदि विवाहित हो तो पति-वतव्य से मुँह माट या घर-बार छोड कर मसाली बनन की धुन में तीयाटन का निकल पड तो उसका व्यक्तित्व भी समाधारण बहा जाएगा। बहन का सामर्थ्य यह है कि जीवन का समाधारण कायबनाप में जा विचलित होकर मनकी और विविष्ट जैम व्यवहार का उन समाधारण बहना चाहिए। यह स्थिति वह है जिसमें व्यक्ति सामाजिक जीवन में लगानार चतनाभुक्त और धनिष्ठ सम्पक नहीं रख पाता। काम्भव में वह व्यक्ति का समाधारण अथवा समाधारण हान की मार उन आता स की जा सकती है जिनमें एक व्यक्ति अपने समूह के जीवन में सम्पक और ममायोजन करने में सफल है। संस्कृति द्वारा स्वीकृत मूल्यों अथवा मानकका के विरुद्ध निरंतर आचरण ही समाधारणम (abnormality) है।

व्यक्तित्व का समाधारण अथवा समाधारण बनान में शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बहुत महत्वपूर्ण है। मानसिक या शारीरिक विकृति अथवा निर्धारण (disability) हान पर व्यक्ति सामूहिक जीवन में धनिष्ठ और प्रभावपूर्ण भाग नहीं ले सकता। वह धानाचना निष्ठा ध्यय अथवा अपना होना के अर्थ में समूह से एकता लना (isolation) पात्र करता है। इसी से उसका व्यक्तित्व में अमनुनन अथवा अंगमापात्रन आ जाता है। परन्तु व्यक्तित्व का अमनुनन (imbalance) के लिए अन्व व्यक्ति ही जिम्मेदार नहीं होता है। वह हम स्थिति में बचना चाहता है छोड़कर फिर अन्वक का गिना करता है किन्तु समूह या संस्कृति उन अन्व स्थितियाँ में अन्वक है जिनमें व्यक्तित्व का विकार घटन है।

समाधारण व्यक्तित्व तथा विकटित व्यक्तित्व जाना एक ही बात नहीं है। अन्वकी व माए माराबी तथा अन्व विविध और समाज विगणों व्यवहार करने वाले समाधारण बह जान है। उनका व्यक्तित्व विकटित नहीं हुआ है बल्कि वे अपने समूह में अपनी माधारण भूमिका का समन्वय और करने में अन्व भी सफल हैं यदि उन्हें उपयुक्त परिस्थिति मिले। अपने समाधारण व्यवहार के अन्वका अन्व अन्व अन्व अन्व पर वे समाधारण मनुष्यना व्यवहार करते हैं। अन्वका अन्व पर वे समाधारण अन्व अन्व के प्रेम और अन्व करता है परिहार के अन्व-आपात्र के लिए अन्व

आवश्यक वस्तु करता है, और साधारणतया समाजानुमोदित आचरण करता है। वह केवल कुछ मामला में अपन समूह के प्रतिबुद्ध व्यवहार करता है। जिन्नु जिस व्यक्ति का व्यक्तित्व विगठित हो जाता है वह साधारण अवस्था में भी न तो समूह अथवा ससृष्टि की अपेक्षाओं का समझ ही सकता है और न उनसे अनुकूल उमम आचरण करने की क्षमता हाती है। उसका मानसिक विकास कम अथवा अबाधित णिगा म हाता है। उसमें अपनी प्रस्थिति से सम्बन्धित साधारण भूमिका को धन करने की मानसिक या शारारिक क्षमता ही नहीं रहती। मद्बुद्धिता पागलपन मानसिक दुरवस्था उमाद आदि व्यक्तित्व के विगठित रूप हैं। व्यक्तित्व विगठन के कारणों में जविक कारण तो महत्वपूर्ण हैं ही, सामाजिक सासृष्टिक कारणों की उपक्षा नहीं की जा सकती है।¹

सामाजीकरण के सिद्धांत²

(१) फ्रायड के विचार से व्यक्तित्व तीन केन्द्रीय तत्वा से मिलकर बना है (१) इद् (id) (२) अहम् (ego) और (३) परा अहम् (super ego) अनेक मौनिक अचतनताएँ (unconsciousness) की घटनाएँ इद् को प्रकट करती हैं और परा अहम् पूर्वगामी नियंत्रक (censor) के बहूत में कार्यो में प्रकट होता है। इसमें अतिरिक्त फ्रायड के मत में मनुष्य का सवेगात्मक जीवन और मरण की सहाप्रवृत्तियाँ से भरपूर है। परिवार एक ऐसी संस्था है जो मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिये नितांत आवश्यक है। कामवासना जनित आवेग मनुष्य के अचपन में भी उसका व्यवहार के निर्धारण में महत्वपूर्ण हात हैं। बच्चा ज्यो-ज्यो कामुकता से स्वचालित मौनिक और गुण-कामुकता (anal eroticism) का अवस्था में भी घोर बढ़ता जाता है और अन्त में विजातीय-कामुकता की अवस्था में आ जाता है यम-वस प्रत्येक अवस्था में समकाल उभ सामाजिक उपलक्षियों प्राप्त होती जाती हैं। इस विकासक्रम में फ्रायड कामुकता की बाट वाली अवस्था में अभिव्यक्तियों बहूत महत्वपूर्ण मानता है। विकास की अवस्था में बच्चे की प्रवृत्ति अपने विपरीतली जाव/जननी पर अपने प्रेम आवेग को टपरा दता है। इसमें लक्ष्य और लडका में दो विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व प्रकार विकसित हो जाते हैं। फिर बच्चे का पूरा सामाजिक विकास

1 For a detailed discussion on personality formation development and disorganisation readers may refer to the following books

- 1 R S Woodworth *Psychology* Hindi Translation by Umapati Rai Chandel Upper India Publishing House Lucknow (1957) Chap IV
 - 2 Jones *Basic Sociological Principles* Chap IX
 - 3 Marris & Eldredge *Culture and Society* Chaps IX & X
 - 4 V V Akolker *Social Psychology* Chap XI
 - 5 O burn & Nimkoff *A Handbook of Social Psychology* Part III
 - 6 Green *Sociology* Chaps. VIII & IX
 - 7 K. Young *A Handbook of Social Psychology* Chap III
- 2 Gillin & Gillin *Cultural Sociology*

तब हो पाता है जब वह अपने माना/विता की धार अभिमुख मान हिता की किसी अन्य व्यक्ति की धार स्थानान्तरित कर पाता है। इस अन्तिम स्थानान्तरण में अमपन्नता होने में व्यक्ति का व्यक्ति-व ठीक ढंग से विकसित नहीं हो पाता।

फायट का यह सिद्धान्त अथ अतववादी आदर्शवादिया—शोपनहॉर नीत्या और परेटो—के सिद्धान्त से भिन्न है। शोपनहॉर और नीत्या इच्छाशक्ति की मनुष्य के विकास का केंद्र मानते थे। परेटो के विचार में मनुष्य के व्यवहार का विकास अनेक अवशिष्टा (residues of combinations) और समुच्चया की स्थिरता (persistence of aggregates) के आधार पर होता है। फायट न योन प्रवृत्ति का विश्लेषण महत्वपूर्ण माना है। स्पष्ट है कि फायट न यह व्याख्या समाज के एक सिद्धांत के विकास करने की जिज्ञासा में दो विन्तु यह सिद्धान्त अधूरा रहा और व्याख्या भी अपर्याप्त। व्यक्ति के सामाजीकरण का व्याख्या फायट के उपरोक्त विचारों के आधार पर नहीं की जा सकती है।

(२) चार्ल्स डूल के विचार से समाज एक सामाजिक पन्ना है यह व्यक्तिगत विचारों में एक सम्बन्ध मात्र है। डूल की आत्म (self) की धारणा जेम्स की सामाजिक आत्म (social self) की धारणा से बहुत भिन्न होती है। हमारे अस्तित्व में दूसरे व्यक्तियों के अस्तित्वों की धारणा केवल विचारों का एक व्यवस्था अथवा समूह से है जिनका प्रयोग हम उनके विषय प्रतीय रूप में करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का स्वयं का आत्म दूसरे व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व करता है। मैं 'मेरा' मुझको और स्वयं में आत्म शब्दों के प्रयोग से जिन विचारों का सम्बन्ध है वास्तव में सामाजिक आत्म का वही प्रतिनिधि है। मनुष्य के धारण में विश्लेषण की वस्तुओं का समावेश होता है जिन्हें वह अपने में सम्बन्धित समझता है अथवा अपना मानता है। एक सम्बन्ध से विकसित आत्म भावना से ही आत्म का सूर्याधार होता है। कल्पना और आत्म, जो महत्त्व आत्म भावना पर आश्रित है सामाजिक आत्म का निर्माण करती है। डूल ने सामाजिक आत्म की धारणा के स्थान पर दर्पण आत्म (looking glass self) का प्रसिद्ध धारणा का प्रयोग किया था। इस धारणा का अर्थ है कि आत्म के बारे में दूसरे लोगों का जो भाव होता है उनके प्रति प्रतिबिम्ब, पर आत्म में व्यक्ति में एक सामाजिक आत्म की धारणा का विकास होता है। इस प्रकार के आत्म विचार के तीन प्रधान तत्त्व होते हैं—दूसरे व्यक्ति हमारे रूप के प्रति जो भावना करेगा उस रूप के प्रति धारण निम्न ही कल्पना विधा प्रकार की आत्म भावना जो वह अथवा स्थिति। सामाजिक आत्म का धारणा का विकास व्यक्ति में धार धार होता जाता है और प्राथमिक समूह जैसे परिवार पढ़ाई के समूह और अन्य अनौपचारिक आदान-आदान के समूहों में व्यक्ति का सामाजिक एकता के विचारों द्वारा ही और आधारभूत अनुभव होता है। इस अनुभव का व्यक्ति के उन धारणों का स्थापन हो जाता है जो स्वयं समूह का अर्थ एकता का धारणा

स निश्चित होते हैं। 'यक्ति यही समूह के हितों के अधीन अपने हिता का बर दना मीक्षता है और हम प्रकार उसकी वैयक्तिक ग्रहणयता और लालच दब जाते हैं। उसकी नतिकता क आदश की 'यास्या स्वामिभक्ति' कानून की आज्ञाकारिता और स्वान्त्य के सिद्धांतों से की जा सकती है। ऐसे ही आदर्शों से व्यक्ति में सामूहिक एवता क अनुरूप आचरण करने की आदत पड़ती जाती है। सामाजिक संगठन व्यक्तियों के विचारों और एकता की एक संरचना है। यहाँ यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि कूले विचारों और आदर्शों को ही समाज का ठोस तथ्य मानता है। अतः उसने सामाजिककरण की जो 'यास्या' की है वह सामाजिक व्यवहारवाद के सिद्धान्त का फल है।

(३) जाज हबट मीड के विचार से मनुष्य के सामाजिक अनुभव की जो विमशक विशेषता है वह भाषा के प्रयोग का परिणाम है। मनुष्य के सामाजिक अनुभव में विमशक गुण (reflective property) के होने पर ही उसके आत्म का विकास निम्न है। आत्म को उत्पन्न करने वाली अतर्निहित प्रक्रिया मनुष्य की उस क्षमता में है जिससे वह विभिन्न भूमिकाएँ ग्रहण करने की (role taking) सोच करता है। हम दूसरे के अनुभव की कल्पना करके ही किसी निश्चित प्रतीक को सोच पाते हैं। मनुष्य अपने दैनिक जीवन 'यापार' में जितने लोगों से मिलता है उनमें ही आत्मों की कल्पना करके वह अपने आत्म का विकास करता है। वास्तव में दूसरों से विचारों और 'यवहार' के आदान प्रदान में उस विभिन्न भूमिकाएँ ग्रहण करने का अनुभव होता रहता है जिससे उसके व्यक्तित्व में अनुभव की अनन्त विविधताएँ समा जाती हैं। व्यक्ति जिस समुदाय में रहता है उसमें अनुरूप एक एकीकृत (अथवा समुक्त) आत्म का विकास साधारणतया कर लेता है किन्तु जब उस समाज की भिन्न आवश्यकताओं का अनुसार व्यवहार करना पड़ता है तो उसका आत्म टूट सकता है और परिणामतः व्यक्तित्व भी।

मनुष्य के सामाजिक अनुभव की एक प्रकार की एकता आत्म की उत्पत्ति है और भूमिकाएँ निम्न की क्रिया उसकी साधारणतया प्रक्रिया है। प्रारम्भ में बच्चा मत्त मत्त में माता पिता भाई राजा पुलिस चार आदि की विभिन्न भूमिकाएँ ग्रहण करने का जो प्रयास करता है उससे वह सामाजिक पर्यावरण की आवश्यकताओं का अनुरूप अपने व्यक्तित्व का विकास करता जाता है। इस प्रक्रिया में दूसरों का रुकावा वह अपने व्यक्तित्व में समाविष्ट करता रहता है। व्यक्ति का अपने आत्म की एकता जिस संगठित समूह अथवा समुदाय में प्राप्त होती है उस मीड सामाजिकीकृत अर्थ (the generalized other) की सजा होता है। सामाजिकीकृत अर्थ की मनोवृत्ति (attitude) सम्पूर्ण समुदाय की मनोवृत्ति है। इसी सामाजिकीकृत अर्थ का माध्यम में व्यक्तित्व गन्तव्य का आचरण पर समुदाय नियंत्रण रहता है। हम प्रकार मीड के विचार में आत्म का विकास की साधकियाँ हैं (१) स्वयं का आत्म का प्रति

दूसरे व्यक्तियों के विगिष्ट रोगों का संगठन और (२) स्वयं के आत्म के प्रति सामाजिक श्रेय के सामाजिक रोगों का संगठन । आत्म का पूर्ण विकास व्यक्तिगत रोगों के संगठन और उनके सामाजिककरण में होता है तथा यह सब जाना है जब सामूहिक व्यवहार के सामाजिक व्यवस्थित सामाजिक प्रतिमान, जिसे हम दूसरे लोग सप्रतिष्ठित हैं पर व्यक्तिगत विमर्श करने में मददता मिल जाती है । संप्रेषण में संगठित आत्म का विकास सामाजिक सामाजिक रोगों के आधार पर ही संभव है ।

सामाजिककरण की प्रक्रिया में सुधार^१

विश्वतः दृष्टि के विचार में समाजिककरण का समझना के नियम उभर निम्ना कितने तीन पक्षों पर प्रकाश पड़ना आवश्यक है —

- (१) व्यक्ति के दूसरे निर्धारका तथा सामाजिककरण का सम्बन्ध,
- (२) आत्म का विकास और
- (३) सामाजिककरण के अभिवर्णन

सामाजिककरण प्रक्रिया के उपरान्त नीचे पक्षों की व्याख्या विद्यत पृष्ठा में की जा चुकी है । हाँ, आधुनिक औद्योगिक समाज में सामाजिककरण की प्रक्रिया बड़ी जटिल हो गई है । भगवत् और युवावस्था की विभिन्न अवस्थाओं में सम्बन्धित सामाजिककरण का बड़े आधारभूत सम्बन्ध आधुनिक समाज में समाधान चाहती है । इतना विकास और प्रगति जान के बाद भी यह कहना कठिन है कि समाज का कार्य भी समाज अपने समस्याओं के समाधानों का पूर्ण उपयोग कर पा रहा है । सामाजिककरण की वर्तमान प्रक्रिया में बहुत समाधान की गुंजायश है । एका करने पर भविष्य में अनुप्य के स्वभाव और समाज की परिवर्तित करने की क्षमता सम्भावनाएँ उपस्थित हो जाएंगी ।

सामाजिक अन्त क्रिया

समाज मनुष्यों के सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। यह व्यवस्था सदैव स्थिर नहीं रहती है। यह तो गत्यात्मक है। इसमें निरन्तर परिवर्तन होने रहते हैं। समाज की इस गत्यात्मक प्रकृति (dynamic nature) को समझने के लिए सामाजिक सम्बन्धों के निर्माण की प्रक्रियाओं तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों की प्रकृति कारणों तथा परिणामों का अध्ययन करना अत्यावश्यक है। अतएव इस खण्ड में सामाजिक अन्त क्रिया के रूपा, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक विकास, सम्यक्ता और सामाजिक प्रगति का विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में सामाजिक अन्त क्रिया के रूपों—सामाजिक प्रक्रियाओं—के विश्लेषण का समावेश है। समाजशास्त्रियों का रूपकीय सम्प्रदाय (formal school) समाज के वृत्तान्तिक अध्ययन के लिए सामाजिक प्रक्रियाओं मात्र का विवेचन सब बुद्ध समझता था। परन्तु हम आरम्भ में ही इस दृष्टिकोण का अपर्याप्त मान चुके हैं।

सामाजिक अन्त क्रियाओं का जन्म

मनुष्य समाज में रहता है। उसे दूसरे मनुष्यों में सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। शरीरिक निकटता का सम्पर्क नहीं कहते हैं। दो या अधिक सामाजिक मनुष्यों में सम्पर्क स्थापित होना आवश्यक है कि उनमें मानसिक सम्पर्क स्थापित हुआ है। तब के एक दूसरे का उपस्थिति से प्रभावित होना है। उसका व्यवहार में अर्थपूर्ण प्रतिक्रिया भी स्वाभाविक हो जाता है। अथवा उनमें परस्पर अर्थपूर्ण प्रतिक्रिया (meaningful response) होती है जिसका माध्यम उनके बीच में होने वाला संचार (communication) है। सामाजिक व्यक्तियों के बीच यही अर्थपूर्ण सम्पर्क (meaningful contact) उनके सामाजिक सम्बन्धों का जन्म होता है। प्रत्येक व्यक्ति के जितने भी सामाजिक सम्बन्ध होते हैं उन सबका संचार

सामाजिक अन्त क्रिया (social interaction) है। दूसरे शब्दों में सामाजिक व्यक्तियों में परस्पर सम्पर्क और संचार से जो अन्त क्रिया होती है उसे सामाजिक अन्त क्रिया कहा जाता है। सामाजिक या मानवीय अन्त क्रिया वस्तुतः संचारात्मक अन्त क्रिया (communicative interaction) होती है।

जब कभी एक ही समूह के सदस्यों अथवा दो या अधिक समूहों के सदस्यों में कोई सम्पर्क होता है तब किसी न किसी ढंग का अन्त क्रिया आवश्यक हो जाती है। एक दूसरे का नमस्कार कर कुशल पृच्छना अथवा काद बात करना अथवा किसी बात में सहयोग प्रस्तुत करना या सहाय करना आदि अर्थात् अन्त क्रिया में सम्पर्क स्थापित होता है। सभी मापक से उन अन्त क्रिया के संचार बन जाते हैं जिन्हें मनुष्य के माध्यम से चलाते रहते हैं। सामाजिक सम्बन्धों के सम्पूर्ण विस्तार को सामाजिक अन्त क्रिया कहते हैं। मनुष्यों के बीच अन्त क्रिया और अनुक्रिया से उन पर जो पारस्परिक प्रभाव पड़ते हैं उन्हें सामाजिक अन्त क्रिया कहा जाता है।¹ परिभाषाएँ

श्री न. विन्हा है कि समस्याओं के समाधान या लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न में व्यक्ति और समूह एक दूसरे पर जो पारस्परिक प्रभाव डालते हैं उन्हें सामाजिक अन्त क्रिया कहा जाता है।

विन्हा और विन्हा के अनुसार सामाजिक अन्त क्रिया से तात्पर्य उन सभी प्रकार के अन्त क्रियात्मक सामाजिक सम्बन्धों से है जो व्यक्ति और व्यक्ति के बीच में हो या समूह और समूह अथवा व्यक्ति और समूह के बीच में।² यह कहते हैं कि किता भी प्रकार सामाजिक क्रिया के अन्त क्रिया एक आवश्यक पूर्व शर्त है। अर्थात् सामाजिक अन्त क्रिया सामाजिक क्रिया का सबसे अधिक माध्यम प्रकार है। एक और वर्णन में सामाजिक अन्त क्रिया की एका ही परिभाषा दी है। एंडरसन और मर्गिन द्वारा दी गई परिभाषा भी अत्यन्त समान है। वे विन्हा के ही सामाजिक अन्त क्रिया के माध्यम प्रक्रिया के अन्त क्रिया से अन्त क्रिया या अन्त क्रियात्मक सम्पर्क स्थापित होता है जिसके परिणामस्वरूप उत्तर व्यवहार में कोई कितना ही परिवर्तन आ जाता है।³

1 By social interaction is meant the mutual influence that individuals and groups have upon one another in their attempts to solve problems and in their striving toward goals. A. W. Green, *Social Psychology* (1957), p. 47

2 By social interaction we refer to social relations of all sorts in function—dynamic social relations of all kinds—whether such relations exist between individual and individual, between group and group, or between group and individual as the case may be. *Cultural Sociology* (1949), p. 439

3 Social interaction is thus the general process whereby two or more persons are in meaningful contact as a result of which their behavior is modified however slightly. *Cultural and Society* (1945), p. 48

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक अन्त क्रिया से तात्पर्य व्यक्तियों या समूहों के वायशील सामाजिक सम्बन्धों से है। मानव अन्त क्रिया प्रारम्भ ही अन्त क्रिया के व्यवहार में कुछ न कुछ सशोषण हो जाता है। समाज में व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध कुछ अपेक्षताओं के आधार पर होते हैं और इन सम्पर्कों को नियमा तथा प्रतिमानों के सन्देशों में भी रचना पड़ता है। मनुष्य इन नियमों और प्रतिमानों को समूह के दूसरे लोगों से सीखता है और तदनुसार अपने व्यवहार को बनाने का यत्न करता है। सामाजिक अन्त क्रिया में सामाजिक अपेक्षाएँ एक महत्वपूर्ण तत्व हैं।

समाज और सामाजिक अन्त क्रिया

समाज की जड़ें सामाजिक अन्त क्रिया में गड़ी होती हैं। जब तक मनुष्य समाज के अर्थ मनुष्यों से भौतिक अथवा प्रतीकात्मक सामाजिक सम्बन्ध बनाए रखता है। तब तक वह समाज का सदस्य बना रहता है। ज्योंही इन सामाजिक सम्बन्धों में कोई बिगाड़ आया अथवा हस्तक्षेप हुआ त्योंही मनुष्य के सामाजिक सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं। उसका समूह से सम्पर्क टूट जाता है। मानसिक व्याधियों से पीड़ित लोगों का विवेक हारकर समाज के क्रिया-कलापों में पर्याप्त सम्मिलन से वंचित रहना पड़ता है। वे उससे आशिक रूप से या पूर्णतः पृथक् हो जाते हैं। इससे स्पष्ट हो गया है कि समाज का अस्तित्व तभी सम्भव है जब बहुत बड़ी संख्या में लोगों में अन्त क्रिया होती रहती है। समाज का जन्म सामाजिक अन्त क्रिया से होता है क्योंकि मनुष्यों के बिना अन्त क्रिया के सामाजिक सम्बन्ध नहीं बन सकते और समाज तो सामाजिक सम्बन्धों की ही एक व्यवस्था है। पाक और बर्गस ने इसीलिए कहा है कि समाज की सीमाओं का निश्चय सामाजिक अन्त क्रिया की सीमाओं से होता है।¹ मनुष्यों में अगणित सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं जो सभी समाजों द्वारा परिभाषित अथवा स्वीकृत होते हैं। इन समस्त सम्बन्धों की सूची बनाकर उन्हें व्यक्तिगत रूप से समझना असम्भव है। उनका वर्गीकरण करना भी काम असम्भव नहीं। इसलिए उन्हें समझने के लिए सामाजिक अन्त क्रिया के रूपों को— जिन्हें सामाजिक प्रतिक्रियाएँ कहा जाता है—अनेक प्रकार समझना आवश्यक है। अतः समाज की गत्यात्मकता का ठीक पान प्राप्त करने के लिए सामाजिक अन्त क्रिया का समझना अनिवार्य है।

सामाजिक अन्त क्रिया की मौलिक दशाएँ

सामाजिक अन्त क्रिया की आधारभूत दशाएँ ये हैं—

(१) सामाजिक सम्पर्क (२) संचार। हम पहले यह ध्यान रखें कि जब

¹ Park and Burgess, *Introduction to the Science of Sociology* (University of Chicago Press (Chicago) 1924 p. 241)

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया है कि सामाजिक अत क्रिया में सामाजिक सम्पर्क मयुक्त है और सम्पर्क के लिए किसी पार्थिव अथवा इन्द्रिय सम्बन्धी माध्यम का होना आवश्यक है। सामाजिक सम्पर्क में किसी प्रकार की एद्रिक अत क्रिया संयुक्त है।

(२) संचार—मनुष्यों में सम्पर्क हान पर पशुओं की भाँति स्वतः चालित प्रतिक्रिया नहीं होती। व्यक्तियाँ और समूहों में जो भी अत क्रिया होती है वह अथ पूर्ण होती है। उनके बीच के प्रत्येक सम्पर्क का कुछ अर्थ होता है। यह अर्थ निरन्तर सम्पर्क में आने वाले वर्तमान करते हैं और तदनुसार ही एक दूसरे के प्रति व्यवहार करते हैं। मनुष्य हर स्थिति का अर्थ निरूपण उद्देश्य और ध्येयों से सम्पन्न करने करता है। अर्थ निरूपण अचेतन तथा स्वतः चालित अथवा चेतन और विचारपूर्वक हो सकता है। सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति इस प्रकार का अर्थ निरूपण करके ही सामाजिक अत क्रिया को प्रारम्भ होने देते हैं। अतएव अर्थों का संचार और उनका निवेचन सामाजिक अत क्रिया का एक महत्वपूर्ण पहलू है।¹ एक व्यक्ति अथवा समूह की मनोवृत्तियाँ और अभिप्राय संचार से ही दूसरे व्यक्ति अथवा समूह को पता हो पाते हैं और उनकी अनुक्रिया कम से कम अंशतः संचार से ही निर्धारित होती है।

समाज में संचार का केन्द्रीय स्थान है। समाज का अस्तित्व के लिए संचार बंधन आवश्यक ही नहीं है संचार में ही तो समाज का अस्तित्व हुआ है। सामाजिक अत क्रिया का विधा (प्रक्रिया) से व्यक्तित्व का निर्माण होना है और सामाजिक अत क्रिया पर्याप्त और निरन्तर संचार पर आश्रित है। व्यक्तित्व को परिपक्व या प्रौढ़ बनाने में संचार का बहुत महत्वपूर्ण हाथ है।

सामाजिक अत क्रिया एक प्रतीकाल्मक प्रक्रिया है। कदापि व्यक्तियों के बीच संचार शून्य शब्द समूहों पदार्थों और सत्त्वों से होता है। ये सभी प्रतीक हैं और समाज ने उन्हें विशेष अर्थ प्रदान किए हैं। इसीलिए समूह या समाज के सन्मुख उक्त विशेष अर्थ समझ लेते हैं। अर्थ कतई न समझने पर कोई संचार नहीं होना और पूर्ण अर्थ समझ लेने पर संचार होता है अर्थात् व्यक्तियों और समूहों में जब अर्थ 'आजा रहे हैं' तो उन्हें अपूर्ण या पूर्ण रूप में समझा जा सकता है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं कि सब एक प्रतीक का समान अर्थ ही समझ जाए। उदाहरण के लिए यदि आप किसी किसी प्रश्न पर आप विवाद कर रहे हैं और यदि दूसरा व्यक्ति धीरे से मुझसे दूँ तो मुझसे दूँ का अर्थ हो सकता है। पहला वह आपकी बात में मत्तुष्ट है। दूसरा, वह आपकी बात का व्यर्थ अर्थानि निरन्तर योग्य समझता है।

सामाजिक पृथक्करण

मनुष्या के बीच भ्रम होने वाली अन्तःक्रिया में सम्पर्क और संचार का उपयुक्त महत्त्व समझने के लिए सामाजिक पृथक्करण पर विचार कर लेना सहायक होगा।

स्वयं व्यक्तियों अथवा उनकी सम्पूर्ण स्थिति की कोई भी दशा जो उनके परस्पर सम्पर्क और संचार की रीति या उत्तम बाधा डाले पृथक्करण का कुछ भाग उत्पन्न करता है। अर्थात् व्यक्तियों में पृथक्करण तब पैदा होता है जब या तो उनकी शारीरिक मानसिक अथवा सामाजिक दशा सामान्य सामाजिक अन्तःक्रिया में रखावट या बाधा बन अथवा वे किसी ऐसी स्थिति में पड़ जायें जो इन अन्तःक्रिया की सामान्य रूप में हानि दे।

पृथक्करण के प्रकार

पूर्ण पृथक्करण केवल एक उपरन्ध्रता मात्र है क्योंकि हम किसी एक व्यक्ति को नहीं जान जिसके जीवन में कभी भी समाज का कोई प्रभाव न पड़ा हो। हाँ जगती जानवरों द्वारा अछूत बच्चे, जो कुछ अवधि तक मानव समाज में पूर्णतया पृथक् रहते हैं अत्यन्त ही सगम्य पूर्ण पृथक्कीकृत व्यक्ति कह जा सकते हैं। हमने ऐसा है कि जहाँ कहीं एक बच्चे मनुष्या द्वारा जगती जानवरा (भड़िया आदि) के अगुल में छुड़ा लिए गए वे सामान्य आयु के सामान्य समाज में पल बच्चा में एक दम भिन्न निकल। उनमें मनुष्य के प्रायः सभी गुणों का अभाव था। वे न मनुष्य की भाँति चल सकते थे, न मनुष्य के भाषण-संगीत ही या मरत थे और न मनुष्य की भाषा ही बोल सकते थे। यहाँ तक कि वे मनुष्य की उपस्थिति में दूरत थे और पुनः जगत में भाग जान का प्रयत्न करते थे। ऐसा क्या होता है? जगती जानवरा के पास पल बच्चों में जानवरा की आँखें ही विकसित हो जाता है। उनमें मानवव्यक्ति का गुण का विकास न होना इन मनुष्य की धार रखने करता है कि मानव प्रकृति का पर्याप्त अथवा सामान्य विकास तभी हो सकता है जब व्यक्ति समाज में रहे और दूसरे व्यक्तियों में अल्पपूर्ण सम्पर्क और संचार करता रहे।

सगम्य पूर्ण पृथक्करण में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों में सम्पर्क रखने और संचार करने में पूर्णतया अयोग्य हो जाता है अतएव इन सामाजिक अन्तःक्रिया का कार्य अथवा नहीं मिलता।

पृथक्करण कई कारणों से हो सकता है। अत्यन्त अन्तःक्रिया अथवा एक आँखों का अत्यन्त अंधाकार का अन्तःक्रिया होता है। कभी-कभी भाषण का अभाव बाहर निकल आता है। किन्तु अन्तःक्रिया होने पर व्यक्ति दूसरे समाज के लोगों के साथ संचार नहीं सकता है। इसमें वह केवल अपने समूह या समाज में पृथक् हो जाता है। अतः अन्तःक्रिया भी मानव-समूह अन्तःक्रिया रहता है। दूसरे अर्थों में

भयावह घन जगत्ता के निवासी भी बाह्य ससार से पृथक् रहते हैं और इसीलिए उनका विकास बड़ा ही सुदृढ रहता है। प्रजातीय पृथक्ता हिन्दू जानियो में छुआ छूट पर आधारित पृथक्ता स्त्री और पुरुषों में सामाजिक दूरी अथवा अविनियमित उन्नत संस्कृतियों में अल्प पृथक्ता सामाजिक पृथक्करण के अर्थ उदाहरण हैं। इस प्रकार व्यक्ति की शारीरिक अथवा मानसिक असमर्थता अथवा दोष भी उस समाज से अनाधिक पृथक् कर सकते हैं। अर्थात् बहरे अथवा अपाहिज लोगों का विवश हो कर समाज से बहुत कुछ पृथक् रहना पड़ता है। उन्हें अल्प लोगों से सम्पर्क और संचार बनाए रखने के अक्सर बहुधा अपर्याप्त ही होते हैं। मन्द बुद्धि, विकृष्ट और पागल व्यक्तियों का भी सामाजिक पृथक्करण में रहना पड़ता है। इसी तरह जिन आदिमियों में किसी तरह से भावात्मक गडबडी का दाप आ जाता है वे भी सामान्य व्यक्तियों के समान व्यवहार नहीं कर पाते। इसलिए या तो वे स्वयं समाज की नजरों से बचते के लिए एकांत प्रिय हो जाते हैं अथवा समाज ही उन्हें विचित्र समझ कर पृथक् कर देता है। पूण और स्थायी पृथक्करण व्यक्ति के शारीरिक मानसिक और नैतिक विकास का अवरोध कर देता है।

कभी-कभी हर मनुष्य समाज से 'दूर भागना' चाहता है। जब हम विश्रान्ति और मानसिक शांति के लिए एकांत में रहना चाहते हैं तो हम सामाजिक पृथक्करण का वांछित और आवश्यक समझते हैं। किन्तु यह 'एकान्तवास' सदैव अति अस्थायी होता है। जब एकांतवास से हम घबडाने लगते हैं तो उस अन्वेषण करते हैं। अन्वेषण व्यक्ति को बड़ा कष्टगामी लगता है। बड़े-बड़े नगरों में व्यक्ति को इस प्रकार का अन्वेषण कई बार अनुभव होता है। न तो उसके मित्र ही होते हैं और न उस कोई जानता है और न वह किसी से परिचित होता है। मनुष्य की इस स्थिति का मित्रहीन अज्ञानता कहा जाता है।

सामाजिक पृथक्करण के दो अर्थ प्रकार भी हैं — (१) घम या जानि में बहिष्कार और (२) समूह से बहिष्कार। जब किसी व्यक्ति या परिवार का किसी धार्मिक समुदाय सम्प्रदाय अथवा जाति से निकाल लिया जाता है तो यह पहला प्रकार का बहिष्कार है। दूसरे प्रकार का बहिष्कार घम से असम्बद्ध होता है। यह पहला प्रकार के बहिष्कार की भाँति कठोर नहीं होता। किसी व्यक्ति या परिवार से समूह से बहिष्कार तब होता है जब उक्त किसी काय या स्थिति से अप्रसन्न होकर समूह उससे सम्पर्क तोड़ देता है। इससे व्यक्ति अपने समूह में कोई सन्नाहजनक समागम नहीं बनाए रख सकता। लेकिन दूसरे समूहों में व्यक्ति का सम्पर्क या समागम बना रहता है। समूह-बहिष्कार का अर्थ व्यक्ति का समूह के आदर्शों और गठन का बनाए रखने के लिए बाध्य करता है। विशिष्ट समूहों या वर्गों का टूटना का बनाए रखने के लिए समूह बहिष्कार किया जा सकता है। किसी हिन्दू का उसके घम में स्थित कर देना पहला प्रकार का बहिष्कार का उदाहरण है। दूसरे प्रकार का बहिष्कार

स्वेच्छिक पृथक्करण

पिछले पृष्ठा में हमने अनच्छिक पृथक्करण के कुछ प्रकारों पर विचार किया है। पृथक्करण स्वेच्छा से भी हो सकता है। यदि कोई साधु-स यात्री अथवा यात्री समाज से एकांत में रह कर कुछ समाजोपरि मूल्य की प्राप्ति के लिये साधना करता है तो उसका पृथक्करण स्वेच्छिक है। किंतु पृथक्करण कसा भी हो—चाहे अनच्छिक और चाहे स्वेच्छिक—वह सदैव अस्थायी और आंशिक होता है। व्यक्ति का पृथक्करण जितनी अधिक लम्बी अवधि तक रहना उतनी ही गहरी सोई व्यक्ति के माध्या और समूह के माध्या के बीच में पड़ जायगी। सामाजिक सम्पर्क से पृथक् रहने पर दूसरे के साथ में सम्मिलित होना अशक्य हो जाता है।¹

जस व्यक्ति का पृथक्करण उससे पर्याप्त सामाजिकरण में बाधक होता है उसे ही समूह का पृथक्करण संस्कृतिया के अपर निषेधन में बाधा डालता है। यह बाधा समूह का सम्पन्न नहीं होने देती। जो समाज दूसरों की अपेक्षा अधिक पृथक् होता है उसमें परिवर्तन बहुत धीमा होता है। दुग्ध पचना जलवा या द्वीप में रहने वाले समाज पृथक्करण के प्रभाव में सांस्कृतिक परिवर्तन और समृद्धि में बहुत पीछे रह जाते हैं।

पृथक्करण सामाजिक संगठन का सिद्धांत

सामाजिक पृथक्करण से व्यक्ति और समूह के पर्याप्त विकास में जो बाधाएं पड़ती हैं उनका संक्षिप्त बरण ऊपर किया गया है। परंतु सामाजिक पृथक्करण सामाजिक संगठन में एक मूल सिद्धांत भी है। प्रत्येक समाज में स्त्रा और पुरुषों के पारस्परिक सम्पर्क में अनाधिक अलगाव रखा जाता है। जाति धर्म मास्त्रित्व तथा बण के आधार पर भी सामाजिक पृथक्करण प्रचलित है। कुछ विशिष्ट सामाजिक सम्बन्धों में जन सांस्कृतिक समुह बहुत अथवा अल्प निकटस्थ सम्बंधों में पारस्परिक सम्पर्क रखते नहीं होता है। इसी प्रकार हर समूह में विद्वान् व्यक्ति का पृथक् रखा जाता है। उनी समाज में विशिष्ट समूहों के बीच अलगाव (बचाव) अथवा सामाजिक दूरी बनाए रखा जाता है। व्यवसाय संस्कृति धर्म या राष्ट्रीयता के आधार पर नगरों में पृथक् पृथक् बस्तियां होती हैं। संभवतः समूहों के बीच में पृथक्करण प्रत्येक की गृहस्था उपाय रखने के लिये किया जाता है। समाज में अनेक प्रकार के सम्बन्ध होते हैं इनमें पारस्परिक बचाव और पारस्परिक निकटता की नियमन व्यवस्था होती है। इसलिये सामाजिक निकटता और सामाजिक दूरी दोनों ही समाज की चरना के सिद्धांत हैं। व्यवस्थित आंगिक सामाजिक पृथक्करण

1 The last of the isolation the more significant deep hiatus between the ends of this individual and those of the group. Removal from social contact makes it impossible to share ends with other kin. by Davis *Human Sociol.* 1957, p. 154

2 Gillin and Gillin *Cultural Sociology* (1943) p. 149

सुखदता और विरोधी कहा गया है। दूसरे समाजशास्त्रियों ने ठीक इसके विपरीत सबटा विभिन्न प्रकार की सामाजिक प्रक्रियाओं का बखान किया है किन्तु उपरोक्त दाना वर्गीकरण हमारी समस्या का यथाचित समाधान नहीं कर सकत। हम तो इनमें बीच का भाग अपनाना चाहिए। यह सत्य है कि समाज में अनवरत प्रसार की प्रक्रियाएँ होती हैं किन्तु वैज्ञानिक अध्ययन की सुविधा के लिए यह वांछित है कि हम उन भयंकर सामाजिक प्रक्रियाओं में से मौलिक आधारभूत प्रक्रियाओं का विश्लेषण करें। पाप और वर्गों में इन प्रक्रियाओं के चार प्रधान प्रकार—प्रतिस्पर्धा, सघप, व्यवस्थापन और सात्मीकरण—का विश्लेषण किया है। आधुनिक प्रमुख समाजशास्त्री मकाइवर मटन मरिल आदि इस सूची में महत्वाग का जाड़ दत हैं। हम भी सामाजिक अन्त क्रिया के पाँच प्रधान प्रकार (रूपों) की चर्चा करेंगे। हाँ, यह संमत कर देना लाभदायक होगा कि इन पाँच मौलिक प्रक्रियाओं में से सहयोग, व्यवस्थापन और सात्मीकरण सह्यामी अथवा सयुक्तक प्रक्रियाएँ और प्रतिस्पर्धा और सघप का असह्यामी अथवा विभाजक प्रक्रियाएँ हैं। पहले वर्ग की प्रक्रियाओं से सामाजिक असतुलन का मतुलन में बर्तन का प्रयत्न होता है और दूसरे वर्ग की प्रक्रियाओं से सतुलन भंग होकर असतुलन उत्पन्न होता है।

सामाजिक प्रक्रियाओं की विशेषताएँ

सामाजिक अन्त क्रिया के मौलिक रूपों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं —

(१) सामाजिक और मास्कुलिन व्यवस्था में सामाजिक प्रक्रियाएँ होती रहती हैं। इसलिए उन पर विशिष्ट समाज की रचना और अक्षमताओं का प्रभाव पडना स्वाभाविक है। समस्त सामाजिक प्रक्रियाएँ किसी न किसी रूप में प्रत्येक समाज में होती हैं। वे तो मनुष्यों के प्रत्येक समूह या संस्था में कायमान होती हैं। किसी भी संस्था या समूह (परिवार या आदि) का लौकिक उसमें महत्वाग और सघप दाना ही कुछ या अधिक मात्रा में व्याप्त रहेंगे।

(२) हम तो एक समाज अथवा समूह में समस्त मौलिक सामाजिक प्रक्रियाएँ होता रहती हैं परन्तु उनमें से कौन प्रबल रहे और कौन गौण यह समाज पर निर्भर करता है। उसमें कुछ प्रक्रियाओं का महत्त्वपूर्ण समझा जाता है इसलिए उन्हें प्राथमिक क्रिया माना है और जिन प्रक्रियाओं को गौण अथवा सूक्ष्म महत्त्व का समझा जाता है उन्हें द्वितीय क्रिया माना है। उदाहरण के लिए अमरीका और अरब नीतिशास्त्री पाश्चात्य समाज में आधिक और राजनितिक कार्यों में प्रतिस्पर्धा का अधिक महत्त्व दिया जाता है। वहीं प्रतिस्पर्धा का अल्पमति प्राथमिक माना है और परीक्षा, शिक्षा, राजनीति, मनःशास्त्र तथा मित्रता में भी महत्वाग का प्राथमिकता प्राप्त मिलता है। अरब समाज में मौलिक मान्य प्रकार के हैं जिनमें महत्वाग मिलता है और प्रत्येक क्षण में प्रतिस्पर्धा का महत्वाग महत्वाग जाता है। अरब प्रकार के समाजों में कुछ क्रियाएँ सुखा का दाना प्राथमिक होती हैं जब कि दूसरे में प्राथमिक

प्रियता और सहिष्णुता व अनुरूप गुणा का सर्वोच्च महत्व प्राप्त होता है। हमारे भारतनरप व मानि प्रिय और उत्तर गुणा की समाप्त व भागी महिमा है।

सागरा

सामाजिक प्रक्रियाओं की प्रकृति के चार म ऊपर जा तुष्ट किया है उगने स्पष्ट जाता है कि इन प्रक्रियाओं का अनुपपन्न करने पर उनका सामाजिक अन्त, समाप्त व तापन प्रतिमाना ध्यया प्रतिगता परिस्थितिया और तापी का विचार अनिवार्य है। सामाजिक प्रक्रियाओं का समझन की समझ्या समाप्तताम्राप है 'मनावर्तित' नहीं। आज उन समाप्तताम्रिया और विज्ञाना व विचार नहीं हीराशर विद जा सवत जा व्यक्ति व सामूहिक व्यवहार का अान उन व क्षित जन्मजात चाकरा अथवा जरिक प्रवृत्तिया का वना करत थ। सत्याग अथवा अथप करना मनुष्य की आन्तरिक प्रवृत्तिया नहीं हैं। उन जीवन की अमत्य स्थितिया म दूगर स्थितिया व सत्याग अथवा अथप करने का समाप्त व प्रशिक्षा भिन्ता है। अथन समाप्त व प्रविमाना ध्यया तथा अथपताम्रा व अनुरूप ही वह सामाजिक प्रक्रिया म भाग लेता है।

सुनतामत्र सत्कृतिया व प्रिय अथ अनुमधाना म ता यह अधिशासन विद हो गया है कि सामाजिक प्रक्रियाओं व भूत अाना की जन्मजात या जरिक प्रवृत्तिया स अत्याप्य करत अति सख्त है और इगतिण मत्र।¹ विविध मकृतिया व मकृत्या की जन्मजात मकृत्या म अथवाअथन और नावनामव गुणा का लगभग वगी अनुमान भिन्ता अथा प्रतीत होता है। एक विदिष्ट समाप्त में मकृत्या पर वन प्रिया तावया अथवा अथप पर मकृत्य अतिगव अथवा पर निभर नहा जाता है। हमारा निररय ता समाप्त और मकृति की अथाप करना है। मकृत्य व प्रविष्टित प्रविमाना व अनुरूप जा अथपतामत्र है उर समाप्त प्राणातिन वरत अथन वनाता है और ता व्यवहार उन व प्रविष्टित ता है उनका अनाशर और अानता व अथन या कुपनन पर समाप्त नरर अता है। मक्षर म समाप्त उन समाप्त ताम्रा व निशित करत है अिअ अतिगव सत्याग विविध सामाजिक प्रक्रियाओं व अथन म अथपतामत्र करत है।

सामाजिक प्रक्रियाओं की प्रकृति का परिचय करत अथ व अथवा मीतिर प्रक्रियाओं का अथपतामत्र विनरपण करत अथवा अथपतामत्र हाता।

महयोग

समाप्त म मकृत्य का मकृत्य नावन मकृत्या पर अथपतामत्र है। अथन अथप अथन व अथप ता और अथन अथन अथपतामत्र व अथन दूगर स्थितिया व अथपतामत्र पर उन अथन अथपतामत्र है।

1 Cf. Margaret Mead, *Cooperation and Conflict among Primitive Peoples* (New York: M. Graw Hill Book Co. Inc. 1931)

सामाजिक अथवा प्रिया के उम रूप को सहयोग कहते हैं जिसमें दो या अधिक व्यक्ति एक सामान्य ध्येय की पूर्ति के लिए साथ-साथ कार्य करते हैं।¹ फेयरचाइल्ड द्वारा सम्पादित समाजशास्त्र के शब्दकोष में सहयोग की परिभाषा इस प्रकार दी गई है — सहयोग वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अथवा समूह 'यूनाधिक संगठित रूप से अपने प्रयत्न का सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संयुक्त करते हैं।' इस प्रकार दो या अधिक व्यक्तियाँ अथवा समूहों किसी समान रूप से इच्छित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जब मिलकर प्रयत्न किए जाते हैं तो कहा जायगा कि उनमें सहयोग है। सहयोग करने वाले तब तक निरन्तर साथ-साथ प्रयत्न करते हैं जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए। सहयोग की प्रक्रिया के दो तत्व हैं—(१) दो या अधिक व्यक्तियों में एक सामान्य उद्देश्य का प्राप्ति करने का निश्चय, और (२) 'यूनाधिक संगठित रूप में साथ-साथ निरन्तर प्रयत्न करना।

प्रवृत्ति

मनुष्य अपने जन्म तक के लिए अथ व्यक्तियों के सहयोग पर निर्भर है। सत्तानात्वर्षि की सामान्य अभिलाषा में पति पत्नी में सहयोग ही वच्चा का जन्म सम्भव है। जन्म ही वच्चा माना पिता के सहयोग पर आश्रित ही जाता है। उसका लालन पालन शिक्षा-नीत्या सभी तो परिवार के अथ सदस्यों के सहयोग से पूरे होते हैं। मनुष्य को अपने सपने जीवन यापन के लिए जिन गुणों, दक्षताओं और योग्यताओं की आवश्यकता होती है उन सबका वह परिवार, पड़ोस, विद्यालय आदि में दूसरों के सहयोग से सीखता है। सामाजिक सफलता के लिए वह जो कुछ सीखता है वह अथ व्यक्तियों और समूहों के सहयोग के बिना सम्भव नहीं है। इस प्रकार व्यक्तियों का अपनी मानसिक और भावात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी दूसरों का सहयोग आवश्यक है। अथ योगों में पृथक् रहकर उमका मानसिक विकास बुझित हो जाता है। उसकी प्रेम स्नेह दया, रूपा, राग आदि का इच्छा भी बिना दूसरों के सहयोग में पूरा नहीं हो पाती। प्रेमी, मित्र अथवा जीवन-साथी का इच्छा करना व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। इसी प्रकार, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं भाजन वस्त्र भवन और काम-वृत्ति का अनुष्ठान में मनुष्य बिना दूसरों के सहयोग में सफल नहीं हो सकता।

मनुष्य का जीवन-समय बड़ा बर्तित होता है। आण्डिन उम बर्तित होने और प्रियों का सम्मान करना पड़ता है। राग मृत्यु की आशाओं सामाजिक

1 Co-operation thus may be defined as a form of social interaction where two or more persons work together to gain a common end. Merri & Fildredge *op cit* p. 494

2 Co-operation is the process by which individuals or groups combine their efforts in a more or organised way for the attainment of common objectives.

मध्यों तथा प्रतिस्पर्द्धा-मभी में हर व्यक्ति स्वाभाविकता सम्बन्धिया और निष्ठा व सहयोग से स्थिति पर काबू पाता है। उन्नयन में आर्थिक सुगलता प्राप्त करने के लिए भी श्रम विभाजन विशेषकर रण का आधार महत्वाग रचना पटता है। परिवार पक्षीय प्रामाण्य प्रपक्वा नगराण समुदाय के सामाज्य कल्याण में सभी अन्तम प्रयत्न रूप में अनुनायिक संगठन काकर माय-माय गयन करत हैं। समूह प्रथवा समाज की रक्षा सम्बन्धित गय कल्याण के लिए उन्नयन मभी सम्पत्तिया का मद्युक्त प्रयत्न करना एक अनिवार्य आवश्यकता है। सम्पत्ति जो मानव समाज का अनाभी विभाजन है के विनाम भी सम्पत्ति में समाज व मभा सम्पत्तिया का महत्वाग जाना रण है और जाना रहता है।

समूह में मनुष्या का भिन्न-भुन्न वर सामाज्य उद्देश्य का प्राप्त का प्रयत्न करना व्यक्तिगत और सामाजिक जाना दृष्टिया उ अनिवार्यत आवश्यक है। न जान कितन रूप में मनुष्य परस्पर महत्वाग निष्ठा करत है। जीवन और समाज व हर क्षण में महत्वाग की प्रक्रिया काय करत है। महत्वाग सामाजिक जीवन की आधार भूत और सर्वोपरि आवश्यकता है। व समाज व संगठन का प्रथम निष्ठा है।

सहयोग के रूप

समाज के प्रत्येक समूह समिति या संगठन में सहयोग जाना रहता है। विभिन्न प्रकार के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए परिवारा में राष्ट्रा तर्क में परस्पर महत्वाग जाना है। मुक्त और शान्ति जाना में ही सम्पत्तिया का अनुभव सम्भव है। शान्ति बनाय रगत और सम्पत्तिया व विकास के लिए राष्ट्रा के पारम्परिक महत्वाग की अनुभव भाना मद्युक्त राष्ट्रा मय और उन्नयन विभिन्न विभाजन संगठना में दान का मिश्रण है। सम्पत्तिया के प्रमुख रूप आर्थिक राजनितिक सामाजिक जगणित धार्मिक और साम्प्रतिक है। परिवार और समुदाय सामाजिक महत्वाग में ही वन और पनर है। राजनितिक रणा का आधार राजनितिक प्रयोग है। रणा प्रकार आर्थिक संगठना और सम्पत्तिया में आर्थिक सम्पत्तिया मूवमूव कायक है। रणा प्रकार जगणित धार्मिक और साम्प्रतिक संगठना और सम्पत्तिया का आधार रणा जगणित धार्मिक और साम्प्रतिक

सहायता होता है।¹ ओपोटविन न पारस्परिक सहायता का मानव विकास में एक महत्वपूर्ण कारक माना है। भारत में सामुदायिक विकास योजनाएँ पारस्परिक सहायता और स्वावलम्बन के सिद्धांतों पर आधारित हैं।

मनुष्य में सहायता सर्वत्र समान अंश में नहीं रहती है। कभी-कभी उनमें सहायता का अंश 'यून अंग' होता है और कभी 'अत्यधिक अंग'। सहायता के अत्यधिक अंग होने पर घनीभूत सहायता होता है।

विचारयुक्त एवं अचेतन सहायता

जब लोग किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विचारयुक्त सहायता करते हैं तो वे रीनिया और वाय प्रणालियाँ का उपयोग करते हैं। मदद या मदद से गाँधी विचारों में लोग जो सहायता करते हैं वह विचारयुक्त सहायता का उदाहरण है। इसी प्रकार किसी संस्था के उद्धार (जैसे जमींदारी उद्धार अथवा धर्म उद्धार) अथवा एक नए राज्य की स्थापना भाषा की स्वीकृति आदि के लिए आन्दोलन चलाना इसी प्रकार के सहायता पर आधारित होता है। हाना या फुटबल खेल में भी खिलाड़ियों में विचारयुक्त सहायता होता है। किन्तु जब लोग एक धार्मिक संस्था के अंग हैं अथवा किसी राष्ट्रीय पक्ष का मानते हैं तो उनमें अचेतन सहायता होता है। इसी प्रकार बालक की प्रतिष्ठा, परिवार या राजनैतिक दल आदि की सुदृढता बनाए रखने के लिए उनके सभी सहायता एवं अनुमोदित आचरण ही करते हैं। इस स्थिति में सबका प्रयत्न सामूहिक कल्याण और प्रतिष्ठा की अभिवृद्धि करना है किन्तु उनके नियम वे परम्परागत अचेतन आचरण ही करते हैं।

सहायता के प्रकार

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष—महात्मा ने सहायता के दो प्रकार माने हैं—(१) प्रत्यक्ष सहायता और (२) अप्रत्यक्ष सहायता। जब एक या अधिक व्यक्ति (या समूह) एक साथ मिलकर या मिलकर कुछ काम करते हैं तो उनका बीच में प्रत्यक्ष सहायता होता है। कई व्यक्तियों द्वारा एक ही काम का मिलकर जानना बनाया या कठिन प्रत्यक्ष सहायता है। जब कई व्यक्ति एक उद्देश्य के लिए चुनाव प्रचार करते हैं और काम भाग करते हैं व्यक्ति-व्यक्ति के बीच अथवा घर-घर जाकर मत माँगते हैं अथवा चुनाव के लिए संगठन करते हैं तो इसमें अप्रत्यक्ष सहायता होता है। इसका विपरीत एक सरकार के विभाग विधायकालय अथवा कम्पनी के कर्मचारियों में जो सहायता होता है वह अप्रत्यक्ष है। अप्रत्यक्ष सहायता में सभी लोग समान उद्देश्य की पूर्ति में मिलकर काम करते हैं परन्तु उन सबका कार्य भिन्न और पृथक होता है।

प्राथमिक द्वितीय आदि—प्राथमिक तथा द्वितीय अथवा समाजशास्त्रियों ने सहायता के तीन प्रकार बताए हैं—(१) प्राथमिक, (२) द्वितीय, और (३) तृतीय सहायता।

14 Mutual aid is a special name for co-operation E. S. Bogardus / Sociology p 351

बुद्ध लोग समाज के विकास में प्रतिस्पर्द्धा का ऐतिहासिक महत्त्व बहुत बढ़ा चढ़ा कर रहते हैं। विशेषकर उन्नीसवीं शताब्दी के विचारका न डारविन के "योग्यतम का अतिजीवन" के सिद्धांत को अध्याधुनिक अपनाया। मनुष्या में, पशुप्रा अथवा पौधा की भांति जीवन को बनाये रखने के लिये बड़ी प्रतिस्पर्द्धा नहीं होती। मनुष्य ने अपने जीवन और समाज का सम्पूर्ण विकास सहयोग के द्वारा किया है। हाँ प्रतिस्पर्द्धा उनके सहयोग का घनाभूत और दिग्दर्शित करने में अवश्य सहायक हूँ है। आधुनिक भौतिकवादी समाज (धमरीका आदि) में सहयोग की अपेक्षा प्रतिस्पर्द्धा को अग्रिम महत्त्व दिया जाता है। यह विशेष प्रवृत्ति इन समाजों के प्रतिमानों का परिणाम है।

समाजों के विकास में सहयोग के व्यापक महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। सभ्यता की उन्नति में सड़कें हजारों वर्षों में योग्य सहयोग करते आये हैं। आधुनिक गौरवमयी विशाल सभ्यता का मूलोपाय सहयोग है। समनर ने ठीक ही कहा है कि प्रतिस्पर्द्धा भी तभी सफल होती है जब लोग में सहयोग हो। हम नित्यप्रति ऐसे अनेक उदाहरण पाते हैं जिनमें लोग किसी बड़े उद्देश्य की मित्रता के लिये अपने छोटे-छोटे विरोधों का दबा कर समुक्त प्रयत्न करते हैं। एक बन्दूक न आग्नि सभ्यता में अनेक उदाहरण देकर यह सिद्ध किया है कि लोग में सहयोगी भावना को सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता है। किन्तु एक बढायती भी है जहाँ जीवन में भयकर प्रतियोगिता को ही सर्वोपरि महत्त्व मिलता है। भारतीय समाज में सहयोग का प्राथमिकता दी जाती है। लेकिन एक बात सदैव स्मरण रखनी चाहिए। किसी भी समाज में न तो पूणतया प्रतियोगिता हागी और न पूरा सहयोग, और न अकेले व्यवस्थापन सात्मीकरण तथा सघष ही किसी समाज में मिलेंगे। प्रत्येक समाज में सामाजिक अन्त प्रिया के सभी भौतिक रूप मिलते हैं। इन सामाजिक प्रतियोगिता के सापेक्षिक महत्त्व में किसी का कम प्रधानता दी जाती है और किसी का अधिक। अतएव सामाजिक प्रतियोगिता में सापेक्षिक महत्त्व के अर्थ का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। शास्त्रिकाल में राष्ट्रों के अन्तर्गत विभिन्न सभ्यताएँ बनीं और अल्पगण्य समूह तथा गणों में व्यापक प्रतिस्पर्द्धा होती है किन्तु जयान् अन्तर्राष्ट्रीय सघष (युद्ध) की स्थिति आती है समूह राष्ट्र एक सुदृढ़ सभ्यता बन जाता है। राष्ट्रिय नित्य व्यवस्था बटुा ऊँची हो जाती है जो स्वयं एक सामाजिक लक्ष्य का प्राप्ति करने के लिये सभ्यतागी प्रिया की चानक है। राष्ट्र की सुरक्षा के लिये अन्तर्गत गणों नागरिक राष्ट्रिय प्रतियोगिता की प्रतिष्ठा के लिये राष्ट्रिय उद्देश्य में अन्त उद्देश्य और स्वाधों का विभीत कर रहा है। समूह राष्ट्र एक व्यक्ति की भांति उठ खड़ा होता है व्यक्ति और राष्ट्र में कोई अन्त नहीं रह जाता है। नागरिकों के आन्तरिक अन्त प्रतियोगिता और सघष का अन्त करके अन्त प्रिया जान है और गणों बनीं और प्रतिष्ठा के प्राण गहरी अन्त का सुरक्षा करके अन्त कर जाता है।

माराग यह है कि सामाजिक जीवन का आधार न्याय है। उमका पलात
विकसित मुहता और बन्धारा तनी सम्भव है जब उमक नागरिका और विभिन्न
निमायका मे माधारण और प्रमाधारण दाना चिनिदा म तानाय उर श्या व तायो
के निय गह्याग न प्रयान करन की क्षमता और तपयता हा।

प्रतिस्पर्द्धा

चात्र्य हाकिन न जीवन-मयान का ना उपरलता प्रियातिन का धा यून
न समाजगतता उन ही मानव जीवन का चान्दा करन न प्रयाग करन है। किन्तु
व यह बूल जान है कि मानव-मनाग म तान वाला प्रतिपातिता पशुधा और पीया म
भिन्न है। मनुष्यों प्रयवा समूहा म तान वाली प्रतिपातिता का बीडिरि माग भारतानन
विश्रपता की उदगा नहीं की जा सकती। प्रकृति म ताना पशुधा तथा पीया म जीवन
का समान परलन है। हमम प्राकृतिव प्रवरण की प्रक्रिया काम करता है। मनुष्य
समाज म मनुष्य की वडि प्राकृतिव प्रवरण का मानित कर तना है और परिवातिन
दगाधा स प्रदिन भीप्रता म समायातन करा देती है।

अथ और प्रकृति

दा या प्रदिन व्यक्तिया (समूहा) म मानित प्रयवा स्वल्प सामाय उर श्या
का प्राति व निय निय मय प्रयान का प्रतिपातिता करन है। मोमिन बन्धुदा के उर
याग या प्रयवार व निय प्रयान करना प्रतिपातिता है। मनुष्या की प्रावन्धकता
भनत है किन्तु उनकी मनुष्यि व माधन स्वल्प है। हमम मग्ट है कि प्रयव तप्य
की प्राधि म माधना की स्वल्पता मनुष्या म प्रतिपातिता का प्रतिवापन जान देती।
अन प्रतिपातिता का उम्य बन्धुदा और तवाधा का स्वानता म हाता है जिनका
प्राव करन का इच्छा व्यापक प्रयवा तवध्याती जानी है। मानित माध्या की प्राति
के मद्राम म माधारणतया परमरा प्रता विधान प्रयवा प्राय माधुतिन प्रयवातया
स प्रतिमपडा का नियत्रिन क्रिया जाना है। हमनिए वातविक जावन म प्रवाय
प्रतिपातिता नहीं जान ती जाना है। प्र नर स्थिति म प्रतिपाति व्यक्तिया और समूहा
का प्रावणन समाज व प्रतिष्ठित नियमा और प्रम्याया व अनुकृत हा हाता है।
समाज एक एक वागायरण प्रकृत करता है और एक निय स्थिति करता है ना
प्रतिमपडा का वनाय मय है। हम प्रयव मयित माध्य व निय प्रयविक तपाम
प्रति पाति है ना समाज तान म्हातन नियमा व प्रयव तप्य है। माय तप्य दिन
म य व निय प्रि पाति हाता है ताना समाज ना वी न तपयता है।

अन प्रतिपातिता म्हातन द्वारा परिमपडि व निय म्हाया व निय जान व त
दा प्रयविक प्रयव है व म्हातन नियमा व प्रयव तपयता है।¹

1. Competition is an important factor in the life of every individual and is essential for the achievement of individual and social goals and the maintenance of social order and discipline.

प्रतियोगिता की प्रवृत्ति अर्थात् अर्थव्यवस्था, बहुधा अचतन, निरंतर और सबव्यापी होती है। प्रतियागी एक दूसरे से अनभिन्न रहते हुए उद्देश्य प्राप्ति का निरंतर प्रयत्न करते रहते हैं। प्रतियागिता में उद्देश्य पर ही मारा ध्यान केंद्रित रहता है। यदि प्रतियागिता की प्रवृत्ति प्रतिस्पर्धा के उद्देश्य से हट कर व्यक्तिगत प्रतियोगिता पर टिक जाय तो वह प्रतियोगिता ही नहीं रहती है। प्रतिस्पर्धा व्यक्तिगत प्रतियोगिता है।¹ समस्त सामाजिक प्रतियागिता में प्रतिस्पर्धा सबसे अग्रिम अर्थव्यवस्था है अथवा व्यक्ति का यह ज्ञान नहीं होता कि वह स्वल्प सामाजिक मूल्यों के लिए प्रतियोगिता कर रहा है। यदि उस इनकी अस्पष्ट चेतना भी हो जाय तो भी अपने प्रतियोगियों से उसका कोई सम्पर्क नहीं होता है। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में परीक्षाधियों का हजारों प्रतियागियों से प्रतियागिता करनी पड़ती है। यही बात जीवन के प्रत्येक क्षण में मत्य है। उत्पादक का न जान अथवा किन्तु उत्पादकों से प्रतियागिता करनी पड़ती है। यह प्रतियोगी समाज या देश के बाहर और भीतर सभी जगह पर होते हैं। जिस सामाजिक रचना में हम रहते हैं वही हम में प्रतियोगिता करने की प्रवृत्ति पापित करती है। घर में विद्यालय और खेत के भ्रान्त में बच्चे को प्रारम्भिक जीवन में अपने प्रतियोगिता का महत्व ज्ञात होना लगता है। उस यह भी ज्ञात हो जाता है कि अधिकतम महत्त्वपूर्ण तथा प्रतिष्ठा प्रतीक में से बहुतों को प्राप्त करने के लिए उसे अपने मादियों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी। जो व्यक्ति मानसिक श्रम, शारीरिक विरूपता अथवा स्वभावगत अविद्या के कारण सफलतापूर्वक प्रतियागिता नहीं कर सके हैं उनके व्यक्तित्व के विकास में अनेक बाधाएँ आती हैं। प्रतिस्पर्धा हर प्रकार के समाज में मिलती है। गत्यात्मक समाजों में अथवा तटस्थ स्थिर समाजों में बहुत अनेक प्रतियागिता होती है। सामाजिक जीवन की स्थिति और क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा होती है।

प्रतिस्पर्धा के रूप

सामाजिक प्रतिस्पर्धा के सामाजिक आर्थिक राजनितिक प्रजातीय आदि सांस्कृतिक रूप होते हैं। मिलित और मिलित में प्रतिस्पर्धा के चार विभिन्न रूप बताये हैं—(१) आर्थिक (२) सांस्कृतिक (३) भूमिका और स्थिति के नियम और (४) प्रजातीय।²

आर्थिक प्रतियागिता उत्पादन विनिमय वितरण और उपभोग के क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों में होती है। उत्पादन में मजदूर-मालिक प्रतियागिता में दूर-दूर नियमों के व्यापार में मजदूर-मालिक होते हैं। इस प्रकार उपभोग में भी अर्थव्यवस्था प्रतियागिता में बचन के नियम उपभोग-मजदूर-मालिक आदि बना लेते हैं।

1 When there is an interest from the objects of competition to the competitors themselves rivalry results. Rivalry is personalized competition. Ogburn and Nimkoff *Handbook of Sociology* p 234

2 Gilliland and Gillin *Cultural Sociology* pp 59-600

जब दा विन्नी मरुतिया म मन्वव हाता है ना उनमें साहृतिव प्रनिम्पया प्राग्म्य हा जानी है । धरतीवा तथा छीगिया म दूरान त धारा जगा म अन्तर प्रनिदागिना एनिय हूट कि व धरती धरना धरना प्रभुव जमाना चाएन थ । तिनु इन धारागिया तथा मुनियामिया म भी साहृतिव प्रनिदागिना हूँ । एना धम तथा हिंदू धीइ श्रीर मुनिम धर्मो म प्रनिदागिना सामृतिव प्रनिदागिना का धम उगाएरा है । धामिक धोर साहृतिव प्रनिम्पया म उगाएरा एन व निय धायिक राजनतिर धार सामाजिक प्रनिदागिना का धामिय निया जाता ह । एव ममान का विभिन्न गम्पामा म प्रनिदागिना का मया-मन्वरा प्रनिदागिना का एवन है । इन प्रकार की प्रनि दागिना साधुनिर ममाना म एनी एव ना गई । हर धरि धी-यमह म मन्वरा काय एन तथा म्यान पान की म्यामाविर एगा हाता है । ममान म ममान का का मया मायन है । धराने विभिन्न धरिया धोर ममान म सामाजिक गम्मान पान व निय एनी नमिनाए धरवान का प्रनिदागिना हाता है जिनका एहे ममान म (धा रिया मरुह म) उच्चतर म्यान प्राप्ता हा मक । एा मूमिना धोर प्रमियि व निर प्रनिदागिना एगा जा सकता है । धराना तथा धमरीवा म एन माया तथा धीदा धोर धामरीवा म एन धरती प्रनिदागिना प्रजाताय है । मर विचार म साधुनिर जगत म राजनतिर धोर प्रीदागिना प्रनिदागिना धामयिक प्रचड एव धाम्य वर एनी है । गण्टा व धराने विभिन्न राजनतिर एगा म धामन-मना का हविदान की हाए म कगी मरवारा का धर्यदेव मियर वर दिया है । धाम धोर धामिनाएन एवक प्रीइ उगाएरा है । धरानाएगाए धी म कृतीनिव प्रनिदागिना एका प्रवत हा धरना है । पूर्वी तथा पश्चिमा गण्टा म धरानाएगाए मर पर प्रनिदागिना की मरवारा व निय धायिक धोर प्रीदागिना उमनि म ना प्रचध प्रनिदागिना हा एगा है एन कीन परिचित नरी है । एम द्वारा ना कृतिम मून्वराए व धामिनि म एगाएन म धमरीवा का लमिख धोर निरान हागा एम प्रनिदागिना का मूर मनागिनि का परिचायक है ।

प्रनिम्पया धोर साधुनिरवता

जाता है। ऐसी स्थिति में, मनुष्या (और उनके समूह तथा समितियाँ) में तीव्र और व्यापक प्रतियोगिता होती है। भौतिकवादी समाज, जैसे, अमरीका, इंग्लैण्ड तथा कुछ अन्य पश्चिमी राष्ट्राँ में सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतियोगिता को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। व्यक्तित्व के विकास, व्यक्तिगत सम्पत्ति के अर्जन और संप्रह तथा सामाजिक स्थिति में उत्थिति के लिये व्यक्ति का परिवार, पड़ोस, विद्यालय या के मैदान समुदाय दफ्तर या कारखाना तथा स्थानीय स्वायत्त शासन और प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय प्रशासनिक संस्थाओं में कठोर प्रतियोगिता का मुकाबला करना पड़ता है। सारांश यह है कि व्यक्ति को सामूहिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दूसरों से प्रतियोगिता कर अपने विकास और प्रतिष्ठा को बनाये रखने का निरंतर अचलन अथवा चंचल प्रयास करना पड़ता है। अनेकानेक समितियाँ और संघों का विकास इसी प्रकार की सफलता में अत्यधिक सहायक है। विंग्सल डेविस ने पाश्चात्य समाज को मकन कर लिखा है कि वहाँ प्रतियोगिता को आधुनिक सभ्यता का एक आवश्यक लक्षण कहा जाना लगा है क्योंकि इसका और प्रगति का स्पष्ट सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है।¹

अतः ही अनियंत्रित और अबाधित प्रतिस्पर्धा का नकारात्मक माना जाय क्या कि इसमें समाज में सघर्ष और विगठन बढ़ता है परन्तु आधुनिक समाज में प्रतिस्पर्धा का नकारात्मक मूल्य प्राप्त है। वह स्पृहनाय हाँ गई है और उस यथाशक्ति प्रोत्साहन मिलता है। समाजवादी दशा में व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति को कोई स्थान नहीं है। वहाँ सामूहिक स्वार्थ ही सब कुछ है। इन सामूहिक स्वार्थों की सप्रभाविता और शीघ्र प्राप्ति के लिये वहाँ भा प्रतिस्पर्धा को अधिकतम महत्व प्राप्त है। व इससे समाजवादी प्रतियोगिता कहते हैं। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिये समाजवादी विभिन्न सामूहिक कृषि-संगठन में नियंत्रित प्रतियोगिता का पूरा प्रोत्साहन देते हैं। इसी प्रकार, विभिन्न प्रशासनात्मक एवं कारखानों में प्रतियोगिता करके श्रेष्ठतम परिणाम लाये जाते हैं। इस के आर्थिक राजनितिक और सांस्कृतिक विकास में इस समाजवादी प्रतिस्पर्धा का भारी योगदान है। अतएव यह निःसन्देह सत्य है कि सीमित और समाज निर्णित प्रतियोगिता में कार्य का श्रेष्ठतम सफलता के लिये स्फूर्ति और प्रेरणा मिलना है तथा वह सुनयन में अथर्विभ हो जाता है। प्रतियोगिता मनुष्य और समाज की धारण-धरणा का बचाता है।

सघर्ष

हम निराश्रुत हैं कि जब प्रतियोगिता का अभीष्ट लक्ष्य में ध्यान हटकर प्रतियोगिता पर ध्यान जाता है तो प्रतिद्वन्द्विता पैदा हो जाती है। इस प्रतिद्वन्द्विता संघर्ष

¹ In fact its obvious connection with what is called progress has led to its enthronement in some circles as the essential feature of modern civilization. Kingsley Davis * Human Society p 163-65

प्रतिभूल लक्ष्या की प्राप्ति का प्रयत्न करें अथवा उनकी प्राप्ति के लिए परस्पर विरोधी नीतियाँ अपनाएँ।

सघप की प्रवृत्ति प्रतिस्पर्द्धा में भिन्न है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ चेतना, व्यक्तित्वना एवं अनिरतगता है। सघप में व्यक्ति और समूह अथवा उद्देश्या में पूर्ण परिचित हात है और विरोधिया की क्षमता का भी उद्देश्य पाता है। उनमें परस्पर व्यक्तित्व विराध हाता है। ये विराधियों के प्रति अनि सतक होने है। उनमें विराधियों को दाना या नष्ट कराने के लिय घणा शोध तीव्र उद्देश्य और अत्यधिक शक्तिशाली उल्लेखता होती है और इसमें पर उनका समस्त ध्यान और प्रयत्न एकाग्र हो जाता है। सघप कभी भी अनिरत एक ही तीव्रता सतनी चन सक्ता। इसमें समय समय पर शिथिलता आ जाती है और कभी वह रुक जाता है। इस अनिरतगता का कारण यह है कि विराधिया के तीव्र उद्देश्या में उनमें पढाव होन रहन है और उनकी शक्ति और साधना की एकाग्रता भी समान नहीं रहती। कई बार यह शिथिलता प्रतिस्पर्द्धा का क्षमता में कतिपय जान बूझ कर की जाती है।

सघप के रूप

बुद्ध समाजशास्त्री सघप के दो रूप—पूर्ण और आशिव—मानते हैं। किन्तु व्यापारिक जीवन में इन दो रूपों में भेद करना अत्यधिक कठिन हो जाता है। पूर्ण एवं आशिव सघपों में बल अशा का अंतर है। सघप के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपों में भेद करना अधिक महत्वपूर्ण है। जब दूसरा के प्रयत्न का ठीक विरोधी काय किया जाय जिसमें वह अपना माध्यम को न प्राप्त कर पाये तो यह प्रत्यक्ष सघप होता है। युद्ध का अलगत सघप अथवा व्यक्तियों में परस्पर मान-पीट या हत्या प्रत्यक्ष सघप का उदाहरण है। किन्तु जब विरोधी में एक दूसरे का प्रत्यक्ष विरोध न करके बुद्ध उद्देश्या की प्राप्ति का इस प्रकार प्रयत्न करें जिससे दूसरा का उद्देश्य प्राप्त करने में बाधा पड़े तो इसे अप्रत्यक्ष सघप कहेंगे। अनियंत्रित प्रतिपाङ्गिता अप्रत्यक्ष सघप है विराधियों में परस्पर घणा अविश्वाम और शत्रुता हाति पहँचाने की प्रयत्न भावना अप्रत्यक्ष सघप है। शीतयुद्ध द्वारा प्रकार का सघप है। इसमें दाना विराधिया में नाना हाता है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सघप तब प्रारम्भ हो जाता है जब विराधी शत्रुता या समूहों में परस्पर प्रत्यक्ष शत्रुता का अथवा हाता प्रारम्भ हो जाय। गृह युद्ध अन्तर्गत युद्ध समूहों की हत्या अथवा उद्देश्य प्राप्त कराने का पाञ्चव्यक्तिक प्रयत्न ही इस प्रकार का सघप है।

सघप के प्रकार

कार्निगन प्रजातीय में राजनितिक एवं अन्तर्जातीय सघप सघप के प्रमुख प्रकार हैं। व्यक्तिगत सघप में प्रति और प्रति में भी सघप होता है। इसके प्रति

धूम सामूहिक मधय में समूह में परम्परा संधय होता है। प्रजातीय वग राजनैतिक और धर्मनिरपेक्ष मधयों में एवं या अधिन समूह दूरी का विराय परन है। धाधुनिक युग में वग मधय राजनैतिक मधय धर्मनिरपेक्ष मुद्रा त विकरान रूप धारण कर लिया है। धर्मिका तथा धर्मिका में ध्वन और स्वयं जानिया व बीच का मधय प्रजाताय मधय है। राष्ट्र व धर्म विरोधी राजनैतिक तथा का मधय व वार जननत्र की प्रतिस्पर्धा व तिर जिम्मेदार है। जननत्रोय तथा म सामक दन और विरोधी तथा म निम्नतर मधय चला करता है यद्यपि मभी दला का धायित उद्देश्य राष्ट्र-व्यापक की बद्धि होता है। सम्राज व नाच मध्यम और ऊंच वगों धयवा ध्यागतिया और मजदूरों में मधय वग-मधय है। पूँजाताय व्यवस्था की विपमनाओं तथा मात्मवाय विचारधारा व धाधुनिक युग में वग-मधय का वग गतन और जलित कर लिया है। इसी स्थिति व कारण समूह समार के गतिमानों राष्ट्र का गुण म बट गय हैं। दाना गुट धूमनीतिक धायिक सामाजिक एवं शैक्षणिक उन्नति करक एवं दूरर का विनाश करना चाहत है। जनन धर्मनिरपेक्ष मुद्रा की धायका धनी होती आ रही है और मुद्रा की धायधिव विनाशकारी गति में मानक नयमान हो गया है। धरगुम उद्घन वम और द्रुतगामा धम्या (जस गवत और धर्मन मलादीयोय प्रहारक) व उन्नाशन न भावी मुद्रा की विनाशकारी मक्ति का धयधिव बढ़ा लिया है। यति तागत मुद्रा हुआ ता गार मगा व मानरता और उगरी गौरवमयी मधया नष्ट हो गयी है।

सप्रय संवध्याया क्यों है ?

यद्यपि प्रत्येक समूह धयवा सम्राज में मधय की विदा का जाता है और धर्म की राहन धयवा पुनानया त्र करन का प्रयन लिया जाता है फिर भी मधय मानक सम्राज का एक निम्नतर लक्षण बना रहा है। एसा क्या व क्या मधय मनुष्य की प्रकृति में निहित है व धयवा क्या मधय व विना सम्राज का विराय होता सम्भव नहीं है ? इन प्रश्नों का उत्तर न तथा धायरयक है। सम्राज धयिया और समूह व धायरयिक मधयवा का एक ध्याया है। इन मधयवा का म्नाधार मनुष्या धयवा समूह का धायरयिक धयवा जविक लवाधरग (biological interration) तथा है। इनका लकीकरण तो मानविक धय पर जाता है। धम एक वरता को निम्नतर तथा और धायम बनाय गतन व धिर विदाया का विना (indotination) प्ररगा और पुनरावृत्ति तथा मानविक प्रशियाया का विनाशन गतता विनाय धायरयक है। धिन्व ध्याधायिक व वग म धय धाय मधया पुन मनी हो गया। धनयव सामाजिक लकीकरण में धिन्वय धय धायान धय तथा ध्याधायिक है। सम्राज व मधयवा में धयधिव धायिक राजनैतिक और सामूहिक धय हो है का निधिव धय धाय सामाजिक लवाधरग में उदय हो गया है। धम धिन्व म धयरी

की उत्पत्ति अशुभभावी है। विभिन्न राष्ट्रीय समुदायों अथवा उपसंस्कृतियों में होने वाले संघर्षों का आकार उनकी जाति-बेद्रीयता है। मनुष्य सदैव अपने राष्ट्र या संस्कृति को पसन्द करता है और दूसरों को नापसन्द।

मानव प्रकृति में संघर्ष निहित नहीं होता है। हाँ अपने ध्येयों की पूर्ति के लिए विरोधी से सग्राम कर सफलता प्राप्त करने की शिक्षा हर समाज में चेतन अथवा अचेतन रूप में ली जाती है। जहाँ सहयोग से काम नहीं बनता वहाँ संघर्ष का आश्रय लेना ही पड़ता है। इसीलिए महाश्वर ने कहा है कि समाज संघर्ष से काटा हुआ सहयोग है।¹ अनीत के समाज में सग्राम और हिंसा का गवाह इतिहास है। आज भी समाज में संघर्ष अनेक रूपों में प्रकट होता है। फिर सम्भवतः संघर्ष विहीन भावी समाज की कल्पना करना मूर्खता होगी। संघर्ष के नम्य रूप—प्रतिस्पर्धा और स्पर्धा तो सदैव बन रहेंगे। हाँ प्रत्यक्ष संघर्ष का जिसमें हिंसा और बरबादी होती है, फिर वह चाहे किसी रूप में प्रकट हो समाज से बहिष्कार कर देना चाहिये। दाशनिक् वर्टुड रसल और गांधी जी का विचार है कि प्रत्यक्ष संघर्ष का बहिष्कार करना मनुष्य के लिये सम्भव है यदि उनमें ऐसा करने का उत्कट इच्छा हो। व्यक्तित्व और समाज के विकास में नम्र संघर्ष—प्रतिस्पर्धा स्पर्धा और जनतंत्रिय प्रतिकूलता—ही आवश्यक हैं। उन्हें नियंत्रित बनाय रखना समाज के लिये हितकर है। हाँ, जीवन की कठिनाइयों और समस्याओं से संघर्ष करने से व्यक्ति और समूह दोनों में आत्म-बनना, आत्म-विश्वास बढ़ते हैं और कार्यक्षमता की बढ़ाने की इच्छा बनती है। संघर्ष व्यक्ति और समूह के प्रयत्न को एक दिशा और अधिक सशक्त होने के अवसर देता है। निराश संघर्ष के बहिष्कार में ही मनुष्य जानि का परम कल्याण हो सकता है। विभिन्न संस्कृतियों अथवा व्यवस्थाओं और सामन्य प्रणालियों के लोग में शांतिमय सह-अस्तित्व रह सकता है। सबका जीवन सम्पन्न और समृद्ध बनाने का निरन्तर प्रयत्न प्रकृति अथवा अथवा बाह्य शक्तियों से संघर्ष करने में ही सफल हो सकता है। मनुष्यों में परस्पर सहयोग के परिणाम संघर्ष की अपेक्षा सन्तुष्ट और अधिक स्थायी होते हैं। सहयोग से ही सामाजिकता और एकता प्राप्त करने की मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा पूरी हो सकेगी।²

व्ययस्थापन

मनुष्य का पर्यावरण निरन्तर बनना रहता है। उसमें होने वाले समस्त परिवर्तनों को मनुष्य या समूह भी पसन्द नहीं करते। नापसन्द परिवर्तन (अशांति अथवा

1 Society is co-operation crossed by conflict

2 P. Gisbert *Fundamentals of Sociology* (Orient Longman 1927)

परिस्थितियाँ) से बड़े मध्य करन लगते हैं। मनुष्य यदि इस मध्य में वे उन्हें अपनी च्छानुभूत नहीं बना पाते तो फिर उनमें धीरे धीरे समायोजन कर लेते हैं। इसी समायोजन की प्रारम्भिक अवस्थाओं को व्यवस्थापन कहते हैं। व्यवस्थापन मध्यों का स्वाभाविक निष्पत्ति (परिणाम) है। व्यवस्थापन में परस्पर मध्यपरत तत्वा का विरोध कुछ समय के लिए नियंत्रित हो जाता है और प्रत्येक कार्य के रूप में मध्य गायब हो जाता है यद्यपि सभास्य शक्ति के रूप में यह प्रच्छन्न बना रहता है।¹ मिलित और मिलित निरस्त हैं कि प्रतियोगिता और मध्य में व्यवस्थापन विरोधकार वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति या समूह सहयोगी एकता के प्रति मध्य में अपनी विरोधी क्रियाओं का समायोजन कर लेते हैं व्यवस्थापन का मध्य एक सामाजिक परिवर्तनो जन्म प्राप्त करे व्यवस्थापन प्रतिमान प्रविधियाँ मध्य परस्परान्तर प्राप्त हैं जो हृष्टान्त और उपदेश के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी का हस्तान्तरित होते हैं। महादेव और मध्य के अनुसार व्यवस्थापन का अभिप्राय विशेषकर उन प्रक्रियाओं है जिसमें मनुष्य अपने पयावरण में सामञ्जस्य का भावना उत्पन्न कर लेता है।² जोस न विद्या है कि एक मध्य में व्यवस्थापन घटते रहने के लिए समझौता बताना मकरता है। इस सभी समझौते के विचारों का कारण यह है कि विद्यमान परिस्थितियाँ को नापसन्द करत हुए भी उनमें प्रयत्न मध्य न करना व्यवस्थापन है। हम सामाजिक प्रक्रिया में नापसन्द वतमान दशाओं में अनुभूत कर मध्य प्रतियोगिता एक प्रतिकूलता में उदरग क्रियाओं पर काबू पाने का प्रयत्न किया जाता है।

रायकर और हाट व्यवस्थापन का एक प्रक्रिया और दण्य दाना मानते हैं। एक प्रक्रिया के रूप में व्यवस्थापन प्रयत्न का वह श्रम है जिसमें मनुष्य परिवर्तित दशाओं के कारण प्राप्त्य प्राप्त और श्रम का निमाण करते जाते की परिवर्तित दशाओं में समझौता कर लेता है। और एक दशा के रूप में व्यवस्थापन मध्यों की एक व्यवस्था में परिवर्तित और उदक स्वीकृति है जो समूह में मध्य की प्रयत्न एक धिरे व्यापक सामाजिक मध्य में समूह की परिस्थिति निर्मित करती है।³ हर तिलि और समूह अपने समाज की शुद्ध वतमान दशाओं में प्रयत्न रहते हुए भी स्थितियों को अपने हाथ में शान्तिमय व्यवस्था करता है। सामाजिक दशाओं के सामने

1 Accommodation is the natural issue of conflicts. In an accommodation the antagonism of the hostile elements is for the time being regulated and conflict disappears as overt action although it remains latent as a potential force. Park and Burgess on cit p 655

2 in competition as is competition accommodation is a process by which the individual and the group adjust their antagonistic activities in the interest of mutual unity. Calkins Social Psychology p 54

3 The term accommodation refers particularly to the process in which man attains a sense of harmony with his environment. Society p 1-1

4 Renteria-J. Hart. In Social Psychology (M. Graw Hill Book Co p 37-2-

उनकी उच्छ्वाण दबी रहनी है। अनौपचारिक रूप से विराध प्रकट करने के बाद भी वे औपचारिक विरोध नहीं प्रकट करते और प्रचलित व्यवस्था के अनुकूल प्रकट आचरण करने लगते हैं। इसलिये एक अर्थ में व्यवस्थापन को समस्त औपचारिक सामाजिक संगठन का आधार कहा जा सकता है। समाजों में सम्पत्ति के अधिकार निहित स्वाथ पारिवारिक संगठन दासता, जातियाँ और वग आदि सभी व्यवस्थापन के प्रतिनिधि हैं। उनमें सम्पन्न व्यक्तियों में असमानता, अत्याय और अयोग्यताओं के प्रति सदब से विद्रोह और घृणा की भावना रही है किन्तु फिर भी वे विवश होकर वर्तमान दशाशा से "यूनाधिक" समायोजन बनाय रहते हैं। उनकी स्वाभाविक इच्छाएँ सीमित रहती हैं जिससे सामाजिक शान्ति बनी रहती है। परन्तु यह स्थिति पूर्ण अनुरूपता अथवा शान्ति की अवस्था में कभी भी विकसित नहीं हो पाती। व्यवस्थापन में दुःखदाया कठिनाइयाँ पर काबू पाने के लिये सघप का केवल टालकर आवश्यकता अनुसार अनुरूपता लाई जाती है।

यस तरह व्यवस्थापन एक अत्यधिक गत्यात्मक प्रक्रिया है क्योंकि यह सवपरत शक्तिमान एक सतुलन है जो कभी भी पुन खुली हिंसा में बदल सकता है। सघप का जन्म इन बाने तनाव और विरोध बदापि समाप्त नहीं होत, वे केवल अस्थायी रूप से नियंत्रित हो जाते हैं। भारत में जाति व्यवस्था तथा दक्षिणी अफ्रीका में श्वेत और प्रजातियाँ की व्यवस्था विभिन्न जातियाँ अथवा प्रजातियों में व्यवस्थापन का परिणाम है। इनके निहित स्वार्थों (उच्च द्विज जातियाँ तथा स्वेत लोग) को सदब यह आशा बनी रहती है कि शूद्र अथवा मरण लोग किसी दिन भी अपने प्रति अत्याय और अयोग्यताओं से पीडित होकर इन व्यवस्थाओं के प्रति विद्रोह कर सकते हैं।

सघप से विरोधी पक्षा की सामाजिक परिस्थिति निश्चित हो जाती है। व्यवस्थापन इसे औपचारिक बनाकर अग्रगण्य स्थायी कर देता है क्योंकि विजित (निबन्ध) विजिता (प्रबल) के सामने झुक जाना है और परिस्थिति अनुकूल आचरण करने लगता है। परन्तु समूह दूसरे की अधीनता यूनाधिक स्थायी रूप से स्वीकार कर सता है और दूसरे अपनी प्रभुता को बनाये रखने के लिये अधीनों के प्रति अपने दायित्वा का पूरा करने का प्रयास करता है। अतएव जिन पक्षा में व्यवस्थापन होता है वे एक दूसरे के प्रति दायित्वा और अधिकारों को निभाने लगते हैं। परन्तु फिर भी दाता पक्षा में प्रेम और घृणा की महावृत्तियाँ साथ-साथ बनी रहती हैं।¹

संक्षेप में व्यवस्थापन का प्रकृति व निम्नलिखित प्रमुख लक्षण हैं —

¹ In accommodation both love and hate attitudes coexist
Ogburn and Nimkoff *Handbook of Sociology* p 252

दोनों प्रकार के व्यवस्थापन में समझौता 'यूनाधिक' अस्थायी होता है और विद्यमान स्थिति पर निर्भर रहता है।

व्यवस्थापन की रीतियाँ

व्यवस्थापन लाने की अनक रीतियाँ हा सकती है। इनके विकास के दो आधार हात हैं (१) पक्षा में सम्बन्ध का प्रकार और (२) लोग की मस्कृति। गिलिन और गिलिन न व्यवस्थापन की ७ प्रधान रीतियाँ बताई हैं (१) बलप्रयोग के सामने झुटना, (२) समझौता (३) पचनिएण्य और सराधन (४) सहिष्णुता (५) स्थिति परिवर्तन, (६) उत्पादन और (७) युक्तिकरण।¹ हम यहाँ इन रीतियाँ का अति सक्षिप्त परिचय देंगे।

शारीरिक अथवा मानसिक बल प्रयोग के सामने झुककर अपने अधिकारों को छोड़ने को बल प्रयोग से वृस्तता कहते हैं। समझौते में लगभग समान शक्तिशाली पक्ष मध्य अथवा प्रतियागिता को छोड़कर अपने अपने कुछ स्वार्थों का त्याग कर मल कर लते हैं। दो समान शक्तिशाली पक्षा के सघष को यदि तीसरे पक्ष की मध्यस्थता से मटा जाता है तो इसे पचनिएण्य एव सराधन कहते हैं। पहली रीति में मध्यस्थ का निणय दोनों पक्षा को अवश्य ही स्वीकार करना पडता है। दूसरी रीति में मध्यस्थ समझौते की शर्तों का सुभाव दे सकता है, उन्हें स्वीकार करना या न करना सम्बद्ध पक्षा पर आश्रित रहता है। यह दोनों रीतियाँ मध्यस्थता के ही रूपांतर हैं। मध्यस्थता में तीसरा असम्बद्ध पक्ष सघषरत पक्षा के विचारों और दृष्टिकोणों को एक दूसरे तक ले जाता है और उन्हें उनका स्पष्टीकरण भी कर देता है। वह स्वयं अपना सुभाव या निणय नहीं देता।

सहिष्णुता में दोनों पक्ष एक दूसरे के दृष्टिकोणों और स्वार्थों के प्रति सहानुभूति और उत्तरता से साक्षत हैं और यथाम्भव उन्हें स्वीकार करने का प्रयास करते हैं। सहिष्णुता एवपनीय भी हा सकती है। पारस्परिक भेदा का नाति से महता ही सहिष्णुता है। स्थिति परिवर्तन व्यवस्थापन की बड़ी अगाधारण रीति है। अपने घम या मस्कृति को छोड़कर दूसरे घम या मस्कृति को अपना लेना स्थिति-परिवर्तन है। ऐसा ब्रुया व्यक्ति हा करत है पर कभा कभी समूह समूह में घम परिवर्तन किया है। उत्पादन व्यवस्थापन का बह प्रकार है निमम व्यक्ति या समूह प्रतिियागी अथवा सघषपरिमक नियाघा के स्थान पर एभी प्रतिियागिता को करने लगत है जो मथाय या मभाविन विराधी भी कुछ कुछ स्कार करे। द्य रीति में उन उद्गता का बाहर

1 (1) yielding to coercion (2) compromise (3) arbitration and conciliation (4) toleration (5) conversion (6) sublimation and (7) rationalization *Cultural Sociology* p. 409 Eldredge and Merrill in their work cited before have conted that both arbitration and conciliation ordinarily involve mutual compromise on the part of the conflicting groups

धार्मिक सम्प्रदाया में पारस्परिक आदान प्रदान और समायोजन के लिये सगठन, (५) सावजनिक प्रशंसा और पारितोषिक (७) व्यक्ति और समूह की मानसिक चिकित्सा, एवं (८) अनुसंधान और तथ्यों की खोज।¹

वर्तमान समय समाज में इन विधाओं के कारण व्यवस्थापन की प्रक्रिया कम बढोरे है। परन्तु व्यवस्थापन की प्रक्रिया अत्यधिक जटिल फिर भी है।²

सात्मीकरण

व्यवस्थापन की भाँति सात्मीकरण भी सामाजिक समायोजन का एक रूप है। प्रतियोगिता प्रतिकूलता और सघर्ष का स्वाभाविक परिणाम व्यवस्थापन है। यदि उन्हें आवश्यकतावश कुछ या अधिक समय के लिए नियंत्रित किया जाय और विरोधी पक्ष से समझौता कर लिया जाये। व्यवस्थापन सम्पन्न हो जाने पर सात्मीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

सात्मीकरण का अर्थ है असमान व्यक्तियाँ और समूहों का स्वार्थों और दृष्टिकोणों में समान हो जाना। पाक और बर्सेस की परिभाषा अत्यन्त प्रसिद्ध है।

सात्मीकरण, अन्तःप्रवेश और एकता की वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति और समूह दूसरे व्यक्तियों अथवा समूहों की स्मृतियों भावनाओं रखा का अपना लते हैं और उनका अनुभव और इतिहास में भागीदार बनकर उनका साथ एक सामान्य सांस्कृतिक जीवन में सम्मिलित हो जाते हैं।³

वागाडम ने लिखा है सात्मीकरण वह प्रक्रिया है जिससे अनेक व्यक्तियों की मनोवृत्तियाँ एक हो जाती हैं और वे एक एकता पूर्ण समूह में विकसित हो जाते हैं। धागबन और निमकाफ ने भी लिखा है कि सात्मीकरण की प्रक्रिया असमान व्यक्तियों और समूहों के स्वार्थों और दृष्टिकोणों को एक कर देती है।⁴

व्यवस्थापन में जो समायोजन होता है वह तीव्र और विशारदुक्त होता है। सात्मीकरण की प्रक्रिया बड़े धीरे धीरे (कमिक) और अचेतन होती है। इसमें व्यक्ति या समूह का दूसरे व्यक्ति अथवा समूह की अपभ्रान्ता में सम्मिलित होकर नई परिभाषाओं और भावनाओं को धीरे धीरे गन्ना करना पड़ता है। सात्मीकरण सामाजिक मनोवृत्तियों का एक संग्रहण है नई परिस्थितियों तथा भूमिकाओं की

1 Merrill and Tildredge *op cit* 402-7 [as adapted by them from R. M. Williams (Jr) *The Reduction of Intergroup Tensions* (New York 1947) pp 20-25]

2 See also *Accommodation* in chapter 10 of this book

3 Assimilation is a process of interpenetration and fusion which persons and groups acquire the memories sentiments and attitudes of other persons or groups and by sharing their experience and history are incorporated in a common cultural life *Introduction to the Science of Sociology* p 735

4 Assimilation is the process whereby individuals or groups once dissimilar become similar that is become identified in their interests and outlook *Man's Book of Sociology* p 735

प्राप्ति और नये प्रतीका में एक परिवर्तन है। इन प्राप्तिप्रक्रियाओं को सम्बन्धित रूप में बताने में हम सफल हैं।¹ सात्त्विकरण एक प्रक्रिया मात्र है और देश नहीं।

सांसात्विक समाज में विज्ञानात्मक संस्कृति का परिष्कृत रूप और जनसंख्या का निरन्तरमय न सार्वभौमिकरण का अत्यधिक व्यापक प्रक्रिया बना लिया है। हमें हमारे मध्य में हमें हमें तथ्य की सविस्तर विवेचना कर चुके हैं। सात्त्विकरण की सफलता का लिये दो दशासुओं का होना आवश्यक है (१) अर्थव्यवस्था में परिवर्तन और (२) प्राथमिक सामाजिक संस्था। भारतीय समाज का जाति-व्यवस्था का कठोर स्वरूप समाज का अन्तर्गत है। सात्त्विकरण की प्रक्रिया मुक्त बगैरे व्यवस्था वाले समाज (जैसे अमेरिका) का अर्थव्यवस्था और धर्म होगा। वर्तमान समाज की समाज संस्था अन्तर्गत समाज और संस्कृति का सात्त्विकरण का उत्कृष्ट उदाहरण है। समाज में भी विभिन्न सांसात्विक तथा सांसात्विक संस्थाओं का सात्त्विकरण से पूर्ण एकाकरण सम्भव हो गया है।

सात्त्विकरण, व्यवस्थापन और मन्मिथन

मनुष्य या मनुष्य जैसा धर्म व्यवस्थापन की वर्तमान संस्था में प्रविष्टिपूर्वक और सफल करने-करते उनसे अर्थव्यवस्था समाजोत्थान करने हैं तो व्यवस्थापन का प्रविष्टि सफल होना है। व्यवस्थापन मनुष्य और मनुष्य द्वारा धर्म विरासिधियों अथवा प्रविष्टिपूर्वक (अथवा नापसंद स्थिति) में अर्थव्यवस्था अर्थव्यवस्था करने की प्रक्रिया है। किन्तु अर्थव्यवस्था व्यवस्थापन जहाँ समाज होना है वहाँ सात्त्विकरण प्रारम्भ होता है। सात्त्विकरण में वर्तमान मनुष्य समाज अथवा मनुष्य मनुष्य समाजोत्थान होता है जिसमें उनका जिन विषयों और हितों का समाज में पूर्ण एकात्मक स्थापित हो जाय। पूर्ण सात्त्विकरण से पूर्ण सामाजिक एकात्मकता का अर्थ हो जाता है। सामाजिक एकात्मकता वह प्रक्रिया है जिसमें एक समाज का विभिन्न वर्गों का समाज मनुष्य अथवा दूसरे विभिन्न विभिन्न तत्त्वों का समाज एक मनुष्य मनुष्य में हो जाता है। मन्मिथन एक सामाजिक और त्रिविक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया मनुष्य वर्गों अथवा मनुष्य मनुष्य में अन्तर्गत में उनका स्वतंत्र और रूप रण का मन्मिथन होता है। मन्मिथन से समाजोत्थान उत्पन्न होता है। मन्मिथन का अर्थव्यवस्थापन और सात्त्विकरण समाज सामाजिक और सामाजिक प्रक्रिया है।

सात्त्विकरण की सफलता

सात्त्विकरण के सफलता के कारण हैं — (१) मनुष्यत्व (२) परिष्कृत सामाजिक संस्था (३) सामाजिक और प्रक्रिया समाज (४) समाज सात्त्विक समाज और (५) मन्मिथन। प्रक्रिया समाज का अर्थव्यवस्थापन समाज और मनुष्यत्व की

1. Miria JED-edge 00 00 p 40
Skill is gained in the process of coordinating the various classes ethnic groups or other diverse elements of a society into a unified whole.

भिन्नता, प्रभुता आधीनता, श्रेष्ठता हीनता की उग्र भावनाएँ तथा सामाजिक सपीन जम वारका से आत्मीकरण में बाधा पड़ती है।

एकीकरण

हम पीछे कह चुके हैं कि आत्मीकरण और उसकी सहयोगी सांस्कृतिक प्रतिष्ठा का परिणाम सामाजिक और सांस्कृतिक एकीकरण होता है यदि उनमें कोई बाधा न पड़े। बहुधा इस एकीकरण को हम सामाजिक एकता (social unity) कहते हैं। समाज एक कायशील संगठन है। अतएव प्रत्येक समाज में कुछ धरा में एकीकरण होना अनिवार्य है। सामाजिक एकीकरण में अन्त क्रिया के सामाजिक कारका का महत्त्व ता है किन्तु उसमें तथा सस्कृति प्रतिष्ठाना में अभिन्न सम्बन्ध है। किसी समाज में एकीकरण का अभिप्राय संगठन प्रथानुकूल व्यवहार, मनोवृत्तियाँ, हिंसा और भावनाधा के संगठन में है। यह सम्पूर्ण व्यवहार सस्कृति द्वारा प्रतिष्ठानित होता है। सहयोगी प्रक्रियाएँ अन्त कुछ व्यक्तियाँ तथा समूहों के बीच के भेदों का मेट देती हैं। तो क्या एकीकरण सामाजिक सजातीयत्व का समानार्थी है? कदापि नहीं। एकीकरण का अर्थ यह नहीं है कि समाज के व्यक्तियाँ तथा समूहों में कोई आन्तरिक भेद नहीं है और वे सब धाता में समान हैं। यदि इसे एकीकरण का लक्षण माना जाए तो फिर ससार का कोई समूह या समाज एकीकृत नहीं कहा जायगा।

गिनिन और गिनिन न सिखा है कि एकीकरण सजातीयत्व न होकर संगठन है।¹ एक समूह या समाज में एकीकरण का यही अर्थ होगा जिसमें उमक सम्म्या सामाजिक श्रेणियाँ और प्रस्थितियाँ और उमकी सस्कृति में सामान्य प्रयोजना अथवा लक्ष्य का प्राप्ति के लिए संगठन होगा। एक एकीकृत समूह में व्यक्ति और समूह में कोई भेद नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति का समाज में व्यवस्था में एक सुगम स्थान (अथवा अन्त स्थान) होता है और वह प्रथानुकूल ही आचरण करता है जो सम्पूर्ण सस्कृति के अनुकूल है तथा सभी सामान्य निम्न से निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति का ही प्रयत्न करत है। एकीकरण में सजातीयत्व नहीं हो सकता क्योंकि उममें ता अभिन्न तत्वा में अनाधिकार पारस्परिकता और मनुष्य एत मनुष्य और पूरक प्रसार के साथ का हाता आवश्यक है। एकीकरण काय कृत्ताना का भा पर्यायवाची नहीं है। एकीकरण के अभाव में भी अधिनतम कायकुशला सम्भव हो सकता है।

एकीकरण के प्रमुख लक्षण ये हैं पर्याप्त समाजाकरण सामान्य लक्ष्य तथा दृष्टिकोण और सस्कृति के तत्वा में परस्पर कायात्मक सम्बन्ध। प्रत्येक समाज में कुछ धरागत लक्ष्य मिलते हैं किन्तु यदि यह मूलभूत धरागत लक्ष्य ही ता फिर समाज में एकीकरण कदापि नहीं हो सकता। इसलिये हर समाज धरागत लक्ष्य धरागत लक्ष्य का

¹ Integration is organization rather than homogeneity Cultural Social by p 50

महान् कर्मा है किन्तु नारी धर्मयुक्तताया का विनष्ट कर सन्तुतना की प्रवृत्ति का संचन बनाता है। अपर्याप्त समाजीकरण और विस्मरण प्रतिपाद्यो एव प्राणिव महमति से निश्चित लक्ष्य एकीकरण में बाधक हान है।

प्राधुनिक समाज में बहुत विजातीयत्व (heterogeneity) है और व्यापक तथा भारी परिवर्तना न इच्छे अधिक विगटित कर दिया है। अतएव एतन्म एकीकरण के निरन्तर प्रयत्न हान रहन है। एक अधिक पूण सामजस्य लान व त्रिण समान व विभिन्न तत्वा में हर प्रकार का समायाजन करन का कागिण का जानो है। मासमा करण का प्रक्रिया इस प्रयत्न में अत्यधिक महायक हानो है। यह समाज व समस्य तत्वा—जनरानिया प्रयाया दृष्टिया विचारा तथा आशुओ का बुद्ध न बुद्ध एकाय पूण प्रतिमान में एकीकृत कर दना है। साथ ही, विविध सामाजिक गत्याया—परिवार प्राणिव राजनीतिक और शिक्षा की पद्धतिया और वन भूया तथा जीवन व विभिन्न मन्व्या में प्राचरण व प्रकारा में परम्पर इस प्रकार समायाजित हान का प्रवृत्ति या जानो है जिमन समाज व मन्व्या का रिमा भाग शीवा-नाती (stress and strain) का अनुभव नहीं हाना। एता हान पर समाज में एरीकरण या जाना है और उमके विभिन्न तय दान भेदा व हान पर भी परम्पर एक मन (fused) हो जान हैं। किन्तु एन प्रकार का मन्तुना स्थापित हाना है वह वनमान सामन्तित प्रीणागित और प्राकृतिक कारणों में निरन्तर विगटना रहना है और प्राणिव मन्वयन व शमी मा सम्पूण नयी हो पाना। यही कारण है कि प्रत्येक प्राधुनिक समाज में सामाजिक अन्तसमायाजन का बुद्ध न बुद्ध या हाना निरन्तर स्वाभाविक है।

सामाजिक नियन्त्रण

सतत् परिवर्तनशीलता हमारे समाज का प्रमुख गुण है। सामाजिक संरचना के विभिन्न भागों का विश्लेषण करते हुए हमने देखा है कि अस्थिर और चपल सामाजिक संरचना स्थायी बना रहती है। प्रत्येक अवस्था में उगका एक निश्चित स्वभाव होना है और उसने प्रदान तरा में परिवर्तन होने पर भी उत्त अत्रिक दृढता (persistence) दिखाई देती है। अतः यह प्रश्न उठता है कि सामाजिक संरचना में कृता और समन्वय बनाए रखने वाली कौन-सी शक्तियाँ हैं और वे कग कायशील होती हैं? इस प्रश्न का उत्तर में जिनना समाजशास्त्रीय साहित्य रचा गया है उस सामाजिक नियन्त्रण' के शोधक के अंतर्गत रखा जाता है। प्रस्तुत अध्याय में हम इस समस्त साहित्य की ऐतिहासिक समीक्षा करना उपयुक्त नहीं समझते हैं। उल्लेख पाठक उस अक्षय पढ सकते हैं।¹ इस समय हमारा प्रयोजन सामाजिक नियन्त्रण के वर्तमान अथ उसके मुख्य प्रकारों स्वरूपा साधनों और आधुनिक समाज में उसकी क्रिया (operation) का विश्लेषण प्रस्तुत करना है।

अथ और प्रयोजन

सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ उस ऋग से है जिनमें सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का एकता और स्थायित्व बन रहत है अथवा जिनमें यह समग्र व्यवस्था एक परिवर्तनशील गतुवन के रूप में क्रियाशील रहती है।² समाजशास्त्र का क्षेत्रीय समस्या सामाजिक व्यवस्था के व्यक्ति अथवा सम्पूर्ण और इकाई के सम्बंध का सहा निर्देश करना है। सामाजिक नियन्त्रण का सम्बंध इस समस्या के सैदान्तिक

1 Cutvitch and Moore *30th Century Sociology* Chapter on Social Control Section 1

2 -- By social control is meant the way in which the entire social order coheres and maintains itself—how it operates as a whole as a changing equilibrium. Maclver and Page *op cit* [137

और व्यावहारिक पक्षों से है हमें यह देखा है कि समाज व्यक्तियों के व्यवहार को किस प्रकार प्रतिमानित करता है और व्यक्तियों का प्रतिमानित एवं प्रमाणोत्तर व्यवहार किस प्रकार सामाजिक संगठन को बनाए रखता है। परन्तु ध्यान रहे सामाजिक नियंत्रण का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए सामाजिक नियंत्रण का व्यक्ति और समाज के तथाकथित संपर्कों से विशेष सम्बन्ध दिखाना परम्परागत मनोवैज्ञानिकों की प्रवृत्ति है। अमरुद्ध पृथक्-पृथक् व्यक्तियों पर व्यवस्थाएँ बनाना भी सामाजिक नियंत्रण का काम नहीं है और न यह व्यक्तियों को समाज में संगठित करने का वाइयंत्र है। इस प्रकार, समाज के अन्तर्गत आत्मनियन्त्रण (self-regulation) अथवा आत्मनियन्त्रण का भी सामाजिक नियंत्रण नहीं कहा जा सकता है। सामाजिक नियंत्रण सामाजिक विकास और प्रगति का एक यंत्र भी नहीं है और न आध्यात्मिकता का माध्यम। हाँ, सामाजिक नियंत्रण का निश्चय ही एक तनाव (tension) संपर्क और विद्रोह स्थितियाँ (revolt situations) से बँटा है जो व्यक्ति और सामाजिक जीवन के साधारण लक्षण हैं। व्यक्ति और समाज की दृष्टियों में परस्पर रिक्तता (reciprocity of perspectives) है। इसलिए उपरोक्त स्थितियों का विनाशना मह है कि विभिन्न स्तरों (depth levels) सम्पूर्ण प्रतिमानित नियमों मूल्य, विचारों और आदर्शों के बीच संपर्क प्रवृत्त रहता है किन्तु समाज व्यक्ति और समाज के बीच संपर्क संपर्क के ही नहीं होता है।

अतः सामाजिक नियंत्रण सामूहिक प्रतिमानों सामाजिक प्रवृत्तियों सामूहिक आध्यात्मिक धर्मों, मूल्य विचारों और आदर्शों के सम्पूर्ण वाग धर्मों सम्पूर्ण को कहा जा सकता है। इसमें उन क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का भी समावेश होता है जो प्रत्यक्ष इन सर्वोच्च सम्बन्धित हैं जिनमें सम्पूर्ण समाज उनका प्रत्यक्ष विनिर्दिष्ट सम्पूर्ण और उसमें भाग लेने वाला हर व्यक्ति अपने भीतर के तनावों और संपर्कों पर धरणात्मक अनुभवों के द्वारा कायू पा लेता है और नए रचनात्मक प्रयत्नों की धार प्रदान करता है।¹ गुरुद्वारा को यह परिभाषा सामाजिक नियंत्रण का अर्थ विनिर्दिष्ट स्पष्ट कर देना है। प्रो० गिनिन और गिनिन का परिभाषा भी अर्थ सामाजिक नियंत्रण सुभाव अनुभव प्रतिरोध और हर प्रकार के अन्तःप्रयोग जिनमें शारीरिक बल भी शामिल है जो उपायों को एक व्यवस्था है जिनमें एक समाज अपने उन सम्पूर्ण के व्यवहार का अनुमोदित प्रतिमान के अनुकूल रहता है अथवा जिनमें एक सम्पूर्ण अपने सम्पूर्ण के व्यवहार का अपने अनुकूल शान लेता है।²

1 Gurinich and Moore o cit pp 28-29

2 We shall define social control as the system of measures—suggestion, persuasion, restraint and coercion by whatever means including physical force—by which a society brings into conformity the approved pattern of behaviour a subgroup or by which a group moulds into conformity the members. *Culture & Sociology* p (9)

उपरोक्त सभी परिभाषाया का सारांश यह है कि सामाजिक नियंत्रण प्राणिक रूप से उन सब आयोजित और आयोजना रहित प्राथमिक प्रक्रियाया का सामूहिक नाम है जिनमें व्यक्ति को समूह और समूह को विशद समाज के आदर्शात्मक प्रतिमान (normative pattern) मूल्या विचारा एवं आदर्शों के अनुसरण व्यवहार करने को प्रलाभित (induce) या बाध्य (compel) किया जाता है।

सामाजीकरण की प्रक्रिया पर पिछले अध्याय में प्रकाश डाला गया था। सामाजीकरण में ऐसी प्रक्रियाया का समावेश होता है जिससे व्यक्ति के विकास की अवधि (development period) में उस समूह पर दबाव डालकर उसकी मनोवृत्तिया और व्यवहार का अनुमोदित आचरण व्यवस्था से एकीकरण कराता है। सामाजिक नियंत्रण में एक समूह के विशेषकर प्रौढ़ व्यक्तियों को अथवा समाज के सघटक समूहों को सकारात्मक अथवा नकारात्मक रीतिया (निरसन elimination) से एकता में डालने का प्रयत्न किया जाता है। सामाजीकरण व्यक्ति में सामाजिकता के विकास के लिए जिन प्रक्रिया का आविर्भाव करता है उसका व्यक्ति के जीवन में निरंतर परिपुष्टि करने का कार्य सामाजिक नियंत्रण का है। यह समाज के उपसमूहों अथवा समूहों को भी एक कार्यशील एकता का अंग बनाता है। इसीलिए सामाजीकरण और सामाजिक नियंत्रण दोनों एक ही वस्तु नहीं हैं।

सामाजिक नियंत्रण का उद्देश्य (प्रयोजन) यह है कि सामाजिक व्यवस्था में एक संपन्न अंश में हस्ता बनी रहे नहीं तो व्यक्तियों का जीवन अनिश्चित और कष्टमय हो जाएगा और सामूहिक सम्मिलन में भारी बाधा पड़ेगी। सामाजिक संगठन की शाश्वत उपलब्धि और अस्थिरता में हड़ता कायम रखकर उनका शाश्वत संरक्षण करना तथा विभिन्न समूहों के कार्यों में समरूपता लाना ही सामाजिक नियंत्रण का प्रयोजन है। व्यक्ति और समाज के बीच के तदाकथित भेदों को मटाना, अगमबद्ध पृथक्-पृथक् व्यक्तियों पर सामाजिक व्यवस्था स्थापना समाज के संगठन या यत्र अथवा प्रगति और आध्यात्मिकता का माध्यम बनना सामाजिक नियंत्रण के कार्यों और प्रयोजना से परे है। यह वचन सभी शक्तिया (forces) के अध्यापार (operation) में सम्मिलित है जो सामाजिक संरचना में सुदृढ़ता और सतुता बनाए रखनी है।

सामाजिक नियंत्रण के प्रकार

सामाजिक नियंत्रण के प्रकार (types or kinds)¹ की कोई निश्चित संख्या नहीं है। मूल्य मापन (value scales) आदर्शों और विचार पद्धतियों का विभिन्नता के अनुसार सामाजिक नियंत्रण के भी अनेक प्रकार हो सकते हैं। परम्परागतता कायम करना जान और जिना सामाजिक नियंत्रण के मुख्य अंग या प्रकार

¹ Some sociologists have called them as factors of social control

क जा सकन है। प्रत्येक विशिष्ट समाज का इनमें अधिमान क्रम (order of preference) अपना अपना है। कहीं घम सबसे प्रबल है ना कहीं चान एक शिखा।

सामाजिक नियंत्रण के उपरान्त प्रकारों में से प्रत्येक के कई उपकार ह जा सकते हैं। प्रत्येक समाज या समूह में किसी विशिष्ट प्रकार के उपकारों में से सभी का समान रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता है। उदाहरणार्थ चान को ले लीजिए। दृष्टिकोण (perspective) अथवा प्राविधिक अथवा रहस्यात्मक अथवा गजनेतिक अथवा वैज्ञानिक अथवा नाशनिक चान में से काइ भी चान एक समाज में मरस प्रबल हो सकता है। कानून के विषय में ना यही कहा जा सकता है। कहीं सामाजिक कानून प्रबल होता है और कहीं अत वैयक्तिक कानून अथवा मरगटिन या अमरगटिन कानून अथवा पूर्वनिश्चिन कानून अथवा लोचपूर्ण अथवा अन्तर्गत सम्बन्धी (instutive) कानून शक्ति।

सामाजिक नियंत्रण के स्वरूप

सामाजिक नियंत्रण के प्रकारों (types) और स्वरूप (forms) में भेद करना आवश्यक है। नियंत्रण का हर प्रकार तीन विभिन्न मुख्य स्वरूपों में प्रकट हो सकता है

- (अ) प्रतीकात्मक-मासृतिक प्रतिमान जिसमें मासृतिक चरना प्रतिमाना नियमों और प्रतीकों का समावेश होता है। इनके माध्यम से सामाजिक नियंत्रण का जो स्वरूप व्यक्त होता है उसे अग्रगतता नियमित स्वरूप (rather routinized form) कहा जा सकता है।
- (आ) मूल्य विचार और शक्ति। इनके माध्यम से शक्ति चान सामाजिक नियंत्रण का स्वरूप अग्रगतता अग्रित स्वाभाविक या सहज (relatively more spontaneous) है।
- (इ) ना मूल्य विचारों और शक्तियों की अनुभूति इच्छा और निर्माण करना। मूल्यचरन की प्रयोग मासृतिक अनुभूति पराशरण के, अकाशा के और मासृतिक निर्माण के अनुभव से सामाजिक नियंत्रण का जो स्वरूप व्यक्त होता है उसे सबसे अधिक स्वाभाविक या सहज (most spontaneous) कहते हैं।

शुरुआत के अनुसार इन स्वरूपों में से प्रथम का मरगटिन और दूसरे के तीसरे का सहज सामाजिक नियंत्रण कहा जा सकता है। मरगटिन सामाजिक नियंत्रण प्रतिमानों और नियमों द्वारा लागू होता है और सामाजिक नियंत्रण का विचारपर प्रमाणीकृत, दृढा दृषा (stereotyped) और टास (crystalized) स्वरूप होता है। सहज सामाजिक नियंत्रण प्रतीकों और अग्रप्रतिमानित स्वभाव में प्रारम्भ होता है और और मूल्य विचारों और शक्तियों के द्वारा तीसरे नियंत्रण में अग्रित जाता

है। इसकी सत्रम शक्तिशाली अभिव्यक्ति सामूहिक अनुभव, आकांक्षा और निम्नलिखित मानी है।¹

गुरविच के मत में सामाजिक नियंत्रण के कम से कम चार स्वरूप हैं जो हमारे छ प्रधान प्रकारों के साथ जुड़े हैं —

(१) संगठित सामाजिक नियंत्रण (जो सामाजिक नियंत्रण के सहज स्वरूपों से सम्बंध के अनुभार या तो स्वच्छाचारी (autocratic) हो सकता है अथवा जनतन्त्रात्मक)

(२) संगठन रहित सामूहिक उत्पत्ति और प्रतीकों के माध्यम से होने वाला सामाजिक नियंत्रण जो या तो यूनानिक अथवा मर्यादित व्यापार (routine) से सम्बंधित है अथवा यूनानिक रूप में नमनीय और लाचपूण है (सम्बन्ध परम्पराओं से लेकर दैनिक अभ्यास और निरन्तर परिवर्तनशील फ़ंशन और प्रतीक तक इस वर्ग में रगे जा सकते हैं)

(३) मूल्य विचारों और आदर्शों के द्वारा होने वाला सहज सामाजिक नियंत्रण

(४) प्रत्यक्ष सामूहिक अनुभव आकांक्षाओं और निर्माणा (विद्रोह तथा प्रतिक्रिया गति) के माध्यम से होने वाला अधिक सहज सामाजिक नियंत्रण।

इन स्वरूपों में किन्ना कितना उपयोग होगा और कौन कितना प्रबल रहेगा यह विभिन्न प्रकार के समाजों में भूला और सामाजिक सम्बन्धों (social bonds) तथा विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर रहेगा।²

स्मरण रहे विभिन्न समाज शास्त्रियों ने सामाजिक नियंत्रण के स्वरूपों को विभाजन करने में वर्गों में विभक्त किया है (कठोर और नमनीय आंतरिक और बाह्य अथवा अथवा निहित और गहना अथवा प्रकट अस्थायित और मर्यादित, अनौपचारिक और औपचारिक आदि)³ उनमें इस विषय का सम्बन्ध में अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं मिलती है। आइए हम तीन वर्गीकरणों का मध्यम में विवेचन करें।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नियंत्रण

कार्ल मानहार्ड (Karl Mannheim) के विचार में सामाजिक नियंत्रण के दो स्वरूप होते हैं (१) प्रत्यक्ष और (२) अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष नियंत्रण उन वहाँ है जहाँ व्यक्ति के व्यवहार का नियंत्रण उन लोगों की प्रतिप्रियाओं में हो जा सकता है जो सीधे हैं। हमारे मान्य पिता, शिक्षक माता के विचारों में प्रतिप्रिया गतिप्रिया

1 Gurwih and Moor op cit p 291

2 Ibid p 294

3 Rigid and Elastic inward and outward conscious or implicit and conscious of explicit uninstitutionalized and institutionalized informal and formal etc etc

पढानिया तथा माय काम करन वाल व्यक्तिना के मता विचार प्रशसा निदा मुभान अथवा अप्रत आदि का हमार व्यवहार पर महस प्रभाव पडता है ; प्राथमिक समूह म मन्था पर एसा ही नियंत्रण हुना है । माध्यमिक समूह और मस्थावृत सम्बन्ध व अतगत व्यक्ति के व्यवहार पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण हुना है ; इस प्रकार क नियंत्रण की मुख्य विशेषता यह है कि नियंत्रण का सान व्यक्ति स बहुत दूर हुना ह । उमम दूर पर स्थित कोई सामाजिक अधिकरण (social authority) प्राकृतिक सामाजिक और सामूहिक बरका व प्रबन्ध से हमारे व्यवहार को वादित निशा म अनुनय अथवा बाध्यता (compulsion) स प्रभावित करता है ; स्थितिया क इत ग्रावा व पीडे भा जीन जागत व्यक्ति हुने हैं किन्तु के प्रभावित व्यक्ति म अदृश्य रहत हैं । एम प्रकार क नियंत्रण क साधन कम प्रकट और अधिक सूक्ष्म हुना हैं । वतमान जटिल समाजा म सामाजिक प्रविधियाँ (social techniques) इमी प्रकार क साधन हैं ।¹ अप्रत्यक्ष नियंत्रण म व्यक्ति के काय अथवा विचार (outlook) एव आत्मा का अचतन अथवा चेतन नियमन किया जाना है ।²

य अप्रत्यक्ष नियंत्रण अन्तः प्रसार क हात है किन्तु अन्तिम अवस्था म व प्रत्यक्ष प्रभावा (नियंत्रण) द्वारा ही क्रियाशील हुना है ।

अप्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण के प्रमुख साधना म परम्परागत सस्थाया प्रथाया नकनीन व्यवहार (rationalized behaviour), स्थितिया म परिवतन और सामाजिक यन्त्रा (social mechanism) का समावेश किया जा सकता है ।³

सकारात्मक और नकारात्मक नियंत्रण

किन्तु यग न सामाजिक नियंत्रण का वर्गीकरण उमकी रीतिया (methods) क दृष्टिकोण म किया है । सामाजिक नियंत्रण की दो मुख्य रीतियाँ ह। सकारात्मक व नकारात्मक ।

प्रशंसन म किण जान वाल सामाजिक नियंत्रण का सकारात्मक (positive) क संरत है और दण्ड पर आधारित को नकारात्मक (negative) । पुरस्कार अथवा प्रशंसन कद स्या म लिया जा सकता है । कावार्थी, प्रशसा वस्तु धन या पदवी प्रदान करना पुरस्कार म शामिल है । व्यक्ति इनका प्राप्त कर सम्मानित अनुभव करता है । इनकी प्राप्त की आशा म लाग समाजानुमोदित व्यवहार करने हैं और सामाजिक परम्पराया प्रथाया मूल्या अथवा धार्मिकी अवहनना नही करते

1 Karl Mannheim *Man and Society* Routledge and Kegan Paul London (1951) Part V (IV) p 474

2 *Ibid.* 239-65

3 K. Mannheim *op cit* pp 285-311 Social mechanisms may include competition division of labour distribution of power the methods of culture social hierarchy and distance and the mechanism which determine whether we shall rise or sink in it

हैं। पुरस्कार मोन्निर (जैस गावास, वाह वाह¹) भौतिक (घन वस्त्र, आभूषण, भूमि अथवा अन्न वस्तु) और प्रतीनात्मक हा सक्ता है। बिद्यालय मास्वृत्तिक ममिनिया, राज्य आदि पुरस्कार प्रदान करते हैं। दण्डात्मक नियंत्रण की मुख्य प्रवृत्ति यह है कि व्यक्ति के अवांछित व्यवहार के लिए दण्ड दिया जाए अथवा दण्ड देने की धमकी। बच्चे को पीटना एन० मो० सी० और सेना में बडैट या सिपाही को फेंटींग की सजा शारीरिक यातना कारावास अथवा भृत्य-दण्ड सभी रूप के विभिन्न रूप हैं। दण्ड अहिंसात्मक या तम उग्र भी होता है। मां बाप बहुधा बच्च की शरारत से नाराज हाकर उसमें स्नह नहीं करते। समुदाय द्वारा किसी दुष्काय के लिये व्यक्ति का बहिष्कार (boycott) और उसके सुख दुख के प्रति अयमनस्कता उसकी याजनामा की ताड़ फोड़ अथवा उसका जाति-बहिष्कार भी उपरोक्त प्रकार के दण्ड हैं। दण्ड के मौलिक रूप में भला बुरा बहना व्यंग्य (ridicule), हँसी, उपहास (satire) आदि का समावेश होता है। शारीरिक दण्ड में जाति-बहिष्कार (या समूह बहिष्कार) सबसे गम्भीर है। हिन्दू समाज की जानियों में इस प्रकार के बहिष्कार से व्यक्ति की पूजा सामाजिक उपमा होती है। वह अपने परिवार स्त्री, बच्चा तथा समूह से अलग हो जाता है। न उसका हाथ का बोझ पानी पीता है। और न उसे बाढ़ अन्न वन में खाना पीना पता है। यदि किसी परिवार को जाति या तिरागी से निवाल दिया जाय तो उस परिवार की लड़कियाँ की शान्ति खान पानी घराना में नहीं हा तकनी और ताड़ना का विवाह तो राच घराना के अतिरिक्त बही हो ही नहीं करता।

अनौपचारिक और औपचारिक नियंत्रण

सामाजिक नियंत्रण का अनौपचारिक और औपचारिक नियंत्रण में भी वर्गीकरण किया जा सकता है। हमारा प्रत्यक्ष नियंत्रण तथा प्रथा और परम्परा अनुमानित व्यवहार अनौपचारिक नियंत्रण के उदाहरण हैं। हम अपना समाज की लोक रीतियाँ प्रथाएँ और मूल्य के अनुसार सहज रूप से व्यवहार किया करते हैं। हम उनके प्रभाव के प्रति अचन अथवा अचिन्तन भर हाते हैं। इस प्रकार का व्यवहार करने की हम आदत पड़ जाती है। हम व्यवहार का करने में किसी अनुमान अथवा स्वावृत्त का अनुभव नहीं हाता है। हम पर समाज के सरकार दत्तन और धीरे धीरे स्थायी पतत हैं कि हमारा मारा व्यवहार स्वाभाविक-सा लगता है। अनौपचारिक नियंत्रण के अभाव में नियंत्रण भी अभाव है किमती प्रति हम गहन हाते हैं। हम यह निश्चिन्त रूप से जात हाता है कि यदि अमुक प्रकार का व्यवहार करने तो अगला अथवा बहिष्कार उपगत अथवा दण्ड के पात्र हागे। यद्यपि अनौपचारिक नियंत्रण चाह पाने हा या सचता अक्षमाणीकृत रूप में किया जाता है। अतिरिक्त अन्तर्गत और अन्न प्राथमिक समूह में अनौपचारिक नियंत्रण में ही व्यक्ति के व्यवहार का नियंत्रण हाता है। हमारे समीपस्थ ताग प्रथम और

सुरत ही हमारे व्यवहार का अनुमान अथवा निर्णय करते हैं जो उनके शक्ति भाव भंगिया और क्रियाशाली व्यक्त होता है। वर्तमान जटिल और अधिक संगठित समाज में अनौपचारिक की अपेक्षा औपचारिक नियंत्रण अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। सामूहिक समूहों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष अधिकारी और अनुबन्धीय होते हैं। इसी प्रकार प्रत्यक्ष समूहों और समिति अपने सम्बन्धों के नियमन के लिए निश्चित नियम और संहिताएँ बनाती है। आवश्यक-संहिता के उन्नयन पर निश्चित सुझाव या सुझाव दिया जाता है। इसी प्रकार राज्य, स्थानीय निकायों पंचायतों और अन्य संगठनों के कानूनों की व्यवस्था पर दण्ड विनयता है।

सामाजिक नियंत्रण के प्रतिनिधि

सामाजिक नियंत्रण के अधिकरण (agencies) उसकी स्वरूप और प्रकार से भिन्न-भिन्न हैं। समूह समाज, समूह अथवा अन्य सामाजिक संगठन (मन्दिर, धार्मिक सम्प्रदाय धार्मिक सभ कनक, विद्यालय आदि) ही सामाजिक नियंत्रण के नियमों का निमाण करते हैं और वही अपने सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए उन नियमों को लागू करते हैं। प्राथमिक समाज में परिवार राज्य विद्यालय आदि समितियों व्यावसायिक और धार्मिक सभ राजनतिक दल धार्मिक समितियों और शैक्षणिक मन्दिरों तान विद्यालय तथा कला के क्षेत्रों में स्थापित समितियों या संगठन सामाजिक नियंत्रण के निमाण और परिपालन के अधिकरण हैं। हमारे देश में परिवार जाति-पंचायत और धार्मिक पंचायत ने बहुत लम्बी अवधि तक सामाजिक नियंत्रण के शक्तिशाली अधिकरण का काम किया है। प्राथमिक जन्म समाजों में प्राथमिक समूहों और समितियों की अपेक्षा द्वितीयक समितियों की संस्था और शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई है। द्वितीयक समितियों द्वारा नियमों और लागू किया हुआ सामाजिक नियंत्रण अधिकारी परामर्श और औपचारिक होता है।

सामाजिक नियंत्रण के अधिकरण (समूह और समितियों) किसी प्रकार के नियंत्रण का निमाण कर उस लागू कर सकती हैं। प्रत्यक्ष समूह सिद्धान्त के प्रसार के सामाजिक नियंत्रणों को स्थापित करने का सक्रिय कर्ता होता है। ये कर्ता सामाजिक नियंत्रण को सम्पूर्ण प्रक्रिया में सक्ति भी मन को उत्पन्न और लागू कर सकते हैं। सामाजिक नियंत्रण के क्रिय प्रकार और स्वरूप का वे चुनता चाह सकते हैं।

सामाजिक नियंत्रण के साधन

हम प्रकार के सामाजिक नियंत्रण की स्थापना के लिए इनके साधन (means), प्रविधियों (techniques) अथवा यंत्र (instruments) का प्रयोग

विया जाता है। आधुनिक सम्य समाजा में इनकी मर्यादा का अनुमान लगाना कठिन है। सामाजिक नियंत्रणा की अनगना तथा सामाजिक स्थितियों और सामाजिक नियंत्रण के प्रतिनिधियों का अनन्त सत्या के कारण जितने साधन स्तमाल किए जाते हैं वे बहुत ही विविध सापेक्षिक और लोचपूण होते हैं। इनको निश्चित करना और विवरण प्रस्तुत करना समाजशास्त्र की प्रत्यक्ष विषयवस्तु नहीं है।¹¹ फिर यह भी निश्चित नहीं है कि सामाजिक नियंत्रण या प्रतिनिधि किसी विशेष प्रकार या स्वरूप के साथ विशेष साधन ही प्रयोग हों। विभिन्न प्रकार, प्रतिनिधि या स्वरूप के साथ एक विविध प्रकार के साधन प्रयोग हो सकते हैं अथवा भिन्न प्रकार के। प्रा० मिलिन और मिलिन ने समस्त साधना का दो वर्गों में विभक्त किया है परम्परा से प्रचलित (conventional) और विशेष रूप से निर्मित (specifically devised)। आधुनिक राजकीय नियम समितिक संहिताएँ यात्रिक साधना से प्रचार-पत्र व पत्रिकाएँ अथवा नियमित कला आदि विशेष रूप से निर्मित साधन हैं जिनका वर्तमान समाजा में सामाजिक नियंत्रण के लिए उपयोग होता है। प्रयाजनरीनियों रुटियों धर्म नीतियाँ नकृत्य और स्थानीय लाजमत (public opinion) आदि साधन परम्परा से प्रचलित हैं। आधुनिक जटिल समाजा में सामाजिक नियंत्रण के परम्परागत साधना की अपवाप्तता और पारस्परिक सघन न उन्हें बहुत शिथिल कर दिया है। उनका उल्लंघन करके भी व्यक्ति अपने समूह की निजा बहिष्कार आदि से बच सकता है। अतएव औपचारिक अथवा विशेष रूप से निर्मित साधना में नियंत्रण स्थापित करने की आवश्यकता बढ़ गई है। इन साधना के प्रभाव से बचन की इच्छा व्यक्ति में बहुत प्रबल होती है। क्योंकि यह उन्हें ऊपर से थापा गया श्वाक समझता है। नू सामाजिक नियंत्रण की अधीनता से तभी निजा भागता है जब उसे उपयुक्त अवसर मिले। इससे आधुनिक समाजा में नियंत्रण की समस्या बड़ी बठिन है।

समाज के नियामक सिद्धांत

यह एक बर्णनिक तथ्य है कि जगत् प्रकृति का व्यवस्था के निर्माण और रक्षण के नियम या विधान (rules or laws) होते हैं वैसे ही समाज के निर्माण और संरक्षण के नियम होते हैं। सामाजिक पटनाओं के अस्तित्व और व्यवहार में ये विधान व्यक्त होते हैं। इन्हीं नियमों के कारण समाज की व्यवस्था में एकता और सुदृढ़ता बनी रहती है। किन्तु समाज के नियमों में प्राकृतिक नियमों की तुलना में बड़े भिन्नताएँ हैं। समाज के नियम आदर्शात्मक (normative) होते हैं जो यह निर्धारित करते हैं कि हमारे धर्म (समूहों और व्यक्तियों) का व्यवहार क्या हो। ये प्राकृतिक विधानों की ही भाँति सदैव ताबहीन और एकरूप नहीं होते हैं। समाज के नियमों

1. Curutch & Moore op cit p 295

की जैसी मानव प्रकृति में गयी है। मनुष्य का शरीर, उसकी आवश्यकताएँ और समाज की नियंत्रण आवश्यकताएँ (awareness) और मनुष्य तथा समाज की सामाजिक अनुकूलता अथवा समानता सामाजिक नियंत्रण का आधार है। चूंकि मनुष्य की इच्छाएँ आवश्यकताएँ में परिवर्तन आती रहती हैं, उनकी अभिव्यक्ति नए रूपों में आती रहती है इसलिए सामाजिक नियंत्रण के नियामक विधानों में स्थिर नहीं रह सकते हैं।

समाज के नियामक विधानों में प्रमाण है कि वह समूह में सदस्यों के पारस्परिक तथा सम्पूर्ण समूह के प्रति होने वाले आचरण पर नियंत्रण करने के लिये स्थापित किया है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मनुष्यों पर सामाजिक नियंत्रण की उनके सामकें बना अथवा अतीत की पीढ़ियों का प्रभाव है। सामाजिक नियंत्रण की तुलना एक विधानों में भी करना गलत होगी जैसे स्वामी के दास पर अथवा साम्राज्य के विजित देश पर। इन बातों का नियंत्रण का दास और विजित देश स्वीकार करने के लिए विवश होते हैं और उनके विधानों में उनका कोई हाथ नहीं होता है। सामाजिक विधान अतिक्रान्त अर्थ में हैं जिनमें सम्पूर्ण समूह में अपने बौद्धिक स्तर अथवा अथवा पर सामाजिक जीवन की स्वीकृत सुविधाएँ एक आवश्यकताओं से अनुकूलन किया है। समाज के नियामक विधानों में अपने अतीत की विरासत में अवश्य भिन्न है किन्तु उन ही विचारों से जिनमें समूह आधारित तथा उन विरासत का स्वीकार करता है। विरासत में प्राप्त नियंत्रण में यथासंभव आवश्यकताओं के अनुसार अद्यतन या सुधार भी किए जाते हैं।

सामाजिक नियंत्रण की अतिरिक्त विरासत यह है कि उनके साथ दायित्व (obligation) की भावना जुड़ी रहती है। उस जिन लोगों का नियंत्रण होता है उनका नावनाह और विवश जागृत रहते हैं। इन नियंत्रण की उपस्था अथवा अथवा अथवा विरासत करने वाले लोगों की भी कमी नहीं होती है। छोट और बड़े समूहों के बीच अंतर पर अर्थ होता है और इसी प्रकार समूह और उनके अन्तर्गत के बीच भी अंतर पर अर्थ हो सकता है। स्वयं लोगों का सामाजिक नियंत्रण के प्रति अर्थ में बड़ी परतानी होता है। एक अर्थ में भी अर्थगुणित है। समाज के अर्थ में अर्थ या समूहों द्वारा बनाए गए नियंत्रण का प्रतिपाद्य अर्थ में या समूह करने हैं और अथवा अर्थ पर उन्हें नष्ट कर देते हैं। सामाजिक नियंत्रण में समाज रूप में स्वीकृत होता है और न समाज रूप से उनका पालन आता है। वे सामाजिक और आर्थिक अर्थ में हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि सामाजिक नियंत्रण के दो कार्य हैं (१) अर्थ और अर्थ के अर्थ में प्रमाणित और स्वीकृत अर्थ में अर्थ करने और (२) अर्थों के अर्थ में अर्थ करने के लिए अर्थ और अर्थ पर अर्थ करने।

समस्त सामाजिक नियमों को कुछ व्यवस्थापना (systems) में वर्गीकृत किया जाता है जिन्हें संहिताएँ (codes) कहते हैं। संहिता का अर्थ बानूना अथवा नियमों का व्यवस्थित संग्रह है।¹ मनुस्मृति एक सामाजिक संहिता है जिसका सचनन मनु ने किया था। साधारणतया सामाजिक संहिताओं को पांच प्रकार में विभक्त किया जाता है — धार्मिक संहिता, आचार संहिता, बानून या विधान की संहिता, प्रथा की संहिता, और पैशन की संहिता। सभी प्रकार की संहिताओं की सामान्य विशेषता यह है कि उनके प्रादेशों (prescriptions) को अवहेलना या उल्लंघन से रक्षा करने के लिए विशेष प्रबंध किए जाते हैं जिन्हें सम्मोदन (sanctions) कहते हैं। किन्तु संहिता की अवधि अथवा उल्लंघन के लिए समाज जो विशेष दण्ड निश्चित करता है उसे सम्मोदन कहना अधिक उपयुक्त होगा।² विशेषाधिकार से वंचित रखना अधिकारों को छीन लेना जुर्माना करना कारावास अथवा मृत्युदण्ड देना आदि सम्मोदन के विभिन्न स्वरूप हैं। प्रत्येक प्रकार की संहिता के सम्मोदन का रूप निश्चित और पृथक् होता है और प्रधान संहिताओं की आदेश शक्ति भी कम या अधिक हो सकती है। प्रत्येक संहिता की मत्ता का समान शक्तिशाली नहीं माना जाता है।

अब हम यह विचार करना है कि आधुनिक समाज में सामाजिक नियमों के विभिन्न साधन कहां तक प्रभावपूर्ण हैं और समुचित सामाजिक नियमों के लिए किन माध्यामों का पुनर्गठन करने की आवश्यकता है।

आधुनिक समाजों में नियमों के साधन³

आधुनिक समाजों में समस्त नियमों को चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं (१) समितिक संहिताएँ (२) सामुदायिक संहिताएँ (३) आचार संहिताएँ, (४) अध्यात्मिक संहिताएँ। इनमें से समितिक और अध्यात्मिक संहिताओं में अत्यंत अंतरांतरा नियम हैं। आदिम समाजों में इनके प्रकार की सामाजिक संहिताएँ नहीं थीं। अधिक सम्बन्धी समूहों के आदेशात्मक मानकों और प्रथाओं में ही सभी प्रकार की संहिताओं के अभिज्ञान नियम समाविष्ट थे। यद्यपि समस्त समाजों की संहिताएँ एक दूसरे से बिल्कुल स्वतंत्र और औपचारिक दृष्टि में पृथक् होती हैं फिर भी समाजों में और सम्मोदन पृथक् समूहों के संरक्षण में होता है। साधारणतया सामाजिक संहिताओं की शक्ति और विभिन्नता समाज की जटिलता के समक्ष ही होती है। सर्वोच्च सम्मोदन में राज्य की संहिता सामाजिक व्यवस्था में साधारण ढाँच का अधिक

1 Code is a systematic collection of laws or rules

2 Sanction refers to the specific penalty attached by society to the violation of the code MacIver and Page op cit p 139

3 C. MacIver and Page *Society* Chapters 7 and 8 Gillin and Gillin *Cultural Sociology* Chapter 28 Elliot and Meertill *Social Disorganisation* p 13 and Mannheim *Man and Society* pp 274-310

बनाए रखती है किन्तु उनकी पूरक एसी धनक सामाजिक महिनाएँ हानी हैं जो अप-
 क्षयवा प्रतिक लाचयुक्त हानी हैं। आर्थिक महिनाएँ व्यावसायिक सञ्चार की सहि-
 नाएँ, पारिवारिक जीवन की सहिताएँ, श्रीडा-समूह और धनीपचारिक गुटा की
 महिनाएँ राज्य की सहिताया की पूरक कही जा सकती हैं। एक विविध बात यह है
 कि मन्दिनाया व उन्नयन कर्नाया की भी अपनी महिनाएँ और उनस सम्बद्ध सम्मो-
 त्त होते हैं। चारा डबेता जयकटा, बदमाशा का सारा व्यवहार उनक सत्तर के
 नियमा व अधीन रहता है। इनके यहाँ चरम सम्मोत्तन बल प्रयाग है क्योंकि यदि
 इनके बीच का कर्द सधय समभौत या पच निगम्य म नय नहीं हुआ तो विराधी की
 हया अथवा अय प्रकार की हिसा तक करन म य लाग नहीं डरत है।¹

धम और नीतिया

धम और नीतियाँ (morals) का मापन म बहुत धनिष्ट सम्बन्ध है।
 उनकी महिनाओं म अन्तर करना कठिन जाता है। उनकी सत्ता और सम्मानन व
 आचार पर उनम भेद अवश्य किया जा सकता है। आचरण व नियम निर्देश करना
 नीतिया का क्षेत्र है किन्तु इस क्षेत्र म धम का भी प्रवेश होता है क्योंकि वह भी
 आचरण सम्बन्धी नियमा का निर्देश करता है। इसलिए धम और नीतिया म स्पष्ट
 भेद दिखाना आवश्यक है। धम म इवन मनुष्य और मनुष्य के बीच ही नहीं मनुष्य
 और पारलौकिक सत्ता मे सम्बन्ध सम्निहित होता है। इसलिए इसका सम्मादन अति
 सामाजिक (supra social) होना है। मनुष्य इश्वर, स्वता अथवा भूत प्रत व
 श्रेय के भय से अथवा नरक की यातनाया म बचन के लिए अथवा इच्छा से दूर हो
 जान के भय म धार्मिक नियमा का नही ताडता है। अपन माधी मनुष्या के प्रति
 न्या, मया, सहानुभूति और सहनशीलता सिखात समय भी उस यही भावना रहती
 है कि ईश्वर व वत्ता का प्रेम या महायत्ना करना दुःख की घाता का पावन है।
 'ईश्वर व प्रयाजना व अनुकूल ही मनुष्य अपन कायों और विचार का वतान का
 प्रमाण करता है। धर्मानुकूल आचरण न करन पर हमम पापी (sinner) हान की
 भावना हानी है।

नीतिया का सम्मानन सामाजिक हाना है। जब हम कोई धर्मेतिर (immoral)
 काय करत हैं तो हम यह निश्चित रूप म जान जाता है कि हमारा दुःखचार मे बडा
 सामाजिक धनिष्ट हा जायगा। हम यन् प्रदान जाता है कि हमन काइ गनती
 की है। धार्मिक की धपना आचार-मन्दिना म विरगशीलता का प्रायाय है। हमारा
 विवेक (reason) हम बताना है कि कौन आचरण नतिर है और कौन धनतिक।
 किन्तु सामाजिकतया नागा के विचार म न्य और नीतियाँ मितनी जुडी भी रहती
 हैं। वे धार्मिक आचरण का नैतिक आचरण भी मानत हैं। भाग्य म धम का वह

1 MacIver and Page have attempted a classification of codes and sanctions in their *Society* on page 143

सञ्चित धर्म नहीं है जो पश्चात्त्य समाजों में 'रेलिजन' का है। भारतीय धर्म व्यक्ति के मूल्य शिव सुन्दर जीवन बिताने की शक्ति है। हमारे समस्त सत्कर्म (righteousness) का समावेश धर्म में होता है। हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के समस्त अंग प्रत्यगा पर धर्म का प्रभाव माना जाता है।

आचार-सहिताएँ सामाजिक हैं और अर्थ समस्त सामाजिक महिताओं की भाँति वाञ्छित सामाजिक सम्बन्धों और जीवन-ढाँचा के बारे में विचारों का प्रकट करती हैं। धार्मिक सहिता केवल अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक स्थितियों पर विचार प्रकट करती है। इसका उद्देश्य ऐसे सामाजिक सम्बन्धों का स्थापना है जिसमें मानव प्रयोजन पारलौकिक सत्ता के प्रयोजनों के अधीन है।

आचार-सहिता और धार्मिक सहिता में कौन मौलिक है। वास्तव में धर्म में धर्म मौलिक है और उसी में आचार-सहिता का आविर्भाव हुआ है। हमारे विपरीत दुरयोग, टॉनीज आदि विचारकों के मत में सामाजिक और आचार नियमों का 'पवित्र' बनाने के लिए धर्म की उत्पत्ति हुई। इन दोनों विचारों में से विसे ठीक माना जाए इस पर आज भी निश्चित मत नहीं प्रकट किया जा सकता है। धर्म में ऐसे सत्व मिलते हैं जिनका उद्गम सामाजिक और नित्य विचारों में है और इन दोनों विचारों पर धर्म की धारणाओं का गम्भीर प्रभाव पड़ा है। हमारे विचारों में धर्म और नीतियों में से किसकी प्राथमिकता (priority) है जहाँ प्रश्न का उत्तर मिल जाना ही हमारा प्रयोजन सफल नहीं होता है।

धर्म और नीतियों में सदैव पूर्ण सामञ्जस्य नहीं होता है। दोनों की सहिताओं में धार्मिक सहिता अधिक रुढ़िवादी होती है। आचार-सहिता परिवर्तनशील समाज की आवश्यकताओं के अनुसार बदलती रहती है। जहाँ जहाँ समाज का विकास हुआ है लोग आचार नियमों का बुद्धि, विवेक या तर्क पर बल दे रहे हैं और धर्म नियमों का सर्वाधिक प्रचलन रहा है जो विवेक और बुद्धि के सामने गिर उठते। विज्ञान की प्रगति से भी नित्य नियमों में प्रगतिशीलता आती है। किन्तु धार्मिक सहिता न केवल विचार-स्वातंत्र्य का रोग है, विवेक और बुद्धि से उद्वेगों को प्रभावित होने से रोकता है और परिवर्तनशील समाज का सनातन रुढ़िवादी धर्म धार्मिक विचारों का मानने का बाध्य करने का प्रयास किया। सारा धर्म मनुष्य की उत्पत्ति और विकास के बारे में नए वैज्ञानिक सिद्धांतों का धर्मविरोध करता गया। धर्म ने जनस्वास्थ्य, सत्ता और सततनिष्ठ धर्म सामाजिक विषयों में भी उन्नति प्रयत्न एवं दृष्टिकोण का विरोध किया। (भारत में सतीप्रथा, देवदासी प्रथा, बाल विवाह और अस्पृश्यता के विरोध के जितने प्रयत्न किए गए, धर्म ने उन्हें धर्मान्तरित किया।) पुराने धर्म धर्मों के कुप्रयोग रोगों (venereal diseases) के विरोध राष्ट्रीय स्थापना का भी धर्म ने विरोध किया। किन्तु धर्म धर्म धार्मिक सहिता और

आचार-नैतिकता का पारस्परिक विरोध मिटन लगा है। आज धर्म का बहुत कुछ संचालन सामाजिक और नैतिक प्रयोजना के अनुकूल हो रहा है। धर्म स्थापित नैतिकताओं (moralities) को प्रमाणित या हट करती है और नवीन नैतिकताएँ धर्म में यथावश्यक संशोधन करती हैं। विशेषकर आधुनिक समाजों के धर्म में मानववाद की प्रवृत्ति हटकर हो रही है, धर्म अनेक सम्प्रदायों में विभक्त है और उसमें पारलौकिकता का प्रभाव कम हो रहा है। इन सब कारणों से धर्म और नीतियों में सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार मार्थातिक सामंजस्य बढ़ रहा है। धर्म स्वयं एक सामाजिक आचार-पद्धति (social ethics) लागू करके पाए जाते हैं।

प्रथा और कानून

कानून या विधान एक ऐसी संहिता है जिसमें राज्य लागू करता है। विधान का परिपालन कराने के लिए राज्य का बल प्रयोग का अन्तर्गत अधिकार है। विधान की अर्थवत्ता राज्य की अर्थवत्ता है। इसलिए राज्य अपने नागरिकों से कानूनों का परिपालन करने में सक्षम उपायों को करता है। कानून की रक्षा के लिए पुलिस और न्यायालय होते हैं। विधान के निर्माण और संशोधन अथवा रद्द करने का अधिकार भी राज्य ही को होता है। किन्तु आधुनिक समाजों में विशिष्ट कानूनों (अधि-नियमों) की वैधानिकता (legality) संविधान (Constitution) पर निर्भर करती है। एक अधिनियम की एक अथवा अधिक धाराएँ अथवा सम्पूर्ण अधिनियम अथवा धारणाएँ बनाए जा सकते हैं यदि उनमें तब संविधान की धारणाओं में विरोध है। इस वैधानिकता अथवा अधिवैधानिकता का अन्तिम निर्णय दण्ड का सर्वोच्च न्यायालय करता है।

प्रथा एक सामूहिक कार्य विधि है जिसका क्रमिक विकास हुआ है। इसके निर्माण, घोषणा, परिपालन और रक्षा के लिए कोई निश्चित शक्ति (अधिकार) नहीं होती है। प्रथा का समीचीन स्वीकार करते हैं इसलिए वह कायम रहता है। धर्म बढ़ा की नमस्ते करना, हाटल या रेस्टाँ में कमचारियों का व्यवसाय (tipping) देना, बच्चे के जन्म और नामकरण मस्कार पर सम्बन्धित पट्टीयों और मित्रों का बुलाना और प्रीतिभाज देना पट्टीयों तथा परिचितों के सुस्त-सुस्त के अवसरों पर उनके यहाँ जाना आदि सभी प्रथाएँ हैं, उन्हें मानने का निर्देश कोई विशिष्ट शक्ति नहीं होती है। समस्त सामाजिक नियमों में प्रथाएँ (रीति रिवाज) सबसे अधिक सख्त (स्वच्छानुसृत) होती हैं किन्तु फिर भी वे सबसे अधिक बाध्यतापूर्ण (compelling) होती हैं। उनका सम्मोदन बन प्रथागी शक्ति में नहीं बल्कि धर्म प्रचार के अनौपचारिक सामाजिक दबाव में होता है। वे हमारे जीवन में बड़े धुन मिते होते हैं। हमारे समस्त दैनिक कार्य जीवन पथ में वहाँ के प्रभाव में होते रहते हैं। प्रथाओं में न्यायन परिवर्द्धन भी स्वाभाविक रूप से होता है और अनावश्यक प्रथाएँ और धार्मिक निवृत्त हारक सुप्त हो जाती हैं।

धार्मिक समाज में प्रथा की महत्ता बनी नहीं रही जसी सरन प्रथवा धार्मिक समाज में थी। सरन समाज में पृथक् वैधानिक महिमा की जरूरत नहीं पड़ती है, मनुष्य जीवन-व्यापार प्रथाओं से ही नियमित हो जाता है। प्रथा के परिपालन कराने के लिए उस समाज में गणशप, समूह मत और समूह नियंत्रण बड़े शक्तिशाली होते हैं और इनसे कोई व्यक्ति बच नहीं सकता, दूसरे, इन समाज में कभी कोई नवीन स्थिति नहीं पदा होती जिसके लिए उपयुक्त प्रथा न मौजूद हो। प्रथा के पीछे परम्परा का भार होता है जिसमें प्रत्येक अवसर का निगूण प्रथा कर लेती है, प्रत्येक के अधिनारा और कतव्या का निश्चिन करती है और सभी लोग के पारस्परिक हिता और दावा का समायोजन कर लेती है। सारांश यह है कि सरन समाज में जीवन के समस्त व्यापार का नियमन प्रथाएँ करती हैं। प्रथा ही राजा है। किन्तु धार्मिक जटिल समाज में प्रथा 'राजा' नहीं बनी रह सकती है। वह निबल हो गई है और इसलिए सामाजिक नियंत्रण के लिए अपर्याप्त है। अथ सामाजिक सहिताओं और विशेषकर कानून से प्रथा का सहायता और परिपुष्टि करना आवश्यक हो जाता है।

धार्मिक विराट समाज में सदैव प्रथानुमोक्षित व्यवहार करना बड़ा कठिन है। शीघ्र परिवर्तित समाज की आवश्यकताएँ पुरानी प्रथाओं से पूरी नहीं हो पाती और प्रथाओं में शीघ्र उपयोजन करने की क्षमता नहीं होती है। दूसरे धार्मिक समाज में अथ विज्ञानीय समूहों विविध विशेष हिता और लोग के माधना में भारी विषमता के कारण आधे दिन सधय हात रहते हैं। प्रथा इन सधयों का निराकरण नहीं कर पाती है। यदि सभी लोग अपने अपने हिता की पूर्ति का प्रयत्न शान्तिपूर्ण यानाकरण में कर पाएँ तो विशेष कानून और उनके परिपालन के लिए नियम सन्धा होना आवश्यक है। तीसरे, भिन्न भिन्न समूहों, जाति-समूहों, मनुष्यों और वर्गों की प्रथाएँ भी भिन्न भिन्न होती हैं। इनकी अनेकता के कारण धार्मिक समाज की एकता और व्यवस्था मुट्ठ हो जाती है इसलिए उन सबके ऊपर कानून की सत्ता का स्वीकार करना पड़ता है। राष्ट्रीय और जननायिक प्रवृत्तियों की सुदृढ़ता के लिए मनुष्य नियमों या कानूनों की आवश्यकता है। चौथे, धार्मिक मध्य समाज में सम्पूर्ण मण्डन शक्ति (power) पर आश्रित है। राज्य सर्वोपरि है। वह अथ मनुष्य मण्डन और मनुष्यों का अधन अधीन रचना चाहता है। अनेक प्रथाओं के ऊपर कानून थापना अनिवार्य है। सामाजिक प्रगति के लिए भी यह आवश्यक है कि कानून का सहायता से एकी प्रवृत्तियों का राग जाए जो वग या समूह नियम के साथ ही नियम जासाधारण के हिता की यदि ध्यान में नहीं लिखा। धार्मिक विभाग औद्योगिक मण्डन, राष्ट्रीय राज्य का उदय राज्य के कल्याणकारी भाव तथा समाजवादी विचारधारा के विभाग के कारण धार्मिक समाज में धार्मिक कानून बन गए हैं। नागरिकों के जीवन का रंग बिरंग

पहलू नहीं है त्रिममे सम्बद्ध कोई कानून न हा। धनेवानक कानूना की जटिलता और आकार का परिणाम यह है कि साधारण नागरिक ता ममस्त कानूना का ममभने का स्वप्न भी नहीं दग मरता है। बकील जा बसानिक महिना का विगारण है वह इन मन्तिता की एक छाटी मी शाया म ही परिचित हो सकता है।

इम स्थिति म कानून और प्रथा का मषष अधिवाय है। समुदाय की कुछ प्रथाया का बहुत व्यापक प्रचनन हाता है। यदि कानून इन पर आक्रमण कर ता त्मे विमृत बल प्रयाग का स्रारा नेना पढता है। फिर भी उमना परिपालन आनरिक कठिन हाता है क्याकि बहुमत क उमके पक्ष म होन पर भा त्म पूग पुष्टि नहीं मिलती है। कानून कवन जोर-जवरदस्ता स बाह्य रूप स पानन करा सकना है वह किमी क मन पर शासन नहीं कर सकना। हमार दसा क अमृत्यना निवारण (अपराध) अधिनियम का न विवाह निषध अधिनियम आदि क परिपालन की बनी कठिन समस्या है। यदि किसी कानून का प्रतिरोध व्यापक प्रथा-मम्भन मनावति स हाता है ता कानून की मफतता मग्थ है। एमी स्थिति म कानून पानन की अपथा उम मग अधिन किया जाता है। किन्तु एक बात निश्चित है कि कानून का उद्देश्य किमी अवस्थित प्रथा का उन्मूतन है ता वह अतन मफत नोकर रणा।

एतिगमिक वान म अनक कानूना का आधार प्रथाएँ रही हैं। आज भी कानूना की सहायता के निग प्रयाण पूरक बन सकनी हैं। प्रथाएँ कितनी भी कम जा र और धनवान् हा जायें वे हमारे सामाजिक जीवन क अधिकाश व्यापार को नियमित करनी रहेंगे। समाज की प्रत्येक स्थिति का नियंत्रण कानून स नहीं हो सकता और यदि हो भी सके ता भी वहाँ कानून का हस्तक्षेप अनावश्यक है, जहाँ प्रथा ही मवम उपयुक्त नियामक है। परिवार, पढास मन्दिर, सभा-ममितिवा और सामुदायिक व्यापारा म अनक कायों का सर्वोत्तम नियमन प्रथा स हाता है। अन यह स्पष्ट है कि हमार वनमान समाजा स प्रथा का मवया उन्मूतन न आवश्यक है और न सम्भव।

फसान

प्रथा मम्भन विषय पर समाजानुमादिन मिप्रताएँ पसन कहुलाना है। हमारी मग्ति क विगेपर उन पहनुया पर पसन का प्रभाव पढता है जा मपू क विचार म मौलिक मून्यों स आसनया उपासीन हैं। मन, विस्वाम मनारजन, पहलावा, मव प्रकार क भाभूपण (शृ गार) घर की मजाबट, बातचीत का ढग, जनप्रिय मगीत, मारिय और कना म पान प्रचनित है। इन क्षेत्रा म फेशन प्रथा का पूगनया अधि क्षमण नहीं करना ^३ प्रयुक्त उमका पूरक है। हम रि-रुस्ताना आन्मी सुरता पाती, पजामा-सुरता, पन्-जमाज या कुण्ट आदि पटनत हैं किन्तु सुरता का धनन विम्भ है। पाती रोपन के धनक पान है। हमार वाना क धनक पान है। म्पियों की छाटी,

चानी धनाउज, शृ गार, चूडियां, घडी चप्पल या सैण्डल, कश शैलिया म आपनो गति कर देने वाल फशन दिखेंगे। इसी प्रकार, अय क्षेत्रा म फशना की आश्वय जनक अननता न्निगी। सम्यता की उन्नति न फशना की सख्या और प्रसरण गति का वस्तु ज्यादा बढ़ा निया है। किंतु फशन वार्ड स्थायी वस्तु नहीं है। उसकी एक गतिशाली लहर से लुप्तता की जा सकती है। इस लहर के सामने जो भी आया वही उसने साथ बह गया। पैगन नवीनता का पोषक है और परम्परा का विरोधी। वह प्रयासम्मत प्रकार म निरंतर सगापन करता रहता है और कभी-कभी मशोघन का यह श्रम उस प्रकार का गिन्तुल नया स्थानापन्न ढढ लेता है। फशन के व्यापक प्रभाव म हमारी मनावृत्ति एसी बन जाती है जिसस कई प्रयासा व प्रति हमारी भक्ति कम हो जाती है।

फशन सामाजिक जीवन की सनह पर ही दाग-गण बन्ला करता है किंतु म्भव उपेक्षणीय परिवर्तना व पीछे अथिक् महत्त्वपूर्ण शक्तियां कायस्त रहनी हैं। फशन का मबध सामाजिक जीवन की बाह्यता और ऊपरी चमक-दमक (superficialities) स है। इसस किमी प्रकार की उपयोगिता नहीं मिलती है और न यह हमार विवेक स आप्रह करता है किंतु फिर भी यह सामाजिक नियंत्रण का एक महत्त्वपूर्ण माघन है। यह समाज के सन्स्यो की दो विरोधी आवश्यकताया की पूरा करता है नवीनता की आवश्यकता और समरूपता की आवश्यकता। पैगन हम नवीनता का प्रयाग और हमारी भिन्न प्रकट हाने की भावना (feeling of distinct ion) का अवरण न्ता है। यह समूह को नई वस्तुया, आस्याया अथवा शलिया की लोच करन ता भी एक प्रभावशाली यत्र है। हम प्रया और आनन तथा दानि कायकलाप की एकरमता (monotony) म घुटन लगत हैं। इस एकरमता को दूर कर नात्रणो और रगानी देने का काम पैगन करता है। अतएव, फशन सामाजिक मरचना की स्थिरता म भी परिवर्तनशीलता का पोषक होकर सामाजिक नियंत्रण का एक महत्त्वपूर्ण काय करता है।

जनरोतियां और वृद्धियां

हम प्रत्येक समूह या समाज म कुछ ऐसे अस्याम देला हैं जो सबन प्रचलित हान हैं। घर क चौर म बठार स्थाना, स्त्री और पुण्या के रहन-बहन क लिए घर म पृथक्-पृथक् प्ररथ अथन महमरानो का चौपाल या बाहरी कमरा म ठहराना अथन म बड़े अथवा मित्र स भेंट होने पर उम जरासत्री या नमस्त करना, आदि कुछ एम तराक या रीतियां हैं जो साधारणतया सभी भारतीय मानन हैं। ये सबन प्रथन म अथवा रिपारपूयक नहीं दिखित लिए गए हैं। ये ता कुछ सतत अनुभव हान बानी ममस्याया क निव जनसाधारण द्वारा परीक्षण और वृद्धि व निमित्त ममापान हैं। मष्टक व शीजन प्रतिमान म ये रीतियां मिन जुन जाती हैं और लोच दाका घुमरण अथन अनौपचारिक और स्वाभाविक रूप म करत रहत हैं। इन रीतियां का

जन रीतियाँ अथवा लोकरीतियाँ कहते हैं। स्पष्ट है कि जनरीतियाँ के अनुरूप व्यवहार करने से अनुप्या पर सामाजिक नियंत्रण होता है। यह नियंत्रण अचेतन और स्वतः चालित होता है और व्यक्ति को यह कभी नहीं अनुभव होता कि वह ऐसा करने के लिए बाध्य है। व्यक्ति इनकी उम्मीद करता है, उस पर लोग हँसते हैं किन्तु स्वयं उस भी अपने व्यवहार पर परचाताप होता है। जनरीतियाँ का नियंत्रण अमंगल और अनौपचारिक है।

रूढ़ियाँ ऐसी जनरीतियाँ और प्रथाएँ होती हैं जिनका पालन करना सामाजिक कर्तव्य माना जाता है। उनके विपरीत आचरण करना समाज के लिए अनिष्टकर माना जाता है। समाज जिन कार्यों अथवा व्यवहारों को नहीं उचित और सामाजिक कल्याण के लिए आवश्यक समझता है उन्हें रूढ़ियाँ कहते हैं। हमारे समाज में पुरुषों के बीच में स्त्रियों का सिर ढक कर ब्रह्म समाज विवाह करना पानिग्रत धर्म का पालन गुरु विद्वान और माता पिता का आदर करना रूढ़ियाँ हैं। रूढ़ियों का उल्लंघन बड़ी गंभीर बात है। उल्लंघनकर्ता की धार निम्न होती है और उसको समाज से बहिष्कृत तक कर दिया जाता है। रूढ़ियों का न पालन करने से समाज का अनिष्ट हो जायगा अथवा समाज के शोष और बहिष्कार का सामना करना पड़ेगा इस भय से व्यक्ति रूढ़ियों का पालन करता रहता है। रूढ़ियों का पालन करने के लिए व्यक्ति आन्तक भी विवश होता है। वास्तव में रूढ़ियाँ आचरण की एक अनिवार्य संहिता है। रूढ़ियों का नियंत्रण प्रथम स्वच्छिद्रक अनौपचारिक और अमंगलित बड़ा जा सकता है। रूढ़ियों के परिपालन के लिए को-ऑपरेटिव संगठन नहीं होता है और न वास्तव की भाँति वे व्यक्ति को बंध प्रयोग में विवश ही करती हैं। परन्तु रूढ़ियाँ फिर भी सामाजिक नियंत्रण का बहुत महत्वपूर्ण साधन हैं।

रूढ़ियों के स्थायित्व के लिए मिथ्याशिक्षण (indoctrination) और आन्तकनिर्माण (habituation) की प्रक्रियाएँ कायम रहनी हैं। उम्मेद (ceremony), शास्त्रोक्त कर्म विधि (ritual) और प्रतीक भी रूढ़ियों का भाग और संरक्षण करने में सहायक होते हैं। इसी प्रकार रथ या समाज में मर्यादा का अर्थ (राज्य और उसके विभिन्न अधिभरण) भी रूढ़ियों का समर्थन करता है। कई बार तब भी इन रूढ़ियों के परिपालन के लिए समाज का संगठित और प्रेरित करना है। किन्तु कभी-कभी कुछ रूढ़ियों का विरोध सत्ता और नवतन्त्रता ही भित्ति कर सकते हैं और कभी-कभी नवतन्त्र जिन रूढ़ियों का विरोध करता है तब उसका समर्थन करना है।¹

रुद्धियाँ चिरस्थायी नहीं हाती हैं। उनम भी समय की आवश्यकतामा क अनुस्य परिवनन प्राता है। आधुनिक समाज मे रुद्धियाँ अधिक लाचपूण हो गई हैं और जा रुद्धि अय भी कठोर है उसकी बार-बार अवहेलना होती है।

सस्थाएँ

सस्थाया का एक प्रधान काय सामाजिक नियन्त्रण करना है। हमार समाज म य इस नियन्त्रण का सबसे महत्वपूण साधन हैं। सस्थाया क व्यवहार प्रतिमान म नैतिक शिक्षा का सबसे बडा भंडार होता है। परिवार राज्य, मन्दिर, विद्यालय और आर्थिक सस्थाएँ स्थितिया की समाज स्वीकृत परिभाषा करके व्यक्ति का अच्छे बुर उचित अनुचित या उपयोगी अनुपयोगी आचरण की प्रशिक्षा देती हैं। जनरीतियाँ, रुद्धियाँ कानून तथा अय साधना को सामूहिक सम्बन्धा द्वारा लागू किया जाता है किन्तु जीवन के मूल विषया से सम्बन्धित सबसे अधिक नियन्त्रणा का सचरण सामाजिक सस्थाएँ करती हैं। हर सामाजिक सस्था आवश्यक रूप से आदर्शात्मक है। वर अपन सस्था के व्यवहार का एक निश्चित आदर्श प्रतिमान के अनुकूल ढालन का प्रयत्न करती है और उन्हें आचरण के लिए सकारात्मक और नकारात्मक सम्मानन प्रणा करती है। सस्थाएँ दानो प्रकार के अनौपचारिक और औपचारिक नियन्त्रणा की शक्तिशाली साधन हैं। सस्थाकृत नियन्त्रण असस्थाकृत नियन्त्रण की अपेक्षा स्वभावतः अधिक प्रभावी होता है। आधुनिक जटिल समाज म सस्थाकृत नियन्त्रण का अत्यधिक विस्तार हो गया है।

बलप्रयोग और सामाजिक नियन्त्रण

प्रत्येक समाज म सामाजिक नियन्त्रण क साधना क पीढ़े अनक अशा और प्रकार म बलप्रयोग (force or coercion) प्रचलित है। हम पण पण पर हम बात का आभास हाता रहना है कि यदि हम समाज द्वारा माय प्रतिमान क विपरीत आचरण करेगे तो दण्ड सजा भत्सना निन्दा व्यग्य जाति-वर्द्धिधार आदि को भागेगे। बचपन म हम अनक वाला की शिक्षा सत समय मा-बाप या अय सम्बन्धिया से मार भी घाती पत्नी है। प्रारम्भिक विद्यालय म भापड और तमाना से सवर ती जाता है। शारीरिक बल प्रयोग का कानूनी अधिनार राज्य का हा है किन्तु अमका सरकाराणा प्रयोग अत्यधिक प्रचलित है। राज्य क कानूना और गुनित अथवा अय औपचारिक सस्थाया के नियम भी एसी मारपीट का नहीं रात पात जा सामाजिक व्यापार क अगणित अवगता पर हो जाता है।

अय प्रश्न यह है कि हमारे मध्य ममाजा म भी शारीरिक बलप्रयोग का प्रचलन इतना व्यापक क्या बना है? गर-नारकारी स्तर पर बादा शारीरिक बलप्रयोग निन्दा आवश्यक है। अनुस्य मार पीट म नयम अधिनारता है क्योंकि इमम उम शारीरिक बापता का अनुभव हाता है। इस प्रकार क बलप्रयोग का पशुता की विशेषता कटा जा

सकना है। हाँ, यही है भी। परन्तु मनुष्य के बहूत से आचरण पशुधा पैम ही जान हैं और उन पर नियंत्रण पाने का यही तरीका मनुष्य प्रभावी है। इस सबम अधिकांश भय दसी का जाना है। दूसरा कारण यह है कि जब सामाजिक नियंत्रण व अध्यापन की आवश्यकता हो तब फिर बलप्रयोग ही प्रवेत्ता चारा है। तीसरा, कुछ मनुष्य कई बार इतने उच्छ्वल हो जाते हैं कि वह दूसरा की अनुविधा, प्रमान और हानि का म्याल नहीं करत हैं। उच्छ्वलता पर नियंत्रण शारीरिक बलप्रयोग से करना आवश्यक है। आत्मरक्षा के लिये दूसरे की हत्या करने से मृत्यु-दण्ड नहीं मिलता। चोग वस्त्राशा गुण्य अथवा मनचले नीच मनुष्या के दुष्टता का सामना शारीरिक बलप्रयोग से ही किया जा सकता है। पुलिस और कचहरी की सहायता लेने का माता अवसर नहीं जाना अथवा उनकी शिथिलता व कारण स्वयं ही उनमें निपटने के नियम तद्वर होना पता है।

सामाजिक व्यवस्था में शारीरिक बल का सबसे उमूलन अमम्भव है। समाज के शत्रु तथा समाज विरोधी शक्तियाँ का मुकाबला करने व लिये समाजीकृत शारीरिक शक्ति सत्ता बननी रहनी। जिसे भी समाज व नागरिक व अधिकारों और दायित्वों की रक्षा व लिये यह शक्ति आवश्यक है। हालाँकि कुछ समय दशा में शारीरिक बलप्रयोग व चरम रूप—फौजी की सत्ता—का उमूलन कर लिया गया है किन्तु पुलिस और फौज का अर्थ भी अधिकार है कि व शान्ति और व्यवस्था पर आक्रमण करने वाला की जान ले सें। भारत जहाँ अहिंसावादी दान में भी सामाजिक नियंत्रण की व्यवस्था में बलप्रयोग का निश्चित स्थान है। महाभारत व प्रणेता वेदव्यास ने दस्युवन या गन्धर्व का दवान व लिए दंड (शस्त्र) के प्रयोग का ही राष्ट्रधर्म कहा है।¹ बिना शक्ति व कानून की अवज्ञा ही होगी उसका पालन नहीं। किन्तु अनेक बलप्रयोग में सामाजिक व्यवस्था कभी नहीं बननी रहनी। इस उद्देश्य की पूर्ति में शान्ति व बल एक मीमिल साधन है।²

सामाजिक नियंत्रण के सिद्धांत

बौद्धिक जनताली में 'सामाजिक नियंत्रण विषय पर काफी माहिर्य प्रकाशित हुआ है। जिन समाजशास्त्रियों ने सामाजिक नियंत्रण व क्रिमिनल एन्ट्रोल पर लिखा है उनमें में रोस अग्रगण्य हैं। रोस ने सब प्रथम १९०१ ई० में इस विषय पर व्यवस्थित विचार प्रस्तुत किए। तत्पश्चात् १९०५ ई० में ड्रमन व सीर १९३० तथा

1 अमुत्पित्त म्युरल क्षमाय वगमकर ।
 मप्रमूदगु क्षत्रपुमदयोस्ति मबद्वरी ।
 श्राद्धगा मति वा वय शूना वागज मतम् ।
 दम्भयो थ प्रजारमोत्पद धर्मोत्त सामाजिक ।

१९५० के बीच की अवधि में लण्डिस, वनाड और हम्ब ने 'सामाजिक नियंत्रण' की समाजशास्त्रीय विवेचना की। पिछले दो दशकों में टालकाट पासन्म और राइट मटन ने इस विषय में सम्बन्धित कई बाना का महत्वपूर्ण विश्लेषण किया है।¹ यहाँ हम उपरोक्त प्रमुख लेखकों के सामाजिक नियंत्रण सम्बन्धी विचारों का संक्षिप्त विश्लेषण करेंगे।

रास न दो प्रकार के समाज बताए (अ) प्राकृतिक समाज (natural society) और (आ) वर्गाश्रित समाज (class based society)। एक प्राकृतिक समाज वह व्यवस्था है जिसमें आघारभूत मानव चेट्याए त्रिना विमी बाहरी हस्तक्षेप के स्वतंत्रता करने रहती हैं। वह पूरा प्रतियोगी समाज को स्वामाजिक (प्राकृतिक) समाज कहता था। वर्गाश्रित समाज वह व्यवस्था है जिसमें व्यक्तियों के व्यवहार पर नियंत्रण का बंधन वह बग है जो श्रेय समुदाय के साधना का उपयोग करने जीवित रहना है। उस समाज में वास्तविक सामाजिक नियंत्रण न होकर केवल बग नियंत्रण होता है। बग नियंत्रण का तात्पर्य परजीवी बग द्वारा अपने स्वायत्त की निधि के लिये शक्ति का प्रयोग है। रास उपरोक्त दो प्रकार के समाजों को दो चरम उदाहरणों (extreme examples) के रूप में देखता है इन दोनों छोरों के बीच अनेक प्रकार के समाज होते हैं जिनमें सामाजिक नियंत्रण की मरुत सभावनाए मौजूद रहती हैं।

सामाजिक नियंत्रण वह ढग है जिसमें समाज के हित में सामाजिक घटनाओं की व्यवस्था की जाती है। स्वतंत्र रूप से स्थापित समाज व्यवस्था में सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती। ज्या ही समाज में संस्थाकरण (institutionalization) प्रारम्भ हो जाता है त्या ही सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता पडन लगती है। अर्थात् जटिल समाजों में नियंत्रण की जरूरत पडनी है। रास के विचारों में सिद्धांततः राज्य सामाजिक नियंत्रण का एक माध्यम है त कि उत्तरा मान। सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता कुछ लोगों के हितों तथा श्रेय जनसाधारण के हितों के बीच सम्बन्धों की मुख्यवस्था करने के लिये पडती है। इस सम्बन्ध में रास ने सामाजिक नियंत्रण के तीन नियमों (laws) का उल्लेख किया और यह बताया कि जनतन्त्रीय समाज में आधिकारिक हितों तथा नीतिशास्त्री के सम्बन्ध में सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रिया तथा साधन कम प्रभावित होते हैं। जनतंत्र में व्यक्तिगत हितों पर नियंत्रण करने के लिये जा नीतिशास्त्रीय राज्यशक्ति के माध्यम से नियंत्रण करता है वहीं अना बहूत महत्वपूर्ण सामाजिक शक्ति की मान हा जाती है।

1 F. A. Ross *Social Control* (1901) F. E. Luntz *The Means of Social Control* (1924) P. H. Landis *Social Control* (1939) L. L. Bernard *Social Control in its Sociological Aspects* (1939) I. S. Roucek *Social Control* (1947) T. Parson *Social System* (1949) R. K. Merton *Social Theory & Social Structure* (1949)

राज्य न सामाजिक नियंत्रण के आधार (grounds) साधना (means) तथा सामाजिक नियंत्रण का व्यवस्था (system) का विवेचन किया है। नियंत्रण के लिए आधारभूत मतावैधानिक मान्यता का जन्म महानुभूति 'साय' भावना सामाजिकता (sociability) और राग (resentment) को राग ब्रह्म महत्वपूर्ण मानता है। यह साधन एक है जो एक प्राकृतिक व्यवस्था का जन्म देता है जिसमें सामाजिक नियंत्रण एक विभाजन बनता रहती है। नियंत्रण के माध्यम से जन्म देने वाले विज्ञान सामाजिक सुभाव (शिशा सहित) प्रयास प्रयत्न व्यक्तिगत धर्म बनाने के लिए प्रयत्न प्रयत्न में सामाजिक व्यवस्था के माध्यम से सामाजिक नियंत्रण के माध्यम से व्यापक करते हैं सबसे अधिक उपयुक्त सामाजिक नियंत्रण का सामाजिक नैतिक समस्या पर विचार प्रयत्न किया है। उसके अनुसार सरलतम और नैतिक गन्तव्य व्यवस्था का सबसे उपयुक्त हो सकता है।¹

टात्वार्थ पाल्म के धर्मशास्त्र सामाजिक नियंत्रण के अंतर्गत उन यांत्रिकताया (mechanism) का समावेश होता चाली जा मनुष्य के विचलित व्यवस्था की उन प्रवृत्तिया पर नियंत्रण करता है जो सामाजिक व्यवस्था की अनुभूति और समझता का विचार करता है। सामाजिक व्यवस्था के भीतर धर्म क्रिया का प्रक्रिया के स्थिर सतुन का प्राप्त करने और बनाए रखने के लिए विचार करता है सामाजिक नियंत्रण का परिचय है। एसी कोई समाज व्यवस्था नहीं है जिसमें सम्पूर्ण सतुन है। व्यावहारिक बात में बाई भी समाज न तो पूर्ण मनुष्य है और न एकता सूत्रबद्ध। प्रत्येक समाज व्यवस्था का एक भाग विचलित व्यवहार प्रवृत्तियां (deviant behaviour tendencies) होती है।

पाल्म के विचार में सत्यान है कि एकता सूत्रबद्ध समाज व्यवस्था का सामाजिक धर्म क्रिया की प्रक्रियाओं में सामाजिक नियंत्रण की सेवा आधारभूत यांत्रिकता उपलब्ध रहती है। उपराल प्रकार का समाज व्यवस्था में उन कल्याण मनुष्य की घटनाएँ हैं। प्रयोग का अर्थ है कि एक सूत्रबद्ध और विभिन्न अन्विगत वर्तमान की क्रियाओं तथा मतावैधानिक पाठ्यक्रम। जिसे भी कला की विभिन्न भूमिकाया तथा विभिन्न व्यक्तियों के व्यवहार के समावेशन के माध्यम में समाज के एकतापूर्ण बनता है। सामाजिक जीवन में विभिन्न प्रकार का क्रियाओं का सामाजिक व्यवस्था के बनाने का अर्थ होता है। व्यवस्था का प्राथमिक रूप उन विभिन्न विज्ञान और मनुष्य का उपलब्ध बनता होता है जिससे एक पर्याप्त समन्वित व्यवस्था का निर्माण कर सके जिसमें कला का समाज बनता है जो सामाजिक धर्म पर 'दुर्लभ' कार्य पाया जाय। दर व्यवस्था

को स्थापित करने के लिए दा रास्ते अपनाय जाते हैं। पहले में प्रत्येक विशिष्ट क्रिया के नियम विनिश्चित समय निश्चित किया जाता है और दूसरे में सम्पादित प्राथमिकताएँ निश्चित कर दी जाती हैं। प्रत्येक आधुनिक समाज में विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करने के नियम नियत रहना है और जब अनेक विराधी अथवा विजातीय आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रश्न उठता है तो उनमें से जिस पहले क्रिया जाय और जिस बाद में दूसरी लिए कुछ समाजानुमादित प्रथाएँ और मूल्यताएँ होंगी हैं। इन दोनों में सामाजिक जीवन में विरोध और सघष के अद्वयता को न्यूनतम करने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है। समाज की प्रथाओं और चलन द्वारा विभिन्न क्रियाओं और सम्बन्धों के नियमन का हाँ पासस सस्थाकरण (institutionalisation) कहता है। वह यह स्वीकार करता है कि सस्थाकरण के कारणों को सामाजिक नियंत्रण की यात्रिकताएँ नहीं कहा जा सकता। यथा केवल सामाजिक नियंत्रण का आधार है।

सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रिया एक निरन्तर प्रक्रिया है जो एक सम्पादित व्यवस्था में सामाजिक अन्त क्रियाओं के सामान्य माध्यम से क्रियारत रहती है। साधारण सामाजिक जीवन में मनुष्यों के व्यवहार को नियमित करने के लिए सुभावित प्रथाएँ स्वीकृति अथवा अस्वीकृति और गणना तथा राय ही एसी सहज विधियाँ हैं जिनसे सामाजिक नियंत्रण बना रहता है। जब ये विधियाँ अथवा साधन अपर्याप्त सिद्ध होते हैं तभी जटिल औपचारिक साधन की आवश्यकता पड़ती है। धर्म के क्षेत्र में कर्मकाण्ड (ritual) नियामक का कार्य करता है और युवकों के समूह में अथवा अन्य समूहों या सगठनों में उन सगठनों की अपनी संस्कृतियाँ हैं जो साधारणतया धर्म सन्स्था के व्यवहार का नियंत्रण करती हैं। उनके अतिरिक्त पाठना सामाजिक नियंत्रण की कुछ अन्य यात्रिकताएँ बनाती हैं जिनमें विलगाव (insulation) और पृथक्करण (isolation)। जब समाज या संस्कृति के किसी भाग या क्षेत्र समाज या संस्कृति से पृथक् कर उसे बाहरी प्रभावों में अपर्याप्त प्रभूता बचाकर सन्स्था का सामर्थ्य बनाया जाता है तो इसे पृथक्करण कहते हैं। विलगाव की प्रक्रिया का अभिप्राय सामाजिक संरचना की सुरक्षा के लिए उसे विगटनकारी शक्तियों से दूर रखना होता है। आधुनिक समाज में इन दोनों प्रक्रियाओं का सामाजिक नियंत्रण में पूरे की भागीता कम महत्व होता जा रहा है।

सामाजिक व्यवस्था में विचलित व्यवहार को रोकने के लिए साधारणतया अनिश्चित व्यवहार करने के नियम पुनरावृत्ति और विचलित व्यवहार के नियमों की व्यवस्था करने के अनिश्चित अनिश्चित और अविश्वसनीय अन्तर्गत अन्तर्गत यात्रिकताओं की एक जटिल व्यवस्था भी पाई जाती है। पारम्परिक यात्रिकताओं का ज्ञान लोगों में विभक्त रहता है —

(१) सम्पूर्ण ज्ञान को अन्त्या तथा पट्टित के पूरे ही अनिश्चित विचलित व्यवहार के अनिश्चित का उद्देश्य होता है। जटिल व्यवस्था में।

(२) विचलित व्यवहार करने की प्रेरणा देने वाली प्रवृत्तियाँ का दूबारा पर प्रभाव पटन स राकन के लिये विनग कर दन चानी ।

(३) एमी द्वैतीयक मुरक्षाएँ चा विभिन्न अगा म गम्भीर विचलन की प्रक्रियाभा में परिवनन को परानित कर दनी हैं ।¹

1 T. Parsons *Social System*, G. C. C. Coe (1952) pp. 297-321

म होने हुए परिवर्तन का स्रोत है।¹ जर मनुष्य क व ढङ्ग बनने लगत हैं जिनमें व अपना निर्बाह करत है परिवार का भरण-पोषण करतें हैं बच्चा का शिक्षा दत हैं अथवा अपन श्रमन प्रबन्ध का चलत हैं आर पूजा करत है, ता उन सबका ही हम सामाजिक परिवर्तन की सत्ता न हैं।

सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य है समाज में परिवर्तन' किन्तु 'समाज में परिवर्तन क्या शक्ति है' हम समझना इतना मग्ल नहीं जितना पापद प्रतीत जाता है। सामाजिक परिवर्तन क चार में अनेक परस्पर विरोधा एव असाध्यक मत प्रचलित हैं। आधुनिक युग में 'स विषय की सर्वोत्तम बर्णानिक विद्वान् अग्रज न की है। दर उद्घात सामाजिक परिवर्तन की का' निश्चित परिभाषा नहीं की है। ही उनक सम्पूर्ण विवरण से यह प्रतीत जाता है कि वह समाज की पार्थिव और असाध्यिक शोना ससृष्टिया में परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन मानत है।² यह बहुत व्यापक अर्थ है।

महाश्वर शौर पञ्च न सामाजिक 'सगठन में परिवर्तन' मात्र का सामाजिक परिवर्तन कहा है। समाजशास्त्री की रीति उन परिवर्तन में है जो सामाजिक सम्बन्ध में हान हैं।³ व सामाजिक परिवर्तन का, सांस्कृतिक परिवर्तन जो एक व्यापक विधा है का अन्त एक भाग मानते हैं। इस भाग में होने वाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जाना चाहिए।⁴

गिनिन और गिनिन क विचार से सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य जीवन क स्वीकृत दग में 'पर' स है। य परिवर्तन मत ही भौतिक दशाया में हुए हा या सामूहिक सरजा जनसमूहा की सरचना या विचारधाराया में परिवर्तन हा और चाह व मनुह में प्रसरण या आविष्कार से हुए हा।⁵ इस परिभाषा का स्वीकार करने में आपत्ति है क्योंकि यह सामाजिक परिवर्तन का सामूहिक परिवर्तन का पर्याय बना देती है। हम यह कह चुक हैं कि सामाजिक परिवर्तन सामूहिक का एक अर्थ मात्र है। पन्ना दूना में कम व्यापक है। किन्तु एडिस न सामाजिक सगठन अर्थात् समाज की रचना और दाय में होने वाले शोचना का सामाजिक परिवर्तन कहा है। सामाजिक परिवर्तन की यह धारणा काफी स्पष्ट है।

सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन में भेद

समाज में व नो परिवर्तन सामाजिक है जिनमें व्यक्तियों क सामाजिक सम्बन्धों में शोधान हा जाता है तथा जो सामाजिक व्यवस्था क विभिन्न अंगों

- 1 F. F. Merrill & H. W. Eldredge *Culture and Society* (Prentice Hall 1954) p. 512
- 2 William F. Ogburn *Social Change* (Viking Press New York 1938)
- 3 Our sociological focus of interest is the particular change of social relationships. Maclver & Page *op cit* p. 629
- 4 *Ibid* p. 511
- 5 Gillin and Gillin *Culture Sociology* (1948 Edition) pp. 561-62.

अथवा पहलुओं के रूप रचना और काय बदल कर उसका एक नया चित्र प्रस्तुत करते हैं।

सामाजिक परिवर्तन का एक उदाहरण देना। नगरीकरण के बढ़ने से परिवार का आकार छोटा हो रहा है। उसमें स्त्रियों की स्थिति ऊँची हो रही है। उसमें सभी सदस्य एक ही घर में नहीं रहते हैं। वे अपने मूल स्थान पर ही अथवा दूर-दूसरे घर बनाकर रहते हैं। परिवार के कमान वाले सदस्यों का बंधन समाजसे हाता रहता है। इन सब दशाओं ने परिवार की स्थिरता को बहुत कम कर दिया है। इसी प्रकार की अन्य दशाओं के कारण पारिवारिक विघटन हो रहा है। यह सामाजिक परिवर्तन का एक उदाहरण है। शिक्षा के प्रसार, नगरीकरण एवं जनतांत्रिक व्यवहार की प्रौढ़ता के कारण भारत की कठोर जाति प्रथा बहुत कुछ मिथिल हो गई है। यह भी सामाजिक परिवर्तन हुआ।

सांस्कृतिक परिवर्तन उपरोक्त परिवर्तन से अधिक व्यापक है। सांस्कृति की किसी शाखा (कला विज्ञान प्रविधि, दर्शन आदि को सम्मिलित करते हुए) में तथा सामाजिक संगठन के रूपों और नियमों में हर एक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन है।¹ संगठित श्रमिक संघों के विकास से मिल मानिक और मजदूरों के सम्बन्धों में जो परिवर्तन आया है वह सामाजिक है। परन्तु हिन्दी की देवनागरी लिपि में संशोधन, या इसी प्रकार के सांस्कृतिक तथ्यों में परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन होते हैं। इस विषय पर सांस्कृतिक परिवर्तन के अन्वय में विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है।²

गतिहीन और गत्यात्मक समाज

जब मानव व्यवहार को निर्धारित करने वाले मूलभूत सामाजिक प्रतिमान एक पीढ़ी से दूसरी तक सार रूप से अपरिवर्तित रहते हैं तो समाज का गतिहीन स्वरूप आता है। इनके विपरीत इन प्रतिमानों में जब शीघ्र परिवर्तन होने की प्रवृत्ति होती है तो समाज को गत्यात्मक कहते हैं। किन्तु यह ध्यान रहे कि ये बातें आपस में हैं। समाज एक अविनाश योग्य है। उसमें परिवर्तन आना नितांत स्वाभाविक है। यह या तो उत्पत्ति करमा या अवनति अपने स्थान पर स्थिर नहीं रह सकता। यह कहना भूल होगा कि आन्तिक समाज गतिहीन है और आधुनिक समाज गत्यात्मक। बाद भी समाज में पूर्ण गतिहीन और न पूर्ण गत्यात्मक हो सकता है। हाँ, जिन समाजों में शीघ्र परिवर्तन होता है वह सरलता से अनुभव किया जा सकता है। सभी आधुनिक समाजों में परिवर्तन की गति एक ही नहीं होती। यदि किसी समाज में व्यवहार में शीघ्रता में बदलेगा जैसे कि परमाणु घनमयता तो फिर उस समाज का जीवन रहना पूर्ण सम्भव हो जाएगा।³

1 Kingsley Davis *Human Society* (Macmillan New York 1949) p 622.

2 For a detailed discussion consult Maclver & Page *op cit* p 411

3 Maclver & Page *op cit* p 411

परिवर्तनीय मानव की प्रकृति को किसी विशिष्ट क्षण में विद्यमान समाज रचना का अध्ययन कर नहीं जाना जा सकता। उनका समकालीन पहलू अनिश्चित का धारण है और उनमें भविष्य के पहलू के भी बीज हैं। इसलिए उनकी प्रकृति के समझन के लिए हम ऐतिहासिक विघाता का अध्ययन करना चाहिए जिसमें समाज गुजरा है और अपनी निरन्तरता में भी स्थापित हुआ है। अतः हम परिवर्तन की प्रक्रिया का अध्ययन करना चाहिए। सामाजिक परिवर्तन एक निरन्तर चलन वाली प्रक्रिया है।

बुद्ध प्रश्न

सामाजिक परिवर्तन के विषय का भली भाँति समझन के लिए बुद्ध महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है। ये प्रश्न कौन से हैं? यदि किसी समाज में मानव परिवर्तन का समझना चाहिए तो ये प्रश्न उठते हैं— (१) इन परिवर्तनों का क्या रूप है? (२) क्या इनमें कोई प्रमत्तता है? (३) इन परिवर्तनों की दर क्या है? अथवा क्या सभी सामाजिक परिवर्तन की समान गति होती है अथवा विभिन्न परिवर्तनों की विभिन्न गति होती है? (४) समाज में परिवर्तन का क्या स्त्रोत है? (५) इन परिवर्तनों का उत्पन्न करने के लिए कौन सा शक्तिशाली या दृष्टान्त उत्पन्न करेगा? अथवा इनके कारण कौन हैं? और यदि हम प्रश्न जा मानव समाज के नियमों की अधिक महत्वपूर्ण है, यदि है क्या इन परिवर्तनों की कोई दशा है? क्या समाज का किमा लक्ष्य की ओर गति जा रहा है या अज्ञान मानव का भयानक विपत्ति में डाल देगा? इन सभी प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है क्योंकि इसकी सफलता ही सामाजिक परिवर्तन पर अनुपम के नियंत्रण का सम्भावना उत्पन्न कर सकती है।

प्रस्तुत अध्याय में इन समस्याओं (प्रश्नों) का समाधान करने की चेष्टा में बुद्ध महान्तिव सुभाव या सफल करने का प्रयास है। यदि इन समस्याओं का बुद्ध स्पर्शी कारण है। यका और बुद्ध सत्यता का सुभाव किया जा सके तो हमारा उद्देश्य सफल हो सकेगा।

सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक अन्त क्रिया

मनुष्य में अनेक व्यक्ति रहते हैं। इनका परस्पर सम्पर्क होता है। किन्तु जब तक यह सम्पर्क केवल भौतिक रहता तब तक किसी प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध नहीं स्थापित हुए। जब वे एक दूसरे के व्यवहार का अनुभव करते हैं और तदनुसृत रूप कार्य करते हैं तो उनके सम्पर्क भौतिक न रह कर मानसिक हो जाते हैं। इसी कारण से सामाजिक सम्पर्क में उन लोगों में अथर्वपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जिस विषय में ये स्थापित हुए हैं उन सामाजिक अन्त क्रिया कहते हैं।

सामाजिक अन्त क्रिया और सामाजिक परिवर्तन में निश्चय ही गहरा सम्बन्ध है। यथा सामाजिक परिवर्तन सामाजिक अन्त क्रिया से ही होता है। समाज की

रचना में अन्त क्रिया होना स्वाभाविक है। पति पत्नी में, परिवार तथा अन्य समूहों और ममिनिया के सम्बन्धों में अन्त क्रिया होती रहती है। वही क्रिया के कारण सामाजिक परिवर्तन सम्भव होता है।

परन्तु सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक अन्त क्रिया एक नहीं है। अन्त क्रिया का प्रतिमानित स्थायी को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।¹

अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन परिवर्तन

यद्यपि समाज में निरन्तर परिवर्तन चल रहा है परन्तु सभी परिवर्तन अन्त क्रिया के रूप में नहीं रहते। कुछ परिवर्तन अस्थायी रूप में होते हैं और कुछ स्थायी। अस्थायी परिवर्तन बहुत बार अन्त क्रिया का ही रूप होते हैं। इसलिए बुद्धिमत्ता की बात यह है कि सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन हम दीर्घकालीन दृष्टिकोण से ही करें। सामाजिक परिवर्तन का विचार करने समय अवधि का स्पष्ट निर्देश कर देना आवश्यक है।

सम्पूर्ण समाज में सामाजिक परिवर्तन को मान्य करना नितांत बठिन है

सभी समाजों में सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन करना नितांत बठिन है। कारण यह है कि विभिन्न समाजों में अन्त क्रिया के प्रकार से भिन्नताएँ होती हैं। स्पष्ट और मागेरिन और वनडिकट जैसे महान् विद्वानों का हमें वास्तव में अस्मिता मिली है। शायद एक समाज के विभिन्न भागों में होने वाले सामाजिक परिवर्तन का विश्लेषण करना अत्यन्त ही कठिन और लाभदायक है क्योंकि सम्भव है इस विश्लेषण से सम्पूर्ण समाज के परिवर्तन पर कुछ प्रकाश पड़े सके।

सामाजिक परिवर्तन की एक विषय सूची बना लेने से हम निश्चय ही समाज के परिवर्तन की सूचना मिल जाती है परन्तु उसमें हमारा वस्तुनिष्ठ उद्देश्य पूरा नहीं है। वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण को अपनाने पर हम सामाजिक परिवर्तन का वर्णन मात्र कर लेते हैं सन्तोष नहीं कर सके। हमारा पर्यावरण और लाभप्रद अध्ययन विश्लेषण करके ही हो सकता है। विश्लेषण में सामाजिक परिवर्तन के तथ्यों का संश्लेषण करके उन्हें समझित किया जाय। तत्पश्चात् उसका हमें प्रकार अथवा निष्कर्ष निकालने के लिए वस्तुनिष्ठ प्रामाणिकता के माध्यम से सके। सामाजिक परिवर्तन अथवा अन्त क्रिया और निरन्तर परिवर्तन की क्रिया है। हमें दीर्घकालीन अस्मिता का विश्लेषण करने में पट्टि (रीति) में ही सम्भव है।

सामाजिक परिवर्तन के छोटके अर्थ शब्द

समाज में परिवर्तन के ढंग (modes) तथा गुण के अन्तर्गत वर्णन का

1 Social change does not refer to social interaction but rather to the normative conditions of interaction Davis op cit p 63

प्रयत्न, गुण काय अपनी नई दशा में प्रस्फुटित होकर अलग अलग स्पष्ट रूप से निकलने लगे हैं। विकास का एक निश्चित रूप अंगीकरण की ओर होता है। विकास के अलग परिवर्तन का सामाजिक आदर्श में मूल्यांकन नहीं होना यद्यपि विकसित वस्तुओं का हम कम या अधिक समुन्नत और उच्चतर या निम्नतर कहते हैं। उद्विकास समित्त जुनत शब्द हैं—उन्नति अघागति, अघनति। किसी मापक का अभाव हमें स उच्चतर निम्नतर या आग-पीछे का भाव प्रकट होता है।

प्रगति—विकास में उच्चतर निम्नतर या आगे पीछे का भाव तो प्रकट होता है किन्तु उससे अधिक अच्छ-बुरा का भाव कभी नहीं प्रकट होता। विकास का मूल्यांकन समाज द्वारा प्रतिष्ठित नैतिक आदर्शों के आचार पर नहीं होता। 'प्रगति' में आदर्शमय मूल्या का भाव निहित है। प्रगति का प्रयोग गुणात्मक तथा किसी विशाल मान वाले परिवर्तन के लिये जरूर किया जाता है किन्तु यह परिवर्तन समाज द्वारा निर्दिष्ट मूल्यों तथा आदर्शों का प्राप्ति कर चुका हो और कर रहा हो। 'प्रगति' में विकास की दशा किसी लक्ष्य की ओर होनी चाहिए। वह आदर्श निर्धारित किसी गन्तव्य की ओर हमें जाये। यह गन्तव्य या लक्ष्य नैतिक शक्तियों द्वारा नहीं बनता। यह बनता है हमारी सामाजिक मूल्यताओं में। क्या प्रगति है और क्या अयोग्यता इसका विषय विभिन्न यत्ति और समूह अपनी मानसिकता तथा अनुभव के अनुसार करते हैं। यदि विकास द्वारा नए परिवर्तन का हम सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से अच्छा या बुरा समझें तो विकास का भी हम प्रगति या अयोग्यता कह सकते हैं।

उपयोजन आदि—उपयोजन समायाजन अनुभूतन मात्मीकरण तथा उनके विषयय किमी वस्तु या व्यवस्था में स्वयं परिवर्तन के अभाव नहीं हैं। किन्तु ये दो या अधिक वस्तुओं या व्यवस्थाओं में परस्पर परिवर्तित सम्बन्धों के अभाव हैं।

मुधार—नई परिस्थितियों में समाज की पुरानी व्यवस्था में जब जान बूझकर कोई परिवर्तन किया जाता है तो उसे मुधार कहते हैं। मुधार हमें किमी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये किया जाता है। हम परिवर्तन की निश्चित दिशा हाती हैं। मुधार में समाज का पूरा व्यवस्था या उमर किमी अंग की कमियाँ दायाँ और बुराईयाँ को दूर करने का प्रयास किया जाता है। मुधार के लिये नियम परिवर्तन में गुण-दायक का विचार होना है। व समायोजन तथा गुणात्मक दाना होते हैं। मुधार लाने के लिये व्यक्तियों या समूह द्वारा आशा की जाती है। आशात्मक का अभाव का प्रकार में होता है। पहल समाज या समूह के अघित में अधिकतर प्रभावित मुधारों का स्वच्छा में अभाव है। दूसरे प्रभावित मुधारों का समाज में लाने के लिये राज्य कायून बनाय। विकसित तथा अघित गम्य देना में या समाजवादी समाजों में समाज मुधार मुयत कायून का अघित में किया जाता है। इसे नियोजित समाज परिवर्तन भी कहते हैं।

जिसमें हम १९६७ में आनाद हुए शांतिमय क्रान्ति थी। विनावा भावे भूदान में जिस सर्वोत्पन्न समाज की स्थापना का आन्दोलन कर रहे हैं वह शांतिमय क्रान्ति की चीज है। दक्षिणी पूर्वी एशिया में बुद्ध धर्म का प्रसार शांतिमय धार्मिक क्रान्ति थी।

सामाजिक परिवर्तन की गति की दर

समाज की व्यवस्था में विरोधी शक्तियाँ का संतुलन होता है। उनमें से कुछ परिवर्तन चाहती हैं जब कि शेष उनका विरोध करते हैं। यदि इन दोनों प्रकार की शक्तियों में से कोई अधिक प्रबल नहीं है और दोनों ही एक-दूसरे की तुलना में समान हटने की हतासमाज में स्थिरता रहती है। जब परिवर्तन चाहने वाली शक्तियाँ प्रबल होती हैं तो उनका विस्तार में परिवर्तन की दर का आभाव होता है।¹

परिवर्तन की दर का अर्थ है। प्रथम, विभिन्न समाजों में अथवा एक ही समाज में विभिन्न समयों में परिवर्तन कितनी शीघ्रता से हो रहा है। जहाँ आधुनिक भारत में मध्य कालीन भारत की अपेक्षा अधिक शीघ्रता में परिवर्तन हो रहा है। अथवा भारत और चीन की अपेक्षा दक्षिणी एशिया के अल्प देश धीरे-धीरे चल रहे हैं। परिवर्तन की दर का दूसरा अर्थ यह है एक समाज के विभिन्न भागों में वृद्धि एक ही समय में परिवर्तन कितनी शीघ्रता से हो रहा है।

परिवर्तन की दर की तुलना करना अत्यन्त कठिन है। पहली कठिनाई यह है कि सम्पूर्ण समाज में परिवर्तन नापने का कोई तरीका उपलब्ध नहीं है। हाँ एक समाज के विभिन्न अंगों और दूसरे के उन्हीं अंगों में निश्चित समयों पर परिवर्तन की गति का तुलना की जा सकता है। जहाँ धर्म परिवार आधारित संस्थाएँ संस्कृति आदि में परिवर्तन की दर की तुलना करना अपेक्षित नहीं है। आम लक्ष्य यह है कि एक ही प्रकार की वस्तुओं में तुलना की जा रही है। अतः हमें समाज की जो अवधियाँ में मापने के परिवर्तन दर का माप किया जा सकता है। पर हमें भी विविध अंगों में परिवर्तन की दर का नापने का रीतियाँ मान्य करना आवश्यक बताना होगा।

एक समाज के विभिन्न भागों में जातायात और गचार शिक्षा राजनितिक संस्थाएँ धर्म या व्यापार में परिवर्तन की मापने के दरों का मापन करना निम्नलिखित सूचनाएँ देना यह सभी परस्पर अनुवर्ती हैं।²

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाएँ

एक समाज में परिवर्तन का अर्थ विधायक एवं साधक रूप में हैं। क्या पर समाजवादी हो रहा है या दूसरा अर्थ मध्य में है। क्या पर एक समाज में

1 To the extent that forces favouring change prevail a rate of change result. Davis *op cit* p 676

2 A. Davis *op cit* pp 626-27

या व्यक्ति दूसरे पर प्रभुत्व जमा करता है तो दूसरी ओर इस प्रकार के प्रभुत्व का उखाड़ फेंका जा रहा है। यदि एक समूह नए लक्ष्य का प्राप्ति करने में प्रयत्नशील है तो दूसरा प्राचीन आदर्शों का वापस लाने पर तुला है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक समाज में एक ही माध्यम परिवर्तन की इतना विधायक काम किया करती है कि यह जान करना कठिन हो जाता है कि क्या सम्पूर्ण समाज में एक इकाई की भाँति (जिसे चाहें एक राष्ट्र हो अथवा सांस्कृतिक क्षेत्र या एक विभाजन सम्मिता) किसी गति को माँजा जा सकता है? क्या स्वयं समाज परिवर्तन का सिद्धी विद्याया से गुजरता है? और यदि हाँ तो इन विद्याया का क्या काँड निश्चिन स्वभाव या शिवा है? विचारका न सामाजिक परिवर्तन के दो रूप बनाये हैं — (१) चक्रिक, और (२) विद्यमानशील।¹

चक्रिक परिवर्तन—सामाजिक परिवर्तन का चक्रिक विद्या मानने वाले विद्वानों का विचार है कि समाज नव्युत्पत्तियों सम्मितायें अथवा नव्युत्पत्तियों जन्म लेती हैं और उत्पत्ति करके अन्तर्निष्ठ पर पृथ्वी है और अन्त में उनकी मृत्यु हो जाती है। साम्राज्य बनते और बिगड़ते हैं। समाज अथवा नव्युत्पत्तियों के जीवन चक्र का वह मनुष्य के जीवन चक्र के अनुरूप मानते हैं।

विद्यमानशील परिवर्तन—अपने विचारका का मत है कि समाज का विधान होता है जिनमें उनके गुण या प्रवृत्तियों पर या चरित्र प्रकट हो जाते हैं। समाज की प्रवृत्ति में सम्मिश्रित विविध प्रवृत्तियों की गुण भावनायें धीरे धीरे प्रकट हो जाती हैं। समाज के सभी परिवर्तन निरन्तर एक शिवा में होत रहते हैं। उदाहरण के लिये सिद्धांतों में प्रथम प्रायः समान प्राधान्य है। इनमें से कौन सामाजिक परिवर्तन की विद्या का मध्य या दृष्टांत विवरण करता है?

कभी कुछ विद्वान चक्रिक और विद्यमानशील सिद्धांतों को दूसरे के विरुद्ध विरोध मानते हैं। यह अतिरेक है और दृष्टांत में बहुत दूर है।

An extreme statement of the cyclical hypothesis would be that social phenomena of whatever sort (whether specific traits or whole civilizations) recur again and again, exactly as they were before. An equally extreme statement of the linear hypothesis would be that all aspects of society change continually in a certain direction never faltering or ever repeating themselves.

सम्भवतः उत्तराल अन्तिम स्थिति का स्थापना का किया जा सकता है। समाज में परिवर्तन की हर प्रवृत्ति में कौनो बृद्ध नव्युत्पत्तियों (नए चक्रों) का जन्म लेती है। कौनो नई वस्तु प्रदिष्ट वस्तुओं का दूर न नष्ट परिवर्तित होती है।

और इसी प्रकार यह भी स्पष्ट है कि २२ घटना पूरातया पहले जसी नहीं हो सकती। बोद भी वस्तु या सस्या परिवर्तित होकर अपनी शुद्ध पूव स्थिति पर नहीं पहुँचती है। वास्तव म सामाजिक परिवर्तन की दाना परिवर्तनाय वनापि वनापि नहीं हा सकती।

हम अभी भी सामाजिक परिवर्तन के बारे म सत्र बुद्ध नहीं जान सकन। हम सिर्फ वही पात २२ मक्ता है जा अवलोकन योग्य है। इसलिय यह धारणा कि परिवर्तन का कोई विनिष्ट ढग मदव स विद्यमान रहा है, अनुभव सिद्ध पान के परे है। सामाजिक परिवर्तन का चरम प्रकृति की बात करना मवल दशन की गलतिया म धूमना है। इस प्रकार की पहलिया का समाज विज्ञान म कोई स्थान नहीं है।

समाज परिवर्तन के अवलोकन स उसम प्रवृत्तियाँ और चपनतायें दाना ही मिलते हैं। यह जानन क लिए कि कौन परिवर्तन रखिक (linear) है अथवा चक्रिक, हम उस विचाराधीन समयवधि (span of time) के मदभ म दपना होगा।¹

परिवर्तन की दिशा

परिवर्तन आग पीछे दाना दिशाओ म हो सकता है। दिशा को जानन क लिए परिवर्तन के कारका को पात करना आधारभूत है। यह भी सम्भव है कि परिवर्तन की दिशा अपरिवर्तित रह परन्तु परिवर्तन की दर म शीघ्रता या शिथिलता आ जाय। कई बार अवलोकनकर्ता किमी परिवर्तन म दिशा का अनुमान कर लेता है। ऐस अनुमान परिवर्तन के तथ्यो के आंतरिक गुण के सम्बन्धन नहीं होते। व तो व्यक्ति की इच्छाया स निर्धारित हात हैं। उदाहरण के लिए, कुछ नाग म्त्रियो द्वारा पर्ण के वहिष्कार को भारतीय समाज की अधोगति का माध्य मानते हैं।

सामाजिक परिवर्तन के ढग

परिवर्तन का ढग उसम विषय के अनुसार भलग भलग हाता है। यहाँ हम तीन प्रकार के ढगा का बणन करेंगे।

(१) जब कोई अवपण हाता है ता अपन अंतिम रूप म आता म पहल वह अमिक त्रिणा की अवस्थाया स होकर गुजरता है। समृति क परिच्छे म हमने दगा या कि एन नया सामूहिक उपकरण वितन हा पूवगामी उपकरण का मोनिक या गुपर रूप म मन हाता है। दाई भी अवपण गहसा गहा हा जाता और आविष्कार हो जान पर म उगम कराकर परिवर्तन हात रहा हैं। सामानान, या

1 We cannot know anything about all social change. We can know only about the social change that is observable. Any claim that a mode of change has always persisted and always will persist clearly goes beyond empirical knowledge. Indeed, whether a given change is cyclical or linear depends largely on the span of time under consideration. Davis, *op. cit.* p. 62.

जिनको या मोटर कार को ही देखिए। तांत्रिक परिवर्तन की यह विशेषता इसी प्रकार किसी कला या विज्ञान में भी प्रतिक्रिया विकसम या उत्पत्ति होती है। नान विज्ञान के अन्तर्गत प्रथम बर्द्धि होती है। उसमें समनुगमना और एकीकरण घीरे घीरे आता जाता है। जब कभी प्राक्तिकारी परिवर्तन ना जान हैं तो व सम विज्ञान के बखवर में अधिक प्रगता में समविन हो जात हैं। इस प्रकार क परिवर्तन ढग को हम एसी रखा स दिना मजन है ज प्रमसा उपर की प्राग उटनी जानी है तथा त्रिमती त्रिशा हमसा एक हा रहती है। यानायन के मापना की काय गमना (efficiency) इसी प्रकार दती है।

(२) हमर ढग का परिवर्तन जन-मत्या की बर्द्धि तथा कमी या आधिक क्रियाया की उत्पत्ति अवर्तन में त्रिवाई दना है। गहरा की जनमत्या बन्ती है और कभी-कभी घट जानी है। जनमत्या की बर्द्धि का प्र म उत्तार चढ़ाव आते हैं। इसी प्रकार दस में उत्पादन की दर भी बढती घटती रहती है। अन्तराष्ट्रीय व्यापार में भी उत्तार चढ़ाव जाना रहता है।

(३) परिवर्तन का तीमरा ढग लयनार या वष के समान जाना है। मुजह दोगहर शाम का क्रम या मौसमों में परिवर्तन लयदार है। जीवन में भी यही क्रम मानूम पढता है। जीवन मृत्यु क प्रम का चक्रिक बहा जाता है। व्यापार में उत्पादन-पनन का क्रम भी चक्रिक जाना है। किन्तु सांस्कृतिक परिवर्तना सामाजिक आशानना तथा पशान में परिवर्तना का ढग एक वष में त्रिखाया जा सकता है।

परिवर्तन क उपरांत ढग परिम्पतिया क सम्पात्मक पहलू को दिना सकत हैं। किन्तु परिवर्तन विषय क गुण में भी जाना है। गुणात्मक पहलू को हम किसी प्रकार का रग्ताया या चित्रा में नहीं त्रिखा सकत। मन्वृति क गुणात्मक परिवर्तना का हम मत्याया में नहीं नाप सकत। हमर गुणात्मक परिवर्तन क प्रकार क होत हैं। हमनिए परिवर्तन क टगा का मूकम विरनपण में समझना चाहिए। उनमें अनेक जटिलताए जानी हैं।

सामाजिक परिवर्तन के कारण

समाज में परिवर्तन जान बानी स्थायी दगाभा का हम लो बगों में किनात्रिन कर सकत हैं —

(१) बाह्य प्राण त्रिन पर मनुष्य का निर्बिन और पूरा नियन्त्रण नहीं जाना है ज प्रान्तरिक और अत्रिक दगाओं।

(२) आन्तरिक प्राणों त्रिनकी मृष्टि और नियन्त्रण स्वयं मनुष्य परिम्पतिया और मजय क दन्तार करणा है जस प्रौद्योगिक धपवा उत्पादी (utilitarian) और सांस्कृतिक प्राण।

प्राकृतिक, जविक और प्रौद्योगिक एवं सांस्कृतिक दशाग्राम से प्रत्यक्ष एवं प्रसार के कारका की सामूहिक क्रिया की प्रतिनिधि हाती है। इसलिये प्रत्यक्ष दशाग्राम एक प्रकार के कारका का समावेश होता है। इसलिये सामाजिक परिवर्तन के कारका को भी चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है (१) प्राकृतिक कारक, (२) जविक कारक (३) प्रौद्योगिक कारक, एवं (४) सांस्कृतिक कारक।

समाज-परिवर्तन की स्थायी दशाग्रामें

मनुष्य हमेशा से अपने प्राकृतिक पर्यावरण में सुधार और परिवर्तन करता आया है। वह एकात्मक वातावरण पर नियंत्रण करने के लक्ष्य से करता है। नदियों पर पुनः पहाड़ों में गुरगें जंगल का सफाई टुकटूर से मती, रेल मोटर या जहाज बनाना अन्य मशीना के निर्माण से उत्तम अपन वास्तव पर्यावरण को नियंत्रित किया है। उमक नियंत्रण के हर काम न उमके तथा पर्यावरण के सम्बन्ध का बन्ना है। इन सम्बन्ध में परिवर्तन से मनुष्य मनुष्य के सम्बन्ध में भी परिवर्तन होता है। एक उदाहरण लें। कपड़ा बुनने के लिए पहले व्यक्तिगत रूप से जुताह या उनका परिवार काम में लग रहते थे। किन्तु जब कपड़ा बुनने की मशीना का आविष्कार हुआ तो एक फक्टरी में कपड़ा हजारों स्त्री पुरुष एक साथ मिलकर काम करने लग। उनके परस्पर सम्बन्ध से उनमें नए सम्बन्ध बन गई मन्थाय और संगठन विकसित हुए। यही सामाजिक परिवर्तन है। उन नई समस्याओं तथा संगठनों का प्रभाव सारे समाज पर पड़ता है और समाज की व्यवस्था परिवर्तित होती है। मशीना के उपयोग से जा श्रम-संध तथा बच्चा से सम्बन्धित कानून या औद्योगीकरण वाले शर्तों की समाज व्यवस्था में उनसे बहुत परिवर्तन हुए। मकाइवर कहता है कि इस तरह मनुष्य अपने पर्यावरण को बदल कर सामाजिक-परिवर्तन की क्षमता की जन्म देता है। कुछ सामाजिक सम्बन्धों से उसकी सम्पत्ता उम पर लागू होती है और कुछ यह अपना सम्पत्ता पर लागूता है। इसके अनिर्दिष्ट सामाजिक परिवर्तन के सार पर्यावरण से मनुष्य के बदलने हुए सम्बन्ध के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणामों से गृह्ये होते हैं। हर सामाजिक सम्बन्ध के सांस्कृतिक मूल्य उसकी आवश्यकताओं के अनुकूल वास्तव पर्यावरण का अनुकूल बन्ना रहते हैं तांत्रिक साधनों का नियंत्रण, निर्माण और नियंत्रण करने हैं तथा विरोधा सांस्कृतिक मूल्यों से मध्य में जीत जाते हैं। इस प्रकार समाज की स्वयं प्रति में अस्थिरता निम्न है।¹

प्राकृतिक पर्यावरण — प्राकृतिक पर्यावरण और क्रिया से समाज में परिवर्तन होता है। हमारी पृथ्वी का धरातल और गौर बन्ना करता है। कुछ भौतिक परिवर्तन के कारण धाम हानि और कुछ भागी और बहुत तेज जैसे मूल्य में मूल्य तथा धर्म। प्रकृति में क्रतुपा के बन्ना के अन्तर्गत तत्काल मान्यता हराया धर्म में मन्था अर्थ में परिवर्तन जाते रहते हैं। ये और इसी तरह के हानि मान प्राकृतिक

परिवर्तना पर मनुष्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। व मनुष्य के नियंत्रण के बाहर हैं। किन्तु व मनुष्य-समाज का वर्तन दल है। य सामाजिक परिवर्तन मनुष्य के पक्ष परण से उपयोजन के परिणाम हैं।

जन्मवायु भूमि में सामाजिक तत्वा आदि में परिवर्तन समाज का बहुत घोर प्रभाव है। इनका प्रभाव एक प्रकार से नकारा मक और अप्रत्यक्ष होता है। हटिगन जलवायु में परिवर्तन में सम्पत्ता और मस्तिष्क में परिवर्तन बताया है। जूनिपन हकान भी जन्मवायु तथा भूमि के सामाजिक तत्वा में परिवर्तन में सामाजिक परिवर्तन का कारण बताया है।

एक दूसरे प्रकार के पर्यावरणी-परिवर्तन मनुष्य का दिग्गम के परिणाम होने हैं। वह भूमि का जानता है और मनी करता है निया पर पुन बनाता है और उनमें नहरें निकालता है पहाड़ों का मुग्ग लगाकर खोजता करता है विस्तृत जाला का एक नर मराना में परिणत कर ता है। इन सबमें उनमें समाज में परिवर्तन होत हैं—जनसंख्या बढ़ती है जावनस्तर ऊंचा होता है उसका सम्पत्ता और मस्तिष्क में उत्तमि जाती है। किन्तु जब धरत लालव और भूमता न वह प्रकृति की गतिया का बजा पाठग करता है ता नका भौतिक पर्यावरण उनक निय अन्विचन बन जाता है। उसमें निय जनसंख्या के बढ़ती हुई आवश्यकताका का पूरा करने की गति नती रहती। इसका परिणाम वर्तन घातक जाता है। शहर खण्टर हो जात हैं सम्पत्ताएँ घनीत का बन्दु हो जाता है और विनाल भूभाग गिम्पान या जनर मरान हो जात हैं। पूर्वो भूम-यमाग के तटा पर दक्षिणी दृष्टता भूतान किन्तुन और मिय आदि में जनसंख्या के बढ़त हो नटा बन्द व्यापार के भाग रात्रातिया तथा मस्तिष्क के दृढ़ और सामाजिक सम्पत्ता का गरी व्यवस्था हो त्तन गर्त।

हर सम्पत्ता धरत पर्यावरण के माधना का शायण करता है। धरत वाता के धनावा, इन माधना का सरतिन या उनकी प्रतिस्पापन बन्द का माधना पर मराना की जिन्ना उनका कायम रहता और उनी उत्तमि निभर रहता है। हमारी प्राधुनिक मराना में मामन भी यह प्रश्न है कि कायता ताग आदि पातुश्रा के समाप्य हो जात पर वह बना रहती ? जन पाता का गति न बिजती बना के बिजता की पूति अररिमिन कर ता है उनी तरत भाप गति का परिमितता का मन्ता के विकाम में कायक न जनत के निय मनुष्य न अणगति का सात्र करती है। अणुगति के धरत तथा औद्योगिक उपाय में भविष्य में भाग सामाजिक पर बनत गान का सम्भावना है।

हम पान के चुक है कि भौतिक पर्यावरण सामाजिक विषया के लिए रा-मच है। इन रण सब में परिवर्तन होने पर उन पर होने वाला विनाश में भी परिवर्तन आता है।

(२) जबकि दशायें—समाज स जबकि निष्ठायाका मं उमकी जनताया की रचना विनयग नम मरण मया और शाश्वतिक तथा मानसिक गुण और एक पीपी क बाद दूसरी पीपी का श्राना सम्मिलित हाते ह । समाज म परिवान का म्याया थात उत्तकी जबकि निधि है । जीवशास्त्री कहत ह कि म्नी पुस्य के मयाग स जा सताप पता हा पी है यह अपन माता पिता दाता की विनयताया का रान हुण भी उना भिय हाती है । अयाव मनुष्या की हर पापी शारीरिक और मानसिक गुणा की हृष्टि स पत्ती पीपी म भिन्न हाती ह । वशानुक्रमण जित हम स्थिर या मरणाक शक्ति ममभते ह उमम भा परिवतन हात रान ह । एक ही मं राप की निम्न निम्न ममाना म पूण ममानता कभी तपी पाड जाती । समाज की जामना वान तथा सचार के मयाया का उत्तति म तागा म तापय अविद्य उठ जाता है जिनत विभिन्न और अतमान स्त्री-पुस्य का समागम या रधिरमिश्रण बड जाता ह । जटित मभ्यनाया मे यह रधिर मिश्रण बटुन हत तव बड जाना है और परिणामत मनुष्या की पीडिया क शारीरिक और मानसिक गुणा म भारी परिवतन या जान ह । क्या यह वदन समाज म वापी परिवान नही जाता ?

समाज परिवतन की जबकि दशायें परिवतन क अय वारका मे मिलकर बटुन मटारपूण हा जाती है । हर समाज की अपनी विरासत हाती है । इसकी प्रवृति प्रमम मगृणामक है । समाज म जा नए सत्स्य प्रवण करत ह उह अपन जीवन रान और उन्नति वरन क लिए उई दशाएँ नही निर्माण करती पडती । ये सामाजिक विरासत का उपभाग करत ह किन्तु इस उपभाग म उह अपन अनुभव क सहारे तुनाय तथा अस्वीकार करन की गुजाइश रहती है । वम, मही मम्भाजना समाज परिवान का मान ह । हम जानत हैं कि वपस्वा की हर पीडी अपना मायना तथा प्रतिभा क अनुमान सामाजिक विरासत का उपभाग करती है और अपन कर्मो म उमनी वृद्धि करती है ।

श्रीमत्स्य का मरणा अनावरत बदला करती है । जाम स्थिया पुरपा, बच्चा मरणा तथा वृद्धा का अनुमान हमशा राना वरना है । मनुष्य अपना श्राविक ध्यदया की उन्नति कर जीवन-स्वर का ऊचा वरन की धुन म मय स रगा है । शानागर क ऊ हात म मनुष्य की शीमा भाय बड जाती है शानर बटनी तथा मृचुत्तर घटती है शान शानस्या म वृद्धि की दर बड जाती है । जामस्या क शतन म म समाज का मयायें और मून्य वरान है उगा प्रार उमकी वृद्धि म उद मयायें याता है नय मगना का नम याता है तथा नम अय और शानाति शान म का प्रारम्भ हाता है ।

शास्त्रिक दशाएँ

(१) प्रास्थािक ध्यदया—प्रावृत्तिक पदावरण तथा श्रित शान्या म समाज म परिवान का मान प्रवण है किन्तु समाज-परिवानो म यही मनुष्य का

निश्चिन्त और पूरा हाथ नहीं है। तांत्रिक दशार्थ ममाज परिवर्तन की एमी दशार्थों हैं जिनका निर्माण निश्चयपूर्वक मनुष्य की त्रिशाओ मे हुआ है। अपनी आवश्यकताओं का पूर्ति के लिए मनुष्य एक सन्ध्या का सज्जन करता है। जिस विविध मात्रा का वह उपयोग करता है इन सबमे उनका ममाज न गहरे और विस्तृत परिवर्तन हुए हैं। अपनी एक आवश्यकता की पूर्ति कर वह कितना ही नए आवश्यकताओं को जन्म देता है। जब हम उत्पादन बढ़ाने के लिए तकनीकी ढंग में कृषि करते हैं तो टकटर यात्रा और शीशर मिखाइ आदि के लिए नए उपाय निकालते हैं साथ ही इन नए तरीकों के लिए नई मन्ध्याएँ नए कानून और नए परिस्थितियाँ बनाते हैं। हमारे गाँव में गाँव अधिनतर कच्चे तथा टार के मकानों में रहते हैं यदि नए टार और सीमेंट के मकानों में रहना शुरू करें तो उन्हें अपनी पुर्णता प्राप्त करने तक पढ़ेंगे। इन प्रकार जब हम अपनी पुर्णता आवश्यकताओं की पूर्ति नए साधनों से करते हैं तो उनका नई जहरों का उत्पादन करते हैं। मानवों के साधनों में मनुष्यता के परिधि नीतिविकाया सामाजिक मूल्या आर्थिक तथा राजनैतिक मन्ध्याओं सभी का अन्तर्भाव है। मनोरंजन का नया माध्यम सिनेमा का उदय हुआ। इनमें हमारे जीवन के सभी पहलुओं में काफी परिवर्तन किया है। आधुनिक युग अणुशक्ति का है। विज्ञान विचारों का आशा है कि निकट भविष्य में नए अणुशक्ति के शांति-कारण उपयोग में मनुष्य का समस्त पदावरण पर प्रभुत्वपूर्ण नियंत्रण हाँ जायगा हर चीज का उत्पादन अनामिन माना में होगा और मनुष्य का जीवन अत्यधिक समृद्ध हो जाएगा। यदि ऐसा हुआ तो शोशाणीकरण से भी अधिक क्रांतिकारी परिवर्तन हमारे सामान्य में आ जायेंगे तांत्रिक उन्नति में ममाज में इनके अर्थिक और व्यापक परिवर्तन हुए हैं कि यद्यपि हमारा सामाजिक-परिवर्तन का मुख्य कारण मानता है।

उपयोगिता बाल तंत्रों और मुक्तियों में एक दूसरे तरफ में भी सामाजिक परिवर्तन होता है। ज्योंही हम किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए एक नई ममान या मुक्ति का उपयोग करते हैं हमारे तब सामान्य के अर्थ मन्ध्या के बीच के पुर्ण सम्बन्धों में या तो सुधार हो जाता है या विकृत नए सम्बन्ध बन जाते हैं। उदाहरण के लिए कारखानों का उदय हुआ। इनमें काम करने के लिए गाँव गहरे में विभिन्न जातियों और वर्गों के तब विभिन्न सामाजिक स्तरों के लोग आकर एक साथ आते हैं। परस्पर सम्बन्ध न उनमें नए सम्बन्ध स्थापित होते हैं। उनका अन्तर्भाव करने गहन जाता और तब में नए परिवर्तन हो जाते हैं। अर्थिक तब में विभिन्न जातियों तथा वर्गों में गूट हो जाते हैं। इस तरह में नए कर्मों नए साधनों का उपयोग होने मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों तथा ममानों में परिवर्तन होता आवश्यकताओं की है। फिर नए सामाजिक व्यवस्थाएँ नए सामाजिक-कारणों का जन्म देती हैं जिनमें नए आविष्कार होते हैं। अन्तर्भाव विज्ञान, विज्ञान के नियंत्रण में तब का मनुष्य को इच्छा

अपनी स्वयं की प्रकृति अभिव्यक्त करने की उमकी वाह्य इच्छा द्वारा संचालित होती है। नर नए आविष्कार से उसे एमा करने के लिये बन्ला हुआ अवसर मिलता है। जिन सामाजिक समस्याओं में तन्गीली आती है।¹

आधुनिक मन्थता में तीव्र सामाजिक परिवर्तन हान के एक कारण यह भी है कि इन साधनों का सिर्फ साधन ही समझते हैं। साध्य की पूर्ति के लिए उनमें कोई भी धीरे-धीरे भी नर फर किया जा सकता है। यदि कोई विशिष्ट साधन साध्यपूर्ति में सफल नहीं है तो उम स्थान देने में हम बाइ मकीच नहीं होता। साधन के परिधान समाधान अथवा परित्याग में आधुनिक मानस का सांस्कृतिक विरोध नहीं पाना। अर्थात् वह किसी यत्र या साधन में बाइ लगाव नहीं रखता। मनुष्य अपनी आविष्कारक प्रतिभा का स्वतंत्र तथा अबाधित उपयोग करता है। एतत् तांत्रिक दान में परिवर्तन बड़ा तजी से हाता है जो हमारे समान को भी अत्यधिक मनिशील बनाता है।

(२) सांस्कृतिक व्यवस्था—मनुष्य की मूल्यनामा का निर्माण बाह्य कारका या तांत्रिक दशाया पर ही निर्भर नहीं है। ये मूल्यनाए स्वयं एसी शक्तियाँ हैं जो सामाजिक परिवर्तन को संचालित करती हैं। हर समाज का जीवन के प्रति दृष्टिकोण भिन्न होता है। इनमें एक ही तंत्र का अभाव हुए भी विभिन्न समाजों में उमका उपयोग एक दृष्टिकोण या मूल्यनामा के अनुसार होता है। शोकागीकरण और नगरीकरण का विरोध स्थान्तर समाज के हितों द्वारा निर्धारित होता है।

सांस्कृतिक प्रकृति से ही परिवर्तनशील है। एमके दो पन्लू होत हैं, एक में मूल्यना तथा दूसरे में अभिव्यक्ति है। अनुभव के बलन के साथ मूल्यनाए भी बन्ती है अनुभव बाइ मनुष्य के या अस तुष्टि से जुटा है। हर युग में मनुष्यवृत्त वस्तुओं की अपनी मूल्यनाए हाती हैं जिसको उमका मानसिक विचार तथा सामाजिक आन्दोलन प्रकट करत है। समय के साथ इन मूल्यनाओं में भी परिवर्तन होता है। जिसको यामान पीड़ी परत करती है उमका अगली पीड़ी घुणा कर जाता है। इस कथन की मयना हम मनि बना गाहित्य दशना आशों तथा प्रचलित पशना में बदन्ती है मनिवा से मिये हा जाणगे। अभिव्यक्ति का का डग अपन लक्ष्य का पूणतया और अन्तिम रूप में प्राप्ति नहीं कर पाता। एक समय में ये मनुष्य करता है तो दूसरे समय उम बन्त के दूसरे में मनुष्य की अत की जाती है।

दुसरे अन्तिम हर जन्म समुदाय में सांस्कृतिक जिन में भारी विविधता (variety) हाती है। उमके हाट बडे मनुष्य परिवर्तन वर्गा व्यावसायिक समूहा पानिक और सामोचित मनुष्य के सांस्कृतिक म्नि—मूल्यनाए अनुसरणाल रुढ़ियाँ धानि—एक दूसरे में भिन्न। नही परम्पर विगामी ना हात है। हर मनुष्य अपने

सांस्कृतिक हिंसा का बढ़ावा जना चाहता है और श्रवण पाने ही समा करता है। किन्ती भी एक समय समाज में सर्वोपनि सम्मान मिलता है तो दूसरे समय उस ही काई कौडी मान नहीं पूछता। इसी प्रकार विभिन्न सम्प्रदायों में भी परम्परा सांस्कृतिक मध्य हाना रहता है। इसा मध्य में नई मूल्यताएँ बनती हैं और तन्तुरूप समाज में परिवर्तन हात है। सामाजिक मूल्यनाशा से सामाजिक परिवर्तन कम हाता है। इसका एक उदाहरण देखिये। भारत में अभी तक विवाह एक धार्मिक संस्कार माना जाता था। पति-पत्नी एक दूसरे में असन्तुष्ट हाते हुए भी विवाह विच्छेद करना अनतिक तथा अधार्मिक समझत थे। अब यदि धीरे धीरे विवाह एक सामाजिक अनुबंध (social contract) माना जान लगता तो विवाह विच्छेद का सस्या अवश्य बढ़ जायगी। विवाह विच्छेद का धम के खिलाफ नहीं कहा जाएगा। दूसरा उदाहरण लगभग २० वर्ष पहले यूरोप के प्रगतिशील समाजों में भी सत्तति निग्रह के हर तरीके को अनतिक समझा जाता था किन्तु आज भारत जैसे देश में भी जहाँ सत्तान का हाता न हाता इश्वर की कृपा पर निर्भर माना जाता है सत्तति निग्रह और परिवार नियोजन का अपनाया जा रहा है। यदि भारत में परिवार नियोजन को मफल बनाया ता बहुत सम्भव है कि हमारे जनसंख्या की वृद्धि उसी अनुपात में ही जिये हमारे साधन बढ़ें और हम गरीबी में मुक्त हो जाएँ।

सामाजिक परिवर्तन के प्रतिरोध

आगवन तथा निमकार न सामाजिक परिवर्तन की निम्न बाधाएँ बताई हैं—

- (१) आविष्कार का अभाव (२) एक आविष्कार के निर्माण की कठिनाता जिनका समाज शीघ्र स्वीकार कर लेता है (३) आविष्कार को अपनाने का विरोध (४) परिवर्तन के विरोधी रुख तथा (५) सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ।

जो समाज जितना विकसित हाता उसकी संस्कृति भी उतनी ही विकसित हागी। विकसित संस्कृति में अनेक उपकरण हात हैं इसलिए उनका काम मत्ता की सम्भावना मौजूद रहती है। तथा संस्कृति में अधिक्त आविष्कार हात हैं। क्याकि हर आविष्कार निम्न निम्न प्रचलित सांस्कृतिक उपकरणों का एक नया समूह हाता है। इसीसे नये समाजों में नातिक तथा सामाजिक दाना प्रकार के आविष्कारों की मस्या बहुत कम हात है और इसमें तत्काल वृद्धि हाती जाता है। ये समाज बहुत परिवर्तनशील हात हैं। इसका विपरीत पिछड़े या अधिविकसित समाजों में आविष्कारों की मत्ता अपभवंतया कम हात न सामाजिक परिवर्तन में बाधा पड़ती है।

तथा आविष्कारों को समाज शीघ्र स्वीकार ता कर लेता इसीसे जो अनुपयोगी आविष्कार होते हैं वे समाज में स्वीकृत नहीं हात। उन सामाजिक परिवर्तन बहुत कम या प्राय नहीं के चरावर हाता है। किन्तु यह स्मरण रहे कि आविष्कारों का एक

आविष्कार का ही निर्माण करने का प्रयास करते हैं कि वह समाज स्वीकार करे और आविष्कारों का अपन परिश्रम का पुरस्कार मिले।

दाना पार्थिव तथा सामान्य आविष्कारों का विराग प्रारम्भ में होता है। हम विरोध का मात्र आविष्कार की उपयोगिता पर निर्भर है। यदि समाज की आवश्यकता की पूर्ति के लिए कोई आविष्कार उपयोगी है तो उस फीरोन बिना किसी विरोध के स्वाकार कर लिया जाता है। किन्तु जिन आविष्कारों का विरोध होता है उनका बड़ा कारण है। यदि कोई आविष्कार उपयोगी भी हो परन्तु यदि प्रचलित व्यवस्था से काम चल जाता है तो नवीन आविष्कार को शीघ्र नहीं अपनाया जाता। दूसरे, यह आविष्कार का अपनापन में प्रचलित व्यवस्था का नष्ट करना पड़ता है। जिससे अधिक आर्थिक हानि हो सकती है। तीसरे, प्राणना तथा गरीबी भी आविष्कारों को समाज में नहीं प्रचलित होना देता। चौथे, मनुष्य की आदतें भी नए आविष्कारों के प्रचार में बाधा डालती हैं। पुरानी व्यवस्था में रहते रहते मनुष्य की आदतें उन्नी के अनुकूल बन जाती हैं। नए आविष्कार नई व्यवस्था के निमाण की सम्भावना अपने साथ लाते हैं जिसमें मनुष्य की पुरानी आदतें काम न लेंगी। पुराना आदतों का हटाना नए बनाना बहुत कठिन तथा अशक्य लगता है। जिनकी पुराना आदतें होंगी उन हटाना उतना ही कठिन तथा अशक्य लगता है। इसलिए बूढ़ पुराना काम नए विचारों और नए व्यवस्था का विरोध करते हैं।

सामाजिक परिवर्तन का विरोध अथवा मनाशाना विचारों से भी किया जाता है। समाज का नवीनता के प्रति सचेत और नय जाना है। ये प्रचलित रीतिरिवाज, विचारों तथा मूल्यों के प्रति श्रद्धा और प्रेम रखते हैं। ये अपने पुराने रीतियों और आदतों का नए बदलाव चाहते हैं। इसमें अनिश्चित कुछ लागू का यह भय जाना है कि नए आविष्कारों से उनका प्रतिष्ठित स्थान पर आघात होगा। ये अपने स्थान की सुरक्षा के लिए नए आविष्कारों के विरोध में प्रचार करते हैं।

बुद्ध सामाजिक परिस्थितियों भी परिवर्तन में बाधा डालता है। बुद्ध समाज की व्यवस्था अपनी स्थिति जानती है कि ये न केवल समाज से सम्बन्ध बढ़ाना चाहते हैं और न केवल मनुष्यता का प्रभाव ही अपने ऊपर पड़ना देते हैं। उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि की नाति उन्नी परिवर्तन का रोचनी है। दूसरे, जो समाज आविष्कारों के लिए सचेत नहीं निश्चय जानते हैं वे अपने और अधिक समृद्ध समाज में कम समय व्यय करते हैं। अथवा बुद्धि और ज्ञान होने पर भी घनाभाव में पार्थिव आविष्कार नहीं करते हैं। तीसरे, राजनीतिक परिस्थितियाँ भी सामाजिक परिवर्तन में बाधा डाल सकती हैं। बुद्ध समाज का ज्ञान है जो न केवल अपने नागरिकों को शिक्षित करने के लिए और न विचारों का अपनापन में है। परिणामस्वरूप मनुष्यिक आदतों प्रचलन में बाधा पड़ता है और परिवर्तन नहीं होना। जिन समाजों में राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ है वहाँ आविष्कारों के लिए उन्नीय बाधाकरण नहीं मिल पाता। अन्त

म यदि 'गाम्बल' के अधिवाधिक धन को बूम कर उसे 'तन्त्र' के लाभों में लक्ष्य करता तो समाज-संस्था तथा न्याय के साधनों में उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसमें सामाजिक परिवर्तन में बाधा पड़ेगी।

सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न रूपों में कुछ निष्कर्ष

(१) समाज के किसी अंग में हुए ज्ञान का एक परिवर्तन नया तथा नए अंगों में जनक परिवर्तन को जन्म देता है। आन्दोलन न अस्ती पुस्तक मोशन चेंज में रेखा के कारण ज्ञान वाले १५० परिवर्तन की सूची दी है।

(२) समाज के केवल प्रत्यक्ष परिवर्तन को ही हम सारा परिवर्तन नहीं समझना चाहिए। एक परिवर्तन एक ही साथ कई अंगों में परिवर्तन नहीं लाता बल्कि उसमें कई वर्षों तक—कभी-कभी युगा तक—अन्य परिवर्तन हो रहे हैं। वह नए व्यवस्था का जन्म देता है और युगाती शिक्षाओं में परिवर्तन करता रहता है। एक आविष्कार धार धार पूरे समाज पर प्रभाव डालता है। एक लक्ष्य न एक उदाहरण देकर इन बातों का बहुत योग्यता में समझाया है। 'उत्तरी' में छात्रों का आविष्कार १४ वीं शताब्दी में हुआ था। 'नम' नामक छात्रों का ज्ञान जन-साधारण का पठन का मिला। जो पाप के कारण नामक छात्रों में भिन्न भावों में हुए ना पाप का विचार हुआ और मुवाय छात्रों में शुरू हुआ। बाद में तथा उत्तरी टीका पाठ्य मनुष्य में स्वयं धर्म धर्म में चिंतन करने का अधिभार मिला। हम अधिभार का प्रभाव धीरे धीरे ज्ञान सामाजिक क्षेत्र में दिया। पाप के गिद्ध शिक्षण करने के बाद निम्न 'गाम्बल' के विनाश विनाश शुरू हुआ। एक-एक को उत्तरी ज्ञान प्रभाव और प्रभाव में जनता का स्थापना में। स्वयं-ज्ञान तथा समाज में छात्रों की प्रतिष्ठा करने के लिए भव्यतः आनन्दित हुए। आर्थिक क्षेत्र में व्यक्तिगत स्वयं-ज्ञान के सिद्धांत न पचावा के जन्म जिसे समाजशास्त्र तथा साम्यवाद में 'गाम्बल' तथा हुआ। इस प्रकार छात्रों के आविष्कार का परिणाम बचन १४ वां शताब्दी में ही स्वयं उचित नहीं है। यद्यपि उपरोक्त परिवर्तन का कारण बचन छात्रों का आविष्कार ही तथा नै उभय अर्थ का कारण का मत हुआ है। फिर भी यह ध्यान में कि एक नए विचार आविष्कार का आन्दोलन का प्रभाव गिक प्रत्यक्ष ही नहीं जाता बल्कि अन्तर्गत तथा कई वर्षों या युगा तक बाधा या अधिभार प्रभाव डालता करता है।

(३) समाज के केवल एक स्थान पर परिवर्तन नहीं होता। अन्य स्थान पर कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है। किन्तु निम्न स्थान पर परिवर्तन भी विभिन्न प्रकार के होते हैं। उनके कारण भी एक नहीं बने हुए हैं। फिर भी इन कारणों का बह प्रभाव न मंच होता है तथा उभय महत्व या योग भी विभिन्न अनुपात में होता है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन, जो युगांतमक तथा सन्वत्सरिक होता है, जिनके

कद कारण हान हैं तथा जिनकी श्रुसता म प्रम और दिशा दोना स्पष्ट नही दिग्दर्श पडते, वा विरलेपण करना कद आसान काम नहा है ।

(४) जिन प्रकार एव कारण मे कद परिवर्तन हान हैं उसी प्रकार क कारणों से एव ही परिवर्तन हाना है । प्रजातन्त्र वा विकास मिफ द्वापाराना नही स्वतन्त्रता तथा समानता क विचार और यानायान एव मत्तार के माघना म उन्नति आनि भी हैं । सक्षप म प्रजातन्त्र या अय किनी परिवर्तन के निमाण म अनक परिस्थितियां निम्पदार हानी हैं । सामाजिक अवपणा पर परिस्थितियां एव विचार दोना का प्रभाव पष्टता है ।

(५) सामाजिक परिवर्तन का कुछ शक्तियां विरोध करती हैं । समाज म परिवर्तन करन बान बारखा तथा परिवर्तन विनागी शक्तियां म शीचा-तानी चना करती है । किस समाज म किस समय जिन परिवर्तन हागे यह परिवर्तन के बारखा तथा विरोधी शक्तियों क मनुदान मे मासूम हा सरता है ।

सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त

कुछ दार्शनिक इतिहासकारा अथगास्त्रा तथा समाजशास्त्रिया न सामाजिक परिवर्तन का व्याख्या सिद्धान्त प्रयवा नियमा का प्रतिपात्ति कर की है ।¹ उनका विचार है कि इही सिद्धान्त के अनुसार समाज म प्रतिबन्धन हान हैं । इनम म कुछ विद्वान ता यह मानत हैं कि समाज की सभी वस्तुधा की प्रकृति म ही परिवर्तन का प्रकृति बसती है जो मानव मन्व-धा म प्रकट हाना है । हणन कौमल हरप्रट स्पेसर और स्पेगनर आनि पाषचात्य एव कुछ प्रमुख यूरोप विद्वाना क विचार इसी श्रेणी म धान हैं । दूसरे बग क विद्वानों का विचार है कि समाज म मनुदान यनाय रगन बाना आघा की व्यवस्था म प्रत्यक परिवर्तन का परिणाम समाज म परिवर्तन हाता है । अन भौगोलिक जविक प्रापिक प्रयवा सासृत्तिक दशाघा म जय भा वाइ परिवर्तन हाना है ता समाज म परिवर्तन हाना स्वाभाविक है । इनम कुछ विद्वाना न यह सिद्धान्त प्रतिपात्ति किया है कि समाज का दशाघा का जटिल व्यवस्था म किसी एक कारण—प्रापिक प्रौद्योगिक भौगोलिक प्रयवा जविक म परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन का प्रापिक कारण है । यही एव का-क समाज क समस्त पहचुधा म परिवर्तन का क लिए उत्तरदायी माना जा सकता है । सामाजिक परिवर्तन क लिए किमी करन कारण का ही प्रापिक (प्रयवा निदायक) मानन बात सिद्धान्त को निधारणवाण कहा जाता है ।² भावम तथा प्र य प्रापिक निधारणवाणिया न सामा

1 Sorokin *Contemporary Sociological Theories* (1928) and Barber and Becker *Social Theories from Law to Science* (1918);

2 By deterministic theories we mean here any doctrines that regard human behaviour and changes in human behaviour as primarily to be explained by environmental external or material conditions. Maclver and Page *Society* p 548

जिक परिवर्तन का उत्पन्न करने में आर्थिक शक्तियाँ तथा श्रमशास्त्र का प्राथमिक कर्ता है। श्रमशास्त्र और बर्तमान आर्थिक विद्वानों ने प्रौद्योगिक कारकों का सामाजिक परिवर्तन का निर्धारक माना है। मूल्य बचक तथा उमक अनुयायी सम्प्रदाय को यही महत्त्व देने हैं। किन्तु कुछ अन्य विचारक निष्ठावाद में विश्वास नहीं करते हैं। उनका विश्वास है कि सामाजिक परिवर्तन के सभी कारक समान महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें से सभी एक और सभी दूसरा तथा सभी के साथ-साथ मिल कर समाज में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। श्रेय आर्थिक एवं विभिन्न प्रकार के प्रमुख विद्वानों का सतिष्ठ विवेचन करें।

स्वचालित सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्तों में भी इनका सहयोग ही मकनी है कि चूंकि मानव-समाज जीवन वस्तुओं के व्यवहार और पारम्परिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है इसलिए उनमें आवश्यक सिद्धान्त पर परिवर्तन हासिल रहना स्वाभाविक है। किन्तु समाज पर भौतिक पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है। इस पर्यावरण में परिवर्तन होने पर समाज में परिवर्तन आना आवश्यक है। इस प्रकार समाज की रचना में जनसंख्या आर्थिक सांस्कृतिक तथा प्रौद्योगिक शक्तियाँ भी आधारभूत हैं। इनका समाज के संगठन से अन्तःसम्बन्ध है। यदि इनमें से किसी एक अथवा सवमें परिवर्तन होगा तो समाज में समस्त परिवर्तन आवश्यक हो जाएगा। अतीत और वर्तमान समाजों का ऐसा ही अनुभव है इसके माध्यम से समाजों के व्यवहार में मिलावट रहती है। अतएव इन विद्वानों का विचार बहुत कुछ सत्य है कि यह मानना है कि सामाजिक संगठन में भौतिक जैविक सांस्कृतिक अथवा आर्थिक प्रौद्योगिक शक्तियाँ अनाधिक संतुलन बनाए रखती हैं। इनमें से एक अथवा अधिक में परिवर्तन आने में संतुलन बिगड़ जाता है जो परिवर्तन का प्रकट करता है। निर्धारणवादी सिद्धान्त इन आधारभूत कारकों में सभी का समान शक्तिशाली न मानकर किसी एक का भव्यशक्तिशाली और समाज के समस्त पर्युष्मा में परिवर्तन का उत्पत्तिक मानते हैं। इनमें से आर्थिक प्रौद्योगिक एवं सांस्कृतिक कारकों का प्राथमिक कारण बताते हैं कि विद्वानों का कुछ विस्तार में विवेचन करना आवश्यक होगा।

मात्र का आर्थिक निर्धारणवाद

मानव का विचार है कि समाज में ऐतिहासिक परिवर्तन हासिल रहते हैं। समाज का सम्पूर्ण प्राधान्य इतिहास द्वारा परिवर्तन का इतिहास है। इन परिवर्तनों का व्याख्या करने के लिए हमें ऐतिहासिक परिवर्तन की 'भौतिकवादी धारणा' का सृष्टि की है। इसका वर्णन स्वयं मात्र के द्वारा ही करना आवश्यक है।

'मनुष्य के जीवन के सामाजिक उत्पादन में उनमें निश्चित सम्बन्ध बन जाते हैं जो अनिवार्य हैं तथा इनकी शक्ति में स्वतंत्र है। ये उत्पादन के सम्बन्ध हैं जो उनमें भौतिक उत्पादन की शक्तियाँ के विराम की एक निश्चित धारणा के समक।

ज्ञान है। उत्पादन के इन सम्बन्धों के सम्पूर्ण योग से समाज की आर्थिक रचना का निर्माण होता है जो वास्तविक नाव है जिस पर बधानिक और राजनतिक अधि रचना सही जाती है तथा जिससे समग्र ही सामाजिक चेतना के निश्चित रूप होते हैं। भौतिक जीवन के उत्पादन या उद्योग साधारणतया सामाजिक राजनतिक और बौद्धिक जीवन का प्रेरणा का प्रभावित करता है। मनुष्या की चेतना उनके अस्तित्व का निर्धारण नहीं करता बल्कि इससे प्रतिकूल उनका सामाजिक अस्तित्व उनका चेतना का निर्धारक है। समाज की भौतिक उत्पादन शक्तियाँ के विकास की किसी अवस्था पर उनमें तथा समाज के विद्यमान सम्बन्धों में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। उत्पादन के विद्यमान सम्बन्धों का ही वैधानिक नाम सम्पत्ति में सम्बद्ध है जिसमें भौतिक उत्पादन की शक्तियाँ तथा तब बाधशील रहती हैं। उत्पादन शक्तियों के विकास के रूप में ये सम्बन्ध उनकी श्रद्धालाभा में बदल जाते हैं। तब सामाजिक जीवन का एक युग प्रारम्भ होता है। आर्थिक जीवन के परिवर्तन से सम्पूर्ण विशाल अधिरचना में युनाधिक तीव्रता में रूपान्तर होने है। उत्पादन की आर्थिक दशाभा में रूपान्तर जो प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति निश्चित होते हैं तथा उपरोक्त रूपान्तरों में भेद है। वैधानिक राजनतिक धार्मिक सौन्दर्यान्तर अथवा नागरिक—मधोप में विचारगत रूपों के परिवर्तन में मनुष्य उपरोक्त संघर्ष के प्रति चेतन ज्ञान है और उस संग्राम में समाप्त करती है। मनुष्य में यह चेतना भौतिक जीवन के विरोधाभासी है। समाज आधार सामाजिक उत्पादन शक्तियाँ तथा उत्पादन के सम्बन्धों के बीच में उपस्थित संघर्ष है। मात्र तौर पर एजियाटिक प्राचीन सामन्तवाणी और वर्तमान में जीवानी के अन्तर्गत समाज का समाज के आर्थिक निर्माण में प्रमुख गुण बना जा सकता है।¹

समाज शास्त्र में भाषण के निर्माण का कारण यह है —

आर्थिक शक्तियों में समाज की रचना करती है जिसमें समाज परिवर्तन आर्थिक परिवर्तन के परिणाम है। मनुष्य के आर्थिक जीवन में जो प्रारम्भिक सम्बन्ध उत्पन्न हैं वे अतिवाचक और अन्तरी समाज में स्वतन्त्र हैं। इन प्राथमिक सम्बन्धों का निष्पत्ति आर्थिक उत्पादन की शक्तियों में होता है। ये शक्तियाँ स्वयं प्रोद्योगिक विकास का अवस्था में निर्णय करती हैं। सम्बन्धों का उपरोक्त व्यवस्था सम्पूर्ण सामाजिक संगठन—मनुष्य के सामूहिक वैधानिक राजनतिक, बौद्धिक आध्यात्मिक तथा सौन्दर्यान्तर जीवन द्वारा उमरी संस्थाओं—की निर्धारक है। सामाजिक संगठन के परिवर्तन तथा अस्तित्व के वैधानिक प्रोद्योगिकी के विकास की अवस्था में परिवर्तन में उत्पादन की नाविक शक्तियों में भी परिवर्तन होता है जिस पर

¹ Karl Marx *Contributions to the Critique of Political Economy*, Preface quoted in V. I. Lenin's *Marx Eng. Is-Marxism* (Moscow) 1951) p. 26-27

सामाजिक संगठन की सम्पूर्ण अतिरिक्तता खरी है किन्तु सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाओं के अन्तर्गत विद्यमान नए आर्थिक माग के प्रतिबन्धन हानी हैं। उह पुरानी व्यवस्था की विचारधाराएँ और निश्चिन् स्वार्थ जन्म रहन हैं। इन स्थिति में निम्न और आपत्तिलाभा के अपीडन अर्थिक बह जाता है जो उह अन्त अतिरिक्तता र प्रति जातिक नया पुराना व्यवस्थानी तथा अनुभवोत्त समान व्यवस्था में सुवन कर देता है। अन्त व पुरानो व्यवस्था का अन्तिम स उपाड फल हैं और उनक स्थान पर समान की नए व्यवस्था आ जाती है। एसी स्थिति या प्राचीन समाज में हानी रही है और भविष्य में भी हानी रहती जब तक सरकार के बग के उन्मूलन नहीं हो जाता और एक बग विहीन (मकहारा) समाज की स्थापना नहीं हो जाती। बग तथा बग सभ्राम के उन्मूलन से मनुष्य मुक्ति के युग में प्रवेश करते त्रिमम मानवता का नियंत्रण नीतिक शक्तियों के हाथों में हाकर स्वयं मनुष्या के पान हाता।

उपरोक्त बरान में स्पष्ट है कि माकन का विस्वास है कि सामाजिक परिवर्तन का नियंत्रण आर्थिक सम्बन्धों के अधीन होना है और ये सम्बन्ध प्रौद्योगिकी के विकास की अवस्थाओं पर अन्तर्निहित हैं। इनलिए माकन के सिद्धान्त का आर्थिक प्रौद्योगिकी नियंत्रणवाद कहा जाता है। यद्यपि माकन और एन्टल्स ने सामाजिक व्यवस्था और उनमें होने वाले परिवर्तन का आधार आर्थिक ही माना है परन्तु अपने तथा तथा पक्ष बचनार में उन्होंने इस बात पर बरा बरा आपत्ति की है कि उनक सिद्धान्त का यह अर्थ नहीं है कि आर्थिक कारकों के अतिरिक्त अन्य सबका पूरणया गीए एवं कारणों व विज्ञान माना जाए।

समालोचना—सामाजिक सम्बन्धों तथा अन्य विद्वानों ने मानने के इस दृष्टिकोण में नीतिरवात के सिद्धान्त का भी आलोचना की है व समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए मन्वपूर्ण है।

मकाद्वार ने लिखा है कि—(१) मानव तथा एजिप्स ने हम पर ही निरन्तर वन दिया कि मनुष्य का प्रौद्योगिकी नीतियों में आर्थिक एवं सामूहिक जीवन उनक जीवन तथा धर्म और परिवार काय तथा अन्य सामाजिक सम्बन्धों आर्थिक व्यवस्था का प्रतिबिम्ब अथवा उनका व्यक्तन है परन्तु— (२) निम्न बातों की प्रदर्शन करने का प्रयत्न नहीं किया है। उनमें सामाजिक कारणों के अतिरिक्त प्रकृतिक कारणों का समाधान नहीं किया। (३) माकन ने इनका कारण नहीं देखा कि 'समाजवाद' की सामाजिक व्यवस्था में सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य जो समाज के सम्पूर्ण परिवर्तन में आदर्शन रहा है क्या बाय बाय करे सता है? (४) मानव समाज के इतिहास में तथा वर्तमान समाज में एक अन्तर्गत सामूहिक जीवन है जो यह निरर्थक सिद्ध करत है कि सामूहिक स्तर पर बड़े बड़े समाज में परिवर्तन उत्पन्न करते रहते हैं त्रिन्तका कारण आर्थिक कारण अथवा शक्तियों बढ़ाव नहीं है। (५) समाज विचारधारा की सिद्धान्तों की नीति माकन का सिद्धान्त अन्तर्गत समाज

विज्ञान पर आश्रित है। यह 'मकी प्राग्गनाशक' निवसता (fatal weakness) है। धार्मिक प्रवृत्ति तथा सामाजिक परिवर्तन में अति-यून प्रत्येक, सत्त्व और पर्याप्त सम्बन्ध है। उत्पादक पद्धति में परिवर्तनों से मनुष्य के व्यवहार बदल जाते हैं परन्तु उत्पादक पद्धति में कैसे परिवर्तन आता है, माक्स इसका उत्तर नहीं देता। क्या उत्पादन की परिवर्तनशील प्रविधि स्वतः परिवर्तित होती है और सरल निर्धारणात्मक शक्ति में प्रथम कारण है? माक्स मर्यादा में सलग्न रचना का अति सरल समझता है और परिवार व्यवसाय तथा राष्ट्र की मुद्रनाएँ और भक्तियाँ पूणनया धार्मिक बग के आधीन मानता है। ऐसा भावना भ्रम है क्योंकि धर्मानुयाय तथा राजनतिक कारण मदक धार्मिक व्यवस्था का प्रभावित करते रहें हैं और इसी प्रकार धर्म भी। (१) सामाजिक कारणत्व की प्रधान समस्या का धार्मिक निर्धारणवाद से समाधान नहीं हो पाता। धार्मिक कारणों को सामाजिक राजनतिक साम्प्रतिक, धार्मिक परिवर्तन में निश्चय ही शक्तिशाली और गहराई तक जात वाला स्वीकार करना चाहिए। धार्मिक परिवर्तन तथा सामाजिक परिवर्तन में सह सम्बन्धता है किन्तु धार्मिक परिवर्तन का कारण तथा दूसरा को परिणाम नहीं कहा जा सकता।¹

मकाइयर का विचार है कि माक्स के सिद्धान्त की सच्ची शक्ति केवल एक बात में है। इसमें सत्त्व का पूजावानी सम्बन्ध के आन्तरिक गम्भीर दोषों के कारण क्रांतिकारी प्रयत्न से 'माम्भवाणी समाज की स्थापना में परीक्षण करने को प्रेरित किया है। उसमें एक धार्मिक विचारधारा की शक्ति है न कि धर्मानुयाय सत्यता की।' माक्स उन पगम्बरों की पक्ति में खड़ा है जिनके पूर्व कथना न सत्त्व में प्राप्ति कर दा है किन्तु ठीक उन पूर्व कथना के अनुसार नहीं।²

सारानिन का विचार है कि माक्स का सिद्धान्त पूणनया धर्मानुयाय है। विज्ञान का यह धाधारभूत सिद्धान्त है कि कारण-भाव में सम्बन्ध गम्भिर ही जाना है। किन्तु माक्स न एक ही कारण में उपलब्ध होने वाले प्रभावा का परस्पर विरोधी प्रत्यासा है। धार्मिक कारण से दो प्रभाव उत्पन्न होते हैं जो परस्पर विरोधी हैं।³

मअम बंदर न सिद्ध किया है कि धार्मिक व्यवस्था पर धर्म का भी प्रभाव पड़ता है। भारत और चीन के इतिहास इसका ज्वलन उदाहरण हैं।

माराण यह है कि मानव का निर्धारणवाणी सिद्धान्त सामाजिक परिवर्तन के विविध कारणों के अंतर्गत तथा मत्त्व का भुनाकर कथल धार्मिक कारणों को प्राथमिक मान देता है। मनुष्य के मनाज में मत्त्व का धार्मिक मत्त्व है जो

1 *Stalin* pp 560-63

2 The true strength of Marxism is the strength of a creed and not the validity of a science *Ibid* p 563

3 *Ibid* p 563

4 Such an equation [implied in Marxian analysis] of (L)—A and B opposed to A) is a logical nonsense—it contradicts the fundamental principle of science—the uniform connection of cause and effect *Contemporary Sociological Theories* p 234

आर्थिक-व्यवस्था का सदैव प्रभावित करती है। आर्थिक कारका तथा सामाजिक परिवर्तन के कारण प्रभाव का मरत निवारक सम्बन्ध नहीं टूटा जा सकता।

सामाजिक परिवर्तन की प्रौद्योगिकीय व्याख्या

माकम के अनुसार समान में परिवर्तन का प्राथमिक कारण आर्थिक व्यवस्था है जिसमें प्रौद्योगिकीय परिवर्तना का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार माकम सामाजिक परिवर्तन में दृष्टान्त प्रविधि में परिवर्तना का अप्रत्यक्ष सम्बन्ध मानता है। टन-आगयन तथा अन्य विद्वानों ने सामाजिक शास्त्रों में परिवर्तना तथा प्राविधिक परिवर्तना के प्रत्यक्ष सम्बन्ध का स्थापना है।¹ किन्तु कुछ अन्य विद्वानों प्रमुत्तया खयलन, न समाज में परिवर्तना का निवारक प्रौद्योगिकी का माना है। इन प्रौद्योगिक निवारणवाद का निदान कहते हैं।

घबलन का सिद्धांत इस प्रकार है

विशाल वर्तना दृष्ट परिवर्तन में सामाजिक रचना का उपयाजन, परिवर्तन और विशाल समुदाय के अनेक वर्गों अथवा अनेक मयमल व्यक्तियों के विचारों की प्राप्ति में परिवर्तन में होता है। समुदाय का निरन्तर नई परिवर्तन का सामना करना पड़ता है जिसमें बाध्य होकर व्यक्तियों का मानसिक प्राप्ति करना पड़ता है जो सामाजिक विकास का मारभूत प्रक्रिया है। मनुष्य का अनेक विचारों की पुरानी प्राप्ति तथा प्रचलित मन्थाप्रा में बाध्य शास्त्रों की आवश्यकता के कारण परिवर्तन करना पड़ता है। ये बाध्य दशाएँ भौतिक पर्यावरण हैं। प्रत्येक समुदाय एक आर्थिक अथवा शैक्षणिक यंत्र है जिसकी रचना में आर्थिक मन्थाप्रा का समावेश होता है। किन्तु ये मन्थाप्रा भौतिक पर्यावरण पर आधित है जो काम की प्रविधि में परिवर्तन होने में परिवर्तित होता है।

यद्यपि मनुष्य के काम की प्रविधि में परिवर्तना में उमक भौतिक पर्यावरण में परिवर्तन आते हैं। इतने बाध्य होकर मनुष्य का विचारों की पुरानी प्राप्ति का मन्थापन अथवा त्याग करना पड़ता है। विचारों की परिवर्तित प्राप्ति अथवा नये विचार सामाजिक रचना में परिवर्तन आते हैं। इस प्रकार समाज में परिवर्तन और विकास होता रहता है।²

समालोचना—(१) खयलन ने काम की प्रविधियों और विचारों की प्राप्ति में कारण-बाध का सम्बन्ध स्थापित कर लेने की है। विचारों की प्राप्ति का विनाश के शास्त्रों पर आधित है। यकी कारण है कि जब मनुष्य अथवा वर्ग के सभी लोगों के काम की सामाजिक प्रविधियों के हान पर भा उनके विचार और दृष्टिकोण निरन्तर हान में हैं। इन निरन्तर का कारण बहुत सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत भए हान है।

1 F J Turner *The Frontier in American History* quoted by Ma Iver and Page in their *Series* p 565

2 Cf T Vedler's *The Instinct of Workmanship and The Theory of Leisure Class*

(२) विचार की आदत तथा सम्प्राप्ति (अथवा सस्टिनि) में परिवर्तन दूसरा सस्टिनि या व सम्पन्न से भी हो सकता है।

(३) समान प्रौद्योगिक स्तर पर रहने वाले व्यक्तियों में परस्पर विरोधी विचार धाराएँ मिलती हैं। मनुष्य का आत्मा का गठरी मात्र नहीं कहा जा सकता। वह अपने आत्मा का छोड़ देता है और नई आदत को अपना लेता है चाहे एका कर्म का आवश्यकता उस बाह्य परावरण के कारण न भी प्रतीत हुई हो।

(४) यह सिद्धांत भी प्रौद्योगिकी या सामाजिक परिवर्तन का विश्वासेय मानकर समाज की आदतों का जटिलता या अति सरलता से समझने का व्यर्थ प्रयास करता है। आधुनिक युग में प्रौद्योगिक परिवर्तन का समाज में अति गम्भीर और व्यापक परिवर्तन अर्थश्रम हानि है परन्तु प्रौद्योगिकी पर सस्टिनि अथ-व्यवस्था तथा राजनीति के आदर्शों और लक्ष्यों का प्रभाव भी कम व्यापक नहीं है।

मात्र तथा वेबलन के सिद्धांतों की तुलना

माकम के सिद्धांत में नतिकता की स्पष्ट भूलक है। वह सामाजिक विकास का लक्ष्य समाजवादी के स्थापना में प्रस्तुत करता है। इसलिये निर्धारणवादी के भेष में वह एक आदर्शवादी पगम्बर है। उसमें सामाजिक विकास के जिस लक्ष्य की कल्पना की है वह समाज में एक नवीन सामाजिक स्थापित करेगा तथा मानव आत्मा को महान् मुक्ति प्रदानेगा। वेबलन ने विसा प्रकार के आदर्शों की प्रतिष्ठा नहीं की। उसमें एक अच्छे निर्धारणवादी की भाँति समाज के विकास की प्रक्रिया की व्याख्या की है। वह प्रौद्योगिकी अथवा सम्पत्ति के विकास समृद्धि तथा अनारूपता से ही जीवन की उत्कृष्टता को सम्प्रतिष्ठित करता है।

दूसरे कथन में कथन प्रचलित जीवन की योजना के प्रधान लक्षणा का अर्थ स्पष्ट किया है। उसमें समृद्ध वायरलिंग वग आर्थिक अज्ञानि तथा आधुनिक आर्थिक व्यवस्था तथा प्रौद्योगिकी के सम्बन्धों की व्याख्या की है। माकम ने, इसके विपरीत समाज के ऐतिहासिक विकास का व्याख्या प्रस्तुत की है और भावी समाज व्यवस्था के नियम पूर्वकथन किए हैं।

तीसरे मात्र प्रौद्योगिकी के सामाजिक परिवर्तन का वेबलन अर्थव्यवस्था के कारण मानता है। किन्तु वेबलन उक्त समाज में परिवर्तन का प्राथमिक और प्रत्यक्ष कारण बताता है।

सस्टिनि सामाजिक परिवर्तन की विश्वासेय

समाजशास्त्र तथा सामाजिक भ्रम अथवा इस विचार से सम्बन्धित है कि समाज में परिवर्तन का निश्चय उम्मीद सस्टिनि में होता है। मनुष्य के विश्वासेय, मृत्यु, विवाह, शक्ति प्रयोग तथा परम्पराओं और समाज के सम्बन्धों और मृत्युओं में परिचित सम्बन्ध है। इन सब मन्त्र कर चुक है कि सामाजिक परिवर्तन का संचालन तथा निश्चय निर्धारण सस्टिनि के परिवर्तन में होता है। सम्पत्ति के विचार में समाज में जा

परिवर्तन होत है उनमें कभी अधिक मात्रा के परिवर्तन मस्तिष्क की उत्पत्ति में शून्य है। फिर सम्पत्ति सम्पत्ता का भी ला प्रभावित करता है। मनुष्य बहुत न यह सिद्ध किया है कि मस्तिष्क सम्पत्ता पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पारस्परिक समाज में परिवर्तना की प्रवृत्ति देती है। प्राग्मैटिक तम के प्राग्मैटिक तथा तथा पुरावा के विकास में उत्पन्न स्पष्ट सम्बन्ध पाया है। इसी प्रकार ज्ञान तथा भाव के घन तथा मस्तिष्क का वही न आविर्भावता पर प्रभाव पाया है। समाज के अचरम के अन्त में मूल्य (नीतिशा) तथा अर्थ-व्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पारिता है। सब ता यह है कि समस्त सामाजिक परिवर्तना में सामाजिक परिवर्तन ज्ञाना स्वभाविक है। मस्तिष्क और समाज के परिवर्तना में अति घनिष्ठ सम्बन्ध है।

बधा लाग पूरणता यह भी समझ पाते कि मस्तिष्क में प्रौद्योगिकी के कारण परिवर्तन हो जाता है किन्तु मस्तिष्क पुन प्रौद्योगिकी का प्रभावित कर उनकी शक्ति और स्वभाव का निरिवन करता है। सम्पत्ता के समस्त भरण का उपयोग करने में हम मस्तिष्क में पथ प्रदान मिलता है। आज नीतिक सम्पत्ता इनको अधिक समृद्ध है कि प्रौद्योगिकी की मत्पत्ता में हजारों मीन प्रति घंटा की रस्तर में एकदम अथवा भू-उपग्रह छोड़े जा सकते हैं। इन दोनों का प्रयोग मनुष्य के सुख-समृद्धि की वृद्धि के लिए भी हो सकता है और उसके सर्वनाम के लिए भी।

अन में एक बात दृष्टे मार्के का है। सामाजिक विकास के साक्षरवाणी सिद्धान्त का अन्तर्भावान्ता न हम हम समाज-ज्ञान में व्यक्त किया जा पार की एक निष्ठा मानवता के सम्पूर्ण ज्ञान में विलि कर चुका है। समाज में समाजवाणी सिद्धान्त का विजय में पापण और अज्ञान का बहिष्कार सामुहिक युग का एक सुधानरकारी प्रवृत्ति है।

मनुष्य के मुखित हृष्टिशाणा के कारण प्रजातीय अन्त नाव तथा जाति-नीति के नद और अस्पृश्यता घमायना और घन घनविष्णुना के जनक और सामाजिक सम्पत्ता तथा प्रयोग बनी रही। मस्तिष्क में ज्ञान सन्धिपत्ता तथा सामाजिक के विचारा तथा मायतामा न इन सामाजिक अभिजाता का सुचन जाता है।

प्रौद्योगिकी शक्ति में सम्पत्ता और प्रौद्योगिकी का ना विज्ञान हुआ उनमें कारण समाज में भवानक और मुख्य परिवर्तन है। नागरिकता के शर्कों का ज्ञान ज्ञान में गन्धी बनी अधिक अज्ञानि नद-नद राग तथा बहिष्कार घनविचार तथा अज्ञान कर। शक्ति तथा मनुष्य का और भवन मायण तथा। इन ना ना पुगता मस्तिष्क के विरुद्ध समझा और इन सुष्ठाता तथा सामाजिक ना का और वान के लिए अज्ञानन करता है। गन्धी मनुष्य का विचार अज्ञान पापण, शिवमता एक अज्ञान के विरुद्ध अज्ञान उठाए है। नद मनुष्य के मनुष्य समाज का अज्ञान का अज्ञान का ना उठाए है। प्रौद्योगिकी तथा ज्ञान का हम उन्नी का पूरि के लिए युग दिया गया। मनुष्य का नद दिना मिली। वह मानव का

सविका बनी। जीवों का अधिराधिक सुख-मुक्तिधामय तथा प्रयाजन-पूण बनाने में वह जुट गई। मनुष्य का अपनी प्रकृति की व्यञ्जना के विविध नए अवसर मिले। इस विद्वान्पण से सिद्ध हो गया है कि सत्कृति प्रौद्योगिकी (अथवा मम्यता) को विविष्ट दिशा में परिवर्तित करती है जिसमें वांछित सामाजिक परिवर्तन सम्भव हो जाते हैं। मनुष्य ही इस परिवर्तन की गति और सीमाएँ निश्चित करती है।

स तुलन और सामाजिक परिवर्तन

निर्धारणवादी सिद्धान्तों की समालोचना कर रहे हुए हमने कहा है कि सामाजिक परिवर्तन का कोई अकाल नियम नहीं बन सकता। सामाजिक परिवर्तन के कारण का पर्याप्त व्याख्या सामाजिक संतुलन के विचार की सहायता से हो सकती है।

सामाजिक व्यवस्था एक गतिशील संतुलन है। सामाजिक सांस्कृतिक स्तर की घटनाएँ जबकि तथा रासायनिक स्तर की वस्तुओं से मिलकुल भिन्न हैं। समाज मनुष्यों से बना है जिनमें मंचारात्मक अन्त क्रिया होती है। दूसरे सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था में प्रधान तत्व इस प्रकार हैं—(१) सामाजिक वायु के तत्व—भावनाएँ मूल्य और धर्म साधन तथा दशाएँ (२) इन तत्वों के मयोग को निश्चित करने वाले विभिन्न प्रकार के वायु—प्रौद्योगिक आर्थिक राजनीतिक धार्मिक-नैतिक और व्यञ्जनात्मक आदि (३) विभिन्न स्थितियों में इन वायुओं को करने के लिए प्रतिमान वृद्ध म्वाकृतियों और निषेध—जननीतियों कृतियाँ, शिक्षण और मस्याएँ तथा (४) इन सिद्धांतों को व्यक्त करने तथा बनाए रखने वाली शक्त क्रिया की मानिक प्रक्रियाएँ। समाज के विषय में इसी तरह की किसी योजना की सहायता से उगम संतुलन पर विचार किया जा सकता है। साधारणतया वाह्य हस्तक्षेप की अनुपस्थिति में समाज में संतुलन का अर्थ उसका निर्मायक कारण पर निर्भर रहता। अतः समाज का संतुलन स्वचालित है। उसमें थोड़ी गड़बड़ी तो स्वयं ठीक हो जाती है।

समाज के निर्मायक तत्वों में से किसी एक अथवा अधिकांश में परिवर्तन होगा तो समाज में परिवर्तन हो जाएगा। सभी निर्मायक तत्व परस्पर निर्भर हैं। यदि प्रौद्योगिकी में परिवर्तन होता है तो शीघ्र ही उगम प्रभाव आर्थिक दशाओं पर पड़ेगा जिसका पुनः राजनीति तथा शिक्षण पर। इसी प्रकार परिवर्तन का अर्थ निरन्तर चलना रहता है। समाज में सम्पूर्ण परिवर्तन का सम्भवा के लिए सामाजिक संतुलन के प्रधान परिवर्तनीय तत्वों पर विचार करना होगा। प्रधान परिवर्तनीय तत्वों में जो परिवर्तन होना चाहिए। सामाजिक संतुलन पर किसी बाहरी कारण के अभाव में उगम रूपी अथवा अथवा गड़बड़ी हो सकती है जिस सुधारण का प्रयत्न समाज की धार्मिक कृतियों करनी है। अतएव सामाजिक परिवर्तन के कारण की अधिकांश मूल्य तथा धार्मिक विचिन्ता संतुलन के विचार की सहायता से होनी सम्भव है।

सामाजिक विकास और प्रगति

पिछले अध्याय में हम सबने जिया था कि प्रत्यक्ष समाज में एक साथ परिवर्तन की अनन्त प्रक्रियाएँ होना रानी हैं। कही पर मध्य प्रतिकूलता एवं प्रतिभांगिता की प्रवृत्तियाँ हैं ता अथवा व्यक्त्यापन, मात्माकरण और एकीकरण की बनी शक्ति-माला प्रवृत्ति काय बानी है। समाज में कुछ वर्गों में नाग लक्ष्या की शीघ्रता शीघ्र प्राप्त करने का लगन है ना दूसरे वर्गों में प्रत्या नवीलता का विरोध करने की तत्परता है। इस प्रकार समाज में अनन्त प्रकार तथा अनन्त ढंग में परिवर्तन होते हैं। अनन्त स्वाभाविकता या प्रश्न उठता है क्या मनुष्य समाज में इन सम्मिलित परिवर्तन का कोई विशिष्ट स्वरूप अथवा शक्ति है? अनन्त समाजशास्त्रियाँ एवं समाज-शास्त्रिकों ने इस प्रश्न का सामान्य रूप से समाज की चाल में किसी साधारण याजना अथवा परिवर्तन का प्रतिमान ढूँढने का प्रयास किया है। यदि समाज के परिवर्तन में इन प्रकार का साधारण याजना अथवा प्रतिमान ढूँढा जा सके और सामाजिक परिवर्तन के इस विधेय प्रकार को नियमित करने वाले नियम प्राप्त हो सकें तो भाँटी तौर पर सामाजिक पूर्वकथन सम्भव हो सकेगा जिसकी तुलना बान्धनिक पूर्व कथन के अथवा प्रकार में की जा सकेगी।

सामाजिक परिवर्तन के कुछ सिद्धांत

सामाजिक परिवर्तन के प्रतिमान अथवा साधारण ढंग के ज्ञान करने के प्रयास के फलस्वरूप अनन्त सिद्धान्त विकसित हुए हैं किन्तु इनमें से तीन सिद्धान्त अत्यधिक प्रसिद्ध हैं — (१) समरथिक (२) चक्रिक और (३) विकासवादी।

समरथिक परिवर्तन—सामाजिक परिवर्तन का समरथिक सिद्धान्त एक सिद्धान्त न प्रतिपादित किया है जो यह विश्वास करता है कि प्रकृति की शक्तियाँ प्रायः एक ईश्वर ने समाज का ध्येय निर्दिष्ट कर दिया है और समाज उसी को धीरे-धीरे निरन्तर प्राप्त करता जा रहा है। अतः समाज में जो अनन्त परिवर्तन अथवा अथवा अथवा विपरीत

हृदय है उनसे समाज की निरन्तर गति में बाधा उत्पन्न नहीं आया है। यह सिद्धान्त प्राकृतिक और ब्रह्मांड सम्बन्धी है समाजशास्त्रीय नहीं। शुद्ध समाजशास्त्रीय आधार पर इसे मिद्ध अथवा प्रमिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि यदि यह स्वीकार भी कर लिया जाए कि समाज में समय के साथ चेतना की प्रवृत्ति है तो भी समरक्तिक विचार से सहमत नहीं किया जा सकता। समाज के अतीत के उद्योग पत्तन और उन्नति अवनति की एक चक्रीय कहानी है। समाज में परिवर्तन करने वाली शक्तियाँ का दमकर यह निरूपण निकालना कि वह मध्य निरन्तर गति में एक धारण ध्येय की ओर बढ़ रहा है सम्भव बचपना होगा।

धार्मिक परिवर्तन—मानव जाति के महान साहित्य एवं पुराणा में मनुष्य के मनोविचार को प्रतिपादित किया गया है। किन्तु विचारक सत्कार का काल चक्र के समान मात है। सत्कार का विषय और उत्थान होता है। प्रलय से दिलय और मृष्टि में उद्योग सम्पन्न होना है। ब्रह्मांड का यह परिवर्तन स्वयं ही बारम्बार होता रहता है। वेप को क्रतुष्ठा के क्रम में यही चक्रीय प्रवृत्ति अथवा त्रय दृष्टिगोचर होती है। स्पेंगलर ने यह सिद्ध किया था कि सत्कार की ममस्त मसृष्टियाँ वसन्त, प्राण्य शरद तथा शीत क्रतुष्ठा की भाँति धार्मिक अवस्थाओं में गुजरती हैं। टायनरी ने भी इतिहास के एक अध्ययन नामक पुस्तक में इसी से मित्रता युवता विचार प्रकट किया है। सत्कार की सभी महान गम्याशास्त्रों का उद्देश्य और पत्तन परिवर्तन का एक निश्चित प्रतिमान में दृष्टा है। तुनीवी के उत्तर में उद्योग उदय और उत्थान होता है फिर वे सन्त-काल में घटती हैं और अन्त में उन्ना पत्ता हो जाता है। समाज में इन लयदार परिवर्तनों का प्रतिपादन अति महत्त्व से यह विश्वास कर बैठते हैं कि समाज में उद्योग उत्थान-पत्तन एक पूरे निश्चित मगौन के अनुसार ही होते हैं। ज्योतिष इतिहास एक अध्यात्म में इन प्रकार के कई सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं। किन्तु आज का विचारक पर कोई विश्वास नहीं करता।

इस सिद्धान्त में कुछ सत्यता है। समाज की अनेक व्यवस्थाओं का जन्म मनुष्य के सामान्य उद्योग-व्यापार धार्मिक मन्त्री तथा लयदार अथवा अस्थिर परिवर्तन आवश्यक होते हैं। परन्तु समस्त सामाजिक परिवर्तन में इस प्रकार का नियम मितता से यह सिद्ध करना अति कठिन है। परन्तु यह सम्भव है कि नियम का मध्य के विचार है कि अस्थिरता में पुनरावृत्ति होता है और का पुनरावृत्ति तथा होता है। समाज के वर्तमान परिवर्तनों में कुछ अतीत धर्मशास्त्रों के समाज तथा कुछ नये धर्मशास्त्रों के अन्तर्गत भावों के अन्तर्गत परिवर्तन सिद्धान्तों में भी यही सिद्ध किया है। समाज की प्रत्येक अवस्था पूर्व अवस्था में विद्यमान होता है परन्तु उद्योग एवं सामाजिक परिवर्तन का माध्यम मात्र का कार्य पत्तन नहीं होता है।

विश्वामयारी परिवर्तन—समाज के निरन्तर एवं निरन्तर परिवर्तन होने का विचार प्राकृतिक गुण की विचारधारा का एक धार्मिक धर्म है। अर्थात् समाज

हैं उनमें समाज की 'तिसी तथा समाज का विकास ब्रह्माण्ड के विकास का ही प्रतिफल और ब्रह्माण्ड में साम्यवाद का अन्तिम जीवन तथा भेदकरण का नियम' पर ही सिद्ध अवधारणाएँ बनायीं गयीं। समाज की घटनाओं में भी लागू होत हैं। कर दिया जाए ब्रह्माण्ड विकास का मानवीय अर्थवा सांस्कृतिक पहलू है। 'विकास विचार में महत्त्व को यहाँ उद्भूत कर देता उपयुक्त होगा। वह लिखता है —

उन्नति प्रवृत्ति का मूल 'एकीकरण' दृष्टिगत होता है जो पिण्ड या राशि की सरलता का अपसरण पिण्ड के मिताप और पुन मिताप से सम्पन्न होता है। राजनीयत्व से प्रारम्भिक रूप में परिवर्तन के विपुल उदाहरण है। सरल जनजाति का नव भाग में आती है जो रचना और काय सम्बन्धी असमानताओं में अन्तर्गत राष्ट्र का सम्पन्नता में होता है। प्रगतिशील एकीकरण और विजातीयत्व से समाज में वृद्धि होती जाती है। गण-शास्य निश्चितता में भी वृद्धि होती है। प्रारम्भ में सामाजिक गठन अनिश्चित होता है परन्तु उन्नति से साम निश्चित प्रवृत्ति प्राप्त होती है जो जन जन अधिकतर निश्चित हो जाती है। सभी सम्बन्धों प्रारम्भ में एक में मिली रहती हैं लेकिन धीरे धीरे एक दूसरे से पृथक् और विभिन्न हो जाती हैं तथा उनकी विविध निमापन रचनाओं में भी स्पष्ट भेद दृष्टिगत होना लगते हैं। इस प्रकार, समाज में हर पहलू में विकास की प्रक्रिया वापरत रहता है। इसमें वृत्त-आधार अधिकतर मयोग अन्वय-रूपता और निश्चितता की प्रगति होती जाती है।¹

हाबहाउस में समाज के विकास का सिद्धान्त प्रतिपादित करने हुए गिब्स है कि समाज प्रगतिशीलता में मात्र साम्यवाद तथा स्वतन्त्रता और पारस्परिकता जन्मदायक धर्मों की धार जा रहा है। किन्तु ईशान्त में मिन हुए साम्य दृग्मिद्वान्त का पयापन और निश्चित दृष्टिगत व विच्छिन्न है। उच्चतम साम्यताओं में भी विविधता की अत्यन्त स्पष्टि स्वाभ्रता का अन्वय तथा व्यक्ति स्वार्थों की प्रवृत्ति एव ही मुख्य साम्य है। इस सिद्धान्त में विकास तथा प्रगति व विचारों का मिश्रण है। इसी प्रकार का दूसरा सिद्धान्त समरविद विवागवात् है। माँगन बन्धन स्वैर है तथा अन्तिम अन्ति विद्वानों ने यह विचार प्रकृत किया था कि प्रत्येक समाज का विकास स्वाभाविकता वचरता और साम्यता का अवस्थाओं में होता है। आधिक गठन में विचार पशुवाचक, दृष्टि हस्तकता तथा उद्योग की अवस्थाएँ प्रमग्न आइ हैं। समाज की प्रिया की अर्थ-शास्यता में भी इसी तरह का अवस्थाओं की रचना की गयी है। परिवर्तन का विकास यौन-व्यवस्था ममूह विवाह मान्यता-रूपता तथा अन्तिम एक विवाही परिवार का अन्तिम अवस्थाओं में बनाया गया। धारा विकास अन्त पशुवाच्य पूजा वदुस्वभाव तथा एकीकरण की अवस्थाओं से

हुआ। सम्पत्ति, राज्य तथा नीतियां सभी विचार की प्रक्रिया क्रमिक क्रमव्याप्ता में दृष्टिगोचर हुई। किन्तु समाज के समाजों का विकास इन स्पष्ट क्रमिक अवस्थाओं से मकर कल्पित नहीं हुआ है। आधुनिक समाजों की उद्भूत सम्पूर्ण प्राचीन एवं आदिम समाजों में विद्यमान रूप में पाए गए हैं। उदाहरण समाजशास्त्रियों (स्वैंगर कोमन हाउहाउस मुन्डर-लायर और दुर्कीम आदि) तथा मानवशास्त्रियों (मानव वेस्टमार्क हैन्स, टायनर लॉरि ब्रटन आदि) ने प्रारम्भ में तो विरामवादी सिद्धान्त प्रतिपादित किए थे कि समाज पूरणतया स्वयं उत्पन्न है किन्तु फिर भी उद्भूतमानवशास्त्री और समाजशास्त्री विकासवाद का नया जगत् पन्थान का उत्कट प्रयत्न कर रहे हैं। वे पूर्वजामी विकासवाद्या द्वारा उपयुक्त तुलनात्मक विश्लेषण की रानि का आलोचनाहीन प्रयोग नहीं करते हैं।

आधुनिक विकासवादी मानवशास्त्री यह मानते करते हैं कि समस्त मानव समाज में सरलता और असम्पन्नता में जटिलता तथा विशिष्टता का श्रारविराम हुआ है। किन्तु मनुष्य और गोरिल्लाबीजर न केवल मानवशास्त्रियों के तर्कों का दृष्टिकोण और निष्कर्षों का गहन मिद्ध किया है।¹ आधुनिक समाजशास्त्री सामाजिक विकास में विश्वास ना करते हैं किन्तु विकास के विचार में नविक्र प्रगति का समाधान नहीं करते। मनुष्य और पशु के अनुसार विकास वह प्रक्रिया है जिसमें वस्तु में प्रकृत सभी सम्भावनाओं जमा अथवा घोर घोर प्रकृत हो जाता है। विकास मूल वृद्धि का नहीं वरन् है। विकास में वस्तु के प्रकार में वृद्धि ज्ञान के अनिश्चित उनकी रचना में ना परिवर्तन होता है। यह मानवमन एक गुणात्मक परिवर्तन की वृत्ति निरन्तर और एक दिशा में न जान वाला प्रक्रिया है जिसमें वस्तु (या समाज) का आन्तरिक विकास प्रकृत हाकर भिन्न श्रेणी में प्रकृत हो जाता है। अतएव विकास की मूल विभेदनात्मक प्रकृत (जिसमें अवाक्य का अर्थ समाविष्ट है) है। समाज में भ्रमवर्ण अविज्ञान श्रम विभाजन कायात्मक समित्तियों की सहाय्य द्वारा विविधता में वृद्धि सामाजिक मंचार के मादना (विश्वेश्वर नाया) ने अघिकृत विभिन्नता और उत्कृष्टता में व्यक्त जाता है।²

उपर्युक्त तथ्यों ने सामाजिक विकास के श्रान्त उदाहरणों का बरान करते हुए सिद्धा है कि सामाजिक विकास का प्रयोग इनका प्रचलित है कि ज्ञान इनके मनमाने अर्थ में माने रत्न है। सामाजिक विकास की सहाय्य धारणा का समन्वय के लिए आदिम समाजों के विकास की आधाररूप दशाओं का जानना आवश्यक है। आदिम समाजों के विकास की निम्न शाला है³—

- 1 G P Murdo & Social Structure (1949) p 187 and Goldenweiser's article in *Encyclopaedia of Social Sciences* on Evolution.
- 2 MacIvar and Page *op cit* p 5-7
- 3 *Ibid* pp 59-98

तत्कालिक आर्थिक, पारिवारिक धार्मिक चेतना का मिलाप जा विभिन्न सामुदायिक सम्प्रदायों में विकसित हो जाता है।

(२) विभिन्न सामुदायिक संस्थाएँ

सामाजिक-धार्मिक धार्मिक पारिवारिक सांस्कृतिक कार्यप्रणालियाँ या विभिन्न समितियाँ में परिणत हो जाती हैं।

(३) विभिन्न समितियाँ

राज्य आर्थिक निगम परिवार और विद्यालय आदि।

मनाइवर ने सामाजिक विकास में भेदकर्मण की प्रक्रिया को सबसे अधिक महत्वपूर्ण बताने में परिवार राज्य व्यवस्था धर्म भाषा विधान आदि इनके सामाजिक क्रियाओं में अति जटिल और निश्चित भिन्नता का ध्यान करने दिया है। किन्तु जिमिंग ने कहा है कि उत्तम सम्भार महत्त्व है कि विकास समाज को सफल बनाने का अर्थ है।¹ यद्यपि भाषा धर्म अथवा तथा राज्य में राजा अथवा भिन्नता और विशेषीकरण है। किन्तु एन रिचमंड भाषा मानववाद अथवा राष्ट्रीय धर्म तथा विश्व राज्य की स्थापना के नियम होना या आन्दोलन का हीन नहीं जानता। समाज की प्रथम क्रिया में विशेषीकरण तथा भिन्नता में साथ साथ मिलाप की प्रवृत्ति कार्य कर रही है। साम्प्रदायी समाजों में राज्य का वर्तमान गठना विशिष्ट सम्प्रदायों के प्रथम प्रथम कार्यों को करने कुछ समय दिया है। क्या इस प्रवृत्ति में परिवर्तन की ओर बढ़ना आवश्यक नहीं लगता? इस प्रकार विश्वाम्प्रायः विचारों की स्वीकार करने में अन्य उचितानुसूची प्रती है। विभिन्न मात्र समाज में विकास की प्रवृत्तियाँ दिखाते हैं कि अन्त में पदार्थ अचयन का हीन है। और यदि समाज की प्रवृत्ति की उन्मुखता का एक गिज्ञान स्वीकार कर लेता एन समाज विचार्य निरन्तर गहन है विचार का² बालनिक का यही नियम होता है।

एन एन कारणा से कुछ सामुदायिक समाजशास्त्रियों ने सामाजिक विकासवाद का अर्थ हीन रूप में स्वीकार करना उचित समझा है।³ यद्यपि का सामाजिक परिचय का एन प्रक्रिया मानते हैं किमम निरन्तर प्रथम रूप में कुछ नवजात उत्पन्न होता है।⁴ समाज का प्रथम प्रथम पूर्वगामी अर्थव्यवस्था में निरन्तर परिवर्तन द्वारा उत्पन्न होती है कि पर्याप्त कारणों का प्रभाव पड़ना सम्भव है। इस अर्थ में सामाजिक विकास समाज में मनुष्य का वर्तमान है किमम साथ समाज की समस्त क्रिया उत्पन्नता और स्थिरता का क्रम रहे। मनुष्य का विकास प्रमुखतया उच्च सामाजिक विकास में निहित है। मनुष्य के मनुष्य का विकास मनुष्य भिन्नता में नहीं

1 M Ginsberg *Studies in Sociology* (1937) p 78

2 P Gilsbert *Fundamentals of Sociology* (1957) p 365

3 See also C. Levi Strauss, M. Ginsberg and C. C. North

वरन् सरलता और समन्वय में भी होता है।¹ इस धारणा की सहायता से समाज की चान की माप के आदाने ता महा मिल सकन परन्तु इसन समाज वनातिका और समाज कायन्ताया का मनुष्य का पूणता की धार ले जान वाल एर व्यावहारिक लभ्य का निश्चित करन में सहायता अवश्य मिलना।

सामाजिक विकास और सामाजिक प्रवर्ण

प्रारम्भिक समाजशास्त्रियों जैसे स्पेन्सर तथा उनका अनुयाइया न प्राकृतिक प्रवर्णन को सामाजिक विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण माना था। प्राकृतिक प्रवर्णन उस क्रिया का कर्त्तव्य है जिसमें प्रकृति अपने नियमों की सहायता से कुछ जीवों का चुन कर उन्हें (जीवित रहने तथा बढ़ने) प्रोत्साहित करती है और दूसरों को तिरस्कृत करती है। जीवों में वंशानुक्रम के नियमों के अधीन म्याथो और अस्थायी परिवर्तन (म्यूटेशन) होते रहते हैं। स्थायी भेदों का निश्चित उत्परिवर्तन कहते हैं जो वंशानुक्रम में ही हस्तांतरित भी हो सकते हैं। जीवन के अस्तित्व के सश्रम में सफलता के लिये जीवों का अपने पर्यावरण से नया अंशों जानि के दूसरे जीवों से अथवा एक जानि के दूसरी जानि में उपकरण करना पड़ता है। जीवों का प्रकृति को बढोरताया जाववानु तथा श्रुद्धा के परिवर्तन में उपकरण करना पड़ता है अथवा भाजन शरण या मापी पान के नियम सश्रम करना पड़ता है। इस सश्रम में ही जीवों जावित बच रहता है जो मायनम होता है अर्थात् अतिक्रम योग्य (उपयुक्तता) का ही अन्तिम जीवन सम्भव होता है। अतिक्रम योग्यता के पर्यावरण की आवश्यकताओं के कारण जो उत्परिवर्तन होते हैं वे प्रोत्साहित पाने से नया उत्पन्न बन सकते हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन उत्परिवर्तनों का संचय होता रहता है प्रायः इस प्रकार पक्षों की परिधियों की अथवा नवीन परिधियों में अन्तर्धान जात है। निम्नता जानिया के विकास में योग्य होती है। इससे ही प्राकृतिक प्रवर्णन का सिद्धान्त है।

समय-समय पर जानिया में परस्पर मध्य तथा पर्यावरण में उपकरण के कारण उनमें निम्न और आगम्य व्यक्तियों का उदय हो जाता है जिसमें उनमें सन्तुलन बना रहता है। कभी-कभी इस सन्तुलन के अङ्गणों की भी अभावता हो सकती है किन्तु वे प्राणियों की बहुत शक्ति से संचालित कर गायों में बड जात हैं मध्यम परन्तु पुन हो जात हैं। पर कट्टर आवागम्यो भी इन बातों को ध्यान न्या कर सकन रि जा जानि सश्रम पात्र बडता है बह नवन अतिक्रम योग्य हायी।

1 'In this sense social evolution would be the evolution of man in society with all its conquests, reversals and stagnation. As society is primarily a mental phenomenon the question of social evolution may be finally reduced to the problem of mental evolution, but the human mind does not always proceed by differentiation but also by simplification and synthesis. Gisher op cit p 365-67

समालोचना—प्राकृतिक प्रवरण के सिद्धांत का आधार—प्राणिया तथा जानिया में मनुष्य संपन्न—लक्षणग असत्य है। जीवा में मह्याग के हान की प्रणया नहीं की जा सकती। दूसरा जा जातियां जीवित रह जाती हैं क्या वे ही सबसे अधिक योग्य हैं? पर्यावरण का प्रसार के हात हैं और उनसे उपयोजन के रूप भी बड़ा हो सकते हैं। और जीव या जानि अपने पर्यावरण से उपयोजन शक्तिशाली हो कर ही नहीं करती चालाकी माहम तथा छद्मभेष कुछ कम नगर ह जो सभी प्राणी प्रय मान हैं। प्रति ऊँची जमदर भी कुछ जातियों का बनाय गए सकती ह। तीसरे एक जाति का अदर सावयवी योग्यता की व्याख्या प्राकृतिक पर्यावरण से ना की जा सकती है किन्तु यह नियम इस कभी नहीं बना सकता कि भेद विशेषकर उत्परिवर्तन, कस उत्पन्न हो जाते हैं। अधिक विरसित प्रकारा अथवा जानिया में ही उत्परिवर्तन क्या होते हैं? इस प्रश्न का उत्तर भी यह सिद्धांत नहीं दे पाता। इन दापा के कारण यह सिद्धान्त प्राणी जगत के विनाम की पर्याप्त व्याख्या नहीं कर सकता। सम्भवत इम सिद्धान्त को प्राणिजगत की लाप प्रक्रिया का दखकर इन्डिक्प की भांति निदाता गया है, यह तथ्य नहीं है।

मानव समाज के परिवर्तना तथा विकास की व्याख्या प्राकृतिक प्रवरण में करने का प्रयास बहुत सफल नहीं हुआ। एम सिद्धान्त में विश्वास करने वाले समाज शास्त्रिया ने यह घोषित किया कि वही मनुष्य और समूह जीवित रहकर उत्पत्ति कर सकते हैं जिनमें पर्यावरण में समायोजन करने की योग्यताम क्षमता है। दूसरे शब्दों में अस्मिन्व के जीवन मग्नम में उही का प्रतिजीवन सहाय हो सकता है जो योग्यताम है। प्रत्येक पीढ़ी में पूरे की पाड़ी के योग्यताम व्यक्ति ही छा पाते हैं। यदि प्रकृति के नियमों में कोई हल्का त्रुटि निया पाए ता ये मनुष्या तथा समूहों में स्वतन्त्र प्रवरण करते रहें और यह त्रुटि दूर नहीं कर सकार में सर्वोत्तम समाज होगा। एंगो विश्वास न अर्थशास्त्रिया तथा राजनीतिज्ञों को निराश प्रतियागिता का सिद्धान्त प्रतिपादित करने का प्रेरित किया। समाज में व्यक्ति व्यक्ति तथा समूह समूह और समाजा के बीच परस्पर तिन्तर प्राकृतिक प्रवरण काय करत गया। प्रकृति की दानित एक जिन प्रतिया का सर्वोत्तम माना गया और समाज की वीदित नितिक, सामाजिक तथा धार्मिक प्रतिया का शीर्ष। समाज का एक निराधारशी व्यवस्था स्थापित किया जिसमें मनुष्य 'प्राकृतिक' पर्यावरण में पक्ष के एक पक्ष था। एंगो सामाजिक व्यवस्था में शक्ति का अल्पभाग और भीषण दायण होता प्रतिपादित था। नियम का कोई अधिकार न था। उस ही मनुष्य की विचार हान का ही अधिकार मिला। मनुष्य राष्ट्र तथा प्रजातिया में निवत राष्ट्र और जानिया का नष्ट करना अपना जन्म सिद्ध अधिकार मान लिया।

परन्तु मानव समाज में प्राकृतिक प्रवर्णन का मिडान्म बिल्कुल लागू नहीं होता है। मनुष्य तथा जातियाँ में परस्पर मशम का बड़ा दुःखगामी अनुभव सत्तार का हुआ है। निवाधावादी अर्थ-रवस्था में धीरे-धीरे प्रगति-चिन्तना तथा राष्ट्रों के बीच महानगर और प्रजातंत्र सभ्य आधुनिक युग का अभिजाप है। दूसरे कम व्यक्ति को सर्वोत्तम माना जाए ? अतिजीवन के मशम में विजया व्यक्ति सामाजिक नतिक और बौद्धिक गुणा में निरुत्तम या सत्तार है। मनार में अनक परोपकारी महत्त्व ईमानदार तथा जनसर्वक रक्तियों का जीवन अन्तर्गत में ही मनार हा गया ना क्या वे अत्युत्तम नहीं थे। सुकरान सिक्कर, विद्वान्म सुभाष ना गाय मनार में अन भी अति सम्मान में प्राप्त किए जाते हैं। एम लाग के अन्तर्जीवन का यह अभिजाप नहीं है कि सत्तारता की और नतिक मायनाएँ स्थायी नहीं हाना। नीमर, अतिजीवन की अतिक क्षमता का मानवीय तथा सामाजिक मायनाया में काठ मन्व्य नहीं बरत् उनमें विराय हा सत्तार है। मनुष्य सम्भवतः जतिर इत्त में प्राणीजगत में मयस निवन है फिर भी उमरा म्यात सर्वथेष्ट है। जबकि अतिजीवन का क्षमता मन्व्य का उत्कृष्ट नहीं बना सक्ती। उनमें निव ता मानवीय क्षमता अप्रुव है। चौथे प्राणि जगत में सभ्य ही मय कुत्त नहीं है। मनुष्य जाति का ना अन्तिव बिना सत्याग क नहीं रह सक्ता। मन्विय प्रतिभागिता मयस प्रतिज्ञता और विराय बवल मनुष्य और समूह में प्राथमिक सन्धोग की नाव पर टिक सक्ती हैं। यदि प्राकृतिक पदावरण का समाज में प्राथमिकता मित जाय ता फिर समाज की मौदिक सुदृता ही नष्ट हा जायगी और सामाजिक मस्याएँ तथा स्वयं सामाजिक जीवन निश्चि हात नगी। पाचवें प्राकृतिक प्रवरण का नियम समाज में उद्वेग आद्या है मन्व्य अन्त प्राकृतिक पदावरण या बुनीती का विविध प्रकार में उत्तर द सत्तार है। यह पदावरण बवन उन प्राणिवन करना है और उसकी सामाजिक क्षियाया में कुत्त मौमार्थे गही कग्ता है किन्तु मनुष्य का मन्वृति और मन्वया उनकी प्रतिभा विचार तथा इच्छा पर निभर है। प्रकृति के नियमों का मनुष्य न अन्ती मन्वृति तथा मन्वया में बन्व ही नहीं डामा बन्व मन्म में बन्वा का उमन बिल्कुल नष्ट कर जाता है। मनुष्य का मृत्तु प्राकृतिक कारणों में कम सामाजिक कारणों में अधिक हाता है। सुद म पाय तम बीरा याद्याया और मनापतिया का भी मफाया हा जाता है किन्तु दूराय धार मृत्तु म औगमिया पीरिटिक भाजन तथा अगम्य विज्ञान की म्हामना में कमा कर प्राकृतिक प्रवरण के प्रभाव को पूननन कर दिया जाता है। मानव समाज में एमा परिस्थितियाँ भी उन्म हा सक्ती हैं निमम अतिजीवन का मन्वया उन्मन् मन्मान हा पाय।

अन मन्व है कि मनुष्य के समाज में प्राकृतिक प्रवरण का वादनाता नहीं हा सक्ती। मनुष्य का पदावरण सामाजिक पदावरण है या मन्वया के विराम के साथ प्राकृतिक पदावरण पर हावी हाता जाता है। मन्विय मन्व्य मनुष्य के विराम मन् प्राकृतिक प्रवरण नहीं सामाजिक प्रवरण मन्व्यधिक महत्वपूर्ण है।

समालोचना—प्राकृतिक प्रवर्णन के सिद्धांत का आधार—प्राणिया तथा जानिया में सतत संपर्क—लगभग अमृत्य है। जीवा में मृत्यो का होना ही घटना नहीं की जा सकती। दूसरे, जो जानिया जीवित रह जाते हैं क्या वे ही सबसे अधिक योग्य हैं? पर्यावरण कई प्रकार का होता है और उनसे उपयोजन के ढंग भी कई हो सकते हैं। और जो वे जानि अपने पर्यावरण में उपयोजन शक्तिशाली हो कर ही नहीं करती चानाकी मात्रा तथा छद्मभेष कुछ एम तरीका है जो अभी प्राणी अपने नाम हैं। अति ऊँची जमदर भी कुछ जानिया का बनाय गये सकती है। तीसरे एक जानि का अदर सावधानी योग्यता की व्याख्या प्राकृतिक पर्यावरण में तो की जा सकती है किन्तु यह नियम इस कभी नहीं बता सकता कि भेद विज्ञापक उत्परिवर्तन, क्या उत्पन्न हो जाते हैं। अचिर विरामित प्रवृत्त अथवा जानिया में ही उत्परिवर्तन क्या होत हैं? इस प्रश्न का उत्तर भी यह सिद्धान्त नहीं दे पाता। इन दावा के कारण, यह सिद्धान्त प्राणी जगत के विकास की पर्याप्त व्याख्या नहीं कर सकता। सम्भवतः इस सिद्धान्त को प्राणिजगत की लाप प्रक्रिया का देवदर निष्पत्ति की भाँति निर्यात किया है यह तथ्य नहीं है।

मानव समाज के परिवर्तन तथा विकास की व्याख्या प्राकृतिक प्रवर्णन से करने का प्रयास बहुत सफल नहीं हुआ। इस सिद्धान्त में विश्वास करने वाले समाज शास्त्रियों ने यह घोषित किया कि वही मनुष्य और समूह जीवित रहकर उत्पन्न कर सकते हैं जिनमें पर्यावरण में समायोजन करने की योग्यता कम है। दूसरे, जो म अस्तित्व के जीवन मरण में उही का अतिजीवन सम्भव हो सकता है जो योग्यता में हैं। प्रत्येक पापी में पूज की पीढ़ी के योग्यता में व्यक्ति ही प्राप्त हैं। यदि प्रकृति के नियमों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता तो व मनुष्य तथा समूह में स्वतन्त्र प्रवर्णन करने रहेंगे और वे जिन दूर नहीं जय मसार में सर्वोत्तम समाज होगा। एही विश्वास ने अर्थशास्त्रियों तथा राजनीतियों को निराश प्रतियोगिता का सिद्धान्त प्रतिपादित करने का प्रेरित किया। समाज में व्यक्ति व्यक्ति तथा समूह समूह और समाजों के बीच परस्पर निरन्तर 'प्राकृतिक प्रवर्णन' काय करने लगा। प्रकृति की यात्रिका एवं जलियाँ जानिया का सर्वांगीण मात्रा तथा छोटे समाज की वौद्धिक, सामाजिक तथा धार्मिक शक्तियों का योग। समाज का एक निराशावादी व्यवस्था स्वीकार किया जिसमें मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण में बचने एक पशु था।¹ एही सामाजिक व्यवस्था में शक्ति का हस्तान्तरण और भीषण शोषण तथा अविवाय था। नियम का बाद अधिकार था। उस ता समय की शोषण हानि का भी अधिकार किया। मनुष्य राष्ट्र तथा प्रजातियाँ न विवेक राष्ट्र और जानिया का उत्पन्न करना जन्म सिद्ध अधिकार मान लिया।

¹ A. G. Keller *Social Evolution* (1947) p. 260 quoted by Gilbert
op cit p. 20

परन्तु मानव समाज में प्राकृतिक प्रचरण का मिश्रित विकृत लागू नहीं होता है। मनुष्य तथा जातियाँ भी परस्पर मग़म का बड़ा दृग्गोचरी अनुभव समाज का हुआ है। निराशावादी अर्थव्यवस्था में घोर ग़ारंग और गतिश्चित्तता तथा राष्ट्रों के बीच महानगर और प्रजातंत्र सघन आधुनिक युग का अभिग्राहक है। दूसरे कम व्यक्ति को सर्वोत्तम माना जाए? प्रतिजीवन के समाज में विज्ञान व्यक्ति सामाजिक नैतिक और नैतिक गुणा में निष्कृष्टतम हो सकता है। समाज में अन्तः परापूर्वारी महत्त्व, इमान्दार तथा जनप्रेरक शक्तियों का जीवन आशय में भी मनाया गया है तथा वह अत्युत्तम नहीं है। सुकरात मिकन्दर विद्वान्ता गुणाद ना गाय समाज में आज भी प्रति सम्मान से यात्रा कि जात है। एम नागा के अन्तर्जीवन का यह अभिग्राहक नहीं है कि सज्जनता की और नैतिक भावनाएँ स्थायी नहीं हानी। नीसर प्रतिजीवन की जबकि क्षमता का मानवीय तथा सामाजिक भावनाओं में का सम्बन्ध नहीं बरतू उनमें विराध ही सकता है। मनुष्य सम्भवतः जबकि दृष्टि में प्राणीजगत् में सज्ज निधत्त है कि भी उमका स्थान मवश्रेष्ठ है। जबकि प्रतिजीवन का क्षमता समाज का उत्कृष्ट नहीं बना सकती। उनका निय ता मानवीय दायिता अधूव है। चौथ प्राणि जगत् में सघन ही मत्र बुद्ध नहीं है। मनुष्य जाति का ना अन्तः प्रिना महयोग क नहीं रह सकता। इमलिय प्रतियागिता मघन प्रतिकूलता और विरोध कवल मनुष्यों और समूह में प्राथमिक सहयोग की नाव पर कि मरत है। यदि प्राकृतिक पर्यावरण का समाज में प्राथमिकता मित जाय ता कि समाज की मौनिक मुहता ही मत् हा जायगी और सामाजिक मस्या तथा स्वयं सामाजिक जीवन विगठित होत नगें। पाँचवें प्राकृतिक प्रचरण का नियम समाज में बहुत आद्या है मनुष्य अन्तः प्राकृतिक पर्यावरण की चुनौता का विविध प्रकार में उत्तर द सकता है। यह पर्यावरण कवल उन प्रभावित करता है और उमका सामाजिक प्रियाओं में बुद्ध नामाये मही करता है किन्तु मनुष्य का समृद्धि और सम्पत्ता उमका प्रतिभा चिन्तार तथा दृष्ट्या पर निर्भर है। प्रकृति के नियमों का मनुष्य न अपनी समृद्धि तथा भावना में अन्त हा नहीं टाता अन्त म स वृत्ता का उमन विकृत नत् कर जाता है। मनुष्य की मृद्यु प्राकृतिक कारणों में कम सामाजिक कारणों में अधिष्ठ होता है। बुद्ध में भाव त्तम बीरा यादोंका और मतापत्तियाँ का भा मफाया हा जाता है किन्तु दूसरा धार मृद्युत्त में धीरमिया पौष्टिक भाजन तथा अगाय विज्ञान का गायता में कभी कय प्राकृतिक प्रचरण में प्रभाव का सूततम कर दिया जाता है। मानव समाज में एकी परिस्थितियाँ भी मत् हा सकता है जिसमें प्रतिजीवन का मत् तथा उन्नत दर ममान हा जाय।

अन्त मत्त है कि मनुष्य के समाज में प्राकृतिक प्रचरण का वातयाना नहीं हो सकता। मनुष्य का पर्यावरण सामाजिक पर्यावरण है जो सम्पत्ता के विज्ञान के साथ प्राकृतिक पर्यावरण पर हावी होता जाता है। इमलिय मत्त मनुष्य के विकास में प्राकृतिक प्रचरण नहीं, सामाजिक प्रचरण अधिधिक महत्त्वपूर्ण है।

सामाजिक प्रवर्धन

सामाजिक प्रवर्धन (social selection) वह प्रक्रिया है जिसमें समाज के अंदरूनी तथ्या परिस्थितियाँ नए एक निर्दिष्ट ध्येय अथवा आदर्श के अनुसार कुछ व्यक्ति (समूह) दूसरों की अपेक्षा चुन लिए जाते हैं और उन्हें प्रोत्साहित तथा कायम रखने के प्रयत्न मिलते हैं। उनमेंसे और उच्च विभिन्न प्रभुता या उत्पादन तथा प्रति-उत्पादन दरें इसी प्रक्रिया पर आश्रित हैं। मनुष्य और पशु में लिखा है सामाजिक प्रवर्धन का प्रक्रिया है जिसमें मानव समाज के अंदरूनी उत्पन्न शक्तियाँ सामाजिक प्रवर्धन से क्रियाशील होकर सम्पूर्ण जनसंख्या तथा उसके विभिन्न समूहों की भिन्न-भिन्न उत्पादन तथा प्रतिउत्पादन दरें प्रभावित करती हैं।¹

सामाजिक प्रवर्धन समाज में क्रियाशील उन शक्तियाँ या निमाण हैं जिन्हें मनुष्य नियंत्रित अथवा मुक्त कर सकता है। इन शक्तियों में पार्थिव शक्तियाँ और अदृश्य शक्तियाँ तथा मनुष्य की सम्पूर्ण सफलताओं में संचित आर्थिक तत्त्व शामिल हैं। अतः सामाजिक प्रवर्धन मनुष्य की सेवा में या मनुष्य और मनुष्यता की शक्तियों का सम्मिलित प्रभाव के कारण क्रियाशील होता है। मनुष्य एक बुद्धिमान प्राणी है अतः वह मनुष्य या मनुष्यता तथा उपकरणों की मनुष्यता से प्राकृतिक पर्यावरण के सहाय्य प्रभावों या मनुष्यता करता रहता है।

जब प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत विकसित होती है तो मनुष्य प्रकृति की नयी शक्तियों का दयालु बन जाता है। जहाँ उन प्रकृतियों में से कुछ मनुष्य के अन्दर अभाव में प्राकृतिक शक्तियाँ तथा उपकरणों से मनुष्य को बड़ी मात्रा में उत्पन्न होते हैं। इन शक्तियों में प्राकृतिक प्रवर्धन-समय शक्ति-शाली शक्तियाँ और मनुष्य के सामर्थ्य उपयोग के अथवा मनुष्य के अतिरिक्त कार्यों के द्वारा बना हुआ है किन्तु मनुष्य या मनुष्य की उपयोगिता उत्पन्न होती है जो प्रौद्योगिकीय साधनों की मनुष्यता से उत्पन्न की शक्तियों पर अथवा नियंत्रण बढ़ाना जाता है। अतः मनुष्य के जीवन में प्राकृतिक प्रवर्धन का महत्त्व कम हो जाता है और सामाजिक प्रवर्धन नियंत्रण प्रवर्धन महत्त्वपूर्ण बन जाता है। अतः अर्थशास्त्र के अंतर्गत ही पर्यावरण-शक्ति का महत्त्व घट जाता है। प्राकृतिक पर्यावरण का अधिकांश भाग प्रौद्योगिकीय साधनों में सम्मिलित हो जाता है जो मनुष्य को दगलने एवं उत्पन्न का संपूर्ण परिचय देते हैं। अतः अतः प्राकृतिक प्रवर्धन का शक्ति और क्षमता न अथवा मनुष्य उत्पन्न होता है।

¹ In so far as forces generated within human society and operating through social relationships create conditions which affect the reproduction and survival rates of the population as a whole and differentially with the various groups within it we can term the process social selection. Society p 543

सामाजिक प्रवर्णन वाप अथवा अतिजीवन की सीमाओं को लांघ जाता है। इसमें मनुष्य द्वारा स्थापित अथवा स्वीकृत मूल्य हात हैं नितर आधार पर मनुष्य अथवा मनुह की समाज में प्रस्थिति निश्चिन हाती हे और उन समाज अथवा समाज मिलता हे। भारत में लगभग १० वष पूव तक जमीनार अथवा रोग के घगन का काट नी निरभार व्यक्ति समाज में समाप्त हाता था। किन्तु आज समाज माधरता तथा शिक्षा का अधिक महत्व ळता हे। लगभग ५० वष पूव पूजेवा का समाज शमिक सघ क नताया का अगजकता उत्पन करन का दापा ठहरा व किन्तु आज उह समाज और अथ-व्यवस्था में गावश्यन तन्व स्वाकार किया जाता है। स्ती प्रकार समाज की विभिन्न प्रथाया एक मस्थाया का मामाग है। समय और काल के अनुसार हाता प्रवर्णन हाता है। जो आज आवश्यक है सभवन वही १० वष बाद अथवा तीघ्र ही निन्कुल यय हो जाए। भारत में जानि-व्यवस्था की स्थिति और अस्पृश्यता ५० वष पूव समाज के स्थायित्व तथा मुहृदता की परिचायक था। परन्तु आज उह जनतन्त्र का विरोधा और इसलिए समाज क लिए अनिकारक बनाया जाता है।

प्राकृतिक प्रवर्णन का काय-क्षण वला मकुचित है। सामाजिक प्रवर्णन का काय-क्षण वहा विन्तुत है। सामाजिक प्रवर्णन एक ही स्थिति क अनन समाधान गुला ळता है। उहा अथवा किमी अथ प्राकृतिक त्रिका कारण से निम्न या विन्तुताय व्यक्ति का बाहिक और नतिक उन्नि क उन् प्राकृतिक अभावा पर काय-क्षण क विविध अथ नर उपाय हा सकत है। अन्न मनुष्य प्रजिव स्व-ध और प्रचुरतापूण तावन दिता मरता । मनुष्य की औमन जावन अथ ता क रग है। गुह प्राकृति पयागण म जा लाय अतिजीवन में कनट अममय हात व ना आज समाज क अन्न स्वस्थ ताया की भांति तावन का मुन बन गुट सकत है।^१

प्राकृतिक प्रवर्णन में शारीरिक सहनशक्ति तथा शक्ति गुणा का श्रेष्ठ माना जाता है। अमक विपरीत न्न अथवा न्न जन् गुणा का सामाजिक प्रवर्णन में कनट मन्त्व नहीं मिलता यदि व समाज क अया क अतिवृत्त रग हात है। सामाजिक प्रवर्णन उहा साया का अया मिलता हे जिनमें समाज क उहया तथा जिना क अन्तार अचरण कन की क्षमता हाता है। दूसरी बात यह है कि अछरि प्राकृतिक प्रवर्णन तथा सामाजिक प्रवर्णन दाता हा जिना समय समुह्यवीय ना सकत है कि भी नन्ही गतिया एक दूसर में मिन्तुन पृथक हागा। जनमान्य में निदलता अथवा किमी विद्वान रोग का बहन से गवन क रिण अवीकरण मन्ति निपट अथवा निगेधामक औपधि अन्ति उपाया का साया लिया जा सकता है। प्राकृतिक प्रवर्णन की अर्थव्य की प्रति में अयायाम क अतिजीवन क नियम में रागप्रगिता अथवा निम्न का लाय कर दगा।

'प्राकृतिक प्रवर्णन तथा सामाजिक प्रवर्णन' में अन्तिम में यह है कि सामाजिक प्रवर्णन का प्रयोग जिस अर्थ में किया जाता है वह समाज की वस्तुस्थिति का द्योतक है। सामाजिक जीवन में एक आदर्श या याजना होती है जिस पर दूसरा धिय चतन विचार से लागू में महमति हा जाती है और जिसके अनुसार कुछ अनुमा का त्याग या लाप कर निया जाता है तथा दूसरा को बचाए रखा जाता है। प्रकृति जीवा में प्रवर्णन करने समय एमी किसी योजना अथवा आदेश में अनुसार नहीं रता। उसका काय ता अथा और अनिश्चित हाता है। प्रकृति के नियम तथा विषय प्रवर्णन हात हैं किन्तु उनका चतन पालन वह नहीं कर पाता। व ता शायद दून सिधरा हात हैं और दवी गति उनका मचालन करती है। अतएव प्राकृतिक प्रवर्णन का प्रकृति के परिवर्तन के लिए प्रयोग गलत और अनुचित है।

सामाजिक प्रवर्णन के ढंग

सामाजिक प्रवर्णन दो अत गम्भीर ढंग (modes or ways) में काय पीन हाता है (१) प्रत्यक्ष और (२) अप्रत्यक्ष ढंग।

अप्रत्यक्ष सामाजिक प्रवर्णन—जब समाज के सदस्यों में उत्पादन और अति जीवन के सन्तुलन का अन्तर्गत का कोई इरादा न हो तबिन सामाजिक मण्डल स्वयं ही एसा कर न तो अप्रत्यक्ष सामाजिक प्रवर्णन हाता है। कुछ पेशा में गता गिता एव उन्हीं मनान में अधिक मृत्पुण हाती हैं और कुछ में काम। बीमा और नामट के कारखाना तथा कायला का खाना के मजदूरों और उनका बच्चा में मृत्पुण अति हाती है तथा अनिजीवन के कम अवसर हात हैं। मजदूरों के काम करने की शक्ति सामाजिक है किन्तु व प्रकृति की प्राण धातक शक्तियां ता नगा नाच मम्भद बना ली हैं। समाज का जाका स्वर उगत हात से उनके विभिन्न वर्गों के बच्चा में मृत्पुण नियम भिन्न अथा में घट जाती है। यर्न प्रकृति की प्राणान्तक शक्तियां ता प्रभाव हाता हात में समाज की अर्थ रार होती हैं। विभिन्न व्यवसायों के लोग में भिन्न भिन्न ज मन् का हाता अप्रत्यक्ष सामाजिक प्रवर्णन है। मथादर और पज न विषय है कि विभिन्न समूहों का सामाजिक मण्डलता की निश्चयक सामाजिक शक्ति आदि उतागधिकार के नियम प्रौद्योगिक उन्नति की आवश्यकता के अनुसार व्यवसायों का विकरण विषयों के राजगार के अर्थ तथा व्यवसायों के लिए प्रतिष्ठा का—५ तब बचन एव प्रकट शरक है जिसमें पण्डित हात में सामाजिक प्रवर्णन का अर्थ ना प्रभावित हाता है। गाँव और नगर की शक्ति में अप्रत्यक्ष सामाजिक प्रवर्णन प्रभाव है।

प्रत्यक्ष सामाजिक प्रवर्णन—समाज में कुछ निश्चित पण्डित हात हैं जिना सामाजिक प्रवर्णन पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण हाता है। स्वायत्त एवं आगेव्य के विज्ञान के लिए निश्चित मुविधाएँ विरोधात्मक औरगि प्रभाव कर एव फादिक जावन के मकरा के शर कर समाज मृत्पुण की कम कर सकता है। इसी प्रकार, नर ल्या गिण

हस्ता तथा मृत्यु हत्या व विच्छेद विधान बनाकर मृत्युदंड का क्रम किया जा सकता है। विवाह और तलाक सम्बन्धी अनन्वय विधानों में तथा मनुष्य निर्गम का प्रचार करके जन्म और का अज्ञान निर्मूलन किया जा सकता है। वर मुक्तिया, मजदूरी भन्ना तथा दलित अयोग्य लोगों की पृथक्ता तथा बहिष्करण में भी जनदण्ड पर नियंत्रण हो सकता है। किन्तु विधानों की अथवा संहिता का निर्माण अधिक सम्पन्नचित्त हाना है जिस व्यक्ति और समूह स्वच्छता से स्वीकार करत है। समाज की स्थितियों एत प्रमाण निश्चित करती हैं जिनके अनुसार विवाह की आयु तथा परिवार का आकार निर्दिष्ट होता है। प्राथमिक समाजों में ऊँचे व्यवसाय वाले लोगों में परस्पर विवाह होता था संहिता का परिणाम है। डाक्टर-नर्स प्राध्यापक-व्यापारिक-व्यापारिक, अभिनेता अभिनेता तथा कलाकारों में विवाह अधिक होता है संहिता का कारण सम्भव हुआ है।

उपरोक्त विवेचना में स्पष्ट है कि सामाजिक प्रवर्णन को दूर करना या निर्णय करना है कि कि-होना होता है और कि-होना अतिजीवन होता। परन्तु कुछ प्राथमिक कुछ कुछ विधान धार्मिक तथा नैतिक स्थितियों और आर्थिक शापण तथा सामाजिक विषमता सामाजिक प्रवर्णन का सर्वोच्च चिह्न नहीं रहते हैं। कुछ और प्राथमिक तथा राजनैतिक धार्मिक और आर्थिक कारणों में हानि वान अथवा घात में व्यथा या-यत्तर व्यक्ति ही नहीं जाना है। प्राथमिक दुर्बलता राग दुर्गन्ध तथा बहिष्कार का समाज का संहिता और विश्वास पलन और स्थायी बन रहते हैं जिनके कारण जनमर्यादा और उसके विभिन्न समूहों की उत्पत्ति और अतिजीवन दरें समाज के सर्वोत्तम चिह्न में नहीं होता। परन्तु प्राथमिक समाजों में समाजवादी लक्ष्यों के अनुसार धार्मिक तथा सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए नियोजन में सामाजिक प्रवर्णन पूरकतया समाज हितकारी बन सकता है। यद्यपि ऊपर हमने प्राथमिक और सामाजिक प्रवर्णन के भेद का धारण करने दिया है फिर भी दोनों के भेद का साथ में प्रस्तुत करना लाभदायक होगा।

महाद्वार और पञ्च न सामाजिक और प्राथमिक प्रवर्णन में निम्नलिखित भेद दिए हैं —

प्राथमिक प्रवर्णन	सामाजिक प्रवर्णन
(१) यह कब मृत्युदंड के द्वारा न्याय किया जाता है। पञ्च में उपस्थित प्राथमिकता में पुनरावृत्ति कबन या-यत्तर का अस्तित्व बनाए रखने देता है। अयोग्य अथवा उपयुक्त शक्तियों में हीन का लोप करता है।	(२) यह मृत्युदंड का प्रभावित करता है किन्तु समाज विघ्न का कारण जन्मदंड के द्वारा होता है। यह निर्णय करता है कि कि-होना जन्म देता है।

(२) यह मृत्यु तथा मरण-उपाजन का विरुद्ध दवा है और उसलिंग केवल किन्हीं प्रतिजीवित रहना है यहाँ निराशय करना है। यह प्रधानतया जापकारी है।

(३) यह कर्म पर्यावरण से उपजाजन चाहता है। काम केवल एक प्रमाण होता है। कामों का पर्यावरण ही प्राणियों का काम से उपाजन करना अनिवार्य है। काम अनुशासन का प्रश्न ही नहीं उठता।

(४) यह सामाजिक विरागत से उत्पन्न उदासीनता के बदन हुए क्षेत्र पर प्रयोग करने पर रहता है। यह उन दिशाओं का निवारित करता है जिनमें मानवता घटती सकती है।

(५) प्राकृतिक प्रवृत्तियों के सामने प्राणियों का विरुद्ध रहना है अथवा कर्म प्रवृत्तियों पर रहना है। जगत् की प्रवृत्ति और इच्छा की दृष्टि में अर्थ समझ्यति नहीं होता है।

(२) यह धर्म के विरुद्ध प्रचार करता है। यह केवल साधकान्ता नहीं है, यह अगत मृत्युनात्मक और अगत निराशात्मक है। यह निराशय करना है कि किन्हीं जन्म लेता है और किन्हीं प्रतिजीवित रहता है।

(३) यह बहुत अधिक विविधतापूर्ण हो सकता है। इसका धर्म अनुशासन से सम्बन्ध हो सकता है जिसका निगम प्रमाणों से होता है।

(४) यह समाज के अनुशासन अपना प्रमाण रख लेता है। यह सामाजिक विरागत के अन्तर्गत कार्य करता है और जगत् की उदासीनता का अपना सबक बना लेता है। यह इन सीमाओं में अपनी जिज्ञा निश्चित करता है।

(५) यह प्रधानतया स्वच्छिन्न है और मनुष्य के प्रधानतया अथवा अनुशासन का प्रयोग अथवा अनुशासन पर्याप्त है।

सामाजिक प्रगति

सामाजिक प्रगति का अर्थ सामाजिक परिवर्तन की उस प्रक्रिया में है जिसमें जगत् अथवा कार्य-क्षेत्र में निवारित (अथवा स्थिर) कार्य या धर्म की धार बनती है। किसी निर्दिष्ट अर्थ अथवा धर्म का धार बनना के लिए समाज में जो क्रिया उद्भवित होती है उसे प्रगति कहते हैं। धर्म-परिष्कार के अनुशासन प्रगति में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ ही नहीं है किन्हीं प्रतिजन्म कार्य का धर्म-परिष्कार का अर्थ ही है। धर्म-परिष्कार और प्रगति का अर्थ ही है कि समाज का धर्म-परिष्कार ही है। ही यह सम्भव है कि समाज का धर्म-परिष्कार ही है।

1. We now see that if the process we mean by the word 'direction' is not merely direction but direction toward some final goal, some definite end, we are not merely implying that the end is not simply by the ordinary consideration of the facts at work. Society p. 52.

वह हमारी मायाप्रा की भी पूर्ति करे। यदि विकासगत परिवर्तन हमारे प्रिय मूल्यों अथवा अन्तिम मूल्य की रक्षा की धार बढ रहा है तो हम उस प्रगति कहें। विकास से वादित परिवर्तन ज्ञाना प्रगति है। विकास सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसमें समाज निरन्तर एक स्तर की धार बढ रहा है किन्तु उस स्तर का स्थापन का किसी प्रमाण से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव भारत का पूर्व ऐतिहासिक काल में लम्बे धार तक विकास हुआ है परन्तु उसकी प्रगति प्रबन्ध ही नहीं हुई है। समाजवादी समाज की स्थापना के लिये का धार यदि अद्य भारत बढ रहा है तो निश्चय ही यह प्रगति कर रहा है। प्रगति में हम प्रकाश श्रेष्ठतर अथवा अतिरिक्त वादित परिवर्तन के भाव शामिल होते हैं। आगमन में कहा है कि प्रगति का अर्थ श्रेष्ठतर परिवर्तन में है और अन्तिम अन्तिम मूल्य स्थापना का अर्थ अन्तिम स्थापना है।¹ हावहाउम के विचार भी मर्यादित तथा अन्तिम के समान हैं। मैं सामाजिक प्रगति में सामाजिक जीवन में नैतिकता का वृद्धि समझता हूँ जिसे मनुष्य मूल्य अथवा विचार मुक्त मूल्य से जानेंगे। -

विशेषण के अनुसार प्रगति का अर्थ एक स्तर से विकास अथवा उत्पत्ति है जो मूल्य का विचार मुक्त लक्षण अनुष्ठानता है। इन सब परिभाषाओं में मर्यादित की परिभाषा सर्वोत्तम है। प्रगति, मानवीय एक वादित धार की धार उत्पत्ति करना है। इस प्रकार प्रगति का अर्थ नैतिकता पर निर्भर है। माध्य का प्रवृत्ति और उत्पत्ति तथा हमारे बीच में दूरा।

प्रगति मूल्य पर निर्भर है जो स्वयं मनुष्य का धार्मिकता पर निर्भर है। विभिन्न मनुष्य एक ही वस्तु से भिन्न भिन्न मूल्य समझते हैं। वही बुद्ध के लिए श्रेष्ठ है मक्ती है और वही दूमरे के लिए हीन। भाग्य के अदिकार लोग ताम्र वादी दल की उत्पत्ति को नश की प्रगति का सूचक मानते हैं किन्तु दूमरे लोग उस दल की अघोषित का सूचक। आधुनिक मनुष्यता का भी तात्पर्य मूल्यवत्तन नहीं। वस्तु में इस मानव प्रगति कहते हैं किन्तु दूमरे लोग इन अर्थवत्तन का कारण मानते हैं। इसमें मिथ्यता है कि मूल्य का कोई प्रायोगिक मापन नहीं है। मूल्य वह वस्तु या विचार है जो वादित माना जाता है जो प्राणिकता के साथ समझ जाय कि चाहे वास्तव में उस प्राणिकता के साथ विचार अर्थवत्तन नहीं। एक स्थिति में यह धर्म के चुनाव का प्रभावित करता है। मूल्य का स्वरूप मुक्तता अर्थवत्तन में है। भावनाएँ अनुभव के लिये व्यापक आधार तब = जिनके कोई वस्तु मूल्यवत्तन और दूसरी मूल्यवत्तन प्रतीत होती है। मूल्य अर्थवत्तन का अर्थवत्तन निर्दिष्ट करना

1 Progress means change for the better and hence must imply a value judgment. *A Handbook of the Sociologist* p. 603

2 By social progress (I mean) the growth of social life in respect of those qualities to which human beings can attain or can rationally attain via sex. *Social Evolution and Political Theory* p. 8

है। किसी वस्तु अथवा घटना का दखने के अपने दृष्टिकोण को हम मूल्य कह सकते हैं। वन तो मूल्यहीन निवारण नामूहिन जीवन की प्रथाया, परम्पराओं आदि में होता है किन्तु उनमें व्यक्ति का व्यक्तित्व निश्चय भी शामिल रह सकता है। यही कारण है कि समाज के सभी अथवा अधिकांश लोग के पूरकतया समान मूल्य नहीं होते। अहिंसा का ही लोकोपयोग। एक परिवार के सभी सदस्य भी तो अहिंसा का एक अर्थ मूल्य नहीं मानते। एक बात और है मूल्य में स्थान तथा समय के परिवर्तन से परिवर्तन आना आवश्यक है। इन कारणों के एक समाज के अन्तर्गत अथवा मानव समाज में प्राथमिक या मूलभूत मूल्यों के बारे में सामाजिक विचारों का अभाव है।

प्रगति की धारणा प्रत्येक समाज में प्रत्येक काल में प्रचलित रहा है। सभ्यता प्राचीन काल में भारत चीन मिस्र आदि देशों में प्रगति का अर्थ व्यक्ति और समूह की बुद्धि-समृद्धि और स्वतंत्रता में बढ़त बढ़ि के समकक्ष था। यूनानी पण्डित प्लेटो तथा अरस्तू प्रगति का अर्थ समाज की ऐसी अवस्था से लेते थे जिसमें सभी आवश्यक सम्पत्तियाँ सामाजिक अर्थशास्त्र की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो और जिस मनुष्य निम्न तथा स्वतंत्रता में प्राप्त और भाग कर सकें। यह 'अर्थ' जीवन अथवा धन की धारणा थी। आत्मनः जनसाधारण का प्रगति से समाज की एक ऐसी अवस्था के अर्थ का बोध होता है जो जीवन का हर पक्ष में—दाना पशुधन और नृत्तक रूप में—हर प्रकार से समृद्ध हो, जिसमें मनुष्यों की सर्वोत्तम उत्पत्ति हो सके।

विकासवादी समाजशास्त्रियों (कोम्त स्पेंसर तथा वाइ) के विकासवादी सिद्धांतों में सामाजिक प्रगति की उत्कृष्ट धारणा का समावेश है। वे वास्तव में सामाजिक विकास को सामाजिक प्रगति मानते थे। इसी प्रकार १९वीं सदी से लेकर आज तक प्रौद्योगिक और प्रौद्योगिक उत्पत्ति से जो अणुव गोरवमयी या शान्तिपूर्ण सम्पत्तियों का विकास हुआ है उसमें प्रभावित होकर अनेक इतिहासकार, दार्शनिक और समाजशास्त्री मनुष्यता की उत्पत्ति का मानवता की प्रगति (सामाजिक प्रगति) कहते हैं। यदि विचार किया जाए तो इस प्रगति कहना उचित भी प्रतीत होता है। मनुष्यता के विकास में मनुष्य का ध्यान ऐसे अर्थ से नहीं किया है जिन्हें उसके पूर्वजों ने प्राप्त करने काय समझा था। प्रकृति पर अधिसाधिक नियंत्रण अधिव्यक्तियों के अर्थ और विज्ञान की उत्पत्ति समृद्ध जीवन मनुक्त राष्ट्र मध्य और मातृधर्म की प्रतिष्ठा आदि विद्यमान अवस्था के एक सगरा हैं जो मातृ मानव समाज की किमी भी पूर्वगामी अवस्था में नहीं थे। भारत में सत्ताधारी दल जनमत का अर्थ प्रतिनिधि कहा जा सकता है। इससे भारत का सामाजिक प्रगति के लिए कुछ सामाजिक अर्थों का प्राप्त करने का निश्चय किया है। यदि हम इन अर्थों के लिए नहीं जाते तो क्या हम प्रगति नहीं करेंगे? वस्तुतः सामाजिक अर्थों की प्रतिष्ठा अथवा उमक प्रयत्न में सतृप्तता ही प्रगति है। इसी प्रकार अर्थ तथा अर्थों का

न जा उन्नति की है वह अविनाशित उनका सामाजिक ध्येय क अनुकूल है। वहाँ भी प्रगति दूर है।

किन्तु क्या इसी आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सम्पूर्ण मानव समाज प्रगति कर रहा है? मगर उत्तर है अवश्य। हाँ कम और समरसता अथवा भारत और चीन में बौद्ध अधिकाधिक प्रगतिमान है इस निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता। इसका मतलब यह होगा कि आधुनिकता का जो लाभ पश्चिम नहीं करती हैं, जो प्राचीनता अथवा अतीत के गुण गाया करते हैं उन्हें हम प्रतिक्रियावादी या स्थितिवादी कहते हैं। और शायद यही लाभ हम भी इसी उपाधि से विभूषित करते हैं। मगर मैं सम्भवतः कभी भी परम्परावादी और आधुनिकताप्रिय लाभ में प्रगति पर कोई समझौता नहीं पाया।

यदि सामाजिक प्रगति का कोई निश्चित और सर्वमान्य अर्थ नहीं तो फिर हमका लक्ष्य भी कैसा निश्चित और स्थिर हो सकता है? कुछ विचारका न सामाजिक प्रगति का प्रमुख लक्षण समाज का अधिकतम कल्याण माना है। अर्थ विज्ञान, अधिकतम लाभ का अधिकतम भराई, 'अधिकतम भ्रमण', उच्चतम जीवन मान अधिकतम आध्यात्मिक उन्नति' आदि को प्रगति के लक्षण मानते हैं। इन्हीं आधारों पर सामाजिक प्रगति की क्मोटियाँ की सूची में आर्थिक कल्याण में वृद्धि, अधिकतम लाभ की भराई में वृद्धि मुख्य-मुख्य वृद्धि में वृद्धि तथा नैतिक उन्नति, आध्यात्मिकता का प्राप्त करने की अधिक तत्परता अथवा जीवन मान की उन्नति आदि को सम्मिलित करते हैं। इनमें से किसका सच्ची क्मोटी माना जाए। फिर यदि इनमें से अधिक अथवा सभी उपलब्ध हों तो क्या प्रगति निश्चय ही सम्भवनी चाहिए?

यद्यपि इन प्रश्नों का समाधानक उत्तर देना कठिन है फिर भी निम्न दृष्टिकोणों का हाना एक आधुनिक समाज की प्रगति का सूचक हो सकता है

- (१) राष्ट्रीय स्वतंत्रता और सम्पूर्ण प्रभुता,
- (२) समृद्ध समृद्धि और उन्नत मन्व्यता जिसमें मनुष्य का प्रकृति की विनाश का शक्तियाँ पर अधिकाधिक नियंत्रण हो तथा देश में भौतिक समृद्धि की स्थापना विद्यमान हो।
- (३) जनसाधारण का जीवन की मुख्य-मुख्य आर्थिक मात्रा में सुख हो यावत् अधिकतम अथवा सुख हों।
- (४) समाज व्यवस्था में अत्याय विषमता तथा धारण का साथ हो और क्वन एसा स्थापित प्राप्ति की जाएँ जो मनुष्य के सम्मान का बढ़ाएँ, सामाजिक सुरक्षा का सर्वोत्तम प्रबंध हो।
- (५) मनुष्य की मानसिक नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति करने के लिए आवश्यक अथवा उपलब्ध हो,

है। किसी वस्तु अथवा घटना को देखने के अपने दृष्टिकोण का हम मूल्य कह सकते हैं। वही तो मूल्यों का निर्धारण सामूहिक जीवन की प्रथाओं, परम्पराओं आदि से होता है किन्तु उनमें व्यक्ति का व्यक्तिगत निष्पत्ति भी शामिल रह सकता है। यही वाग्ग है कि समाज के सभी अथवा अधिकांश लोगों के पूरुतया समान मूल्य नहीं होते। अहिंसा या ही से लीजिए। एक परिवार के सभी सदस्य भी तो अहिंसा को एक अर्थात् मूल्य नहीं मानते। एक बात और है मूल्यों में स्थान तथा समय के परिवर्तन से परिवर्तन आना आवश्यक है। इन कारणों से एक समाज के अन्तर्गत अथवा मानव समाज में प्राथमिक या मूलभूत मूल्यों के बारे में सामाजिक विचारों का अभाव है।

प्रगति की धारणा प्रत्येक समाज में प्रत्येक काल में प्रचलित रही है। मभवत प्राचीन काल में भारत, चीन मिला आदि देशों में प्रगति का अर्थ व्यक्ति और समूह का सुख-समृद्धि और स्वतंत्रता में बहुत बढि के समबन्ध था। यूनानी दार्शनिक प्लेटो तथा अरस्तु प्रगति का अर्थ समाज का ऐसी अवस्था में लाने के जिसमें सभी आवश्यक सम्धारों सामाजिक अर्थों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो और जिस मनुष्य निष्पत्ति तथा स्वतंत्रता से प्राप्त और भोग कर सकें। यह अर्थात् जीवों अथवा मानवों की धारणा थी। आजकल जनसाधारण को प्रगति से समाज को एक ऐसी अवस्था के अर्थ का बोध होता है जो जीवन की हर पद्धति में—दाना पायिस और नतिक रूप से—हर प्रकार से समृद्ध हो, जिसमें मनुष्यों की सर्वोत्तम उन्नति हो सके।

विकासवादी समाजशास्त्रियों (कॉमन् स्पेंसर तथा वाड) के विकासवादी सिद्धांतों में सामाजिक प्रगति की उत्कृष्ट आशा का समावेश है। ये वास्तव में सामाजिक विकास का सामाजिक प्रगति मानते थे। इसी प्रकार १९वीं सदी से सबर राज तक औद्योगिक और प्रौद्योगिक उन्नति से जो अपूर्व गौरवमयी या शानदार सम्पत्ति का विकास हुआ है उससे प्रभावित होकर अनेक इतिहासकार, दार्शनिक और समाजशास्त्री सम्पत्ति की उन्नति का मान्यता की प्रगति (सामाजिक प्रगति) कहते हैं। यदि विचार किया जाए तो इस प्रगति कहना उचित भी प्रतीत होता है। सम्पत्ति के विकास में मनुष्य का अनेक ऐसे अर्थों तथा पद्धतियों है जिन्हें उनका पूर्वजान प्राप्त करने योग्य समझा था। प्रकृति पर अधिवाधिक नियंत्रण, अधिक स्थान से बसा और विद्या की उन्नति समृद्ध जीवन समुक्त राष्ट्र सभ्य और मानव सम का प्रतिष्ठा आदि विद्यमान अवस्था के एक सक्षण हैं जो मानव समाज की किसी भी पूर्वजामी अवस्था में नहीं थी। भारत में गताधारी दल जनमत का मुख्य प्रतिनिधि कहा जा सकता है। इससे भारत की सामाजिक प्रगति के लिए कुछ सामाजिक अर्थों का प्राप्त करने का निश्चय किया है। यदि हम इन अर्थों के लिए लक्ष्य जाते हैं तो क्या हम प्रगति नहीं करेंगे? वस्तुतः सामाजिक अर्थों की प्राप्ति अथवा उनका प्रयत्न में गहनता ही प्रगति है। इसी प्रकार हम तथा हमारी

न जा उन्नति की है वह अतिशय उन सामाजिक ध्यया व अनुभव है। वहाँ भी प्रगति हुआ है।

निन्तु क्या इसी आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सम्पूर्ण मानव समाज प्रगति कर रहा है? मग उत्तर है अवश्य। हाँ हम और प्रमरीका अथवा भारत और चीन में कौन अधिक प्रगतिमान है इस निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता। इसका मन्व दा उत्तर हगि। आधुनिकता को जा लाग पसन्द नहीं करते हैं जो प्राचानता अथवा अतीत व गुण गाया करते हैं उन्हें हम प्रतिक्रियावादी या रुढ़िवादी कहते हैं। और शायद य लोग हम भी इसी उपाधि से विभूषित करते हैं। मगर म सम्भवन कभी भी परम्परावादी और आधुनिकताप्रिय लाग म प्रगति पर बौद्ध समझौता न हा पायगा।

यदि सामाजिक प्रगति का काइ निश्चित और सवमाय अर्थ नहीं ता फिर इसका लक्षण भी कम निश्चित और स्थिर हो सकते हैं? कुछ विचारका ने सामाजिक प्रगति का प्रमुख लक्षण समाज का अधिकतम कल्याण माना है। अर्थ विद्वान अधिकतम लाग की अधिकतम भलाई 'अधिकतम आनन्द', उच्चतम जीवन मान 'अधिकतम आध्यात्मिक उन्नति आदि को प्रगति के लक्षण मानते हैं। इन्ही आधार पर सामाजिक प्रगति की कमीटिया की सूची में अधिक कल्याण में वृद्धि अधिकतम लाग की भलाई में वृद्धि सुख-समृद्धि में वृद्धि तथा नतिक उन्नति, आध्यात्मिकता को प्राप्त करने को अधिक तपस्या अथवा जीवन मान की उन्नति आदि का सम्मिलित करते हैं। इनमें से किमका सच्ची कमीटी माना जाए। फिर यदि इनमें से अधिक अथवा सभी उपलब्ध हा ता क्या प्रगति निश्चय ही सम्भनी चाहिए?

यद्यपि इन प्रश्नों का समाधान उत्तर देना कठिन है फिर भी निम्न द्वाप्रश्नों का होना एक आधुनिक समाज का प्रगति का सूचक हा मन्ता है

- (१) राष्ट्रीय स्वतंत्रता और सम्पूर्ण प्रभुता
- (२) समृद्ध सृष्टि और उन्नत मन्थना जिसमें मनुष्य का प्रकृति का विनाशकारी प्रकृतिया पर अतिवाधिक नियंत्रण हा तथा दा म भौतिक समृद्धि की लक्षण विद्यमान हा
- (३) जनसाधारण का जीवन की सुख-सुविधाएँ अधिकवाधिक मात्रा में सुलभ हा वाय व अतिरतम अवसर सुलभ हा।
- (४) समाज व्यवस्था में असाय विषमता तथा पापण का साप हो और सब एकसा आगे आगे प्रगति का जाए जो मनुष्य के सम्मान का बर्ण सामाजिक सुरक्षा का सर्वोत्तम प्रदान हा
- (५) मनुष्य की मानसिक नतिर और आध्यात्मिक उन्नति करने व लिए आवश्यक अवसर उपलब्ध हा,

- (६) जीवन की मूलभूत मायनाया में प्रत्येक मनुष्य का विश्वास और वक्तव्य बने,
- (७) समाज विरोधी प्रवृत्तियाँ का यथासम्भव दमन हो,
- (८) एक बगविटीन, स्वस्थ और मुटुड समाज की स्थापना हो,
- (९) संसार के सभी समाजों में पारस्परिक भ्रातृभाव, सद्भावना और गह्र योग हो, तथा
- (१०) साम्यता और तान विधान का उपयोग शान्ति, और मानव कल्याण व हित में ही हो ।

मैकाइवर आदि कुछ आधुनिक समाजशास्त्री इस मत का प्रवृत्त करने हैं कि समाजशास्त्र में सामाजिक प्रगति का कोई वैज्ञानिक मूल्य नहीं है क्योंकि सामाजिक प्रगति का आधार—निर्देश नैतिक मूल्य—ही अनुपस्थित है।¹ भरे विचार में इन लोगों की धारणा सत्य नहीं है। क्योंकि समस्त मानवता की नैतिक सहिताया में कुछ सामान्य मूलभूत नियम सर्वव्यापी हैं। जिमजग भी लिखता है कि नैतिक वस्तुओं में नियमना का परम्परात्मक रूप से स्वीकृत सदाएँ दश, काल में सर्वव्यापकता है।¹ दूसरे, उपरोक्त धारणा से गह्रमति का अर्थ होगा कि हम मानव प्रकृति तथा इतिहास को अत्यधिक निराशा पूर्ण समझें क्योंकि मनुष्य व सतत गह्र प्रयत्न से भी सामाजिक प्रगति नहीं आ सकती, वह बस मृगमरीचिका, भ्रष्टी छाया और काली कल्पना मात्र रहेगी। हमारा विश्वास है कि समाजशास्त्र में प्रगति की धारणा को बनाए रखना ही मानव क हित में है। उमग व सन्व आशाविश्व रहेगा और नए नए आश्रय तय करता रहेगा। तभी वह प्रयत्न और नियोजन (planning) कर कमयोगी बना रहेगा। गीता का गह्रण है कि मनुष्य का कमयोगी होना उमके लिए परम कल्याणकारी है। मनुष्य व समाज में 'सामाजिक पराकाष्ठा व काल्पनिक चित्रा' (utopias) का चिन्ता भारी गह्रव रहा है हमारा अनुमान हम 'सर्वोप्य' तथा 'साम्यवाद' की अपूर्व मपनाया में लग सकेंगा।

¹ Cinsberg *Reason and Unreason in Society* (London 1947) p. 303

सामाजिक विगठन और पुनगठन

'सामाजिक संगठन शीघ्रकाल वाला घट्टाया हुआ सामाजिक संगठन का अर्थ स्पष्ट किया है। सामाजिक संगठन वह व्यवस्था है जिससे समाज के भागों में—व्यक्तियों समूहों, सम्प्रदायों और समूहों में—परस्पर तथा पूरे 'समाज के साथ एक साथ एक ढंग से सम्बन्ध होता है।'¹ इलियट और मरिल ने लिखा है 'सामाजिक संगठन वह ढंग या स्थिति है जिससे समाज की विभिन्न संस्थाएँ अपने स्वोद्भूत अथवा उपनमित उद्देश्यों के अनुसार कार्य कर रही हैं।'² इन दोनों परिभाषाओं के आधार पर हम सामाजिक संगठन की प्रकृति का वर्णन कर सकते हैं। इसके दो लक्षण हैं—

(१) निश्चित कार्य और प्रस्थिति—सामाजिक संगठन के निर्मायक भागों के बीच में सम्बन्ध निश्चित होता है और उनका तथा सम्पूर्ण समाज के बीच में भी निश्चित सम्बन्ध होता है। हमें प्रत्येक भाग (व्यक्ति और समूह) के नियत कार्य भूमिका और प्रस्थिति का निश्चित हो जाना स्वाभाविक ही है। इस निश्चितता में महत्वपूर्ण सामाजिक संगठन का साधारण कार्य व्यापार चला करता है और इसके अभाव में इस क्रिया में बाधा पड़ जाती है। सामाजिक संरचना अन्तर्मुखित संस्थाओं प्रतिनिधियों तथा सामाजिक प्रतिमानों और समूह में हर व्यक्ति की प्रस्थितियाँ तथा भूमिकाओं के एक विगिष्ट प्रवचन का कहना है। इन सम्बन्धों तथा मजबूतता में जितना सामञ्जस्य होता है और समाज के सदस्यों में अपनी प्रस्थितियों और भूमि-

1 Social organisation is the system by which the parts of a society are related to each other and to the whole society in a meaningful way
Jones *Basic Sociological Principles* p 195

2 Social organisation is a state of being a condition in which the various institutions in a society are functioning in accordance with their recognized or implied purposes. Elliot and Merrill *Social Disorganisation* Harper Bros. New York (1950) p 4

काफ़ी को अपनाए जाने का जितनी इच्छा होगी उतना ही सामाजिक संगठन होगा। यदि समाज के सदस्यों की प्रस्थितियों और भूमिकाएँ निश्चित सामाजिक नियमों (संहिताएँ) द्वारा निर्धारित हैं और वे उनसे अनुसार आचरण करते हैं तो प्रत्येक सदस्य अपने स्वार्थों का पूरा करत हुए भी सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक होता है। इससे सभी समस्याएँ सहकारिता और अतन्त्रिभरता की भावना सजग रहनी है और वे व्यक्ति को समष्टि के अधीन करने को तत्पर रहते हैं। इन स्थितियों में सामाजिक व्यवस्था का अपक्षायित अधिक स्थायी और सुदृढ़ हो जाना स्वाभाविक है। सामाजिक सम्बन्धों, प्रतिमान और प्रशासकीय संगठन भी स्थिर रहते हैं और परम्परात्मक नियमों या नियंत्रणों के अधीन व सम्पूर्ण समाज के साथ सामञ्जस्यपूर्ण एकता में आवद्ध होते हैं।

(२) उद्देश्यों लक्ष्यों तथा वायत्रमा की एकमतता—सामाजिक संगठन के विभिन्न भागों की भूमिकाएँ और प्रस्थितियों की निश्चितता बनाए रखने के लिए यह आवश्यक होता है कि उनका उद्देश्य, लक्ष्य और वायत्रमों की अन्तर्गतता में एकता तथा सामञ्जस्य बना रहे। प्रत्येक भाग के व्यक्ति प्रयोजन को अन्तर्गत सम्पूर्ण समाज के प्रयोजन में विलीन या एकीकृत कर देने से ही सामाजिक व्यवस्था बनी रह सकती है। सभी भागों के कार्य यथासम्भव समग्र समाज के प्रयोजन के अन्तर्गत होने चाहिए। समाज के विभिन्न भागों के प्रयोजनों तथा समग्र समाज के प्रयोजन में सामञ्जस्य की स्थिति को एकमतता कहा जाता है। अतः समाज के संगठन के लिए आवश्यक है कि उनका लक्ष्य और संस्थाओं की बुद्धि मूल परिस्थितियों की परिभाषाओं से सामान्य सहमति हो उनसे उद्देश्य और भावनाएँ समान हों। सामाजिक संगठन मूलतः उनका लक्ष्य की भावना तथा सामाजिक रणियों की एकमतता में अभिविष्ट है। संगठित समाज के सामाजिक मूल्यों और उत्तम मूल्यों की सामाजिक मनावृत्तियों में भी सामञ्जस्य होता है।

ऊपर जा विवरण दिया गया है उमग बचन अन्तर्गत संगठित समाज की प्रकृति का सर्वत मितना है। यदि भी अन्तिमिक समाज पूर्णतया संगठित नहीं रहा है। विभिन्न समाजों में सामाजिक संगठन के अनुपातिक अन्तर्गत स्थिति रहती है। पूर्ण संगठित समाज बचन का अन्तिम अस्तु ही मन्ती है। अतः सामाजिक संगठन भी एक सामाजिक प्रत्यय या विचार है।

सामाजिक विंगटन

सामाजिक संगठन की प्रकृति का अन्तर्गत व अन्तर्गत सामाजिक विंगटन की प्रकृति को समझना सरल है। पूर्ण समाज का अन्तर्गत यथाप समाज पूर्णतया संगठित नहीं है अन्तर्गत यह अन्तर्गत है कि सभी समाजों में सामाजिक विंगटन का अन्तर्गत (अन्तर्गत सामाजिक संगठन का अन्तर्गत में अन्तर्गत) अन्तर्गत मन्ती रहता है। अन्तर्गत अन्तर्गत में पूर्ण सामाजिक संगठन में अन्तर्गत अन्तर्गत व विंगटन का

सामाजिक विगठन नहीं कहते हैं। सामाजिक विगठन भी एक सापेक्षिक विचार है। किसी समाज का विगठित तब कहेंगे जब उसकी व्यस्तस्था बनाए रखने वाली शक्तियाँ व मनुष्यन में परिवर्तन आने से सामाजिक संरचना भंग (द्विभ्र विच्छिन्न) हो जाती है जिसमें परम्परात्मक व्यवहार प्रतिमान अप्रयोज्य मिट्ट होत हैं और सामाजिक नियंत्रण व स्वीकृत स्वरूप प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य नहीं कर पाते हैं।¹ समाज गत्यात्मक है। परिवर्तनशास्त्रता उसकी प्रकृति है। इसलिए समाज के संघटक तत्वों में निरन्तर पुनः प्रवेश होता रहता है। इन पुनःप्रवेशों से सामाजिक परिवर्तन होता है जिससे समाज में द्विच्छिन्नता आ जाती है। जब परिवर्तन की गति तीव्र होती है तो द्विच्छिन्न प्रमाणों के स्थान पर नए प्रतिमानों की स्थापना होना कठिन हो जाता है। फलतः सामाजिक विगठन उत्पन्न होता है। सामाजिक विगठन एक प्रक्रिया है जिसमें एक समूह व मनुष्यों के बीच व परस्पर सम्बन्ध मनुष्यन भंग हो जाते हैं और उनमें स्थान पर ऐसे संघ व घनन हैं जिनमें निम्नलिखित इच्छाओं का सम्बन्ध चिन्ता और दुःख उत्पन्न होते हैं। इसीलिए इस प्रक्रिया का समूह व विच्छेद का प्रक्रिया कहना उपयुक्त होगा। परिवार समुदाय (ग्राम या नगर) गण्ट संघका अन्तर्गच्छाय संघठन का विच्छेद ही सामाजिक विगठन है। अनेक शक्ति का सम्बन्ध अनेक समूहों में रहता है। जब एक या दो समूहों का विच्छेद हो जाता है तो व्यक्ति का अपने जीवन में उन समूहों व प्रतिमानों का विगठन भागना पड़ता है किन्तु दूसरे समूहों में उसकी भाग्य क्रिया होती रहती है। परन्तु यहाँ स्मरण रखने की विनियोग बात यह है कि प्रथम सामाजिक घटना जिस हम घनिष्ठ कहते हैं सामाजिक विगठन नहीं है। सभी सामाजिक दायाँ घननिक और अनाधारण घटनाओं में प्रथम तत्त्वा के लिए सामाजिक विगठन का प्रयोग करना अनुपयुक्त है। हम आगे चलकर और निम्नलिखित के इस कथन से महत्त्व हैं सामाजिक विगठन वह दशा है जिसमें या तो सामाजिक संरचना भंग हो जाती है अथवा सफलता में कार्य नहीं कर सकता है। सामाजिक विगठन का अर्थ किता सामाजिक स्थापना जिन समूहों में संस्था या समुदाय के कार्यों का विच्छेद है।² अर्थात् किता समूह या संस्था में विभिन्न भागों व सामाजिकसमूहों समाधान का अन्त और उनकी आधारण क्रिया का विच्छेद ही सामाजिक विगठन है।

1. Social disorganisation occurs when there is a change in the equilibrium of forces - a breakdown of the social structure so that former patterns no longer apply and the accepted forms of social control no longer function effectively. Elliott and Mehall of *Social Control* p 20

2. Social disorganization is the derangement and malfunctioning of established group behaviour patterns institutions or controls. Furchild's *Dictionary of Sociology* p 283

Social disorganisation refers to the disruption of the function of some social unit such as a group an institution or a community. *A Handbook of Sociology* p 603 (Summary)

सामाजिक विगठन भी एक सापेक्षिक विचार है। इन्हे सामाजिक सगठन के प्रयोग में ही समझा जा सकता है। जैसे कोई समाज पूरे सगठित नहीं होता है उसी प्रकार कोई समाज पूरे विगठित नहीं होता है। विभिन्न समाजों में भिन्न भिन्न ढंग का विगठन रहता है।

प्रत्येक समाज में सगठन, विगठन और पुनसगठन की प्रक्रिया निरन्तर कायम रहती है। समाज (या संस्था) का स्थायित्व विगठन और पुनर्निर्माण की प्रक्रियाओं का एक गत्यात्मक सन्तुलन है।

सरल समाजों में सामाजिक नियंत्रण अधिक प्रभावपूर्ण होता है और परिवर्तन की बाह्य तथा आन्तरिक परिस्थितियाँ भी कम क्रियाशील होती हैं इसलिए उनमें अपेक्षाकृत अधिक सगठन (या अपेक्षाकृत कम विगठन) है। परन्तु आधुनिक जटिल समाजों में परिवर्तन बहुत कम होता है और सामाजिक नियंत्रण भी शिथिल पड़ जाता है इसलिए इनमें अपेक्षाकृत अधिक विगठन होता है। निरन्तर वृद्धि के परिणाम होने के कारण ही समाजों में जब तक एक विगठित क्षेत्र में पुनः व्यवस्था कायम नहीं हो पाती तब तक नई परिस्थितियाँ दूसरे क्षेत्रों में विगठन उत्पन्न करती हैं। दूसरे विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन की घटती गति होने के कारण सरल समाजों में अनिश्चितता और अव्यवस्था तथा गड़बड़ी उत्पन्न होती हैं। इससे समूह का एकिकरण क्षीण भिन्न हो जाता है। इन आधुनिक गत्यात्मक समाजों में विगठन की उपस्थिति उनका एक साधारण लक्षण है। विगठन के तत्त्व स्वयं गत्यात्मक समाज के भीतर होते हैं। वही तत्त्व जो सामाजिक संरचना में गत्यात्मकता लाते हैं, उनके विगठन के कारण बत जाते हैं।¹

सामाजिक विगठन की प्रकृति

सामाजिक सगठन का अभाव सामाजिक विगठन है। सामाजिक सगठन की दशा की विपरीत दशा को ही सामाजिक विगठन कहा जाता है। इसका अर्थवाचक यह है कि सामाजिक विगठन हान पर सामाजिक संरचना की रक्षा में परिवर्तन आता है (१) भूमिवादा और प्रस्थितियों की अनिश्चितता और (२) अरमत्ता का अभाव।²

(१) भूमिवादाओं और प्रस्थितियों की अनिश्चितता—गत्यात्मक समाजों में सामाजिक संरचना के विभिन्न तत्वों में तीव्र परिवर्तन होता रहता है। प्रस्थितियों और भूमिवादाओं की अनिश्चितता बढ़ जाती है और अधिराज्य लोगों को ऐसी स्थितियों का सामना करना पड़ता है जिनमें पूर्व-स्थापित प्रतिमानों के अनुसार व्यवहार नहीं किया जा सकता है। समाज के अस्तित्व में इनका वृद्धि के परिणाम होता है कि नए नए प्रतिमानों की स्थापना भी नहीं हो सकती है। इन व्यक्तियों का अतीव प्रसिद्ध

1. Elliot and Merrill *op cit* p 22

2. *Ibid* pp 22-25

निया और भूमिकाओं से विचलित जाना विन्तुल साधारण बात ही जाती है। यदि नई भूमिकाओं को अभिनीत करने का प्रयास करते हैं तो उसमें साधारण मनुष्य बटूना असम्भव रहता है और कई बार ये नई भूमिकाएँ समाज के लिए अक्षरणाक होता हैं। इसमें प्रस्थिति और भूमिका के बीच में अति अतिशक्तिता और द्विविधा उत्पन्न हो जाती है जिनका परिणाम सामाजिक विगटन होता है।

विगटन समाज की पहली विशेषता है कि सामाजिक भूमिकाओं की अपेक्षाओं का अधिकांश व्यक्ति पूरा नहीं कर पाता है। सामाजिक जीवन में उसके समस्त ऐसे प्रतिमान प्रस्तुत किए जाते हैं जिनका सहाय्य में प्राप्त करना असम्भव होता है। उसकी महत्वाकांक्षा को निरंतर उत्पन्न किया जाता है। उसमें यह भावनाएँ पैदा होती हैं कि वह समाज में उच्चतम स्तर का प्राप्त कर सकता है वह राष्ट्रपति बन सकता है देश का सर्वप्रथम लेखक बन सकता है अथवा प्रख्यात इंजीनियर प्राध्यापक डाक्टर आदि और जीवन में सब प्रकार की सुख-समृद्धि उसके चरणों पर पाठ सकती है। किन्तु इन सभी भूमिकाओं में अत्यल्प व्यक्ति ही पहुँच सकते हैं। परिस्थितियाँ बचने कुछ लोगों की आशाओं की पूर्ति में सहायक हो सकती हैं और बड़े-बड़े जय-ध्वज इनमें से किमी भूमिका का अभिनीत करने की तयारी करता है तो वह रुढ़ियों और बाधों को अक्षरणाक करना पाना पाना है। क्योंकि उच्चतम आशाओं की पूर्ति के लिए वह प्रयत्न करने के लिए, धनसंचय, और अन्य अवयव और समाज विरोधी कार्य कर बैठता है। यदि ऐसे अवयव और समाज विरोधी कृत्यों को बढ़ावा दिया जाता है तो समाज निश्चय ही विगटित हो जायगा।

स्वयं और उन्नत अधिकांश आधुनिक समाजों में परिस्थिति और भूमिका का निश्चय प्रयास होता है। यहाँ व्यक्ति का समूह द्वारा स्थापित प्रतिमान के विरुद्ध आचरण करने का कोई अवसर ही नहीं मिलता है। व्यक्ति की परिस्थिति समाज द्वारा नियंत्रित प्रस्तुत होती है, वह उसके उपयुक्त ही व्यवहार करता है और सामान्यतः प्रोत्साहित तक उसके व्यवहार अपन प्रवृत्त जन्म हो रहा है। परन्तु आधुनिक जन्म समाजों में अलग-अलग परिघटन न हमारे समाज के पुनर्गठन प्रतिमानों का ठाड़ दिया है। हमारे जीवन की समस्त परिस्थितियाँ और तरीके हमारे प्रवृत्त में निहित हैं। हमारे पक्ष, रक्त-महत्त्व के दृष्ट, सामाजिक सम्बन्ध आदि सभी तो नबोने हैं। फिर भला पुनर्गठन भूमिकाओं में नई परिस्थितियों के उपयुक्त महत्त्व आचरण कम कर दिया है? हमें यह चाहते हैं कि पुनर्गठन सामाजिक प्रतिमानों के अनुकूल आचरण हो सके नये कर पावे हैं क्योंकि हमारा परिस्थितियाँ हमें पुनर्गठन प्रतिस्थितियों और भूमिकाओं के अनुकूल आचरण नहीं करने देती। ये अनर्थात परिस्थितियाँ सामाजिक सम्बन्धों का विगटित करती हैं। परन्तु हमें भूमिकाओं अभिनीत करने में नो व्यक्ति का अपमान, पराजय और असुरक्षा का सामना करना पड़ता है।

विगठित समाज के परम्परागत आदर्शों और मूल्या व अनुभूत आचरण करना अधिकतर व्यक्तियों के लिए असम्भव होता है परन्तु फिर भी वे उनका उत्तम उल्लेख नहीं करते। किन्तु कुछ छोड़े से व्यक्ति एक होने हैं जो जान या आजाव में उनका उत्तम उल्लेख करते हैं और इस प्रकार अवयव व्यवहार करते हैं। अन्य लोगों की भाँति वे इस बात से समायोजन नहीं कर पाते कि समाज द्वारा आश्वासित मान प्रस्थितियों को प्राप्त करने में वे असमर्थ हैं। साम्प्रतिक समाज में प्राप्त प्रस्थितियों की अपेक्षा उपलब्ध प्रस्थितियों की संख्या बहुत अधिक होती है। सद्भावित रूप से ऐसे समाज में गतिशीलता बहुत अधिक होती है। किन्तु व्यवहार में कबल कुछ भाग्यशाली और समर्थ लोग होते हैं जो अपनी नीची प्रस्थितियों से निजल कर उच्च प्रस्थितियों को प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए ऊँची प्रस्थितियों को प्राप्त करने में प्रयत्न में विफलता मानसिक पराजय तथा अप्रिय वृद्धि अधिक होता है। तब व्यक्तियों विगठन ही अधिकतर अवस्थाभावी परिणाम है।

(२) एकमतता का अभाव—प्रस्थिति और भूमिकाओं की अनिश्चितता और सामाजिक अपेक्षाओं तथा व्यक्तियों के उपस्थितियों में निरन्तरता के अंतर समाज के विभिन्न तत्वों के उद्देश्यों, सत्य और कार्यों की एकमतता को भंग कर देता है। लगातार चलती हुई परिस्थितियों में व्यक्ति की अपनी परम्परात्मक प्रस्थितियों तथा भूमिकाओं की अनिश्चितता का भाव होता है उसे दूसरों की प्रस्थिति और भूमिका का भी अनिश्चित ज्ञान नहीं रहता है। यह स्थिति सामाजिक सम्बन्धों में अनिश्चितता और विश्वस्तुलना लाती है। फलतः लोगों में सहयोग और सामाजिकता का भावना व स्थान पर प्रतिपादित और व्यक्तित्व की भावनाएँ प्रबल हो जाती हैं। समाज की विभिन्न इकाइयों व प्रयाजना, लक्ष्य और वायव्यता में एकमतता का अभाव समाज की एकता और सुदृढ़ता का विच्छिन्न कर देता है और सामूहिक जीवन की वायव्य बुद्धिसत्ता अत्यधिक क्षिप्त पड़ जाती है। सघटन तत्वों के व्यक्तिगत प्रयोजन व्यंग्ति व प्रयाजना को चुनौती देते हैं और बहुधा उन पर अपनी प्रबलता मानते हैं।

सामाजिक विगठन के कारण

समाजशास्त्र में आज से बहुत पहले ही निर्धारणकारी सिद्धांतों का बहिष्कार हो गया है। अब यह विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक सामाजिक घटना व घटना कारण होता है। सामाजिक विगठन के भी अनेक कारण होते हैं। एतदर्थ सामाजिक विगठन का इस दृष्टिकोण में विश्लेषण करने का सिद्धान्त-बहुकारणकारी सिद्धांत ही पर्याप्त बत जा सकता है। एतदर्थ और अधिक न सामाजिक विगठन के आधारभूत कारणों की व्याख्या करते हुए उन सामाजिक प्रक्रियाओं पर ध्यान दिया है जो सामाजिक विगठन का उत्पन्न करती हैं। अन्य कारणों (समाजमूलक मुगर्जों विनिर्दिष्ट और अयोग्य) में भी अनुभावित रूप से अभी दृष्टिकोण का

अपनाया है। हम इन विषय का विश्लेषण उन दशाघ्रा और प्रक्रियाघ्रा की विवेचना से करेंगे जो मूलतः सामाजिक विगठन के लिए उत्तरदायी हैं —

(१) सांस्कृतिक विजातीयत्व और विषमताएँ—प्राधुनिक जटिल और विशाल समाजों में विजातीयत्व का अर्थ बहुत अधिक होता है। एक समाज में अनेक प्रकार के द्योत और बड़े समूह होते हैं जिनमें भाषा, संस्कृति, धार्मिक हिता और धर्म, राजनतिक हिता जाति की बड़ी भिन्नता होती है। एक समूह में भीतर भी अनेक मन्स्या के अक्षर और उपलब्धियाँ समान नहीं होती हैं। विपक्ष समाज में अनेक मन्स्याएँ और समितियाँ एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्व हिता की निधि के लिए कार्य करती हैं। इसलिए समग्र समाज अथवा उनमें समूहों के उद्देश्यों आशों और वायव्यता में एकता का अभाव होता है। समाज के सघटका में अमान्यता होना है। प्रत्येक समूह और उपसमूह समाज की प्रचलित व्यवस्था में इच्छित परिवर्तन करना चाहता है। जब तक इच्छित परिवर्तन न हो जाए अथवा जब प्रयास विफल हो जाए तो उनके संस्थ निराशा अनिश्चित और अमनुष्य रहते हैं। उनमें व्यवहार बढ़िया समाज विरोधी होता है जो सामाजिक मरचना में गम्भीर अपमयायोजन प्रारंभ कर देता है। धार्मिक राजनतिक धार्मिक और सांस्कृतिक मध्यों का परिणाम भी सामाजिक विगठन होता है। धनी और निधनी पूँजीपतियाँ अथवा धर्मिरा अथवा मन्स्यत्र निमाना और मन्स्यत्र मजदूरों के धार्मिक मधय समाज के सामंजस्य और व्यवस्था के लिए बड़े खतरनाक होते हैं। राजनतिक अन्त के बीच के अवाञ्छित सघप दा धार्मिक सम्प्रदायों का खुला सघप और अन्त तथा अवनत संस्कृतियों का मधय समाज की एकता का भंग कर देता है। वास्तव में विभिन्न समूहों की संस्कृतियों में भिन्नता कई बार लोगों में दूसरी संस्कृति के लागे के जीवन आशों और मूल्यों के प्रति प्रकट अथवा अप्रकट अमनस्य, घृणा एवं अमहिष्णता होती है और जब अभी इसकी विस्फोटक स्थिति आ जाती है समाज का विगठन होना अवश्य-नाही है। भारत में १९४७ ई० के हिंदू मुस्लिम अंग राज्य पुनगठन के प्रश्न पर भाषाई विचार और दंग अक्षीरा और अक्षरीका मध्येन लागे तथा नाशों के प्रजातीय मधय सभी सांस्कृतिक सघप के परिणाम बड़े जा सकते हैं। हमारे देश में सवर्णों तथा अशूरा और विभिन्न जातियों के सम्प्रदायवादी सघप भी एक ही उदाहरण हैं। अतएव यह निम्नवाचक कहा जा सकता है कि समाज में सांस्कृतिक विजातीयत्व होगा। उममें सामाजिक विगठन के अघपाटन अधिक अवसर आएँगे यदि इस विजातीयत्व का अज्ञान में मामजस्य और एकता के प्रयत्न अक्षपन होते हैं। एक समाज में धार्मिक सामाजिक और सांस्कृतिक विषमताओं का निराकरण करने पर ही मधगात्मक एकीकरण प्राप्त हो सकता है।

(२) वेगमय सामाजिक परिवर्तन—सामाजिक विगठन की उत्पत्ति करने वाली दूसरी दशा वेगमय सामाजिक परिवर्तन है। प्राधुनिक उन्नत समाजों में परिवर्तन बहुत अधिक वेग से होता है। सामाजिक मरचना का धार्मिक आधार (material base)

सामाजिक विगठन के अग्र-प्रमुख स्वरूपा की जानकारी समाज के विभिन्न क्षेत्रों में विगठना का सतत कर देने से ही हासिल होती है। सामाजिक विगठन का महत्वपूर्ण क्षेत्र यहाँ परिवार, समुदाय, मस्थानों, मसूह तथा समितियाँ। समुदाय का घनगन जानियाँ (और प्रजातियाँ), वर्गों, आर्थिक सभा, राजनितिक दत्ता धार्मिक समुदायों आदि में सामाजिक विगठन उत्पन्न होता है। आजकल अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी जो विगठन होता है उसे सामाजिक विगठन कहा जाता है।

प्रत्येक क्षेत्र में विगठन का कई स्वरूप होते हैं। परिवार में तलाक, परित्याग, दरिद्रता, बकारी और आत्महत्या तथा व्यक्तिक विगठन का विभिन्न स्वरूप। सामुदायिक क्षेत्र में प्रजातिक मधय, जातीय-सधय, साम्प्रदायिक भगने दंगे, सांस्कृतिक मधय, बकारी, दरिद्रता, बर्शावृत्ति, बग सधय और भ्रष्टाचार आदि। इसी प्रकार, बकारी, पूजोपति और धर्मिक सधय, और धार्मिक मकूट और दरिद्रता धार्मिक क्षेत्र में विगठन का उदाहरण है। राजनितिक क्षेत्र के अन्तर्गत विगठन के प्रमुख रूप हैं राजनितिक दत्ता का परस्पर मधय भ्रष्टाचार, गाय का हत्या और सामाजिक धार्मिक शासन तथा भ्रष्टाचार का प्रासाहन। साम्प्रदायिक क्षेत्र में बर्शा की उद्देश्यहीनता, व्यापारिक मनोरञ्जन का पतन, शिक्षा का निरुद्देश्य और अर्थव्यवस्था का होना, बौद्धिक भ्रष्टाचार तथा अनुशासनहीनता आदि और धार्मिक क्षेत्र में धार्मिक अल्पगण्यता पर अत्याचार, तीर्थ स्नाना धर्म-स्नाना तथा पुजागिया में अनतिक्रम और अविचार आदि सामाजिक विगठन का स्वल्प मान जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शीत युद्ध महा-युद्ध साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का प्रमुख स्वरूप कह सका है।

यदि हम विचार कर देखें तो समस्त सामाजिक विगठन को निम्नलिखित प्रकारा प्रकारा में विभाजित कर सकते हैं। सामाजिक (पारिवारिक सामुदायिक, मस्थानिक) धार्मिक राजनितिक धार्मिक और साम्प्रदायिक।

ऊपर हमें सामाजिक विगठन के विभिन्न स्वरूपा का सतत किया है। इसमें शासन शासक को यह भय हासिल जाए कि सामाजिक जीवन में किसी भी पहलू में जो भी अस्वस्थ और अनिष्ट या अशान्ति है वह सब सामाजिक विगठन का अन्तर्गत आता है। परन्तु ऐसी धारणा बनाना गतनी है। साधारण सामाजिक जीवन में अनेक ऐसी घटनाएँ या क्रियाएँ होती हैं जिन्हें हम अनिष्ट या अशान्ति और अशान्ति का मानते हैं किन्तु वे अल्पस्थायी होती हैं और सामाजिक जीवन में स्वयं मिट जाती हैं। अल्पकाल प्रचलित घटनाएँ या घटनाएँ को सामाजिक विगठन नहीं मानते। सामाजिक विगठन का स्वरूप के क्रियाएँ और घटनाएँ हासिल हैं जो दीर्घकालीन हैं तथा क्रियाएँ अशान्ति में समाज की व्यवस्था की सुधारों और सुधारों के लिए विभिन्न प्रकारा उत्पन्न हासिल हैं। यदि समूह या मस्था के सामाजिक मस्त्रों का पूरा स्थापित प्रतिमान मद्य या शासक और उच्च स्थापन पर कोई नया और मूल प्रतिमान में स्थापित हासिल हासिल समूह या मस्था विगठन का धार जाणगी।

पहुंनुप्रां व निर्देश हैं। उदाहरणार्थ, अपराध व्यक्ति, समूह और समुदाय सभी के विगठन का मकत हैं।¹

सामाजिक विगठन एक अपर्याप्त धारणा

समाज में विगठन उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया सामाजिक परिवर्तन है। गत्यात्मक समाजों में परिवर्तन निरन्तर और अधिक बर्धमान है। इसमें जो नई सामाजिक स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं उनमें लोगों को नई भूमिकाएँ प्रदान करने पड़ती हैं। पुरानी भूमिकाएँ मिटती जाती हैं। नई प्रवृत्तियाँ और भूमिकाएँ के अनुकूल व्यवहार करने में लोगों का कठिनाई होती है और इसलिए बटुआ हम नई दशाओं का प्रवर्द्धन और 'असाधारण' कहते हैं। परन्तु यदि नई दशाओं से उपयुक्त समायोजन करने में कठिनाई हो प्रत्येक विभिन्न मूल्यनाशों के कारण सामाजिक समुदायों में भी 'यूनानिय विश्वद्वलता' आ जाये तो क्या इन दशाओं को सामाजिक विगठन कहना वैधानिक होगा? हम सब भली भाँति जानते हैं कि मनुष्य के समाज में परिवर्तन से प्रस्थायी अपर्याप्त समायोजन और दुःखपूर्ण कठिनाइयाँ सदैव आया ही करती हैं परन्तु इनमें समायोजन करने के प्रयत्न भी निरन्तर होते रहते हैं और उनमें ज्ञान विज्ञान की प्रगति में क्रमशः अधिक-अधिक सफलता भी मिलती है। फिर, प्रस्थायी अनिष्ट दशाओं का सामाजिक विगठन मानना कहाँ तक वैज्ञानिक है? बटुआ सम्भव है कि समाजों का हम सामाजिक विगठन कहते हैं व भविष्य में सामाजिक ढङ्ग के लिए नया सामाजिक समुदाय मात्र है।

अन्य प्राधुनिक समाज शास्त्री 'सामाजिक विगठन की धारणा' का अधिक वैधानिक एवं उपयोगी नहीं मानते हैं।² उनके विचार से अस्थायी (प्रत्येक दीर्घकालिक) कठिनाई सामाजिक दशाओं को सामाजिक समुदाय कहना चाहिए। समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण में इन समस्याओं का वैधानिक समाधान करना अधिक प्राथमिक होगा। हम इस विचार में सहमत हैं।

सामाजिक समस्याएँ

हमारे देश में आज निधनता बहारी भिन्न-भिन्न बर्धमान समायोजन नशा गरी, जनसंख्यावृद्धि राष्ट्रीय नैतिक पतन, धुंशामनहीनता धारणा, रोग माध्यम दारिद्र्य अशुभ प्रवृत्तियाँ आदि अनेक सामाजिक समस्याएँ हैं। क्या नया सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की सामाजिक समस्याएँ हैं जहाँ प्राथमिक क्षेत्र में विचार और समाज का समुदाय प्रत्येक सामाजिक क्षेत्र में व्यापक और सामग्री प्रत्येक समाज के समुदाय की समस्याएँ हैं। किन्तु समाजशास्त्र में उन समस्याओं का समाजिक समायोजन कहाँ है। निधनता बहारी, आर्थिक गरीब भ्रष्टाचार व्यापक मनोरंजन,

1. Gillin & Gillin *Cultural Sociology* p. 745

2. J. I. Cuber *Social Rev.* p. 579

युद्ध, धार्मिक मघप और राजनैतिक भ्रष्टाचार आदि एमो समस्याएँ हैं जिनकी उत्पत्ति स समुदाय या समाज के सामञ्जस्य मुन्दना और प्रगति को र्धनग हाता है र्धनैव व राजनैतिक, धार्मिक, धार्मिक समस्याएँ होत हुए भी सामाजिक हैं । अस्तु हम भारत की सामाजिक समस्याएँ उन दशाशा को वृहत् जिनकी उत्पत्ति स हमारे समाज के मूल्या का निम्नहृ खनग उत्पन्न हा जाए और जिनम रचनात्मक बायीं स परिवर्तन करन की गुञ्जाइश साची जा सकी है । सामाजिक समस्या सामाजिक प्रश्रियाशा अथवा संस्कृति का वृ अथममायाजन है जिन मुगारन के निय सामूहिक प्रयत्न होना चाहिये । वस्तुत सामाजिक परिवर्तन म सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हानी हैं । मनुष्या अथवा समूह के व्यवहार म उत्पन्न दशाशा जो आधारभूत सामाजिक मूल्यों का चुनौती है तथा जिन चुनौती क प्रति सचन हाकर समाज क वृसम्यक लोग अथभिन रचनात्मक बाय करन की गुजाइश मोचन हैं सामाजिक समस्याएँ वही जाएंगी । एव सामाजिक समस्या क तीन तत्व हो मरन हैं (प्र) सामाजिक स्थिति, (ध) मूल्य निणय और (इ) उपयुक्त सामाजिक बाय । सामाजिक समस्याएँ तत्र उत्पन्न होनी हैं जव गत्यात्मकता क कारण वृत्त अथिच म्या म लाग अथनी अथभिन सामाजिक भूमिवाशा म बाय करन म अममय हात हैं ।

सामाजिक समस्याशा क निर्धारण म मूल्या का वृतीय स्थान है । मन्दा क मन्त्व क आशा पर ही सामाजिक समस्याशा का कम या अतिक गम्भीर बन जाना है । वृ हि मूल्या का अथिध मन्व म समाज और वान स है इमतिथ समस्या की कम या अतिक गम्भीरता का निणय प्रत्येक समाज और समय क निय मयात र्धन म वही हा मरना है । जनमस्याथिचय हमारे निय अथि गम्भीर समस्या ह परन्तु आथ चीन क निय उत्तना नहीं है । सामाजिक समस्याशा क दो पन्तू हात हैं विषयक और अन्तरग । विषयक पन्तू मे उन वृष्य व्यवशा का समावेश हाता है जिनम सामाजिक समस्या की उत्पत्ति का जान हाता है । इन व्यवशा या स्थिति का आशात्मक परिभाषा सामाजिक समस्या का अन्तरग पन्तू है । अमुक सामाजिक स्थिति बुगी गम्भीर और हातिकर है अथवा न्ना यह परिभाषा और निणय पर आधारित है । बहुधा सभी समूह इन पर एकमत नहीं हा पाते कि अमुक सामाजिक स्थिति एक समस्या है ।

सामाजिक समस्याशा पर जो समाजशास्त्रीय अध्ययन और अनुगवान र्ध्या है उमम निम्नलिखित निष्पय निरमते हैं —

- (१) सामाजिक समस्याओं म ऐसी सामाजिक शाशा का समावेश किया जाता है जो प्रचलित मूल्यों की परिभाषा म समस्याएँ हैं जिन का न तिक रूप म वाट क विन्तुन समस्याएँ न हा ।

- (२) प्रत्येक सामाजिक समस्या के अनेक कारण होते हैं।
- (३) सामाजिक समस्याओं के समाधान के उपायों का प्रभाव अलग-अलग दिशाओं में पड़ता है और प्रारम्भ में इसका पूर्वकथन करना असम्भव हो सकता है।
- (४) सामाजिक परिवर्तन से समस्याओं का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कुछ समस्याएँ सामाजिक परिवर्तन का परिणाम होती हैं और दूसरी स्वयं सामाजिक परिवर्तन लाती हैं और सामाजिक समस्याओं के निराकरण से कुछ सामाजिक परिवर्तन भी होता है।
- (५) सभी सामाजिक समस्याओं का समस्त समूह पर समाज प्रभाव नहीं पड़ता है। कुछ समस्याएँ यथावत् बग-समस्याएँ होती हैं परन्तु उन्हें सुलभाने के लिये साधारण समाज की समस्याएँ बना दिया जाता है।
- (६) विभिन्न सामाजिक समस्याओं का घाव में सम्बन्ध होता है। वे बढ़ती-बढ़ती एक-दूसरे की सम्भारता बढ़ाती हैं और कभी-कभी नई समस्याओं की भी उत्पन्न करती हैं।
- (७) कुछ सामाजिक समस्याएँ सामाजिक नियन्त्रण (कानून) से भी उत्पन्न हो सकती हैं क्योंकि साधारणतया लाभकारी कानून का साथ कई बार अवांछित परिणाम भी प्रकट हो सकता है। नशानिरोध और वेश्यावृत्ति निरोध अधिनियमों में ऐसे अवांछित परिणामों की आशंका है।
- (८) व्यक्तिगत रूप से मनुष्य सामाजिक समस्याओं का प्रभाव से बाहर नहीं रह पाता है। बढ़ती-बढ़ती हमको चारों ओर घेर लेती है।

धार्मिक मनुष्य सामूहिक सामाजिक दशाओं से प्रति प्रति मग्न-मग्न है। इससे अलग-अलग और अधिक गंभीर सामाजिक समस्याओं की उपस्थिति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया जाता है। समस्त धार्मिक मनुष्य वर्तमान समाज का एक ही भाग है और प्रति प्रति अलग-अलग है। इसके दो कारण हो सकते हैं। हम जनतन्त्र-प्रिय विचारों का प्रभाव में अपने सामाजिक दायित्वों को अन्धे-अन्धे तरह समझते हैं और दूसरे सामाजिक जीवन पर नियन्त्रण करने की शक्ति का हम पान हो गया है। हम परिस्थितियों का नाम बनने का नकार नहीं हैं और यह विश्वास करते हैं कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माण करने में समर्थ है।

धार्मिक मनुष्य समाज की अलग-अलग समस्याओं से विनित होकर कुछ साधक बने हैं कि हमारा युग अतीत की तुलना में अधिक कष्टकर और दुःखितकाम है। बहुत लोगों का स्वर्णिम अतीत का स्वप्न दृष्टि की धारणा है। परन्तु यह बहुत गहरा है कि अतीत का अतीतना सुनहरा रंग है। एक ही दिशा में आगे बढ़ना ही समाज का अर्थ है। हम वर्तमान में भविष्य की ओर जाते हैं कि अतीत की

घर। हमारा बतमात्र समाज बचन एक भिन्न प्रकार का समाज है। इस परिवर्तन बड़ा बेगमय है और हमारी व्यक्तिगत अभिरुचाएँ भी अधिक साधारण हैं जिनके कारण हम नये मूल्यों के अनुरूप सामूहिक जीवन के प्रति अधिक गहवात्मक पद्धति से उत्पन्न पण्डित हैं। परन्तु इन पर भी यह बहुत महत्व है कि हमारा नया समाज अधिक सुखमय जीवन वितान की संभावनाएँ प्रस्तुत करेगा। सामाजिक पुनर्निर्माण और पुनर्निर्माण के आयाजित प्रयत्न हम शिक्षा में आशा के सुदृढ़ स्तम्भ हैं।

सामाजिक पुनगठन

विद्वान् पण्डितों में इस बात पर बल दिया गया है कि आधुनिक जटिल समाजों में नीचे परिष्करण होने के कारण उनमें अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। ये समस्याएँ समाज के सदस्यों में पूर्व स्थापित समन्वय और मनुजलन विगाड़ देती हैं। सामाजिक संघटन में इस मनुजलन का पुनः स्थापित करना निश्चय आवश्यक है। कुछ मनुजलन तो स्वयं मिट जाता है और शेष का मनुष्य के चेतनायुक्त प्रयत्न में ठीक करना जरूरी हो जाता है। आर्थिक बल में मनुष्य सामाजिक समस्याओं का जटिल समाधान करता रहता है। वर्तमान पान वितान के विकास में उसकी बड़ी शक्ति और साधन प्राप्त हो गए हैं जिनसे वर्तमान उसकी जटिल समस्याओं के पुनर्निर्माण में बहुत ही प्रभावी होता है।

सामाजिक समस्याओं की उपस्थिति से समाज में जहाँ-तहाँ विगाड़ पा जाते हैं। उनके सुधार के प्रयत्न का सामाजिक सुधार कहते हैं। हमारे देश में १५वीं शताब्दी में जो समाज सुधार आन्दोलन चलने लगे उद्देश्य गंभीर सामाजिक समस्याओं का दृष्टि समाधान करना था। इनकी सफलता का ही परिणाम है कि राज्य न समय-समय पर सतीप्रथा, बालविवाह, नशाखोरी, अशुभ्रता और बर्बादों का प्रवर्धन घोषित कर दिया है। बच्चों और स्त्रियों के कल्याण और शिक्षा तथा आर्थिक शिक्षा के उद्देश्य से पुनर्वासन के नियमों में जो सामाजिक विगाड़ बनेंगे उनमें जनता द्वारा दिए गए सुधार प्रयत्नों का बड़ा योगदान है। किन्तु प्रकृति में जो समाजसुधार सामाजिक पुनर्गठन के बहुत ही महत्वपूर्ण प्रयत्न हैं। वर्तमान समय में समाज-सुधार के समाज-सुधार का वैधानिक और व्यवस्थित बनाने में विचार मत्तपना दी है। परन्तु हमारे जटिल समाज में एक माध्यम गंभीर समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। कुछ पुनर्गठन समस्याएँ भी मरणाति प्रकृति में भयानक रूप धारण कर लेती हैं। इनमें मरणाति प्रकृति और प्रभावपूर्ण समाधान करने में समाज-सुधार और समाज-सुधार के प्रयत्न बहुत आवश्यक सिद्ध होते हैं। थोड़ी सी घमावधानी और नीरसता में समाज का नशा होना भी संभव है। जनता के उच्च भाग को मरणाति मरणाति पर उच्च महत्व है और मरणाति पण्डितों के भी भाग में है जिनमें समाज की स्थिरता, स्वतंत्रता और मरणाति

ही स्तर में पड़ जायें। इसीलिए गत्यात्मक समाजों से कल्याणी अथवा समायोजनीय और गहरीडियो के निराकरण के लिये व्यापक कार्यक्रमों का उदात्त प्रतिपाद समझना जानना है। इन कार्यक्रमों का निमाण सुनिश्चित सामाजिक नीतियों के अनुसूचन जानना है और सामुदायिक स्तर पर निश्चित किए गए लक्ष्यों की यथाशील प्राप्ति के लिये राज्य निजी कल्याणकारी संस्थाओं तथा मंत्रमाधारण सबको सक्रिय और स्वेच्छित सहयोग से वैश्वीय समन्वयकारी नवृत्त न उन कार्यक्रमों के परिपालन में जुटा पड़ता है। इन कार्यक्रमों की प्रगति और सफलता से समाज के पुनर्निमाण अथवा पुनर्गठन की आशा की जाती है। अतएव सामाजिक पुनर्निमाण में एक व्यापक और आयोजित कार्यक्रमों तथा विधियों का समावेश जानना है जो समाज की कमजोरियाँ, अक्षय्यताओं, अभावों और अक्षय्यताओं का निराकरण कर एक सुदृढ मजबूत और यथामुम्भित सन्तुलित समाज की स्थापना के लक्ष्य से राज्य जनता और कल्याणकारी संस्थाओं के सक्रिय सहयोग से संचालित हो। अतएव सामाजिक पुनर्निमाण के लक्ष्य की प्राप्ति दीर्घकाल में ही हो सकती है फिर भी एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में यह अभी प्रारम्भ हो जाता है जब समाज में जटिल परिवर्तन करने के नियंत्रण युक्त व्यापक प्रयत्न प्रारम्भ किए जाएं।

सामाजिक पुनर्निमाण दान्तिमय विचारों और निरासवादी उपायों से ही सफल है और टिका मक उग्र और क्रांतिकारी उपायों से भी। उक्त ढंग से जनता की समझ की मांग के प्रति जागरूक कर लक्ष्य और विचार परिवर्तन की सफलता दूर समाज के पुनर्निमाण में सक्रिय स्वेच्छित सहयोग देने का आग्रह किया जाता है। हमारे कानूनों और अन्य उपायों में जनमाधारण को राज्य समन्वयकों में सहयोग करने को अनुसूच आग्रह और प्रयास से उत्पन्न किया जाता है। अतः विशेष और राज्य-नीतियों के विपरीत प्रयत्नों की गवया कुचल किया जाता है। अतः १९१७ ई० की क्रांति सामाजिक पुनर्निमाण का दूनग ढंग था। पूर्वी यूरोप की उत्तरी इंग्लैंड की उत्तरी काठिया घाटि माध्यमों के उग्र क्रांतिकारी ढंग से समाज का पुनर्निमाण सर्वोत्तम ढंग माना जाता है क्योंकि उक्त विचार में यह तरीका विचार दिनों दक्षिणों और समाज विरोधी लक्ष्यों का गहनता से कुचल महता है। यही लक्ष्य सर्वोत्तम है और समाज का समन्वय किया जा सकता है माना जाता है। भारत अथवा सरा मित्य घाटि लक्ष्यों तथा विश्वीय युगा के समाजशास्त्रीयता में समाज पुनर्निमाण के लिए परिभाषित व्यापक और विचार दक्षिणों का सर्वोत्तम कहा जाता है। इसका विश्वास है कि विचारों और विचारों की उपायों से समाज की सुख-शांति और समन्वयों का स्थायी समाधान ही महता है। विशेष लक्ष्य का दमन और उत्पन्न भावों समाज का आधार में समन्वय और प्रतिभाप भावना का दया द्वाइ सफल है। इस लक्ष्य में उपायों समाजशास्त्र अथवा

सर्वोत्थ (भारत) की स्थापना के लिए केंद्रीय मंचालन और निर्देशन में समग्र आयोजन चल रही है। भारत का पंचवर्षीय योजनाएँ इस दिशा में सबसे सांख्यिक प्रयास हैं। साम्यवादी शासन भी समग्र आयोजन लागू की जा रहा है। वास्तव में यह देश इस बात में समर्थक धरणा है। अभी तक प्राप्त सूचना सामग्री के अनुसार यह कहा जा सकता है कि साम्यवादी शासन का पुनर्निर्माण में जितना शीघ्र स्थायी और महत्वपूर्ण महत्त्वपूर्ण सिद्ध है उनकी तुलना में गर साम्यवादी देश बहुत पीछे हैं परन्तु दोनों देशों के पुनर्निर्माण में मानवता के लिए अधिक कल्याणकारक भाग की तलाश इसका निर्णय हम बीच कथों के बाद ही करना सम्भव होगा।

